महात्मा गांधी के विचार

संकलन एवं संपादन

आर. के. प्रभु तथा यू. आर. राव

प्राक्कथन

आचार्य विनोबा भावे

तथा

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन

अनुवाद

भवानी दत्त पंड्या

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित पुस्तक The Mind of Mahatma Gandhi का यह हिंदी अनुवाद महात्मा गांधी की 125 वीं जयंती के अवसर पर 2 अक्तूबर, 1994 को प्रकाशित

ISBN 81-237-0985-4 | पहला संस्करण : 1994

मूल © नवजीवन ट्रस्ट | हिंदी अनुवाद © नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 1994

नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद – 380 014 (भारत) की अनुमति से निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया,

ए-5, ग्रीन पार्क, नई दिल्ली – 110 016 द्वारा प्रकाशित

विषय सूची

प्राक्कथन

भूमिका

पाठकों से

1. अपने बारे में

1. न संत, न पापी
2. मेरा महात्मापन
3. जानता हूं मार्ग मैं
4. मेरा जीवन-लक्ष्य
5. अंत:करण की आवाज
6. मेरे उपवास
7. मेरी असंगतियां
8. मेरा लेखन

2. सत्य

9. सत्य का दिव्य संदेश
10. सत्य ईश्वर है
11. सत्य और सौंदर्य

3. अभय

12. अभय का दिव्य संदेश

4. आस्था

13. आस्था का दिव्य संदेश
14. परमात्मा का आशय
15. रामनाम
16. मेरी आत्मा का आहार : प्रार्थना
17. मेरा हिंदू धर्म व्यावर्तक नहीं है
18. धर्म और राजनीति
19. मंदिर और मूर्तिपूजा
20. छूआछूत का अभिशाप

5. अहिंसा

21. अहिंसा का दिव्य संदेश

22. अहिंसा की शक्ति
23. अहिंसा के लिए प्रशिक्षण
24. अहिंसा पर अमल
25. अहिंसक समाज
26. अहिंसक राज्य
27. हिंसा और आतंकवाद
28. हिंसा और कायरता के बीच चुनाव
29. आक्रमण का प्रतिरोध
30. भारत के सामने चुनने के लिए मार्ग
31. भारत और अहिंसक मार्ग
32. भारत और हिंसक मार्ग

6. सत्याग्रह

33. सत्याग्रह का दिव्य संदेश
34. सत्याग्रह की शक्ति
35. असहयोग
36. उपवास और सत्याग्रह

7. अपरिग्रह

37. अपरिग्रह का दिव्य संदेश
38. गरीबी और अमीरी
39. दरिद्रनारायण

8. श्रम

40. रोटी के लिए शारीरिक श्रम का सिद्धांत
41. श्रम और पूंजी
42. हड़तालें – वैध और अवैध
43. खेतिहर किसान
44. श्रमिक वर्ग के सामने मौजूद रास्ते

9. सर्वोदय

45. सर्वोदय का दिव्य संदेश
46. यज्ञ का दर्शन
47. यह शैतानी सभ्यता
48. मनुष्य बनाम मशीन

49. औद्योगीकरण का अभिशाप
50. समाजवाद
51. समाज का समाजवादी ढांचा
52. साम्यवादी पंथ – बीज

10. न्यासिता

53. न्यासिता का दिव्य संदेश
54. अहिंसक अर्थव्यवस्था
55. आर्थिक समानता

11. ब्रह्मचर्य

56. ब्रह्मचर्य का दिव्य संदेश
57. विवाह का आदर्श
58. बच्चे
59. संतति-निग्रह
60. समाज में स्त्रियों की स्थिति और भूमिका
61. यौन शिक्षा
62. स्त्रियों के विरुद्ध अपराध
63. आश्रम के व्रत

12. स्वतंत्रता और लोकतंत्र

64. स्वतंत्रता का दिव्य संदेश
65. स्वराज का मेरे लिए क्या अर्थ है
66. मैं ब्रिटेन-विरोधी नहीं हूं
67. रामराज्य
68. कश्मीर
69. भारत में विदेशी बस्तियां
70. भारत और पाकिस्तान
71. भारत का ध्येय
72. लोकतंत्र का सार
73. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस
74. लोकप्रिय मंत्रिमंडल
75. मेरे सपनों का भारत
76. वापस गांवों की ओर

77. समग्र ग्राम सेवा
78. पंचायत राज
79. शिक्षा
80. भाषावार प्रांत
81. गोरक्षा
82. सहकारी पशुपालन
83. प्राकृतिक चिकित्सा
84. सामूहिक स्वच्छता
85. सांप्रदायिक सद्भाव

13. स्वदेशी

86. चरखे का दिव्य संदेश
87. स्वदेशी का अर्थ

14. भाईचारा

88. प्रेम का दिव्य संदेश
89. समस्त जीवन एक है
90. मैं सांस्कृतिक अलगाव नहीं चाहता
91. राष्ट्रभक्ति बनाम अंतर्राष्ट्रीयतावाद
92. नस्लवाद
93. युद्ध और शांति
94. परमाणु युद्ध
95. शांति का मार्ग
96. कल की दुनिया

15. प्रासंगिक विचार

स्त्रोत
स्त्रोत-संदर्भ
कालानुक्रम
अनुक्रमणिका

प्राक्कथन

(संशोधित अंग्रेजी संस्करण का)

खुशी की बात है कि श्री प्रभु और श्री राव द्वारा संपादित 'महात्मा गांधी के विचार' की नयी परिष्कृत और परिवर्धित आवृत्ति नवजीवन ट्रस्ट की तरफ से प्रकाशित की जा रही है |

इस नये संस्करण में गांधीजी के अंतिमतम विचार भी उद्धृत किए गए हैं | इससे यह संस्करण अद्यतन बना है, ऐसा कह सकते हैं |

"लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति" –

लोकोत्तर पुरुषों का मानस कौन जान सकता है, यह भवभूति का वचन सर्वश्रुत है | गांधीजी ने लोकोत्तर पुरुष होते हुए भी अपना मन परिपूर्णतया लोगों के सामने खोलकर रखा हुआ था | अपनी तरफ से उन्होंने कोई गूढ़ता नहीं रहने दी थी | फिर भी उनके जीवन का अंतिम-पर्व, जिसे मैंने स्वर्गारोहण-पर्व नाम दे रखा है, मुझे कबूल करना चाहिए, मेरे लिए गूढ़ ही रह गया है | बल्कि मुझे तो वह भगवान कृष्ण की अंतिम लीला के समान ही प्रतीत हुआ है | उस गूढ़ को खोलने के लिए तो गांधीजी को ही दुबारा आना पड़ेगा | लेकिन तब तक सत्य की खोज करने वाले सर्वोदय-साधकों को गांधीजी के विचारों को समझने में यह किताब अवश्य मदद देगी, ऐसी मैं आशा करता हूं |

विनोबा का जय जगत

पड़ाव – किशनगंज
जिला – पूर्णिया, बिहार प्रदेश
12-5-1966

प्राक्कथन

(प्रथम और द्वितीय अंग्रेजी संस्करणों का)

ऐसा कभी-कभी ही होता है कि सामान्य स्तर से ऊपर उठकर कोई असाधारण आत्मा, जिसने ईश्वर के विषय में अधिक गहराई से चिंतन किया है, दैवी हेतु का अधिक स्पष्टता के साथ प्रतिसंवेदन करती है और दैवी मार्गदर्शन के अनुरूप वीरतापूर्वक आचरण करती है | ऐसी महान आत्मा का आलोक अंधकारमय और अस्तव्यस्त संसार के लिए प्रखर संकेत-दीप का काम देता है | गांधीजी उन पैगंबरों में से हैं जिनमें हृदय का शौर्य, आत्मा का शील और निर्भीक व्यक्ति की हंसी के दर्शन होते हैं | उनका जीवन और उनके उपदेश उन मूल्यों के साक्षी हैं, जो राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय की सीमा से परे सार्वभौम हैं और जो युगों से इस देश की धरोहर रहे हैं – आत्मा में आस्था, उसके रहस्यों के प्रति आदर-भाव, पवित्रता में निहित सौंदर्य, जीवन के कर्तव्यों का स्वीकार, चरित्र की प्रामाणिकता |

ऐसे अनेक लोग हैं, जो गांधीजी को एक ऐसा पेशेवर राजनीतिज्ञ मानकर खारिज कर देते हैं, जो नाजुक मौकों पर अनाड़ी साबित होता रहा | एक मायने में, राजनीति एक पेशा है और राजनीतिज्ञ वह व्यक्ति है जो सार्वजनिक मामलों को कुशलतापूर्वक चलाने में दक्ष हो | एक दूसरे अर्थ में, राजनीति एक कर्तव्य है और राजनीतिज्ञ वह व्यक्ति है जो अपने देशवासियों की रक्षा करने, उन्हें ईश्वर के प्रति आस्था रखने और मानवता से प्रेम करने की प्रेरणा देना अपना जीवन-लक्ष्य मानता है और उसके प्रति पूरी तरह जागरूक रहता है | ऐसा राजनीतिज्ञ शासन के व्यावहारिक संचालन में असफल हो सकता है, लेकिन वह अपने साथियों के मन में अपने लक्ष्य के प्रति अजेय आस्था उत्पन्न करने में अवश्य सफल होता है | गांधी मूलत: इस द्वितीय अर्थ में ही राजनीतिज्ञ हैं | उन्हें इस बात का पक्का विश्वास है कि यदि हम आत्म-जगत में, अध्यात्म-लोक में अपने चित्त को दृढ़ रखें, तो हम निश्चय ही एक ऐसे संसार की रचना कर सकते हैं जिसमें न गरीबी होगी न बेरोजगारी और जिसमें युद्धों तथा रक्तपात के लिए भी कोई स्थान नहीं होगा | उनका कहना है : "कल की दुनिया, अहिंसा पर आधारित समाज होगी, - होनी चाहिए | यह एक दूरस्थ लक्ष्य, एक अव्यावहारिक 'यूटोपिया' मालूम हो सकता है लेकिन यह अप्राप्य कदापि नहीं है, क्योंकि इस पर आज ही और अभी से अमल किया जा सकता है | कोई भी व्यक्ति दूसरों की प्रतीक्षा किए बिना भावी संसार की जीवन-पद्धति को – अहिंसक पद्धति को – अपना सकता है | और यदि व्यक्ति ऐसा कर सकता है तो पूरे-पूरे व्यक्ति-समूह क्यों नहीं कर सकते ? समूचे राष्ट्र क्यों नहीं कर सकते ? लोग अक्सर शुरुआत करने से इसलिए हिचकते हैं कि उन्हें लगता है कि लक्ष्य को पूरी तरह प्राप्त नहीं किया जा सकेगा | हमारी यह मनोवृत्ति ही प्रगति के मार्ग की सबसे बड़ी रुकावट है – यह रुकावट ऐसी है जिसे हर आदमी, अगर वह चाहे तो, दूर कर सकता है |"[1]

एक आम आलोचना यह है कि गांधीजी की दृष्टि उनके गृहीत ज्ञान से कहीं ऊंची उड़ान भरती है, कि वे इस सुगम किंतु भ्रांत धारणा को लेकर आगे बढ़ते हैं कि संसार सत्पुरुषों से भरा पड़ा है | यह वस्तुत: गांधी के विचारों का मिथ्याकथन है | वे अच्छी तरह समझते हैं कि जिंदगी ज़्यादा-से-ज़्यादा दूसरे दर्जे की जिंदगी होती है और हमें बराबर आदर्श तथा संभाव्य के बीच समझौता करते हुए चलना पड़ता है | स्वर्ग में कोई समझौता नहीं है, न कोई व्यावहारिक सीमाएं हैं लेकिन पृथ्वी पर तो हम प्रकृति के क्रूर नियमों से बंधे हैं | हमें मानवीय विकारों को स्वीकार करते हुए ही व्यवस्थित विश्व की रचना करनी है | बड़े प्रयास और कठिनाई से ही आदर्शों की सिद्धि हो पाती है | यह महसूस करते हुए भी कि सभ्य समाज का आदर्श अहिंसा ही है, गांधीजी हिंसा की अनुमति देते हैं | "यदि व्यक्ति में साहस का अभाव हो तो मैं चाहूंगा कि वह खतरा सामने देखकर कायरों की तरह भाग खड़े होने के बजाय मारने और मरने की कला सीखे |"[2] "दुनिया पूरी तरह तर्क के सहारे नहीं चलती | जीवन जीने की प्रक्रिया में ही कुछ-न-कुछ हिंसा होती ही है और हमें न्यूनतम हिंसा का रास्ता चुनना पड़ता है |"[3] समाजों की प्रगति के तीन चरण स्पष्टत: परिलक्षित हैं – पहले चरण में जंगल का नियम चलता है जिसमें हिंसा और स्वार्थ का बोलबाला होता है; दूसरे चरण में विधि का नियम और अदालतों, पुलिस तथा कारागृहों सहित निष्पक्ष न्याय की व्यवस्था होती है; और तीसरा चरण वह है जिसमें अहिंसा और निस्स्वार्थ भाव का प्राधान्य होता है तथा प्रेम और विधि एक ही होते हैं | यह अंतिम चरण ही सभ्य मानवता का लक्ष्य है और गांधी जैसे लोगों का जीवन तथा कार्य हमें उसी के निकटतर ले जाते हैं |

गांधी के विचारों और उनकी चिंतन-प्रक्रिया को लेकर आज बड़ी भ्रांतियां फैली हुई हैं | मुझे आशा है कि यह पुस्तक, जिसमें गांधी की आस्था और आचरण के केंद्रीय सिद्धांतों के विषय में उनके अपने ही लेखन से संगत उद्धरणों का संकलन किया गया है, आधुनिक व्यक्ति के मन में गांधी की स्थिति को सुस्पष्ट करने में सहायक सिद्ध होगी |

बनारस **-सर्वपल्ली राधाकृष्णन**

4 अप्रैल, 1945

---

1. लिबर्टी, लंदन, 1931.

2. हरिजन, 15-1-1938, पृ. 418.

3. हरिजन, 28-9-1934, पृ. 259.

भूमिका

(संशोधित अंग्रेजी संस्करण की)

किसी महापुरुष का, उसके जीवन-काल में, मूल्यांकन करना अथवा इतिहास में उसके स्थान का निर्धारण करना, आसान काम नहीं है | गांधीजी ने एक बार कहा था : "सोलन को किसी व्यक्ति के जीवनकाल में, उसके सुख के विषय में निर्णय देने में कठिनाई अनुभव हुई थी; ऐसी सूरत में, मनुष्य की महानता के विषय में निर्णय देना तो और भी कितना कठिन काम हो सकता है ?"[1] एक अन्य अवसर पर, अपने बारे में बात करते हुए उन्होंने कहा था : "मेरी आंखें मुंद जाने और इस काया के भस्मीभूत हो जाने के बाद, मेरे काम पर निर्णय देने के लिए काफी समय शेष रह जाएगा |"[2] अब उनकी शहादत को उन्नीस बरस हो चुके हैं |

उनकी मृत्यु पर सारी दुनिया ने ऐसा शोक मनाया जैसा मानव इतिहास में किसी अन्य मृत्यु पर नहीं मनाया गया था | जिस तरह उनकी मृत्यु हुई, उससे यह दुख और भी बढ़ गया था | जैसा कि किसी प्रेक्षक ने कहा था, उनकी हत्या की याद शताब्दियों तक ताज़ा रहेगी | सं. रा. अमरीका की 'हर्स्ट प्रेस' का मानना था कि लिंकन की ऐसी ही शहादत के बाद से मानव इतिहास में किसी अन्य मृत्यु का दुनिया पर इतना भावात्मक प्रभाव नहीं पड़ा | गांधीजी के बारे में भी यह कहना उचित ही होगा कि "वे अब युगपुरुषों की कोटि में आ गए हैं |" उस अंधकारमय रात्रि को जवाहरलाल नेहरु द्वारा कहे गए अविस्मरणीय शब्द बरबस कानों में गूंज जाते हैं : "हमारे जीवन से एक ज्योति लुप्त हो गई है |" इसी भावना को रेखांकित करते हुए 'न्यूयार्क टाइम्स' ने 31 जनवरी, 1948 को यह और जोड़ा था कि अब जो कुछ कहने के लिए बचा है, वह इतिहास के क्रूर हाथों लिखा जाएगा | प्रश्न यह है कि इतिहास गांधीजी के बारे में क्या फैसला देगा ?

यदि समसामयिक अभिमतों को महत्वपूर्ण मानें तो गांधीजी की गिनती मानव इतिहास के महानतम पुरुषों में की जाएगी | जहां ई. एम. फोर्स्टर की धारणा थी कि गांधी को संभवत: हमारी शताब्दी का महानतम व्यक्ति माना जाएगा, आर्नोल्ड टायनबी को दृढ़ विश्वास था कि ऐसा अवश्य होगा | डॉ. जे. एच. होम्स ने यह कहकर कि "गांधीजी गौतम बुद्ध के बाद महानतम भारतीय थे और ईसा मसीह के बाद महानतम व्यक्ति थे" गांधीजी का और भी ठोस मूल्यांकन कर दिया था | लेकिन अपने देशवासियों के हृदयों में तो वे संभवत: महात्मा के रूप में अंकित रहेंगे या फिर वे उन्हें और भी प्यार से बापू -'राष्ट्रपिता'- कहकर याद रखेंगे जिन्होंने एक रक्तहीन क्रांति के जरिए उन्हें विदेशी दासता से मुक्त कराया था |

गांधीजी के वे कौन-से गुण हैं जो महानता के अवयव हैं ? वे केवल एक महान व्यक्ति ही नहीं थे; वे महापुरुष और सत्पुरुष, दोनों थे – यह योग, जैसा कि एक आलोचक का कहना है, अत्यंत दुर्लभ है और लोग प्राय: इसका महत्व

नहीं समझ पाते | इस संदर्भ में जार्ज बर्नाड शा के सारगर्भित शब्द याद आ जाते हैं : "बहुत अच्छा होना भी बड़ा खतरनाक है |"

इतिहास इस बात को भी दर्ज करेगा कि इस छोटे-से दिखने वाले आदमी का अपने देशवासियों के ऊपर इतना जबर्दस्त प्रभाव था, कि उसकी मिसाल नहीं मिलती | यह आश्चर्य की ही बात है कि इस प्रभाव के पीछे कोई लौकिक शक्ति या अस्त्र-शस्त्रों का बल नहीं था | गांधी की इस गूढ़ पहेली की कुंजी, यदि उसे पहेली मानें तो, लार्ड हैलीफैक्स के मतानुसार है – उनका श्रेष्ठ चरित्र और स्वयं को मिसाल के रूप में रखने वाला उनका श्रेष्ठ आचरण | लार्ड हैलिफैक्स नमक सत्याग्रह के दिनों में वाइसराय थे और उनके काफ़ी नज़दीक आये थे, जिससे कि वे उन्हें समझ सके थे | चरित्र और आचरण की इस शक्ति के द्वारा ही गांधीजी ने अपनी पीढ़ी के विचारों पर ऐसा गहरा असर डाला, न कि नीति-वचनों या उपदेशों-निर्देशों द्वारा | प्रो. एल. डब्ल्यू. ग्रेंस्टेड की यह धारणा सचमुच सही है कि गांधीजी की महानता उनकी उपलब्धियों में नहीं अपितु उनके चरित्र में निहित थी | फिलिप नोएल-बेकर इसमें दो बातें और जोड़ना चाहते थे – प्रयोजन की शुद्धता (पवित्रता) और अपने ध्येय के प्रति नि:स्वार्थ समर्पण-भाव |

लेकिन गांधीजी के अभूतपूर्व उत्कर्ष के पीछे केवल ये ही कारण नहीं थे | समसामयिक साक्ष्य को ही उद्धृत करें तो रेजिनाल्ड सोरेनसन का मानना था कि गांधीजी का मात्र भारत ही नहीं बल्कि हमारे पूरे आधुनिक युग पर जो अकूत प्रभाव था उसका कारण यह था कि वे आत्मा की शक्ति के साक्षी थे और उन्होंने उसका अपने राजनीतिक कार्यकलाप में इस्तेमाल करने का प्रयास किया था | गांधीजी की असाधारणता इसमें है कि उन्होंने मानव आत्मा के प्रति अपनी आस्था पर और सांसारिक विषयों में आध्यात्मिक मूल्यों और तकनीकों को लागू करने पर बल दिया | डॉ. फ्रांसिस नीलसन इसी चीज़ की ओर इशारा करते हुए गांधीजी के विषय में कहते हैं : "गांधीजी कर्म में डायोजीनिस, विनम्रता में सेंट फ्रांसिस और बुद्धिमानी में सुकरात थे; इन्हीं गुणों के बल पर गांधीजी ने दुनिया के सामने उजागर कर दिया कि अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए ताक़त का सहारा लेने वाले राजनेताओं के तरीके कितने क्षुद्र हैं | इस प्रतियोगिता में, राज्य की शक्तियों के भौतिक विरोध की तुलना में, आध्यात्मिक सत्यनिष्ठा विजयी होती है |"[3]

गांधीजी ने राज्य की संगठित शक्ति के मुकाबले पर अहिंसा और सत्य की पवित्र शक्ति को ला खड़ा किया था | और, उनकी जीत हुई थी | लेकिन उन्होंने अहिंसा और सत्य के जिस सिद्धांत का प्रचार और व्यवहार किया था, वह कोई नया दर्शन नहीं था | उन्होंने सचमुच यह स्वीकार किया था, बल्कि दावा किया था, कि यह सिद्धांत 'उतना ही पुराना है जितने कि पर्वत' | उन्होंने तो इस दर्शन को केवल पुनर्जीवित किया था और उसका एक नये स्तर पर प्रयोग किया था | अपने इस विश्वास के अनुरूप कि सत्य एक जीता-जागता सिद्धांत है और वह संवर्धनशील है, अत: अपने सच्चे पुजारी के समक्ष नये-नये रूपों में उजागर होता है, उन्होंने अहिंसा के सिद्धांत के

नये आयामों और नयी शक्तियों को खोजने में सफल होने का दावा किया था | यह ठीक है कि वह सिद्धांत सत्य के सिक्के का ही दूसरा पहलू था लेकिन इसी कारण, वह उससे अभिन्न था | गांधीजी ने सारी दुनिया में फैले अपने सहयोगियों के मन में इस बात को बिठाना अपना जीवन-ध्येय मान लिया था कि व्यक्ति, समुदाय अथवा राष्ट्र के रूप में उन्हें तब तक चैन नहीं मिल सकता जब तक वे अहिंसा और सत्य के मार्ग पर चलने का निश्चय नहीं कर लेते |

एक आलोचक के अनुसार, राजनीति में इस मार्ग का अर्थ था – और है – एक आमूल क्रांति अर्थात समूचे व्यक्तिगत अथवा राजनीतिक जीवन में एक बदलाव, जिसके बिना कोई समाधान संभव नहीं | लेकिन, गांधीजी व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन अर्थात मनुष्य के अंतरंग और बहिरंग जीवन के बीच किसी भेदक दीवार के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते थे | इस अर्थ में वे विश्व के अधिकांश राजनीतिज्ञों और राजनेताओं से बिलकुल अलग थे | और, इसी में उनकी शक्ति का रहस्य छिपा था |

गांधीजी ने स्वयं कहा था कि उनके पास जो भी शक्ति अथवा प्रभाव है, वह धर्म से उद्‌भूत है | स्टेफोर्ड क्रिप्स के मन में शायद यही बात थी जब उन्होंने कहा था कि हमारे जमाने में सारी दुनिया के अंदर गांधीजी से बड़ा आध्यात्मिक नेता पैदा नहीं हुआ | गांधीजी के व्यक्तित्व के इसी पक्ष को सार रूप में प्रस्तुत करते हुए 'मानचेस्टर गार्जियन' ने 31 जनवरी 1948 को लिखा था : "सबसे बढ़कर, वे ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने धर्म के अर्थ और उसके मूल्य के विषय में हमारी धारणा को पुनरुज्जीवित किया और उसे स्फूर्ति प्रदान की | यद्यपि वे एक ऐसी सर्वसमावेशी प्रज्ञा अथवा भावात्मक संपत्ति के धनी नहीं थे कि किसी नये दर्शन या नये धर्म को जन्म दे पाते लेकिन उनकी नैतिक प्रवृत्ति की शक्ति और शुद्धता स्पष्ट रूप से उनकी गहरी धार्मिक भावनाओं से उत्पन्न हुई थीं...."

आज दुनिया निश्चित रूप से विनाश के कगार पर खड़ी है जिससे उसकी रक्षा करना काफ़ी कठिन दिखाई दे रहा है | इसके कारण हैं : सतत वैचारिक संघर्ष, विकट जातीय द्वेष जिनके परिणामस्वरूप ऐसे युद्ध छिड़ सकते हैं जिनकी मिसाल इतिहास में नहीं मिलेगी, और परमाणु अस्त्रों की संख्या में अंधाधुंध वृद्धि का बराबर बना हुआ खतरा जिससे अकल्पनीय विनाश की नौबत आ सकती है | ऐसी सूरत में, मानव जाति को अपनी अस्तित्व-रक्षा के लिए दो में से एक बल को चुनना है – नैतिक बल अथवा भौतिक बल | भौतिक बल मानव जाति को आत्मसंहार की ओर ले जा रहा है | गांधीजी हमें दूसरी दिशा में जाने का संकेत करते हैं क्योंकि वे नैतिक बल की प्रतिमूर्ति हैं | आप कह सकते हैं कि यह कोई नयी दिशा नहीं है | पर यह वह दिशा अवश्य है जिसे दुनिया या तो भूल गई है या जिस पर चलने का साहस नहीं कर पाती | लेकिन अब इस दिशा की उपेक्षा करने से उसका अपना अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा |

इस पुस्तक में गांधीजी अपने ही शब्दों में अपना पक्ष प्रस्तुत करते हैं; यहां उनके और पाठकों के बीच में कोई व्याख्याकार नहीं है, चूंकि उसकी आवश्यकता ही नहीं है | पश्चिम के लोगों को कभी-कभी गांधीजी को समझने में कठिनाई होती है | उदाहरण के लिए, होरेस एजेक्जेंडर की टिप्पणी देखें जिसमें उन्होंने बताया है कि गांधीजी के गहन पराभौतिक तर्कों को पकड़ने में एंग्लो-सैक्सन बुद्धि कहीं-कहीं बहुत चकरा जाती है | इस पुस्तक में नैतिक, सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक विषयों पर गांधीजी के विचारों को समझने के लिए आधारभूत सामग्री उपलब्ध की गई है | हां, मनोविज्ञान के प्रबुद्ध विद्यार्थी को संभवत: गांधीजी की प्रेरणा और आचरण के मूल स्रोतों का गहराई से अध्ययन करना होगा | उसके लिए वर्तमान पुस्तक एक स्रोत-संदर्भ का ही काम दे सकती है |

वर्तमान संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण पिछले संस्करणों से बीस वर्ष से भी अधिक समय के बाद प्रकाशित हो रहा है | इसमें वह सामग्री समाविष्ट है जो पिछले संस्करणों में शामिल नहीं हो सकती थी : अपने निर्णायक अंतिम वर्षों 1946-48 में गांधीजी के विचार और दर्शन, जब वे जाति, पंथ, दल, यहां तक कि देश से भी ऊपर उठकर मानव आत्मा की लोकोत्तर ऊंचाइयों को छू गए थे तब वे सचमुच संपूर्ण मानवता के हो गए थे | इन वर्षों में, जिनकी परिणति उनकी शहादत में हुई, वे मानव धर्म का ही प्रचार और व्यवहार करने लगे थे, क्योंकि केवल वही मानवता के अस्तित्व की रक्षा करने में समर्थ है | इसी कारण उन अंतिम वर्षों में उनके द्वारा व्यक्त विचार और अभिमत हमारे और भावी पीढ़ियों के लिए पवित्र हैं और विदाई-भाषण की-सी परिपक्वता और निश्चयात्मकता से सम्पन्न हैं | उनके समग्र बोध-जगत को समझने के लिए ये अपरिहार्य हैं | वर्तमान पुस्तक में इस सामग्री का समावेश करने के लिए हमें कई नये अध्याय जोड़ने पड़े हैं और गत संस्करणों के कुछ अध्यायों का कलेवर बढ़ाना पड़ा है |

इसके अतिरिक्त पिछले संस्करणों में एक दोष यह था कि उनमें विशुद्ध रूप से भारतीय समस्याओं पर गांधीजी के विचार प्राय: समाविष्ट नहीं हो पाए थे | इसका एक कारण स्थानाभाव और दूसरा, विदेशी पाठकों की आवश्यकता को ध्यान में रखना था | गांधीजी के व्यक्तित्व और उनकी दृष्टि को पूरी तरह समझने के लिए इस दोष को दूर करना आवश्यक था | उनकी धारणा थी कि भारत के पास विश्व को देने के लिए एक संदेश है और वे चाहते थे कि भारत, एक साथ, उनके दर्शन का दृष्टांत और व्याख्याता बन जाए | उनके सपने के इस भारत के दर्शन पाठक एक प्राय: नये अनुभाग 'स्वतंत्रता और लोकतंत्र' में कर सकेंगे |

पुस्तक के अभिप्राय और प्रयोजन की बेहतर पूर्ति के लिए सामग्री का उल्लेखनीय पुन:संगठन और पुनर्विन्यास भी किया गया है |

इस पुस्तक की तैयारी में जिन-जिन पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं से सामग्री संकलित की गई है, उन सभी के प्रकाशकों के प्रति संकलनकर्ता अपना हार्दिक आभार प्रकट करते हैं | इस नये संस्करण के लिए आचार्य विनोबा भावे ने बड़ा ही महत्वपूर्ण प्राक्कथन लिखा है जिसके लिए हम उनके अत्यंत कृतज्ञ हैं |

एक व्यक्तिगत बात और कहनी है | पाठक देखेंगे कि इस भूमिका के नीचे केवल एक ही संकलनकर्ता के हस्ताक्षर हैं | कारण यह है कि मेरे दूसरे साथी अब इस दुनिया में नहीं हैं | गांधीजी के उपदेशों के आजीवन अध्येता और प्रामाणिक व्याख्याता तथा मुझ समेत अनेक लोगों के मित्र एवं मार्गदर्शक श्री आर. के. प्रभु का 4 जनवरी को निधन हो गया | यह दुखद घटना नये संस्करण की भूमिका लिखे जाने तथा पुस्तक के प्रकाशन से पूर्व ही घट गई | इसलिए यहां जो कुछ लिखा गया है, उसकी जिम्मेदारी अब केवल मेरी है; इसी प्रकार जो कहा जाना चाहिए था, पर कहने से रह गया है, उसके लिए मैं ही दोषी हूं | किंतु मेरी जिम्मेदारी तथा दोष कुछ सीमा तक इसलिए कम माना जा सकता है कि प्रभु अपने अंतिम दिन तक मुझे बराबर पत्र लिखकर अपने पांडित्यपूर्ण विचारों से लाभान्वित करते रहे |

मुझे तीस वर्ष तक प्रभु की मित्रता का सौभाग्य प्राप्त रहा और इस दौरान काफ़ी समय मैंने उनके साथ सक्रिय सहयोगी के रूप में काम किया | इसलिए मैं उनकी जितनी भी प्रशंसा करूं, मेरी दृष्टि में कम ही होगी; और इसी कारण मैं उनके बारे में जो भी कहूं, पाठक उसे पूर्णतया निष्पक्ष नहीं मानेंगे |

प्रभु एक 'विशाल' गांधी परियोजना के उद्‌भावक थे जिसके तहत गांधीजी के विचारों और दर्शन पर इस समेत कई खंडों की रचना की जानी थी | हम अपने संयुक्त प्रयासों से, इनमें से केवल तीन ही खंड तैयार कर सके | सौभाग्यवश, प्रभु ने स्वयं ही कई छोटे-बड़े ग्रंथ तैयार कर दिए जो सभी नवजीवन द्वारा प्रकाशित हुए हैं | गांधी वाङ्‌मय का कोई गंभीर अध्येता ही प्रभु के योगदान का मूल्यांकन कर सकेगा | मुझे तो उनसे मिली प्रेरणा, नेतृत्व और साहचर्य के लिए उनके ऋण को स्वीकार करके ही संतोष मान लेना होगा |

पर, मैं यहां गांधी-संकलनों के क्षेत्र में प्रभु के स्थान के विषय में दो बड़ी विशिष्ट एवं अनभ्यर्थित टिप्पणियों का उल्लेख करना चाहूंगा | पहली टिप्पणी स्वयं गांधीजी की है जो उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र, पूना में 27 जून, 1944 को हम दोनों के साथ एक अविस्मरणीय साक्षात्कार के दौरान दी थी | उन्होंने कहा था : "प्रभु, तुम मेरे लेखन की भावना से ओतप्रोत हो |" दूसरी टिप्पणी गांधीजी के प्रसिद्ध दार्शनिक-व्याख्याता डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन की है जो उन्होंने प्रभु के निधन पर भेजे गए अपने व्यक्तिगत शोक-संदेश में दी थी : "गांधीजी पर किए गए उनके काम का प्रकाशन हम सभी के लिए उनके जीवन के मुख्य ध्येय की अच्छी यादगार साबित होगा|"

नई दिल्ली, 13 जनवरी, 1967 **- यू. आर. राव**

---

1. हरिजन, 10-12-1938, पृ. 377.
2. हरिजन, 4-4-1920, पृ. 107.
3. सर्वपल्ली राधाकृष्णन : 'महात्मा गांधी; एसेज एंड रिफ्लेक्शन्स आन हिज लाइफ एंड वर्क', जोर्ज एलन एंड अनविन, लंदन (1949), पृ. 537.

भूमिका

(प्रथम और द्वितीय अंग्रेजी संस्करणों की)

'गांधी एक गूढ़ पहेली है' – यह बात अक्सर न केवल उन लोगों के मुंह से सुनने में आती है जो गांधीजी की उक्तियों और कृत्यों के आलोचक हैं बल्कि वे लोग भी कहते हैं जिनसे उनका काफी निकट का संबंध रहा है | यह बात इसलिए और भी आश्चर्यजनक है कि पिछले पचास वर्षों से गांधीजी का अपना निजी जीवन लगभग नहीं के बराबर रहा है | वे शायद ही कभी अकेले होते हों; उनका कामकाज, बातचीत, ध्यान, प्रार्थना तथा भोजन, सभी अपने सहयोगियों की संगति में होता है | वे सोते भी खुले आकाश के नीचे एक शयनशाला में हैं; अलग कमरे में तो शायद ही कभी सोते हों |

गांधीजी ने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है कि उनके जीवन में अंतर्विरोध रहे हैं | इनके लिए खेद प्रकट करने की बात तो दूर, उनका कहना है कि "मैंने कभी सुसंगति की अंधपूजा नहीं की है | मैं तो सत्य का पुजारी हूं अत: किसी प्रश्न के संबंध में किसी निश्चित समय पर मैं जो अनुभव करता हूं, मुझे वही कहना चाहिए और इस बात की परवाह नहीं करनी चाहिए कि इस बारे में मैं पहले क्या कह चुका हूं ....जैसे-जैसे मेरी दृष्टि स्पष्ट होती जाती है, दैनिक अभ्यास से मेरे विचार भी अधिकाधिक स्पष्ट होते जाने चाहिए |"[1] उन्हें विश्वास है कि उनकी विसंगतियां केवल ऊपरी हैं | उन्होंने लिखा है, "मैं समझता हूं कि मेरी विसंगतियों में भी एक संगति है |"[2] कुछ विसंगतियां तो उनकी समझौते की उस भावना से उत्पन्न हुई हैं जो उनकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति का अभिन्न अंग है | उन्होंने कहा है, "जीवन भर सत्य के प्रति आग्रह ने ही मुझे समझौते की खूबी को सराहने की सीख दी है |"[3] सत्य के प्रति समादर की भावना के कारण ही वे दूसरों के दृष्टिकोण में सत्य के दर्शन कर पाते हैं | पर इसके साथ ही, उनकी धारणा है कि कुछ ऐसे शाश्वत सिद्धांत हैं जिन पर कोई समझौता नहीं किया जा सकता और मनुष्य को उन पर आचरण करने के लिए अपने प्राणों तक की आहुति देने के लिए तैयार रहना चाहिए |

गांधी के मानस की पहेली उनकी आत्मा की पहेली है | "अंत:करण के अपने तर्क होते हैं, जिन्हें तर्कबुद्धि जानती ही नहीं |"[4] गांधी के दर्शन को उनके प्रकीर्ण लेखन और उक्तियों से संश्लिष्ट करना होगा | उन्होंने अपने मत की सांगोपांग व्याख्या करने के लिए कभी सायास कुछ नहीं लिखा; उनकी आत्मकथा का शीर्षक 'सत्य के प्रयोग' ही यह दर्शाता है कि वे अपने आपको केवल एक सत्यशोधक मानते हैं जो अपने अनुभव दूसरों को बताने के लिए तैयार तथा उत्सुक है लेकिन यह दावा नहीं करता कि उसके अपने निष्कर्ष ही अंतिम हैं | कई बार ऐसे अवसर आए हैं जब राष्ट्रीय नेता के रूप में या तो उन्हें मौन रहना चाहिए था या कोई और राय व्यक्त करनी चाहिए थी लेकिन उन्होंने अपने मन की बात ज्यों-की-त्यों कह दी है, जिसके लिए उन पर गैरजिम्मेदाराना रवैया अपनाने का आरोप भी लगाया गया है | इस आरोप के जवाब में उन्होंने यही कहा है कि प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है

कि वह सत्य को जैसा देख रहा है, वैसा व्यक्त कर दे | यदि व्यक्ति का इरादा शुद्ध हो तो कोई हानि होने की संभावना नहीं होती | मुझे विश्वास है कि इरादा पूरी तरह ठीक होने के बावजूद यदि व्यक्ति से गलतियां हो जाएं तो उनसे दुनिया को या किसी व्यक्ति विशेष को वस्तुत: कोई हानि नहीं पहुंचती |[5]

आध्यात्मिक विषयों में, उनका कहना है कि वे वैज्ञानिकों द्वारा व्यवहृत प्रयोगात्मक पद्धति अर्थात प्रयोग और भूलों से सीखने की पद्धति का आश्रय लेते हैं और भले ही वे किन्हीं अंतिम निष्कर्षों तक न पहुंच पाए हों, पर किसी खगोलशास्त्री की भांति जो आइन्सटाइन के सापेक्षता के सिद्धांत की जानकारी से बाधित हुए बिना कह देता है कि पृथ्वी से सूर्य की माध्य दूरी 2,38,857 मील है, गांधीजी भी आजीवन 'सत्य के प्रयोग' करने के बाद एक ऐसी स्थिति को प्राप्त हो गए हैं जहां उनके नैतिक निर्णय ठोस और सुनिश्चित होते हैं | अपने इस ब्रह्मांड में, गांधीजी सत्य, प्रेम और श्रम के नक्षत्रों से मार्गदर्शन ग्रहण करते हैं | उनका कहना है : "आत्मशुद्धीकरण के लिए अथक प्रयास करते हुए मैंने अपनी अंतर्वाणी को सुनने की किंचित क्षमता विकसित कर ली है";[6] और गांधीजी की दृष्टि में वह अंतर्वाणी है 'सत्य' | प्रेम और ईश्वर को वे एक-दूसरे का पर्याय मानते हैं : ''मेरा लक्ष्य समूची दुनिया के साथ मित्रता स्थापित करना है...."[7] "मैं मानव प्रकृति को संदेह की दृष्टि से नहीं देख सकता | वह किसी भी उदात्त और मैत्रीपूर्ण कार्य का प्रत्युत्तर देगी, जरूर देगी |"[8] अंत में, उनका विश्वास है कि "श्रम पर जितना बल दिया जाए, थोड़ा है |"[9] "यदि सब लोग केवल रोटी कमाने के लिए ही शारीरिक श्रम करें तो सभी को पर्याप्त भोजन और विश्राम मिल सकता है |"[10] तब "हमारी आवश्यकताएं न्यूनतम रह जाएंगी और हमारा भोजन सादा हो जाएगा | तब हम जीने के लिए खाएंगे, खाने के लिए नहीं जिएंगे |"[11] गांधीजी का सरोकार व्यक्ति की आत्मा की मुक्ति से है और उनकी दृष्टि में उच्च विचार को सादा जीवन से अलग नहीं किया जाना चाहिए | "मैं विकास चाहता हूं, मैं आत्मनिर्णय चाहता हूं, मैं स्वतंत्रता चाहता हूं, लेकिन ये सब चीज़ें मैं आत्मा के लिए चाहता हूं |"[12]

पाठक संभवत: यह जानना चाहेंगे कि इस पुस्तक की रचना की पृष्ठभूमि क्या है | लगभग बारह वर्ष पूर्व हम में से किसी के मन में यह विचार आया कि गांधीजी द्वारा अपने लेखन और भाषणों में जो 'शाश्वत सत्य' उजागर किए गए हैं, उन्हें व्यवस्थित ढंग से संकलित किया जाए और इस रूप में पिरो दिया जाए कि उनके पीछे जो दार्शनिक चिंतन है, वह स्पष्ट हो सके और गांधीजी के जीवन-दर्शन की अंतरंग झांकी मिल सके | तब हमने सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, प्रेम, आस्था, अपरिग्रह, स्वतंत्रता, उपवास, प्रार्थना, ब्रह्मचर्य, श्रम, मशीनरी आदि विषयों पर गांधीजी के विचारों का समावेश करते हुए एक दर्जन खंड प्रकाशित करने की योजना बनाई और यह भी सोचा कि एक खंड अलग से भी तैयार किया जाए जिसमें इन विषयों पर गांधीजी के विचारों का सार दिया जाए | इसके पश्चात सामग्री संकलित करने का कार्य आरंभ किया गया | कुछ ही वर्षों में लगने लगा कि यह काम इतना विशाल है कि इसके लिए किसी एक साथी कार्यकर्ता का सहयोग लेना आवश्यक है, और तब से हम दोनों निरंतर इस काम पर जुटे रहे हैं | पिछले दो वर्षों के दौरान कुछ ऐसी घटनाएं घटीं जिन्होंने हमें अपना ध्यान अंतिम खंड पर केंद्रित करने के

लिए बाध्य कर दिया | यह अंतिम खंड वही था जिसमें हम गांधीजी के समग्र उपदेशों का सार देना चाहते थे; वही खंड अब पाठकों के सामने प्रस्तुत कर रहे हैं, हालांकि हमारी मूल योजना की तुलना में यह कुछ अधिक संक्षिप्त है |

इस पांडुलिपि के प्रूफ गांधीजी को प्रस्तुत किए गए थे और उन्होंने इनको पढ़ा है | गांधीजी ने हमारे प्रयास का अनुमोदन किया जिसके लिए हम उनके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करते हैं | हम नवजीवन ट्रस्ट के भी आभारी हैं जिन्होंने हमें गांधीजी के लेखन का इस्तेमाल करने की अनुमति दी | श्री कनु गांधी ने हमें गांधीजी के चित्रों में से एक चित्र का इस्तेमाल मुखपृष्ठ पर करने की अनुमति दी जिसके लिए हम उनके प्रति भी धन्यवाद-ज्ञापन करते हैं|

-आर. के. प्रभु

-यू. आर. राव

---

1. हरिजन, 28-9-1934, पृ. 260.
2. यंग इंडिया, 13-2-1930, पृ. 52.
3. आत्मकथा, पृ. 107.
4. पेस्कल, पेन्सीज़, iv, 277.
5. यंग इंडिया, 3-1-1929, पृ. 6.
6. द एपिक फास्ट, पृ. 34.
7. यंग इंडिया, 10-3-1920, पृ. 5.
8. यंग इंडिया, 4-8-1920, पृ. 5.
9. हरिजन, 2-11-1935, पृ. 298.
10. हरिजन, 29-6-1935, पृ. 156.
11. वही |
12. यंग इंडिया, 13-10-1921, पृ. 325.

पाठकों से

अपने अध्यवसायी पाठकों और उन अन्य लोगों से, जिन्हें मेरे लिखे में रुचि है, मैं कह दूं कि मुझे सुसंगत दिखाई देने की तनिक भी चिंता नहीं है | सत्य की अपनी खोज में, मैं अनेक विचारों को त्यागता गया हूं और नयी-नयी बातें सीखता रहा हूं | हालांकि मैं अब बूढ़ा हो चला हूं, पर मुझे यह अनुभव नहीं होता कि मेरा आंतरिक विकास रुक गया है अथवा मेरे पार्थिव शरीर के अवसान के साथ मेरी आंतरिक वृद्धि रुक जाएगी | मेरा सरोकार सिर्फ इस बात से है कि मैं अपने ईश्वर, अर्थात सत्य, के आदेश का प्रतिक्षण पालन करने के लिए तत्पर रहूं, और इसलिए यदि किसी को मेरी लिखी किन्हीं दो बातों में असंगति दिखाई दे, और उसे फिर भी मेरी विवेकशीलता में विश्वास हो, तो उसे उसी विषय पर मेरी बाद की तारीख में लिखी बात को मेरा मंतव्य मानना चाहिए |

मोहनदास करमचन्द गांधी

हरिजन, 29-4-1933, पृ. 2.

1. अपने बारे में

1. न संत, न पापी

मैं सोचता हूं कि वर्तमान जीवन से 'संत' शब्द निकाल दिया जाना चाहिए | यह इतना पवित्र शब्द है कि इसे यूं ही किसी के साथ जोड़ देना उचित नहीं है | मेरे जैसे आदमी के साथ तो और भी नहीं, जो बस एक साधारण-सा सत्यशोधक होने का दावा करता है, जिसे अपनी सीमाओं और अपनी त्रुटियों का अहसास है और जब-जब उससे त्रुटियां हो जाती हैं, तब-तब बिना हिचक उन्हें स्वीकार कर लेता है और जो निस्संकोच इस बात को मानता है कि वह किसी वैज्ञानिक की भांति, जीवन की कुछ 'शाश्वत सच्चाइयों' के बारे में प्रयोग कर रहा है, किंतु वैज्ञानिक होने का दावा भी वह नहीं कर सकता, क्योंकि अपनी पद्धतियों की वैज्ञानिक यथार्थता का उसके पास कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है और न ही वह अपने प्रयोगों के ऐसे प्रत्यक्ष परिणाम दिखा सकता है जैसे कि आधुनिक विज्ञान को चाहिए | *(यंग, 12-5-1920, पृ. 2)*

मुझे संत कहना यदि संभव भी हो तो अभी उसका समय बहुत दूर है | मैं किसी भी रूप या आकार में अपने आपको संत अनुभव नहीं करता | लेकिन अनजाने में हुई भूलचूकों के बावजूद मैं अपने आपको सत्य का पक्षधर अवश्य अनुभव करता हूं |

सत्य की नीति

मैं 'संत के वेश में राजनेता' नहीं हूं | लेकिन चूंकि सत्य सर्वोच्च बुद्धिमत्ता है इसलिए कभी-कभी मेरे कार्य किसी शीर्षस्थ राजनेता के-से प्रतीत होते हैं | मैं समझता हूं कि सत्य और अहिंसा की नीति के अलावा मेरी कोई और नीति नहीं है | मैं अपने देश या अपने धर्म तक के उद्धार के लिए सत्य और अहिंसा की बलि नहीं दूंगा | वैसे, इनकी बलि देकर देश या धर्म का उद्धार किया भी नहीं जा सकता | *(यंग, 20-1-1927, पृ. 21)*

मैं अपने जीवन में न कोई अंतर्विरोध पाता हूं, न कोई पागलपन | यह सही है कि जिस तरह आदमी अपनी पीठ नहीं देख सकता, उसी तरह उसे अपनी त्रुटियां या अपना पागलपन भी दिखाई नहीं देता | लेकिन मनीषियों ने धार्मिक व्यक्ति को प्राय: पागल जैसा ही माना है | इसलिए मैं इस विश्वास को गले लगाए हूं कि मैं पागल नहीं हूं बल्कि सच्चे अर्थों में धार्मिक हूं | मैं वस्तुत: इन दोनों में से क्या हूं, इसका निर्णय मेरी मृत्यु के बाद ही हो सकेगा | *(यंग, 14-8-1924, पृ. 267)*

मुझे लगता है कि मैं अहिंसा की अपेक्षा सत्य के आदर्श को ज़्यादा अच्छी तरह समझता हूं और मेरा अनुभव मुझे बताता है कि अगर मैंने सत्य पर अपनी पकड़ ढीली कर दी तो मैं अहिंसा की पहेली को कभी नहीं सुलझा पाऊंगा....दूसरे शब्दों में, सीधे ही अहिंसा का मार्ग अपनाने का साहस शायद मुझमें नहीं है | सत्य और अहिंसा

तत्वत: एक ही हैं और संदेह अनिवार्यत: आस्था की कमी या कमजोरी का ही परिणाम होता है | इसीलिए तो मैं रात-दिन यही प्रार्थना करता हूं कि 'प्रभु, मुझे आस्था दें' | *(ए, पृ. 336)*

मेरा मानना है कि मैं बचपन से ही सत्य का पक्षधर रहा हूं | यह मेरे लिए बड़ा स्वाभाविक था | मेरी प्रार्थनामय खोज ने 'ईश्वर सत्य है' के सामान्य सूत्र के स्थान पर मुझे एक प्रकाशमान सूत्र दिया : 'सत्य ही ईश्वर है' | यह सूत्र एक तरह से मुझे ईश्वर के रू-ब-रू खड़ा कर देता है | मैं अपनी सत्ता के कण-कण में ईश्वर को व्याप्त अनुभव करता हूं | *(हरि, 9-8-1942, पृ. 264)*

सच्चाई में विश्वास

मैं आशावादी हूं, इसलिए नहीं कि मैं इस बात का कोई सबूत दे सकता हूं कि सच्चाई ही फलेगी बल्कि इसलिए कि मेरा इस बात में अदम्य विश्वास है कि अंतत: सच्चाई ही फलती है.... हमारी प्रेरणा केवल हमारे इसी विश्वास से पैदा हो सकती है कि अंतत: सच्चाई की ही जीत होगी | *(हरि, 10-12-1938, पृ. 372)*

मैं किसी-न-किसी तरह मनुष्य के सर्वोत्कृष्ट गुणों को उभार कर उनका उपयोग करने में कामयाब हो जाता हूं , और इससे ईश्वर तथा मानव प्रकृति में मेरा विश्वास दृढ़ रहता है | *(हरि, 15-4-1939, पृ. 86)*

संन्यासी नहीं

मैंने कभी अपने आपको संन्यासी नहीं कहा | संन्यास बड़ी कठिन चीज़ है | मैं तो स्वयं को एक गृहस्थ मानता हूं जो अपने सहकर्मियों के साथ मिलकर, मित्रों की दानशीलता पर जीवन निर्वाह करते हुए, सेवा का विनम्र जीवन जी रहा है .... मैं जो जीवन जी रहा हूं वह पूर्णतया सुगम और बड़ा सुखकर है, यदि सुगमता और सुख को मन:स्थिति मान लें तो | मुझे जो कुछ चाहिए, वह सब उपलब्ध है और मुझे व्यक्तिगत पूंजी के रूप में कुछ भी संजोकर रखने की कतई जरूरत नहीं है | *(यंग, 1-10-1925, पृ. 338)*

मेरी लंगोटी मेरे जीवन का सहज विकास है | यह अपने आप आ गई, न मैंने इसके लिए कोई प्रयास किया, न पहले से सोचा | *(यंग, 9-7-1931, पृ. 175)*

मैं विशेषाधिकार और एकाधिकार से घृणा करता हूं | जिसमें जनसाधारण सहभागी न हो सके, वह मेरे लिए त्याज्य है | *(हरि, 2-11-1934, पृ. 303)*

मुझे संन्यासी कहना गलत है | मेरा जीवन जिन आदर्शों से संचालित है, वे आम आदमियों द्वारा अपनाए जा सकते हैं | मैंने उन्हें धीरे-धीरे विकसित किया है | हर कदम अच्छी तरह सोच-विचार कर और पूरी सावधानी बरतते हुए उठाया गया है |

मेरा इंद्रिय-निग्रह और अहिंसा, दोनों मेरे व्यक्तिगत अनुभव की उपज हैं, जनसेवा के हित में इन्हें अपनाना आवश्यक था | दक्षिण अफ्रीका में गृहस्थ, वकील, समाज-सुधारक या राजनीतिज्ञ के रूप में जो अलग-थलग जीवन मुझे बिताना पड़ा, उसमें अपने कर्तव्यों के सम्यक निर्वाह के लिए यह आवश्यक था कि मैं अपने जीवन के यौन पक्ष पर कठोर नियंत्रण रखूं, और मानवीय संबंधों में, वे चाहे अपने देशवासियों के साथ हों अथवा यूरोपियनों के साथ, अहिंसा और सत्य का दृढ़ता से पालन करूं | *(हरि, 3-10-1936, पृ. 268)*

अनवरत काम के बीच मेरा जीवन आनंद से परिपूर्ण रहता है | मेरा कल कैसा होगा, इसकी कोई चिंता न करने के कारण मैं स्वयं को पक्षी के समान मुक्त अनुभव करता हूं ....मैं भौतिक शरीर की जरूरतों के खिलाफ निरंतर ईमानदारी के साथ संघर्षरत हूं, यही विचार मुझे जीवित रखता है | *(यंग, 1-10-1925, पृ. 338)*

बिना आस्था के काम करना ऐसा ही है जैसा कि बिना पेंदे के गर्त का पेंदा ढूंढना | *(हरि, 3-10-1936, पृ. 268-69)*

अहंकार का त्याग

मैं जानता हूं कि मुझे अभी बड़ा मुश्किल रास्ता तय करना है | मुझे अपनी हस्ती को बिलकुल मिटा देना होगा | जब तक मनुष्य अपने आपको स्वेच्छा से अपने सहचरों में सबसे अंतिम स्थान पर खड़ा न कर दे तब तक उसकी मुक्ति संभव नहीं | अहिंसा विनम्रता की चरम सीमा है | *(ए, पृ. 371)*

यदि हम धर्म, राजनीति, अर्थशास्त्र आदि से 'मैं' और 'मेरा' निकाल सकें तो हम शीघ्र ही स्वतंत्र हो जाएंगे, और पृथ्वी पर स्वर्ग उतार सकेंगे | *(यंग, 3-9-1926, पृ. 336)*

समुद्र की एक बूंद भी समुद्र की विशालता का एक हिस्सा होती है, यद्यपि उसे इसका भान नहीं होता | लेकिन समुद्र से छिटककर गिरते ही वह सूख जाती है | हम कोई अतिशयोक्ति नहीं करते जब यह कहते हैं कि जीवन मात्र एक बुलबुला है |

सत्यशोधक के लिए अहंकारी होना संभव नहीं है | जो दूसरों के लिए अपने जीवन का बलिदान करने को तत्पर हो, उसके पास इस संसार में अपने लिए स्थान सुरक्षित करने का समय कहां ? *(यंग, 16-10-1930, पृ. 2)*

व्यक्ति की क्षमता की सीमाएं हैं, और जैसे ही वह यह समझने लगता है कि वह सब कुछ करने में समर्थ है, ईश्वर उसके गर्व को चूर कर देता है | जहां तक मेरा प्रश्न है, मुझे स्वभाव में इतनी विनम्रता मिली है कि मैं बच्चों और अनुभवहीनों से भी मदद लेने के लिए तैयार रहता हूं | *(यंग, 12-3-1931, पृ. 32)*

मेरे कृत्यों का निर्णय मेरा भाग्य करता है | मैं कभी उन्हें खोजने नहीं जाता | वे अपने आप मेरे पास आ जाते हैं | मेरे संपूर्ण जीवन का – दक्षिण अफ्रीका में और भारत लौटकर आने के बाद से अब तक – क्रम यही रहा है | *(यंग, 7-5-1925, पृ. 163)*

अल्प पुस्तकीय ज्ञान

मैं अपनी सीमाओं को स्वीकार करता हूं | मैंने कोई उल्लेखनीय विश्वविद्यालयी शिक्षा प्राप्त नहीं की | हाई स्कूल तक मैं कभी औसत से ऊपर का छात्र नहीं रहा | मैं परीक्षा में पास हो जाता था तो शुक्रगुजार होता था | स्कूली परीक्षाओं में विशेष योग्यता प्राप्त करने की तो मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था | *(हरि, 9-7-1938, पृ. 176)*

अपनी पढ़ाई के दिनों में मैंने पाठ्यपुस्तकों के अलावा शायद ही कुछ पढ़ा हो और सक्रिय जीवन में प्रवेश के बाद मुझे स्वाध्याय के लिए प्राय: कम ही समय मिला | इसलिए मैं विशेष पुस्तकीय ज्ञान का कोई दावा नहीं कर सकता | बहरहाल, मेरे इस विवशताजन्य संयम से कोई विशेष हानि हुई नहीं दिखती | इससे उलट, हुआ यह है कि कम किताबें पढ़ने के कारण मुझमें यह योग्यता आई कि जो पढ़ूं, उसे भीतर भली भांति गुनूं–मनन करूं |

इन पढ़ी हुई पुस्तकों में से जिस एक पुस्तक ने मेरे जीवन में तत्काल और व्यावहारिक रूपांतरण कर डाला, वह थी 'अनटू दिस लास्ट' | बाद में, मैंने गुजराती में, इसका अनुवाद किया जिसका शीर्षक रखा 'सर्वोदय' (सब का कल्याण) | मेरा विश्वास है कि रस्किन की इस महान पुस्तक में मुझे अपनी ही गहरी आंतरिक निष्ठाएं प्रतिबिंबित होती दिखाई दीं और यही कारण है कि इसने मुझे विमुग्ध करके मेरे जीवन का रूपांतरण कर डाला | *(ए, पृ. 220)*

तब मैं दक्षिण अफ्रीका में रह रहा था | मैंने 'अनटू दिस लास्ट', पैंतीस वर्ष की अवस्था में 1904 में, डर्बन जाते समय रेल में पढ़ी | इसे पढ़कर मैंने अपने संपूर्ण बाहरी जीवन को बदल डालने का निर्णय ले लिया | मैं बस यही कह सकता हूं कि रस्किन के शब्दों ने मुझे विमुग्ध कर दिया | मैं एक साथ पूरी पुस्तक पढ़ गया और उसके बाद रात भर सो नहीं सका | मैंने तत्काल अपने संपूर्ण जीवनक्रम को बदल देने का फैसला कर लिया | टाल्सटाय मैं बहुत पहले पढ़ चुका था | उसने मेरे अंतर्मन को प्रभावित किया था | *(इंके, पृ. 245)*

गरीबों की सेवा

हृदय से की सच्ची और शुद्ध कामना अवश्य पूरी होती है | अपने अनुभव में, मैंने इस कथन को सदा सही पाया है | गरीबों की सेवा मेरी हार्दिक कामना रही है और इसने मुझे सदा गरीबों के बीच ला खड़ा किया है और मुझे उनके साथ तादात्म्य स्थापित करने का अवसर दिया है | *(ए, पृ. 110)*

मैंने जीवन भर निर्धनों से सदा प्रेम किया है और भरपूर मात्रा में किया है | मैं अपने विगत जीवन के अनेक उदाहरण देकर यह स्पष्ट कर सकता हूं कि मेरा यह प्रेम मेरे स्वभाव का अंग था | मुझे गरीबों के और अपने बीच कोई फर्क महसूस नहीं हुआ | मुझे वे सदा अपने सगे-संबंधी ही लगे हैं | *(हरि, 11-5-1935, पृ. 99)*

मुझे संसार के नाशवान साम्राज्य की कोई कामना नहीं है | मैं तो स्वर्ग के साम्राज्य के लिए प्रयासरत हूं, जोकि 'मोक्ष' है | मुझे इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए गुफा में जाकर वास करने की आवश्यकता नहीं है | आवश्यकता होती तो मैं ऐसा ही करता |

गुफा में वास करने वाला आदमी हवाई किले बना सकता है जबकि महल में रहने वाले जनक जैसे व्यक्ति को किले बनाने की कोई आवश्यकता नहीं | विचारों के पंखों पर बैठकर संसार में विचरण करने वाले गुफावासी को शांति नहीं मिलती | इसके विपरीत, राजसी ठाठबाट में रहते हुए भी जनक विवेकपूर्ण शांति का अनुभव कर सके|

मेरे लिए अपने देश और उसके द्वारा समूची मानवता की अथक सेवा ही मोक्ष का मार्ग है | मैं समस्त प्राणी-जगत के साथ तादात्म्य स्थापित करना चाहता हूं | *(यंग, 3-4-1924, पृ. 114)*

मेरा जीवन एक अविभाज्य समष्टि है, और मेरे सभी कार्यकलाप परस्पर गुंफित हैं; ये सभी कार्यकलाप मानवता के प्रति मेरे असीम प्रेम से उद्‌भूत हैं | *(हरि, 2-3-1934, पृ. 24)*

मुझे जीवन भर गलत समझा जाता रहा | हर एक जनसेवक की यही नियति है | उसकी खाल बड़ी मज़बूत होनी चाहिए | अगर अपने बारे में कही गई हर गलत बात की सफाई देनी पड़े और उन्हें दूर करना पड़े तो जीवन भार हो जाए | मैंने अपने जीवन का यह नियम बना लिया है कि अपने बारे में किए गए गलत निरूपणों या मिथ्या प्रचारों पर स्पष्टीकरण न देता फिरूं सिवाय तब के जबकि उनको सुधारे जाने की जरूरत लगे | इस नियम के पालन से मेरी कई चिंताएं मिटीं और बहुत-सा समय बचा |

मुझे लोग सनकी, झक्की और पागल बताते हैं | मैं इस ख्याति के सर्वथा योग्य भी दिखता हूं | कारण कि मैं जहां भी जाता हूं, मेरे पास सनकी, झक्की और पागल लोग आ जुटते हैं | *(यंग, 13-6-1929, पृ, 193)*

व्यावहारिक स्वप्नद्रष्टा

मैं ईश्वर के, और इसीलिए मानवता के, परम एकत्व में विश्वास करता हूं | यदि हमारे शरीर अलग-अलग हैं तो क्या हुआ ? आत्मा तो एक है | सूर्य की किरणें अपवर्तन के कारण अनेक हो जाती हैं पर उनका स्रोत तो एक ही है | इसलिए मैं बड़ी-से-बड़ी दुष्टात्मा से भी अपने को विलग नहीं कर सकता (न ही मुझे बड़ी-से-बड़ी पवित्रात्मा के साथ तादात्म्य से वंचित किया जाना चाहिए) | और इसीलिए मैं चाहे जो करूं, मुझे संपूर्ण मानवता को अपने प्रयोग में भागीदार बनाना चाहिए | मैं प्रयोग करना भी नहीं छोड़ सकता | जीवन प्रयोगों की एक अनंत श्रृंखला ही तो है| *(यंग, 25-9-1924, पृ. 313)*

मुझे मेरे संपूर्ण दोषों के साथ ही स्वीकार किया जाना चाहिए | मैं एक सत्यशोधक हूं | मेरे लिए मेरे प्रयोग सर्वोत्तम तैयारी वाले हिमालय अभियानों से भी अधिक महत्वपूर्ण हैं | *(यंग, 3-12-1925, पृ. 422)*

यह मेरा दुर्भाग्य अथवा सौभाग्य रहा है कि मैं दुनिया को हैरत में डाल देता हूं | नये प्रयोगों, या नये तरीके से किए गए पुराने प्रयोगों से कभी-कभी भ्रांत धारणा उत्पन्न हो ही जाती है | *(ऐफ़ा, पृ. 132)*

वस्तुत: मैं एक व्यावहारिक स्वप्नद्रष्टा हूं | मेरे स्वप्न हवाई नहीं हैं | मैं अपने स्वप्नों को जहां तक संभव हो, यथार्थ में परिवर्तित करना चाहता हूं | *(हरि, 17-11-1933, पृ. 6)*

यदि मेरे द्वारा पवित्र माना गया मेरा कोई कार्य अव्यावहारिक सिद्ध हो जाए तो उसे असफल घोषित कर दिया जाना चाहिए | मेरा पक्का विश्वास है कि सर्वाधिक आध्यात्मिक कर्म सच्चे अर्थों में सर्वाधिक व्यावहारिक होता है| *(हरि, 1-7-1939, पृ. 181)*

मेरी चूकें

मैं स्वयं को एक साधारण व्यक्ति मानता हूं जिससे अन्य मनुष्यों की ही तरह गलतियां हो सकती हैं | हां, मेरे अंदर इतनी विनम्रता जरूर है कि मैं अपनी गलतियों को स्वीकार कर सकूं और उनका सुधार कर सकूं | मैं यह भी मानता हूं कि ईश्वर और उसकी दयालुता में मेरा अविचल विश्वास है | साथ ही, मेरा सत्य और प्रेम में असीम अनुराग है | लेकिन, यह भावना क्या प्रत्येक मनुष्य के भीतर अंतर्निहित नहीं है ? *(यंग, 6-5-1926, पृ. 164)*

जिन्होंने सरसरी तौर पर भी मेरे साधारण जीवन-क्रम पर दृष्टिपात किया है, उनके ध्यान में यह बात अवश्य आई होगी कि मैंने जीवन में एक भी काम किसी व्यक्ति या राष्ट्र को चोट पहुंचाने के लिए नहीं किया है ....मैं यह दावा नहीं करता कि मुझमें कोई खामियां नहीं हैं | मैं जानता हूं कि मैंने भयंकर भूलें की हैं, लेकिन मैंने वे जान-बूझकर नहीं कीं और न ही मैंने किसी व्यक्ति अथवा राष्ट्र या किसी मानव अथवा अवमानव के प्रति अपने मन में कभी किसी तरह का शत्रु-भाव पाला है | *(ऐफ़ा, पृ. 133)*

मैंने अपने अनेक पापों को बिलकुल स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है | लेकिन मैं इन पापों की गठरी को अपने कंधों पर लादकर नहीं चलता | यदि मैं ईश्वर की ओर अग्रसर हूं, जैसा कि मैं अनुभव करता हूं, तो मैं सुरक्षित हूं | कारण, कि मैं ईश्वर की उपस्थिति की ऊष्मा का अनुभव करता हूं |

मुझे पता है कि मेरी सादगी, मेरे उपवास और मेरी प्रार्थनाएं – तब कोई मूल्य नहीं रखेंगी जब मैं अपने को सुधारने के लिए उन्हीं पर आश्रित हो जाऊं | लेकिन यदि वे आत्मा की इस ललक का प्रतिनिधित्व करती हैं कि अपने सिरजनहार की गोद में अपने श्रांत सिर को रखकर आराम और ताज़गी पाई जाए, और मेरा मानना है कि वे इसी का प्रतिनिधित्व करती हैं, तो फिर उनका मूल्य अपरिमेय है | *(हरि, 18-4-1936, पृ. 77)*

सभी से नातेदारी

जब भी मैं किसी दोषी व्यक्ति को देखता हूं तो मैं अपने आप से कहता हूं कि मैंने भी गलतियां की हैं; जब मैं किसी कामुक व्यक्ति को देखता हूं तो अपने आप से कहता हूं कि मैं भी कभी ऐसा ही था; और इस प्रकार दुनिया के प्रत्येक व्यक्ति के साथ मैं अपनी नातेदारी, अपनी बंधुता अनुभव करता हूं और यह अनुभव करता हूं कि जब तक हम में से सर्वाधिक दीन व्यक्ति सुखी नहीं होगा, मैं भी सुखी नहीं हो सकता | *(यंग, 10-2-1927, पृ. 44)*

यदि मैं किसी को उसके प्राप्तव्य से कम दूं तो मुझे अपने प्रभु और सिरजनहार के सामने जवाब देना होगा, लेकिन मुझे पक्का विश्वास है कि यदि वह यह देखता है कि मैंने किसी को उसके प्राप्तव्य से अधिक दिया है तो वह मुझे आशीर्वाद अवश्य देगा | *(यंग, 10-3-1927, पृ. 80)*

मैं किसी व्यक्ति विशेष से नाराज नहीं होता, क्योंकि मुझे इस बात का अच्छी तरह अहसास है कि मेरी जाति के प्राणी अर्थात मानव कितने अपूर्ण हैं | मैं जहां भी कोई बुराई देखता हूं तो उसे दूर करने का प्रयास करता हूं; उसके लिए दोषी व्यक्ति को चोट पहुंचाने की कोशिश नहीं करता, चूंकि मैं भी तो यह नहीं चाहूंगा कि मुझसे निरंतर होने वाली गलतियों के लिए कोई मुझे चोट पहुंचाए | *(यंग, 12-3-1930, पृ. 89-90)*

मैं सच्चे हृदय से यह बात कह सकता हूं कि मैं अपने साथियों के दोष ढूंढ़ने में बड़ा शिथिल हूं और चूंकि स्वयं मेरे भीतर इतने सारे दोष हैं इसलिए मुझे इन साथियों की उदारता की जरूरत है | लोगों के बारे में बहुत कड़े मानदंडों के आधार पर निर्णय न करना और उनकी भूलों को देखकर भी उदार रहे आना मैंने सीख लिया है | *(हरि, 11-3-1939, पृ. 47)*

विरोधियों का सम्मान

दृष्टिकोणों की भिन्नता का अर्थ परस्पर युद्ध की स्थिति में होना नहीं है | यदि ऐसा हो तो मैं और मेरी पत्नी एक-दूसरे के घोर शत्रु बन जाएं | मैं किन्हीं ऐसे दो व्यक्तियों को नहीं जानता जिनमें कोई मतभेद न हों और चूंकि मैं गीता का भक्त हूं, मैंने सदा यह प्रयास किया है कि जिनका मुझसे मतभेद है, उनसे भी अपने स्वजनों और प्रियजनों जैसा ही प्रेमपूर्ण व्यवहार करूं | *(यंग, 17-3-1927, पृ. 82)*

मुझे सदा यह देखकर संतोष का अनुभव हुआ है कि मैं जिनके सिद्धांतों और नीतियों का विरोध करता हूं, वे भी प्राय: मेरे प्रति अपना प्रेम और विश्वास यथावत बनाए रखते हैं | दक्षिण अफ्रीकियों ने भी व्यक्तिगत स्तर पर मुझे अपना विश्वास और मित्रता दी |

ब्रिटिश नीति और प्रणाली की भर्त्सना करने के बावजूद मुझे हजारों अंग्रेज स्त्री-पुरुषों का स्नेह प्राप्त है और आधुनिक भौतिकवादी सभ्यता की पूरी तरह निंदा करने पर भी मेरे यूरोपीय और अमरीकी मित्रों की संख्या बढ़ती ही जाती है | यह भी अहिंसा की ही विजय है | *(वही, पृ. 86)*

मैं जान-बूझकर किसी प्राणी को चोट नहीं पहुंचा सकता और साथी मानवों को तो और भी नहीं, भले ही वह मेरे साथ कितनी ही बुराई से पेश आएं | *(यंग, 12-3-1930, पृ. 93)*

मेरे द्वारा पिछले 50 वर्षों में किए गए किसी एक भी काम के बारे में कोई व्यक्ति यह सिद्ध नहीं कर सकता कि वह किसी आदमी या समुदाय के विरोध में किया गया था | मैंने कभी किसी को अपना शत्रु नहीं माना | मेरा धर्म मुझे किसी को भी अपना शत्रु मानने की आज्ञा नहीं देता | मैं किसी प्राणी के प्रति दुर्भावना नहीं रख सकता | *(हरि, 17-11-1933, पृ. 4)*

2. मेरा महात्मापन

महात्मा नहीं

मुझे नहीं लगता कि मैं महात्मा हूं | लेकिन मैं यह अवश्य जानता हूं कि मैं ईश्वर के सर्वाधिक दीन-विनीत प्राणियों में से एक हूं | *(यंग, 27-10-1921, पृ. 342)*

इस महात्मा की पदवी ने मुझे बड़ा कष्ट पहुंचाया है, और मुझे एक क्षण भी ऐसा याद नहीं जब इसने मुझे गुदगुदाया न हो | *(ए, पृ. xiv)*

मेरी महात्मा की पदवी व्यर्थ है | यह मेरे बाह्य कार्यकलाप के कारण है, मेरी राजनीति के कारण है जो मेरा लघुतम पक्ष है और इसलिए, क्षणजीवी भी है | मेरा वास्तविक पक्ष है सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य के प्रति मेरा आग्रह, और इसी का महत्व स्थायी है | यह पक्ष चाहे जितना छोटा हो पर इसकी उपेक्षा नहीं करनी है | यही मेरा सर्वस्व है | मुझे मेरी असफलताएं और मोहभंग भी प्यारे हैं, चूंकि ये भी तो सफलता की सीढ़ियां हैं | *(यंग, 25-2-1926, पृ. 78-79)*

दुनिया बहुत कम जानती है कि मेरी तथाकथित महानता किस कदर मेरे मूक, निष्ठावान, योग्य और शुद्ध कार्यकर्ताओं – स्त्री एवं पुरुषों – के अनवरत कठोर परिश्रम पर और नीरस कामों में भी उनकी लगन पर आश्रित है | *(यंग, 26-4-1928, पृ. 130)*

मेरे लिए सत्य 'महात्मापन' से कहीं अधिक प्रिय है | 'महात्मापन' तो मेरे ऊपर सिर्फ एक बोझ है | यह अपनी सीमाओं और अकिंचनता का बोध ही है जिसने मुझे 'महात्मापन' के अत्याचारी स्वरूप से बचाये रखा है | *(यंग, 1-11-1928, पृ. 361)*

स्तुति-अभिनंदन से परेशान

मैं अविवेकी लोगों द्वारा की जाने वाली आराधना-स्तुति से सचमुच परेशान हो गया हूं | इसके स्थान पर यदि वे मेरे ऊपर थूकते तो मुझे अपनी असलियत का सही अंदाजा रहता | और तब मुझे अपनी भयंकर भूलों और अन्य मिथ्यानुमानों को स्वीकार करने, अपने कदम पीछे हटाने या कार्यकलापों का पुनर्विन्यास करने की आवश्यकता न पड़ती | *(यंग, 2-3-1922, पृ. 135)*

मुझे भेंट किए गए अभिनंदन-पत्रों में से अधिकांश में मेरे लिए ऐसे-ऐसे विशेषणों का प्रयोग किया जाता है जिनके मैं कदापि योग्य नहीं हूं | इनसे न इनके लेखकों का कुछ भला होता है, न मेरा | इनके कारण मुझे अकारण शर्मिंदा होना पड़ता है, क्योंकि मुझे यह स्वीकार करना पड़ता है कि मैं इन विशेषणों के योग्य नहीं हूं | जो विशेषण उपयुक्त भी हैं, उनका अतिशय प्रयोग कर दिया जाता है | ऐसे अभिनंदनों से मेरे गुणों की शक्ति बढ़ने

में कोई मदद नहीं मिलती | बल्कि यदि मैं सावधान न रहूं तो उनसे मेरा सिर फिर सकता है | अच्छा तो यही है कि आदमी के सुकृत्यों की भी बहुत चर्चा न की जाए | सबसे उपयुक्त प्रशंसा तो उनका अनुकरण ही है | *(यंग, 21-5-1925, पृ. 176)*

मुझे इस महात्मा की पदवी को अपने हाल पर छोड़ देना चाहिए | यद्यपि मैं एक असहयोगी हूं, पर यदि कोई ऐसा विधेयक लाया जाए जिसके अनुसार मुझे महात्मा कहना और मेरे पांव छूना अपराध घोषित किया जा सके तो मैं खुशी-खुशी उसका समर्थन करूंगा | जहां मैं अपना कानून चलाने की स्थिति में हूं, जैसे कि अपने आश्रम में, वहां ऐसा करने पर एकदम पाबंदी है | *(यंग, 17-3-1927, पृ. 86)*

सच्चा सम्मान

मेरे मित्र मेरा सर्वाधिक सम्मान मेरे कार्यक्रमों को अपने जीवन में लागू करके या यदि वे इनमें विश्वास न करते हों तो उनका भरपूर विरोध करके कर सकते हैं | *(यंग, 12-6-1924, पृ. 197)*

यह तो अच्छे धन का अपव्यय होगा .... किसी आदमी की मिट्टी या धातु की प्रतिमा खड़ी करना – आदमी जो खुद मिट्टी का बना है और उस कांच की चूड़ी से भी अधिक भंगुर है जिसे आप परिरक्षण के द्वारा हज़ार वर्ष तक रख सकते हैं; मानव शरीर तो नित्य विघटित होता है और आयुष्य पूरा होने पर अंतिम रूप से विघटित हो जाता है | अपने मुसलमान मित्रों से, जिनके बीच मैंने अपने जीवन के सर्वोत्तम वर्ष व्यतीत किए हैं, मैंने अपने रूपाकार की प्रतिमाओं और चित्रों को नापसंद करना सीखा है |....

ये पंक्तियां उन लोगों के लिए चेतावनी बनें जो मेरी प्रतिमाएं खड़ी करके अथवा मेरी आकृति के चित्र लगाकर मेरा सम्मान करना चाहते हैं – वे समझ लें कि मुझे इन प्रदर्शनों से हार्दिक अरुचि है | जिन्हें मुझमें आस्था है, वे यदि मेरे प्रिय कार्यकलाप को आगे बढ़ाने की कृपा करेंगे तो मैं समझूंगा कि मेरा पर्याप्त सम्मान हुआ है | *(हरि, 11-2-1939, पृ. 1)*

मैं 'अवतार' नहीं

अपने को श्रीकृष्ण बताया जाना मैं प्रभु-निंदा मानता हूं | मैं तो एक अदना-सा कार्यकर्ता हूं और एक महान कार्य में लगे अनेक लोगों में से एक हूं | इस कार्य के नेताओं का प्रशस्ति-गान करने से इसे लाभ पहुंचने के बजाय हानि ही पहुंचेगी | किसी कार्य की सफलता की सर्वाधिक संभावना तब होती है जब उसके गुण-दोषों की समीक्षा की जाए और उनके आधार पर ही उसका अनुगमन किया जाए | प्रगतिशील समाज में, मनुष्यों से अधिक महत्व लक्ष्यों को दिया जाना चाहिए क्योंकि मनुष्य अंतत: उन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए प्रयासरत अपूर्ण साधन मात्र है | *(यंग, 13-7-1921, पृ. 224)*

मैं केवल जिस एक गुण का दावा करना चाहता हूं, वह है सत्य तथा अहिंसा | मेरा किन्हीं अतिमानवीय शक्तियों का दावा नहीं है, न ही मुझे उनकी कामना है | मैं उसी नश्वर हाड़-मांस का बना हूं जिसके मेरे दुर्बलतम साथी बने हैं, इसलिए आम इंसान की तरह मैं गलतियां कर सकता हूं | मेरी सेवाओं की अनेक सीमाएं हैं, लेकिन ईश्वर ने मेरी अपूर्णताओं के बावजूद अभी तक मेरी सेवाओं पर अपना वरदहस्त रखा है | *(यंग, 16-2-1922, पृ. 102)*

मैं अपने भीतर किसी अनन्य दैवी शक्ति का कोई दावा नहीं करता | मैं पैगम्बरी का दावा नहीं करता | मैं तो एक विनम्र सत्यशोधक हूं और सत्य की ही प्राप्ति के लिए कृतसंकल्प हूं | ईश्वर के साक्षात्कार के लिए मैं कितने भी बड़े त्याग को अधिक नहीं मानता | मेरे समस्त कार्यकलाप, चाहे उन्हें सामाजिक कहा जाए या राजनीतिक, मानवीय अथवा नैतिक, उसी लक्ष्य की प्राप्ति की ओर अभिमुख है |

और चूंकि मैं जानता हूं कि ईश्वर का वास उच्च और शक्ति-संपन्नों की अपेक्षा प्राय: अपने अतिसाधारण-निचले प्राणियों के बीच अधिक है, इसलिए मैं इन्हीं के स्तर पर आने के लिए संघर्षरत हूं | यह मैं उनकी सेवा किए बगैर नहीं कर सकता | इसलिए मुझे दलित वर्गों की सेवा की लालसा रहती है | और चूंकि मैं राजनीति में प्रवेश किए बगैर यह सेवा नहीं कर सकता इसलिए मैं राजनीति में हूं | इस प्रकार मैं कोई स्वामी नहीं हूं | मैं तो भारत और उसके जरिए मानवता का एक संघर्षरत, भूल-चूक करने वाला और विनम्र सेवक हूं | *(यंग, 11-9-1924, पृ.298)*

यह देखकर अचंभा होता है कि हम किस तरह अपने को छलते हैं | हम यह भ्रम पाल लेते हैं कि इस भंगुर शरीर को अपराजेय बनाया जा सकता है और आत्मा की प्रच्छन्न शक्तियों को जाग्रत करना असंभव मान बैठते हैं | यदि मेरे पास उनमें से कोई शक्तियां हैं भी, तो मैं यही दिखाने की कोशिश कर रहा हूं कि मैं किसी भी साधारण मनुष्य जैसा ही कमजोर हूं और मुझमें कोई असाधारणता न पहले कभी थी और न अब है | *(यंग, 6-5-1926, पृ.164)*

मैं स्वयं को इस योग्य नहीं मानता कि मेरी गिनती पैगंबरों में की जाए | मैं एक विनम्र सत्यशोधक हूं | मैं इसी जन्म में आत्म-साक्षात्कार करने, मोक्ष प्राप्त करने के लिए आतुर हूं | देश-सेवा मेरे लिए अपनी आत्मा को इस देह के बंधन से मुक्त करने की साधना का ही एक अंग है | इस अर्थ में इस सेवा को मेरा शुद्ध स्वार्थ भी माना जा सकता है | मुझे संसार के नश्वर साम्राज्य की कोई कामना नहीं है | मैं तो स्वर्ग के साम्राज्य अर्थात मोक्ष के लिए प्रयासरत हूं | *(यंग, 3-4-1924, पृ. 114)*

औसत से भी कम योग्यता वाले एक साधारण मानव से अधिक कुछ होने का मेरा दावा नहीं है | परिश्रमपूर्ण अनुसंधान के जरिए जो कुछ अहिंसा या आत्मसंयम मैं अर्जित कर सका हूं, उसके लिए मुझमें कोई विशेष योग्यता पहले से रही है, इसका दावा मैं नहीं करता | मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि कोई भी स्त्री अथवा पुरुष वह सब उपलब्ध कर सकता है, जो मैंने किया; यदि वह इतनी ही आशा और विश्वास के साथ इतना ही प्रयास करे | *(हरि, 3-10-1936, पृ. 269)*

मुझे पत्र लिखने वाले कुछ लोग यह समझते हैं कि मैं चमत्कार कर सकता हूं | सत्य का पुजारी होने के नाते मैं यह कहना चाहूंगा कि मेरे पास ऐसा कोई सामर्थ्य नहीं है | मेरे पास जो भी शक्ति है, वह सब ईश्वर की दी हुई है | लेकिन ईश्वर प्रत्यक्ष कार्य करते नहीं दिखते | वे अपने असंख्य अभिकरणों के द्वारा काम करते हैं | *(हरि, 8-10-1938, पृ. 285)*

सीमाओं की सजगता

मैं स्वयं को एक दूरदर्शी कार्यकर्ता मानता हूं | मेरी दूरदर्शिता का अर्थ यह और केवल यह है कि मुझे अपनी सीमाओं का सम्यक ज्ञान है | मुझे उम्मीद है कि मैं कभी अपनी सीमाओं को नहीं लांघता | निश्चित रूप से, मैंने कभी जान-बूझकर ऐसा नहीं किया है | *(यंग, 23-6-1920, पृ. 3)*

अपनी सीमाओं के प्रति मैं सजग हूं | यह सजगता ही मेरी एकमात्र शक्ति है | मैं अपने जीवन में जो कुछ कर पाया हूं, वह किसी अन्य बात की अपेक्षा अपनी सीमाओं को पहचानने की मेरी क्षमता के कारण ही है | *(यंग, 13-11-1924, पृ. 378)*

यदि मैं वह होता जो मैं चाहता हूं तो उपवास की आवश्यकता ही न पड़ती | मुझे तब किसी से बहस करने की भी जरूरत न होती | मेरा शब्द ही काम कर जाता | सच पूछा जाए तो मुझे बोलने की भी आवश्यकता न पड़ती | मेरी इच्छा मात्र ही अभीष्ट परिणाम प्राप्त करा देती | लेकिन मुझे अपनी सीमाओं का ज्ञान है | *(हरि, 15-4-1939, पृ. 86)*

लोग जब-जब गम्भीर भूलें करेंगे, मैं उन्हें भूलों के रूप में स्वीकार करता जाऊंगा | मैं दुनिया में एक ही निरंकुश शक्ति को मानता हूं और वह है मेरे अंत:करण की हल्की-सी आवाज | और यद्यपि इस बात की संभावना है कि मैं अपने मार्ग पर चलने के लिए अकेला रह जाऊं पर मुझे विश्वास है कि मुझमें इतने विकट अल्पमत में रहने का साहस है | *(यंग, 2-3-1922, पृ. 135)*

मेरा मानना है कि मैं मानव प्रकृति का काफी अच्छा पारखी और अपनी असफलताओं का शल्य-चिकित्सक हूं | मैंने पाया है कि मनुष्य अपने द्वारा प्रतिपादित पद्धति से श्रेष्ठतर है | *(मगां, पृ. 241)*

मुझे उम्मीद है कि मुझमें दर्प-भाव नहीं है | मुझे लगता है कि मैं अपनी कमजोरी पूरी तरह पहचानता हूं | पर भगवान और उसकी शक्ति तथा प्रेम में मेरी आस्था अडिग है | मैं तो अपने कुंभकार के हाथों में मिट्टी के एक लोंदे के समान हूं | *(यंग, 26-1-1922, पृ. 49)*

मुझे कहीं प्रतिष्ठा मिले, इसकी मुझे कोई कामना नहीं है | प्रतिष्ठा तो राजाओं के दरबार की सजावट है | मैं जिस प्रकार हिंदुओं का सेवक हूं उसी प्रकार मुसलमानों, ईसाइयों, पारसियों और यहूदियों का भी हूं | और, सेवक को

तो प्यार चाहिए, प्रतिष्ठा नहीं | जब तक मैं एक निष्ठावान सेवक बना रहूंगा, प्यार मुझे अवश्य मिलेगा | *(यंग, 26-3-1925, पृ. 112)*

शहादत की तैयारी

कुछ बातें ऐसी हैं जिनसे आप तत्काल मुक्त नहीं हो सकते, भले ही आप उसके लिए प्रयास करते रहें | मेरा यह पार्थिव देहावरण जिसमें मैं बंदी हूं, मेरे जीवन का भार है पर मुझे इसे वहन करना ही होगा, बल्कि इसे प्रसन्न भी रखना होगा | *(यंग, 27-10-1921, पृ, 342)*

मैं इस कथन की सत्यता में पूरा-पूरा विश्वास करता हूं कि ईश्वर की मर्जी के बगैर पत्ता भी नहीं हिल सकता | यदि वह मेरे शरीर से और सेवा लेना चाहेगा तो इसकी रक्षा करेगा | उसकी मर्जी के बिना इसे कोई नहीं बचा सकता | *(एफा, पृ. 114)*

मेरी रक्षा के लिए कोई प्रयास न कीजिए | सर्वशक्तिमान सदैव हम सबकी रक्षा करता है | आप पक्के तौर पर समझ लें कि जब मेरा समय पूरा हो जाएगा तो दुनिया का बड़े-से-बड़ा आदमी भी ईश्वर के और मेरे बीच बाधा नहीं बन सकेगा | *(यंग, 2-4-1931, पृ. 54-55)*

मुझे अपने सिरजनहार के प्रति सच्चा बने रहना चाहिए और जिस क्षण मुझे लगे कि अब यह शरीर मैं नहीं चला पा रहा, मैं समझता हूं कि मुझे इसका मोह त्याग देना चाहिए | इससे बेहतर प्रतिकार मैं और क्या कर सकता हूं कि जब यह शरीर काम देना बंद कर दे और सन्मार्ग की खोज में बाधक बनने लगे तो इसे स्वेच्छा से समर्पित कर दूं | *(वही, पृ. 60)*

मैं शहादत के लिए आतुर नहीं हूं | लेकिन अपनी आस्था की रक्षा को मैं सर्वोच्च कर्तव्य मानता हूं और उसे निभाते हुए यदि शहादत मिले....तो मैं समझूंगा कि मैं इसके योग्य था | *(हरि, 29-6-1934, पृ. 156)*

लोगों से मिले असीम स्नेह की मैं कद्र करता हूं लेकिन उन्हें यह समझ लेना चाहिए कि मेरी रक्षा की चिंता करने से यदि राष्ट्र अपने प्रमुख ध्येय से विचलित होता है तो यह शरीर रक्षा के योग्य नहीं है |*(हरि, 11-3-1939, पृ. 44)*

अतीत में मेरी जान लेने की कई कोशिशें की गई हैं, पर अभी तक ईश्वर ने मेरी रक्षा की है और हमलावरों ने अपने कृत्य पर पछतावा जाहिर किया है | लेकिन अगर कोई यह समझते हुए मुझ पर गोली चलाए कि वह एक दुष्ट से छुटकारा पा रहा है तो वह सच्चे गांधी को नहीं बल्कि उसी को मारेगा जो उसे दुष्ट दिखाई देता था | *(बांक्रा, 9-8-1942)*

केवल भगवान ही मेरा रक्षक है | कोई अदना आदमी जो खुद नहीं जानता कि कल उसका क्या होगा, वह किसी दूसरे की रक्षा का जिम्मा कैसे ले सकता है ? मैं भगवान के आश्रय में संतुष्ट हूं | वह रक्षा करे या नाश | मैं जानता हूं कि कभी-कभी रक्षा के लिए वह नाश भी करता है | *(हरि, 9-6-1946, पृ. 170)*

मैं अपनी कार्यशक्तियों के क्रमिक ह्रास के फलस्वरूप....एक पराजित मनुष्य की भांति मरना नहीं चाहता | किसी हत्यारे की गोली मेरी जान ले ले, मैं इसे बेहतर समझूंगा | अपनी अंतिम श्वास तक मैं अपना कर्तव्य करते-करते मरूं, यह मुझे सबसे प्रिय होगा | *(मगांला, 1, पृ. 562)*

अपने ध्येय की पूर्ति करते हुए मर जाने से मैं नहीं डरता | यदि मेरे भाग्य में यही है तो ऐसा ही हो | *(हरि, 27-4-1947, पृ. 127)*

क्रोध का परिहार

मैंने कटु अनुभव के द्वारा अपने क्रोध को परिरक्षित करने का उत्तम पाठ पढ़ लिया है; जिस प्रकार ऊष्मा को परिरक्षित करके ऊर्जा में बदला जाता है उसी प्रकार क्रोध को नियंत्रित करके एक ऐसी शक्ति में रूपांतरित किया जा सकता है जो सारी दुनिया को हिला सकती है | *(यंग, 15-9-1920, पृ. 6)*

गौरवपूर्ण आचरण से दूर जाने वाले व्यक्ति को मैं बख्शता नहीं – फिर वह दोस्त हो या दुश्मन | *(यंग, 2-3-1922, पृ. 140)*

ऐसी बात नहीं है कि मुझे क्रोध नहीं आता | पर मैं क्रोध को व्यक्त नहीं करता | मैं क्रोधहीनता के रूप में धैर्य के गुण का विकास करता हूं और प्राय: इसमें सफलता पा लेता हूं | जब क्रोध आता है तो मैं केवल उसका नियंत्रण करता हूं | मैं उसे कैसे नियंत्रित कर पाता हूं, यह पूछना बेकार है; यह एक आदत है जो हरेक व्यक्ति को डालनी चाहिए और निरंतर अभ्यास से इसमें सफलता अवश्य प्राप्त कर लेनी चाहिए | *(हरि, 11-5-1935, पृ. 98)*

यदि मुझमें विनोद-वृत्ति न होती तो बहुत पहले आत्महत्या कर चुका होता | *(यंग, 18-8-1921, पृ. 238)*

मैं अदम्य आशावादी हूं, क्योंकि मुझे स्वयं पर विश्वास है | यह बड़ी दंभपूर्ण उक्ति लगती है, है न ? लेकिन मैं यह बात अत्यंत विनम्रतापूर्वक कह रहा हूं | मुझे ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता में विश्वास है | मुझे सत्य में विश्वास है और इसीलिए मुझे इस देश और मानवता के भविष्य के बारे में कोई संदेह नहीं है |

मैं आशावादी हूं, क्योंकि मैं अपने आप से बहुत-सी बातों की उम्मीद करता हूं | मुझे मालूम है कि वे सारी बातें मुझमें नहीं हैं, क्योंकि मैं अभी एक पूर्ण प्राणी नहीं हूं | यदि मैं पूर्ण प्राणी होता तो मुझे तुमसे बहस करने की जरूरत न होती | जब मैं पूर्णता प्राप्त कर लूंगा तो मुझे सिर्फ मुंह खोलने की जरूरत होगी और पूरा राष्ट्र मेरी बात सुनेगा | मैं सेवा के द्वारा ऐसी पूर्णता प्राप्त करना चाहता हूं | *(यंग, 13-8-1925, पृ. 279-80)*

मेरा दर्शन, यदि कोई है तो, यह नहीं मानता कि किसी के ध्येय को बाहरी तत्वों से कोई हानि पहुंच सकती है | हानि तभी पहुंचती है, और पहुंचनी उचित भी है, जब ध्येय अशुद्ध हो, या ध्येय तो शुद्ध हो पर उसके समर्थक झूठे, दुर्बलहृदय अथवा मलिन हों | *(हरि, 25-7-1936, पृ. 185)*

3. जानता हूं मार्ग मैं

मैं मार्ग जानता हूं | वह सीधा और संकरा है | वह तलवार की धार की तरह है | मुझे उस पर चलने में आनंद आता है | जब मैं उससे फिसल जाता हूं तो रोता हूं | ईश्वर का वचन है : जो प्रयास करता है, वह कभी नष्ट नहीं होता | मुझे इस वचन में पूरी आस्था है | इसलिए अपनी कमजोरी की वजह से मैं चाहे हज़ार बार नाकामयाब रहूं पर मेरी आस्था कभी नहीं डिगेगी | बल्कि यह आशा कायम रहेगी कि जिस दिन यह शरीर पूरी तरह नियंत्रण में आ जाएगा, उस दिन मुझे ईश्वर की अलौकिक आभा के दर्शन हो जाएंगे | और ऐसा होगा जरूर | *(यंग, 17-6-1926, पृ. 215)*

मेरी आत्मा जब तक एक भी अन्याय अथवा एक भी विपत्ति की विवश साक्षी है तब तक वह संतोष का अनुभव नहीं कर सकती | लेकिन मेरे जैसे दुर्बल, भंगुर और दीन व्यक्ति के लिए हर दोष को दूर करना या जो भी दोष मैं देखता हूं उस सबसे स्वयं को मुक्त मानना सम्भव नहीं है |

मेरी अंतश्चेतना मुझे एक दिशा में ले जाती है और शरीर विपरीत दिशा की ओर जाना चाहता है | इन दोनों विरोधी दलों के कार्यों से मुक्ति पाई जा सकती है, पर वह मुक्ति कई धीमे और पीड़ाप्रद चरणों से गुजरते हुए ही प्राप्य है|

मैं यह मुक्ति कर्म का यंत्रवत त्याग करके नहीं पा सकता – यह तो अनासक्त भाव से प्रबुद्ध कर्म करके ही पाई जा सकती है | इस संघर्ष में देह को निरंतर तपाना पड़ता है, तब जाकर अंतश्चेतना पूरी तरह स्वतंत्र हो पाती है | *(यंग, 17-11-1921, पृ. 368)*

सत्य की खोज

मैं मात्र एक सत्यशोधक हूं | मेरा मानना है कि मैंने सत्य तक पहुंचने का मार्ग ढूंढ़ लिया है | मैं उसे पाने का निरंतर प्रयास कर रहा हूं लेकिन मैं स्वीकार करता हूं कि मैं अभी तक अपने ध्येय में सफल नहीं हो सका हूं | सत्य को पूर्ण रूप से पाना अपना और अपनी नियति का पूरी तरह साक्षात्कार करना अर्थात पूर्ण हो जाना है | मुझे अपनी अपूर्णताओं का पीड़ादायक बोध है, और इसी बोध में मेरी समस्त शक्ति सन्निहित है, क्योंकि यह बड़ी दुर्लभ बात है कि आदमी को अपनी सीमाओं का बोध हो जाए |

यदि मैं पूर्ण मनुष्य होता तो मुझे अपने पड़ोसियों के दुख देखकर वैसा महसूस न होता जैसा कि होता है | पूर्ण मनुष्य के रूप में मैं उनके दुखों को देखकर उन्हें दूर करने के उपाय बता देता और अपने भीतर के अजेय सत्य के बल पर उन्हें अपनाने के लिए लोगों को बाध्य कर देता | पर अभी तो मैं मानो एक धूमिल शीशे के जरिए ही देख पाता हूं और इसलिए धीरे-धीरे तथा कष्टकर प्रक्रिया द्वारा विश्वास जगा पाता हूं और तब भी सदा सफल नहीं होता |

ऐसी स्थिति में, यदि मैं अपने चहुं ओर व्याप्त परिहार्य दुख की जानकारी होते हुए भी और विश्व के नियंता की छाया तले, कंकालशेषों को देखकर भी, भारत के करोड़ों मूक दीन-दुखियों के साथ सहानुभूति का अनुभव न करूं तो मैं मनुष्य से अधम जीव होऊंगा | *(वही, पृ. 377)*

भगवान पर भरोसा

मैं इस संसार में 'परिव्याप्त अंधकार के बीच से' निकलकर आलोक तक पहुंचने का प्रयास कर रहा हूं | मुझसे अक्सर गलतियां हो जाती हैं या मिथ्या अनुमान लगा बैठता हूं....मेरा भरोसा केवल भगवान में है | और, मैं इंसानों का भी भरोसा इसलिए करता हूं कि मुझे भगवान में भरोसा है | यदि मुझे भगवान में भरोसा न होता तो मैं टाइमन की तरह अपनी मानव-प्रजाति से घृणा करने वाला होता | *(यंग, 4-12-1924, पृ. 398)*

मैं सारी दुनिया को प्रसन्न करने के लिए भगवान से विश्वासघात नहीं करूंगा | *(हरि, 18-2-1933, पृ. 4)*

मैंने अपने जीवन में जो भी उल्लेखनीय कार्य किया है, तर्कबुद्धि से प्रेरित होकर नहीं किया अपितु अपनी सहजवृत्ति, बल्कि कहूं कि भगवान से प्रेरित होकर किया है | *(हरि, 14-5-1938, पृ. 110)*

मैं आस्थावान व्यक्ति हूं | मुझे केवल भगवान का आसरा है | मेरे लिए एक ही कदम पर्याप्त है | अगला कदम, समय आने पर भगवान स्वयं मुझे सूझा देगा | *(हरि, 20-10-1940, पृ. 330)*

कोई गोपनीयता नहीं

मेरी कोई गोपनीय विधियां नहीं हैं | सत्य के अलावा और कोई कूटनीति मैं नहीं जानता | अहिंसा के अलावा मेरे पास और कोई हथियार नहीं है | मैं अनजाने में कुछ समय के लिए भले ही भटक जाऊं लेकिन सदा के लिए नहीं भटक सकता | *(यंग, 11-12-1924, पृ. 406)*

मेरा जीवन एक खुली किताब रहा है | मेरे न कोई रहस्य हैं और न मैं रहस्यों को प्रश्रय देता हूं | *(यंग, 19-3-1931, पृ. 43)*

मैं पूरी तरह भला बनने के लिए संघर्षरत एक अदना-सा इंसान हूं | मैं मन, वाणी और कर्म से पूरी तरह सच्चा और पूरी तरह अहिंसक बनने के लिए संघर्षरत हूं – यह लक्ष्य सच्चा है, यह मैं जानता हूं पर उसे पाने में बार-बार असफल हो जाता हूं | मैं मानता हूं कि इस लक्ष्य तक पहुंचना कष्टकर है, पर यह कष्ट मुझे निश्चित आनंद देने वाला लगता है | इस तक पहुंचने की प्रत्येक सीढ़ी मुझे अगली सीढ़ी तक पहुंचने के लिए और शक्ति तथा सामर्थ्य देती है | *(यंग, 9-4-1924, पृ. 126)*

जब मैं एक ओर अपनी लघुता और अपनी सीमाओं के बारे में सोचता हूं और दूसरी ओर मुझसे लोगों को जो अपेक्षाएं हो गई हैं, उनकी बात सोचता हूं तो एक क्षण के लिए तो मैं स्तब्ध रह जाता हूं लेकिन फिर यह समझकर प्रकृतिस्थ हो जाता हूं कि ये अपेक्षाएं मुझसे नहीं हैं, जोकि अच्छे और बुरे का एक अजीब-सा मिश्रण है, बल्कि सत्य और अहिंसा के दो अमूल्य गुणों के मुझमें अवतरण के प्रति हैं – यह अवतरण कितना ही अपूर्ण हो पर

मुझमें अपेक्षाकृत अधिक द्रष्टव्य है | इसलिए पश्चिम के अपने सह-शोधकों की मुझसे जो कुछ सहायता बन पड़े, उसकी जिम्मेदारी से मुझे विमुख नहीं होना चाहिए | *(यंग, 3-10-1925, पृ. 344)*

मार्गदर्शन

मैं अचूक मार्गदर्शन अथवा प्रेरणा प्राप्त होने का दावा नहीं करता | जहां तक मेरा अनुभव है, किसी भी मनुष्य के लिए अचूकता का दावा करना अनुचित है, क्योंकि प्रेरणा भी उसी को मिलती है जो विरोधी तत्वों की क्रिया से मुक्त हो, और किसी अवसर विशेष के संबंध में यह निर्णय करना मुश्किल होगा कि विरोधी युग्मों से मुक्ति का दावा सही है या नहीं | इसलिए अचूकता का दावा करना बड़ा खतरनाक है | लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि हमें कोई मार्गदर्शन उपलब्ध ही नहीं है | विश्व के मनीषियों का समग्र अनुभव हमें उपलब्ध है और सदा उपलब्ध रहेगा |

इसके अलावा, मौलिक सत्य अनेक नहीं हैं बल्कि एक ही है, जो सत्य स्वयं है जिसे अहिंसा भी कहा जाता है | सीमा में बंधा मनुष्य सत्य और प्रेम के संपूर्ण स्वरूप को, जो अनंत है, कभी नहीं पहचान पाएगा | लेकिन जितना हमारे मार्गदर्शन के लिए आवश्यक है उतना तो हम जानते ही हैं | हम उस पर आचरण करते समय त्रुटि कर सकते हैं और कभी-कभी त्रुटि भयंकर भी हो सकती है | लेकिन मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो अपने को नियंत्रित कर सकता है और नियंत्रण की इस शक्ति में जिस प्रकार त्रुटि करने की शक्ति समाहित है, उसी प्रकार त्रुटि का पता चलने पर उसका सुधार करने की शक्ति भी है | *(यंग, 21-4-1927, पृ. 128)*

मैं दिव्यद्रष्टा नहीं हूं | मैं संत होने के दावे से भी इंकार करता हूं | मैं तो पार्थिव शरीरधारी हूं – मैं भी आपकी तरह अनेक दुर्बलताओं का शिकार हो सकता हूं | लेकिन मैंने दुनिया देखी है | मैं आंखें खोलकर जिया हूं | मनुष्य को जिन-जिन अग्निपरीक्षाओं से होकर गुजरना पड़ सकता है, उनमें से अधिकांश से मैं गुजरा हूं | मैं इस साधना से गुजर चुका हूं | *(स्पीरा, पृ. 531)*

आत्मत्याग

मैं अपने देशवासियों से कहता हूं कि उन्हें आत्मत्याग के अलावा और किसी सिद्धांत का अनुसरण करने की जरूरत नहीं है – प्रत्येक युद्ध से पहले आत्मत्याग आवश्यक है | आप चाहे हिंसा के पक्षधर हों या अहिंसा के, आपको त्याग और अनुशासन की अग्निपरीक्षा से गुजरना ही होगा | *(वही, पृ. 532)*

मैं दुनिया के सामने घोषणा करना चाहता हूं, यद्यपि पश्चिम के अनेक मित्रों के आदर से मैं वंचित हो गया हूं – और मुझे ग्लानि से अपना सिर झुका देना चाहिए; किंतु उनकी मित्रता अथवा प्रेम की खातिर भी मुझे अपनी अंतरात्मा की आवाज को दबाना नहीं चाहिए – मेरी अंतर्निहित प्रकृति आज मुझे इसकी प्रेरणा दे रही है | मेरे अंदर कुछ है जो मुझे अपनी व्यथा को चीख-चीखकर सुना देने के लिए बाध्य कर रहा है | मैं मानवता से परिचित हूं | मैंने

मनोविज्ञान का भी थोड़ा-बहुत अध्ययन किया है | ऐसा आदमी बात को ठीक-ठीक समझता है | मुझे इसकी चिंता नहीं कि आप इसे क्या कहकर पुकारते हैं | मेरी अंतरात्मा की आवाज मुझसे कहती है, "तुम्हें सारी दुनिया के विरोध में खड़ा होना है, भले ही तुम अकेले खड़े हो | दुनिया तुम्हें आग्नेय दृष्टि से देखे, पर तुम्हें उनसे आंख मिलाकर खड़े रहना है | डरो मत | अपनी अंतरात्मा की आवाज का भरोसा करो |" यह आवाज कहती है : "मित्रों का, पत्नी का और सभी का त्याग कर दो किंतु जिसके लिए तुम जिए हो और जिसके लिए तुम्हें मरना है, उसके प्रति सच्चे बने रहो |" *(माना, पृ. 201-2)*

पराजय की भावना नहीं

पराजय मुझे हतोत्साहित नहीं कर सकती | यह मुझे केवल सुधार सकती है.... मैं जानता हूं कि ईश्वर मेरा मार्गदर्शन करेगा | सत्य मानवीय बुद्धिमत्ता से श्रेष्ठतर है | *(यंग, 3-7-1924, पृ. 218)*

मैंने कभी अपनी आशावादिता का त्याग नहीं किया है | प्रत्यक्षत: घोर विपत्ति के कालों में भी मेरे अंदर आशा की प्रखर ज्योति जलती रही है | मैं स्वयं आशा को नहीं मार सकता | मैं आशा के औचित्य का प्रत्यक्ष प्रदर्शन नहीं कर सकता, पर मुझ में पराजय की भावना नहीं है | *(हरि, 25-1-1935, पृ. 399)*

मैं भविष्यदर्शन करना नहीं चाहता | मेरा काम वर्तमान की चिंता करना है | ईश्वर ने मुझे आगामी क्षण पर कोई नियंत्रण नहीं दिया है....

भरोसा

यह सही है कि लोगों ने मुझे प्राय: निराश किया है | बहुतों ने मुझे धोखा दिया है और बहुतों ने अपने कर्तव्य का निर्वाह नहीं किया है | लेकिन मुझे उनके साथ काम करने का कोई पछतावा नहीं है | कारण, कि मैं जिस तरह सहयोग करना जानता हूं, उसी तरह असहयोग करना भी जानता हूँ | दुनिया में काम करने का सबसे व्यावहारिक और गरिमामय तरीका यही है कि जब तक किसी व्यक्ति के बारे में निश्चित रूप से कोई विरोधी साक्ष्य सामने न आए, उसकी बात का भरोसा किया जाए | *(यंग, 26-12-1924, पृ. 430)*

मुझे भरोसा करने में विश्वास है | भरोसा करने से भरोसा मिलता है | संदेह दुर्गंधमय है और इससे सिर्फ सड़न पैदा होती है | जिसने भरोसा किया है, वह दुनिया में आज तक हारा नहीं है | *(यंग, 4-6-1925, पृ. 193)*

वचन-भंग मेरी आत्मा को झकझोर देता है, विशेषकर तब जबकि वचन-भंग करने वाले से मेरा कोई संबंध रहा हो | सत्तर वर्ष की अवस्था में मेरे जीवन का कोई बीमा मूल्य शेष नहीं है | इसलिए यदि किसी पवित्र और गंभीर वचन का विधिवत पालन कराने के लिए मुझे अपने जीवन की आहुति भी देनी पड़े तो मुझे सहर्ष इसके लिए तत्पर रहना चाहिए | *(हरि, 11-3-1939, पृ. 46)*

जहां तक मेरी जानकारी है, अपने संपूर्ण सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत जीवन में, मैंने कभी वचन-भंग नहीं किया है| *(हरि, 22-4-1939, पृ. 100)*

मेरा नेतृत्व

उनके अनुसार मेरा दावा है कि मैं किसी अन्य व्यक्ति की अपेक्षा मानव प्रकृति को अधिक अच्छी तरह समझता हूं | मेरा विश्वास है कि मेरा यह दावा सही है, लेकिन अगर मुझे अपनी सच्चाई और अपने तरीकों में विश्वास न हो तो मैं शीर्ष स्थान ग्रहण करने के योग्य नहीं रहूंगा | *(यंग, 1-1-1925, पृ. 8)*

जहां तक मेरे नेतृत्व का प्रश्न है, यदि मैं नेता हूं तो, यह पद मुझे मांगने से नहीं बल्कि निष्ठापूर्वक सेवा करने के फलस्वरूप प्राप्त हुआ है | जिस तरह व्यक्ति अपनी त्वचा के रंग को नहीं छोड़ सकता, उसी प्रकार ऐसे नेतृत्व का त्याग भी नहीं कर सकता | और चूंकि मैं अपने राष्ट्र का अभिन्न अंग बन चुका हूं, उसे मुझे मेरी सभी खामियों और सीमाओं के साथ अंगीकार करना होगा | इनमें से बहुत-सी खामियों और सीमाओं का मुझे दुखद बोध है और शेष का स्मरण मेरे स्पष्टवादी आलोचक मुझे बराबर कराते ही रहते हैं | *(यंग, 13-2-1930, पृ. 52)*

वह बढ़ई अयोग्य है जो अपने औजारों में कमियां निकालता है | वह सेनापति अयोग्य है जो घटिया कारगुजारी के लिए अपने सिपाहियों को दोष देता है | मैं जानता हूं कि मैं अयोग्य सेनापति नहीं हूं | मुझमें इतनी अक्ल है कि अपनी सीमाओं को पहचान सकूं | यदि मेरे भाग्य में दिवालियापन लिखा होगा तो ईश्वर मुझे इसकी घोषणा करने की शक्ति देगा | विगत लगभग आधी शताब्दी से मैं ईश्वर की अनुमति से जो काम करता आ रहा हूं, उसके लिए जब मेरी जरूरत नहीं रहेगी तो संभवत: वह मुझे स्वयं उठा लेगा | लेकिन मुझे लगता है कि अभी मेरा काम बाकी है; जो अंधकार मेरे चारों ओर फैल गया है, वह दूर हो जाएगा और डांडी मार्च से भी शानदार किसी अभियान के परिणामस्वरूप अथवा उसके बिना ही, भारत अहिंसक उपायों से अपने सच्चे स्वरूप को प्राप्त कर सकेगा | मैं उस आलोक के लिए प्रार्थना कर रहा हूं जो इस अंधकार को दूर कर देगा | जिन्हें अहिंसा में जाग्रत विश्वास है, वे मेरी इस प्रार्थना में सम्मिलित हो जाएं | *(हरि, 23-7-1938, पृ. 193)*

मेरा काम

जो काम मेरे सामने हैं, उसे करके मैं संतुष्ट हूं | क्यों और किसलिए की फिक्र मैं नहीं करता | विवेक हमें इस बात को समझने में सहायक होता है कि जिन चीज़ों की थाह हमें नहीं है, उनमें अपनी टांग न घुसेड़ें | *(हरि, 7-9-1935, पृ. 234)*

यदि मैं मानवजाति को यह विश्वास दिलाने में सफल हो सकूं कि प्रत्येक स्त्री अथवा पुरुष, वह शरीर से कितना ही दुर्बल हो, अपने आत्मसम्मान और स्वातंत्र्य का रक्षक स्वयं है तो मैं समझूंगा कि मेरा काम पूरा हो गया है |

प्रतिरोधी व्यक्ति के विरुद्ध सारी दुनिया एक हो जाए तो भी यह रक्षोपाय उपलब्ध रहना चाहिए | *(हिंस्ट, 6-8-1944)*

मेरी आंखें मूंद जाने और इस काया के भस्मीभूत हो जाने के बाद भी मेरे काम पर निर्णय देने के लिए काफी समय शेष रह जाएगा | *(यंग, 4-4-1929, पृ. 107)*

4. मेरा जीवन-लक्ष्य

मैं दिव्यद्रष्टा नहीं हूं | मैं तो एक व्यावहारिक आदर्शवादी हूं | अहिंसा का धर्म केवल ऋषियों और संतों के लिए नहीं है | यह साधारण लोगों के लिए भी है | अहिंसा मानवजाति का नियम है, वैसे ही जैसे कि हिंसा पशु का | पशु में आत्मा सुप्त रूप में निवास करती है, इसलिए वह केवल शारीरिक शक्ति के नियम को ही जानता है | मनुष्य की गरिमा एक उच्चतर नियम के पालन की अपेक्षा रखती है – वह नियम है आत्मा की शक्ति | *(यंग, 11-8-1920, पृ. 3)*

मेरे सार्वजनिक जीवन में कई अवसर ऐसे आए हैं जबकि प्रतिकार का सामर्थ्य होते हुए भी मैंने स्वयं को वैसा करने से रोका है और अपने मित्रों को भी ऐसा ही करने की सलाह दी है | मेरा जीवन इसी सिद्धांत को समर्पित है | मैंने दुनिया के सभी महान गुरुओं – जरथुश्त, महावीर, डेनियल, ईशु, मोहम्मद, नानक और अन्य अनेक – के उपदेशों में इसे पाया है | *(यंग, 9-2-1922, पृ. 85)*

मेरे धर्म का पहला नियम अहिंसा है | यही मेरे पंथ का अंतिम नियम भी है | *(यंग, 23-3-1922, पृ. 166)*

मैं अहिंसा के विज्ञान का एक अदना-सा खोजी हूं | इसकी अतल गहराइयों को देखकर मैं भी कभी-कभी उतना ही डगमगा जाता हूं जितना कि मेरे साथी कार्यकर्ता | *(यंग, 20-11-1924, पृ. 382)*

सत्याग्रह का लक्ष्य

मेरा ध्येय अत्यंत संयम के साथ, उदाहरण और उपदेश देते हुए सत्याग्रह के बेजोड़ अस्त्र के प्रयोग की शिक्षा देना है – सत्याग्रह जो अहिंसा तथा सत्य की प्रत्यक्ष परिणति है | मैं यह प्रदर्शित करने के लिए उत्सुक ही नहीं अपितु आतुर हूं कि जीवन की बहुत-सी बुराइयों का इलाज केवल अहिंसा है....

जब मैं बुराई करने के नाकाबिल हो जाऊंगा और मेरे विचारों की दुनिया में कोई कटु या दंभपूर्ण बात क्षणमात्र के लिए भी टिक नहीं सकेगी तब, और सिर्फ तब, मेरी अहिंसा दुनिया भर के लोगों के हृदयों को द्रवित कर देगी | मैंने अपने और अपने पाठकों के सामने कोई अप्राप्य आदर्श या इम्तहान नहीं रखा है | इसे प्राप्त करना मनुष्य का विशेषाधिकार और जन्मसिद्ध अधिकार है |

हमने स्वर्ग को खो दिया है, पर इसे दुबारा अवश्य प्राप्त करेंगे | यदि इसमें समय लगता है तो वह काल के अनंत चक्र में एक मनके के बराबर है | गीता के दिव्य गुरु भगवान कृष्ण ने कहा ही है कि मनुष्य के लाखों दिन ब्रह्मा के एक दिन के बराबर होते हैं | *(यंग, 2-7-1925, पृ. 232)*

अहिंसा मेरा भगवान है और सत्य मेरा भगवान है | जब मैं अहिंसा को खोजता हूं तो सत्य कहता है, 'इसे मेरे माध्यम से ढूंढो' | और जब मैं सत्य को खोजता हूं तो अहिंसा कहती है 'इसे मेरे माध्यम से ढूंढो' | *(यंग, 4-6-1925, पृ. 191)*

मुझे लगता है कि अहिंसा मेरे रोम-रोम में बसी है | अहिंसा और सत्य मेरे दो फेफड़े हैं | इनके बिना मैं जी नहीं सकता | लेकिन मैं प्रतिक्षण अधिकाधिक स्पष्टता के साथ अहिंसा की अतुल शक्ति और मनुष्य की लघुता का कायल होता जाता हूं | एक बनवासी भी अपनी असीम करुणा के बावजूद हिंसा से सर्वथा मुक्त नहीं होता | अपनी हर श्वास के साथ वह थोड़ी-बहुत हिंसा करता ही है |

यह शरीर स्वयं एक बूचड़खाना है, अत: शरीर से मुक्ति में ही मोक्ष और परमानंद निहित हैं | इसीलिए मोक्ष के आनंद के सिवा सभी प्रकार के सुख क्षणिक और अपूर्ण हैं | वस्तुस्थिति यही है कि हमें अपने दैनिक जीवन में हिंसा के अनेक कड़वे घूंट पीने पड़ते हैं | *(यंग, 21-10-1926, पृ. 364)*

अहिंसा की प्रयुक्ति

हमें सत्य और अहिंसा को व्यक्तिगत आचरण की ही नहीं बल्कि समूहों, समुदायों और राष्ट्रों के आचरण की वस्तु बनाना होगा | कम-से-कम मेरा स्वप्न तो यही है | और, मैं इसकी प्राप्ति का प्रयास करते हुए ही जीऊंगा और मरूंगा |

मेरा विश्वास मुझे प्रतिदिन नये सत्यों की खोज करने में सहायक होता है | अहिंसा तो आत्मा का स्वभाव है, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को जीवन के सभी कार्यकलापों में इस पर आचरण करना चाहिए | यदि यह सर्वत्र प्रयोग में न लाई जा सके तो इसका कोई व्यावहारिक मूल्य नहीं है | *(हरि, 2-3-1940, पृ. 23)*

सत्य और अहिंसा में मेरी आस्था बराबर बढ़ती जाती है | और जैसे-जैसे मैं अपने जीवन में इनका अनुसरण करने का प्रयास करता हूं, मेरा विकास होता जाता है | मेरे सामने उनके नये-नये निहितार्थ आते जाते हैं | मैं प्रतिदिन उन्हें एक नए आलोक में देखता हूं और उनमें नये-नये अर्थ पाता हूं | *(हरि, 1-5-1937, पृ. 94)*

मेरा लक्ष्य किसी घुमंतू शूरवीर जैसा नहीं है जो सर्वत्र घूमकर लोगों को उनकी विपत्ति से मुक्ति दिलाता है | मेरा विनम्र कार्य तो लोगों को यह दिखाना है कि वे अपनी कठिनाइयां स्वयं कैसे दूर कर सकते हैं | *(हरि, 28-6-1942, पृ. 201)*

मेरी अपूर्णताएं और असफलताएं भी उसी प्रकार भगवान का वरदान हैं जैसे कि मेरी सफलताएं और मेरी योग्यताएं, और मैं दोनों को उसके चरणों में निवेदित कर देता हूं | मेरे जैसे अपूर्ण व्यक्ति को उसने इतने महान प्रयोग के लिए क्यों चुना ? मेरी समझ में उसने जान-बूझकर ऐसा किया है | उसे लाखों निर्धन, मूक और

अज्ञानियों की सेवा करना अभीष्ट रहा होगा | कोई पूर्णता प्राप्त मनुष्य तो उनको संभवत: निराश ही करता | जब उन्होंने देखा कि उन जैसी कमजोरियों वाला एक व्यक्ति अहिंसा के मार्ग पर अग्रसर है तो उनमें भी अपने सामर्थ्य के प्रति आत्मविश्वास जगा | यदि कोई पूर्णताप्राप्त व्यक्ति नेतृत्व के लिए आया होता तो हम उसे मान्यता न देते और शायद हम उसे गुफावास के लिए खदेड़ देते | हो सकता है कि मेरा अनुसरण करने वाला व्यक्ति मुझसे अधिक पूर्ण सिद्ध हो सके और तुम उसका संदेश ग्रहण कर सको | *(हरि, 21-7-1940, पृ, 211)*

कोई गांधीवादी संप्रदाय नहीं

मैं स्वयं को भारत और मानवता का एक अदना सेवक मानता हूं और इसी प्रकार सेवा करते हुए मर जाना पसंद करूंगा | मुझे कोई संप्रदाय चलाने की कामना नहीं है | मैं सचमुच इतना महत्वाकांक्षी हूं कि मेरा अनुगमन केवल एक संप्रदाय करे, इससे मुझे संतोष नहीं होगा | चूंकि मैं किन्हीं नये सत्यों का प्रतिनिधित्व नहीं करता, मैं (चिरंतन) सत्य का, जैसा कि उसे जानता हूं, अनुगमन और प्रतिनिधित्व करने का प्रयास करता हूं | हां, यह अवश्य है कि मैं अनेक पुराने सत्यों पर नयी रोशनी डालता हूं | *(यंग, 25-8-1921, पृ. 267)*

मैंने कोई नये सिद्धांत प्रस्तुत नहीं किए हैं बल्कि पुराने सिद्धांतों को ही पुन: प्रतिस्थापित करने का प्रयास किया है| *(यंग, 2-12-1926, पृ. 419)*

'गांधीवाद' जैसी कोई चीज़ नहीं है, और मैं अपने बाद कोई संप्रदाय छोड़ कर जाना नहीं चाहता | मैं यह दावा नहीं करता कि मैंने किसी नये सिद्धांत को जन्म दिया है | मैंने तो सनातन सत्यों को अपने दैनंदिन जीवन और समस्याओं के समाधान में अपने ढंग से लागू करने का प्रयास भर किया है....

दुनिया को सिखाने के लिए मेरे पास कोई नयी बात नहीं है | सत्य और अहिंसा उतने ही पुराने हैं जितने पर्वत | मैंने केवल इन दोनों को लेकर बड़े-से-बड़े पैमाने पर प्रयोग करने का प्रयास किया है | ऐसा करते समय मुझसे गलतियां हुई हैं और इन गलतियों से मैंने सबक लिया है | इस प्रकार, जीवन और उसकी समस्याओं ने मेरे लिए सत्य और अहिंसा पर आचरण के अनेक प्रयोगों का रूप ले लिया है |

स्वभाव से मैं सत्यवादी हूं, अहिंसक नहीं | जैसा कि किसी जैन मुनि ने एक बार ठीक ही कहा था, मैं अहिंसा का उतना पक्षधर नहीं हूं जितना कि सत्य का और मैं सत्य को प्रथम स्थान देता हूं और अहिंसा को द्वितीय | क्योंकि, जैसा कि उन मुनि ने कहा, मैं सत्य के लिए अहिंसा की बलि दे सकता हूं | दरअसल, अहिंसा को मैंने सत्य की खोज करते हुए पाया है | *(हरि, 28-3-1936, पृ. 49)*

गांधीवाद क्या है, मैं स्वयं नहीं जानता | मैं अज्ञात समुद्र में अपनी नाव खो रहा हूं | मुझे बार-बार समुद्र की थाह लेनी पड़ती है | *(हरि, 17-12-1938, पृ. 385)*

भला 'गांधीवादी' भी कोई नाम में नाम है ? उसकी बजाय 'अहिंसावादी' क्यों नहीं ? क्योंकि गांधी तो अच्छाई और बुराई, कमजोरी और मजबूती, हिंसा और अहिंसा का मिश्रण है जबकि अहिंसा में कोई मिलावट नहीं है | *(हरि, 13-5-1939, पृ. 121)*

अब मैं तथाकथित 'गांधीवादी' सिद्धांत और उसके प्रचार के उपायों की चर्चा करूंगा | सत्य और अहिंसा का प्रचार पुस्तकों के माध्यम से उतनी अच्छी तरह नहीं किया जा सकता जितना कि उन पर आचरण के द्वारा किया जा सकता है | सच्चाई से जी गई जिंदगी पुस्तकों से ज़्यादा प्रभावकारी होती है | *(वही, पृ. 122)*

मेरे सभी परामर्शों में बचाव का एक वाक्य हमेशा जुड़ा रहता है | वह यह कि जब तक मेरा परामर्श दिलो-दिमाग को सही न लगे, तब तक उसे मानने की जरूरत नहीं है | जिसे सचमुच अपने अंदर की आवाज सुनाई देती है, उसे मेरा परामर्श मानने की खातिर अपने अंदर की आवाज की अवज्ञा नहीं करनी चाहिए | दूसरे शब्दों में, मेरा परामर्श उन्हीं के अनुसरण के लिए है जिन्हें अपने अंदर की आवाज का बोध नहीं है और जिन्हें मेरे अपेक्षाकृत अधिक अनुभव तथा सही निर्णय लेने की क्षमता पर भरोसा है | *(हरि, 15-7-1939, पृ. 197)*

अगर गांधीवाद भ्रांति पर आधारित है तो उसका नष्ट हो जाना ही उचित है | सत्य और अहिंसा कभी नष्ट नहीं होंगे किंतु यदि गांधीवाद किसी पंथ-संप्रदाय का पर्याय है तो उसका नष्ट हो जाना ही उचित है | यदि मुझे अपनी मृत्यु के बाद पता चले कि मैं जिन आदर्शों के लिए जिया, उनका कोई पंथ-संप्रदाय बन गया है तो मुझे गहरी वेदना होगी.... |

कोई यह न कहे कि वह गांधी का अनुगामी है | अपना अनुगमन मैं स्वयं करूं, यही काफ़ी है | मुझे पता है, मैं अपना कितना अपूर्ण अनुगामी हूं, क्योंकि मैं अपनी आस्थाओं के अनुरूप जी नहीं पाता | आप मेरे अनुगामी नहीं हैं बल्कि सहपाठी हैं, सहयात्री हैं, सहखोजी हैं और सहकर्मी हैं | *(हरि, 2-3-1940, पृ. 23)*

अगर कोई गांधीवादी हो तो वह मुझे होना चाहिए | लेकिन मुझे आशा है कि मैं ऐसा कोई दावा करने का दंभ नहीं करूंगा | गांधीवादी का अर्थ है गांधी की पूजा करने वाला | पूजा तो ईश्वर की की जाती है | मैंने ईश्वरत्व का दावा करने का दंभ कभी नहीं किया, अत: कोई मेरा भक्त नहीं कहला सकता | *(हरि, 2-11-1947, पृ. 389)*

पीड़ा का नियम

मैंने भारत के सामने आत्मत्याग के प्राचीन नियम को प्रस्तुत करने का जोखिम उठाया है | वस्तुत: सत्याग्रह और उसकी शाखा-प्रशाखा-असहयोग और सविनय प्रतिकार, और कुछ नहीं हैं, सिवाय आत्मतप एवं कष्ट सहन के नियमों के नये नामों के |

वे ऋषि न्यूटन से भी अधिक प्रतिभाशाली थे जिन्होंने हिंसा के बीच रहते हुए अहिंसा के नियम की खोज की | वे वेलिंग्टन से भी बड़े योद्धा थे कि अस्त्रों के प्रयोग के ज्ञाता होने पर भी जिन्होंने उनकी व्यर्थता को पहचाना और परेशान दुनिया को सिखाया कि उसकी मुक्ति हिंसा में नहीं अपितु अहिंसा में निहित है |

अपनी गत्यात्मक स्थिति में, अहिंसा का अर्थ है विवेकपूर्वक कष्ट-सहन | इसका अर्थ अत्याचारी की इच्छा के समक्ष कायर समर्पण नहीं है, बल्कि इसका अर्थ है अत्याचारी की इच्छा के विरुद्ध अपनी पूरी आत्मिक शक्ति से उठ खड़े होना | इस नियम पर चलते हुए कोई आदमी अकेला ही अपने सम्मान, अपने धर्म और अपनी आत्मा की रक्षा के लिए किसी अन्यायी साम्राज्य की समूची शक्ति को चुनौती दे सकता है और उस साम्राज्य के पतन अथवा नवजीवन की नींव रख सकता है |

भारत की भूमिका

अत: मैं भारत से अहिंसा के मार्ग पर चलने का अनुरोध इसलिए नहीं कर रहा कि वह कमजोर है | मैं चाहता हूं कि वह अपने बल और अपनी शक्ति के प्रति सचेत रहते हुए अहिंसा का आचरण करे | भारत को अपने बल को पहचानने के लिए हथियारों के प्रशिक्षण की जरूरत नहीं है | हमें इसकी जरूरत इसलिए महसूस होती है कि हम अपने को केवल हाड़-मांस का ढेर समझते हैं |

मैं चाहता हूं कि भारत को इसका बोध हो कि उसकी एक आत्मा है जो अविनाशी है और जो प्रत्येक भौतिक दुर्बलता से ऊपर उठकर विजयी हो सकती है और समस्त संसार के भौतिक बल को चुनौती दे सकती है | *(यंग, 11-8-1920, पृ. 3-4)*

यदि मैं अहंकाररहित भावना से और विनम्रतापूर्वक कहूं तो मेरा संदेश और मेरे तरीके तत्वत: सारी दुनिया के लिए हैं और मुझे यह देखकर परम संतोष होता है कि विशाल और निरंतर वर्धमान संख्या में पश्चिम के स्त्री और पुरुषों के हृदयों को इन्होंने आश्चर्यजनक ढंग से प्रभावित किया है | *(यंग, 17-9-1925, पृ. 320)*

विश्वबंधुत्व

मेरा जीवन-लक्ष्य केवल भारतवासियों में बंधुत्व की स्थापना करना नहीं है | मेरा लक्ष्य केवल भारत की आज़ादी नहीं है, यद्यपि इसमें संदेह नहीं कि आज मेरा लगभग संपूर्ण जीवन और पूरा समय इसी में लगा है | किंतु, भारत की आज़ादी के जरिए, मैं विश्वबंधुत्व के लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता हूं |

मेरी देशभक्ति कोई व्यावर्तक वस्तु नहीं है | यह सर्वसमावेशी है और मैं उस देशभक्ति को त्याग दूंगा जो अन्य राष्ट्रों को व्यथित अथवा शोषित करके अपनी प्रबलता सिद्ध करने का प्रयास करे | देशभक्ति के मेरे विचार की यदि निरपवाद रूप से समस्त मानवता के अधिकाधिक कल्याण के साथ संगति न हो तो वह बेकार है |

यही नहीं, मेरा धर्म और धर्म से व्युत्पन्न मेरी देशभक्ति समस्त जीवन को परिव्याप्त करती है | मैं केवल मानवों के साथ ही तादात्म्य अथवा बंधुत्व स्थापित करना नहीं चाहता, अपितु पृथ्वी पर रेंगने वाले कीड़े-मकोड़ों के साथ भी तादात्म्य अथवा बंधुत्व स्थापित करना चाहता हूं.... क्योंकि हम यह मानते हैं कि हम सब उसी ईश्वर की संतान हैं और इसलिए, जीवन जिस रूप में भी दिखाई देता है, तत्वत: एक ही होना चाहिए | *(यंग, 4-4-1929, पृ. 107)*

मुझे अपने जीवन-लक्ष्य में इतनी गहरी आस्था है कि यदि उसकी प्राप्ति में सफलता मिलती है – और मिलना अवश्यंभावी है – तो इतिहास में यह बात दर्ज होगी कि यह आंदोलन विश्व के सभी लोगों को एक सूत्र में पिरोने के लिए था जो एक-दूसरे के विरोधी नहीं बल्कि एक समष्टि के अंग होंगे | *(हरि, 26-1-1934, पृ. 8)*

अहिंसक मार्ग

मेरी महत्वाकांक्षा सीमित है | ईश्वर ने मुझे सारी दुनिया को अहिंसा के मार्ग पर ले जाने की शक्ति प्रदान नहीं की है | लेकिन मेरी कल्पना है कि उसने भारत की अनेक बुराइयों के समाधान के लिए उसे अहिंसा का मार्ग दिखाने के वास्ते मुझे अपने साधन के रूप में चुन लिया है | इस दिशा में अब तक की प्रगति बड़ी भारी है | पर अभी बहुत कुछ करना बाकी है | *(हरि, 23-7-1938, पृ. 193)*

छल-कपट और असत्य आज दुनिया के सामने सीना ताने खड़े हैं | मैं ऐसी स्थिति का विवश साक्षी नहीं बन सकता.... यदि आज मैं चुपचाप और निष्क्रिय बन कर बैठ जाऊं तो ईश्वर मुझे इस बात के लिए दंडित करेगा कि मैंने समूची दुनिया को अपनी चपेट में ले रही इस आग को बुझाने के लिए उसके द्वारा प्रदत्त सामर्थ्य का इस्तेमाल क्यों नहीं किया | *(बांक्रा, 9-8-1942)*

मैं दूसरों पर अपने निजी विश्वास आरोपित नहीं कर सकता, किसी राष्ट्रीय संगठन पर तो कभी नहीं | मैं तो केवल राष्ट्र को उसकी सुंदरता और उपादेयता का भरोसा दिलाने का प्रयास कर सकता हूं....

यह अनर्थकारी होगा यदि मैं अपनी जिद से देश को अन्य साधनों के जरिए प्रगति न करने दूं, जब तक कि ये साधन निश्चित रूप से शरारतपूर्ण और हानिकर ही न हों | उदाहरण के लिए, मुझे वास्तविक हिंसा का विरोध करना चाहिए भले ही विरोध करने वाला मैं अकेला व्यक्ति होऊं | लेकिन मैंने यह स्वीकार किया है कि राष्ट्र को, यदि वह चाहे तो, इस बात का अधिकार है कि वह वास्तविक हिंसा का इस्तेमाल करके भी अपनी आज़ादी हासिल कर ले | सिर्फ यह होगा कि तब भारत मेरे जन्म की भूमि होने के बावजूद मेरे प्रेम की भूमि नहीं रह जाएगा, उसी प्रकार जैसे मेरी मां पथभ्रष्ट हो जाए तो मुझे उसका गौरव नहीं रहेगा | *(यंग, 20-11-1924, पृ.382)*

मुझमें सार्वभौम अहिंसा का प्रचार करने की क्षमता नहीं है | इसलिए मैं अपनी आज़ादी हासिल करने के सीमित लक्ष्य के लिए अहिंसा के इस्तेमाल का प्रचार करता हूं और इसीलिए शायद अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का अहिंसक उपायों से नियमन करने का प्रचार करता हूं | सार्वभौम अहिंसा का प्रचार करने से पहले मुझे वासनाओं से पूरी तरह मुक्त हो जाना आवश्यक है और ऐसी स्थिति को भी हासिल करना आवश्यक है जिसमें मुझसे कभी कोई पाप न हो | *(हरि, 25-1-1942, पृ. 15)*

मेरा उपदेश और सीख भावनात्मक या अव्यावहारिक नहीं हैं | मैं वही सीख देता हूं जो प्राचीन काल से चली आ रही है और जो उपदेश देता हूं, उस पर स्वयं आचरण करने का प्रयास करता हूं | और मेरा दावा है कि मेरे समान

आचरण सभी कर सकते हैं क्योंकि मैं एक अत्यंत साधारण देहधारी हूं और उन सभी प्रलोभनों और दुर्बलताओं का शिकार हो सकता हूं जिनका कि हममें से घटिया-से-घटिया आदमी हो सकता है | *(यंग, 15-12-1927, पृ. 424)*

मैं सार्वभौम अहिंसा की बात तो करता हूं, पर मेरा प्रयोग भारत तक सीमित है | अगर मैं कामयाब हो जाता हूं तो पूरी दुनिया इसे सहज ही स्वीकार कर लेगी | लेकिन यह 'अगर' बहुत बड़ी है | विलंब की चिंता मैं नहीं करता | अभेद्य अंधकार में मेरा विश्वास सर्वाधिक प्रकाशमान रहता है | *(हरि, 11-2-1939, पृ. 8)*

पता नहीं क्यों, मुझे यूरोप और अमरीका जाने में भय लगता है | इसलिए नहीं कि मुझे अपने देशवासियों की अपेक्षा उनका अविश्वास अधिक है, पर इसलिए कि मुझे स्वयं पर विश्वास नहीं है | मुझे स्वास्थ्य सुधारने अथवा देशभ्रमण के लिए पश्चिम की यात्रा करने की कोई कामना नहीं है | मुझे सार्वजनिक भाषण देने की भी कामना नहीं है | मुझे महिमामंडित किया जाए, इसे मैं कतई पसंद नहीं करता | मेरे ख्याल से मुझमें सार्वजनिक भाषण देने और सार्वजनिक प्रदर्शनों में भाग लेने के भीषण तनावों को झेलने लायक शारीरिक क्षमता अब शायद ही फिर से आ पाये |

यदि ईश्वर कभी मुझे पश्चिम की यात्रा पर भेजे तो मैं वहां की जनता के हृदयों में पैठने, युवावर्ग से शांतिपूर्वक बातचीत करने और अपने सदृश लोगों से – वे लोग जो सत्य के अलावा बाकी किसी भी कीमत पर शांति चाहते हैं – मिलने का सौभाग्य प्राप्त करने के लिए जाना चाहूंगा |

लेकिन मैं अनुभव करता हूं कि अभी मेरे पास पश्चिम को व्यक्तिगत रूप से देने के लिए कोई संदेश नहीं है | मेरा विश्वास है कि मेरा संदेश सार्वभौम है, पर मैं अभी यह अनुभव करता हूं कि मैं अपने ही देश में काम करके इसे ज़्यादा अच्छी तरह पहुंचा सकता हूं | यदि मैं भारत में प्रत्यक्ष सफलता प्रदर्शित कर सकूं तो मेरा संदेश पूरी तरह लोगों तक पहुंच जाएगा |

यदि मैं इस नतीजे पर पहुंचता हूं कि भारत के लिए मेरे संदेश का कोई उपयोग नहीं है तो उसके प्रति आस्था होने पर भी मुझे अन्य श्रोताओं तक उसे पहुंचाने के लिए कहीं बाहर जाने की फिक्र नहीं करनी चाहिए | अगर मैं बाहर जाऊं तो मुझे पहले इस बात का विश्वास होना चाहिए, चाहे सबकी तसल्ली के लायक मैं उसका प्रमाण न दे सकूं, कि मेरा संदेश भारत में ग्रहण किया जा रहा है, भले ही उसकी गति बिलकुल धीमी हो | *(म, II, पृ. 417)*

जब मैं ऐसा हो जाऊंगा कि मुझसे बुराई हो ही नहीं और मेरे विचारों की दुनिया में कोई कटु या दंभपूर्ण बात क्षणमात्र के लिए भी टिके नहीं, तब, और सिर्फ तब, मेरी अहिंसा दुनिया भर के लोगों के हृदयों को द्रवित कर देगी | *(यंग, 2-7-1925, पृ. 232)*

मेरे जैसे लाखों लोग अपने जीवनकाल में सत्य का प्रमाण देने में असफल रह सकते हैं, लेकिन वह असफलता उनकी होगी, (सत्य के) सनातन नियम की कभी नहीं | *(म, VIII, पृ. 23)*

5. अंत:करण की आवाज़

जीवन में ऐसे क्षण आते हैं जब कुछ चीज़ों के लिए हमें बाह्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती | हमारे अंदर से एक हल्की-सी आवाज़ हमें बताती है, 'तुम सही रास्ते पर हो, दाएं-बाएं मुड़ने की ज़रूरत नहीं है, सीधे और संकरे रास्ते पर आगे बढ़ते जाओ |' *(ली, 25-12-1916)*

तुम्हारे जीवन में ऐसे क्षण आएंगे जब तुम्हें कदम उठाना होगा, चाहे तुम अपने घनिष्ट-से-घनिष्ट मित्रों को भी अपना साथ देने के लिए सहमत न कर सको | जब कर्तव्यविमूढ़ हो जाओ तो सदैव 'अंत:करण की आवाज़' को ही अपना अंतिम निर्णायक मानो | *(यंग, 4-8-1920, पृ. 3)*

आत्मशुद्धि का अनवरत प्रयास करते-करते मैंने 'अंत:करण की आवाज़' को सही-सही और स्पष्ट रूप से सुन पाने की किंचित क्षमता अर्जित कर ली है | *(एफा, पृ. 34)*

जिस क्षण मैं अंत:करण की छोटी-सी आवाज़ को अवरुद्ध कर दूंगा, मेरी उपयोगिता ही समाप्त हो जाएगी | *(यंग, 3-12-1925, पृ. 422)*

मेरे प्रायश्चित्त कोई यांत्रिक क्रियाएं नहीं हैं | ये अंत:करण की आवाज़ के आदेश पर किए जाते हैं | *(यंग, 2-4-1931, पृ. 60)*

झूठा दावा नहीं

यदि कोई व्यक्ति दैवी प्रेरणा या अंत:करण की आवाज़ के अभाव में भी उसका अनुगमन करने का दावा करे तो उसका हश्र उससे भी बुरा होगा जो किसी लौकिक सम्राट के प्राधिकार के अनुसार काम करने का झूठा दावा करता है | लौकिक सम्राट के झूठे अनुगामी को तो भंडा फूटने पर केवल शारीरिक दंड मिलेगा, लेकिन अंत:करण की आवाज़ सुनने का झूठा दावा करने वाला शरीर और आत्मा, दोनों का विनाश कर बैठेगा |

उदार आलोचक मुझे कपटी तो नहीं मानते, लेकिन उनका ख्याल है कि मैं संभवत: किसी विभ्रम का शिकार होकर काम करता हूं | यदि यह सही हो तो इसका नतीजा भी उससे कोई ज़्यादा भिन्न नहीं होगा जैसा कि झूठे दावेदार का होगा | मेरे जैसे साधारण खोजी को अत्यंत सावधान रहने की आवश्यकता है और अपना मानसिक संतुलन बनाए रखने के लिए, उसे अपनी हस्ती को पूरी तरह मिटा देना होगा, तभी ईश्वर उसका पथप्रदर्शन करेगा | मैं इस विषय की और अधिक चर्चा नहीं करूंगा |

मेरे विभ्रमग्रस्त होने का कोई प्रश्न ही नहीं है | मैंने एक सीधा-सादा वैज्ञानिक सत्य प्रस्तुत किया है जिसे वे सभी लोग जांच-परख सकते हैं जिनमें इसके लिए अपेक्षित योग्यताओं को अर्जित करने की इच्छा और धैर्य हो | स्वयं

इन योग्यताओं को समझना और अर्जित करना बेहद आसान है बशर्ते कि व्यक्ति में दृढ़ इच्छा हो | *(बांक्रा, 18-11-1932)*

तुम्हें किसी और पर नहीं, अपने पर विश्वास करने की आवश्यकता है | तुम्हें अंत:करण की आवाज़ को सुनने का प्रयास करना होगा | तुम इसे 'अंत:करण की आवाज़' न कहना चाहो तो 'तर्क-बुद्धि का निर्देश' कह सकते हो, पर उसका तुम्हें पालन करना चाहिए, और यदि तुम ईश्वर का नाम नहीं लोगे तो निस्संदेह किसी और का लोगे जो अंतत: ईश्वर ही साबित होगा, क्योंकि इस ब्रह्मांड में ईश्वर के अलावा और कुछ है ही नहीं |

मैं यह भी निवेदन करना चाहूंगा कि अंत:करण की आवाज़ की प्रेरणा पर कार्य करने का दावा करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को वह प्रेरणा नहीं होती | हर क्षमता की तरह अंतर्वाणी को सुनने की क्षमता भी पूर्व प्रयास और प्रशिक्षण से विकसित होती है | किसी अन्य क्षमता के विकास के लिए जितना प्रयास और प्रशिक्षण अपेक्षित है, उससे कहीं ज्यादा अंत:करण की आवाज़ को सुनने की क्षमता विकसित करने के लिए आत्मप्रशिक्षण चाहिए | अगर हजारों दावेदारों में से कुछ थोड़े-से लोग भी अपना दावा सिद्ध करने में सफल हो पाएं तो संदेहास्पद दावेदारों को बर्दाश्त करने का खतरा उठाने में कोई हर्ज नहीं है | *(म, III, पृ. 229)*

मेरी जानकारी में किसी ने इस संभावना से इंकार नहीं किया है कि कुछ लोगों को 'अंत:करण की आवाज़' सुनाई देती है और अगर एक आदमी का भी दावा सच्चा हो कि वह अंत:करण की आवाज़ के आदेश पर अपनी बात कहता है तो इससे दुनिया का फायदा है | दावा बहुत-से लोग कर सकते हैं, पर वे उसकी सच्चाई का प्रमाण नहीं दे पाएंगे | लेकिन झूठे दावेदारों को रोकने की खातिर सच्चे दावेदारों का दमन नहीं किया जा सकता | और किया भी नहीं जाना चाहिए |

अगर ऐसे बहुत-से लोग हों जो अंत:करण की आवाज़ का ईमानदारी से प्रतिनिधित्व कर सकें तो कोई हानि नहीं | पर दुर्भाग्य से, ढोंग का कोई इलाज नहीं है | सद्‌गुण का दमन नहीं करना चाहिए, भले ही अनेक लोग उसका ढोंग करें | दुनिया में हमेशा ऐसे लोग होते आए हैं जो अंत:करण की आवाज़ के प्रतिनिधित्व का दावा करते हैं | लेकिन उनके अल्पजीवी कार्यकलाप से अभी तक दुनिया का कोई अनर्थ नहीं हुआ है |

'अंत:करण की आवाज़' को सुनने की क्षमता का विकास करने के लिए मनुष्य को बड़ी लंबी और काफ़ी कठिन साधना करनी पड़ती है और 'अंत:करण की आवाज़' जब बोलने लगती है तो वह अमोघ होती है | दुनिया को आप सदा के लिए मूर्ख बनाने में कामयाब नहीं हो सकते | इसलिए अगर मेरे जैसे अदना आदमी का दमन न किया जा सके और वह इस विश्वास के आधार पर कि उसने अंत:करण की आवाज़ सुन ली है, उसके आदेश को मुखर करने का दावा करे तो संसार में अराजकता फैलने का कोई खतरा नहीं है | *(हरि, 18-3-1933, पृ. 8)*

मेरा दावा कि मैं ईश्वर की आवाज़ को सुन सकता हूं, कोई नया दावा नहीं है | दुर्भाग्य से, अपने कामों के परिणामों के अलावा कोई और तरीका मुझे इस दावे को प्रमाणित करने का ज्ञात नहीं है | ईश्वर अपने बंदों को इस बात की अनुमति दे दे कि वे उसे प्रमाण का पात्र बना सकें तो फिर वह ईश्वर ही क्या ? लेकिन यह अवश्य है कि वह अपने सेवक को बड़ी-से-बड़ी अग्निपरीक्षा में खरा उतरने की शक्ति देता है |

मैं गत आधी शताब्दी से भी अधिक समय से इस अत्यंत कठोर स्वामी का तत्पर सेवक बना हुआ हूं | जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, उसकी आवाज़ मुझे अधिकाधिक स्पष्ट सुनाई देती जाती है | उसने घोर विपत्ति में भी मेरा साथ नहीं छोड़ा है | उसने प्राय: स्वयं मुझसे मेरी रक्षा की है और स्वाधीनता का लेश भी मेरे पास नहीं छोड़ा है | मैं जितना ही अधिक उसके प्रति समर्पित होता हूं, उतना ही अधिक आनंद पाता हूं | *(हरि, 6-5-1933, पृ. 4)*

ईश्वरीय वाणी

मेरे लिए ईश्वर की, अंत:करण की अथवा सत्य की वाणी, 'अंत:करण की आवाज़' या 'हल्की-सी-भीतरी आवाज़' सब एक ही चीज़ है | मुझे ईश्वर के कभी प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हुए | मैंने इसके लिए कभी प्रयास भी नहीं किया – मैंने ईश्वर को सदा निराकार माना है | लेकिन मैंने जो सुनी वह वाणी कहीं दूर से आ रही थी, पर फिर भी काफ़ी नज़दीक लगती थी | उसे सुनने में मुझसे कोई चूक नहीं हुई है, वह इतनी स्पष्ट थी जैसे कोई आदमी मुझसे बात कर रहा हो | उस आवाज़ में एक अदम्य आकर्षण था | जिस समय मैंने वह आवाज़ सुनी, मैं स्वप्न नहीं देख रहा था | उस आवाज़ को सुनने से पहले मेरे अंदर घोर संघर्ष छिड़ा था | अचानक मुझे वह आवाज़ सुनाई दी | मैंने उसे सुना, जब निश्चिंत हो गया कि यह आवाज़ उसी की है तो अंदर का संघर्ष समाप्त हो गया | मैं शांत हो गया | तद्नुसार संकल्प कर लिया, उपवास की तारीख और समय निश्चित हो गए....

क्या मैं इसका कोई प्रमाण दे सकता हूं कि जो आवाज़ मैंने सुनी थी, वह सचमुच ईश्वरीय वाणी ही थी, मेरी अपनी उत्तेजित कल्पना की प्रतिध्वनी नहीं थी ? संदेहालुओं को आश्वस्त करने के लिए मेरे पास कोई और प्रमाण नहीं है | वह यह कहने के लिए स्वतंत्र हैं कि यह मेरी अपनी भ्रांति अथवा विभ्रम है | हो भी सकता है | मेरे पास इस विचार को खंडित करने के लिए भी कोई तर्क नहीं है | लेकिन मैं एक बात कहना चाहूंगा कि अगर सारी दुनिया भी एक स्वर से इसे झूठ कहे तो भी मेरा यह विश्वास अडिग रहेगा कि मैंने जो आवाज़ सुनी थी, वह ईश्वरीय वाणी ही थी |

लेकिन कुछ लोगों का मानना है कि ईश्वर स्वयं हमारी कल्पना की सृष्टि है | अगर यह दृष्टिकोण ठीक है तो कुछ भी वास्तविक नहीं है, सब कुछ हमारी कल्पना की सृष्टि ही है | तब भी, जब तक मेरी कल्पना मुझ पर हावी है, मैं उसी के सम्मोहन में बंधकर काम कर सकता हूं | वास्तविक-से-वास्तविक चीज़ें भी सापेक्ष रूप से ही वास्तविक होती हैं | मेरे लिए यह ईश्वरीय वाणी मेरे अपने अस्तित्व से भी अधिक वास्तविक थी | उसने कभी मुझे धोखा नहीं

दिया है, किसी को नहीं देती | और जो चाहे, उस आवाज़ को सुन सकता है | वह सबके भीतर मौजूद है | लेकिन अन्य सभी चीज़ों की तरह उसके लिए भी पहले निश्चित तैयारी की जरूरत है | *(हरि, 8-7-1933, पृ. 4)*

सही या गलत, मैं जानता हूं कि सत्याग्रही के रूप में हर संभव कठिनाई में मेरे पास ईश्वर की सहायता के अलावा और कोई साधन नहीं है | और मैं चाहूंगा कि लोग यह विश्वास करें कि मेरे दुर्बोध लगने वाले काम मैंने वस्तुत: अपने अंदर की आवाज़ के आदेश पर किए हैं |

यह मेरी उत्तेजित कल्पना की उपज भी हो सकती है | अगर ऐसा है तो मैं उस कल्पना की कद्र करता हूं जिसने पचपन से भी अधिक वर्षों तक मेरे जीवन के उतार-चढ़ावों में मेरा साथ दिया है; पचपन वर्ष इसलिए कहता हूं कि मैंने पंद्रह वर्ष का होने से पहले ही सचेतन रूप से ईश्वर पर भरोसा करना सीख लिया था | *(हरि, 11-3-1939, पृ. 46)*

6. मेरे उपवास

मेरा धर्म मुझे सिखाता है कि जब-जब आप ऐसे कष्ट में हों जिसका निवारण न कर सकें तो उपवास और प्रार्थना करें | *(यंग, 25-9-1924, पृ. 319)*

ये (उपवास) मेरे अस्तित्व का अंग हैं | मिसाल के तौर पर, मेरे लिए जितनी जरूरी मेरी आंखें हैं, उतने ही जरूरी उपवास भी हैं | बाह्य जगत के लिए जो महत्व आंखों का है, अंत:करण के लिए वही महत्व उपवासों का है | *(यंग, 3-12-1925, पृ. 422)*

ऊपरी आदेश

इन उपवासों का उत्तरदायित्व मेरा नहीं है | मैं इन्हें अपने मनोरंजन के लिए नहीं करता | मैं ख्याति अर्जित करने के लिए अपने शरीर को कष्ट नहीं दूंगा | यद्यपि मैं भूख की तड़प और उपवास के अन्य कष्टों को सहर्ष सहन करता हूं, पर कोई यह न समझे कि मुझे कष्ट नहीं होता | मैं इन उपवासों को इसीलिए सहन कर पाता हूं कि इन्हें कोई उच्चतर शक्ति मुझ पर आरोपित करती है और वही मुझे इनके कष्टों को सहने की क्षमता भी देती है | *(हरि, 24-8-1934, पृ. 223)*

मैं इन उपवासों को किसी के आदेश पर शुरू नहीं करता | आमरण उपवास कोई हल्की-फुल्की चीज़ नहीं है | वे पूर्णत: अवांछनीय भी माने जा सकते हैं | इन्हें क्रोध में आकर नहीं किया जा सकता | क्रोध तो अल्पजीवी पागलपन है | इसलिए, मुझे उपवास तभी करना चाहिए जब मेरी अंत:करण की आवाज़ मुझे इसका आदेश दे| *(हरि, 15-6-1947, पृ. 194)*

उपवास और प्रार्थना

सच्चा उपवास शरीर, मन और आत्मा - तीनों की शुद्धि करता है | यह देह को यंत्रणा देता है और उसी सीमा तक आत्मा को स्वतंत्र करता है | इसमें सच्चे हृदय से की गई प्रार्थना आश्चर्यजनक परिणाम उत्पन्न कर सकती है | यह आत्मा की और अधिक शुद्धि के लिए की जाने वाली आर्त पुकार ही तो है | इस प्रकार प्राप्त की गई शुद्धि जब किसी शुभ उद्देश्य के लिए प्रयुक्त होती है तब वह प्रार्थना बन जाती है | *(यंग, 24-3-1920, पृ. 1)*

मेरा मानना है कि उपवास के बिना प्रार्थना नहीं हो सकती और प्रार्थना के बिना सच्चा उपवास नहीं हो सकता| *(हरि, 16-2-1933, पृ. 2)*

पूर्ण उपवास पूर्ण और सच्चा आत्मत्याग है | यह सर्वोत्तम प्रार्थना है | 'मेरा जीवन ले लो, यह सदा तेरे और केवल तेरे लिए है' की पुकार मुख से निकलने वाली निरर्थक या प्रतीकात्मक बात नहीं होनी चाहिए | यह बिना किसी हिचकिचाहट के अपने आपको बेफिक्र होकर सहर्ष समर्पित कर देने की भावना से युक्त होनी आवश्यक है |

भोजन और यहां तक कि जल का त्याग भी केवल उसकी शुरुआत है, यह तो समर्पण का सबसे कम महत्वपूर्ण पक्ष है | *(हरि, 15-4-1933, पृ. 4)*

देह का वशीकरण

जब तक भगवत्कृपा का परिणाम न हो तब तक उपवास, और ज़्यादा बुरा नहीं तो, व्यर्थ भूखों मरना है | *(हरि, 11-4-1939, पृ. 46)*

मैं जानता हूं कि मन की वृत्ति ही सब कुछ है | जिस प्रकार प्रार्थना चिड़िया की चटर-चटर के समान केवल यांत्रिक भी हो सकती है, उसी प्रकार उपवास भी मात्र देह की यंत्रणा का रूप ले सकता है.... न ऐसी प्रार्थना अंतरात्मा का स्पर्श करेगी, न ऐसा उपवास | *(यंग, 16-2-1922, पृ. 103)*

मेरा पक्का विश्वास है कि ज्यों-ज्यों देह आपके वशीभूत होती जाती है, त्यों-त्यों आत्मा की शक्ति बढ़ती जाती है| *(यंग, 23-10-1924, पृ. 354)*

जब मनुष्य की देह उसके विरुद्ध विद्रोह करने लगे तो उसका दमन करना आवश्यक हो जाता है; देह वश में आ जाए और सेवा के साधन के रूप में इस्तेमाल की जा सके तो फिर उसका दमन करना पाप है | दूसरे शब्दों में, देह का दमन अपने आप में कोई अच्छी बात नहीं है | *(हरि, 2-11-1935, पृ. 299)*

देहावेगों के तुष्टीकरण का त्याग करना कुछ मायने रखता है | जब तक दैहिक आवेगों की बलि नहीं दी जाती, ईश्वर का साक्षात्कार नहीं किया जा सकता | भगवान के मंदिर के रूप में देह की देखभाल एक बात है और दैहिक आवेगों की अनदेखी करना दूसरी बात है | *(हरि, 10-12-1938, पृ. 373)*

अपने और अपने सनकी साथियों के पूर्ण अनुभव के बल पर मैं बिना हिचक कहता हूं कि उपवास करना तब ठीक है जब आपको (1) कब्ज हो, (2) खून की कमी हो, (3) ज्वर हो, (4) अपच हो, (5) सिरदर्द हो, (6) वायुविकार हो, (7) संधिवात हो, (8) खीज और गुस्सा आ रहा हो, (9) विषाद हो, या (10) हर्षातिरेक हो | यदि आप ऐसा करेंगे तो न डाक्टरी नुस्खों की जरूरत पड़ेगी, न पेटेंट दवाइयों की | *(यंग, 17-12-1925, पृ. 442)*

पीड़क उपवास

उपवास केवल उसके विरुद्ध किए जा सकते हैं जिससे आपको प्रेम हो | उपवास का उद्देश्य प्रेमी से कोई अधिकार हथियाना नहीं बल्कि उसका सुधार करना होना चाहिए; मिसाल के तौर पर, पुत्र अपने पिता की शराब की लत छुड़वाने के लिए उपवास कर सकता है | बंबई और उसके पश्चात बारदोली के मेरे उपवास इसी तरह के थे | मैंने उनके सुधार के लिए उपवास किए थे जो मुझसे प्रेम करते थे | लेकिन मैं जनरल डायर को सुधारने के लिए उपवास नहीं करूंगा जो मुझे प्रेम नहीं करता बल्कि अपना शत्रु मानता है | *(यंग, 1-5-1924, पृ. 145)*

इससे इंकार नहीं किया जा सकता कि उपवास सचमुच पीड़क अर्थात दबाव डालने वाला हो सकता है | ऐसे उपवास किसी स्वार्थ की पूर्ति के लिए किए जाते हैं | किसी मनुष्य से पैसा ऐंठने या ऐसे ही किसी व्यक्तिगत प्रयोजन से किया गया उपवास प्रपीड़क या अनुचित दबाव डालने वाला माना जाएगा | मैं ऐसे अनुचित दबाव का प्रतिरोध करने की निस्संकोच हिमायत करता हूं |

मैंने स्वयं अपने विरुद्ध या मुझे धमकाने के लिए किए गए उपवासों का सफलतापूर्वक प्रतिरोध किया है | और यदि यह तर्क दिया जाए कि स्वार्थ और निस्स्वार्थ भाव में तो बड़ा सूक्ष्म अंतर है तो मेरा कहना है कि यदि कोई व्यक्ति यह समझता है कि उसके विरुद्ध किए जा रहे उपवास का उद्देश्य स्वार्थपूर्ति या कोई और घटिया बात है तो उसे इसका दृढ़तापूर्वक प्रतिरोध करना चाहिए, भले ही इससे उपवास करने वाले व्यक्ति का प्राणांत हो जाए | यदि लोग गलत उद्देश्यों के लिए किए जाने वाले उपवासों की उपेक्षा करने लगें तो उपवासों से प्रपीड़न और अनुचित प्रयोग का दोष दूर हो जाएगा |

अन्य सभी मानव संस्थाओं की तरह, उपवास भी उचित और अनुचित, दोनों प्रकार का हो सकता है | लेकिन सत्याग्रह के साधनों में उपवास एक बड़ा महत्वपूर्ण अस्त्र है और इसके संभावित दुरुपयोग के कारण इसे त्याग देना संभव नहीं है | *(हरि, 9-9-1933, पृ. 5)*

मैं जानता हूं कि उपवास के अस्त्र को साधना कोई साधारण बात नहीं है | यदि उपवास करने वाला व्यक्ति इसकी कला में कुशल न हो तो उपवास में सहज ही हिंसा का पुट आ सकता है | मेरा मानना है कि मैं उपवास की कला में कुशल हूं | *(हरि, 11-3-1939, पृ. 46)*

7. मेरी असंगतियां

मैं जिन पुरानी बातों या व्यवहारों को समझ नहीं सकता या नैतिक आधार पर इन्हें सही नहीं ठहरा सकता, उन्हें आंख मूंदकर मानने से इंकार करता हूं | *(यंग, 21-7-1921, पृ. 228)*

मैं यह मानता हूं कि मुझमें अनेक असंगतियां हैं | लेकिन चूंकि लोग मुझे 'महात्मा' कहते हैं इसलिए मैं इमर्सन की उक्ति को साधिकार दुहराते हुए कह सकता हूं कि 'मूर्खतापूर्ण सुसंगति छोटे दिमागों का हौवा है' | मेरा ख्याल है कि मेरी असंगतियों में भी एक पद्धति है | मेरे विचार में, मेरी जो बातें असंगतिपूर्ण दिखाई देती हैं उनमें भी सुसंगति का एक सूत्र विद्यमान रहता है, उसी प्रकार जैसे कि वैविध्य का दर्शन होने के बावजूद प्रकृति में एकत्व है | *(यंग, 13-2-1930, पृ. 52)*

मुझे भली प्रकार समझने वाले मित्रों का कहना है कि मैं जितना संयत विचारों वाला हूं, उतना ही अतिवादी भी हूं और जितना परंपरानिष्ठ हूं, उतना ही आमूलपरिवर्तनवादी भी | संभवत: इसीलिए मुझे परस्पर विरोधी विचारधाराओं के लोगों की मित्रता का सौभाग्य प्राप्त है | मैं समझता हूं कि मेरी प्रकृति में यह जो मिश्रण है, वह अहिंसा के प्रति मेरे दृष्टिकोण का परिणाम है |

मेरी असंगति केवल आभास के रूप में ही है | भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में मेरी अनुक्रिया देखकर ही मेरे मित्रों को मेरी असंगतियों का आभास होता है | सच पूछा जाए तो प्रतीयमान सुसंगति तो विशुद्ध हठधर्मिता भी हो सकती है| *(यंग, 16-4-1931, पृ. 77)*

सुसंगति की जड़पूजा

मैं इस बात की कतई परवाह नहीं करता कि मैं सुसंगत दिखाई दूं | सत्य की खोज करते हुए मैंने अनेक विचारों का त्याग किया है और बहुत-सी नयी बातें सीखी हैं | यद्यपि मैं वृद्ध हो गया हूं, पर मुझे यह बिलकुल अनुभव नहीं होता कि मेरा आंतरिक विकास रुक गया है या कि मेरी देह के विघटन के साथ मेरा विकास रुक जाएगा | मुझे सिर्फ इस बात से सरोकार है कि मैं अपने ईश्वर, अर्थात सत्य, द्वारा समय-समय पर दिए जाने वाले आदेशों का पालन करने के लिए तत्पर रहूं | *(हरि, 29-4-1933, पृ. 2)*

मैंने सुसंगति की जड़पूजा कभी नहीं की | मैं सत्य का हिमायती हूं और किसी मुद्दे पर जिस समय जो महसूस करता हूं और सोचता हूं, वही कहता हूं और इस बात की चिंता नहीं करता कि इस मुद्दे पर पहले मैं क्या कह चुका हूं.... जैसे-जैसे मेरी दृष्टि स्पष्ट होती जाती है, दैनिक अभ्यास से मेरे विचार भी स्पष्टतर होते जाते हैं | जहां मैंने जान-बूझकर राय बदली है, परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देगा – केवल सावधान व्यक्ति ही उस परिवर्तन के क्रमिक एवं सूक्ष्म विकास को समझ पाएगा | *(हरि, 28-9-1934, पृ. 260)*

मेरा ध्येय किसी मुद्दे पर अपने पूर्व विचारों के साथ सुसंगति बनाए रखना नहीं है बल्कि किसी निश्चित क्षण पर जो सत्य दिखाई देता है, उससे सुसंगति रखते हुए अपनी बात कहना है | इसका परिणाम यह है कि मैं एक सत्य से दूसरे सत्य की ओर प्रगति करता गया हूं | *(हरि, 30-9-1939, पृ. 288)*

मैंने राजनीतिक लाभ उठाने के लिए कभी किसी सिद्धांत की बलि नहीं दी है | *(यंग, 12-3-1925, पृ. 91)*

मैं नहीं समझता कि मैंने अपने जीवन में एक भी काम तात्कालिक औचित्य को देखकर किया है | मैंने हमेशा यह माना है कि सर्वोच्च नैतिकता ही सर्वोच्च औचित्य भी है | *(हरि, 8-12-1933, पृ. 8)*

समझौता

मुझ पर अक्सर यह आरोप लगाया गया है कि मैं जिद्दी स्वभाव का हूं | लोग बताते हैं कि मैं बहुमत के निर्णय के आगे नहीं झुकता | मुझ पर तानाशाह होने का आरोप लगाया गया है – मैं जिद्दीपन या तानाशाही के आरोप से कभी सहमत नहीं हो पाया हूं | इसके विपरीत, मुझे तो इस बात का फक्र है कि मैं उन मुद्दों पर लचीला रुख अपना सकता हूं जो महत्वपूर्ण नहीं हैं | मैं तानाशाही को नापसंद करता हूं | जिस प्रकार मैं अपनी आज़ादी और स्वतंत्रता को मूल्यवान समझता हूं, उसी प्रकार चाहता हूं कि ये औरों को भी हासिल हों | मैं ऐसे एक भी व्यक्ति के सहयोग की कामना नहीं करता जिसे मैं अपनी बात समझाकर आश्वस्त न कर सकूं |

मैं तो इतना रुढ़िमुक्त हूं कि पुराने-से-पुराने शास्त्र भी मेरे विवेक की कसौटी पर खरे न उतरें तो उनकी दिव्यता को अस्वीकार कर दूं | लेकिन मैंने अनुभव से यह सीखा है यदि मैं समाज में रहना चाहता हूं तो मुझे अपनी पूर्ण स्वतंत्रता को सर्वाधिक महत्व के मामलों तक ही सीमित रखना चाहिए | अन्य मामलों में जो व्यक्ति के निजी धर्म या नैतिक संहिता का उल्लंघन करते हों, व्यक्ति को बहुमत का साथ देना चाहिए | *(यंग, 14-7-1920, पृ. 4)*

मेरे संपूर्ण जीवन में आग्रह और अनाग्रह हमेशा साथ-साथ ही चलते रहे है । सत्याग्रह में यह अनिवार्य हैं, इसका अनुभव मैंने बाद में कई बार किया हैं । इस समझौता-वृत्ति के कारण मुझे कितनी ही बार अपने प्राणों को संकट में डालना पड़ा हैं और मित्रों का असंतोष सहना पड़ा हैं। पर सत्य वज्र के समान कठिन हैं और कमल के समान कोमल हैं । *(ए, पृ. 107)*

मनुष्य-जीवन समझौतों का एक सिलसिला है और जो बात इंसान सिद्धांत के तौर पर सही पाता है, उसे व्यवहार में उतारना हमेशा आसान नहीं होता | *(हरि, 5-9-1936, पृ. 237)*

कुछ सनातन सिद्धांत ऐसे हैं जिन पर कोई समझौता नहीं किया जा सकता और मनुष्य को उन पर आचरण करते हुए अपने जीवन की बलि देने के लिए उद्यत रहना चाहिए | *(वही, पृ. 238)*

8. मेरा लेखन

बोलने में मेरी हिचक जो कभी झुंझलाहट पैदा करती थी, अब बड़ा सुख देती है | इसका सबसे बड़ा लाभ यह हुआ है कि इसने मुझे मितभाषी होना सिखा दिया है | मैंने स्वभावत: अपने विचारों में संयम से काम लेने का अभ्यास डाल लिया है | और मैं अब अपने आपको यह प्रमाणपत्र दे सकता हूं कि बिना सोचे-समझे शायद एक शब्द भी कभी मेरी जिह्वा अथवा लेखनी से नहीं निकल सकता | मुझे याद नहीं आता कि कभी मुझे अपने भाषण या लेख के किसी अंश पर खेद व्यक्त करना पड़ा हो | इससे मैं अनेक अनर्थों और समय के अपव्यय से बच सका हूं | *(ए. पृ. 45)*

'इंडियन ओपीनियन' के प्रथम मास में ही मैं समझ गया था कि पत्रकारिता का एकमात्र ध्येय सेवा होना चाहिए | समाचारपत्रों के पास बड़ी भारी शक्ति है, लेकिन जिस प्रकार अनियंत्रित बाढ़ का पानी पूरी बस्तियों को डूबा देता है और फसलों को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार अनियंत्रित लेखनी की सेवा भी विनाशकारी होती है | यदि उसका नियंत्रण बाहर से किया जाए तो वह नियंत्रणहीनता से भी अधिक अनिष्टकर सिद्ध होता है | प्रेस का नियंत्रण तभी लाभकारी हो सकता है जब प्रेस उसे स्वयं अपने ऊपर लागू करे | अगर यह तर्क सही है तो दुनिया के कितने पत्र इस कसौटी पर खरे उतरेंगे ? लेकिन जो पत्र-पत्रिकाएं निकम्मी हैं, उन्हें कौन रोके ? अच्छाई और बुराई की तरह, निकम्मी और उपयोगी भी साथ-साथ चलेंगी और मनुष्य को अपना चुनाव खुद करना होगा | *(वही, पृ. 211)*

मेरे लेखन में किसी व्यक्ति के प्रति घृणा का भाव हो ही नहीं सकता, क्योंकि मेरा यह पक्का विश्वास है कि यह दुनिया प्रेम के सहारे ही चल रही है | *(सली, सं, 5, 17-9-1919)*

मेरी पत्रकरिता

मैंने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश स्वयं पत्रकारिता की खातिर नहीं किया है बल्कि यह मेरे जीवन के ध्येय की पूर्ति में सहायक है, ऐसा मानकर किया है | मेरा ध्येय अत्यंत संयम के साथ, उदाहरण और उपदेश देते हुए, सत्याग्रह के बेजोड़ अस्त्र के प्रयोग की शिक्षा देना है – सत्याग्रह जो अहिंसा तथा सत्य का प्रत्यक्ष परिणाम है.... इसलिए यदि मुझे अपने धर्म पर आरूढ़ रहना है तो मुझे क्रोध में आकर या विद्वेष की भावना से नहीं लिखना है | मुझे निष्प्रयोजन नहीं लिखना है | मुझे केवल उत्तेजना फैलाने के लिए नहीं लिखना है |

पाठक इस बात को समझ ही नहीं सकते कि मुझे हफ़्ते-दर-हफ़्ते शीर्षकों और शब्दों के चुनाव में कितना संयम बरतना पड़ता है | यह मेरे लिए एक प्रशिक्षण है | इससे मुझे अपने अंदर झांकने और अपनी कमजोरियों का पता लगाने का मौका मिलता है | कई बार मेरा दंभ मुझे चुभने वाली भाषा का प्रयोग करने या मेरा क्रोध मुझे कोई सख्त विशेषण लगाने का आदेश देता है | यह बड़ी विकट परीक्षा है, पर दुर्भावनाओं को दूर करने का यह एक उत्तम उपाय है | *(यंग, 2-7-1925, पृ. 232)*

लिखते समय मेरी अंतरात्मा मुझसे जो लिखाती है, मैं लिखता जाता हूं | मैं निश्चित रूप से यह जानने का दावा नहीं करता कि मेरे सभी सचेतन विचार और कार्य अंतरात्मा द्वारा निर्देशित होते हैं | लेकिन अपने जीवन में जो बड़े-से-बड़े कदम मैंने उठाए हैं – और छोटे-से-छोटे भी – उनकी परीक्षा करने पर मैं समझता हूं कि यह कहना अनुचित नहीं होगा कि वे सभी अंतरात्मा द्वारा निर्देशित थे | *(ए, पृ. 206)*

जहां तक विचारों की उत्पत्ति का संबंध है, मुझमें कुछ मौलिकता है | लेकिन लेखन तो एक उपोत्पाद है, मैं अपने विचारों का प्रचार करने के लिए ही लिखता हूं | पत्रकारिता मेरा व्यवसाय नहीं है | *(हरि, 18-8-1946, पृ. 270)*

अंतत: मेरा काम ही शेष रह जाएगा, जो मैंने कहा अथवा लिखा है, वह नहीं | *(हरि, 1-5-1947, पृ. 93)*

2. सत्य

9. सत्य का दिव्य संदेश

सत्य....क्या है ? यह एक कठिन प्रश्न है, लेकिन अपने लिए मैंने इसे यह कहकर सुलझा लिया है कि जो तुम्हारे अंत:करण की आवाज़ कहे, वह सत्य है | आप पूछते हैं कि यदि ऐसा है तो भिन्न-भिन्न लोगों के सत्य परस्पर भिन्न और विरोधी क्यों होते हैं ? चूंकि मानव मन असंख्य माध्यमों के जरिए काम करता है और सभी लोगों के मन का विकास एक-सा नहीं होता इसलिए जो एक व्यक्ति के लिए सत्य होगा, वह दूसरे के लिए असत्य हो सकता है | अत: जिन्होंने ये प्रयोग किए हैं, वे इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि इन प्रयोगों को करते समय कुछ शर्तों का पालन करना जरूरी है....

ऐसा इसलिए है कि आजकल हर आदमी किसी तरह की कोई साधना किए बगैर अंत:करण के अधिकार का दावा कर रहा है, और हैरान दुनिया को जाने कितना असत्य थमाया जा रहा है | मैं सच्ची विनम्रता के साथ तुमसे कहना चाहता हूं कि जिस व्यक्ति में विनम्रता कूट-कूट न भरी हो, उसे सत्य नहीं मिल सकता | यदि तुम्हें सत्य के सागर में तैरना है, तो तुम्हें अपनी हस्ती को पूरी तरह मिटा देना होगा | *(यंग, 31-12-1931, पृ. 428)*

केवल सत्य और प्रेम – अहिंसा – ही महत्वपूर्ण है | जहां ये हैं, वहां अंतत: सब कुछ ठीक हो जाएगा | इस नियम का कोई अपवाद नहीं है | *(यंग, 18-8-1927, पृ. 265)*

सर्वोच्च सिद्धांत

मेरे लिए सत्य सर्वोच्च सिद्धांत है, जिसमें अन्य अनेक सिद्धांत समाविष्ट हैं | यह सत्य केवल वाणी का सत्य नहीं है अपितु विचार का भी है, और हमारी धारणा का सापेक्ष सत्य ही नहीं अपितु निरपेक्ष सत्य, सनातन सिद्धांत, अर्थात ईश्वर है | ईश्वर की असंख्य परिभाषाएं हैं, क्योंकि वह असंख्य रूपों में प्रकट होता है | ये असंख्य रूप देखकर मैं आश्चर्य और भय से अभिभूत हो जाता हूं और एक क्षण के लिए तो स्तंभित रह जाता हूं |

पर मैं ईश्वर को केवल सत्य के रूप में पूजता हूं | मैं अभी उसे प्राप्त नहीं कर सका हूं, पर निरंतर उसकी खोज में हूं | इस खोज में मैं अपनी सर्वाधिक प्रिय वस्तुओं का त्याग करने के लिए तैयार हूं | यदि मुझे इसके लिए अपने जीवन का भी उत्सर्ग करना पड़े तो मुझे आशा है कि मैं उसके लिए तैयार रहूंगा | लेकिन जब तक मुझे इस निरपेक्ष सत्य की प्राप्ति नहीं होती तब तक मुझे अपनी धारणा के सापेक्ष सत्य पर ही अवलंबित रहना होगा | तब तक यह सापेक्ष सत्य ही मेरा प्रकाशस्तंभ, मेरी ढाल और मेरी फरी है | यद्यपि सत्य की खोज का मार्ग कठिन और संकरा तथा तलवार की धार की तरह तेज है, पर मेरे लिए यह द्रुततम और सरलतम है | इस मार्ग पर दृढ़तापूर्वक चलते जाने के कारण, अपनी भयंकर भूलें भी मुझे नगण्य प्रतीत हुई हैं | इस मार्ग ने मुझे संताप से बचाया है और

मैं अपनी प्रकाश-किरण का अनुगमन करते हुए आगे बढ़ता गया हूं | मार्ग में चलते-चलते मुझे प्राय: निरपेक्ष सत्य-ईश्वर-की हल्की-सी झलक दिखाई दी है, और मेरा यह विश्वास दिनोंदिन दृढ़तर होता जाता है कि केवल ईश्वर ही वास्तविक है और शेष सब अवास्तविक |

सत्य की खोज

....एक बात और मेरे मन में पक्की होती जा रही है कि जो कुछ मेरे लिए संभव है, वह एक बच्चे के लिए भी संभव है | यह बात मैं ठोस कारणों के आधार पर कह रहा हूं | सत्य की खोज के साधन जितने कठिन हैं, उतने ही आसान भी हैं | अहंकारी व्यक्ति को वे काफ़ी कठिन लग सकते हैं और अबोध शिशु को पर्याप्त सरल |

सत्य के खोजी को धूलि के कण से भी अधिक विनम्र होना चाहिए | धूलि के कणों को तो दुनिया अपने पैरों तले रौंदती है, लेकिन सत्य का खोजी इतना विनम्र होना चाहिए कि उसे धूलिकण भी रौंद न सकें | तभी, और केवल तभी, उसे सत्य के दर्शन सम्भव होंगे | *(ए, पृ. Xv)*

सत्य एक विशाल वृक्ष की तरह है | आप जितना उसका पोषण करेंगे, उतने ही ज़्यादा फल यह देगा | सत्य की खान को जितना ही गहरा खोदेंगे, सेवा के नये-से-नये मार्गों के रूप में, यह उतने ही अधिक हीरे-जवाहरात देगा| *(वही, पृ. 159)*

मेरे विचार में, इस संसार में निश्चिंतताओं की आशा करना गलत है – यहां ईश्वर अर्थात सत्य के अलावा और सब कुछ अनिश्चित है | जो कुछ हमारे चारों ओर दिखाई देता है अथवा घटित हो रहा है, सब अनिश्चित है, अनित्य है | बस, एक ही सर्वोच्च सत्ता यहां है जो गोपन है किंतु निश्चित है, और वह व्यक्ति भाग्यशाली है जो इस निश्चित तत्व की एक झलक पाकर उसके साथ अपनी जीवन नैया को बांध देता है | इस सत्य की खोज ही जीवन का परमार्थ है | *(वही, पृ. 184)*

सत्य की खोज में क्रोध, स्वार्थ, घृणा आदि विकार स्वभावत: छूटते जाते हैं अन्यथा सत्य की प्राप्ति असंभव ही हो जाए | जो व्यक्ति वासनाओं के वश में है, उसकी नीयत साफ होने पर भी वह कभी सत्य की प्राप्ति नहीं कर सकेगा | सत्य की खोज में सफलता प्राप्त होने पर मनुष्य प्रेम और घृणा, सुख और दुख आदि के द्वंद्वों से पूर्णत: मुक्त हो जाता है | *(वही, पृ. 254-55)*

सत्य का दर्शन

सत्य की सार्वभौम एवं सर्वव्यापी भावना के प्रत्यक्ष दर्शन वही कर सकता है जो क्षुद्रतम प्राणी से भी उतना ही प्रेम कर सके जितना कि स्वयं को करता है | और जो ऐसा करने का आकांक्षी हो, वह जीवन के किसी क्षेत्र से अपने को असंपृक्त नहीं रख सकता | यही कारण है कि सत्य के प्रति मेरे अनुराग ने मुझे राजनीति के क्षेत्र में ला खड़ा

किया है; और मैं बिना किसी हिचक के, किंतु विनम्रतापूर्वक यह कह सकता हूं कि जो यह कहते हैं कि धर्म का राजनीति से कोई लेना-देना नहीं है, वे यह नहीं जानते कि धर्म क्या है | *(वही, पृ. 370-71)*

सतत अनुभव ने मेरा यह विश्वास दृढ़ कर दिया है कि ईश्वर सत्य के अलावा और कुछ नहीं है.... सत्य की जो क्षणिक झलकियां.... मैं पा सका हूं, उनसे सत्य के अवर्णनीय तेज का वर्णन करना संभव नहीं है, सत्य का तेज नित्य दिखाई देने वाले सूर्य के प्रकाश से लाखों गुना प्रखर है | *(यंग, 7-2-1929, पृ. 42)*

वस्तुत: मैं उस अतुल प्रभा की बहुत हल्की झलक ही पा सका हूं | लेकिन अपने अनुभव के बल पर मैं यह बात भरोसे के साथ कह सकता हूं कि सत्य का सर्वांग दर्शन वही कर सकता है जिसने अहिंसा को पूरी तरह अपना लिया हो | *(वही)*

सत्य प्रत्येक मनुष्य के हृदय में वास करता है, और मनुष्य को उसे वहीं खोजना चाहिए; सत्य जिसे जैसा दिखाई दे, वह उसी से निर्देशित हो | लेकिन किसी को यह अधिकार नहीं है कि वह सत्य का जिस रूप में दर्शन करता है, उसके अनुसार चलने के लिए दूसरे लोगों पर जोर-जबर्दस्ती करे | *(हरि, 24-11-1933, पृ. 6)*

निरपेक्ष सत्य

निरपेक्ष सत्य को जानना मनुष्य के वश की बात नहीं है | उसका कर्तव्य है कि सत्य जैसा उसे दिखाई दे, उसका अनुगमन करे, और ऐसा करते समय शुद्धतम साधन अर्थात अहिंसा को अपनाए | *(वही)*

केवल ईश्वर ही निरपेक्ष सत्य को जानता है | इसीलिए मैंने प्राय: कहा है कि सत्य ही ईश्वर है | इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य, जोकि सीमित क्षमता वाला प्राणी है, निरपेक्ष सत्य को नहीं जान सकता | *(हरि, 7-4-1946, पृ. 70)*

इस दुनिया में निरपेक्ष सत्य किसी को ज्ञात नहीं है | यह गुण केवल ईश्वर में है | हम सभी को सापेक्ष सत्य का ही ज्ञान है | इसलिए सत्य जैसा हमें दिखाई देता है, हम उसी का अनुगमन कर सकते हैं | सत्य का ऐसा अनुगमन किसी को भटका नहीं सकता | *(हरि, 2-6-1946, पृ. 167)*

सत्य और मैं

मैंने अपने जीवन में ऐसी बातें कहने की गलती कभी नहीं की है जिनका मेरा अभिप्राय न हो – मेरा स्वभाव बात की तह तक सीधे पहुंचने का है, और यदि मैं कुछ समय के लिए तह तक न पहुंच पाऊं तो भी मैं जानता हूं कि सत्य अंतत: लोगों को अपनी वाणी सुनाने और महसूस कराने में सफल हो जाएगा | मेरे अनुभव में प्राय: ऐसा ही घटित हुआ है | *(यंग, 20-8-1925, पृ. 285-86)*

मेरे जैसे सैकड़ों लोग नष्ट हो जाएं, पर सत्य की विजय हो | मेरे जैसे त्रुटिप्रवण मनुष्यों का मूल्यांकन करने के लिए सत्य के मानदंडों को लेशमात्र भी नीचा करने की आवश्यकता नहीं है | *(ए, पृ. xv)*

अपना मूल्यांकन करते समय मैं सत्य के समान कठोर बनने का प्रयास करूंगा और चाहता हूं कि अन्य लोग भी ऐसा ही करें | उस मानदंड से अपने को मापने पर मुझे सूरदास के सुर में सुर मिलाकर कहना होगा....

"मो सम कौन कुटिल खल कामी |

जेहि तनु दियो ताहि बिसरायो ऐसो नमकहरामी | |" *(वही, पृ. xvi)*

मेरी त्रुटियां

मैं कितना ही तुच्छ होऊं, पर जब मेरे माध्यम से सत्य बोलता है तब मैं अजेय बन जाता हूं | *(एफ़ा, पृ. 71)*

मेरा अनुराग केवल सत्य के प्रति है, और मैं सत्य के अलावा किसी और का अनुशासन नहीं मानता | *(हरि, 25-5-1935, पृ. 115)*

मैं एक ही ईश्वर का दास हूं और वह है सत्य | *(हरि, 15-4-1939, पृ. 87)*

सत्य के प्रति आग्रह से जो शक्ति प्राप्त होती है, उसके अतिरिक्त मेरे पास कोई और शक्ति नहीं है | इसी आग्रह से अहिंसा का प्रस्फुटन होता है | *(हरि, 7-4-1946, पृ. 70)*

मैं सत्य का एक साधारण-सा किंतु बड़ा उत्साही खोजकर्ता हूं | अपनी खोज में मैं अपने साथी खोजकर्ताओं को अधिकतम विश्वास में लेकर चलता हूं, ताकि मैं अपनी त्रुटियों को पहचान सकूं और उन्हें सुधार सकूं | मैं मानता हूं कि अपने अनुमानों और निर्णयों में मुझसे प्राय: गलतियां हुई हैं....और चूंकि प्रत्येक ऐसे मामले में मैंने अपनी त्रुटि को सुधार लिया है, इसलिए कोई स्थायी हानि नहीं होने पाई है | बल्कि इससे अहिंसा का मौलिक सत्य पहले की अपेक्षा कहीं अधिक उद्‌भासित हुआ है, तथा देश को किसी तरह की स्थायी हानि नहीं हुई है | *(यंग, 21-4-1927, पृ. 128)*

मैं तो स्वयं ही नौसिखिया हूं, मुझे कोई स्वार्थ सिद्ध नहीं करना, और मुझे जहां भी सत्य दिखाई देता है, मैं उसका पक्ष लेकर, उसके अनुसार कार्य करने का प्रयास करता हूं | *(यंग, 11-8-1927, पृ. 250)*

मेरा विश्वास है कि पूरी नेकनीयती से काम करने पर भी यदि किसी से गलती हो जाए तो उससे वस्तुत: दुनिया की ही नहीं बल्कि किसी व्यक्ति की भी, कोई हानि नहीं होती | अपने भीरु सेवकों की अनजाने में हुई गलतियों से ईश्वर दुनिया को कोई हानि नहीं पहुंचने देता |

मेरा अनुसरण करने के कारण जिनके गलत रास्ते पर चले जाने की आशंका है, उन्हें मेरे काम की जानकारी न भी होती तो भी वे उसी रास्ते पर जाते | कारण यह है कि मनुष्य अपने आचरण में अंतत: अपनी अंत:प्रेरणा से ही परिचालित होता है, भले ही दूसरों के उदाहरण कभी-कभी उसका मार्गदर्शन करते प्रतीत होते हों | जो भी हो, मैं यह जानता हूं कि मेरी त्रुटियों के कारण दुनिया को कभी हानि नहीं उठानी पड़ी है, क्योंकि ये त्रुटियां मुझसे

अज्ञानवश हुई थीं | मुझे इस बात का दृढ़ विश्वास है कि मेरी जो त्रुटियां बताई जाती हैं, उनमें से एक भी त्रुटि मैंने जान-बूझकर नहीं की थी | *(यंग, 3-1-1929, पृ. 6)*

सच पूछा जाए तो, एक व्यक्ति को जो बात स्पष्टतया गलत लगती है, वह दूसरे को एकदम बुद्धिमत्तापूर्ण लग सकती है | वह विभ्रम में हो तब भी अपने को उसे करने से रोक नहीं सकता | तुलसीदास ने सच ही कहा है –

रजत सीप महुं भास जिमि जथा भानु कर बारि |

जदपि मृषा तिहुं काल सोइ भ्रम न सकइ कोउ टारि | |

मेरे जैसे आदमियों के साथ, जो संभवत: महान विभ्रम से ग्रस्त हैं, यही होता रहेगा | ईश्वर निश्चित रूप से उन्हें क्षमा कर देगा, पर दुनिया को ऐसे लोगों को बरदाश्त करना चाहिए | अंतत: सत्य की ही विजय होगी | *(वही)*

सत्य न्यायोचित ध्येय को कभी नुकसान नहीं पहुंचाता | *(हरि, 10-11-1946, पृ. 389)*

जीवन एक आकांक्षा है | उसका ध्येय पूर्णता के लिए प्रयास करना है, जो आत्मसिद्धि ही है | अपनी दुर्बलताओं अथवा अपूर्णताओं के कारण ध्येय को नीचा नहीं करना चाहिए | मुझे इस बात का दुखद बोध है कि मेरे अंदर दुर्बलताएं भी हैं और अपूर्णताएं भी | मैं इन्हें दूर करने में सहायता देने के लिए प्रतिदिन सत्य के समक्ष मौन आर्तनाद करता हूं | *(हरि, 22-6-1935, पृ. 145)*

सत्य का परित्याग नहीं

मेरा विश्वास करो, मैं अपने 60 वर्ष के व्यक्तिगत अनुभव से कहता हूं कि सत्य के मार्ग का परित्याग करना ही वास्तविक दुर्भाग्य है | यदि तुम इसे समझ सको तो ईश्वर से तुम्हारी एक ही प्रार्थना होगी कि सत्य का अनुसरण करते हुए तुम्हें कितनी भी परीक्षाओं और कठिनाइयों से गुजरना पड़े, ईश्वर तुम्हें उनसे पार पाने का सामर्थ्य दे | *(हरि, 28-7-1946, पृ. 243)*

केवल सत्य ही टिकेगा, बाकी सब कालकवलित हो जाएगा | इसलिए मुझे सभी त्याग दें तो भी मुझे सत्य का साक्षी बने रहना चाहिए | मेरी वाणी आज अरण्यरोदन हो सकती है, किंतु यदि यह सत्य की वाणी है तो शेष सभी वाणियां मूक हो जाने के उपरांत मेरी वाणी ही सुनाई देगी | *(हरि, 25-8-1946, पृ. 284)*

सारी दुनिया झूठ की चपेट में आती प्रतीत हो तो भी आस्थावान व्यक्ति सत्य का परित्याग नहीं करेगा | *(हरि, 22-9-1946, पृ. 322)*

प्रासंगिक होने पर, सत्य अवश्य कह देना चाहिए, चाहे वह कितना ही अप्रिय हो | जो अप्रासंगिक है, वह सदा असत्य है, और उसे कभी नहीं कहना चाहिए | *(हरि, 21-12-1947, पृ. 473)*

10. सत्य ईश्वर है

ईश्वर है

एक ऐसी अपरिभाषेय रहस्यमय शक्ति है जो सर्वत्र व्याप्त है | मैं उसका अनुभव करता हूं, हालांकि वह दिखाई नहीं देती | यह अदृश्य शक्ति महसूस तो होती है लेकिन उसका कोई प्रमाण देना संभव नहीं है, क्योंकि यह इंद्रियग्राह्य वस्तुओं से सर्वथा भिन्न है | यह इंद्रियातीत है | लेकिन ईश्वर के अस्तित्व का थोड़ा-सा तर्क दिया जा सकता है |

मुझे एक क्षीण अनुभूति होती है कि जहां मेरे चारों ओर मौजूद सभी चीज़ें निरंतर परिवर्तनशील हैं, निरंतर नाशवान हैं, वहां इन सारे परिवर्तनों के पीछे एक ऐसी जीवंत शक्ति है जो परिवर्तनरहित है, जो सबको धारण करती है, सबकी सृष्टि करती है, संहार करती है, और पुन: सृजन करती है | सभी को अनुप्राणित करने वाली यह शक्ति अथवा आत्मा ही ईश्वर है | और चूंकि केवल इंद्रियों से ग्राह्य अन्य कोई वस्तु अनश्वर नहीं हो सकती और न होगी, इसलिए केवल ईश्वर ही अनश्वर है |

यह शक्ति उपकारी है अथवा अपकारी ? मुझे यह विशुद्ध रूप से उपकारी लगती है | कारण कि, मैं पाता हूं कि मृत्यु के बीच जीवन का सातत्य है, झूठ के बीच सत्य का सातत्य है और अंधकार के बीच प्रकाश का सातत्य है | इसलिए मैं समझता हूं कि ईश्वर जीवन है, सत्य है, प्रकाश है | वह साक्षात प्रेम है | वही सर्वोच्च शुभ है |

मैं यह स्वीकार करता हूं कि मैं....तर्क के द्वारा....तुमको आश्वस्त नहीं कर सकता | आस्था तर्क से ऊपर है | मैं यही परामर्श दे सकता हूं....कि असंभव को संभव बनाने का प्रयास न करो | दुनिया में बुराई क्यों है, इसका कोई तर्कपूर्ण उत्तर मैं नहीं दे सकता | ऐसा प्रयास करना ईश्वर की बराबरी करना होगा | अत: मैं पूरी विनम्रता के साथ बुराई के अस्तित्व को मान लेता हूं, और कहता हूँ कि ईश्वर दीर्घकाल से पीड़ा भोग रहा है और धैर्य प्रदर्शित कर रहा है, क्योंकि उसने दुनिया में बुराई को चलते रहने की अनुमति दी है | मैं जानता हूं कि ईश्वर में बुराई का लेश भी नहीं है, पर फिर भी यदि दुनिया में बुराई है तो उसका सर्जक वही है, यद्यपि वह उसे छू नहीं सकती |

मैं यह भी जानता हूं कि यदि मैं बुराई से न लड़ूं और इस संघर्ष में प्राणों की बाजी न लगा दूं तो मैं कभी ईश्वर को नहीं जान पाऊंगा | मेरे साधारण और सीमित अनुभव ने मेरे इस विश्वास को और भी दृढ़ कर दिया है | मैं जितना ही शुद्ध बनने का प्रयास करता हूं, अपने को उतना ही ईश्वर के निकट अनुभव करता हूं | मेरी आस्था जब एक बहाना मात्र नहीं रह जाएगी, जैसी कि वह आज है, अपितु हिमालय की तरह अड़िग और उसके शिखरों पर मंडित हिम के समान धवल तथा प्रकाशमान हो जाएगी तो मैं ईश्वर के कितने निकट पहुंच पाऊंगा | *(यंग, 11-10-1928, पृ. 340-41)*

मेरी आस्था

संसार का परित्याग तो मेरे लिए सरल है | लेकिन मैं ईश्वर का परित्याग करूं, यह अविचारणीय है | *(यंग, 23-2-1922, पृ. 112)*

मैं जानता हूं कि मैं कुछ भी करने में समर्थ नहीं हूं | ईश्वर सर्वसमर्थ है | हे प्रभो, मुझे अपना समर्थ साधन बनाएं और जैसे चाहें, मेरा उपयोग करें | *(यंग, 9-10-1924, पृ. 329)*

मैंने ईश्वर के न तो दर्शन किए हैं और न ही उन्हें जाना है | मैंने ईश्वर के प्रति दुनिया की आस्था को अपनी आस्था बना लिया है, और चूंकि मेरी आस्था अमिट है, मैं उस आस्था को ही अनुभव मानता हूं | लेकिन यह कहा जा सकता है कि आस्था को अनुभव मानना तो सत्य के साथ छेड़छाड़ करना है; सच्चाई शायद यह है कि ईश्वर के प्रति अपनी आस्था का वर्णन करने के लिए मेरे पास कोई शब्द नहीं है | *(ए, पृ. 206)*

आप और मैं इस कमरे में बैठे हैं, इस तथ्य से भी ज़्यादा पक्का भरोसा मुझे ईश्वर के अस्तित्व में है | इसलिए मैं यह भी निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि मैं वायु और जल के बिना तो जीवित रह सकता हूं, पर ईश्वर के बिना नहीं रह सकता | आप मेरी आंखें निकाल लें, पर मैं उससे मरूंगा नहीं | आप मेरी नाक काट लें, पर मैं उससे मरूंगा नहीं | पर ईश्वर के प्रति मेरी आस्था को ध्वस्त कर दें तो मैं मर जाऊंगा |

आप इसे अंधविश्वास कह सकते हैं, पर मैं स्वीकार करता हूं कि मैं इस अंधविश्वास को उसी प्रकार श्रद्धापूर्वक गले लगाए हूं, जिस प्रकार कोई खतरा या संकट आने पर मैं अपने बचपन में राम नाम का श्रद्धापूर्वक जप करने लग जाता था | इसकी सीख मुझे एक बूढ़ी परिचारिका ने दी थी | *(हरि, 11-5-1938, पृ. 109)*

मेरा विश्वास है कि हम सभी ईश्वर के संदेशवाहक बन सकते हैं, यदि हम मनुष्य से डरना छोड़ दें और केवल ईश्वर के सत्य की शोध करें | मेरा पक्का विश्वास है कि मैं केवल ईश्वर के सत्य की शोध कर रहा हूं और मनुष्य के भय से सर्वथा मुक्त हो गया हूं |

....मुझे ईश्वरीय इच्छा का कोई प्रकाट्य नहीं हुआ है | मेरा दृढ़ विश्वास है कि वह प्रत्येक व्यक्ति के सामने नित्य अपना प्रकटन करता है, लेकिन हम अपनी 'अंतर्वाणी' के लिए कान बंद कर लेते हैं | हम अपने सम्मुख दैदीप्यमान अग्निस्तंभ से आंख मींच लेते हैं | मैं उसे सर्वव्यापी पाता हूं | (यंग, 25-5-1921, पृ. 161-62)

मुझे पत्र लिखने वालों में से कुछ यह समझते हैं कि मैं चमत्कार दिखा सकता हूं | सत्य के पुजारी होने के नाते मेरा कहना है कि मेरे पास ऐसा कोई सामर्थ्य नहीं है | मेरे पास जो भी शक्ति है, वह ईश्वर देता है | लेकिन वह सामने आकर काम नहीं करता | वह अपने असंख्य माध्यमों के जरिए काम करता है | (हरि, 8-10-1938, पृ. 285)

ईश्वर की प्रकृति

मेरे लिए ईश्वर सत्य है और प्रेम है, ईश्वर आचारनीति है और नैतिकता है, ईश्वर अभय है | ईश्वर प्रकाश और जीवन का स्रोत है और फिर भी इन सबसे ऊपर और परे है | ईश्वर अंत:करण है | वह नास्तिक की नास्तिकता भी है, चूंकि अपने असीम प्रेमवश ईश्वर नास्तिक को भी रहने की छूट देता है | वह हृदयों को टटोलता है | वह वाणी और तर्क से परे है | वह हमें और हमारे हृदयों को स्वयं हमसे बेहतर जानता है | वह हमारी कही हुई बातों को सच नहीं मानता, क्योंकि वह जानता है कि कई बार जान-बूझकर और कई बार अनजाने, हम जो बोलते हैं, हमारा अभिप्राय वह नहीं होता |

जिन्हें ईश्वर की व्यक्तिगत उपस्थिति की दरकार है, उनके लिए वह व्यक्तिगत ईश्वर है | जिन्हें उसका स्पर्श चाहिए, उनके लिए वह साकार है | वह विशुद्धतम तत्व है | जिन्हें आस्था है, उनके लिए तो बस वह है | वह सब मनुष्यों के लिए सब कुछ है | वह हमारे भीतर है, फिर भी हमसे ऊपर और परे है....

उसके नाम पर घृणित दुराचार या अमानवीय क्रूरताएं की जाती हैं, पर इनसे उसका अस्तित्व समाप्त नहीं हो सकता | वह दीर्घकाल से पीड़ा भोग रहा है | वह धैर्यवान है, पर वह भयंकर भी है | वह इस दुनिया और आने वाली दुनिया की सबसे कठोर हस्ती है | जैसा व्यवहार हम अपने पड़ोसियों – मनुष्यों और पशुओं – के साथ करते हैं, वैसा ही ईश्वर हमारे साथ करता है |

वह अज्ञानता को क्षमा नहीं करता | इसके बावजूद नित्य क्षमाशील है, क्योंकि वह हमें सदा पश्चाताप करने का अवसर देता है |

संसार में उस जैसा लोकतांत्रिक दूसरा नहीं है, क्योंकि वह हमको अच्छाई और बुराई में से चुनाव करने के लिए 'स्वतंत्र' छोड़ देता है | उस जैसा अत्याचारी भी आज तक नहीं हुआ जो प्राय: हमारे होठों से प्याला छीन लेता है और स्वेच्छा के नाम पर, हमें हाथ-पैर फेंकने के लिए अत्यंत संकुचित क्षेत्र देकर फिर हमारी विवशता पर हंसता है |

इसीलिए हिंदू धर्म में कहा गया है कि यह सब उसका खेल अर्थात उसकी 'लीला' है, अथवा भ्रम यानी माया है | हम नहीं हैं, मात्र वही है | यदि हम हैं तो हमें निरंतर उसका स्तुतिगान करना है और उसकी इच्छानुसार कार्य करना है | हम उसकी बंसी की धुन पर नाचें तो सब कुछ ठीक हो जाएगा | *(यंग, 5-3-1925, पृ, 81)*

जहां तक मैं समझता हूं, ईश्वर दुनिया का सबसे कठोर अधिकारी है; वह तुम्हारी जमकर परीक्षा लेता है | और जब तुम्हें लगता है कि तुम्हारी आस्था डिग रही है या तुम्हारा शरीर जवाब दे रहा है और तुम डूब रहे हो, वह किसी-न-किसी प्रकार तुम्हारी सहायता के लिए आ पहुंचता है और यह सिद्ध कर देता है कि तुम्हें अपनी आस्था नहीं छोड़नी चाहिए | वह सदा तुम्हारे इशारे पर दौड़ा चला आएगा, लेकिन अपनी शर्तों पर, तुम्हारी शर्तों पर नहीं

| मैंने तो उसे ऐसा ही पाया है | मुझे एक भी उदाहरण ऐसा याद नहीं आता जब ऐन मौके पर उसने मेरा साथ छोड़ दिया हो | *(स्पीरा, पृ. 1069)*

शैशवकाल में मुझे विष्णुसहस्त्रनाम का पाठ करना सिखाया गया था | लेकिन भगवान के ये हज़ार नाम ही नहीं हैं | हिंदुओं का विश्वास है – और मैं समझता हूं कि यह सत्य है – कि संसार में जितने प्राणी हैं, उतने ही भगवान के नाम हैं | इसीलिए हम यह भी कहते हैं कि भगवान अनाम है, और चूंकि भगवान के अनेक रूप हैं इसलिए हम उसे निराकार मानते हैं, और चूंकि वह हमसे अनेक वाणियों के माध्यम से वार्तालाप करता है, हम मानते हैं कि वह अवाक है, इत्यादि | जब मैंने इस्लाम का अध्ययन किया तो मैंने पाया कि इस्लाम में भी खुदा के बहुत-से नाम हैं |

जो कहते हैं कि ईश्वर प्रेम है, उनके साथ स्वर मिलाकर मैं भी कहूंगा कि ईश्वर प्रेम है | लेकिन अपने अंतरतम में मेरा मानना है कि यद्यपि ईश्वर प्रेम है, पर सर्वोपरि ईश्वर सत्य है | यदि मनुष्य की वाणी के लिए ईश्वर का पूरा-पूरा वर्णन करना संभव हो तो मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि, जहां तक मेरा संबंध है, ईश्वर सत्य है |

लेकिन दो वर्ष पहले मैंने एक कदम और आगे बढ़ाकर कहा कि सत्य ईश्वर है | इन दो कथनों – ईश्वर सत्य है और सत्य ईश्वर है – के सूक्ष्म भेद को आप समझें | मैं इस निष्कर्ष पर लगभग पचास वर्ष तक सत्य की निरंतर खोज करते रहने के बाद पहुंचा हूं |

मैंने तब पाया कि सत्य तक पहुंचने का सबसे छोटा रास्ता प्रेम के माध्यम से है | लेकिन मैंने देखा कि कम-से-कम अंग्रेजी भाषा में, प्रेम के अनेक अर्थ हैं और वासना के अर्थ में मानव प्रेम पतनकारी प्रवृत्ति भी हो सकता है | मैंने यह भी देखा कि 'अहिंसा' के अर्थ में, प्रेम को मानने वाले लोग, इस दुनिया में बहुत कम हैं | लेकिन सत्य के कभी दो अर्थ मैंने नहीं देखे और नास्तिक भी सत्य की आवश्यकता अथवा शक्ति के विषय में आपत्ति नहीं करते|

लेकिन सत्य की खोज करने के उत्साह में, नास्तिकों ने ईश्वर के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिह्न लगा दिया है जो उनकी दृष्टि से सही है | इस तर्क के कारण ही मुझे लगा कि 'ईश्वर सत्य है' के स्थान पर मुझे 'सत्य ईश्वर है' कहना चाहिए| *(यंग, 31-12-1931, पृ. 427-28)*

ईश्वर सत्य है, पर वह और भी बहुत कुछ है | इसीलिए मैं कहता हूं कि सत्य ईश्वर है.... केवल यह स्मरण रखें कि सत्य ईश्वर के अनेक गुणों में से एक गुण नहीं है | सत्य तो ईश्वर का जीवंत स्वरूप है, यही जीवन है, मैं सत्य को ही परिपूर्ण जीवन मानता हूं | इस प्रकार यह एक मूर्त वस्तु है, क्योंकि संपूर्ण सृष्टि, संपूर्ण सत्ता ही ईश्वर है और जो कुछ विद्यमान है – अर्थात सत्य – उसकी सेवा ईश्वर की सेवा है | *(हरि, 25-5-1935, पृ. 115)*

पूर्णता ईश्वर का गुण है, पर फिर भी वह कितना लोकतांत्रिक है | वह हमारी कितनी बुराइयों और छल-कपट को बरदाश्त करता है | वह यहां तक बरदाश्त करता है कि हम, जो उसी की अकिंचन सृष्टि हैं, उसके अस्तित्व पर

ही शंका करें, यद्यपि वह हमारे चारों ओर और हमारे भीतर प्रत्येक अणु में विद्यमान है | लेकिन यह अधिकार उसने अपने पास सुरक्षित रखा है कि वह जिसे चाहता है, उसे अपना साक्षात कराता है | उसके न हाथ हैं, न पैर हैं, और न और कोई अंग है लेकिन वह जिसे अपना साक्षात कराना चाहे, वह उसका दर्शन कर सकता है | *(हरि, 14-11-1936, पृ. 314)*

सेवा के द्वारा ईश्वर

यदि मैं अपने अंदर ईश्वर की उपस्थिति अनुभव न करता तो प्रतिदिन इतनी कंगाली और निराशा देखते-देखते प्रलापी पागल हो गया होता या हुगली में छलांग लगा लेता | *(यंग, 6-8-1925, पृ. 275)*

यदि मुझे भारत के सबसे हीन, बल्कि विश्व के सबसे हीन, व्यक्तियों के दुख के साथ अपना तादात्म्य करना है तो मुझे अपनी देखरेख में रहने वाले साधारण व्यक्तियों के पापों के साथ तादात्म्य करना चाहिए | और, मुझे आशा है कि पूर्ण विनम्रता के साथ ऐसा करते-करते मैं किसी दिन ईश्वर – सत्य – का साक्षात कर सकूंगा | *(यंग, 3-12-1925, पृ, 422)*

मैं ईश्वर को मानवता की सेवा के जरिए पाने का प्रयास कर रहा हूं, क्योंकि मैं जानता हूं कि ईश्वर न स्वर्ग में है, न पाताल में, बल्कि हम सब में है | *(यंग, 4-8-1927, पृ. 247-48)*

मैं समष्टि का एक अंग हूं, और ईश्वर को शेष मानवता से पृथक ढूंढ नहीं सकता | मेरे देशवासी मेरे सबसे निकटस्थ पड़ोसी हैं | वे इतने असहाय, साधनहीन और जड़ हो गए हैं कि मुझे अपना पूरा ध्यान उनकी सेवा पर लगा देना चाहिए | यदि मैं अपने को यह विश्वास दिला सकता कि ईश्वर हिमालय की गुफा में मिलेगा तो मैं तत्काल वहां के लिए प्रस्थान कर देता | लेकिन मैं जानता हूं कि मानवता से दूर वह नहीं ढूंढा जा सकता | *(हरि, 29-8-1936, पृ. 226)*

मैं अपने लाखों-करोड़ों देशवासियों को जानता हूं | मैं दिन के चौबीसों घंटे उनके साथ रहता हूं | उनकी सेवा करना मेरा प्रथम और अंतिम कर्तव्य है, क्योंकि करोड़ों मूक लोगों के हृदयों के अलावा कहीं और ईश्वर की उपस्थिति मैं स्वीकार नहीं करता | इन मूक व्यक्तियों को ईश्वर की उपस्थिति का आभास नहीं होता, मुझे होता है | और, मैं इन लाखों-करोड़ों लोगों की सेवा के जरिए ईश्वर जो सत्य है अथवा सत्य जो ईश्वर है, उसकी पूजा करता हूं | *(हरि, 11-3-1939, पृ. 44)*

पथप्रदर्शक और संरक्षक

मुझे आगे बढ़ना होगा.... ईश्वर को अपना एकमात्र पथप्रदर्शक मानते हुए | वह बड़ा ईर्ष्यालु स्वामी है | अपने प्राधिकार में किसी की भागीदारी नहीं होने देगा | इसलिए उसके सम्मुख अपनी सभी दुर्बलताओं के साथ, खाली

हाथ और पूर्ण समर्पण के भाव से उपस्थित होना होगा | और तब वह तुम्हें पूरी दुनिया का सामना करने की शक्ति देगा और सभी खतरों से तुम्हारी रक्षा करेगा | *(यंग, 3-9-1931, पृ. 247)*

मैंने एक सबक सीखा है कि जो काम मनुष्य के लिए असंभव है, वह ईश्वर के लिए बच्चों का खेल है, और यदि हमें उस ईश्वर पर विश्वास है जो अपनी निकृष्टतम सृष्टि का भी भाग्यविधाता है तो मुझे इसमें कोई संदेह नहीं कि सब कुछ संभव है; मैं इसी अंतिम आशा में जीता और अपना समय व्यतीत करता हूं तथा ईश्वर की इच्छा का पालन करने का प्रयास करता हूं | *(यंग, 19-11-1931, पृ. 361)*

घोर निराशा में भी जब सारी दुनिया में न कोई सहायक दिखाई देता है, न सांत्वना देने वाला, तब उसी का नाम शक्ति प्रदान करके हममें प्रेरणा जगाता है और सभी शंकाएं तथा निराशाएं दूर भगा देता है | आज आकाश मेघाच्छन्न हो सकता है, पर ईश्वर से की गई भक्तियुक्त प्रार्थना उन्हें अवश्य छांट देगी | यह प्रार्थना का ही प्रभाव है कि मुझे कभी निराशा का मुंह नहीं देखना पड़ा है |

....मैं कभी निराश नहीं हुआ हूं | तब तुम क्यों निराश होते हो ? हम प्रार्थना करें कि यह हमारे हृदयों से क्षुद्रता, नीचता और छल को समाप्त करके उन्हें निर्मल कर दे; वह हमारी प्रार्थना अवश्य सुनेगा | मैं ऐसे अनेक लोगों को जानता हूं जिन्होंने शक्ति के इस अमोघ स्रोत का सहारा लिया है | *(हरि, 1-6-1935, पृ. 123)*

मैंने देखा है, और मेरा विश्वास है, कि ईश्वर सशरीर नहीं बल्कि कार्यरूप में प्रकट होता है और इसी से आपको घोर विपत्तियों से छुटकारा मिलता है | *(हरि, 10-12-1938, पृ. 373)*

व्यक्तिगत आराधना का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता | यह निरंतर, और यहां तक कि अचेतन रूप से, चलती रहती है | एक क्षण भी ऐसा नहीं जाता जब मैं उस साक्षी की उपस्थिति का अनुभव न करूं जिसकी आंख से कोई चीज़ चूक नहीं सकती; मैं इसी साक्षी के अनुरूप चलने का प्रयास करता हूं |

मैंने कभी उसे बेखबर नहीं पाया | जेलों में कठिन परीक्षाओं के दौरान जब मेरी स्थिति ठीक नहीं थी और क्षितिज घोर अंधकारमय दिखाई देता था तब मैंने उसे अपने निकट खड़ा पाया | मुझे अपने जीवन का एक क्षण भी ऐसा याद नहीं है जब मुझे लगा हो कि ईश्वर ने मेरा साथ छोड़ दिया है | *(हरि, 24-12-1938, पृ. 395)*

आत्मसाक्षात्कार

मेरा विश्वास है कि प्रत्येक मनुष्य के लिए उस धन्य, अवर्णनीय एवं पापमुक्त स्थिति को प्राप्त करना संभव है जिसमें वह अपने अंत:करण में ईश्वर – मात्र ईश्वर – की उपस्थिति का अनुभव करता है | *(हरि, 17-11-1921, पृ. 368)*

मैं जो प्राप्त करना चाहता हूं – जिसके लिए प्रयासरत और लालायित हूं...., वह है आत्मसाक्षात्कार अर्थात ईश्वर का साक्षात, मोक्ष की प्राप्ति | इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मैं जीता तथा चलता-फिरता हूं और अपना सत्व बनाए हुए हूं | मेरे सभी भाषण, समस्त लेखन और राजनीतिक क्षेत्र के सभी कार्य उसी लक्ष्य की ओर अभिमुख हैं | *(ए, पृ. xiv)*

यह विचार मुझे निरंतर यंत्रणा देता रहता है कि जिसका मेरे जीवन की हर श्वास पर अधिकार है और जिसकी मैं संतान हूं, उससे अभी तक कितनी दूर हूं ! मैं जानता हूं कि अपने अंदर की दुष्ट वासनाओं के कारण ही मैं उससे इतनी दूर हूं और फिर भी, मैं उन वासनाओं से अपने को मुक्त नहीं कर पाता | *(वही, पृ. xvi)*

ईश्वर में यह विश्वास आस्था पर आधारित होना चाहिए जो तर्कातीत है | वस्तुत: तथाकथित सिद्धि के मूल में भी आस्था का तत्व होता है जिसके अभाव में वह टिक नहीं सकती | ऐसा होना अनिवार्य है | अपने सत्व की सीमाओं का अतिक्रमण कौन कर सकता है ?

मेरी धारणा है कि इस पार्थिव जीवन में पूर्ण सिद्धि प्राप्त करना असंभव है | यह आवश्यक भी नहीं है | मनुष्य जिस पूर्ण आध्यात्मिक ऊंचाई तक पहुंच सकता है, उसे प्राप्त करने के लिए केवल एक जीती-जागती अटूट आस्था की आवश्यकता है | ईश्वर हमारी इस नश्वर देह से बाहर नहीं है | इसलिए, आवश्यकता हो तो भी, बाह्य प्रमाण का कोई विशेष लाभ नहीं है |

हम इंद्रियों के माध्यम से ईश्वर का अनुभव नहीं कर सकते, क्योंकि वह इंद्रियातीत है | हम चाहें तो इंद्रियों से अपने को मुक्त करके, ईश्वर का अनुभव कर सकते हैं | हम सबके भीतर अनहद नाद हो रहा है, लेकिन हमारी इंद्रियों का कोलाहल उस कोमल संगीत को दबा देता है – यह वह संगीत है जो हमारी इंद्रियों के लिए ग्राह्य अथवा श्रव्य किसी भी संगीत से भिन्न एवं अत्यधिक श्रेष्ठ है | *(हरि, 13-6-1936, पृ. 140-41)*

11. सत्य और सौंदर्य

कला की आंतरिकता

वस्तुओं के दो पक्ष होते हैं....बाह्य और आंतरिक....बाह्य का मूल्य केवल यह है कि वह आंतरिक की सहायता करे | इस प्रकार प्रत्येक सच्ची कला आत्मा की अभिव्यक्ति होती है | बाह्य रूपों का मूल्य यही है कि वे मनुष्य की आंतरिक भावना की अभिव्यक्ति हैं | *(यंग, 13-11-1924, पृ. 377)*

मैं जानता हूं कि बहुत-से व्यक्ति अपने को कलाकार कहते हैं, और उन्हें इस रूप में मान्यता भी प्राप्त है, लेकिन उनकी कृतियों में आत्मा के उदग्र आवेग और आकुलता का लेश भी नहीं होता | *(वही)*

प्रत्येक सच्ची कला आत्मा के आंतरिक स्वरूप की सिद्धि में सहायक होनी चाहिए | जहां तक मेरा ताल्लुक है, मुझे अपनी आत्मसिद्धि में बाह्य रूपों की सहायता की कतई जरूरत नहीं है | इसलिए मैं यह दावा कर सकता हूं कि मेरे जीवन में सच्ची फलदायी कला है, हालांकि मैं कोई कलाकृतियां प्रस्तुत नहीं कर सकता |

हो सकता है कि मेरे कमरे की दीवारें नंगी हों; मुझे तो शायद सिर पर छत की भी जरूरत नहीं है, क्योंकि तब मैं असीम विस्तार वाले तारों भरे आकाश को निहार सकता हूं | जब मैं चमकते तारों से भरे आकाश को निहारता हूं तो मेरे सामने ऐसा अद्‌भुत परिदृश्य होता है जिसकी बराबरी मनुष्य की स्वकृत कला कभी नहीं कर सकती |

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मैं सामान्यत: मानी गई कला-वस्तुओं के मूल्य को स्वीकार करने से इंकार करता हूं बल्कि सिर्फ यह है कि मैं व्यक्तिगत रूप से यह अनुभव करता हूं कि ये प्राकृतिक सौंदर्य के शाश्वत प्रतीकों की तुलना में कितनी अपूर्ण हैं | मानवकृत इन कला-वस्तुओं का मूल्य वहीं तक है जहां तक कि वे आत्मा को सिद्धि की दिशा में अग्रसर होने में सहायक होती हैं | *(वही)*

पहले सत्य

सत्य की शोध पहली चीज़ है, सौंदर्य और शुभत्व उसमें अपने आप जुड़ जाएंगे | मैं समझता हूं कि ईसा मसीह सर्वोत्कृष्ट कलाकार थे, चूंकि उन्होंने सत्य के दर्शन किए थे और उसे अभिव्यक्त किया था; ऐसे ही मोहम्मद भी थे जिनकी कुरान संपूर्ण अरबी साहित्य की सबसे श्रेष्ठ कृति है – कम-से-कम विद्वानों का मत यही है | कारण यह है कि दोनों ने पहले सत्य को पाने का प्रयास किया था, इसलिए उनकी वाणी में अभिव्यक्ति का सौंदर्य सहज ही आ गया, हालांकि उन्होंने कोई कला-रचना नहीं की थी | मुझे इसी सत्य और सौंदर्य की चाह है, मैं इसी के लिए जीऊंगा और इसी के लिए मरूंगा | *(यंग, 20-11-1924, पृ. 386)*

करोड़ों के लिए कला

अन्य सभी बातों की तरह इसमें भी मैं करोड़ों जनता के संदर्भ में सोचता हूं | करोड़ों लोगों को अपने में ऐसा सौंदर्य-बोध पैदा करने का प्रशिक्षण नहीं दिया जा सकता कि वे सौंदर्य में सत्य के दर्शन कर सकें | इसलिए पहले

उन्हें सत्य के दर्शन कराओ, सौंदर्य के दर्शन वे बाद में कर लेंगे....इन करोड़ों लोगों के लिए जो भी उपयोगी हो सकता है, मेरी दृष्टि में वही सुंदर है | पहले उन्हें जीवन के लिए अनिवार्य वस्तुएं दो, शोभा और अलंकरण की वस्तुएं बाद में आ जाएंगी | *(वही)*

मैं उस कला और साहित्य का पक्षधर हूं जो जनता से जुड़ा हो | *(हरि, 14-11-1936, पृ. 315)*

वही कला कला है जो सुखकर हो | *(यंग, 27-5-1926, पृ. 196)*

आखिर, कला बड़े पैमाने पर उत्पादन करने वाली निर्जीव विद्युतचालित मशीनों के जरिए तो प्रकट की नहीं जा सकती, उसके लिए तो पुरुषों और स्त्रियों के हाथों का कोमल सजीव स्पर्श चाहिए | *(यंग, 14-3-1929, पृ. 86)*

आंतरिक शुचिता

सच्ची कला केवल आकार पर ही नहीं बल्कि उसकी पृष्ठभूमि में जो है, उस पर भी ध्यान केंद्रित करती है | एक कला वह है जो मारती है और एक कला वह है जो जीवन देती है....सच्ची कला अपने रचनाकार की सुख-शांति, संतोष और शुचिता का प्रमाण होनी चाहिए | *(यंग, 11-8-1921, पृ. 253)*

आखिर, सच्चा सौंदर्य हृदय की शुचिता में ही तो निहित है | *(ए, पृ. 228)*

मैं संगीत और अन्य सभी कलाओं का प्रेमी हूं, लेकिन मैं उनको उतना महत्व नहीं देता जितना कि आम तौर पर दिया जाता है | मिसाल के तौर पर, मैं उन कार्यकलापों के महत्व को स्वीकार नहीं कर सकता जिन्हें समझने के लिए तकनीकी ज्ञान की जरूरत होती है |

जीवन सब कलाओं से बढ़ कर है | मैं तो यहां तक कहूंगा कि जिसने जीवन में प्राय: पूर्णता को प्राप्त कर लिया है, वह सबसे बड़ा कलाकार है, कारण कि उदात्त जीवन के निश्चित आधार और संरचना के बिना कला है भी क्या? *(एग्रे, पृ. 65-66)*

हमने किसी तरह यह विश्वास पाल लिया है कि कला व्यक्तिगत जीवन की शुचिता से स्वतंत्र है | मैं अपने संपूर्ण अनुभव के बल पर कह सकता हूं कि इससे ज़्यादा झूठी बात और कोई नहीं हो सकती | अब जबकि मैं अपने ऐहिक जीवन की अंतिम अवस्था में हूं, मेरा कहना है कि जीवन की शुचिता सबसे ऊंची और सबसे सच्ची कला है | आवाज़ का परिष्कार करके अच्छा संगीत उत्पन्न करने की कला बहुत-से लोग अर्जित कर सकते हैं, लेकिन शुचितापूर्ण जीवन के सामंजस्य से वैसा संगीत पैदा करने की कला बिरले ही लोगों में आ सकती है | *(हरि, 19-2-1938, पृ. 10)*

सत्य में सौंदर्य

मैं सत्य में अथवा सत्य के द्वारा सौंदर्य को खोजता और पाता हूं | सत्य के सभी रूप – केवल सच्चे विचार ही नहीं बल्कि सच्ची तस्वीरें या गीत भी – अत्यंत सुंदर होते हैं | लोग प्राय: सत्य में सौंदर्य के दर्शन नहीं कर पाते, आम

आदमी उससे दूर भागता है और उसमें सौंदर्य के दर्शन की क्षमता ही खो बैठता है | जब लोग सत्य में सौंदर्य के दर्शन करने लगेंगे तब सच्ची कला का उदय होगा | *(यंग, 13-11-1924, पृ. 377)*

सच्चे कलाकार की दृष्टि में वही मुख सुंदर है जो अपने बाह्य रूप से भिन्न, आत्मा के भीतर प्रतिष्ठित सत्य से आलोकित है | सत्य से भिन्न कोई सौंदर्य.... नहीं है | इसके विपरीत, सत्य अपने आपको ऐसे रूपों में प्रकट कर सकता है जो बाहर से तनिक भी सुंदर न हों | कहा जाता है कि सुकरात अपने जमाने का सबसे सत्यनिष्ठ व्यक्ति था, लेकिन कहते हैं कि उसकी मुखाकृति ग्रीस में सबसे कुरूप थी | मेरी दृष्टि में, सुकरात सुंदर था क्योंकि उसने आजीवन सत्य के लिए संघर्ष किया, और आपको याद होगा कि सुकरात की बाह्याकृति के कारण फिडिएस को उसके अंदर के सत्य की सुंदरता को सराहने में कोई बाधा नहीं आई, हालांकि कलाकार के नाते वह बाह्याकृतियों में भी सौंदर्य के दर्शन का अभ्यस्त था | *(वही)*

सत्य और असत्य प्राय: साथ-साथ मौजूद रहते हैं, उसी तरह अच्छाई और बुराई का भी साथ है | कलाकार में भी अनेक बार वस्तुओं की सच्ची और झूठी धारणाओं का सह-अस्तित्व रहता है | सच्ची सुंदर कृति तब जन्म लेती है जब कलाकार सच्ची धारणा से प्रेरित होता है | यदि इसके उदाहरण जीवन में विरल हैं तो कला के क्षेत्र में भी विरल ही हैं | *(वही)*

ये सुंदर दृश्य ('सूर्यास्त अथवा तारों भरी रात में जगमगाता अर्धचंद्र') सत्यमय हैं, क्योंकि इन्हें देखकर मेरा ध्यान इनके सर्जक की ओर आकर्षित होता है | इनकी सृष्टि के केंद्र में सत्य है, इसीलिए तो ये सुंदर हैं | जब मैं सूर्यास्त के अद्‌भुत दृश्य अथवा चंद्रमा के सौंदर्य की सराहना करता हूं तो मेरी आत्मा विकसित होकर इनके सर्जक की आराधना में तल्लीन हो जाती है | मैं इन सभी दृश्यों में ईश्वर और उनकी अनुकंपाओं के दर्शन करता हूं | लेकिन ये सूर्यास्त और सूर्योदय भी यदि मुझे ईश्वर के स्मरण में सहायक न हों तो मात्र अवरोध ही सिद्ध होंगे | आत्मा की उड़ान में अवरोध पैदा करने वाली हर चीज़ एक भ्रम है और पाश है; देह भी ऐसी ही चीज़ है जो प्राय: मुक्ति के पथ में अवरोध पैदा करती है | *(हरि, 13-11-1924, पृ. 378)*

तुम सब्जियों के रंग में सुंदरता क्यों नहीं देख पाते ? और निरभ्र आकाश भी तो सुंदर है | लेकिन नहीं, तुम तो इंद्रधनुष के रंगों से आकर्षित होते हो, जो केवल एक दृष्टिभ्रम है | हमें यह मानने की शिक्षा दी गई है कि जो सुंदर है, उसका उपयोगी होना आवश्यक नहीं है और जो उपयोगी है, वह सुंदर नहीं हो सकता | मैं यह दिखाना चाहता हूं कि जो उपयोगी है, वह सुंदर भी हो सकता है | *(हरि, 7-4-1946, पृ. 67)*

3. अभय

12. अभय का दिव्य संदेश

अभय आध्यात्मिकता की पहली शर्त है | कायर कभी नैतिक नहीं हो सकता | *(यंग, 13-10-1921, पृ. 323)*

जहां भय है, वहां धर्म नहीं हो सकता | *(यंग, 2-9-1926, पृ. 308)*

गीता का प्रत्येक पाठक जानता है कि गीता के सोलहवें अध्याय में जो दैवी गुण गिनाए गए हैं, उनमें अभय पहले नंबर पर है | ऐसा केवल छंद की आवश्यकता को देखते हुए किया गया है या अभय को जान-बूझकर सर्वोपरि स्थान दिया गया है, यह मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकता | लेकिन मेरी राय में, अभय को जो पहला स्थान दिया गया है, भले ही यह संयोगवश हो, वह सर्वथा उचित है |

अन्य उदात्त गुणों के विकास के लिए अभय अनिवार्य शर्त है | अभय के बिना मनुष्य सत्य की खोज अथवा प्रेम की कद्र कैसे कर सकता है ? जैसा कि प्रीतम ने कहा है, 'हरि (ईश्वर) तक पहुंचने का मार्ग वीरों का है, कायरों का नहीं है |' यहां हरि का अभिप्राय सत्य से है, और वीरों का अभिप्राय उनसे नहीं जिनके पास तलवार, राइफल या अन्य भौतिक शस्त्र हैं, जिन्हें केवल कायर पसंद करते हैं, बल्कि उनसे है जो अभय से सज्जित हैं | *(यंग, 11-9-1930, पृ. 1-2)*

अभय का अर्थ है सभी बाह्य भयों से मुक्ति जैसे कि बीमारी, शारीरिक क्षति या मृत्यु का भय, स्वामित्व-हरण का भय, प्रियजनों से बिछुड़ने का भय, प्रतिष्ठा-हानि अथवा अपमान का भय, आदि-आदि | *(वही, पृ. 2)*

अभय की प्राप्ति

पूरी तरह निर्भीक तो वही हो सकता है जिसने सर्वशक्तिमान को प्राप्त कर लिया हो, क्योंकि वही तो भ्रांतियों से सर्वथा मुक्त हो जाने की अवस्था है | लेकिन मनुष्य दृढ़ और सतत प्रयास से तथा अधिकाधिक आत्मविश्वास के बल पर उस मार्ग पर प्रगति अवश्य करता रह सकता है....

जहां तक आंतरिक शत्रुओं का प्रश्न है, हमें सदैव उनसे भय मानना चाहिए | कामवासना, क्रोध आदि से भय खाना ठीक ही है | आंतरिक शत्रुओं पर विजय पाते ही बाह्य भय अपने आप समाप्त हो जाते हैं | सभी प्रकार के भयों का केंद्र हमारी देह है, और एक बार देह से आसक्ति समाप्त हो जाए तो फिर हमें कोई भय सताना नहीं चाहिए |

इस प्रकार, हम पाते हैं कि सभी प्रकार के भय हमारी कल्पना की निरर्थक सृष्टि हैं | जैसे ही हम अपने धन, परिवार और शरीर के प्रति आसक्ति से मुक्ति पा लेते हैं, हमारे हृदयों में भय के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता | 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा' (सांसारिक वस्तुओं का त्याग करते हुए उन्हें भोगो) बड़ा उदात्त धमदिश है | धन, परिवार

और शरीर यथावत रहेंगे, हमें केवल उनके प्रति अपनी मनोवृत्ति को बदलने की आवश्यकता है | ये हमारे नहीं, ईश्वर के हैं | तब फिर भय कैसा ?

इसीलिए उपनिषद हमें आदेश देता है, "वस्तुओं का भोग करते हुए भी उनके प्रति आसक्ति का त्याग कर दो |" तात्पर्य यह है कि हमें स्वयं को उनका स्वामी नहीं, अपितु न्यासी मानना चाहिए | जिस ईश्वर की ओर से हम इनके धारक बने हुए हैं, वही इनकी रक्षा के लिए हमें शक्ति और अपेक्षित शस्त्र उपलब्ध कराएगा |

इस प्रकार, जब हम स्वामी न रहकर अपने पांव तले की धूलि से भी अधिक साधारण सेवक की भूमिका में उतर आएंगे तो सभी भय धुंध की तरह छंट जाएंगे, तब हमें अनिर्वचनीय शांति की प्राप्ति हो जाएगी और हम सत्यनारायण (सत्य का ईश्वर) का साक्षात कर सकेंगे | *(वही)*

ईश्वर से भय

हम ईश्वर से डरें तो मनुष्य का डर छूट जाएगा | *(स्पीरा, पृ. 130)*

हमारे चतुर्दिक इतना अंधविश्वास और पाखंड व्याप्त है कि हम सही काम करने से भी डरते हैं | लेकिन आदमी भय के वश में हो जाए तो सत्य का भी दमन करना पड़ेगा | स्वर्णिम नियम यह है कि जो काम तुम्हें ठीक लगे, निर्भय होकर करो | *(हरि, 2-6-1946, पृ. 160)*

अभय का अर्थ दंभ या आक्रामक व्यवहार नहीं है | वह तो स्वयं भय का प्रतीक है | अभय की पहली शर्त है मन की शांति | इसके लिए ईश्वर में जीवित विश्वास होना आवश्यक है | *(हरि, 3-11-1946, पृ. 388)*

भय को मैं बिलकुल पसंद नहीं करता | एक आदमी दूसरे आदमी से भयभीत क्यों हो ? मनुष्य को केवल ईश्वर से भय खाना चाहिए, उसके बाद वह सब भयों से मुक्त हो जाएगा | *(हरि, 5-1-1947, पृ. 477)*

आत्मा की वीरता

प्रत्येक व्यक्ति को आत्मरक्षा की कला सिखाई जानी चाहिए | इसमें शरीर को प्रतिकार के लिए प्रशिक्षित करने से ज़्यादा मानसिक स्थिति को दृढ़ करने की जरूरत है | अभी तक हमारा मानसिक प्रशिक्षण हममें बेबसी की भावना पैदा करता रहा है | वीरता शरीर का नहीं, आत्मा का गुण है | मैंने हृष्टपुष्ट शरीर वाले लोग कायर देखे हैं और क्षीणतम काया में अद्‌भुत साहस के दर्शन किए हैं.... हममें से शारीरिक रूप से दुर्बलतम व्यक्ति को भी खतरों का सामना करने और वीरता का परिचय देने की शिक्षा दी जानी चाहिए | *(यंग, 20-10-1921, पृ. 335)*

हम एक सांध्यप्रकाश की देहरी पर खड़े हैं – यह सांध्यप्रकाश प्रात:काल का है या संध्या का है, हम नहीं जानते | एक के बाद रात होती है और दूसरे के बाद सूर्योदय | यदि हम इस सांध्यप्रकाश के पश्चात दुखभरी रात नहीं बल्कि उज्ज्वल दिन देखना चाहते हैं तो हममें से प्रत्येक के लिए उचित है.... कि वह समय के सत्य को पहचाने,

सभी प्रतिकूलताओं का सामना करके उसकी हिमायत करे और निर्भीक होकर किसी भी कीमत पर, उसका प्रचार तथा अनुगमन करे | *(स्पीरा, पृ. 303)*

हमने आज़ादी की ओर बढ़ने के लिए सत्य और अहिंसा का प्राचीन मार्ग चुना है और हमें ईश्वर के इस वचन से अपने में आशा और विश्वास जगाना चाहिए कि जो इस सीधे और संकरे रास्ते पर चलते हैं, उन्हें कभी असफलता का मुंह नहीं देखना पड़ता | *(यंग, 2-4-1931, पृ. 54)*

आत्मदमन और भीरुता, जो लगभग कायरता ही है, के इस देश में....हमें बहुत अधिक वीरता और बहुत अधिक आत्म-बलिदान के दर्शन नहीं हो सकते....मैं विनम्र, सौम्य और अहिंसक की श्रेष्ठतर वीरता.... की कामना करता हूं; यह वह वीरता है जो एक भी व्यक्ति को चोट पहुंचाए अथवा चोट पहुंचाने का विचार मन में लाए बगैर सूली पर चढ़ जाएगी | *(वही, पृ. 58)*

बड़ी-से-बड़ी लौकिक शक्ति के सम्मुख घुटने टेकने से साफ इंकार करने और मन में कटुता लाए बिना इस बात पर पूर्ण विश्वास रखने कि केवल आत्मा अमर है, शेष कुछ भी नहीं, से बढ़कर और कोई वीरता नहीं है | *(हरि, 15-10-1938, पृ. 291)*

हमारे सामने दो विकल्प हैं | हम एक बहुत बड़ी सैनिक शक्ति बन सकते हैं या, मेरे मार्ग पर चलकर, एक महान अहिंसक और अजेय शक्ति बन सकते हैं | दोनों ही विकल्पों की पहली शर्त यह है कि हम सभी भयों से अपने को मुक्त करें | *(हरि, 26-10-1947, पृ. 382)*

4. आस्था

13. आस्था का दिव्य संदेश

आस्था ही है जो हमें तूफानी समुद्रों के पार ले जाती है, आस्था पर्वतों को हिला सकती है, समुद्र को लांघ सकती है | यह आस्था और कुछ नहीं, अपने अंत:करण में विराजमान ईश्वर का जीवित और सुस्पष्ट बोध है | जिसे यह आस्था मिल गई, उसे फिर कुछ नहीं चाहिए | वह शरीर से रुग्ण होगा पर आत्मा से स्वस्थ होगा, भौतिक दृष्टि से निर्धन होगा पर आध्यात्मिक संपदा से मालामाल होगा | *(यंग, 24-9-1925, पृ. 331)*

आस्था के बिना यह संसार एक मिनट नहीं टिक सकता | सच्ची आस्था उन विभूतियों के तर्कसम्मत अनुभव को स्वीकार कर लेना है जिनके बारे में यह माना जाता है कि उन्होंने प्रार्थना और तप से शुद्ध किया गया जीवन जिया था | अत: सुदूर युगों के पैगंबरों अथवा अवतारों के प्रति आस्था रखना व्यर्थ का अंधविश्वास नहीं है बल्कि हमारी अंतरतम आध्यात्मिक आवश्यकता की तुष्टि है | *(यंग, 14-4-1927, पृ. 120)*

आस्था कोई कोमल पुष्प नहीं है जो जरा-से तेज़ झोंके से झड़ जाए | आस्था तो हिमालय पर्वत के समान है जो संभवत: अपरिवर्तनीय है | कोई तूफान शायद हिमालय पर्वत को जड़ से नहीं उखाड़ सकता.... मैं चाहता हूं कि तुममें से प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर और धर्म में ऐसी ही आस्था पैदा करे | *(हरि, 26-1-1934, पृ. 8)*

तर्क की सीमाएं

अनुभव ने मुझे इतना झुका दिया है कि मैं तर्क की निश्चित सीमाओं को पहचान सकूं | जिस प्रकार गलत जगह पर रखने से पदार्थ मिट्टी हो जाता है उसी प्रकार तर्क का दुरुपयोग उसे पागलपन में बदल देता है |

बुद्धिवादी प्रशंसनीय व्यक्ति होते हैं लेकिन बुद्धिवाद जब सर्वशक्तिमान होने का दावा करने लगता है तो वह एक विकराल दैत्य का रूप ग्रहण कर लेता है | तर्क को सर्वशक्तिमान मान लेना वैसी ही घटिया मूर्तिपूजा है जैसी कि वृक्ष और पत्थर को ही ईश्वर मानकर उसकी पूजा करना | *(यंग, 14-10-1926, पृ. 359)*

मैं तर्कबुद्धि को दबाने की बात नहीं कह रहा बल्कि अपने अंदर की उस चीज़ को मान्यता देने की बात कह रहा हूं जो स्वयं तर्क को पवित्र बनाती है | *(वही)*

मेरे मन में यह बात बिलकुल साफ है कि जहां शुद्ध और अदूषित तर्क की अभ्यर्थना ठीक है, वहीं किसी सत्ताधीश की अभ्यर्थना अवांछित है, चाहे वह सत्ताधीश कितना ही महान हो | *(यंग, 26-9-1929, पृ. 316)*

कुछ विषय ऐसे हैं जिनमें तर्कबुद्धि हमारा दूर तक साथ नहीं दे पाती और हमें आस्था का सहारा लेकर चीज़ों को स्वीकार करना पड़ता है | ऐसी स्थितियों में आस्था तर्क का खंडन नहीं करती बल्कि उसे लांघ जाती है | आस्था

छठी इंद्रिय के समान है जो उन मामलों में काम आती है जो तर्क की परिधि से बाहर हैं | *(हरि, 6-3-1937, पृ. 26)*

धर्म का अर्थ

मैं समझा दूं कि धर्म से मेरा आशय क्या है | धर्म से मेरा आशय हिंदू धर्म नहीं है, यद्यपि मैं इसे सभी धर्मों से अधिक आदर देता हूं, बल्कि वह धर्म है जो हिंदुत्व से भी परे है, जो मनुष्य की प्रकृति को ही बदल देता है, जो हमें अपने भीतर के सत्य के साथ तदाकार कर देता है और निरंतर हमारा पवित्रीकरण करता रहता है | यह मानव प्रकृति का स्थायी तत्व है जो पूर्ण अभिव्यक्ति पाने के लिए कोई भी त्याग करने को तत्पर रहता है और जो आत्मसिद्धि की प्राप्ति तथा अपने सृष्टा के बोध और सृष्टा तथा अपने बीच सच्ची अनुरूपता की पहचान होने तक आत्मा को बेचैन रखता है | *(यंग, 12-5-1920, पृ. 2)*

धर्म से मेरा आशय औपचारिक धर्म या प्रथागत धर्म से नहीं है बल्कि उस धर्म से है जो सभी धर्मों का मूल है, और जो हमारे सृष्टा से हमारा साक्षात कराता है | *(एमके, पृ. 7)*

मेरा धर्म

मेरे धर्म की कोई भौगोलिक सीमाएं नहीं हैं | यदि मेरी उसमें जीवित आस्था है तो वह मेरे भारत-प्रेम से भी आगे बढ़ जाएगा | *(यंग, 11-8-1920, पृ. 4)*

मेरा धर्म कारागृह का धर्म नहीं है | इसमें ईश्वर के दीन-से-दीन प्राणियों के लिए स्थान है | लेकिन यह उद्धतता, और जाति, धर्म तथा रंग के गर्व को सहन नहीं करता | *(यंग, 1-6-1921, पृ. 171)*

मेरा यह कथन निस्संदेह एक अर्थ में सही है कि मैं अपने धर्म को अपने देश से ज़्यादा प्यार करता हूं और इसलिए मैं हिंदू पहले हूं और राष्ट्रभक्त बाद में | इससे मैं अच्छे-से-अच्छे राष्ट्रभक्त से कम राष्ट्रभक्त नहीं बन जाता | मेरा आशय केवल यह है कि मेरे देश के हित और मेरे धर्म के हित एक ही हैं |

इसी प्रकार, जब मैं कहता हूं कि मैं अपनी मुक्ति को सर्वाधिक, यहां तक कि भारत की मुक्ति से भी अधिक, महत्व देता हूं तो इसका आशय यह नहीं होता कि मेरी निजी मुक्ति के लिए भारत की राजनीतिक अथवा किसी अन्य प्रकार की मुक्ति की बलि देनी होगी | इसका अनिवार्य आशय यह होता है कि दोनों सहगामी हैं | *(यंग, 23-2-1922, पृ. 123)*

जीवन का जो सिद्धांत-सूत्र मैंने स्वीकार किया है वह यह है कि किसी आदमी द्वारा, वह चाहे जितना बड़ा हो, किया गया कोई काम तब तक नहीं फलेगा-फूलेगा जब तक कि वह आदमी वृत्ति से धार्मिक न हो | *(स्पीरा, पृ. 377-78)*

मुझे अपने काम के और मानवता के प्रति भरपूर आस्था है | भारतीय मानवता किसी से हीन नहीं है, संभवत: श्रेष्ठ ही है | वस्तुत: मेरे काम के लिए मानव प्रकृति में आस्था होना अनिवार्य है | यद्यपि मार्ग अंधकारमय दिखाई देता है पर यदि मुझे ईश्वर के मार्गदर्शन में आस्था है, और उसके अचूक मार्गदर्शन के बिना अपनी विवशता को स्वीकार करने की विनम्रता है, तो वह मेरे मार्ग को आलोकित करेगा और मुझे रास्ता दिखाएगा | *(यंग, 27-11-1924, पृ. 391)*

कोई इसे मात्र काल्पनिक कह सकता है, पर मेरा पक्का विश्वास है कि यदि मनुष्य कोई काम ईश्वर के नाम पर और उसमें पूरी आस्था रखते हुए करता है तो भले ही वह उसके जीवन के अंतिम दिनों में किया गया हो, वह कभी व्यर्थ नहीं जाता | मैं यह बात निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि मैंने जो काम हाथ में लिया है, वह मेरा नहीं, ईश्वर का है | *(हरि, 1-3-1935, पृ. 24)*

यही धर्म है जिसका आदेश पवित्र पुस्तकों में मिलता है, जिसका अनुगमन मनीषियों ने किया है, जिसकी व्याख्या विद्वानों ने की है, और जो हृदय को रुचिकर है | तीन शर्तें हैं जो पहले पूरी होनी चाहिए – चौथी उनके बाद अमल में आती है | व्यक्ति को अज्ञानी अथवा दुष्ट के उपदेशों का अनुसरण करने का अधिकार नहीं है, भले ही वे उपदेश उसे अच्छे लगते हों | जो व्यक्ति अनुपकार, अ-द्वेष और त्याग की तीन शर्तों का कठोरता से पालन करता हो वही नियम अर्थात धर्म के निर्धारण का अधिकारी है | *(हरि, 17-11-1946, पृ. 397)*

भौतिक बल की व्यर्थता

मुझे पक्का विश्वास है कि पाशविक बल के सहारे कोई धर्म जीवित नहीं रखा जा सकता | बल्कि जो तलवार का सहारा लेते हैं, तलवार उन्हें ही मार देती है | *(हरि, 9-3-1934, पृ. 29)*

राष्ट्रों की तरह धर्म भी तुला पर रखे हैं | जो धर्म और जो राष्ट्र अन्याय, असत्य अथवा हिंसा का सहारा लेकर चलेगा, उसका नामोनिशान दुनिया से मिट जाएगा | *(हरि, 12-9-1936, पृ. 247)*

नैतिकता

मेरे लिए नैतिक में आध्यात्मिक समाविष्ट है....सुधारक के रूप में, मैंने हर चीज़ को नैतिक दृष्टि से देखा है | चाहे मैं किसी राजनीतिक समस्या से जूझ रहा हूं अथवा सामाजिक या आर्थिक समस्या से, उसका नैतिक पक्ष सदैव प्रबल होकर सामने आ जाता है और मेरे संपूर्ण दृष्टिकोण पर छा जाता है | *(हरि, 29-3-1935, पृ. 51)*

सभी युगों के लिए वैध, निरपेक्ष नैतिकता जैसी कोई चीज़ नहीं है | लेकिन एक सापेक्ष नैतिकता जरूर है जो हम जैसे अपूर्ण मानवों के लिए निरपेक्ष जैसी ही है | तदनुसार, दवा के तौर पर, दवा की खुराक के बराबर मात्रा में, और डाक्टर के निर्देशानुसार किए जाने वाले मद्यसेवन को छोड़कर मद्य का पान निरपेक्ष रूप से अनैतिक है |

इसी प्रकार, अपनी पत्नी के अलावा किसी अन्य स्त्री को कामुक दृष्टि से देखना भी बिलकुल गलत है | ये दोनों ही बातें शुद्ध तर्क से सिद्ध की जा चुकी हैं | इनके जवाबी तर्क भी हमेशा दिए गए हैं | पर ये तो ईश्वर, जो ब्रह्मांड का स्वामी है, के विरुद्ध भी दिए गए हैं | तर्कातीत आस्था ही युगों से हमारा अवलंब रही है .... मेरी आस्था ने ही मुझे कठिन परिस्थितियों में फंसने से बचाया है और अब भी बचा रही है | उसने मुझे कभी धोखा नहीं दिया है | इसने कभी किसी को धोखा नहीं दिया है | *(हरि, 23-12-1939, पृ. 387)*

धर्म का वैविध्य

सच पूछा जाए तो जितने व्यक्ति हैं, उतने ही धर्म हैं | *(हिंस्व, पृ. 49)*

धर्म एक ही बिंदु पर पहुंचने वाले भिन्न-भिन्न मार्ग हैं | यदि गंतव्य एक ही है तो इससे क्या फर्क पड़ता है यदि हम वहां तक पहुंचने के लिए अलग-अलग मार्ग पकड़ें ? *(वही, पृ. 50)*

मैं इस धारणा से सहमत नहीं हूं कि संसार में एक ही धर्म हो सकता है अथवा होगा | इसलिए मैं उनमें समानता के सूत्र को पकड़ने और परस्पर सहिष्णुता का विकास करने के लिए प्रयासरत हूं | *(यंग, 31-7-1924, पृ. 254)*

बुनियादी एकता

सभी धर्मों की आत्मा एक है, पर उनके रूप अनेक हैं | ये रूप अनंत काल तक रहेंगे | बुद्धिमान लोग बाहरी सतह की चिंता न करते हुए (धर्मों के) विविध रूपों के भीतर एक ही आत्मा को निवास करता पाएंगे | *(यंग, 25-9-1924, पृ. 318)*

मैं समझता हूं कि विश्व के सभी महान धर्म लगभग सच्चे हैं | 'लगभग' इसलिए कहता हूं कि मेरा विश्वास है कि मानव चूंकि अपूर्ण है इसलिए वह जिस चीज़ को भी हाथ लगाएगा वह अपूर्ण हो जाएगी | पूर्णता केवल ईश्वर का गुण है, और यह अवर्णनीय है, अननुवाद्य है | मैं यह जरूर मानता हूं कि प्रत्येक मनुष्य के लिए ईश्वर के समान पूर्ण बनना संभव है | हम सबके लिए उस पूर्णता की कामना करना आवश्यक है, लेकिन जब उस स्थिति की प्राप्ति होती है तो वह अवर्णनीय और अपरिभाषेय हो जाती है | इसलिए मैं पूरी विनम्रता के साथ यह स्वीकार करता हूं कि वेद, कुरान और बाइबिल भी ईश्वर की अपूर्ण वाणियां हैं, और अनेक मनोवेगों के शिकार हम अपूर्ण मानवों के लिए इन ईश्वरीय वाणियों को भी पूरी तरह समझना असंभव है | *(यंग, 22-9-1927, पृ. 319)*

मैं चाहूंगा कि विभिन्न धर्मों को मानने वाले लोग – केवल भारत ही नहीं बल्कि दुनिया भर के – एक-दूसरे के संपर्क में आकर बेहतर मनुष्य बनें; यदि ऐसा हो सके तो दुनिया वर्तमान की अपेक्षा कहीं बेहतर रहने की जगह हो जाएगी | मैं अधिकतम सहिष्णुता का हिमायती हूं और उसी के लिए प्रयासरत हूं | मैं लोगों से कहता हूं कि वे प्रत्येक धर्म को स्वयं धार्मिकों की दृष्टि से परखें | मैं ऐसी आशा नहीं करता कि मेरे सपनों के भारत में एक ही धर्म

– पूर्णत: हिंदू या ईसाई या इस्लाम – का विकास होगा | मैं तो चाहता हूं कि भारत पूर्णत: सहिष्णु बने जिसमें उसके सभी धर्म साथ-साथ चलें | *(यंग, 22-12-1927, पृ. 425)*

भक्तिमय अनुसंधान और अध्ययन तथा अधिकाधिक व्यक्तियों से चर्चा के उपरांत, मैं बहुत पहले ही इस निष्कर्ष पर पहुंच गया था कि सभी धर्म सच्चे हैं और सभी में कुछ-कुछ त्रुटियां भी हैं, और स्वधर्म पर आरूढ़ रहते हुए मुझे अन्य धर्मों से भी हिंदू धर्म के समान ही प्रेम करना चाहिए | इसी से यह निष्कर्ष निकलता है कि हमें सबसे अपने बंधु-बांधवों के समान प्रेम करना चाहिए और उनके बीच कोई फर्क नहीं करना चाहिए | *(यंग, 19-1-1928, पृ. 22)*

एक ईश्वर में विश्वास सभी धर्मों की आधारशिला है | लेकिन मैं ऐसे समय की कल्पना नहीं कर पाता जब दुनिया में व्यवहारत: एक ही धर्म रह जाएगा | सिद्धांतत: चूंकि ईश्वर एक है, इसलिए धर्म भी एक ही होना चाहिए | लेकिन व्यवहार में, मुझे आज तक दो आदमी ऐसे नहीं मिले जिनकी ईश्वर के विषय में धारणा बिलकुल एकसमान हो | इसलिए भिन्न-भिन्न स्वभावों और जलवायु संबंधी परिस्थितियों के अनुसार धर्म भी शायद हमेशा भिन्न-भिन्न ही रहेंगे | *(हरि, 2-2-1934, पृ. 8)*

मैं विश्व के सभी महान धर्मों के मौलिक सत्य में विश्वास करता हूं | मैं मानता हूं कि वे सभी ईश्वर-प्रदत्त हैं और यह भी मानता हूं कि जिन लोगों के लिए उनका प्राकट्य हुआ, उनके लिए वह आवश्यक था | मैं यह भी विश्वास करता हूं कि यदि हम सभी लोग विभिन्न धर्मों की पवित्र पुस्तकों को उन धर्मों के अनुयाइयों के दृष्टिकोण से पढ़ें तो हम पाएंगे कि वे मूलत: एक हैं और एक-दूसरे के सहायक हैं | *(हरि, 16-2-1934, पृ. 5-6)*

धर्म लोगों को एक-दूसरे से पृथक करने के लिए नहीं हैं, वे एक-दूसरे को जोड़ने के लिए हैं | *(हरि, 8-6-1940, पृ. 157)*

धर्मग्रंथ

मेरे अनुसार वेद दिव्य और अपौरुषेय हैं | "शब्द तो मारता है |" अर्थ-भावना प्रकाश देती है | और वेदों की भावना है पवित्रता, सत्य, निष्कपटता, शुचिता, विनम्रता, सरलता, क्षमा, दिव्यता और वे सभी गुण जिनसे स्त्री-पुरुष उदात्त और वीर बनते हैं | *(यंग, 19-1-1921, पृ. 22)*

मैं यह नहीं मानता कि केवल वेद ही दिव्य हैं | मेरी मान्यता है कि बाइबिल, कुरान और जेंदअवेस्ता भी वेदों के समान ईश्वरीय प्रेरणा से प्रकट हुए हैं | हिंदू धर्मग्रंथों में मेरे विश्वास का तात्पर्य यह नहीं है कि मैं उनके एक-एक शब्द और श्लोक को दैवी प्रेरणा से उद्‌भूत मानता हूं.... मैं ऐसी किसी भी व्याख्या को मानने से इंकार करता हूं जो तर्क या नैतिक दृष्टि के प्रतिकूल हो, भले ही यह व्याख्या कितनी ही विद्वत्तापूर्ण क्यों न हो | *(यंग, 6-10-1921, पृ. 317)*

मैं अक्षरचारी नहीं हूं | इसलिए मैं दुनिया के विभिन्न धर्मग्रंथों की भावना को समझने का प्रयास करता हूं | धर्मग्रंथों की व्याख्या करते समय मैं स्वयं उन्हीं के द्वारा निर्धारित सत्य और अहिंसा की कसौटी को लागू करता हूं | इस कसौटी पर जो खरे नहीं उतरते, उन्हें अस्वीकार कर देता हूं और जो खरे उतरते हैं, उनको अपना लेता हूं | *(यंग, 27-8-1925, पृ. 293)*

मुझे 'सरमन ऑन द माउंट' तथा 'भगवद्गीता' में कोई अंतर दिखाई नहीं दिया | 'सरमन' में जो बात चित्रोपम भाषा में कही गई है, 'भगवद्गीता' में उसे वैज्ञानिक सूत्र का रूप दे दिया गया है | सामान्य अर्थों में उसे वैज्ञानिक पुस्तक न भी कह सकें तो भी इसने प्रेम के नियम – जिसे मैं समर्पण का नियम कहना चाहूंगा – की प्रस्थापना बड़े वैज्ञानिक ढंग से की है | 'सरमन ऑन द माउंट' में यही नियम अद्भुत भाषा में दिया गया है | 'न्यू टेस्टामेंट' पढ़कर मुझे सुख और असीम आनंद का अनुभव हुआ, क्योंकि इसे मैंने 'ओल्ड टेस्टामेंट' के कुछ अंशों से उत्पन्न विकर्षण के बाद पढ़ा था | आज, मान लीजिए कि मुझसे कोई 'गीता' छीन ले और मैं उसके सभी श्लोक भूल जाऊं लेकिन मेरे पास 'सरमन' की प्रति हो, तो मुझे उससे वही आनंद मिलेगा जो मैं 'गीता' से पाता हूं | *(यंग, 22-12-1927, पृ. 426)*

मेरे अंदर एक बात है कि मैं चीज़ों के घिनौने पक्ष की अपेक्षा उनके उज्ज्वल पक्ष को देखना पसंद करता हूं, इसलिए मैं किसी धर्म के किसी महान ग्रंथ से सुख एवं प्रेरणा प्राप्त कर सकता हूं | मैं भले ही 'गीता' या 'न्यू टेस्टामेंट' का एक भी पद्य न सुना पाऊं, कोई हिंदू बालक या ईसाई बालक संभवत: उन्हें ज़्यादा अच्छी तरह सुना सके, लेकिन मैंने इन दोनों पुस्तकों की भावना को जिस प्रकार आत्मसात किया है, उससे मुझे वे चतुर बच्चे वंचित नहीं कर सकते | *(वही)*

इसलिए, व्यक्ति का अनुभव ही अंतत: उसका मार्गदर्शक है | लिखित शब्द निस्संदेह सहायक तो होता है, लेकिन उसकी भी व्याख्या करनी पड़ती है, और जब विभिन्न व्याख्याओं में विरोध हो तो अंतिम निर्णय शोधकर्ता को स्वयं करना चाहिए | *(हरि, 22-12-1933, पृ. 3)*

मैं मानता हूं कि मेरे अंदर कोई अंधविश्वास नहीं है | सत्य केवल इसलिए सत्य नहीं है कि वह प्राचीन है | न यह जरूरी है कि उसे केवल प्राचीन होने के कारण ही संदेह की दृष्टि से देखा जाए | जीवन की कुछ बुनियादी बातें हैं जिन्हें सिर्फ इसलिए नहीं छोड़ा जा सकता कि उन्हें जीवन में लागू करना कठिन है | *(हरि, 14-3-1936, पृ. 36)*

धार्मिक शिक्षा

यदि भारत को अपना आध्यात्मिक दिवाला नहीं निकालना है तो उसकी युवा पीढ़ी को धार्मिक शिक्षा देना भी उतना ही आवश्यक माना जाना चाहिए जितना कि लौकिक शिक्षा देना | यह सही है कि धार्मिक पुस्तकों का ज्ञान और धर्म का ज्ञान एक-दूसरे के पर्याय नहीं हैं | लेकिन यदि हम अपने लड़के-लड़कियों को धर्म न दे सकें तो

श्रेष्ठता में उसके बाद की वस्तु देकर संतोष मान लेना चाहिए | और, स्कूलों में यह शिक्षा मिले या न मिले, बड़े बच्चों को दूसरे कामों की तरह धर्म के मामले में भी स्वावलंबिता की कला विकसित करनी चाहिए | जिस तरह उनके वाद-विवाद तथा अब, कताई के क्लब हैं उसी तरह उन्हें धार्मिक शिक्षा की कक्षाएं भी स्वयं चलानी चाहिए| *(यंग, 25-8-1927, पृ. 272)*

मैं नहीं मानता कि धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था करना राज्य का काम है – वह इस दायित्व का निर्वाह कर भी नहीं पाएगा | मेरा मानना है कि धार्मिक शिक्षा देना केवल धार्मिक संगठनों का काम है | धर्म और नीतिशास्त्र को मिलाइए मत | मैं समझता हूं कि आधारभूत नीतिशास्त्र की शिक्षा देने का दायित्व निस्संदेह राज्य का है | धर्म से यहां मेरा आशय आधारभूत नीतिशास्त्र भर से नहीं है बल्कि संप्रदायगत धर्म से है | राज्य-सहायताप्राप्त धर्म और राजकीय चर्च हमें काफी नुकसान पहुंचा चुके हैं | जो समाज या वर्ग अपने धर्म की रक्षा के लिए राजकीय सहायता पर अंशत: या पूर्णत: आश्रित है, वह इस योग्य नहीं है कि उसके पास कोई उल्लेखनीय धर्म शेष रहे, बल्कि यह कहना ज्यादा सही होगा कि उसका अपना कोई उल्लेखनीय धर्म है ही नहीं | *(हरि, 23-3-1947, पृ. 76)*

धार्मिक शिक्षा की पाठ्यचर्या में अपने धर्म के अलावा अन्य धर्मों के सिद्धांतों का अध्ययन समाविष्ट होना चाहिए | इसके लिए विद्यार्थियों को आदर और उदार सहिष्णुता की भावना के साथ विश्व के विभिन्न महान धर्मों के सिद्धांतों को समझने और उन्हें सराहने का अभ्यास डालने का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए | *(यंग, 6-12-1928, पृ. 406)*

14. परमात्मा का आशय

नियम-निर्माता और नियम

ईश्वर को आप किसी अन्य नाम से भी पुकार सकते हैं, बशर्ते कि उस नाम का अर्थ हो, जीवन का जीवंत नियम – दूसरे शब्दों में, नियम और नियम-निर्माता एक साथ | *(हरि, 14-4-1946, पृ. 80)*

ईश्वर स्वयं नियम भी है और नियम-निर्माता भी | इसलिए इस बात का प्रश्न ही नहीं उठता कि किसी ने ईश्वर की सृष्टि की हो, मनुष्य जैसे अकिंचन प्राणी की तो बिसात ही क्या है ? मनुष्य बांध का निर्माण कर सकता है, किंतु नदी का नहीं | वह कुर्सी बना सकता है, पर लकड़ी नहीं बना सकता | हां, वह अपने मन में ईश्वर की कल्पना कई रूपों में कर सकता है | लेकिन मनुष्य यदि नदी या लकड़ी तक नहीं बना सकता तो ईश्वर की सृष्टि भला कैसे कर सकता है ? इसलिए विशुद्ध सत्य यह है कि ईश्वर ने मनुष्य की सृष्टि की है | इसका विपर्याय केवल भ्रम है | फिर भी, कोई चाहे तो कह सकता है कि ईश्वर न कर्ता है, न कारण है | ये सब, इनमें से प्रत्येक, उसके अभिधय हैं | *(वही)*

ईश्वर साकार नहीं

मैं ईश्वर को साकार नहीं मानता | मेरी दृष्टि में सत्य ही ईश्वर है, और ईश्वरीय नियम तथा ईश्वर कोई वैसी अलग-अलग चीज़ें नहीं हैं जैसे कि कोई लौकिक राजा और उसका कानून होते हैं | ईश्वर एक विचार है, स्वयं नियम है | इसलिए इस बात की कल्पना नहीं की जा सकती कि ईश्वर स्वयं नियम को तोड़ेगा | इसलिए ऐसा नहीं है कि वह हमारे कर्म का नियमन करके स्वयं अलग हो जाता हो | जब हम यह कहते हैं कि वह हमारे कर्म का नियमन करता है तो हम केवल मनुष्यों की भाषा का प्रयोग कर रहे होते हैं और ईश्वर को मर्यादित कर देते हैं | अन्यथा ईश्वर और उसका नियम सर्वव्यापी हैं और सबके नियंता हैं |

इसलिए मैं नहीं समझता कि वह हमारी हर प्रार्थना को ब्यौरेवार पूरा करता है, लेकिन इसमें संदेह नहीं कि वह हमारे कर्म का नियंता है....स्वेच्छा से कार्य करने की हमारी आज़ादी जनसंकुल डेक पर सवार यात्री से भी थोड़ी है|

....हालांकि मैं जानता हूं कि मेरी आज़ादी एक यात्री से भी थोड़ी है, पर मैं उसकी कद्र करता हूं, क्योंकि मैंने गीता की इस मुख्य शिक्षा को अच्छी तरह आत्मसात कर लिया है कि मनुष्य इस रूप में अपने भाग्य का विधायक स्वयं है कि उसे विकल्पों में से चुनाव करने की आजादी है – इस आज़ादी का वह जैसे चाहे, प्रयोग करे | लेकिन परिणाम पर उसका वश नहीं है | ज्योंही उसके मन में यह विचार आया कि परिणाम पर उसका अधिकार है, उसे निराशा का मुंह देखना पड़ता है | *(हरि, 23-3-1940, पृ. 55)*

यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जानी चाहिए | ईश्वर हमारी तरह देहधारी नहीं है | वह विश्व का सबसे बड़ा जीवंत बल अथवा नियम है | इसलिए वह सनक में आकर काम नहीं करता, न उस नियम में किसी संशोधन या सुधार की गुंजाइश है | उसकी इच्छा निश्चित और अपरिवर्तनीय है, शेष सभी कुछ प्रतिक्षण परिवर्तनशील है | *(हरि, 28-7-1946, पृ. 233)*

उसका व्यक्तित्व

मैंने ईश्वर के साक्षात दर्शन नहीं किए हैं | अगर किए होते तो आपसे बात करने की जरूरत न रहती | मेरा विचार ही काम कर जाता – वाणी और कर्म अनावश्यक हो जाते | लेकिन मुझे ईश्वर के अस्तित्व में अमिट आस्था है | विश्व के करोड़ों लोग मेरी इस आस्था में भागीदार हैं | विद्वान-से-विद्वान व्यक्ति भी इन करोड़ों अशिक्षित लोगों की आस्था को हिला नहीं सकते | *(हरि, 3-8-1947, पृ. 262)*

ईश्वर सर्वांग शुभ है | उसमें बुराई का लेश भी नहीं है | ईश्वर ने मनुष्य को अपने जैसा बनाया था | यह हमारा दुर्भाग्य है कि मनुष्य ने ईश्वर को अपने जैसा बनाने का प्रयास किया है | इसी अहंकार ने मानवता को कठिनाइयों के सागर में उतार दिया है | ईश्वर सबसे बड़ा कीमियागर है | उसकी उपस्थिति में लोहा और लोहमल शुद्ध सोने में बदल जाते हैं | इसी प्रकार, सारी बुराई अच्छाई में बदल जाती है |

ईश्वर जीता है, पर हमारी तरह नहीं | उसके द्वारा पैदा किए गए प्राणी जीते हैं, पर मरने के लिए | लेकिन ईश्वर तो जीवन है | अत: शुभत्व या उसे व्यक्त करने वाले अन्य अर्थ, उसके गुण-विशेषण नहीं हैं |

शुभत्व ईश्वर है | ईश्वर से पृथक यदि कोई शुभत्व है तो वह एक निर्जीव वस्तु है, और वह तभी तक रहता है जब तक उससे कोई स्वार्थ सिद्ध होता है | सभी आचारों के साथ भी यही बात है | यदि उन्हें हमारे भीतर रहना है तो उनका अस्तित्व और अर्जन ईश्वर के संबंध में ही अर्थवान होना चाहिए | हम अच्छा बनने का प्रयास इसलिए करते हैं कि हम ईश्वर को प्राप्त करना चाहते हैं | विश्व का समस्त शुष्क नीतिशास्त्र धूलि के समान है, क्योंकि ईश्वर से पृथक उसमें कोई जीवन नहीं है | वह ईश्वर से आता है तो उसमें प्राण होते हैं | तब वह हमारा अंग बनकर हमारा उदात्तीकरण करता है |

इसके विपरीत, शुभत्व-रहित ईश्वर की धारणा निर्जीव है | ऐसी धारणा को हम अपनी व्यर्थ की कल्पना से जीवन प्रदान करते हैं | *(हरि, 24-8-1947, पृ. 285)*

'ईश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन करने' और 'सत्य के रूप में उसका दूर से दर्शन करने' में बड़ा अंतर है | मेरी राय में, उपर्युक्त दोनों कथनों के बीच असंगति नहीं है और एक कथन दूसरे कथन का स्पष्टीकरण करता है | हिमालय को हम बड़ी दूर से देखते हैं, और जब उसके शिखर पर होते हैं तो उसे प्रत्यक्ष देखते हैं | लाखों लोग सैकड़ों मील

की दूरी से हिमालय को देख सकते हैं बशर्ते कि वह उनकी दृष्टिसीमा में हो, लेकिन उसे प्रत्यक्ष वे ही मुट्ठी भर लोग देख सकते हैं जो वर्षों की यात्रा करके उसके शिखर पर पहुंच सकें | *(हरि, 23-11-1947, पृ. 432)*

मुझे इस बात में कभी संदेह नहीं रहा है कि ईश्वर का अस्तित्व है और उसका सबसे सुस्पष्ट नाम है सत्य | *(हरि, 25-1-1948, पृ. 535)*

ईश्वर की शक्ति

प्रत्येक वस्तु जो आरंभ हुई है, उसका अंत भी अनिवार्य है | ये सूर्य, चंद्रमा और पृथ्वी सभी एक-न-एक दिन नष्ट हो जाएंगे, भले ही ऐसा होने में असंख्य वर्ष लगें | केवल ईश्वर ही अमर और अनश्वर है | उसका वर्णन करने के लिए शब्द कहां से आएंगे ? *(हरि, 16-6-1946, पृ. 183)*

ईश्वर को बुद्धि के माध्यम से प्राप्त नहीं किया जा सकता | बुद्धि हमें केवल एक निश्चित बिंदु तक ले जा सकती है, उसके आगे नहीं | ईश्वर तो आस्था और आस्था से उत्पन्न ज्ञान का विषय है | मनुष्य अपने से बेहतर पुरुषों के अनुभव का आश्रय ले सकता है या फिर अपने निजी अनुभव से तसल्ली कर सकता है | पूर्ण आस्था हो तो फिर अनुभव की आवश्यकता नहीं रहती | *(हरि, 4-8-1946, पृ. 249)*

निरपेक्ष सत्य का ज्ञान तो केवल ईश्वर को है | इसीलिए मैंने प्राय: कहा है कि सत्य ईश्वर है | अत: मनुष्य, जो सीमित क्षमता वाला जीव है, निरपेक्ष सत्य को नहीं जान सकता | *(हरि, 7-4-1946, पृ. 70)*

मैं उस महान शक्ति को अल्लाह या खुदा या ईश्वर के नाम से नहीं बल्कि सत्य के नाम से पुकारता हूं | मेरी दृष्टि में, सत्य ईश्वर है, और सत्य हमारी सभी योजनाओं का अध्यारोहण करता है | पूर्ण सत्य केवल उसी महान शक्ति अर्थात सत्य के हृदय में विराजमान है | मुझे बचपन से ही सिखाया गया था कि सत्य अगम्य है – ऐसी चीज़ है जिस तक तुम पहुंच नहीं सकते | एक महान अंग्रेज ने मुझे यह विश्वास करना सिखाया कि ईश्वर अज्ञेय है | वह ज्ञेय है, पर केवल उस बिंदु तक जहां तक हमारी सीमित बुद्धि की पहुंच है | *(हरि, 20-4-1947, पृ. 109)*

ईश्वर सर्वशक्तिमान है | वह लोगों का हृदय-परिवर्तन कर सकता है और उनके बीच सच्ची शांति स्थापित कर सकता है | *(हरि, 3-8-1947, पृ. 262)*

उसका शासन

आज, पश्चिम में, लोग बात ईसा की करते हैं, लेकिन वस्तुत: उनके जीवन का संचालन ईसा-विरोधी बातें करती हैं | इसी प्रकार, ऐसे लोग हैं जो बात इस्लाम की करते हैं, लेकिन वस्तुत: अनुगमन शैतान का करते हैं | यह बड़ी शोचनीय स्थिति है.... यदि लोग ईश्वर का अनुगमन करें तो दुनिया में आज जो भ्रष्टाचार और मुनाफाखोरी दिखाई दे रही है, वह समाप्त हो जाए | अभी, अमीर और भी अमीर हो रहे हैं तथा निर्धन और भी निर्धन हो रहे हैं | सब

तरफ भूख, नंगेपन और मौत का आलम है | ये ईश्वर के साम्राज्य के नहीं बल्कि शैतान, रावण या ईसा-विरोधी साम्राज्य के चिह्न हैं | हम केवल होठों से ईश्वर के नाम का जप करके पृथ्वी पर उसका शासन नहीं उतार सकते | हमारा आचरण शैतान के बजाय ईश्वर के अनुरूप होना चाहिए | *(हरि, 23-6-1946, पृ. 186-87)*

जब लोगों के हृदयों पर ईश्वर का शासन होगा तभी वे क्रोध से मुक्ति पा सकेंगे | *(हरि, 20-4-1947, पृ. 118)*

ईश्वरीय आदेश के रूप में ज्ञात आचरण के सभी सार्वभौम नियम सरल और समझने में आसान हैं तथा व्यक्ति चाहे, तो उन पर आचरण करना भी आसान है | वे कठिन इसलिए प्रतीत होते हैं कि मानवजाति जड़ता का शिकार है | मनुष्य एक प्रगतिशील प्राणी है | प्रकृति में कुछ भी निश्चल नहीं है | केवल ईश्वर स्थिर है क्योंकि वह जैसा कल था, वैसा ही आज है और वैसा ही आगामी कल रहेगा, फिर भी वह सदा गतिशील है | लेकिन हमें ईश्वर के गुणों की चिंता करने की आवश्यकता नहीं है | हमें तो यह समझना है कि हम सदा गतिमान रहते हैं | इसीलिए मेरा दृढ़ मत है कि यदि मानवजाति को जीवित रहना है तो उसे सत्य और अहिंसा के प्रभाव में अधिकाधिक आना चाहिए | आचरण के इन्हीं दो मूलभूत नियमों के अधीन मुझे और आपको काम करना तथा जीवित रहना है | *(हरि, 9-11-1947, पृ. 406)*

जो मन ईश्वर के प्रति अनुरक्त नहीं है, वह भटकता है और उसमें आराधना के मंदिर का गुण नहीं रह जाता | *(वही)*

बुराई की उत्पत्ति

दुनिया में बुराई क्यों है, इसका उत्तर देना कठिन है | मैं जो दे सकता हूं, उसे एक ग्रामीण का उत्तर कहा जा सकता है | जहां अच्छाई है, वहां बुराई भी होनी जरूरी है, उसी तरह जैसे कि जहां प्रकाश है, वहां अंधकार भी होना चाहिए | लेकिन यह बात केवल मानवों के संबंध में ठीक है | ईश्वर के आगे न कुछ अच्छा है, न बुरा | हम निर्धन ग्रामीण ईश्वरीय विधान की चर्चा मानवों की दृष्टि से कर सकते हैं, किंतु हमारी भाषा ईश्वर की भाषा नहीं है |

वेदांत का कथन है कि संसार माया है | यह समाधान भी अपूर्ण मानवता की तुतलाहट है | इसीलिए मैं कहता हूं कि मैं इस प्रश्न पर अपना सिर नहीं खपाऊंगा | यदि मुझे भगवान के अंतरतम प्रकोष्ठ में झांकने की अनुमति भी मिल जाए तो मैं वैसा करने का प्रयास नहीं करूंगा | मैं वहां झांककर करूंगा क्या ? हमारी आध्यात्मिक उन्नति के लिए यही जानना पर्याप्त है कि ईश्वर भलाई करने वाले का साथ देता है | वैसे, यह भी एक ग्रामीण का समाधान ही है | *(हरि, 7-9-1935, पृ. 233)*

मैं किसी तार्किक विधि से इस बात का जवाब नहीं दे सकता कि बुराई क्यों है | ऐसा करने का प्रयास करना तो अपने को ईश्वर के समकक्ष मानना होगा | इसलिए मैं विनम्रतापूर्वक बस यह माने लेता हूं कि बुराई है | और मैं ईश्वर को दीर्घकाल से दुखी और धैर्यवान कहता हूं, क्योंकि उसने इस संसार में बुराई को चलने की अनुमति दे

रखी है | मैं जानता हूं कि ईश्वर बुराई से मुक्त है | वह बुराई का सृष्टिकर्ता है, पर बुराई उसका स्पर्श नहीं कर सकती |

मैं यह भी जानता हूं कि यदि मैं अपने जीवन को दांव पर लगाकर भी बुराई से संघर्ष न करूं तो कभी ईश्वर को नहीं जान पाऊंगा | मेरे साधारण और सीमित अनुभव से मेरा यह विश्वास दृढ़ हो गया है | मैं जितना ही निर्मल बनने का प्रयास करता हूं, उतना ही अपने को ईश्वर के निकट अनुभव करता हूं | मैं कितना प्रयास और करूं कि मेरी आस्था मात्र एक विद्रूप न रहे, जैसी कि वह आज है, बल्कि हिमालय की तरह अविचल और उसके शिखरों पर मंडित हिम के समान श्वेत तथा दैदीप्यमान हो जाए ? *(यंग, 11-10-1928, पृ. 341)*

विशुद्ध वैज्ञानिक अर्थ में, ईश्वर अच्छाई और बुराई, दोनों की तह में है | वह जिस प्रकार शल्यचिकित्सक के चाकू को निर्देशित करता है उसी प्रकार हत्यारे के खंजर को भी निर्देशित करता है | लेकिन मानव की दृष्टि में, अच्छाई और बुराई एक-दूसरे से अलग और असंगत हैं चूंकि ये प्रकाश और अंधकार, ईश्वर और शैतान की प्रतीक हैं.... *(हरि, 20-2-1937, पृ. 9)*

यह कहना कि ईश्वर बुराई को चलने दे रहा है, कानों को अच्छा नहीं लगता | लेकिन यदि वह अच्छाई के लिए जिम्मेदार है तो फिर बुराई के लिए भी जिम्मेदार माना जाना चाहिए | क्या ईश्वर ने रावण को अतुलित बल प्रदर्शित नहीं करने दिया ? हमारी उलझन का मूल कारण संभवत: यह है कि हम ईश्वर को ठीक से समझते नहीं हैं | ईश्वर कोई व्यक्ति नहीं है | वह वर्णनातीत है | वह नियम-निर्माता भी है, नियम भी है और नियम का पालन कराने वाला भी है | कोई मनुष्य इतनी शक्तियों के स्वामी होने का दंभ नहीं कर सकता | अगर करे तो वह विशुद्ध तानाशाह कहलाएगा | ये शक्तियां उसी के पास हैं जिसे हम ईश्वर मानकर पूजते हैं | यथार्थ यही है, इसे स्पष्टतया समझने से इस बात का उत्तर मिल जाएगा (कि क्या ईश्वर बुराई को चलने की अनुमति देता है ?) | *(हरि, 24-2-1946, पृ. 24)*

एक कहावत है कि बाहर जो दिखाई देता है, वह अंदर का प्रतिबिंब है | अगर आप भले हैं, तो सारी दुनिया आपको भली दिखाई देगी | इसके विपरीत, यदि आप किसी को बुरा मानने की ओर प्रवृत्त होते हैं तो संभावना इस बात की है कि बुराई आपके अंदर ही है....

हमें न दूसरों के बारे में बुरा सोचना चाहिए और न यह संदेह करना चाहिए कि दूसरे लोग हमारी बुराई की बात सोच रहे हैं | बुरी बातों को कान देना विश्वास के अभाव का सूचक है | *(हरि, 28-4-1946, पृ. 111)*

चमत्कार

मुझे चमत्कारों में विश्वास है और नहीं भी है | ईश्वर चमत्कारों के माध्यम से काम नहीं करता | लेकिन भगवदिच्छा कभी-कभी एक कौंध के रूप में प्रकट होती है, और तब मनुष्य को लगता है कि चमत्कार हो गया | हम ईश्वर को

नहीं जानते, हम उसे केवल उसके नियम के प्रवर्तन के माध्यम से जानते हैं | ईश्वर और उसका नियम एक ही बात है | उसके नियम से बाहर कुछ भी नहीं है | भूकंप और तूफान भी उसकी इच्छा के बिना नहीं आते – उसकी इच्छा के बिना एक तिनका भी नहीं उग सकता | शैतान भी उसकी मौन सहमति से ही यहां है, अपनी इच्छा से नहीं | *(हरि, 7-4-1946, पृ. 75-76)*

आदमी रातोंरात बुरे से अच्छा नहीं बन सकता | ईश्वर जादू नहीं करता | वह भी अपने कानून से बंधा है | यह जरूर है कि उसका कानून लौकिक राज्य के कानून से भिन्न है | राज्य के कानून में खामियां हो सकती हैं, पर ईश्वर गलती नहीं कर सकता | अगर ईश्वर अपने कानून का उल्लंघन करेगा तो दुनिया ही खत्म हो जाएगी | *(हरि, 19-5-1946, पृ. 136)*

इतिहास में ऐसे अनेक चमत्कारों का विवरण मिलता है जब पलक झपकते ही पूरे जनसमूह का दृष्टिकोण बदल गया है | बोअर युद्ध को लीजिए | इसने अंग्रेजी भाषा को 'माफेकिंग' शब्द दिया है | लोग माफेकिंग डे को पागल हो गए थे | लेकिन दो साल के भीतर ही समूचे ब्रिटिश राष्ट्र की कायापलट हो गई | हेनरी कैम्पबैल बैनरमैन प्रधानमंत्री बन गए और युद्ध से हुए सारे लाभ त्याग दिए गए | हाल ही में, चुनावों में लेबर पार्टी की विजय एक और उदाहरण है | मैं इसे चमत्कार ही मानता हूं कि अपनी भाषणकला और प्रतिभा के बावजूद चर्चिल, जिसके एक-एक शब्द को ब्रिटिश जनता मंत्रमुग्ध होकर सुनती थी, लोगों के कंठहार नहीं रहे | ये सभी उदाहरण मेरे जैसे आस्तिक की इस आस्था को जीवित रखने के लिए पर्याप्त हैं कि जब अन्य सारी शक्तियां चूक जाती हैं तो केवल ईश्वर की शक्ति शेष रह जाती है, फिर चाहे आप उसे ईश्वर कहें, या प्रकृति, या और कुछ | *(हरि, 10-11-1946, पृ. 389)*

अवतार

प्रत्येक जीवधारी वस्तुत: ईश्वर का अवतार है, लेकिन हम साधारणतया प्रत्येक प्राणी को अवतार नहीं मानते | आने वाली पीढ़ियां यह सम्मान उस व्यक्ति को देती हैं जिसका आचरण अपनी पीढ़ी में, असाधारण रूप से धर्मनिष्ठ रहा हो | मुझे इसमें कुछ अनुचित दिखाई नहीं देता, इससे ईश्वर की महानता कम नहीं होती और न सत्य को कोई क्षति पहुंचती है....

अवतार में विश्वास मनुष्य की उच्च आध्यात्मिक आकांक्षा का प्रमाण है | मनुष्य जब तक ईश्वर की बराबरी पर नहीं पहुंच जाता, उसे शांति नहीं मिलती | इस अवस्था को प्राप्त करने का प्रयास ही एक मात्र सार्थक, सर्वोच्च आकांक्षा है | और यही आत्मसाक्षात्कार है | यह आत्मसाक्षात्कार ही गीता तथा अन्य सभी धर्मग्रंथों का विषय है | *(यंग, 6-8-1931, पृ. 206)*

इसलिए सुदूर युगों के पैगंबरों या अवतारों में आस्था रखना निरर्थक अंधविश्वास नहीं है, बल्कि अंतरतम आध्यात्मिक आवश्यकता की तुष्टि है | *(यंग, 14-4-1927, पृ. 120)*

ईश्वरीय नियम

मानव भाषा ईश्वर की युक्तियों का पूर्णता के साथ वर्णन नहीं कर सकती | मैं इस बात को बखूबी समझता हूं कि ईश्वरीय युक्तियां अवर्णनीय और अबोधगम्य हैं | लेकिन मनुष्य यदि उनका वर्णन करने का साहस करे तो अपनी अस्फुट वाणी से बेहतर माध्यम उसके पास नहीं है | *(ए, पृ. 317)*

हम न तो सभी ईश्वरीय नियमों को जानते हैं और न उनके प्रवर्तन की विधि को समझते हैं | इस मामले में बड़े-से-बड़े वैज्ञानिक और महान-से-महान अध्यात्मवादी का ज्ञान भी एक धूलिकण के बराबर है | यदि ईश्वर मेरी दृष्टि में मेरे सांसारिक पिता जैसा ही देहधारी नहीं है तो वह अनंत है | मेरे जीवन की छोटी-से-छोटी बात पर भी उसका अधिकार है | मैं शब्दश: इस बात पर विश्वास करता हूं कि ईश्वर की इच्छा के बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता | मेरी प्रत्येक श्वास उसकी मर्जी से चलती है |

ईश्वर और उसका नियम एक है | नियम ही ईश्वर है | उसका जो भी गुण बताया जाए, वह मात्र एक गुण नहीं है | ईश्वर मूर्तिमान गुण है | ईश्वर के सत्य, प्रेम, नियम तथा ऐसे लाखों अन्य नाम हैं जो मनुष्य अपनी विदग्धता से उसे दे सकता है | *(हरि, 16-2-1934, पृ. 4)*

प्रकृति के नियम परिवर्तनरहित हैं, अपरिवर्तनीय हैं | प्राकृतिक नियमों के उल्लंघन या व्यतिक्रम के रूप में कोई चमत्कार कभी नहीं हो सकते | लेकिन हम, सीमाओं में बंधे प्राणी, अनेक प्रकार की कल्पनाएं कर लेते हैं और अपनी सीमाओं को ईश्वर पर आरोपित कर देते हैं | हम ईश्वर का अनुकरण कर सकते हैं, ईश्वर हमारा अनुकरण नहीं करता | हमें ईश्वर की दृष्टि से काल का विभाजन करने की आवश्यकता नहीं है | उसका काल अनंत है | भूत, वर्तमान और भविष्य हमारे लिए हैं | सौ वर्ष का मानव जीवन कालचक्र के मात्र एक मनके से अधिक क्या है ? *(हरि, 17-4-1947, पृ. 87)*

प्राकृतिक विपदाएं

सभ्य तथा असभ्य, समूची दुनिया की तरह मेरा भी विश्वास है कि बिहार के भूकंप जैसी विपदाएं मानव जाति के ऊपर उसके पापों के दंड के रूप में आती हैं | यह विश्वास जब हृदय से उत्पन्न होता है तो लोग प्रार्थना करते हैं, पश्चाताप करते हैं और अपना शुद्धीकरण करते हैं....

मुझे ईश्वरीय हेतु की बड़ी ही सीमित जानकारी है | ऐसी विपत्तियां देवता या प्रकृति की केवल सनक का परिणाम नहीं होतीं | जिस प्रकार ग्रह अपनी गति का नियंत्रण करने वाले नियमों का शत-प्रतिशत पालन करते हुए

गतिमान रहते हैं, उसी प्रकार विपदाएं भी निश्चित नियमों का पालन करती हैं | सिर्फ यह है कि हमें उन घटनाओं का नियंत्रण करने वाले नियमों का ज्ञान नहीं है और इसलिए हम उन्हें विपदाएं या उपद्रव कह देते हैं | *(हरि, 2-2-1934, पृ. 1)*

हमारा पार्थिव शरीर महिलाओं की कांच की चूड़ियों से भी अधिक भंगुर है | चूड़ियों को तो अगर तिजोरी में बंद कर दिया जाए और उनको कोई स्पर्श न करे तो वे हजारों साल सुरक्षित रखी जा सकती हैं | लेकिन यह पार्थिव शरीर तो इतना अस्थिर है कि पलक झपकते ही समाप्त हो जाता है | इसलिए इस श्वास के चलते, हमें बड़े और छोटे का भेद भुला देना चाहिए, अपने हृदयों को निर्मल बनाना चाहिए और किसी प्राकृतिक विपदा के फलस्वरूप या सामान्य परिस्थितियों में शरीरांत हो जाने पर अपने सिरजनहार के सामने उपस्थित होने के लिए तैयार रहना चाहिए | *(वही, पृ. 5)*

हर भौतिक विपदा के पीछे कोई दैवी हेतु अवश्य होता है | इस बात की पर्याप्त संभावना है कि विज्ञान आगे चलकर कभी इतनी पूर्णता प्राप्त कर लेगा कि जिस प्रकार आज ग्रहणों का पूर्वकथन कर सकता है, उसी प्रकार भूकंपों का भी कर सकेगा | मनुष्य की बुद्धि की यह एक और उपलब्धि होगी | लेकिन ऐसी असंख्य उपलब्धियां भी हमारा आत्मशुद्धीकरण नहीं कर सकतीं, जिसके बिना किसी वस्तु का कोई मूल्य नहीं है |

जो लोग आंतरिक शुद्धीकरण की आवश्यकता को समझते हैं, उनसे मेरा कहना है कि वे मेरे साथ मिलकर यह प्रार्थना करें कि हम ऐसी विपदाओं के पीछे ईश्वर के हेतु को समझ सकें, ये हमें विनम्र बनाएं और अंत समय आने पर हमें ईश्वर का सामना करने के लिए तैयार करें | साथ ही, हम अपने साथियों के – वे चाहे जो भी हों – दुखों को बांटने के लिए सदा तत्पर रहें | *(हरि, 8-6-1935, पृ. 132)*

ईश्वर के नाम

ईश्वर के हज़ार नाम हैं, या कहिए कि वह अनाम है | हमें जो नाम अच्छा लगे, उससे उसकी आराधना अथवा प्रार्थना कर सकते हैं | कोई उसे राम कहता है, कोई कृष्ण, दूसरे लोग उसे रहीम या फिर गॉड कहते हैं | सब एक ही ईश्वर की पूजा है, पर जिस प्रकार सारे आहार सभी लोगों को माफिक नहीं आते उसी प्रकार सारे नाम सभी को प्रिय नहीं लगते | प्रत्येक व्यक्ति अपने साहचर्य के अनुसार नाम का चयन करता है और अंतर्यामी, सर्वशक्तिमान तथा सर्वज्ञ होने के नाते वह हमारी अंतरतम की भावनाओं को समझता है और हमारी पात्रता के अनुसार हमें प्रत्युत्तर देता है |

इसलिए आराधना या प्रार्थना होठों से नहीं बल्कि हृदय से की जानी चाहिए | और इसीलिए मूक या हकला, अज्ञानी या मूर्ख, सभी समान योग्यता के साथ आराधना या प्रार्थना कर सकते हैं | जिनकी जिह्वा पर अमृत किंतु

हृदय में विष है, उनकी प्रार्थना कभी स्वीकार नहीं होती | इसलिए ईश्वर की प्रार्थना करने वाले को अपना हृदय शुद्ध करना चाहिए |

राम हनुमान के केवल होठों पर ही नहीं थे, उनके हृदय में भी विराजमान थे | भगवान ने हनुमान को अपार शक्ति प्रदान की | इस शक्ति के बल पर उन्होंने पर्वत उठाया और समुद्र लांघ गए | *(यंग, 24-9-1925, पृ. 331)*

ईश्वर के संबंध में मेरा जैसा विश्वास है, ठीक वैसा ही मैं बोलता हूं....वह सृष्टिकर्ता भी है और अ-सृष्टिकर्ता भी | यह भी यथार्थ की अनेकता के सिद्धांत की मेरे द्वारा स्वीकृति का ही परिणाम है | मैं जैनियों के मंच से ईश्वर के अ-सृष्टिकर्ता होने की धारणा को सिद्ध करता हूं और रामानुज के मंच से उसके सृष्टिकर्ता होने की धारणा को | वस्तुत: हम सब अचिंत्य का चिंतन करने, अवर्णनीय का वर्णन करने, और अज्ञेय को जानने का प्रयास करते हैं | इसीलिए हमारी वाणी लड़खड़ा जाती है, कभी-कभी हमें वाणी की अपर्याप्तता का भी अहसास होता है और प्राय: हम परस्पर विरोधी बातें भी कह जाते हैं | यही कारण है कि वेदों ने ब्रह्म का वर्णन करते हुए 'नेति' 'नेति' कहा है | *(यंग, 21-1-1926, पृ. 30)*

मेरी समझ में, राम, रहमान, अहुरमज्द, गॉड या कृष्ण मनुष्य द्वारा इस अदृश्य शक्ति – जो शक्तियों में सबसे बड़ी है – को कोई नाम देने के प्रयास ही हैं | अपूर्ण होते हुए भी पूर्णता की प्राप्ति के लिए निरंतर प्रयत्न करना मानव प्रकृति है | ऐसा करते हुए वह कभी दिवास्वप्न देखने लगता है | और जिस प्रकार कोई बालक खड़े होने का प्रयत्न करता है, बार-बार गिरता है और अंतत: चलना सीख जाता है उसी तरह आदमी भी, अपनी सारी बुद्धिमत्ता के बावजूद, उस असीम और अनंत ईश्वर के सामने निरा शिशु है | यह अतिशयोक्ति लग सकती है, पर है नहीं | मनुष्य ईश्वर का वर्णन अपनी तुच्छ भाषा में ही तो कर सकता है | *(हरि, 18-8-1946, पृ. 267)*

15. रामनाम

मेरा परित्राता

यद्यपि मेरे विवेक तथा हृदय ने बहुत पहले ही यह मान लिया था कि ईश्वर का सर्वोच्च गुण और नाम 'सत्य' है, मैं सत्य को राम के नाम से पहचानता हूं | मेरी परीक्षा की कठिन-से-कठिन घड़ी में, इसी नाम ने मेरी रक्षा की है और आज भी कर रहा है | इसका संबंध बचपन से हो सकता है या फिर तुलसीदास के प्रति मेरे आकर्षण से |

लेकिन यह अकाट्य तथ्य है, और इन पंक्तियों को लिखते समय मेरी स्मृति मेरे बचपन के दृश्यों की ओर जाती है जब मैं अपने पैतृक मकान के पास बने रामजी के मंदिर में नित्य दर्शन के लिए जाता था | मेरा राम तब वहीं रहता था | उसने मुझे अनेक भयों और पापों से बचाया | यह मेरे लिए अंधविश्वास की बात नहीं थी | हो सकता है, उस मंदिर का पुजारी बुरा आदमी हो | मुझे उसके बारे में कुछ नहीं मालूम | हो सकता है, उस मंदिर में कुकृत्य होते हों | मुझे उनके बारे में भी कुछ नहीं मालूम | इसलिए, उनका मुझ पर कोई प्रभाव नहीं है | जो मेरे विषय में सही था और है, वही करोड़ों हिंदुओं के विषय में भी है | *(हरि, 18-3-1933, पृ. 6)*

जब मैं बच्चा था तो मेरी परिचारिका ने मुझे सिखाया था कि जब भी मुझे भय लगे या कष्ट हो रहा हो तो रामनाम का जप करूं | बढ़ते ज्ञान और ढलती उम्र के बावजूद, यह आज भी मेरी प्रकृति का अंग बना हुआ है | मैं यहां तक कह सकता हूं कि अगर वस्तुत: होठों पर नहीं तो मेरे हृदय में तो चौबीसों घंटे रामनाम रहता है | यही मेरा परित्राता है, मेरा अवलंब है | विश्व के धार्मिक साहित्य में तुलसीकृत रामायण का प्रमुख स्थान है | मुझे महाभारत और यहां तक कि वाल्मीकि रामायण ने भी इतना आकर्षित नहीं किया | *(हरि, 17-8-1934, पृ. 213)*

सर्वोत्तम आराधना

मैं स्वयं बचपन से तुलसीदास का भक्त रहा हूं | अत: मैंने सदा ईश्वर को राम के नाम से पूजा है | लेकिन मैं जानता हूं कि ओंकार से आरंभ करते हुए, सभी प्रदेशों, देशों और भाषाओं में विद्यमान ईश्वर की पूरी नामावली का पारायण कर जाने पर भी परिणाम वही निकलेगा | ईश्वर और उसका नियम एक ही हैं | इसलिए उसके नियम का पालन करना सर्वोत्तम आराधना है | *(हरि, 24-3-1946, पृ. 56)*

ईश्वर एक है

जब कोई यह कहता है कि राम या रामनाम का गान केवल हिंदुओं के लिए है, मुसलमान उसमें कैसे सम्मिलित हो सकते हैं तो मुझे मन-ही-मन हंसी आती है | क्या मुसलमानों का ईश्वर एक है और हिंदुओं, पारसियों या ईसाइयों का कोई दूसरा है ? नहीं, सर्वशक्तिमान एवं सर्वव्यापी ईश्वर केवल एक है | बस, उसके नाम अनेक हैं, और हम उसका स्मरण उस नाम से करते हैं जिससे हम सर्वाधिक परिचित हैं |

मेरे राम, मेरी प्रार्थनाओं के राम, वह ऐतिहासिक राम नहीं हैं जो अयोध्या-नरेश दशरथ के पुत्र थे | मेरा राम शाश्वत, अजन्मा और अद्वितीय राम है | मैं केवल उसी की आराधना करता हूं | मैं केवल उसका अवलंब चाहता हूं, और वही आपको भी करना चाहिए | वह सबके लिए बराबर है | इसलिए मैं नहीं समझ पाता कि मुसलमान या कोई और धर्मावलंबी उसका नाम लेने से आपत्ति कैसे कर सकता है ? हां, वह ईश्वर को रामनाम से ही पहचानने के लिए बाध्य नहीं है | वह उसे अल्लाह या, ध्वनि के सामंजस्य को बनाए रखने के लिए, खुदा कह सकता है | *(हरि, 28-4-1946, पृ. 111)*

मेरे लिए....दशरथपुत्र, सीतापति राम सर्वशक्तिमान तत्व है जिसका नाम हृदय में धारण करने से सभी मानसिक, नैतिक और भौतिक व्याधियां दूर हो जाती हैं | *(हरि, 2-6-1946, पृ. 158)*

आरोग्यकर शक्ति

एक वाजिब सवाल यह है कि जो व्यक्ति नियमित रूप से राम का नाम लेता है और पवित्र जीवन व्यतीत करता है, वह कभी भी बीमार क्यों पड़े ? मनुष्य प्रकृति से अपूर्ण है | विवेकशील मनुष्य पूर्णता-प्राप्ति का प्रयास करता है, लेकिन उसमें सफल नहीं हो पाता | वह जाने-अनजाने, मार्ग में ही लड़खड़ा जाता है | ईश्वर का संपूर्ण नियम पवित्र जीवन में समाहित है |

पहली बात तो अपनी सीमाओं को पहचानने की है | यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि ज्यों ही व्यक्ति इन सीमाओं का उल्लंघन करता है, वह बीमार हो जाता है | तदनुसार अपनी जरूरत के हिसाब से लिया गया संतुलित आहार मनुष्य को रोगमुक्त रखता है | आदमी यह कैसे पहचाने कि उसके लिए उचित आहार क्या है ? ऐसी अनेक पहेलियों की कल्पना की जा सकती है | तत्व की बात यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपना डाक्टर स्वयं बनना चाहिए और अपनी सीमाएं पहचानना चाहिए | जो व्यक्ति ऐसा करेगा, वह निश्चय ही 125 वर्ष तक जिएगा | *(हरि, 19-5-1946, पृ. 148)*

यदि तुम्हारा अंग-भंग हो गया है तो रामनाम नया अंग जोड़ देने का चमत्कार नहीं कर सकता | पर वह इससे भी बड़ा चमत्कार यह कर सकता है कि तुम्हें उस अंग के अभाव में भी जब तक तुम जियो, अनिर्वचनीय शांति के साथ जीवन का आनंद लेने दे और शरीरांत होते समय काल को दंश देने और कब्र को विजय का उल्लास मनाने से रोक दे | चूंकि मृत्यु प्रत्येक मनुष्य को एक-न-एक दिन आनी ही है, इसलिए इसके विषय में निरंतर चिंतित रहने का लाभ ही क्या है ? *(हरि, 7-4-1946, पृ. 69)*

प्राकृतिक चिकित्सा के लिए किसी ऊंची अकादमिक योग्यता या विद्वत्ता की आवश्यकता नहीं है | सार्विकता का मूल तत्व सरलता है | जो बात करोड़ों लोगों के लाभ के लिए हो, उसमें विद्वत्ता की जरूरत नहीं होती | विद्वत्ता का अर्जन तो इने-गिने लोग ही कर सकते हैं, इसलिए वह केवल धनवानों को लाभ पहुंचा सकती है |

लेकिन भारत अपने सात लाख गांवों में बसता है – इन दीन-हीन, छोटे-छोटे और दूर-दराज के गांवों की आबादी मुश्किल से सैकड़ों में और कभी-कभी तो सिर्फ सौ-पचास में होती है |

मैं ऐसे ही किसी गांव में जाकर बसना चाहूंगा | असली भारत, मेरा भारत, वही है | वहां के साधारण लोगों तक आप उच्च योग्यता-प्राप्त चिकित्सक और अस्पताली साज-सामान नहीं पहुंचा सकते | उनकी आशा का आधार तो सरल प्राकृतिक उपचार और रामनाम ही होता है | *(वही)*

विचारों की शुचिता

केवल मुख से रामनाम कहने का उपचार से कोई संबंध नहीं है | अगर मैं ठीक समझता हूं तो, जैसा कि इन मित्र ने कहा है, विश्वास-चिकित्सा मात्र एक धोखे की चीज़ है और उससे जीवंत ईश्वर के जीवंत नाम का उपहास होता है | जीवंत ईश्वर कोरी कल्पना नहीं है | पर हां, वह हृदय से आना चाहिए |

ईश्वर में सचेतन विश्वास और उसके नियम के ज्ञान से, और किसी मदद के बिना, पूर्ण उपचार संभव है | वह नियम यह है कि शरीर के पूर्ण स्वास्थ्य के लिए मन की पूर्णता आवश्यक है | मन की पूर्णता हृदय की पूर्णता से आती है – यहां हृदय से आशय डाक्टर के स्टेथेस्कोप से सुनाई देने वाला हृदय नहीं बल्कि वह हृदय है जहां ईश्वर विराजता है | कहते हैं कि हृदय में ईश्वर का वास होने पर मन में कोई अपवित्र या निरर्थक बात आ ही नहीं सकती |

विचारों की शुचिता हो तो बीमारी आ ही नहीं सकती | इस स्थिति को प्राप्त करना कठिन तो है, पर इस नियम को समझना ही स्वास्थ्य की दिशा में पहला कदम उठाना है | दूसरा कदम तदनुसार प्रयास करना है | मनुष्य के जीवन में यह आमूल संशोधन होने के साथ-साथ स्वभावतया उन सभी प्राकृतिक नियमों का पालन भी शुरू हो जाता है जिनकी खोज अभी तक मनुष्य ने की है | यह नहीं हो सकता कि मनुष्य उनके साथ खिलवाड़ करे और साथ ही, शुद्ध हृदय होने का दावा भी करे |

यह निश्चय ही कहा जा सकता है कि हृदय निर्मल हो जाए तो रामनाम की जरूरत नहीं है | बस, यह है कि मुझे रामनाम के अलावा हृदय को निर्मल करने का कोई और उपाय ज्ञात नहीं है | विश्व के सभी प्राचीन मनीषियों ने इसी उपाय का अवलंब लिया है | वे सब ईश्वर के प्रिय भक्त थे, कोई अंधविश्वासी या धूर्त नहीं थे | *(हरि, 9-6-1946, पृ. 171)*

आध्यात्मिक बल मनुष्य की सेवा के लिए उपलब्ध अन्य बलों की तरह ही है | इस तथ्य के अलावा कि यह बल युगों से शारीरिक बीमारियों के लिए कमोबेश सफलता के साथ इस्तेमाल किया जाता रहा है, अगर यह शारीरिक बीमारियों के इलाज के लिए सफलतापूर्वक इस्तेमाल किया जा सकता है, तो ऐसा न करना बुनियादी तौर पर गलत होगा | क्योंकि मनुष्य पदार्थ और आत्मा, दोनों है और ये दोनों एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं |

अगर आप इस बात का विचार किए बिना कि कुनैन लाखों लोगों को नसीब नहीं है, उसका सेवन करके मलेरिया से छुटकारा पा लेते हैं तो फिर अपने अंदर मौजूद उपचार का इस्तेमाल करने से इसलिए इंकार क्यों करते हैं कि लाखों लोग अज्ञानतावश उसका प्रयोग नहीं करते ?

क्या आप अपने को सिर्फ इसलिए साफ-सुथरा नहीं रखेंगे कि लाखों लोग अज्ञानता या सिर्फ हठ के कारण, अपनी सफाई नहीं करते ? यदि आप मानवप्रेम की झूठी धारणा के वशीभूत होकर अपनी सफाई नहीं करेंगे तो गंदगी और बीमारी की वजह से आप उन्हीं लाखों भाइयों की सेवा से वंचित हो जाएंगे | यह जरूर है कि आध्यात्मिक स्वास्थ्य तथा शुचिता से इंकार करना शारीरिक स्वस्थता तथा शुचिता से इंकार करने से ज़्यादा बुरा है| *(हरि, 1-9-1946, पृ. 286)*

रामनाम लेना और व्यवहार में रावण के रास्ते पर चलना निरर्थक से भी गया-बीता है | यह केवल पाखंड है | आदमी स्वयं को या दुनिया को धोखा दे सकता है, पर उस सर्वशक्तिमान को धोखा नहीं दे सकता | *(हरि, 23-6-1946, पृ. 186)*

16. मेरी आत्मा का आहार : प्रार्थना

मैं स्वयं को आस्था और प्रार्थना का व्यक्ति मानता हूं, और मेरे टुकड़े-टुकड़े भी कर दिए जाए तब भी मेरा विश्वास है कि मुझे ईश्वर इतनी शक्ति देगा कि मैं उसके अस्तित्व से इंकार न करूं और जोर देकर कहूं कि वह है | *(यंग, 8-12-1927, पृ. 413)*

मेरा कोई काम प्रार्थना के बगैर नहीं होता | मनुष्य त्रुटिप्रवण प्राणी है | वह कभी निश्चयपूर्वक यह नहीं कह सकता कि उसके कदम सही उठ रहे हैं | वह जिसे अपनी प्रार्थना का प्रत्युत्तर समझ रहा है, संभव है वह उसके गर्व की प्रतिध्वनि ही हो | अचूक मार्गदर्शन वह मनुष्य कर सकता है जिसका हृदय पूर्णत: निर्दोष हो, जो कभी बुराई कर ही न सकता हो | मेरा ऐसा कोई दावा नहीं है | मेरी आत्मा तो संघर्षशील, प्रयासरत, त्रुटिप्रवण एवं अपूर्ण है | *(यंग, 25-9-1924, पृ. 313)*

मुझे मार भी दिया जाए तब भी मैं राम और रहीम के नामों का जाप नहीं छोडूंगा, जो मेरे लिए एक ही ईश्वर के दो नाम हैं | होठों पर इन नामों को लेते हुए मैं प्रसन्नतापूर्वक मर सकता हूं | *(हरि, 20-4-1947, पृ. 118)*

विपत्ति में रक्षा

विपत्ति की घड़ियों में ईश्वर ने सदा मुझे बचाया है | मैं जानता हूं कि 'ईश्वर ने मुझे बचाया' वाक्यांश का आज मेरे लिए और भी गहरा अर्थ है; फिर भी, मैं समझता हूं कि मैं इस वाक्यांश के पूरे अर्थ को अभी तक नहीं पकड़ पाया हूं | अनुभव की गहराई ही मुझे इसे पूरी तरह समझने में सहायक होगी |

लेकिन मेरी सभी विपत्तियों में – आध्यात्मिक प्रकार की, वकील के रूप में, संस्थाओं के संचालन में, और राजनीति में – मैं कह सकता हूँ कि ईश्वर ने मुझे बचाया | जब सभी आशाएं समाप्त हो जाती हैं, 'जब मददगार काम नहीं आते और सुख-चैन हवा हो जाता है' तो मैंने अनुभव किया है कि, किसी-न-किसी प्रकार, जाने कहां से, मदद आ पहुंचती है |

प्रार्थना ने ही मेरे जीवन का उद्धार किया है | इसके बिना मैं बहुत पहले ही पागल हो गया होता | मेरी आत्मकथा में आप पाएंगे कि मुझे अपने निजी तथा सार्वजनिक जीवन में पर्याप्त मात्रा में एक-से-एक कड़वे अनुभव हुए हैं | उन्होंने मुझे कुछ समय के लिए हताश भी कर दिया था, पर मैं यदि उनसे मुक्ति पा सका तो केवल प्रार्थना के बल पर |

मैं कह सकता हूं कि सत्य जिस प्रकार मेरे जीवन का अंग रहा है, उस प्रकार प्रार्थना नहीं रही | वह एक आवश्यकता के रूप में आई, क्योंकि मैंने अपने आपको ऐसी दशा में पाया जिसमें प्रार्थना के बिना मैं संभवत:

प्रसन्न नहीं रह सकता था | और ज्यों-ज्यों ईश्वर में मेरी आस्था बढ़ती गई, प्रार्थना की आकुलता भी अदम्य होती गई | इसके बिना जीवन नीरस और खाली-खाली लगने लगा |

मैंने दक्षिण अफ्रीका में ईसाई उपासना में शिरकत की, पर वह मुझे आकर्षित न कर सकी | मैं प्रार्थना में उनके साथ शामिल न हो सका | उन्होंने ईश्वर से याचना की, पर मैं उनका साथ न दे पाया, मैं बुरी तरह असफल रहा | मैंने ईश्वर और प्रार्थना के प्रति अविश्वास से शुरुआत की थी और जीवन में काफी बाद तक भी मुझे कोई खालीपन महसूस नहीं होता था | लेकिन फिर मुझे लगने लगा कि जिस प्रकार शरीर के लिए भोजन अनिवार्य है, उसी प्रकार आत्मा के लिए प्रार्थना भी अनिवार्य है | सच पूछा जाए तो शरीर के लिए भोजन इतना आवश्यक नहीं है जितना कि आत्मा के लिए प्रार्थना | कारण कि, शरीर को आरोग्य करने के लिए कभी-कभी (भोजन का) लंघन करना आवश्यक हो जाता है, पर प्रार्थना के लिए लंघन जैसी कोई चीज़ नहीं है....

राजनीतिक क्षितिज में मेरे सामने हताशा की स्थिति आने पर भी मेरे चित्त की शांति कभी नहीं गई है | वस्तुत: लोग मेरी शांति से ईर्ष्या करते हैं | मैं बताऊं कि यह शांति प्रार्थना से आती है; मैं कोई विद्वान व्यक्ति नहीं हूं, लेकिन मैं प्रार्थना करने वाला व्यक्ति हूं, ऐसा मेरा दावा अवश्य है | मुझे प्रार्थना के स्वरूप से कुछ लेना-देना नहीं है | इस मामले में हर आदमी अपना निर्णायक स्वयं है | लेकिन कुछ निश्चित मार्ग हैं जिनका प्राचीन गुरुओं ने अनुसरण किया है, अत: उन पर चलना निरापद है |

....मैंने अपनी व्यक्तिगत बात कही है | हर व्यक्ति स्वयं प्रयास करे और देखे कि दैनिक प्रार्थना के फलस्वरूप उसके जीवन में कुछ ऐसी नयी बात पैदा होती है जिसकी किसी और बात से तुलना नहीं की जा सकती | *(यंग, 24-9-1931, पृ. 274)*

ईश्वर का प्रत्युत्तर

पवित्र काम में कभी पराजय स्वीकार न करो और आगे के लिए मन पक्का कर लो कि तुम स्वयं को पवित्र रखोगे | यदि ऐसा करोगे तो ईश्वर से प्रत्युत्तर अवश्य मिलेगा | हां, जो अहंकारी है, उनकी प्रार्थना वह कभी नहीं सुनता; इसी प्रकार, जो उसके साथ सौदा करते हैं, उनकी भी वह नहीं सुनता....

यदि तुम्हें उससे सहायता चाहिए तो प्रकृतभाव से उसकी शरण में जाओ, मन में कोई हिचक न हो और न कोई भय या शंका हो कि वह तुम जैसे पतित की सहायता कैसे करेगा | जिसने तुम जैसे करोड़ों की मदद की है, वह तुम्हें निराश क्यों करेगा ? वह किसी को निराश नहीं करता और तुम देखोगे कि वह तुम्हारी प्रत्येक प्रार्थना को सुन रहा है | वह अपवित्र-से-अपवित्र व्यक्ति की प्रार्थना भी सुनता है | मैं यह बात अपने निजी अनुभव से कह रहा हूं | मैं शुद्धि-प्रक्रिया से गुजरा हूं | पहले स्वर्ग के साम्राज्य की याचना करो, शेष सब कुछ अपने आप मिल जाएगा | *(यंग, 4-4-1929, पृ. 111)*

मैंने ऐसा कभी नहीं पाया कि वह मेरी सुन नहीं रहा है | जब क्षितिज पूरी तरह अंधकारमय था – जेलों में अपनी परीक्षाओं के दौरान, जब हालात मेरे लिए अच्छे नहीं थे – मैंने उसे अपने निकटस्थ पाया | मुझे अपने जीवन का एक क्षण भी ऐसा याद नहीं आता जब ईश्वर ने मेरा साथ छोड़ दिया हो | *(हरि, 24-12-1938, पृ. 395)*

प्रार्थना का स्वरूप

स्तुति, उपासना, प्रार्थना – ये अंधविश्वास नहीं है बल्कि उससे भी अधिक वास्तविक बातें हैं जितना कि हम खाते हैं, पीते हैं, बैठते हैं, चलते हैं, ये वास्तविक हैं | बल्कि यह कहने में भी अत्युक्ति नहीं कि केवल वे ही वास्तविक हैं, शेष सब अवास्तविक हैं |

ऐसी उपासना या प्रार्थना केवल वाणी-विलास नहीं है | इसका मूल मुख नहीं अपितु हृदय है | इसलिए यदि हम हृदय को इतना निर्मल बना लें कि उसमें 'प्रेम के अतिरिक्त और कुछ शेष न रहे', यदि हम अपने तारों को उसके सुर में मिला लें तो उसमें से जो सुर निकलेगा, वह पारलौकिक होगा |

प्रार्थना के लिए वाणी आवश्यक नहीं है | प्रार्थना किसी ऐंद्रिक प्रयत्न की मोहताज नहीं | मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि प्रार्थना हृदय से विकारों को निकाल फेंकने का अचूक साधन है | लेकिन इस प्रसाद को पाने के लिए प्रार्थना के साथ विनम्रता का योग आवश्यक है | *(ए, पृ. 51-52)*

प्रार्थना में हृदय साथ न हो केवल शब्द हों, इससे अच्छा यह है कि शब्द न हों पर हृदय का योग हो | *(यंग, 23-1-1930, पृ. 25)*

हम मंदिर में पत्थर या धातु की प्रतिमा को पूजने नहीं जाते बल्कि उसमें जिस ईश्वर का वास है, उसे पूजने जाते हैं | प्रतिमा तो आराधक की भावना के अनुरूप बन जाती है | आराधक द्वारा आरोपित पवित्रता से स्वतंत्र उसकी अपनी कोई शक्ति नहीं होती | इसलिए प्रार्थना के समय बच्चों सहित सभी को पूरी तरह मौन धारण करना चाहिए| *(हरि, 28-4-1946, पृ. 112)*

अपने अंदर ईश्वर की उपस्थिति में जीवित विश्वास न हो तो प्रार्थना हो ही नहीं सकती | *(यंग, 20-12-1928, पृ.420)*

जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में, जिनमें सर्वोपरि अपने राष्ट्र की स्वाधीनता और उसके सम्मान की रक्षा है, आत्मबलिदान की उदात्त और साहसिक कला को सीखने का पहला और अंतिम पाठ प्रार्थना है | निश्चय ही, प्रार्थना के लिए ईश्वर में जीवित आस्था होना अनिवार्य है | *(हरि, 14-4-1946, पृ. 80)*

मनुष्य प्राय: तोते की तरह ईश्वर का नाम रटता है और चाहता है कि उसका फल मिले | सच्चे खोजी की आस्था ऐसी जीवंत होनी चाहिए कि वह न केवल अपने बल्कि दूसरों के हृदयों से भी इस तोतारटंत की निरर्थकता को दूर कर दे | *(हरि, 5-5-1946, पृ. 113)*

प्रार्थना की आवश्यकता

जिस प्रकार शरीर के लिए आहार आवश्यक है उसी प्रकार आत्मा के लिए प्रार्थना आवश्यक है | आदमी आहार के बिना कई दिनों तक काम चला सकता है – मैक स्विनी ने 70 दिन तक आहार नहीं लिया था – पर ईश्वर में आस्था रखने वाला व्यक्ति एक क्षण भी प्रार्थना के बगैर नहीं रह सकता, नहीं रहना चाहिए | *(यंग, 15-12-1927, पृ. 424)*

बहुत-से लोग, मानसिक शैथिल्य अथवा बुरी आदत का शिकार होने के कारण, यह समझते हैं कि ईश्वर बिना मांगे हमारी सहायता कर देगा | तो फिर उसके नाम को रटने की क्या जरूरत है ? यह ठीक है कि ईश्वर यदि है, तो हमारे विश्वास करने न करने से कोई अंतर नहीं पड़ता | लेकिन ईश्वर की प्राप्ति कोरे विश्वास की तुलना में बहुत बड़ी चीज़ है | वह निरंतर अभ्यास से ही आ सकती है | सब विज्ञानों के साथ यही बात है | तो फिर विज्ञानों के भी विज्ञान के मामले में यह बात सही क्यों न होगी ? *(हरि, 28-4-1946, पृ. 109)*

प्रार्थना 'सुबह की चाबी और शाम की चिटकनी है' | *(यंग, 23-1-1930, पृ. 25)*

मैं जब यह कहता हूं कि आदमी आहार के बिना लगातार कई दिन तक रह सकता है पर प्रार्थना के बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता, तो मैं अपने और अपने उन साथियों के किंचित अनुभव के आधार पर कहता हूं जिन्होंने प्रार्थना के जादू का प्रभाव देखा है | कारण यह है कि प्रार्थना के बगैर आंतरिक शांति नहीं मिलती | *(वही)*

मैं इस बात से सहमत हूं कि आदमी चौबीसों घंटे ईश्वर की उपस्थिति को अनुभव करने का अभ्यास कर ले तो प्रार्थना के लिए अलग से समय निर्धारित करने की आवश्यकता नहीं है | लेकिन ज़्यादातर लोगों के लिए ऐसा कर पाना असंभव है | उन्हें दुनिया के दैनंदिन झंझटों से छुट्टी नहीं मिलती | उनके लिए प्रतिदिन कुछ मिनटों के लिए ही सही, अपने दिमाग को बाहरी चीज़ों से पूरी तरह समेट लेने का अभ्यास अत्यंत उपयोगी है | ईश्वर के साथ यह मौन संगति उन्हें दुनिया की आपाधापी के बीच मन की निराकुल शांति का अनुभव करने, क्रोध को वश में रखने और धैर्य का अभ्यास करने में सहायक होगी | *(हरि, 28-4-1946, पृ. 109)*

सामान्यतया प्रार्थना के समय में दुनिया के किसी भी व्यक्ति की खातिर विलंब नहीं किया जाना चाहिए | ईश्वर का समय कभी नहीं रुकता | सृष्टि के आरंभ से ही कालचक्र निरंतर गतिमान है | वस्तुत: ईश्वर और उसका समय अनादि है....जिसकी घड़ी कभी रुकती ही नहीं, उसकी प्रार्थना के समय में विलंब कौन कर सकता है ? *(हरि, 5-5-1946, पृ. 113)*

मेरी प्रार्थना के आरंभ में प्रतिदिन ईशोपनिषद् के प्रथम श्लोक का पाठ होता है जिसका भावार्थ यह है कि प्रत्येक वस्तु पहले ईश्वर को अर्पण करो और उसके उपरांत अपनी आवश्यकता के अनुसार उसमें से लेकर इस्तेमाल

करो | इसमें प्रमुख शर्त यह है कि जो वस्तु दूसरे की है, उसका लालच मत करो | ये दो सिद्धांत हिंदू धर्म का सारतत्व हैं |

प्रार्थना का सार तत्व

एक अन्य श्लोक में, जिसका प्रात:काल की प्रार्थना के समय पाठ होता है, कहा गया है, 'मैं लौकिक शक्ति की कामना नहीं करता, मैं स्वर्ग नहीं चाहता, न निर्वाण-प्राप्ति के लिए उत्सुक हूं | मैं तो केवल यह कामना करता हूं कि दूसरों की पीड़ा को दूर करने का उद्योग कर सकूं |' यह पीड़ा शारीरिक, मानसिक या आध्यात्मिक, किसी भी प्रकार की हो सकती है | आदमी के अपने विकारों की दासता से उत्पन्न होने वाली आध्यात्मिक पीड़ा कभी-कभी शारीरिक पीड़ा से अधिक कष्टदायक होती है |

लेकिन पीड़ा को दूर करने के लिए ईश्वर स्वयं नहीं आता | वह मानवों को माध्यम बनाकर यह काम करता है | इसलिए परपीड़ा के हरण की कामना करने वाले व्यक्ति में उसके लिए श्रम करने की उत्कंठा और तत्परता होनी चाहिए |

प्रार्थना....व्यावर्तक नहीं होती | यह किसी जाति या समुदाय तक सीमित नहीं होती | यह सर्वसमावेशी होती है | इसमें समूची मानवता समाविष्ट रहती है | इसलिए प्रार्थना का ध्येय है पृथ्वी पर स्वर्ग के साम्राज्य की स्थापना | *(हरि, 28-4-1946, पृ. 111)*

सच्चा ध्यान अपने मन के नेत्रों और कानों को अपने आराध्य के अलावा हर चीज़ की ओर से मूंद लेना है | इसीलिए प्रार्थना के दौरान आंखों को मूंदने से ध्यान को केंद्रित करने में सहायता मिलती है | ईश्वर को लेकर मनुष्य की धारणा स्वभावतया सीमित है | इसलिए हर व्यक्ति को ईश्वर का जो रूप उसे मोहक लगे, उसका ध्यान करना चाहिए – शर्त यही है कि धारणा पवित्र और उन्नायक हो | *(हरि, 18-8-1946, पृ. 265)*

जिसे यह विश्वास है कि उसके भीतर ईश्वर का वास है, वह सच्ची प्रार्थना कर सकता है | जिसे यह विश्वास नहीं है, उसे प्रार्थना करने की जरूरत नहीं है | ईश्वर उसका बुरा नहीं मानेगा, लेकिन मैं अनुभव से कह सकता हूं कि जो व्यक्ति प्रार्थना नहीं करता, वह निश्चित रूप से घाटे में रहता है |

इस बात से क्या फर्क पड़ता है कि एक व्यक्ति ईश्वर को साकार मानकर पूजता है और दूसरा, उसे एक शक्ति के रूप में मानकर ? दोनों अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार ठीक ही करते हैं | यह कोई नहीं जानता और शायद कभी जान भी नहीं पाएगा कि प्रार्थना करने की पूर्णत: सही विधि कौन-सी है | आदर्श हमेशा आदर्श रहेगा | मनुष्य को केवल यह स्मरण रखने की आवश्यकता है कि ईश्वर सारी शक्तियों से भी बड़ी शक्ति है | शेष सभी शक्तियां भौतिक हैं | लेकिन ईश्वर वह परम शक्ति अथवा आत्मा है जो सर्वव्यापी तथा सर्वसमावेशी है और इसलिए मनुष्य के लिए ज्ञानातीत है | *(वही, पृ. 267)*

मौन का सामर्थ्य

प्राय: मुझे ऐसा लगा है कि सत्यशोधक को मौनव्रती होना ही चाहिए | मैं मौन के अद्‌भुत प्रभाव से परिचित हूं | मैं एक बार दक्षिण अफ्रीका के एक ट्रेपी मठ में गया | बड़ा ही सुंदर स्थान था | वहां रहने वाले अधिकांश लोग मौन साधे हुए थे | मैंने उनके फादर से इसका प्रयोजन पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया कि यह तो स्पष्ट है – 'हम दुर्बल मानव हैं | कई बार हमें पता ही नहीं होता कि हम क्या कह रहे हैं | यदि हम अपनी अंतरात्मा की अस्फुट वाणी को सुनना चाहते हैं, जो हमेशा हमारे भीतर बोलती रहती है, तो हमें अपनी वाणी पर अंकुश लगाना चाहिए | हम बराबर बोलते रहेंगे तो अंत:करण की वाणी सुनाई नहीं देगी |' मैं इस बहुमूल्य पाठ के मर्म को समझ गया | मैं मौन के रहस्य को जानता हूं | *(यंग, 6-8-1925, पृ. 274-75)*

अनुभव ने मुझे सिखाया है कि मौन, सत्यव्रती के आध्यात्मिक अनुशासन का एक अंग है | मनुष्य की यह एक स्वाभाविक दुर्बलता है कि वह जाने-अनजाने अतिशयोक्ति करता है और सत्य को दबाता या संशोधित करता है; इस दुर्बलता पर विजय पाने के लिए मौन आवश्यक है | अल्पभाषी व्यक्ति अपनी वाणी में शायद ही कभी विवेकहीन होता हो; वह तो अपना हर शब्द तोल कर बोलेगा | *(ए, पृ. 45)*

सिले हुए होठों का मौन कोई मौन नहीं है | यों तो आदमी अपनी जीभ काट ले, पर वह भी मौन नहीं कहलाएगा | मौन धारण करना उसका सच्चा है जिसमें बोलने की क्षमता है, पर एक भी शब्द निरर्थक नहीं बोलता | *(हरि, 24-6-1933, पृ. 5)*

मौन अब मेरे लिए भौतिक और आध्यात्मिक, दोनों दृष्टियों से आवश्यक हो गया है | उसकी शुरुआत दबाव के अहसास को कम करने के लिए की गई थी | उसके बाद मुझे लेखन के लिए समय की जरूरत पड़ी | लेकिन कुछ समय तक मौन का अभ्यास करने के बाद, मैंने उसके आध्यात्मिक महत्व को पहचाना | मेरे मस्तिष्क में एकदम से यह विचार कौंधा कि मौन का काल ही मेरे लिए ईश्वर की संगति का सबसे उपयुक्त अवसर हो सकता है | और अब मुझे लगता है कि मैं स्वभावतया मौन के लिए ही बना हूं | *(हरि, 10-12-1938, पृ.323-24)*

प्रार्थना प्रभु का स्मरण करने और हृदय को निर्मल बनाने के लिए है और यह मौन रखते हुए भी की जा सकती है| *(हरि, 20-4-1947, पृ. 118)*

मेरा विश्वास है कि मौन प्रार्थना में सवाक् प्रार्थना से अधिक शक्ति है | अत: मैं अपनी बेबसी में इस विश्वास के साथ निरंतर प्रार्थना करता रहता हूं कि शुद्ध हृदय से की गई प्रार्थना अवश्य सुनी जाएगी | *(यंग, 22-9-1927, पृ. 321)*

प्रार्थना की शक्ति

मैं अपना निजी साक्ष्य देते हुए कह सकता हूं कि हृदय से की गई प्रार्थना कायरता और सभी दूसरी बुरी आदतों पर विजय पाने के लिए मनुष्य के पास सबसे शक्तिशाली साधन है | *(यंग, 20-12-1928, पृ. 420)*

अपने अहंकार को पूरी तरह समाप्त किए बगैर हम अपनी बुराइयों पर विजय नहीं पा सकते | मनुष्य को सही अर्थों में स्वतंत्र करने के लिए, जो उसका सबसे बड़ा अभीष्ट है, ईश्वर मूल्य के रूप में आदमी का पूर्ण आत्मसमर्पण मांगता है | एक बार अपनी हस्ती को मिटा देने के बाद, मनुष्य तुरंत अपने आप को प्राणी-मात्र की सेवा में लीन पाता है | यह सेवा उसके आनंद और मनोरंजन का विषय बन जाती है | वह एक नया चोला धारण कर लेता है जो ईश्वर की सृष्टि की सेवा में तन-मन लगा देने के लिए सदा तत्पर रहता है | *(वही)*

हमारे भीतर अच्छाई और बुराई की शक्तियों का संघर्ष निरंतर छिड़ा रहता है, और जिसे प्रार्थना का सहारा प्राप्त नहीं है, वह बुराई की शक्तियों का शिकार हो जाएगा | प्रार्थना करने वाला व्यक्ति स्वयं शांति का अनुभव करेगा; प्रार्थनामय हृदय के बिना दुनिया के कामकाज करने वाला व्यक्ति स्वयं भी दुखी होगा और सारी दुनिया को दुख देगा....

हमारे दैनंदिन कार्यकलाप में व्यवस्था, शांति और आत्मसंयम बनाए रखने के लिए प्रार्थना ही एकमात्र साधन है....जिस बात का बुनियादी महत्व है, उसका ध्यान रखिए और बाकी बातें अपने आप ठीक हो जाएंगी | वर्ग का एक कोण सही कर लीजिए, बाकी कोण अपने आप सही हो जाएंगे | *(यंग, 23-1-1930, पृ. 26)*

प्रार्थना किसी बुढ़िया का निरर्थक मनोविनोद नहीं है | इसे ठीक से समझा और प्रयुक्त किया जाए तो यह सबसे शक्तिशाली कार्यसाधन है | *(हरि, 14-4-1946, पृ. 80)*

जब मन प्रभु की भावना से पूरी तरह आप्लावित होता है तो आदमी में किसी के प्रति दुर्भावना या घृणा उत्पन्न नहीं हो सकती और इसके जवाब में शत्रु भी अपनी शत्रुता छोड़कर मित्र बन जाता है | मैं इस बात का दावा नहीं करता कि मैं शत्रुओं को मित्रों में बदलने में सफल हुआ हूं, पर अनेक मामलों में मेरा यह अनुभव रहा है कि मन में ईश्वरीय शांति का वास हो तो सारी घृणा समाप्त हो जाती है | अत्यंत प्राचीन काल से विश्व के अनेक उपदेशकों ने इसकी पुष्टि की है | मैं इसका पुण्य नहीं लेता | मैं जानता हूं कि यह केवल ईश्वर की कृपा का परिणाम है | *(हरि, 28-4-1946, पृ. 109)*

दुष्ट हृदय को कभी ईश्वर की सर्वशुचिकारी उपस्थिति का अनुभव नहीं हो सकता | *(हरि, 29-6-1946, पृ. 209)*

ईश्वर हमारी प्रार्थना को हमारी तरह नहीं, अपनी तरह सुनता है | उसके तरीके हम मानवों के तरीकों से अलग हैं | इसलिए वे अज्ञेय हैं | प्रार्थना के लिए पहले श्रद्धा आवश्यक है | कोई प्रार्थना व्यर्थ नहीं जाती | वह अन्य दूसरे कृत्यों की भांति ही है | हम देख पाएं या न देख पाएं, उसका फल अवश्य मिलता है, और हृदय से की गई प्रार्थना तथाकथित कृत्यों से कहीं अधिक शक्तिशाली होती है | *(वही, पृ. 215)*

17. मेरा हिंदू धर्म व्यावर्तक नहीं है

सर्वसमावेशी

मेरी दृष्टि में, हिंदू धर्म सभी जरूरतों को पूरा करता है | इसकी विशाल छाया में हर तरह के विश्वास को संरक्षण मिल जाता है | *(स्पीरा, पृ. 329)*

मैं जिन शब्दों में अपनी पत्नी के प्रति अपनी भावनाओं को व्यक्त कर सकता हूं, उन्हीं शब्दों में हिंदू धर्म के प्रति भी कर सकता हूं | वह जिस प्रकार मुझे प्रेरित करती है, संसार की कोई दूसरी स्त्री वैसा नहीं कर सकती | ऐसा नहीं कि उसमें कोई दोष नहीं है, जितने मैं देख पाता हूं, उससे भी ज़्यादा हैं | लेकिन उसके साथ मेरा एक अकथनीय बंधन है | हिंदू धर्म के सारे दोषों और सीमाओं के बावजूद ऐसा ही बंधन मैं उसके साथ भी महसूस करता हूं | *(यंग, 6-10-1921, पृ. 318)*

....हिंदू धर्म व्यावर्तक नहीं है | इसमें दुनिया के सभी पैगंबरों की पूजा के लिए स्थान है | मिशनरी धर्म के सामान्य अर्थ में यह कोई मिशनरी धर्म नहीं है | इसने निस्संदेह अनेक जातियों को अपने में समेट लिया है, पर यह समेटना एक विकासात्मक और सूक्ष्म प्रक्रिया के द्वारा हुआ है | हिंदू धर्म प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आस्था अथवा धर्म के अनुसार ईश्वर की आराधना करने के लिए कहता है | इसीलिए उसका सभी धर्मों के साथ शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व है | *(वही)*

ज्यों ही मैं समझूंगा कि ईसाई या कोई और धर्म सच्चा है और मुझे उसका प्रचार करने की जरूरत है, दुनिया की कोई ताकत मुझे ऐसा करने से नहीं रोक पाएगी | जहां भय है, वहां धर्म नहीं....यदि मैं बाइबिल या कुरान की अपनी व्याख्या को मानते हुए ईसाई या मुसलमान कहला सकूं तो मुझे ऐसा कहलाने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए | क्योंकि तब हिंदू, ईसाई और मुसलमान पर्यायवाची शब्द हो जाएंगे | मेरी भावना है कि परलोक में न हिंदू है, न ईसाई और न मुसलमान | उनका मूल्यांकन वहां उनकी नाम-पट्टी या धर्म देखकर नहीं किया जाता बल्कि उनके कर्मों के आधार पर किया जाता है - धर्म चाहे कोई हो | हमारे लौकिक जीवन में ये नामपट्टियां रहेंगी ही | इसलिए जब तक यह मेरे विकास को अवरुद्ध नहीं करती और मुझे कहीं भी अच्छी बात को देखकर उसे आत्मसात करने से नहीं रोकती तब तक मैं अपने पूर्वजों की नामपट्टी को धारण करना ही ठीक समझता हूं | *(यंग, 2-7-1926, पृ. 308)*

मैं जानता हूं कि जब मैं यह कहता हूं कि मैं सनातनी हिंदू हूं तो मेरे मित्र चक्कर में पड़ जाते हैं, क्योंकि सनातनियों के साथ जो चीज़ें जुड़ी हुई हैं, वे उन्हें मुझमें नहीं देख पाते | यह इसलिए है कि पक्का हिंदू होने के बावजूद मेरे धर्म में ईसाई, मुस्लिम और जरदुश्ती उपदेशों के लिए भी जगह है और इसी कारण लोगों को मेरा हिंदुत्व एक संकलित वस्तु प्रतीत होता है; कुछ लोगों ने तो मुझे संकलनवादी तक कह दिया है | किसी को

संकलनवादी कहने का अर्थ तो यह हुआ कि उसका अपना कोई धर्म ही नहीं है, जबकि मेरा धर्म एक व्यापक धर्म है जो ईसाइयों का – प्लाईमाउथ ब्रदर्स तक का – विरोधी नहीं है, यहां तक कि वह कट्टर-से-कट्टर मुसलमान का भी विरोध नहीं करता | मेरा धर्म व्यापकतम सहिष्णुता पर आधारित है | मैं किसी व्यक्ति को उसके कट्टर कारनामों की वजह से बुरा-भला कहने को तैयार नहीं हूं, क्योंकि मैं उसे उसके नजरिए से देखने की कोशिश करता हूं | मेरा यह व्यापक धर्म ही मुझे जीवित रखता है | मैं जानता हूं कि कुछ लोगों के लिए यह बड़ी उलझन-भरी स्थिति है, पर उलझन उन्हें है, मुझे नहीं | *(यंग, 22-12-1927, पृ. 426)*

हिंदू धर्म की सबसे बड़ी खूबी यह है कि वह समस्त प्राणी-जगत (केवल मानव ही नहीं, अपितु सभी सचेतन प्राणियों) को एक मानता है अर्थात यह कि सभी प्राणी एक विश्वात्मा की सृष्टि हैं, उसे चाहे ईश्वर कहिए, गॉड कहिए या परमेश्वर कहिए | *(हरि, 26-12-1936, पृ. 365)*

मेरा हिंदुत्व फिरकावाराना नहीं है | इसमें इस्लाम, ईसाई धर्म, बौद्ध धर्म, और जरदुश्त धर्म की उत्कृष्ट बातें शामिल हैं – सत्य मेरा धर्म है और अहिंसा उसकी प्राप्ति का एकमात्र रास्ता | तलवार के सिद्धांत को मैंने हमेशा के लिए ठुकरा दिया है | *(हरि, 30-4-1938, पृ. 99)*

हिंदू धर्म और अहिंसा

अहिंसा का संदेश देने वाला हिंदू धर्म मेरी दृष्टि में संसार का सबसे शानदार धर्म है – वैसे ही जैसे मेरी पत्नी मेरे लिए संसार की सबसे सुंदर स्त्री है – लेकिन दूसरे लोग अपने धर्म के बारे में भी यही बात सोच सकते हैं | *(यंग, 19-1-1928, पृ. 22)*

भारतीय संस्कृति के लिए हिंदू धर्म की सबसे विशिष्ट और महत्तम देन अहिंसा का सिद्धांत है | पिछले तीन हज़ार वर्षों से भी अधिक समय से इसने देश के इतिहास को एक निश्चित झुकाव दिया है और आज भी यह भारत के करोड़ों लोगों के जीवन को अनुप्राणित कर रहा है | अहिंसा का सिद्धांत एक विकासशील सिद्धांत है, इसका संदेश आज भी क्रियाशील है | अहिंसा का उपदेश हमारे लोगों के मन में इस तरह बस गया है कि भारत में सशस्त्र क्रांति होना लगभग असंभव है | भले ही कुछ लोग ऐसा समझते हैं, पर यह इसलिए नहीं है कि एक प्रजाति के रूप में हम शारीरिक दृष्टि से दुर्बल हैं – किसी को गोली मारने के लिए शारीरिक शक्ति की उतनी जरूरत नहीं होती जितनी कि राक्षसी वृत्ति की – बल्कि इसलिए है कि यहां के लोगों में अहिंसा की परंपरा ने गहरी जड़ें जमा ली हैं | *(हरि, 24-3-1929, पृ. 95)*

गीता मेरी माता

मैं यह नहीं मानता कि गीता अच्छे उद्देश्य की पूर्ति के लिए हिंसा करने का उपदेश देती है | गीता मुख्यतया हमारे हृदयों में चलने वाले द्वंद्व का वर्णन है | इसमें भगवान कृष्ण ने एक ऐतिहासिक घटना का सहारा लेते हुए इस बात

की शिक्षा दी है कि मनुष्य को अपना कर्तव्य करने के लिए अपने जीवन की बलि देने में भी संकोच नहीं करना चाहिए | इसमें परिणाम की चिंता किए बिना कर्म करने पर बल दिया गया है, क्योंकि देह की मर्यादाओं में बंधे हम मानव अपने अलावा और किन्हीं के कृत्यों को नियंत्रित करने में असमर्थ हैं | गीता भलाई और बुराई की शक्तियों का अंतर स्पष्ट करती है और उनके असामंजस्य को उजागर करती है | *(यंग, 25-8-1920, पृ. 2)*

यद्यपि मैं ईसाई धर्म की बहुत-सी बातों का प्रशंसक हूं, पर मैं रूढ़िवादी ईसाई धर्म के साथ अपना तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाता....हिंदू धर्म इसे जैसा मैंने समझा है, मेरी आत्मा को पूरी तरह तृप्त करता है, मेरे प्राणों को आप्लावित कर देता है, और 'भगवद्गीता' तथा उपनिषदों से जो तसल्ली मुझे मिलती है, वह मैं 'सरमन ऑन द माउंट' में भी नहीं पाता | ऐसी बात नहीं है कि मैं उसमें प्रस्तुत आदर्श की कद्र नहीं करता, ऐसी बात नहीं है कि 'सरमन ऑन द माउंट' के कतिपय उत्कृष्ट उपदेशों ने मेरे ऊपर गहरी छाप नहीं छोड़ी है, लेकिन मुझे यह मानना होगा....कि, जब संदेह मुझे घेर लेता है, जब निराशा मेरे सम्मुख आ खड़ी होती है, जब क्षितिज पर प्रकाश की एक किरण भी दिखाई नहीं देती, तब मैं 'भगवद्गीता' की शरण में जाता हूं और उसका कोई-न-कोई श्लोक मुझे सांत्वना दे जाता है, और मैं घोर विषाद के बीच भी तुरंत मुस्कुराने लगता हूं | मेरे जीवन में अनेक बाह्य त्रासदियां घटी हैं और यदि उन्होंने मेरे ऊपर कोई प्रत्यक्ष या अमिट प्रभाव नहीं छोड़ा है तो मैं इसका श्रेय 'भगवद्गीता' के उपदेशों को देता हूं | *(यंग, 6-8-1925, पृ. 274)*

जहां तक मेरा संबंध है, जब भी मैं अपने आपको कठिनाइयों में घिरा पाता हूं, मैं दौड़कर गीता माता की शरण में जा पहुंचता हूं और आज तक ऐसा कभी नहीं हुआ कि वह मुझे सांत्वना न दे सकी हो | अपने दैनंदिन जीवन में गीता को जिस प्रकार मैंने समझा, उसे अगर लोग जान पाएं तो जिन्हें आज गीता से तसल्ली मिल रही है, उन्हें शायद और भी ज़्यादा तसल्ली मिलने लगे | *(यंग, 13-11-1930, पृ. 1)*

आज गीता मेरी बाइबिल या कुरान ही नहीं बल्कि उनसे भी ज़्यादा है – वह मेरी मां है | मुझे जन्म देने वाली अपनी लौकिक मां को मैं बहुत पहले ही खो चुका हूं | लेकिन इस शाश्वत माता ने तभी से मेरे निकट रहकर मेरी मां के अभाव को पूरी तरह दूर किया है | यह कभी नहीं बदली है, उसने मुझे कभी निराश नहीं किया है | जब मैं कठिनाई या कष्ट में होता हूं तो इसी की छाती से जा लगता हूं | *(हरि, 24-8-1934, पृ. 222)*

बुद्ध का मार्ग

मेरा सुविचारित मत है कि बुद्ध के उपदेशों के महत्वपूर्ण अंश अब हिंदू धर्म के अनिवार्य अंग बन गए हैं | हिंदू भारत के लिए अब अपने कदम पीछे ले जाना और गौतम बुद्ध द्वारा हिंदू धर्म में किए गए महान सुधार को नकारना असंभव है | अपने भारी बलिदान, महान त्याग और जीवन की निर्दोष शुचिता से बुद्ध ने हिंदू धर्म पर अमिट छाप छोड़ी है जिसके लिए हिंदू धर्म इस महान उपदेशक का सदा ऋणी रहेगा....बौद्ध धर्म का जो स्वरूप

आज है, उसके जिस अंश को हिंदू धर्म ने आत्मसात नहीं किया, वह बुद्ध के जीवन और उनके उपदेशों का मूलभूत अंश नहीं था |

मेरा निश्चित मत है कि बौद्ध धर्म, या कहिए कि बुद्ध के उपदेशों का भारत में पूरी तरह पल्लवन हुआ | इसके अतिरिक्त और कुछ हो भी नहीं सकता था, क्योंकि बुद्ध स्वयं एक श्रेष्ठ हिंदू थे | हिंदू धर्म के सर्वोत्तम तत्व उनमें कूट-कूट कर भरे हुए थे और उन्होंने कतिपय ऐसे उपदेशों को नया जीवन दिया जो वेदों में, झाड़-झंखाड़ के नीचे दबे पड़े थे | उनकी महान हिंदू आत्मा ने वेदों के स्वर्णिम सत्य को आवृत्त करने वाले निरर्थक शब्दों के जंजाल को काट फेंका | उन्होंने वेदों के कुछ शब्दों को ऐसा अर्थ दिया जो उनके समय के लोगों के लिए सर्वथा नया था | बुद्ध को अपने धर्म के प्रचार के लिए भारत की भूमि अत्यधिक अनुकूल लगी | बुद्ध जहां भी गए, उनके पास एकत्र होने वाले लोग अहिंदू नहीं, हिंदू थे जो स्वयं वैदिक ज्ञान से संतृप्त थे | लेकिन बुद्ध के उपदेश, उनके हृदय की भांति ही सर्वविस्तारी तथा सर्वसमावेशी थे और इसी कारण वे उनके देहावसान के बाद भी सारी दुनिया पर छाए रहे | और, बुद्ध का अनुयायी कहलाने का जोखिम उठाते हुए भी, मैं कहना चाहूंगा कि बुद्ध की यह सफलता हिंदू धर्म की विजय थी | बुद्ध ने हिंदू धर्म को कभी नहीं ठुकराया, उन्होंने उसके आधार को व्यापक बना दिया | उन्होंने उसे नवजीवन दिया और एक नयी व्याख्या दी | लेकिन....मैं यह निवेदन करना चाहूंगा कि बुद्ध के उपदेशों को कहीं भी पूरी तरह आत्मसात नहीं किया जा सका, चाहे वह श्रीलंका हो, बर्मा हो, या चीन हो अथवा तिब्बत हो....*(यंग, 24-11-1927, पृ. 392-93)*

विश्व का नैतिक शासन

मैंने असंख्य बार लोगों को यह कहते सुना है, और बौद्ध धर्म की भावना को अभिव्यक्त करने का दावा करने वाली किताबों में भी पढ़ा है, कि बुद्ध को ईश्वर में विश्वास नहीं था | मेरी विनम्र सम्मति में, यह धारणा बुद्ध के उपदेशों के मूल का ही खंडन करती है....यह भ्रम इसलिए उत्पन्न हुआ है कि बुद्ध ने अपने समय में ईश्वर के नाम पर चलने वाली निकृष्ट बातों को ठुकरा दिया था, जो कि सर्वथा उचित था | बुद्ध ने निस्संदेह इस धारणा को नकारा था कि ईश्वर जैसी हस्ती दुर्भावना से प्रेरित हो सकती है, अपने कृत्यों के लिए पश्चाताप कर सकती है, और लौकिक राजाओं की तरह, प्रलोभनों तथा उत्कोचों से प्रभावित हो सकती है, और उसके कोई प्रिय पात्र भी हो सकते हैं | उनकी समूची आत्मा ने इस विश्वास के विरुद्ध अत्यंत रोषपूर्ण आवाज उठाई कि ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए पशुओं – जोकि उसकी ही सृष्टि हैं – की बलि देने की आवश्यकता है | इस प्रकार, बुद्ध ने ईश्वर को अपने सही स्थान पर पुन: प्रतिष्ठित किया और उस अनधिकारी को उखाड़ फेंका जो कुछ समय के लिए ईश्वर के शुभ्र सिंहासन पर जा बैठा था | उन्होंने विश्व के नैतिक शासन के शाश्वत तथा अपरिवर्तनीय अस्तित्व पर बल देते हुए उसकी पुन:स्थापना की | उन्होंने बेहिचक कहा कि ईश्वर स्वयं नियम है |

ईश्वर के नियम शाश्वत तथा अपरिवर्तनीय हैं और उन्हें स्वयं ईश्वर से पृथक नहीं किया जा सकता | यह ईश्वर की परिपूर्णता की ही अनिवार्य शर्त है | और इसीलिए यह भारी भ्रम उत्पन्न हुआ कि बुद्ध को ईश्वर में विश्वास नहीं था और वे केवल नैतिक नियम में विश्वास करते थे | ईश्वर के बारे में इस भ्रांति के कारण ही 'निर्वाण' जैसे महान शब्द के विषय में भ्रम उत्पन्न हुआ | 'निर्वाण' निश्चय ही पूर्ण लोप नहीं है | जहां तक मैं बुद्ध के जीवन के तत्व को समझ पाया हूं, हमारे अंदर जो कुछ हीन है, पापमय है, भ्रष्ट है, विकृत है और विकारशील है, उसका पूर्ण लोप 'निर्वाण' है | 'निर्वाण' कब्र की अंधेरी और निर्जीव निस्तब्धता नहीं है, बल्कि ऐसी आत्मा की जीती-जागती शांति और सुख है जो अपने प्रति सचेतन है और जानती है कि उसने ईश्वर के हृदय में स्थान पा लिया है....

ईश्वर की अपने शाश्वत स्थान पर पुन: प्रतिष्ठा तो मानवता को बुद्ध की महान देन थी ही, मेरी विनम्र सम्मति में उनकी उससे भी बड़ी देन थी सभी प्राणियों – निम्नतम भी – के प्रति दृढ़ प्रेम की स्थापना | *(वही, पृ. 393)*

पश्चिम में ईसाई धर्म

मेरा यह दृढ़ मत है कि यूरोप आज गॉड या ईसाई धर्म की भावना का प्रतिनिधित्व नहीं करता, बल्कि शैतान की भावना का प्रतिनिधित्व करता है | और, जब शैतान अपने होठों पर ईश्वर का नाम लेकर आता है तो वह अत्यधिक सफल होता है | यूरोप आज नाम के लिए ही ईसाई है | वास्तव में, वह मैमन की पूजा कर रहा है | 'धनवान के लिए स्वर्ग के साम्राज्य में प्रवेश पाने की अपेक्षा ऊंट का सुई के छेद से गुजर जाना ज़्यादा आसान है |' ईसा मसीह ने वस्तुत: यही कहा था | उसके तथाकथित अनुयायी अपनी नैतिक उन्नति को अपनी भौतिक संपत्ति से माप रहे हैं | *(यंग, 8-9-1920, पृ. 2-3)*

पश्चिम के विषय में यह एक बड़ी अजीब टिप्पणी है कि यद्यपि वह ईसाई धर्म के अनुयायी होने का दावा करता है पर वहां न ईसाई मत है, न ईसा, अन्यथा वहां युद्ध न होता | मैं तो ईसा के संदेश का यही अर्थ लेता हूं | *(हरि, 17-11-1946, पृ. 405)*

ईसाई धर्म जब पश्चिम में गया तो उसका रूप ही विकृत हो गया | मुझे यह कहते हुए दुख होता है | *(हरि, 20-4-1947, पृ. 116)*

मैं अपने ईसाई भाइयों से कहता हूं....वे अपने ईसाई धर्म को पश्चिम की व्याख्या के अनुसार न लें | वहां, जैसा कि हम जानते हैं, वे एक-दूसरे से इस तरह लड़ते हैं जिस तरह पहले कभी नहीं लड़ते थे | आखिर ईसा मसीह एशियावासी थे – उन्हें लंबा अरबी लिबास पहने दिखाया जाता है | वह विनय की मूर्ति थे | मैं आशा करता हूं कि भारत के ईसाई अपने जीवन में बाइबिल के उस ईसा को उतारेंगे जो सूली पर चढ़ गया था, उस ईसा को नहीं जिसकी व्याख्या अपनी रक्तरंजित उंगलियों से पश्चिम द्वारा की जा रही है | पश्चिम की आलोचना करने की मेरी कोई इच्छा नहीं है | मैं पश्चिम के अनेक गुणों से अवगत हूं और उनकी कद्र करता हूं | लेकिन मैं यह कहने के

लिए मजबूर हूं कि, व्यक्तियों की बात छोड़ दें तो, पश्चिम में एशिया के ईसा को गलत ढंग से पेश किया जाता है| *(हरि, 7-9-1947, पृ. 315)*

ईसाई धर्म का अप्रत्यक्ष प्रभाव जीवन में हिंदुत्व को प्रखरतर करने वाला सिद्ध हुआ....लेकिन ईसाई धर्म के भारत पर प्रभाव को आंकने के लिए हमें अपने बीच रहने वाले औसत ईसाई के जीवन और हम पर पड़ने वाले उसके प्रभाव को देखना होगा | मुझे अपनी यह राय जाहिर करते हुए दुख हो रहा है कि यह प्रभाव बड़ा ही खराब है | *(यंग, 31-7-1924, पृ. 254)*

ईसा का व्यक्तित्व

मैं बताऊं कि मुझे ऐतिहासिक ईसा में कभी दिलचस्पी नहीं रही है | यदि कोई यह सिद्ध कर दे कि ईसा नाम का व्यक्ति कभी पैदा ही नहीं हुआ और गॉस्पिलों के आख्यान उसके लेखन की कोरी कल्पना हैं, तो भी मुझे कोई फर्क नहीं पड़ेगा | क्योंकि तब भी 'सरमन ऑन द माउंट' मेरे लिए उतनी ही प्रेरणाप्रद रहेगी | *(यंग, 31-12-1931, पृ. 429)*

मैं सिर्फ ईसा को ही देवपुरुष नहीं मान सकता | ईसा में उतना ही देवत्व था जितना कि कृष्ण, राम, मोहम्मद या जरदुश्त में था | इसी प्रकार, मैं बाइबिल के प्रत्येक शब्द को ईश्वर-प्रेरित नहीं मानता, वैसे ही जैसे कि वेदों और कुरान के प्रत्येक शब्द को ईश्वर-प्रेरित नहीं मानता | इन ग्रंथों को समग्र रूप में लिया जाए तो ये निश्चय ही प्रेरणा का परिणाम हैं, लेकिन अलग-अलग पढ़ने पर बहुत-सी बातों में मुझे प्रेरणा के दर्शन नहीं होते | बाइबिल मेरी दृष्टि में वैसा ही धर्मग्रंथ है जैसे कि गीता और कुरान | *(हरि, 6-3-1937, पृ. 25)*

मैं सांप्रदायिक अर्थ में ईसाई होने का दावा नहीं कर सकता, लेकिन ईसा की पीड़ा के उदाहरण का अहिंसा के प्रति मेरी अटूट आस्था के निर्माण में योगदान है | अहिंसा ही मेरे समस्त लौकिक कार्यों का नियमन करती है | *(हरि, 7-1-1939, पृ. 417)*

मेरे लिए ईसा का अर्थ

मेरे लिए ईसा का....क्या अर्थ है ? मेरा मानना है कि ईसा मानव जाति के महान उपदेशकों में से एक थे | उनके अनुयायी उन्हें परमात्मा से उत्पन्न एकमात्र (बिगॉटन) पुत्र मानते हैं | मेरे इस विश्वास को स्वीकार करने या न करने से क्या मेरे जीवन पर ईसा के प्रभाव में कोई फर्क पड़ जाएगा ? क्या मैं ईसा के उपदेश और सिद्धांत के वैभव से वंचित कर दिया जाऊंगा ? मैं ऐसा नहीं मानता | *(मारि, अक्तू. 1941, पृ. 406-07)*

मेरी धारणा है कि 'बिगॉटन' शब्द से अभिप्राय आध्यात्मिक जन्म से है | दूसरे शब्दों में, मेरी व्याख्या है कि ईसा का अपना जीवन परमात्मा के साथ उसके नैकट्य की कुंजी है; कि उसने परमात्मा की भावना और इच्छा को अनुपम ढंग से व्यक्त किया है | मैं ईसा को इस अर्थ में लेता और उसे परमात्मा का पुत्र मानता हूं | *(वही)*

मेरा विश्वास है कि दुनिया के विभिन्न धर्मों के गुणों को आंकना असंभव है और इसका प्रयास करना अनावश्यक तथा हानिकर भी है | लेकिन, मेरे विचार से, प्रत्येक धर्म की प्रेरक शक्ति एक ही है : मनुष्य के जीवन का उन्नयन और उसे सोद्देश्य बनाने की कामना | और चूंकि ईसा के जीवन में वह श्रेष्ठता और पारलौकिकता है जिसका मैं संकेत कर चुका हूं, अत: मेरा विश्वास है कि ईसा केवल ईसाई धर्म के लिए ही नहीं अपितु सारी दुनिया, सभी जातियों और सभी लोगों के लिए है – चाहे वे अपने पूर्वजों से प्राप्त किसी भी ध्वज, नाम या सिद्धांत का अनुगमन करते हुए अपना काम, धर्म का प्रचार या ईश्वर की आराधना करते हों | *(वही)*

भारत में बड़ी अज्ञानता और अंधविश्वास है | लेकिन धर्म के प्रति प्रवृत्ति अर्थात ईश्वर में आस्था हमारी रग-रग में बसी है | *(हरि, 17-11-1946, पृ. 405)*

यदि मोहम्मद आज भारत आते तो वे अपने बहुत-से तथाकथित अनुयाइयों को त्याग देते और मुझे सच्चा मुसलमान मानकर अंगीकार करते | इसी प्रकार, ईसा मसीह भी मुझे सच्चा ईसाई मानकर अंगीकार करते | *(वही)*

"हम किस प्रकार मनुष्य को ईश्वर या ईसा अथवा मोहम्मद के उपदेशों की ओर पुन: अभिमुख कर सकते हैं ?" इसका उत्तर मैं ईसा द्वारा अपने एक अनुयायी को दिए गए उत्तर को दोहराते हुए देना चाहूंगा : "केवल ईश्वर, ईश्वर मत पुकारो, स्वर्ग में बैठे मेरे पिता की इच्छानुसार कार्य करो |" यह वाक्य तुम पर, मुझ पर और अन्य सभी पर लागू होता है | यदि हमें जीते-जागते भगवान में आस्था है तो सब कुछ ठीक हो जाएगा | मुझे आशा है कि मैं अपनी मृत्यु के दिन तक इस आस्था को नहीं त्यागूंगा | अपनी असंख्य असफलताओं और त्रुटियों, जिनसे मैं भलीभांति अवगत हूं, के बावजूद ईश्वर में मेरी आस्था दिनों दिन गहरी होती जा रही है | *(वही)*

यदि ऐसा न होता तो मैं अपना वही इलाज करता जो मैंने उन स्त्रियों को बताया था जिन्हें अपनी इज्जत जाने की आशंका थी और सहायता अथवा पलायन की कोई संभावना नहीं थी – इलाज था, आत्महत्या | *(वही)*

इस्लाम शांति का धर्म है

मैं इस्लाम को भी ईसाई धर्म, बौद्ध धर्म और हिंदू धर्म की तरह शांति का धर्म मानता हूं | इनमें शांति पर दिए गए बल की मात्रा में अंतर जरूर है, पर इन सभी धर्मों का ध्येय शांति ही है | *(यंग, 20-1-1927, पृ. 21)*

भारत की राष्ट्रीय संस्कृति को इस्लाम की विशिष्ट देन ईश्वर के एकत्व में पक्का विश्वास और अपने धर्मावलंबियों के बीच बंधुत्व के सत्य की व्यावहारिक प्रयुक्ति है | मैं इन्हें दो विशिष्ट देन मानता हूं | कारण यह है कि हिंदू धर्म में बंधुत्व की भावना का बहुत अधिक दार्शनिकीकरण हो गया है | इसी प्रकार, यद्यपि दार्शनिक हिंदू धर्म में ईश्वर एक है, इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि व्यावहारिक हिंदू धर्म में इस पर उतनी दृढ़ता से बल नहीं दिया जाता जितना कि इस्लाम में दिया जाता है | *(यंग, 21-3-1929, पृ. 95)*

भौतिक बल-प्रयोग

कुरान में धर्म-परिवर्तन के लिए बल का प्रयोग करने की कोई बात कहीं नहीं की गई है | पवित्र किताब में तो स्पष्टतम भाषा में कहा गया है कि 'धर्म में दबाव के लिए कोई स्थान नहीं है' | पैगंबर का सारा जीवन ही धर्म में कोई दबाव डालने का खंडन है | मेरी जानकारी में किसी मुसलमान ने जबरन मुसलमान बनाये जाने को उचित नहीं ठहराया है | धर्म-प्रचार में भौतिक बल का आश्रय लिया गया हो तो इस्लाम विश्व धर्म नहीं रह जाएगा | *(यंग, 29-9-1921, पृ. 307)*

मैंने कहा है कि इस्लाम के मानने वाले तलवार का इस्तेमाल बहुत ज्यादा करते हैं | पर यह कुरान के उपदेश के कारण नहीं है | मेरी राय में इसका कारण वह पर्यावरण है जिसमें इस्लाम का जन्म हुआ | ईसाई धर्म का इतिहास इसलिए रक्तरंजित नहीं है कि ईसा में कोई दोष था, बल्कि इसलिए कि जिस पर्यावरण में ईसाई धर्म फैला, वह ईसा के उदात्त उपदेशों को ग्रहण करने योग्य नहीं था | *(यंग, 20-1-1927, पृ. 21)*

कुरान

मैंने कुरान का एक से अधिक बार पारायण किया है | मेरा धर्म मुझे सिखाता है, बल्कि बाध्य करता है, कि मैं विश्व के सभी धर्मों की अच्छी बातों को आत्मसात करूं | *(हरि, 28-10-1939, पृ. 317)*

मैं निश्चय ही इस्लाम को ईश्वर-प्रेरित धर्म मानता हूं और इसीलिए पवित्र कुरान को प्रेरित पुस्तक तथा हजरत मुहम्मद को पैगंबरों में से एक मानता हूं | *(हरि, 13-7-1940, पृ. 207)*

मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि कुरान के उपदेश बुनियादी तौर पर अहिंसा के पक्ष में हैं | कुरान में कहा गया है कि हिंसा से अहिंसा बेहतर है | अहिंसा को कर्तव्य बताया गया है, हिंसा की इज़ाज़त जरूरत पड़ने पर ही दी गई है| *(वही, पृ. 193)*

18. धर्म और राजनीति

जीवन एक अखंड इकाई

मेरा मानना है कि मानव मन या मानव समाज सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक नाम के अलग-अलग और स्वतंत्र चौखटों में बंटा हुआ नहीं है | ये सभी एक-दूसरे के साथ क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं | *(यंग, 2-3-1922, पृ. 131)*

चूंकि मानव जीवन एक अविभाजित इकाई है, इसलिए इसके विभिन्न पक्षों के बीच विभाजक रेखा कभी नहीं खींची जा सकती – नीतिशास्त्र और राजनीति के बीच भी नहीं | जो व्यापारी धोखाधड़ी करके धन कमाता है वह अगर यह समझे कि इस काली कमाई के एक अंश को तथाकथित धार्मिक प्रयोजनों पर खर्च करके वह अपने पापों से मुक्त हो जाएगा तो वह स्वयं को ही धोखा देता है | मनुष्य का दैनंदिन जीवन उसके आध्यात्मिक स्वरूप से कभी अलग नहीं किया जा सकता | दोनों एक-दूसरे के साथ क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं | *(हरि, 30-3-1947, पृ. 85)*

मेरे भीतर बैठे राजनीतिज्ञ ने मेरे एक भी निर्णय को मुख्य रूप से प्रभावित नहीं किया है, और यदि मैं राजनीति में भाग लेता दिखाई देता हूं तो वह केवल इस कारण कि आज राजनीति ने सर्प की कुंडली की भांति हमें जकड़ लिया है और व्यक्ति कितनी भी कोशिश करे, इससे मुक्त नहीं हो सकता | इसलिए मैं इस सर्प के साथ संघर्ष करना चाहता हूं, जैसा कि मैं कमोबेश सफलता के साथ, जानकर 1894 से और अनजाने, जैसा कि मैंने अब समझा है, होश संभालने की उम्र से करता आ रहा हूं | चूंकि मैं अपने चहुं ओर व्याप्त गरजते तूफान के बीच शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहता हूं, इसलिए नितांत स्वार्थवश, मैं राजनीति में धर्म को प्रविष्ट करके अपने और अपने मित्रों के साथ प्रयोग करता आ रहा हूं | *(यंग, 12-5-1920, पृ. 2)*

सत्य की सार्वभौम एवं सर्वव्यापी भावना का साक्षात दर्शन पाने के लिए मनुष्य को क्षुद्रतम प्राणी के प्रति भी अपने जैसा ही प्रेम करना आना चाहिए | और जो व्यक्ति इसमें सफल होना चाहता है, वह स्वयं को जीवन के किसी क्षेत्र से बाहर नहीं देख सकता | यही कारण है कि सत्य के प्रति मेरी भक्ति ने मुझे राजनीति के क्षेत्र में ला खड़ा किया है, और मैं बिना किसी हिचक के, किंतु परम विनम्रता के साथ, यह कहना चाहता हूं कि जो लोग यह कहते हैं कि धर्म का राजनीति से कोई वास्ता नहीं है, वे धर्म का अर्थ नहीं जानते | *(ए, पृ. 370-71)*

मैं जब तक संपूर्ण मानवता के साथ अपना तादात्म्य स्थापित न कर लूं तब तक यह नहीं कह सकता कि मैं धार्मिक जीवन व्यतीत कर रहा हूं, और यह मैं तब तक नहीं कर सकता जब तक कि राजनीति में भाग न लूं | आज मनुष्य के कार्यकलाप का संपूर्ण विस्तार एक अखंड इकाई है | आप सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और शुद्ध धार्मिक कार्यों को अलग-अलग चौखटों में नहीं बांध सकते | मैं मानव क्रिया के अतिरिक्त और कोई धर्म

नहीं जानता | धर्म अन्य सभी कार्यकलाप को नैतिक आधार प्रदान करता है; ऐसा न हो तो वे नैतिक आधार से वंचित हो जाएंगे और उस सूरत में, जीवन 'निरर्थक शोर और उन्माद' की एक भूलभुलैया बनकर रह जाएगा | *(हरि, 24-12-1938, पृ. 393)*

मुझे राजनीति के क्षेत्र में विवश होकर उतरना पड़ा, क्योंकि मैंने देखा कि राजनीति का स्पर्श किए बगैर मैं सामाजिक कार्य भी नहीं कर सकता था | मैं अनुभव करता हूं कि राजनीतिक कार्य को सामाजिक और नैतिक प्रगति के अर्थ में लिया जाना चाहिए | लोकतंत्र में जीवन का कोई पक्ष राजनीति से अछूता नहीं है | *(हरि, 6-10-1946, पृ. 341)*

मेरी दृष्टि में, धर्म से वंचित राजनीति केवल गंदगी है, जो सर्वथा त्याज्य है | राजनीति का सरोकार राष्ट्रों से है और जिस चीज़ का सरोकार राष्ट्रों के कल्याण से हो, वह धार्मिक प्रवृत्ति वाले अर्थात ईश्वर और सत्य की खोज करने वाले व्यक्ति के सरोकार की चीज़ अवश्य होनी चाहिए | मेरी दृष्टि में, ईश्वर और सत्य एक-दूसरे के पर्याय हैं और यदि कोई मुझे समझा दे कि ईश्वर असत्य अथवा यंत्रणा का ईश्वर है तो मैं उसकी आराधना करने से इंकार कर दूंगा | इसलिए राजनीति में भी हमें स्वर्ग के साम्राज्य की स्थापना करनी है | *(यंग, 18-6-1925, पृ. 214)*

मैं राजनीति को अपने जीवन की गहनतम बातों से पृथक नहीं कर सकता जिसका सीधा-सादा कारण यह है कि मेरी राजनीति भ्रष्ट नहीं है और वह अहिंसा तथा सत्य के साथ अटूट बंधन में बंधी है | *(यंग,1-10-1931, पृ.281)*

मैं धर्म के बिना एक पल नहीं रह सकता | मेरे बहुत-से राजनीतिक मित्र मुझसे निराश हैं, क्योंकि उनका कहना है कि मेरी राजनीति भी धर्म से व्युत्पन्न है | और वे ठीक कहते हैं | मेरी राजनीति और मेरे अन्य सभी कार्यकलाप मेरे धर्म से व्युत्पन्न हैं |

मैं एक कदम और आगे बढ़ाकर यहां तक कहूंगा कि धर्मनिष्ठ व्यक्ति का प्रत्येक कार्य धर्म से व्युत्पन्न होना चाहिए, क्योंकि धर्म का अर्थ है ईश्वर से आबद्ध, यानी कि आपकी प्रत्येक श्वास पर ईश्वर का अधिकार | *(हरि, 2-3-1934, पृ. 23)*

वस्तुत: हमारा प्रत्येक कार्य धर्म से व्याप्त होना चाहिए | यहां धर्म का आशय संप्रदायवाद से नहीं है | उसका आशय विश्व के व्यवस्थित नैतिक शासन से है | यह अगोचर है, इसलिए अवास्तविक नहीं है | यह धर्म हिंदू धर्म, इस्लाम, ईसाई धर्म आदि सबको परिव्याप्त करता है | यह उनका अधिक्रमण नहीं करता | यह उनमें समस्वरता लाता है और उन्हें वास्तविकता प्रदान करता है | *(हरि, 10-2-1940, पृ. 445)*

करोड़ों लोगों का जीवन मेरी राजनीति है जिससे मैं, अपने जीवन के ध्येय तथा ईश्वर को छोड़े बिना, मुक्त नहीं हो सकता | इस बात की पर्याप्त संभावना है कि (15 अगस्त 1947 के बाद, जबकि भारत स्वतंत्र हो जाएगा) मेरी राजनीति एक नया मोड़ ले ले | किंतु यह परिस्थितियों पर निर्भर करेगा | *(हरि, 17-8-1947, पृ. 281)*

मेरा यह कथन निस्संदेह एक अर्थ में सही है कि मैं अपने धर्म को अपने देश से ज्यादा प्यार करता हूं और इसलिए मैं हिंदू पहले हूं और राष्ट्रभक्त बाद में | इससे मैं अच्छे-से-अच्छे राष्ट्रभक्त से कम राष्ट्रभक्त नहीं बन जाता | मेरा आशय केवल यह है कि मेरे देश के हित और मेरे धर्म के हित एक ही हैं | इसी प्रकार, जब मैं कहता हूं कि मैं अपनी मुक्ति को सर्वाधिक, यहां तक कि भारत की मुक्ति से भी अधिक महत्व देता हूं तो उसका आशय यह नहीं होता कि मेरी निजी मुक्ति के लिए भारत की राजनीतिक अथवा किसी अन्य प्रकार की मुक्ति की बलि देनी होगी | इसका अनिवार्य आशय यह होता है कि ये दोनों सहगामी हैं | *(यंग, 23-2-1922, पृ. 123)*

धर्म राष्ट्रीयता की कसौटी नहीं है बल्कि व्यक्ति और उसके ईश्वर के बीच का निजी मामला है | राष्ट्रीयता के अर्थ में, हम सभी सर्वप्रथम भारतीय हैं और सबसे अंत में भी भारतीय ही हैं, भले हमारा मान्य धर्म कोई हो | *(हरि, 29-6-1947, पृ. 215)*

19. मंदिर और मूर्तिपूजा

मूर्तिपूजा का स्वरूप

मैं मूर्तिपूजा में अविश्वास नहीं करता | मूर्ति मेरे अंदर श्रद्धाभाव नहीं जगाती, पर मैं समझता हूं कि मूर्तिपूजा मानव प्रकृति का एक अंग है | हम प्रतीकों के पीछे भागते हैं | आदमी किसी अन्य स्थान की अपेक्षा चर्च में ज़्यादा शांत अनुभव क्यों करता है ? मूर्तियां आराधना में सहायक होती हैं | कोई हिंदू मूर्ति को भगवान नहीं समझता | मैं मूर्तिपूजा को पाप नहीं मानता | *(यंग, 6-10-1921, पृ. 318)*

मैं सच्चे अर्थों में मूर्तिपूजक भी हूं और मूर्तिभंजक भी | मैं मूर्तिपूजा में निहित भावना की कद्र करता हूं | यह मानवजाति के उत्थान में एक बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है....मैं इस अर्थ में मूर्तिभंजक हूं कि मैं कट्टरता रूपी उस सूक्ष्म मूर्तिपूजा का खंडन करता हूं जो देवता की आराधना के अपने तरीके के अलावा अन्य किसी तरीके को निस्सार मानती है | मूर्तिपूजा का यह सूक्ष्म रूप उस स्थूल रूप से ज्यादा तीक्ष्ण और कुटिल है जो पत्थर या सोने के छोटे-से खंड को देवता मानकर उसकी आराधना करता है | *(यंग, 28-8-1924, पृ. 284)*

मैं मूर्तिपूजा का समर्थक भी हूं और विरोधी भी | जब मूर्तिपूजा का ह्रास होकर यह झूठे विश्वासों और सिद्धांतों से आच्छादित हो जाती है तो उसे एक जबर्दस्त सामाजिक बुराई मानकर इसका विरोध करना आवश्यक हो जाता है | दूसरी ओर, अपने आदर्श को एक स्थूल आकृति में निहित कर उसे पूजना मानव स्वभाव है और यह भक्ति का एक मूल्यवान साधन भी है | इस प्रकार जब हम किसी पुस्तक को पवित्र मानकर उसे आदर देते हैं तो वह भी प्रतिमा-पूजा ही है | जब हम पवित्रता अथवा आदर की भावना से मंदिर या मस्जिद में जाते हैं तो हम एक प्रकार की प्रतिमा-पूजा ही करते हैं | मुझे इन सबमें कोई हानि दिखाई नहीं देती | बल्कि सीमित समझ होने के कारण मनुष्य शायद ही कोई और तरीका अपना सके | इसीलिए वृक्षपूजा में कोई बुनियादी बुराई या हानि देखने के बजाए मैं उसे एक गहन करुणा और काव्यगत सौंदर्य से युक्त वस्तु पाता हूं | यह संपूर्ण वनस्पति-जगत के प्रति आदर का प्रतीक है – वनस्पति-जगत जो सुंदर रूपों और आकारों की असीम चित्रावली के साथ मानो करोड़ों मुखों से परमात्मा की महानता और वैभव का कीर्तन करता है.... *(यंग, 26-9-1929, पृ. 320)*

लेकिन यह आराधकों द्वारा वृक्षों के सामने किए गए वायदों और प्रार्थनाओं से बिलकुल अलग बात है | स्वार्थपूर्ति के लिए किए गए वायदों और प्रार्थनाओं को – वे गिरजों, मस्जिदों, मंदिरों, दरगाहों या वृक्षों के सम्मुख आदि कहीं भी की गई हों – प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए | प्रतिमा-पूजा और स्वार्थवश किए गए निवेदनों या वायदों में कोई कारण-कार्य संबंध नहीं है | निजी स्वार्थवश की गई प्रार्थना बुरी चीज़ है, चाहे वह मूर्ति के सामने की जाए या निराकार परमेश्वर से |

लेकिन इससे कोई यह न समझे कि मैं व्यापक स्तर पर वृक्षपूजा की वकालत कर रहा हूं | मैं वृक्षपूजा का पक्ष इसलिए नहीं ले रहा कि मैं इसे आराधना का आवश्यक साधन मानता हूं, बल्कि इसलिए कि मैं यह मानता हूं कि परमात्मा अपने आपको इस विश्व में असंख्य रूपों में प्रकट करता है और उसका प्रत्येक रूप मेरे लिए सहज प्रणम्य है | *(वही)*

जहां तक मूर्तिपूजा का सवाल है, इसे किसी-न-किसी रूप में अपनाए बगैर आपका काम नहीं चल सकता | मुसलमान मस्जिद को खुदा का घर मानकर उसकी रक्षा के लिए जान की बाजी क्यों लगा देता है ? ईसाई गिरजे में क्यों जाता है और बाइबिल का नाम लेकर शपथ क्यों लेता है ? ऐसा नहीं कि मुझे इसमें कोई आपत्ति है | पर मस्जिदों और मकबरों के निर्माण के लिए बेहिसाब पैसा देना मूर्तिपूजा नहीं तो और क्या है ? और रोमन कैथोलिक जब बीबी मरियम के सामने घुटने टेकते हैं तो क्या करते हैं ? या पत्थरों से बनी अथवा कैनवस या शीशे पर चित्रित ईसाई संतों या अन्य काल्पनिक आकृतियों को नमन करते हैं तो वह क्या है ? हम जब ऐसा करते हैं तो हम उस पत्थर की पूजा नहीं करते बल्कि पत्थर या धातु से बनी प्रतिमाओं – वे कितनी भी अनगढ़ हों – के माध्यम से परमात्मा की पूजा करते हैं | *(हरि, 13-3-1937, पृ. 39)*

पूजास्थल

मैं मंदिरों के अस्तित्व को पाप या अंधविश्वास नहीं मानता | सार्वजनिक पूजा का कोई प्रकार और सार्वजनिक पूजास्थल संभवत: मानवीय आवश्यकताएं हैं | मंदिरों में मूर्तियां हों या न हों, यह आराधकों के स्वभाव या रूचि पर निर्भर करता है | मैं मूर्तियों से युक्त मंदिरों या रोमन कैथोलिक गिरजों को अनिवार्यत: बुरा या अंधविश्वास और केवल मूर्तियां न होने के कारण मस्जिद या प्रोटेस्टेंट गिरजे को अच्छा या अंधविश्वासमुक्त नहीं मानता | क्रूस या ग्रंथ जैसे प्रतीक को भी सरलतापूर्वक मूर्तिपूजा जैसा और इसलिए, अंधविश्वासयुक्त माना जा सकता है | दूसरी ओर, बाल-गोपाल कृष्ण अथवा कुमारी मरियम की प्रतिमाओं की पूजा उदात्त और अंधविश्वास से मुक्त मानी जा सकती है | यह सब आराधक के हृदय की प्रवृत्ति पर निर्भर करता है | *(यंग, 5-11-1925, पृ. 378)*

मेरी दृष्टि में, पूजास्थल केवल ईंट-गारा नहीं है | ये यथार्थ की छाया हैं | प्रत्येक नष्ट किए गए गिरजे, मस्जिद और मंदिर के स्थान पर सैकड़ों गिरजे, मस्जिद और मंदिर खड़े हो गए हैं | *(यंग, 4-11-1926, पृ. 386)*

मुझे ऐसे किसी धर्म की जानकारी नहीं है जिसने अपने ईश्वर का घर बनाए बिना काम चला लिया हो या चला रहा हो – इसे चाहे मंदिर कहें, मस्जिद कहें, गिरजा कहें, सिनेगॉग कहें, या अग्यारी कहें | न यह कहा जा सकता है कि ईसा सहित किसी बड़े सुधारक ने मंदिरों को नष्ट किया हो या उनका पूरी तरह त्याग किया हो | इनमें से सभी ने मंदिरों से और उनके साथ ही, समाज से भ्रष्टाचार दूर करने का प्रयास किया.... मैंने वर्षों से मंदिरों में जाना बंद कर दिया है | लेकिन मैं नहीं समझता कि इसके कारण मैं पहले से बेहतर इंसान बन गया हूं | मेरी मां जब जाने

योग्य स्थिति में होती थी तो कभी मंदिर जाने में चूक नहीं करती थी | संभवत: उसकी आस्था मुझसे अधिक दृढ़ थी, यद्यपि मैं मंदिर नहीं जाता | *(हरि, 11-3-1933, पृ. 5)*

मंदिर या मस्जिद या गिरजे....ईश्वर के इन विविध वासगृहों में मैं कोई भेद नहीं मानता | ये आस्था के अनुरूप बनाए गए हैं | ये उस अदृष्ट तक किसी-न-किसी प्रकार पहुंचने की मनुष्य की लालसा की अभिव्यक्ति हैं | *(हरि, 18-3-1933, पृ. 6)*

अपने भीतर ईश्वर की सजीव उपस्थिति का बोध जगाने के लिए मंदिर जाने की जरूरत नहीं है | *(हरि, 29-6-1947, पृ. 209)*

पत्थरों की इमारतों के बजाय हमारे शरीर ज़्यादा वास्तविक मंदिर हैं | सामूहिक आराधना का सर्वोत्तम स्थान खुले आकाश का वितान और धरती मां का आसन है | *(हरि, 4-1-1948, पृ. 498)*

20. छूआछूत का अभिशाप

मैं फिर से जन्म लेना नहीं चाहता | लेकिन मेरा पुनर्जन्म हो ही तो मैं अछूत पैदा होना चाहूंगा ताकि मैं उनके दुखों, कष्टों और अपमानों का भागीदार बनकर स्वयं को और उन्हें इस दयनीय स्थिति से छुटकारा दिलाने का प्रयास कर सकूं | इसलिए मेरी प्रार्थना है कि यदि मेरा पुनर्जन्म हो तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शुद्र के रूप में न हो बल्कि अतिशूद्र के रूप में हो | *(यंग, 4-5-1921, पृ. 144)*

अपनी पत्नी के साथ बंधन में बंधने से बहुत पहले ही मैं 'छूआछूत' उन्मूलन के कार्य के साथ बंध गया था | हमारे संयुक्त जीवन में दो ऐसे अवसर आए जब अछूतोद्धार और पत्नी के साथ रहने के बीच एक चीज़ को चुनना था, और मैं अछूतोद्धार को ही चुनता | लेकिन मैं अपनी पत्नी का आभारी हूं जिसने संकट को टाल दिया | मेरे आश्रम में, जो मेरा परिवार है, कई अछूत हैं और एक प्यारी नटखट लड़की तो मेरी अपनी बेटी की तरह ही रहती है | *(यंग, 5-11-1931, पृ. 341)*

लोगों के प्रति प्रेम ने छूआछूत की समस्या मेरे बाल्यकाल में ही उठा दी थी | मेरी मां ने कहा, 'इस बच्चे को मत छूना, यह अछूत है |' 'क्यों न छूऊं ?' मैंने पलटकर पूछा और उसी दिन से मेरा विद्रोह आरंभ हो गया | *(हरि, 24-12-1938, पृ. 393)*

यदि हम भारत की जनसंख्या के पांचवें हिस्से को सदा के लिए पराधीन रखना चाहें और उन्हें राष्ट्रीय संस्कृति की उपलब्धियों से जान-बूझकर वंचित रखें, तो स्वराज्य बेकार है | हम इस महान शुद्धि आंदोलन में भगवान की सहायता चाहते हैं, लेकिन उसकी सृष्टि के सर्वाधिक सुपात्र प्राणियों को मानवता के अधिकार देना नहीं चाहते | यदि हम स्वयं अमानवीय हैं तो दूसरों की अमानवीयता से मुक्ति पाने के लिए ईश्वर से याचना कैसे कर सकते हैं? *(यंग, 25-5-1921, पृ. 165)*

धर्म के पवित्र नाम पर मनुष्य को उत्पीड़ित करते जाना कट्टर हठधर्म के अलावा और कुछ नहीं है | *(यंग, 11-3-1926, पृ. 95)*

हिंदू धर्म के सुधार और उसके वास्तविक संरक्षण के लिए, छूआछूत को मिटाना सबसे आवश्यक बात है.... छूआछूत को मिटाना....एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है | *(यंग, 6-1-1927, पृ. 2)*

अगर छूआछूत कायम रहती है तो हिंदू धर्म को खत्म हो जाना चाहिए | *(हरि, 28-9-1947, पृ. 349)*

मैं तो यहां तक कहूंगा कि छूआछूत कायम रहने से हिंदू धर्म का खत्म हो जाना अच्छा है | *(यंग, 26-11-1931, पृ. 372)*

छूआछूत से लड़ने और उस संघर्ष के लिए स्वयं को अर्पित करने में मेरी आकांक्षा मानवजाति के संपूर्ण पुनरुद्धार की है | यह सीपी में चांदी के आभास की तरह, मात्र एक स्वप्न भी हो सकता है | लेकिन मेरे लिए मेरी यह आकांक्षा यथार्थ है; अत: यह स्वप्न नहीं है | रोमां रोलां के शब्दों में "विजय लक्ष्य की प्राप्ति में नहीं, अपितु उसके लिए अथक प्रयास में निहित होती है |" *(हरि, 25-3-1933, पृ. 3)*

छूआछूत और जाति

अछूतों के कारण जाति-व्यवस्था को समाप्त करना उतना ही गलत है, जितना कि किसी भद्दी अंग-वृद्धि के लिए शरीर को और खर-पतवार की वजह से फसल को नष्ट कर देना | इसलिए, जिसे हम अछूतपन कहते हैं, उसे पूर्णतया नष्ट कर दिया जाना चाहिए | यदि सारी व्यवस्था को नष्ट होने से बचाना है तो इस अतिरेक का उच्छेदन आवश्यक है | छूआछूत जाति-व्यवस्था के कारण उत्पन्न नहीं हुई, बल्कि हिंदू धर्म में ऊंच-नीच के भेदभाव के कारण उत्पन्न हुई है और इसे नष्ट कर रही है | इसलिए छूआछूत पर आक्रमण इस 'उंच-नीच'पने पर आक्रमण है | जिस क्षण छूआछूत का उन्मूलन हो जाएगा, जाति-व्यवस्था स्वयं शुद्ध हो जाएगी अर्थात, मेरे स्वप्न के अनुसार, सच्चे वर्णधर्म की स्थापना हो जाएगी – समाज के चार भाग जो परस्पर पूरक होंगे जिनमें कोई किसी से श्रेष्ठ अथवा हीन नहीं होगा और प्रत्येक भाग हिंदू धर्म की समूची काया के लिए समान रूप से आवश्यक होगा | *(हरि, 11-2-1933, पृ. 3)*

वर्णाश्रम धर्म

वर्णाश्रम धर्म पृथ्वी पर मनुष्य के जीवन-ध्येय को परिभाषित करता है | मनुष्य धन-संपदा जुटाने और आजीविका के विभिन्न साधनों की खोज करते रहने के लिए बारंबार देह धारण नहीं करता, वह इसलिए देह धारण करता है कि अपनी ऊर्जा का एक-एक अणु अपने स्रष्टा को जानने में खर्च कर दे | अत: उसे, अपनी प्राणरक्षा के निमित, अपने पूर्वजों के व्यवसाय तक ही अपने को सीमित रखना चाहिए | वर्णाश्रम धर्म यही है – न इससे ज़्यादा, न कुछ कम | *(यंग, 27-10-1927, पृ. 357)*

पैतृक व्यवसायों पर आधारित वर्ण-व्यवस्था में मुझे विश्वास है | चार वर्ण चार सार्वभौम व्यवसायों से जुड़े हैं – ज्ञान देना, असहायों की रक्षा करना, कृषि और वाणिज्य कर्म, तथा शारीरिक श्रम द्वारा सेवाएं प्रदान करना | ये चार व्यवसाय सारी मानवजाति में समान रूप से विद्यमान हैं | लेकिन हिंदू धर्म ने इन्हें हमारे अस्तित्व का नियम मानते हुए, सामाजिक संबंधों और व्यवहार के नियमन के लिए इनका इस्तेमाल किया है | गुरुत्वाकर्षण का नियम हम सभी को प्रभावित करता है, हम उसके अस्तित्व से परिचित हों या न हों लेकिन जो वैज्ञानिक इस नियम से अवगत हैं, उन्होंने इसकी प्रयुक्ति से ऐसी-ऐसी चीज़ें निकाली हैं कि दुनिया हैरत में है | इसी प्रकार, हिंदू धर्म ने वर्ण के नियम की खोज और प्रयुक्ति से सारी दुनिया को आश्चर्यचकित कर दिया | जब हिंदू जड़ता के शिकार थे

तब वर्ण-व्यवस्था के दुरुपयोग के फलस्वरूप असंख्य जातियां पैदा हो गई और अंतर्जातीय विवाहों तथा अंतर्जातीय भोजों को लेकर अनावश्यक और हानिकर प्रतिबंध लगा दिए गए | वर्ण-व्यवस्था का इन प्रतिबंधों से कोई लेना-देना नहीं है | विभिन्न वर्णों के लोग परस्पर विवाह कर सकते हैं और एक-दूसरे के साथ बैठकर भोजन कर सकते हैं | ये प्रतिबंध शुद्धता और सफाई के हित में आवश्यक हो सकते हैं, पर यदि कोई ब्राह्मण लड़का शुद्र लड़की से विवाह करता है या शुद्र लड़का ब्राह्मण लड़की से विवाह करता है तो इससे वर्ण के नियम का कोई उल्लंघन नहीं होता |*(यंग, 4-6-1931, पृ. 129)*

आज ब्राह्मण और क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र केवल नाम की चिप्पियां हैं | जहां तक मैं समझता हूं, वर्ण-व्यवस्था पूरी गड्डमगड्ड हो गई है और अच्छा हो, यदि सभी हिंदू स्वेच्छा से अपने को शूद्र कहना आरंभ कर दें | ब्राह्मणवाद की सच्चाई को साबित करने और सच्चे वर्ण-धर्म को पुन:प्रतिष्ठित करने का यही एकमात्र उपाय है |*(हरि, 25-3-1933, पृ. 3)*

मैं मानता हूं कि प्रत्येक व्यक्ति इस संसार में कुछ सहज प्रवृत्तियां लेकर पैदा होता है | प्रत्येक व्यक्ति कुछ निश्चित कमियां भी लेकर पैदा होता है जिन्हें वह दूर नहीं कर सकता | इन कमियों का सावधानी के साथ प्रेक्षण करने के फलस्वरूप ही वर्ण का नियम प्रतिपादित किया गया | इसने कतिपय प्रवृत्तियों वाले कतिपय लोगों के लिए कतिपय कार्य-क्षेत्र निश्चित कर दिए | लोगों की सहज कमियों को स्वीकार करते हुए भी, वर्ण के नियम में ऊंच-नीच का कोई भेद नहीं माना गया है, बल्कि इसने एक ओर तो प्रत्येक व्यक्ति को उसके परिश्रम का फल मिले, इसकी गारंटी दी और दूसरी ओर, उसे अपने पड़ोसियों पर दबाव डालने से रोका | इस महान नियम को विकृत कर दिया गया है और यह बदनाम हो चुका है | लेकिन मुझे पक्का विश्वास है कि जब इस नियम के निहितार्थों को पूरी तरह समझ कर इसे लागू किया जाएगा तभी आदर्श सामाजिक व्यवस्था विकसित हो सकेगी | *(मारि, अक्तू. 1935, पृ. 413)*

अंतर्जातीय विवाह और अंतर्जातीय भोज

यद्यपि वर्णाश्रम में अंतर्जातीय विवाह और अंतर्जातीय भोज पर कोई पाबंदी नहीं है, पर इसमें कोई बाध्यता लागू नहीं की जा सकती | आदमी कहां शादी करे और किसके साथ भोजन करे, इसका फैसला करने के लिए उसे आज़ाद छोड़ देना चाहिए | *(हरि, 16-11-1935, पृ. 316)*

जाति

मैं चार विभाजनों को ही मौलिक, स्वाभाविक और आवश्यक मानता हूं | असंख्य उपजातियां कभी-कभी सुविधाजनक हैं, पर प्राय: ये अवरोधक सिद्ध होती हैं | इनका विलयन जितनी जल्दी हो जाए, उतना ही अच्छा है| *(यंग, 8-12-1920, पृ. 3)*

आर्थिक दृष्टि से, एक जमाने में जाति का बड़ा महत्व था | इससे पैतृक कौशल की रक्षा होती थी और प्रतियोगिता मर्यादित रहती थी | यह कंगाली को दूर रखने का सर्वोत्तम उपाय था | इसमें व्यापार श्रेणियों के सभी लाभ थे | यद्यपि इससे साहस अथवा आविष्कार को बढ़ावा नहीं मिलता था, पर यह भी नहीं कहा जा सकता कि यह उनके मार्ग में बाधक थी....

ऐतिहासिक दृष्टि से, जाति-व्यवस्था को भारतीय समाज की प्रयोगशाला में मनुष्य का प्रयोग या सामाजिक संमजन कहा जा सकता है | यदि हम इसे सफल सिद्ध कर सकें तो इसे संसार को उसकी काया पलटने, निर्मम प्रतियोगिता को समाप्त करने और धनलोलुपता तथा लालच से उत्पन्न होने वाले सामाजिक विघटन को रोकने के सर्वोत्तम साधन के रूप में पेश कर सकते हैं |*(यंग, 5-1-1921, पृ. 2)*

जाति और वर्ण

....मैंने प्राय: कहा है कि मैं जाति का जो आधुनिक अर्थ है, उसमें विश्वास नहीं करता | यह अनावश्यक है और प्रगति के लिए बाधक है | न मैं मनुष्यों के बीच असमानताओं में विश्वास करता हूं | हम सब बिलकुल बराबर हैं | लेकिन समानता आत्माओं की है, शरीरों की नहीं | अत: यह एक मानसिक स्थिति है | हमें समानता हासिल करनी है | एक व्यक्ति का स्वयं को दूसरे से श्रेष्ठ समझना ईश्वर और मानव के प्रति पाप है | अत: जाति, जहां तक वह ऊंच-नीच का भेद करती है, एक बुराई है |*(यंग, 4-6-1931, पृ. 129)*

जाति-भेद ने हमारे अंदर इतनी गहरी जड़ें जमा ली हैं कि उससे भारत के मुसलमान, ईसाई और अन्य धर्मावलंबी भी कुप्रभावित हो गए हैं | वैसे, जातिगत अवरोध कमोबेश मात्रा में दुनिया के अन्य भागों में भी पाए जाते हैं | इसका अर्थ यह है कि इस बीमारी से पूरी मानव जाति ग्रस्त है | इसे सच्चे अर्थ में धर्म की स्थापना करके ही दूर किया जा सकता है | मुझे किसी धर्म के ग्रंथों में ऐसे अवरोधों और भेदभावों का विधान नहीं मिला |

धर्म की दृष्टि में सभी मनुष्य बराबर हैं | विद्या, बुद्धि या धन के कारण कोई व्यक्ति अपने को उनसे श्रेष्ठ होने का दावा नहीं कर सकता जिनके पास इनका अभाव है | यदि कोई व्यक्ति सच्चे धर्म के शुचिकारी तत्व और अनुशासन से आप्लावित और पवित्रीकृत है तो उसे चाहिए कि अपने से कम भाग्यशाली लोगों के साथ अपने लाभों को बांटने का दायित्व निभाए | इस दृष्टि से, अपनी वर्तमान पतित अवस्था में, सच्चे धर्म का तकाजा है कि हम सब स्वेच्छा से अतिशूद्र बन जाएं |

हमें स्वयं को अपने धन का स्वामी नहीं, बल्कि न्यासी मानना चाहिए और अपनी सेवा के उचित पारिश्रमिक से अधिक को अपने पास न रखते हुए शेष को समाज-सेवा पर लगा देना चाहिए | इस व्यवस्था में, न कोई अमीर होगा, न कोई गरीब | सभी धर्म समकक्ष माने जाएंगे | धर्म, जाति या आर्थिक शिकायतों को लेकर उठने वाले तमाम झगड़े विश्व-शांति को भंग करना बंद कर देंगे |*(हिं, 19-9-1945)*

5. अहिंसा

21. अहिंसा का दिव्य संदेश

मानव जाति के नियम

मैं स्वप्नद्रष्टा नहीं हूं | मैं स्वयं को एक व्यावहारिक आदर्शवादी मानता हूं | अहिंसा का धर्म केवल ऋषियों और संतों के लिए नहीं है | यह सामान्य लोगों के लिए भी है | अहिंसा उसी प्रकार से मानवों का नियम है जिस प्रकार से हिंसा पशुओं का नियम है | पशु की आत्मा सुप्तावस्था में होती है और वह केवल शारीरिक शक्ति के नियम को ही जानता है | मानव की गरिमा एक उच्चतर नियम – आत्मा के बल का नियम – के पालन की अपेक्षा करती है....

जिन ऋषियों ने हिंसा के बीच अहिंसा की खोज की, वे न्यूटन से अधिक प्रतिभाशाली थे | वे स्वयं वेलिंग्टन से भी बड़े योद्धा थे | शस्त्रों के प्रयोग का ज्ञान होने पर भी उन्होंने उसकी व्यर्थता को पहचाना और श्रांत संसार को बताया कि उसकी मुक्ति हिंसा में नहीं अपितु अहिंसा में है |*(यंग, 11-8-1920, पृ. 3)*

मेरी अहिंसा

मैं केवल एक मार्ग जानता हूं – अहिंसा का मार्ग | हिंसा का मार्ग मेरी प्रकृति के विरुद्ध है | मैं हिंसा का पाठ पढ़ाने वाली शक्ति को बढ़ाना नहीं चाहता....मेरी आस्था मुझे आश्वस्त करती है कि ईश्वर बेसहारों का सहारा है, और वह संकट में सहायता तभी करता है जब व्यक्ति स्वयं को उसकी दया पर छोड़ देता है | इसी आस्था के कारण मैं यह आशा लगाए बैठा हूं कि एक-न-एक दिन वह मुझे ऐसा मार्ग दिखाएगा जिस पर चलने का आग्रह मैं अपने देशवासियों से विश्वासपूर्वक कर सकूंगा |*(यंग, 11-10-1928, पृ. 342)*

मैं जीवन भर एक 'जुआरी' रहा हूं | सत्य का शोध करने के अपने उत्साह में और अहिंसा में अपनी आस्था के अनवरत अनुगमन में, मैंने बेहिचक बड़े-से-बड़े दांव लगाए हैं | इसमें मुझसे कदाचित गलतियां भी हुई हैं, लेकिन ये वैसी ही हैं जैसी कि किसी भी युग या किसी भी देश के बड़े-से-बड़े वैज्ञानिकों से होती हैं | *(यंग, 20-2-1930, पृ. 61)*

मैंने अहिंसा का पाठ अपनी पत्नी से पढ़ा, जब मैंने उसे अपनी इच्छा के सामने झुकाने की कोशिश की | एक ओर, मेरी इच्छा के दृढ़ प्रतिरोध, और दूसरी ओर, मेरी मूर्खता को चुपचाप सहने की उसकी पीड़ा को देखकर अंतत: मुझे अपने ऊपर बड़ी लज्जा आई, और मुझे अपनी इस मूर्खतापूर्ण धारणा से मुक्ति मिली कि मैं उस पर शासन करने के लिए ही पैदा हुआ हूं | अंत में, वह मेरी अहिंसा की शिक्षिका बन गई | *(हरि, 24-12-1938, पृ. 394)*

मेरे जीवन का मार्गदर्शक सिद्धांत निष्क्रियता नहीं, अपितु अधिकतम सक्रियता है | *(हरि, 28-6-1942, पृ. 201)*

मुझे यह सोचकर अपने आपको झूठी शाबाशी....नहीं देनी चाहिए और न मित्रों को....यह विश्वास करने देना चाहिए कि मैंने अपने व्यवहार में किसी वीरोचित और उल्लेखनीय अहिंसा का प्रदर्शन किया है | मैं सिर्फ इतना दावा कर सकता हूं कि मैं बिना रुके उस दिशा में अपनी नाव खेता जा रहा हूं | *(हरि, 11-1-1948, पृ. 504)*

अहिंसा का स्वरूप

(1) अहिंसा मानव जाति का नियम है, और यह पशुबल से कहीं अधिक महान तथा श्रेष्ठ है |

(2) यह अंतत: उनके लिए उपयोगी नहीं है जिन्हें प्रेम के ईश्वर में जीती-जागती आस्था नहीं है |

(3) अहिंसा मनुष्य के स्वाभिमान और आत्मसम्मान की पूरी तरह रक्षा करती है, लेकिन जमीन-जायदाद या चल संपत्ति के स्वामित्व को सदा संरक्षण प्रदान नहीं करती, हालांकि अहिंसा का आभ्यासिक पालन संपत्ति की रक्षा के लिए सशस्त्र आदमी रखने की अपेक्षा ज्यादा कारगर सुरक्षा प्रदान करता है | अहिंसा की प्रकृति ही ऐसी है कि वह गलत तरीके से कमाए गए लाभों और अनैतिक कृत्यों की रक्षा करने में कोई मदद नहीं करती |

(4) अहिंसा के मार्ग पर चलने वाले व्यक्तियों और राष्ट्रों को अपनी प्रतिष्ठा के अलावा बाकी सब कुछ बलिदान करने (राष्ट्रों को अपने अंतिम नागरिक की बलि तक) के लिए तैयार रहना चाहिए | अत: अहिंसा का अन्य देशों पर अधिकार कर बैठने अर्थात साम्राज्यवाद, जो स्पष्टतया अपनी रक्षा के लिए शक्ति के प्रयोग पर आधारित होता है, के साथ कोई मेल नहीं है |

(5) अहिंसा ऐसी शक्ति है जिसे सब साध सकते हैं – बच्चे, युवा स्त्री-पुरुष या प्रौढ़ व्यक्ति | शर्त यही है कि उन्हें प्रेम के ईश्वर में जीवित आस्था हो और वे समस्त मानव जाति को एकसमान प्रेम करते हों | अहिंसा को जीवन का नियम मान लेने पर यह केवल व्यक्ति के इक्का-दुक्का कृत्यों पर ही लागू न हो बल्कि उसके समूचे व्यक्तित्व को अनुप्राणित करने वाली होनी चाहिए |

(6) यह मानना बहुत गलत है कि अहिंसा का नियम व्यक्तियों के लिए तो ठीक है पर मानवसमूहों के लिए कारगर नहीं है | *(हरि, 5-9-1936, पृ. 236)*

अहिंसा और सत्य का मार्ग तलवार की धार के समान तीक्ष्ण है | इसका अनुसरण हमारे दैनिक भोजन से भी अधिक महत्वपूर्ण है | सही ढंग से लिया जाए तो भोजन देह की रक्षा करता है, सही ढंग से अमल में लाई जाए तो अहिंसा आत्मा की रक्षा करती है | शरीर के लिए भोजन नपी-तुली मात्रा में और निश्चित अंतरालों पर ही लिया जा सकता है; अहिंसा तो आत्मा का भोजन है, निरंतर लेना पड़ता है | इसमें तृप्ति जैसी कोई चीज़ नहीं है | मुझे हर पल इस बात के प्रति सचेत रहना पड़ता है कि मैं अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रहा हूं और उस लक्ष्य के हिसाब से अपनी परख करती रहनी पड़ती है |

परिवर्तनरहित पंथ

अहिंसा के मार्ग का पहला कदम यह है कि हम अपने दैनिक जीवन में परस्पर सच्चाई, विनम्रता, सहिष्णुता और प्रेममय दयालुता का व्यवहार करें | अंग्रेजी में कहावत है कि ईमानदारी सबसे अच्छी नीति है | नीतियां तो बदल सकती हैं और बदलती हैं | किंतु अहिंसा का पंथ अपरिवर्तनीय है | अहिंसा का अनुगमन उस समय करना आवश्यक है जब तुम्हारे चारों ओर हिंसा का नंगा नाच हो रहा हो | अहिंसक व्यक्ति के साथ अहिंसा का व्यवहार करना कोई बड़ी बात नहीं है | वस्तुत: यह कहना कठिन है कि इस व्यवहार को अहिंसा कहा भी जा सकता है या नहीं | लेकिन अहिंसा जब हिंसा के मुकाबले खड़ी होती है, तब दोनों का फ़र्क पता चलता है | ऐसा करना तब तक संभव नहीं है जब तक कि हम निरंतर सचेत, सतर्क और प्रयासरत न रहें | *(हरि, 2-4-1938, पृ. 64)*

केवल अहिंसा ही वैध है | हिंसा कभी वैध नहीं हो सकती – यहां विधि से हमारा आशय मानव-निर्मित विधि से नहीं अपितु प्रकृति द्वारा मानव के लिए निर्मित विधि से है |*(हरि, 27-10-1946, पृ. 369)*

ईश्वर में आस्था

ईश्वर में जीती-जागती आस्था न हो तो अहिंसा में जीती-जागती आस्था हो ही नहीं सकती | अहिंसक व्यक्ति ईश्वर की शक्ति एवं अनुग्रह के बिना कुछ भी नहीं कर सकता | इसके बिना वह क्रोधरहित, भयरहित और प्रतिकाररहित होकर मरने का साहस नहीं कर पाएगा | यह साहस इस विश्वास से उत्पन्न होता है कि ईश्वर सबके हृदयों में विराजमान है और यह कि ईश्वर की उपस्थिति में भय करने की कोई जरूरत नहीं है | ईश्वर की सर्वव्यापिता के ज्ञान का अर्थ है, उन व्यक्तियों के जीवन के प्रति भी आदर भाव जिन्हें तुम्हारा विरोधी कहा जा सकता है.... *(हरि, 18-6-1938, पृ. 152)*

अहिंसा उच्चतम कोटि का सक्रिय बल है | यह आत्मबल अर्थात हमारे अंदर बैठे ईश्वरत्व की शक्ति है | अपूर्ण मनुष्य उस तत्व को पूरी तरह नहीं पकड़ सकता – वह उसके संपूर्ण तेज़ को सहन नहीं कर पाएगा, किंतु उसका अत्यल्प अंश भी हमारे अंदर सक्रिय हो जाए तो उसके अद्‌भुत परिणाम निकल सकते हैं |

सूर्य सारे विश्व को अपनी जीवनदायी ऊष्मा से भर देता है, पर अगर कोई उसके बहुत निकट जाएगा तो वह उसे जला कर राख कर देगा | ईश्वरत्व के साथ भी यही बात है | हम अहिंसा की जितनी सिद्धि करते जाते हैं, ईशतुल्य होते जाते हैं, पर हम कभी पूरी तरह ईश्वर नहीं बन सकते | *(हरि, 12-11-1938, पृ. 326)*

तथ्य यह है कि अहिंसा उस तरह काम नहीं करती जिस तरह हिंसा करती है | यह उलटे तरीके से काम करती है | हथियारबंद आदमी स्वभावतया अपने हथियारों पर भरोसा करता है | जो व्यक्ति जान-बूझकर निहत्था है, वह अदृष्ट बल पर भरोसा करता है, जिसे कवियों ने ईश्वर किंतु वैज्ञानिकों ने 'अज्ञात' कहा है | लेकिन जो 'अज्ञात' है,

वह अस्तित्व में ही न हो, यह जरूरी नहीं है | ईश्वर ज्ञात और अज्ञात, सभी बलों से श्रेष्ठ बल है | उस परम बल के सहारे के बिना अहिंसा का कोई मूल्य नहीं है, उसे कूड़े में फेंक देना चाहिए | *(हरि, 28-6-1942, पृ. 201)*

अपने भीतर ईश्वर की जीती-जागती उपस्थिति का बोध निस्संदेह पहली शर्त है |*(हरि, 29-6-1947, पृ. 209)*

धार्मिक आधार

मेरे हिंदू होने के दावे को मानने से कुछ लोगों ने इसलिए इंकार किया है कि मैं अहिंसा के आत्यंतिक स्वरूप में विश्वास करता हूं और उसका पक्षधर हूं | उनका कहना है कि मैं छद्मवेश में एक ईसाई हूं | मुझे पूरी संजीदगी के साथ यह भी बताया गया है कि मैं गीता को विशुद्ध अहिंसा का उपदेश बताकर उस महान रचना के अर्थ को तोड़-मरोड़ रहा हूं | मेरे कतिपय हिंदू मित्र मुझे बताते हैं कि गीता के अनुसार, किन्हीं विशेष परिस्थितियों में लोगों का वध कर देना मनुष्य का कर्तव्य है | अभी उस दिन एक परम विद्वान शास्त्री ने गीता की मेरी व्याख्या को तिरस्कारपूर्वक अस्वीकार कर दिया और कहा कि गीता के उन कतिपय व्याख्याकारों की सम्मति का कोई आधार नहीं है जो मानते हैं कि गीता में अच्छाई और बुराई के शाश्वत द्वंद्व की चर्चा है और वह हमें बिना हिचक और बिना लिहाज, अपने अंदर की बुराई का उन्मूलन करने का उपदेश देती है |

मैं अहिंसा के विरुद्ध इन सम्मतियों का ब्यौरेवार उल्लेख इसलिए कर रहा हूं क्योंकि मेरे द्वारा प्रस्तुत समाधान को समझने के लिए पहले इन सम्मतियों को समझना जरूरी है....

मुझे बिना किसी मुलाहजे के खारिज कर दीजिए | मेरा धर्म पूर्णतया मेरे स्वामी और मेरे बीच की बात है | अगर मैं हिंदू हूं तो समस्त हिंदू जनता द्वारा त्यागे जाने के बावजूद मैं हिंदू ही रहूंगा | लेकिन मैं जोर देकर कहता हूं कि अहिंसा सभी धर्मों की परिणति है |*(यंग, 29-5-1924, पृ. 175)*

अहिंसा का पाठ सभी धर्मों में मौजूद है, लेकिन मैं बड़े चाव से यह मानता हूँ कि संभवत: भारत ही ऐसा देश है जिसमें अहिंसा के आचरण को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया गया है | अनगिनत संतों ने तपश्चर्या में अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया, यहां तक कि कवियों ने कल्पना की कि उनके बलिदान से हिमालय पवित्र होकर हिमश्वेत हो गए | लेकिन आज अहिंसा का यह आचरण लुप्त हो गया है | यह जरूरी है कि हम क्रोध का जवाब प्रेम से और हिंसा का जवाब अहिंसा से देने के शाश्वत नियम को फिर से जीवित करें, और यह चीज़ राजा जनक और रामचंद्र की भूमि से ज़्यादा आसानी से और कहां की जा सकती है ? *(हरि, 30-3-1947, पृ. 36)*

हिंदू धर्म की अद्वितीय देन

अहिंसा की बात सभी धर्मों में है, लेकिन इसे सर्वोच्च अभिव्यक्ति और प्रयुक्ति हिंदू धर्म में मिली है (मैं जैन और बौद्ध धर्मों को हिंदू धर्म से अलग नहीं मानता) |

हिंदू धर्म केवल समग्र मानवजाति के एकत्व में ही विश्वास नहीं करता, अपितु यह समस्त प्राणिजगत को एक मानता है | मेरी राय में, गोपूजा लोकोपकारी वृत्ति के विकास में हिंदू धर्म का अद्वितीय योगदान है | यह समस्त प्राणिजगत के एकत्व और उसकी पवित्रता में विश्वास का प्रत्यक्ष परिणाम है | वर्णाश्रम के नियम की खोज भी सत्य की अथक खोज का ही शानदार नतीजा है | *(यंग, 20-10-1927, पृ. 352)*

मुझसे यह भी पूछा गया है कि मैंने हिंदू धर्म में अहिंसा कहां से खोद निकाली ? अहिंसा हिंदू धर्म में है, ईसाई धर्म में है, और इस्लाम में भी है | आप मुझसे सहमत हों या न हों, मेरा यह परम कर्तव्य है कि जिसे मैं सत्य समझता हूं, उसका प्रचार करूं | मुझे यह भी पक्का भरोसा है कि अहिंसा ने कभी किसी को कायर नहीं बनाया | *(हरि, 27-4-1947, पृ. 126)*

कुरान और अहिंसा

[बारी साहब ने] मुझे भरोसा दिलाया है कि पवित्र कुरान में सत्याग्रह का पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध है | वे कुरान की इस व्यवस्था से सहमत हैं कि यद्यपि किन्हीं निर्दिष्ट परिस्थितियों में हिंसा का सहारा लेने की इजाजत है, पर खुदा को संयम ज़्यादा प्यारा है, और यही प्रेम का नियम है | यही सत्याग्रह है | हिंसा मानव दुर्बलता के प्रति एक रियायत है, सत्याग्रह एक कर्तव्य है | व्यावहारिक दृष्टि से भी देखा जाए तो हिंसा कोई भलाई नहीं पहुंचा सकती बल्कि बेहिसाब नुकसान ही पहुंचा सकती है | *(यंग, 14-5-1919, 'कम्युनल यूनिटी' में उद्धृत, पृ. 985)*

कुछ मुसलमान मित्र मुझे बताते हैं कि मुसलमान विशुद्ध अहिंसा का समर्थन कभी नहीं करेंगे | उनका कहना है कि मुसलमानों की दृष्टि में जितनी जरूरी अहिंसा है, उतनी ही जरूरी हिंसा भी है | इनमें से किसका प्रयोग किया जाए, यह परिस्थितियों पर निर्भर करता है | दोनों की वैधता का औचित्य सिद्ध करने के लिए कुरान के प्रमाण की आवश्यकता नहीं है | संसार ने युगों से इस मार्ग का अनुसरण किया है | संसार में विशुद्ध हिंसा जैसी कोई चीज़ नहीं है | लेकिन मैंने अनेक मुसलमान मित्रों से सुना है कि कुरान में अहिंसा के इस्तेमाल की सीख दी गई है | उसमें प्रतिशोध से सहिष्णुता को श्रेष्ठ बताया गया है | इस्लाम शब्द का अर्थ ही है 'शांति' जिसका मतलब है अहिंसा | बादशाह खान ने, जो पक्के मुसलमान हैं और अपनी नमाज या रमजान के पूरी तरह पाबंद हैं, अहिंसा को शत-प्रतिशत अपना धर्म माना है | यह कहना बेकार है कि वे अपने धर्म के पक्के नहीं हैं, मैं लज्जापूर्वक स्वीकार करता हूं मैं भी नहीं हूं | यदि हमारे कार्यकलाप में अंतर है तो वह सिद्धांत का नहीं है, मात्रा का है | लेकिन, पवित्र कुरान में अहिंसा के प्रतिपादन का मेरा तर्क अहिंसा की मेरी 'थीसिस' का अनिवार्य अंग नहीं है, वह तो एक क्षेपक भर है | *(हरि, 7-10-1939, पृ. 296)*

मामला आहार का नहीं

अहिंसा केवल आहारविज्ञान का मामला नहीं है, यह उससे आगे की चीज़ है | आदमी क्या खाता-पीता है, इसका उतना महत्व नहीं है; महत्व उसके पीछे जो आत्मत्याग और आत्मसंयम है, उसका है | अपने भोजन की वस्तुओं के चुनाव में जितना अधिक संयम बरतना चाहें, शौक से बरतिए | संयम प्रशंसनीय है, जरूरी भी, लेकिन यह अहिंसा के केवल हाशिए को ही छूता है | यह संभव है कि आहार के मामले में डटकर आज़ादी बरतने वाला व्यक्ति भी अहिंसा की मूर्ति हो, और यदि उसका हृदय प्रेम से आप्लावित है और दूसरों की पीड़ा को देखकर द्रवित हो उठता है तथा उसने वासनाओं से मुक्ति पा ली है, तो हम उसे जरूर आदर देंगे | दूसरी ओर, आहार में सदा अति सावधानी बरतने वाला व्यक्ति यदि स्वार्थ और वासनाओं का दास है तथा हृदय का निर्मम है तो यह कहना पड़ेगा कि वह अहिंसा के पास भी नहीं फटका है और वह एक घृणित कमीना आदमी है | *(यंग, 6-9-1928, पृ. 300-01)*

सत्य का मार्ग

अहिंसा के प्रति मेरा प्रेम सभी लौकिक अथवा अलौकिक वस्तुओं से बढ़कर है | इसकी बराबरी केवल सत्य के प्रति मेरे प्रेम के साथ की जा सकती है जो मेरी दृष्टि में अहिंसा का समानार्थक है; केवल अहिंसा के माध्यम से ही मैं सत्य को देख और उस तक पहुंच सकता हूं | *(यंग, 20-02-1930, पृ. 61)*

....अहिंसा के बिना सत्य का शोध और उसकी प्राप्ति असंभव है | अहिंसा और सत्य एक-दूसरे से इस प्रकार गुंथे हुए हैं कि उन्हें पृथक करना प्राय: असंभव है | वे सिक्के, बल्कि कहिए कि धातु की चिकनी और बिना छाप वाली चक्रिका के दो पहलू हैं | कौन बता सकता है कि सीधा पहलू कौन-सा है और उल्टा कौन-सा ? फिर भी, अहिंसा साधन है और सत्य साध्य है | साधन वही है जो हमारी पहुंच के भीतर हो और इस प्रकार अहिंसा हमारा सर्वोपरि कर्तव्य है | यदि हम साधन को ठीक रखें तो देर-सबेर साध्य तक पहुंच ही जाएंगे | एक बार इस मुद्दे को समझ जाएं तो अंतिम विजय असंदिग्ध है | *(फ्रायम, पृ. 12-13)*

अहिंसा साध्य नहीं है | लेकिन मानवीय संबंधों में सत्य की सिद्धि का सिवा इसके और कोई साधन नहीं है कि हम अहिंसा का व्यवहार करें | अहिंसा का दृढ़ता के साथ आचरण अनिवार्यत: हमें सत्य तक ले जाता है – जो हिंसा के व्यवहार से संभव नहीं है | इसीलिए अहिंसा पर मेरा दृढ़ विश्वास है | सत्य मेरे पास स्वभावत: आया | अहिंसा को मैंने संघर्ष करके अर्जित किया |

लेकिन अहिंसा चूंकि साधन है, इसलिए स्वभावत: अपने दैनंदिन जीवन में हमारा उससे सरोकार ज़्यादा है | इसलिए हमारी जनता को अहिंसा की शिक्षा देना आवश्यक है | तदुपरांत सत्य की शिक्षा उसके स्वाभाविक परिणाम के रूप में आएगी |*(हरि, 23-6-1946, पृ. 199)*

कायरता की आड़ नहीं

मेरी अहिंसा इस बात की इज़ाज़त नहीं देती कि खतरा सामने देखकर अपने प्रियजनों को असुरक्षित छोड़कर खुद भाग जाओ | हिंसा और कायरतापूर्ण पलायन में से मैं हिंसा को ही तरजीह दूंगा | जिस प्रकार मैं किसी अंधे आदमी को सुंदर दृश्यों का आनंद लेने के लिए प्रेरित नहीं कर सकता, उसी प्रकार कायर को अहिंसा का पाठ नहीं पढ़ा सकता | अहिंसा तो वीरता की चरम सीमा है | मेरे अपने अनुभव में, मुझे हिंसा में विश्वास रखने वाले लोगों को अहिंसा की श्रेष्ठता सिद्ध करने में कोई कठिनाई नहीं हुई | मैं वर्षों तक कायर रहा और उन दिनों मुझे कई बार हिंसा पर उतारू होने की इच्छा हुई | जब मैंने कायरता को त्यागना आरंभ किया, तब अहिंसा की कद्र करने लगा | वे हिंदू जो खतरा सामने देखकर अपनी जिम्मेदारी छोड़कर भाग खड़े हुए, अहिंसक होने के नाते या वार करने से डरने की वजह से नहीं भागे बल्कि इसलिए भागे कि वे मरने या चोट खाने के लिए तैयार नहीं थे | खूंख्वार कुत्ते को देखकर भाग जाने वाला खरगोश इसलिए नहीं भागता कि वह बड़ा अहिंसक है | वह बेचारा तो कुत्ते को देखते ही भय से कांपने लगता है और अपनी जान बचाने के लिए भागता है | *(यंग, 28-5-1924, पृ. 178)*

अहिंसा कायरता की आड़ नहीं है, बल्कि यह वीर का सर्वोच्च गुण है | अहिंसा के व्यवहार के लिए तलवारबाजी से ज़्यादा वीरता की जरूरत है | कायरता और अहिंसा का कोई मेल नहीं है | तलवारबाजी को छोड़कर अहिंसा को अपनाना संभव है, और कभी-कभी आसान भी है | अत: अहिंसा की पूर्वशर्त यह है कि अहिंसक व्यक्ति में वार करने की क्षमता हो | अहिंसा मनुष्य की प्रतिशोध लेने की भावना का सचेतन और जाना-बूझा संयमन है | लेकिन निष्क्रिय, स्त्रैण और विवश अधीनता से तो प्रतिशोध ही हर हालत में श्रेष्ठ है | क्षमा और भी ऊंची चीज़ है | प्रतिशोध दुर्बलता है | प्रतिशोध की भावना काल्पनिक अथवा वास्तविक हानि की आशंका के कारण उत्पन्न होती है | कुत्ता डर के कारण भौंकता और काटता है | जो आदमी दुनिया में किसी से नहीं डरता, वह उस व्यक्ति पर क्रोधित होने की तकलीफ क्यों उठाना चाहेगा जो उसे नुकसान पहुंचाने का निरर्थक प्रयास कर रहा है ? सूर्य उन बच्चों से प्रतिशोध नहीं लेता जो उस पर धूल उछालते हैं | धूल उछालने के प्रयास में बच्चे खुद ही गंदे हो जाते हैं| *(यंग, 12-8-1926, पृ. 285)*

अहिंसा का मार्ग हिंसा के मार्ग की तुलना में कहीं ज़्यादा साहस की अपेक्षा रखता है | *(हरि, 4-8-1946, पृ. 248-49)*

वीर की अहिंसा को अपने आचरण में उतारने के इच्छुक व्यक्ति को कम-से-कम इतना तो करना ही होगा कि पहले अपनी कायरता से पिंड छुड़ाए और तब, निर्भय होकर अपने छोटे-बड़े कार्यकलाप का नियमन करे | तदनुसार अहिंसा के पुजारी को क्रोधित हुए बगैर अपने वरिष्ठ अधिकारी से भयभीत होने से इंकार कर देना

चाहिए | यह जरूर है कि उसे अपने पद की, वह कितनी ही ऊंची तनख्वाह का पद हो, बलि देने के लिए तैयार रहना चाहिए | अपने सर्वस्व की बलि देने के लिए तैयार रहते हुए भी, यदि उसमें अपने मालिक के प्रति कोई दुर्भावना नहीं है, तो यह कहना सही होगा कि उसमें वीर व्यक्ति की अहिंसा है |

मान लीजिए कि कोई सहयात्री मेरे बेटे पर हमला करने की धमकी देता है और मेरे उससे बहस करने पर वह मेरे ऊपर झपटता है | तब यदि मैं भद्रता और गरिमा के साथ उसका घूंसा बर्दाश्त कर लेता हूं और अपने मन में उसके विरुद्ध कोई दुर्भावना नहीं लाता, तो मैं वीर की अहिंसा का परिचय देता हूं | ऐसी घटनाएं रोज होती रहती हैं और उनमें सरलता से कितनी ही वृद्धि की जा सकती है | यदि मैं हर बार अपने आवेश पर अंकुश लगा सकूं और घूंसे का जवाब घूंसे से देने का सामर्थ्य होने के बावजूद वैसा न करूं तो मैं अपने अंदर वीर की उस अहिंसा का विकास कर सकता हूं जो कभी मेरा साथ नहीं छोड़ेगी और पक्के-से-पक्के विरोधी को भी उसे मानने के लिए बाध्य कर देगी | *(हरि, 17-11-1946, पृ. 404)*

कायरता पालना मेरी प्रकृति के विरुद्ध है | दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद से, जहां हजारों लोग जबर्दस्त बाधाओं के विरुद्ध उठ खड़े हुए थे और नाकामयाब नहीं रहे थे, मैंने सच्ची वीरता, जो अहिंसा ही है, का प्रचार करना अपना जीवन-ध्येय बना लिया है | *(हरि, 1-6-1947, पृ. 175)*

विनम्रता आवश्यक

यदि मनुष्य में....गर्व और अहंकार हो तो उसमें अहिंसा नहीं टिक सकती | विनम्रता के बिना अहिंसा असंभव है | मेरा अपना अनुभव है कि जब-जब मैंने अहिंसा का आश्रय लिया है, किसी अदृष्ट शक्ति ने मेरा मार्गदर्शन किया है और मुझे उस पर आरूढ़ रखा है | यदि मैं अपनी ही इच्छा के बलबूते रहता तो बुरी तरह नाकामयाब हो गया होता | जब मैं पहली बार जेल गया तो काफी घबराया हुआ था | मैंने जेल-जीवन के बारे में बड़ी-बड़ी भयावह बातें सुनी थीं | लेकिन मुझे ईश्वर के संरक्षण में आस्था थी | हमारा अनुभव यह रहा कि जो लोग मन में प्रार्थना का भाव लेकर जेल गए थे, वे विजयी होकर लौटे, और जो अपनी ही शक्ति के बूते पर गए थे, वे नाकामयाब हो गए | जब आप यह कहते हैं कि ईश्वर आपको शक्ति दे रहा है, तो उसमें आत्मदया का कोई भाव नहीं होता | आत्मदया की बात तब पैदा होती है जब आपको दूसरों से मान्यता पाने की आकांक्षा हो | लेकिन यहां तो मान्यता का कोई प्रश्न ही नहीं है | *(हरि, 28-1-1939, पृ. 442)*

जब मैंने अपनी हस्ती को पूरी तरह मिटाना सीख लिया तभी मैं दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह की शक्ति का विकास कर पाया | *(हरि, 6-5-1939, पृ. 113)*

22. अहिंसा की शक्ति

अपनी गत्यात्मक स्थिति में, अहिंसा का अर्थ है सचेतन कष्टसहन | अहिंसा का अर्थ बुराई करने वाले की इच्छा के समक्ष विनीत बनकर आत्मसमर्पण कर देना नहीं है, बल्कि उसके विरुद्ध अपना पूरा आत्मबल लगा देना है | मानव जाति के इस नियम के अनुसार आचरण करते हुए, एक अकेला इंसान भी अपने सम्मान, अपने धर्म या अपनी आत्मा की रक्षा के लिए किसी अन्यायी साम्राज्य की पूरी शक्ति का मुकाबला कर सकता है और उस साम्राज्य के पतन अथवा पुनरुद्धार की नींव रख सकता है | *(यंग, 1-8-1920, पृ. 3)*

सक्रिय बल

अहिंसा की जो मेरी धारणा है, उसके अनुसार वह प्रतिकार की अपेक्षा दुष्ट के विरुद्ध संघर्ष करने का कहीं ज्यादा सक्रिय और सबल साधन है – प्रतिकार की तो प्रकृति ही दुष्टता में वृद्धि करने की है | इसलिए मैं अनैतिकता को मानसिक और नैतिक विरोध से समाप्त करना चाहता हूं | मैं अत्याचारी की तलवार की धार को उससे भी ज़्यादा धारदार शस्त्र से भोथरा करना नहीं चाहता, बल्कि उसकी इस आशा को धूमिल करके करना चाहता हूं कि मैं उसका शारीरिक प्रतिरोध करूंगा | इसके बजाए मैं जो आत्मिक प्रतिरोध करूंगा उससे वह भ्रांत हो जाएगा | मेरा आत्मिक प्रतिरोध पहले तो उसको चकित कर देगा, पर अंतत: वह उसका लोहा मान लेगा, और ऐसा करने से उसकी अवमानना नहीं होगी बल्कि उत्थान होगा | आप कह सकते हैं कि यह एक आदर्श स्थिति है | आपकी धारणा ठीक है | जिन प्रस्थापनाओं पर मेरे तर्क आधारित हैं, वे उतने ही सत्य हैं जितनी कि यूक्लिड की परिभाषाएं; जिनकी सत्यता इस बात से कम नहीं हो जाती कि व्यवहार में हम श्यामपट्ट पर यूक्लिड की रेखा तक नहीं खींच पाते | लेकिन कोई ज्यामितिविद भी यूक्लिड की परिभाषाओं को ध्यान में रखे बिना अपने विषय में आगे नहीं बढ़ सकता | हम भी, जिन मौलिक प्रस्थापनाओं पर सत्याग्रह का सिद्धांत आधारित है, उनके बिना....काम नहीं चला सकते | *(यंग, 8-10-1925, पृ. 346)*

मैं मानता हूं कि जो शक्तिशाली है, वह दुर्बल को लूटेगा और यह भी कि दुर्बल होना पाप है | लेकिन यह बात मनुष्य की आत्मा के बारे में कही गई है, शरीर के बारे में नहीं | अगर यह शरीर के बारे में कही गई होती तो हम दुर्बलता के पाप से कभी मुक्त न हो पाते | लेकिन आत्मा की शक्ति पूरी दुनिया के सशस्त्र विरोध का मुकाबला कर सकती है | और, आत्मा की यह शक्ति दुर्बल-से-दुर्बल शरीर में भी अर्जित की जा सकती है | *(यंग, 6-5-1926, पृ, 164)*

अहिंसा मानवता को उपलब्ध सबसे बड़ा बल है | मनुष्य ने अपनी होशियारी से विनाश के जो शक्तिशाली-से-शक्तिशाली अस्त्र-शस्त्र बनाए हैं, अहिंसा उनसे भी अधिक शक्तिशाली है | विनाश मानवों का नियम नहीं है | मनुष्य कभी अपने भाई को मार कर नहीं बल्कि जरूरत पड़े तो उसके हाथों मरने के लिए तैयार रहकर आज़ादी

से जीता है | प्रत्येक कत्ल अथवा दूसरे को पहुंचाई गई चोट, वह चाहे जिस कारण से हो, मानवता के प्रति अपराध है | *(हरि, 20-7-1935, पृ. 180-81)*

अहिंसा रेडियम की तरह काम करती है | सांघातिक अंगवृद्धि में स्थापित रेडियम की अतिसूक्ष्म मात्रा निरंतर, चुपचाप तब तक काम करती रहती है जब तक कि रोगग्रस्त ऊतक के समूचे पिंड को स्वस्थ ऊतक में नहीं बदल देती | इसी प्रकार, थोड़ी-सी भी सच्ची अहिंसा चुपचाप, सूक्ष्म और अदृश्य रूप से काम करती है और समूचे समाज का कायाकल्प कर देती है | *(हरि, 12-11-1938, पृ. 327)*

बेजोड़ बहादुरी

हथियारबंद सिपाही अपनी ताकत के लिए अपने हथियार पर निर्भर रहता है | उससे उसका हथियार – उसकी बंदूक या उसकी तलवार – छीन लो तो वह प्राय: बेबस हो जाता है | लेकिन जिस व्यक्ति ने अहिंसा के सिद्धांत को सही अर्थ में हृदयंगम कर लिया है, उसका हथियार ईश्वरप्रदत्त शक्ति होती है जिसके जोड़ का हथियार दुनिया के पास आज तक नहीं है | *(हरि, 19-11-1938, पृ. 341-42)*

अपने जीवन-ध्येय में अदम्य आस्था से प्रेरित दृढ़ संकल्प वाले मुट्ठी भर लोग इतिहास का रुख बदल सकते हैं | *(वही, पृ. 343)*

बलशाली की अहिंसा पूरी तरह हथियारबंद परमवीर सिपाही (या सिपाहियों) के मुकाबले सदा इक्कीस बैठती है| *(हरि, 12-5-1946, पृ. 128)*

आस्था का प्रयोग

कठोरतम धातु भी अपेक्षित ताप पाकर पिघल जाती है | इसी प्रकार, कठोरतम हृदय भी अहिंसा की अपेक्षित ताप से पिघल जाना चाहिए | और, ताप पैदा करने की अहिंसा की क्षमता अपरिमित है |

हर क्रिया अनेक बलों, जो विपरीत प्रकृति के भी हो सकते हैं, का परिणाम होती है | ऊर्जा का नाश कभी नहीं होता | यांत्रिकी की पुस्तकें हमें यही बताती हैं | यही सिद्धांत मानव क्रियाओं पर भी लागू होता है | अंतर यही है कि पूर्वोक्त उदाहरण में, सामान्यतया हमें क्रियाशील बलों की जानकारी होती है और हम गणित लगाकर परिणाम का पूर्वकथन कर सकते हैं, किंतु जहां तक मानव क्रियाओं का संबंध है, वे ऐसे बलों की सहगामिता का परिणाम होती हैं जिनमें से अधिकांश के बारे में हमें कोई जानकारी नहीं होती | लेकिन अपनी नाजानकारी के कारण इन बलों की शक्ति में हमें अविश्वास नहीं करना चाहिए | बल्कि हमारे अज्ञान के कारण हमारी आस्था में और अधिक वृद्धि होनी चाहिए | अहिंसा चूंकि दुनिया का सबसे शक्तिशाली बल है और उसके काम करने के

तरीके भी बड़े दुर्ग्राह्य हैं, अत: इसमें आस्था का महत्व सर्वाधिक है | जिस प्रकार हम आस्था के सहारे ईश्वर में विश्वास करते हैं, उसी प्रकार आस्था के सहारे ही अहिंसा में विश्वास करना होता है | *(हरि, 7-1-1939, पृ. 417)*

हिंसा पानी की तरह है – निकास का मार्ग मिलते ही पूरे जोर के साथ भयंकर वेग से आगे बढ़ती है | अहिंसा में उन्माद नहीं है | यह अनुशासन का सार है | लेकिन एक बार सक्रिय हो जाने पर विकट-से-विकट हिंसा भी उसका दमन नहीं कर सकती | यह जरूर है कि अपना पूरा प्रभाव दिखाने के लिए यह निष्कलंक शुचिता और अदम्य आस्था की अपेक्षा रखती है.... *(हरि, 21-3-1939, पृ. 433)*

एक विज्ञान

अहिंसा एक विज्ञान है | विज्ञान के शब्दकोश में 'असफलता' का कोई स्थान नहीं होता | अपेक्षित परिणाम को प्राप्त करने की असफलता प्राय: नयी खोजों की पूर्वगामी सिद्ध होती है | *(हरि, 6-5-1939, पृ. 113)*

अगर हिंसा का काम अपने सामने पड़ने वाली हर चीज़ का भक्षण है, तो अहिंसा का काम हिंसा के मुंह को भर देना है | अहिंसा के वातावरण में व्यक्ति अपनी अहिंसा की परख करने का अवसर नहीं पा सकता | इसकी परख तो केवल हिंसा के माहौल में ही की जा सकती है | *(हरि, 13-5-1939, पृ. 121)*

हिंसा का कारगर जवाब केवल अहिंसा है | यह एक प्राचीन, सुस्थापित सत्य है....कि हिंसा का हथियार, भले ही वह अणु बम हो, सच्ची अहिंसा के सामने नाकाम हो गया | यह सही है कि अहिंसा के शक्तिशाली हथियार को चलाना बहुत थोड़े लोगों को आता है | इसके लिए बड़ी सूझ-बूझ और सबल चित्त की आवश्यकता होती है | यह सैनिक स्कूलों और कालिजों की अपेक्षाओं से भिन्न है | हिंसा का जवाब अहिंसा से देने में महसूस की जाने वाली कठिनाई चित्त की दुर्बलता के कारण पैदा होती है | *(हरि, 1-6-1947, पृ. 172)*

कर्म, कर्ता नहीं

'पाप से घृणा करो, पापी से नहीं' एक ऐसा नीतिवचन है जिसे समझना तो काफ़ी आसान है, पर जिस पर आचरण शायद ही कभी किया जाता है | इसीलिए दुनिया में घृणा का विष फैलता चला जा रहा है |

अहिंसा सत्य की शोध का आधार है | मैं दिन-ब-दिन इस बात का कायल होता जा रहा हूं कि सत्य की शोध तब तक नहीं की जा सकती जब तक कि उसका आधार अहिंसा न हो | किसी प्रणाली का प्रतिरोध करना और उसके विरुद्ध आवाज उठाना उचित है, पर उसके कर्ता का प्रतिरोध करना और उस पर हमला करना तो मानो अपना ही प्रतिरोध करना और अपने ही ऊपर हमला करना है | बात यह है कि हम सब एक ही कूंची से रंगे गए हैं, एक ही सृष्टिकर्ता की संतान हैं और इसलिए हम सबके भीतर असीम दैवी शक्तियां हैं | एक भी मनुष्य को अपमानित

करना उन दैवी शक्तियों को अपमानित करना है और उसके साथ, समूची दुनिया को हानि पहुंचाना है | *(ए, पृ. 203)*

मनुष्य और उसका कर्म, दो अलग-अलग चीज़ें हैं | जहां सत्कर्म का अनुमोदन किया जाना चाहिए और कुकर्म की निंदा की जानी चाहिए, वहीं उनका कर्ता, चाहे वह भला आदमी हो या दुष्ट, सदैव यथास्थिति, आदर अथवा दया का पात्र होता है | *(वही)*

जो लोग आचरण के बजाय आचरणकर्ता को नष्ट करना चाहते हैं, वे इस विश्वास में कि आचरणकर्ता के साथ उसका आचरण भी मर जाएगा, उन आचरणों को स्वयं अपना लेते हैं और जिस व्यक्ति को समाप्त करते हैं, स्वयं उससे भी बुरे सिद्ध होते हैं | दरअसल वे बुराई की जड़ को नहीं पहचानते | *(यंग, 17-3-1927, पृ. 85)*

अहिंसा की कसौटी यह है कि अहिंसक संघर्ष में कोई विद्वेष बाकी नहीं रहता और अंत में शत्रु भी मित्र बन जाते हैं | दक्षिण अफ्रीका में जनरल स्मट्स के साथ मेरा यही अनुभव रहा | वह शुरू में मेरा कट्टर विरोधी और आलोचक था | आज वह मेरा परम स्नेही मित्र है | *(हरि, 12-11-1938, पृ. 327)*

अहिंसा का मुख्य निहितार्थ यह है कि हमारी अहिंसा हमारे प्रति विरोधी के रुख को नरम बनाए, कठोर नहीं; वह उसे द्रवित कर दे, वह उसकी हृदयतंत्री में संवेदी स्वर छेड़ दे |

अहिंसावादी होने के नाते क्या तुम कह सकते हो कि तुम सच्ची अहिंसा का आचरण करते हो ? क्या तुम कह सकते हो कि तुम छाती खोलकर विरोधी के बाण सहते हो और बदले में अपने बाण नहीं चलाते ? क्या तुम कह सकते हो कि तुम उसकी आलोचना से क्रुद्ध नहीं होते, परेशान नहीं होते ? *(हरि, 13-5-1939, पृ. 121)*

जीवन भर अहिंसा का आचरण करते-करते मैं इसका विशेषज्ञ बन गया हूं, हालांकि बड़ा अपूर्ण विशेषज्ञ हूं | निरपेक्ष रूप में कहूं तो मैं जितना ही इसका आचरण करता हूं, उतना ही मुझे यह अहसास होता है कि मैं अपने जीवन में अहिंसा की पूर्ण अभिव्यक्ति से अभी कितनी दूर हूं | इसका, जो संसार में मनुष्य का सबसे बड़ा कर्तव्य है, ज्ञान न होने के कारण ही वह कहता है कि इस युग में हिंसा का मुकाबला करने में अहिंसा की सफलता की कोई खास गुंजाइश नहीं है, जबकि मैं दृढ़तापूर्वक यह कहना चाहता हूं कि एटम बम के इस युग में हिंसा की सभी दुष्ट चालों को नाकामयाब करने के लिए विशुद्ध अहिंसा ही एकमात्र बल है | *(हरि, 16-11-1947, पृ. 412)*

23. अहिंसा के लिए प्रशिक्षण

"हम व्यक्तियों और समुदायों को इस कठिन कला में प्रशिक्षित किस प्रकार करें ?"

इसका कोई आसान रास्ता नहीं है, सिवा इसके कि व्यक्ति अपने जीवन में अहिंसा के धर्म का अनुसरण करे और उसका जीवन एक जीता-जागता उपदेश बने | व्यक्ति के जीवन में अहिंसा की अभिव्यक्ति पर्याप्त अध्ययन, भारी अध्यवसाय और सब तरह की अपवित्रताओं को अपने जीवन से निकाल फेंकने पर ही आ सकती है | भौतिक विज्ञानों में महारत हासिल करने के लिए यदि पूरा जीवन चाहिए तो मानव जाति को ज्ञात महानतम आध्यात्मिक बल में प्रवीणता प्राप्त करने के लिए तो कितने ही जन्म लेने पड़ सकते हैं | लेकिन कई जन्मों में जाकर प्रवीणता आए तो उसमें चिंता की क्या बात है ? क्योंकि, यदि जीवन में यही वस्तु स्थायी है, यदि इसी का महत्व है, तो इसमें प्रवीणता प्राप्त करने के लिए जो भी प्रयास करना पड़े, वह व्यर्थ नहीं है | स्वर्ग के साम्राज्य की कामना करो, बाकी सब अपने आप मिल जाएगा | स्वर्ग का वह साम्राज्य अहिंसा है | *(हरि, 14-3-1936, पृ. 39)*

अहिंसा के प्रशिक्षण में शस्त्रों की निश्चय ही कोई आवश्यकता नहीं है | वस्तुत: आपके पास शस्त्र हैं तो उन्हें फेंकना होगा, जैसा कि सीमांत प्रदेश में खान साहब ने किया | जो यह कहते हैं कि अहिंसा की शिक्षा से पहले हिंसा की शिक्षा देना आवश्यक है, वह तो यह भी कहेंगे कि संत होने के लिए पहले पापी होना जरूरी है |

अभय, एक पूर्वशर्त

जिस प्रकार हिंसा के प्रशिक्षण में मारने की कला सीखना जरूरी है उसी प्रकार अहिंसा के प्रशिक्षण में मरने की कला सीखनी जरूरी है | हिंसा का अर्थ भय से मुक्ति नहीं है, बल्कि भय के कारण का मुकाबला करने के लिए साधनों की खोज है | इसके विपरीत, अहिंसा में भय करने की जरूरत ही नहीं है | अहिंसा के पुजारी को भय से मुक्त होने के लिए ऊंचे-से-ऊंचे बलिदान के वास्ते तैयार रहने की क्षमता का विकास करना होता है | उसकी भूमि, धन, जीवन कुछ भी चला जाए, वह परवाह नहीं करता | जिसने सभी प्रकार के भयों से मुक्ति नहीं पा ली है, वह पूरी तरह अहिंसा का आचरण नहीं कर सकता | अहिंसा के पुजारी को एक ही भय होता है – ईश्वर का भय | जो ईश्वर की शरण लेता है उसे जीवात्मा की झलक अवश्य मिलेगी, जो देहातीत है; और जिस क्षण अविनाशी जीवात्मा की झलक मिल जाती है, नाशवान शरीर की आसक्ति मिट जाती है | इस प्रकार अहिंसा का प्रशिक्षण, हिंसा के प्रशिक्षण से बिलकुल उलटा है | बाह्य वस्तुओं की रक्षा के लिए हिंसा की आवश्यकता होती है जबकी जीवात्मा की रक्षा के लिए, आत्मसम्मान की रक्षा के लिए अहिंसा की आवश्यकता होती है |

यह अहिंसा घर बैठकर नहीं सीखी जा सकती | इसके लिए उद्यम करना पड़ता है | अपनी परीक्षा लेने के लिए हमें खतरे और मौत को ललकारना, देह का दमन करना, और सभी प्रकार की कठिनाइयों को सहन करने की क्षमता का विकास करना सीखना चाहिए | जो शख्स दो आदमियों को लड़ते देखकर कांपने लगता है, या भाग

खड़ा होता है, वह अहिंसक नहीं, कायर है | अहिंसक व्यक्ति तो इस तरह के झगड़ों को रोकने के लिए अपनी जान दे देगा | हिंसक की बहादुरी के मुकाबले अहिंसक की बहादुरी कहीं ज्यादा श्रेष्ठ है | हिंसक का चिह्न उसका शस्त्र – भाला, तलवार अथवा राइफल – है | अहिंसक की ढाल भगवान है |

यह अहिंसा सीखने के इच्छुक व्यक्ति के प्रशिक्षण का पाठ्यक्रम नहीं है | लेकिन मैंने जो सिद्धांत बताए हैं, उनसे सरलतापूर्वक ऐसा पाठ्यक्रम विकसित किया जा सकता है | *(हरि, 1-9-1940, पृ. 268)*

वीर की अहिंसा

अहिंसा के लिए किसी बाह्य प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं है | इसके लिए केवल दो बातें चाहिए – बदला लेने के लिए भी मारने की इच्छा से विरति और प्रतिशोध की भावना मन में लाए बगैर मौत का सामना करने का साहस | यह अहिंसा पर उपदेश नहीं है बल्कि शुद्ध तर्क है, और एक सार्वभौम नियम का कथन है | नियम में अदम्य आस्था हो तो उत्तेजक-से-उत्तेजक परिस्थिति में भी व्यक्ति को धैर्य नहीं छोड़ना चाहिए | इसे मैंने वीर की अहिंसा कहा है | *(हरि, 8-9-1946, पृ. 296)*

जिस अहिंसा का पालन केवल व्यक्ति कर सके, वह समाज के लिए ज़्यादा उपयोगी नहीं मानी जा सकती | मनुष्य सामाजिक प्राणी है | उसकी उपलब्धियां तभी उपयोगी मानी जा सकती हैं जबकि कोई भी अध्यवसायी मनुष्य उन्हें हासिल कर सके | जिस चीज़ पर केवल मित्रों के बीच आचरण किया जा सके, वह अहिंसा का स्फुलिंग मात्र ही कहा जा सकता है | वह अहिंसा कहे जाने के काबिल नहीं है | 'अहिंसा के आगे शत्रुता लुप्त हो जाती है' – यह एक महान सूक्ति है | इसका तात्पर्य यह है कि बड़ी-से-बड़ी शत्रुता का शमन करने के लिए उतनी ही बड़ी मात्रा में अहिंसा का प्रयोग अपेक्षित है |

इस गुण के विकास के लिए लंबे अभ्यास की आवश्यकता है, जिसमें कभी-कभी कई जन्म लग सकते हैं | पर इस कारण वह अनुपयोगी नहीं हो जाता | अहिंसा के मार्ग पर चलते हुए, यात्री को प्रतिदिन एक-से-एक सुंदर अनुभव होते हैं ताकि वह उस सौंदर्य की झलक पा सके जो उसे शिखर तक पहुंचने पर दिखाई देगा | इससे उसका उत्साह बढ़ता है | इससे कोई यह निष्कर्ष न निकाले कि मार्ग में कंटक नहीं, निरंतर फूल-ही-फूल मिलेंगे | किसी कवि ने कहा है कि ईश्वर तक पहुंचने का मार्ग केवल वीरों के लिए है, दुर्बल हृदयों के लिए कदापि नहीं | आज वातावरण इतना विषाक्त हो गया है कि आदमी को प्राचीन मनीषियों की बुद्धिमत्ता का स्मरण करने और सक्रिय अहिंसा के विविध लघु अनुभवों को महसूस करने में कोई रुचि नहीं रह गई है | व्यवहार में दैनिक अनुभव की एक बुद्धिमत्तापूर्ण कहावत है, 'एक अच्छी बात एक बुरी बात के प्रभाव को नष्ट कर देती है |' हम यह क्यों नहीं समझ पाते कि दुनिया के कार्यकलाप का समग्र परिणाम यदि विनाशकारी होता तो वह बहुत पहले नष्ट हो गई होती ? प्रेम, जिसे अहिंसा भी कह सकते हैं, इस भूमंडल को बचाये हुए है | इतना तो स्वीकार किया ही जाना

चाहिए | जीवन की अमूल्य देन को परिश्रमपूर्वक विकसित करना चाहिए क्योंकि यह मानव का उन्नयन करती है | पतन आसान है, ऊपर उठना आसान नहीं है | चूंकि हममें से अधिकांश लोग अनुशासित नहीं हैं, इसलिए हमारा दैनिक अनुभव छोटी-छोटी बातों पर आपस में लड़ने या गाली-गलौज करने का है |

अहिंसा की यह अनुपम देन कठोर अनुशासन में रहने वालों के लिए सहज ही प्राप्य है | *(हरि, 14-12-1947, पृ. 468)*

24. अहिंसा पर अमल

अगर कोई आदमी दूसरों के साथ अपने व्यक्तिगत संबंधों में अहिंसा का व्यवहार न करे, और उसका इस्तेमाल बड़े मसलों में करने की आशा करे तो यह उसकी भारी भूल है | खैरात की तरह अहिंसा की शुरुआत भी अपने घर से की जानी चाहिए |

लेकिन यदि व्यक्तियों को अहिंसा का प्रशिक्षण देना आवश्यक है, तो राष्ट्र के लिए इसकी आवश्यकता और भी अधिक है | यह नहीं हो सकता कि आदमी अपने दायरे में अहिंसक रहे और उसके बाहर हिंसा का आचरण करे | यदि कोई ऐसा करता है तो मानिए कि वह अपने दायरे में भी सच्ची अहिंसा का आचरण नहीं कर रहा; उसकी अहिंसा देखावे भर की है | मिसाल के तौर पर, आपकी अहिंसा की परीक्षा तब है जब आपके सामने कोई चोर या हत्यारा आ जाता है | आप या तो चोर का मुकाबला उसके जैसे हथियार से करना चाहेंगे या उसे प्रेम से परास्त करेंगे | शालीन लोगों के बीच निवास करते हुए, आपके आचरण को अहिंसक नहीं माना जाना चाहिए |

पारस्परिक सहिष्णुता अहिंसा है | इसलिए आपको जैसे ही इस बात की प्रतीति हो जाए कि अहिंसा जीवन का नियम है, उसे उन पर आजमाना चाहिए जो आपके प्रति हिंसक व्यवहार कर रहे हैं; और यह नियम जिस प्रकार व्यक्तियों पर लागू है, उसी प्रकार राष्ट्रों पर भी लागू होता है | बेशक, इसका प्रशिक्षण आवश्यक है | शुरुआत हमेशा छोटी-छोटी घटनाओं से ही होती है | लेकिन प्रतीति हो तो बाकी बातें अपने आप ठीक होने लगती हैं | *(हरि, 28-1-1939, पृ. 441-42)*

अहिंसा की सार्वभौमिकता

अहिंसा धर्म का रूप तभी ले सकती है जब वह सर्वव्यापी हो | यह नहीं हो सकता कि मैं अपने एक काम में अहिंसक रहूं और दूसरे में हिंसक बन जाऊं | *(हरि, 12-10-1935, पृ. 376)*

यह कहना सरासर गलत है कि अहिंसा का आचरण केवल व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है, राष्ट्रों द्वारा कभी नहीं, जो कि व्यक्तियों के समूह ही हैं | *(हरि, 12-11-1938, पृ. 328)*

मेरी राय में, अहिंसा किसी भी तरह या किसी भी रूप में, निष्क्रियता नहीं है | अहिंसा जहां तक मैंने इसे समझा है, दुनिया का सबसे सक्रिय बल है....अहिंसा सर्वोच्च नियम है | अपने आधी शताब्दी के अनुभव में, मेरे सामने अभी तक ऐसी स्थिति कभी नहीं आई जब मुझे कहना पड़ा हो कि मैं बेबस हूं, कि मुझे कोई अहिंसक उपाय सूझ नहीं रहा है | *(हरि, 24-12-1938, पृ. 393)*

अहिंसा का पोषण

मैं अदम्य आशावादी हूं | मेरा आशावाद मेरे इस विश्वास पर टिका है कि व्यक्ति द्वारा अहिंसा के विकास की संभावनाएं असीम हैं | आप अपने जीवन में इसका जितना अधिक विकास करेंगे, उतना ही संक्रामक रूप लेकर

यह आपके परिवेश को व्याप्त कर लेगी और हो सकता है कि शनै: शनै: सारी दुनिया पर छा जाए | *(हरि, 28-1-1939, पृ. 443)*

मैंने अपने युवाजीवन के आरंभ से ही समझा है कि अहिंसा व्यक्ति द्वारा अपनी शांति और मोक्ष की प्राप्ति के लिए अपनाया जाने वाला कोई एकांतिक गुण नहीं है बल्कि यह सामाजिक आचरण का एक नियम है, यदि समाज को निरंतर मानव गरिमा के साथ जीना है और उस शांति को प्राप्त करने की दिशा में प्रगति करनी है जिसके लिए वह युगों से तरस रहा है | *(गांकग, पृ.42-44, पृ.170-71)*

रोजमर्रा के मामलों में अहिंसा का आचरण करने से उसके सच्चे मूल्य का पता चलता है | इससे पृथ्वी स्वर्ग बनती है | वस्तुत: परलोक जैसी कोई चीज़ नहीं है | सब लोक एक ही हैं | न कोई 'यहां' है, न 'वहां' | जैसा जीन्स ने सिद्ध किया है, दुनिया की अधिकतम शक्तिशाली दूरबीन से भी न देखे जा सकने वाले सुदूरतम नक्षत्रों समेत यह सारा ब्रह्मांड एक अणु में संपीडित है |

इसलिए मैं गुफावासियों और परलोक में उच्च स्थान की प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों तक अहिंसा के उपयोग को सीमित रखना गलत समझता हूं | जो सद्‌गुण जीवन के हर क्षेत्र में उप्योगी न हो, उसका कोई मूल्य नहीं रह जाता| *(हरि, 26-7-1942, पृ. 248)*

बड़े पैमाने पर इस्तेमाल

यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम बड़े पैमाने पर वीर की अहिंसा से परिचित नहीं हैं | लोगों को, बड़े जन-समूहों की तो बात छोड़िए, छोटे-छोटे वर्गों द्वारा अहिंसा के प्रयोग के विषय में भी संदेह है | वे अहिंसा के व्यवहार को असाधारण व्यक्तियों तक सीमित मानते हैं | यदि यह केवल व्यक्तियों के लिए ही सुरक्षित है तो फिर, मानव जाति के लिए इसका क्या उपयोग ? *(हरि, 8-9-1946, पृ. 296)*

प्रभाविता

मैं अहिंसा और उसकी संभावनाओं को लगातार पिछले पचास से भी अधिक वर्षों से वैज्ञानिक परिशुद्धता के साथ अमल में ला रहा हूं | मैंने इसे घरेलु, संस्थानिक, आर्थिक और राजनीतिक, जीवन के हर क्षेत्र में लागू किया है और मुझे एक भी ऐसा उदाहरण याद नहीं आता जब यह असफल रही हो | यदि यह कहीं असफल होती प्रतीत हुई है तो उसका कारण मैंने अपनी अपूर्णता को माना है | मैं अपनी पूर्णता का दावा नहीं करता | लेकिन यह दावा जरूर करता हूं कि मैं सत्य, जो ईश्वर का ही दूसरा नाम है, का एक उत्साही शोधक हूं | इसी शोध के दौरान मेरा अहिंसा से परिचय हुआ | इसका प्रचार अब मेरा जीवन-ध्येय है | इस ध्येय के लिए काम करने के अलावा मुझे जीने में और कोई रुचि नहीं है | *(हरि, 6-7-1940, पृ. 185-86)*

पीड़ित संसार के लिए अहिंसा के संकरे और सीधे रास्ते के अलावा आशा की और कोई किरण नहीं है | हममें से लाखों लोग भले ही अपने जीवनकाल में इस सत्य को सिद्ध करने में असफल रहें, पर वह हमारी असफलता होगी, इस शाश्वत नियम की हरगिज नहीं | *(हरि, 29-6-1947, पृ. 209)*

25. अहिंसक समाज

मैं अहिंसा को केवल व्यक्तिगत सद्‌गुण नहीं मानता | यह एक सामाजिक सद्‌गुण भी है जिसका विकास अन्य सद्‌गुणों की तरह ही किया जाना चाहिए | इसमें कोई संदेह नहीं कि पारस्परिक व्यवहार में समाज प्राय: अहिंसा की अभिव्यक्ति से ही संचालित होता है | मेरा कहना सिर्फ यह है कि इसका और बड़े पैमाने – राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय – पर विस्तार किया जाना चाहिए | *(हरि, 7-1-1939, पृ. 417)*

जिस प्रकार पृथ्वी गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव से बंधकर अपनी कक्षा में स्थित है, उसी प्रकार सारा समाज अहिंसा के सूत्र में बंधा है | लेकिन जब गुरुत्वाकर्षण के नियम की खोज हुई तो इस खोज के अनेक ऐसे परिणाम सामने आए जिनका ज्ञान हमारे पूर्वजों को नहीं था | इसी प्रकार, जब समाज की रचना सोच-समझकर अहिंसा के नियमानुसार की जाएगी तो उसकी संरचना की भौतिक विशिष्टियां जैसी आज हैं, उनसे भिन्न होंगी | लेकिन मैं इस बात का पूर्वकथन नहीं कर सकता कि अहिंसा पर आधारित सरकार किस तरह की होगी |

आज हमारे चारों ओर जो घट रहा है, वह अहिंसा के नियम की उपेक्षा और हिंसा को सिंहासन पर बिठाना है, जैसे कि यही शाश्वत नियम हो | *(हरि, 11-2-1939, पृ. 8)*

अहिंसा पर आधारित समाज गांवों में बसे ऐसे व्यक्ति-समूहों के रूप में ही हो सकता है जिनमें स्वैच्छिक सहयोग, गरिमामय और शांतिपूर्वक सह-अस्तित्व की शर्त हो | *(हरि, 13-1-1940, पृ. 410-11)*

सरकार

कोई सरकार पूरी तरह अहिंसक बनकर कामयाब नहीं हो सकती, क्योंकि वह सभी लोगों का प्रतिनिधित्व करती है | मैं आज वैसे स्वर्णिम युग की कल्पना नहीं करता | लेकिन मैं मुख्य रूप से अहिंसा पर आधारित समाज की संभावना की आशा अवश्य करता हूं और उसी के लिए प्रयासरत हूं | *(हरि, 9-3-1940, पृ. 31)*

यह प्रश्न शेष रहता है कि आदर्श समाज में सरकार नाम की चीज़ होनी चाहिए अथवा नहीं ? मैं समझता हूं कि हमें इस समय इस बात की चिंता करने की आवश्यकता नहीं है | यदि हम आदर्श समाज की स्थापना के लिए कार्य करना जारी रखें तो यह धीरे-धीरे एक ऐसा रूप धारण करती हुई विकसित हो जाएगी जिससे लोग लाभान्वित हो सकें | यूक्लिड की रेखा की कोई मोटाई नहीं है और अभी तक कोई व्यक्ति ऐसी रेखा खींचने में सफल नहीं हुआ है और न कभी होगा | फिर भी, उस आदर्श रेखा को ध्यान में रखते हुए ही ज्यामिति ने इतनी प्रगति की है | जो इस संदर्भ में सही है, वही प्रत्येक आदर्श के लिए सही है |

अराजकता

यह याद रखना चाहिए कि दुनिया में ऐसा कोई राज्य नहीं है जिसमें सरकार न हो | यदि ऐसा कभी हुआ तो वह भारत में ही होगा, क्योंकि मात्र हमारा देश ही ऐसा है जिसमें कम-से-कम प्रयास तो किया गया है | हम अभी तक

उस वीरता की वह मात्रा प्रदर्शित नहीं कर पाए हैं जो अपेक्षित है और जिसे प्राप्त करने का एक ही उपाय है | जिन्हें इस उपाय में विश्वास है, उन्हें उसका प्रदर्शन करना होगा | ऐसा करने के लिए, मृत्यु के भय पर पूरी तरह विजय पा लेनी होगी, वैसे ही जैसे कि हमने जेलों के भय पर विजय पा ली है | *(हरि, 15-9-1946, पृ. 309)*

लोकतंत्र और अहिंसा

युद्ध का विज्ञान हमें विशुद्ध तानाशाही की ओर ले जाता है | अहिंसा का विज्ञान ही शुद्ध लोकतंत्र की ओर ले जा सकता है | *(हरि, 15-10-1938, पृ. 290)*

लोकतंत्र और हिंसा साथ-साथ नहीं चल सकते | जो राज्य आज कहने के लिए लोकतांत्रिक हैं, उन्हें या तो खुलकर सर्वसत्तात्मक बन जाना होगा, या अगर वे सच्चे लोकतांत्रिक बनना चाहते हैं तो साहसपूर्वक अहिंसक रूप अपनाना होगा | *(हरि, 12-11-1938, पृ. 328)*

इस दृष्टिकोण पर विश्वास करते हुए कि राष्ट्रीय स्तर पर अहिंसा को मान्यता दिए बगैर सांविधानिक या लोकतांत्रिक सरकार जैसी कोई चीज़ नहीं चलाई जा सकती, मैं अपनी शक्ति अहिंसा को जीवन – व्यक्तिगत, सामाजिक, राजनीतिक, राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय – के नियम के रूप में प्रचारित करने के लिए लगा रहा हूं |

मुझे लगता है कि मैंने, धुंधले रूप में ही सही, उस आलोक के दर्शन कर लिए हैं | मैं बड़ी सावधानी से यह लिख रहा हूं, क्योंकि मैं यह दावा नहीं कर सकता कि मैं उस नियम को पूरी तरह जानता हूं | अगर मैं अपने प्रयोगों की सफलता से अवगत हूं तो उनकी असफलताओं से भी अनजान नहीं हूं | लेकिन मेरी सफलताएं मुझे अमिट आशा से आप्लावित करने के लिए पर्याप्त हैं |

मैंने प्राय: कहा है कि मनुष्य यदि साधनों की ओर समुचित ध्यान दे तो साध्य अपने आप दुरुस्त रहेंगे | अहिंसा साधन है और प्रत्येक के लिए साध्य है, पूर्ण स्वतंत्रता | एक अंतर्राष्ट्रीय लीग तभी स्थापित हो सकेगी जब उसके सभी छोटे-बड़े सदस्य राष्ट्र पूर्णत: स्वतंत्र होंगे | उस स्वतंत्रता का स्वरूप संबंधित राष्ट्रों द्वारा अंगीकृत अहिंसा की सीमा के अनुरूप होगा | एक बात निश्चित है कि अहिंसा पर आधारित समाज में, छोटे-से-छोटा राष्ट्र भी स्वयं को बड़े-से-बड़े राष्ट्र जैसा बड़ा अनुभव करेगा | श्रेष्ठता और हीनता के भाव पूरी तरह मिट जाएंगे |

....अहिंसा को समर्पित मेरे जैसे व्यक्ति के सामने, नतीजा साफ है – जब तक अहिंसा को केवल एक नीति नहीं बल्कि एक जीता-जागता बल, एक अलंघ्य धर्म नहीं मान लिया जाएगा तब तक सांविधानिक अथवा लोकतांत्रिक सरकार एक सुदूर स्वप्न ही रहेगी | मैं सार्वभौम अहिंसा के बारे में बड़बड़ तो करता हूं, पर मेरा प्रयोग भारत तक सीमित है | अगर यह सफल हो गया तो दुनिया इसे सहज ही स्वीकार कर लेगी | पर इसमें एक बहुत बड़ा 'लेकिन' है | इसमें कितना समय लगेगा, इसकी मुझे चिंता नहीं है | घटाटोप अंधकार में मेरी आस्था सर्वाधिक आलोकित रहती है | *(हरि, 11-2-1939, पृ. 8)*

शक्ति का प्रयोग

अहिंसा की प्रकृति ही ऐसी है कि वह शक्ति को 'छीन' नहीं सकती, न यह उसका लक्ष्य हो सकता है | लेकिन अहिंसा उससे भी बड़ा काम कर सकती है; वह सरकारी तंत्र को हस्तगत किए बिना शक्ति को प्रभावी ढंग से नियंत्रित और निर्देशित कर सकती है | यही उसकी खूबी है |

पर इसमें एक अपवाद है | यदि लोगों का अहिंसक असहयोग इतना पूर्ण हो कि प्रशासन बिलकुल ठप्प हो जाए अथवा बाहरी हमले के कारण प्रशासन चरमरा जाए और एक शून्यता आ जाए, तो लोगों के प्रतिनिधि आगे आकर प्रशासन की बागडोर हाथ में ले लेंगे | सैद्धांतिक रूप से यह संभव है |

लेकिन शक्ति के प्रयोग का हिंसक होना अनिवार्य नहीं है | पिता बच्चे पर शासन करता है, वह कभी-कभी उसे दंड भी दे सकता है पर उसके प्रति हिंसक होकर नहीं | शक्ति का सबसे प्रभावी प्रयोग वह है जो सबसे कम कष्टप्रद हो | शक्ति का सही प्रयोग यह है कि वह फूल की तरह हलके से जन-जीवन का स्पर्श करे, किसी को उसका भार महसूस नहीं होना चाहिए |

लोगों ने कांग्रेस की सत्ता को स्वेच्छा से स्वीकार किया | मुझे एकाधिक बार तानाशाह की-सी निरंकुश शक्ति सौंप दी गई | लेकिन सभी जानते थे कि मेरी शक्ति उनकी स्वेच्छया स्वीकृति पर अवलंबित है | वे मुझे कभी भी हटा सकते थे और मैं बिना किसी हील-हवाले के तुरंत हट जाता |

पैगंबर और अतिमानव तो युगों में कभी जन्म लेते हैं | लेकिन एक आदमी भी अगर अहिंसा के आदर्श को पूरी तरह प्राप्त कर लेता है तो वह सारे समाज पर छा जाता है और उसका उद्धार कर देता है | ईसा मसीह जो एक बार बिजली की तरह कौंध गया तो उसके बारह शिष्य उसके न रहने पर भी उसके मिशन को आगे बढ़ाते रह सके |

बिजली के नियम की खोज के लिए वैज्ञानिकों की अनेक पीढ़ियों की मेहनत और प्रतिभा की दरकार हुई थी, लेकिन आज सभी आदमी – बच्चे तक – अपने दैनंदिन जीवन में बिजली का इस्तेमाल कर रहे हैं | इसी प्रकार, आदर्श राज्य की एक बार स्थापना हो जाए तो फिर उसे चलाने के लिए हमेशा पूर्ण मानव की आवश्यकता नहीं रहेगी | पर, शुरुआत करने के लिए संपूर्ण सामाजिक जागरण की जरूरत है | बाकी अपने आप हो जाएगा |

अपने देश का ही एक उदाहरण लें | मैंने श्रमिक वर्ग के सामने यह सत्य प्रस्तुत किया है कि सच्ची पूंजी सोना-चांदी नहीं है बल्कि उनके हाथ-पैर और दिमाग की मेहनत है | श्रमिकों में एक बार यह जागरूकता आ जाए तो फिर उससे जो शक्ति फूटेगी, उसका उपयोग करने के लिए उन्हें मेरी उपस्थिति की आवश्यकता नहीं होगी | *(टुन्यू, पृ. 91-93)*

26. अहिंसक राज्य

अनेक लोगों ने असहमति की मुद्रा में सिर हिलाते हुए कहा है, "लेकिन आप आम जनता को अहिंसा नहीं सिखा सकते | यह केवल व्यक्तियों को सिखाई जा सकती है और वह भी, इनेगिने मामलों में |" मेरी राय में, ऐसा सोचना बड़ी आत्मवंचना है | यदि मानव जाति स्वभाव से अहिंसक न होती तो इसने बहुत पहले अपना विनाश कर लिया होता | सच्चाई यह है कि हिंसा और अहिंसा के द्वंद्व में, अंतत: विजय सदा अहिंसा की ही हुई है |

वस्तुत: हमने लोगों के बीच राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के साधन के रूप में अहिंसा के इस्तेमाल का प्रचार करने के लिए कभी अपेक्षित धैर्य के साथ और पूरा जी लगाकर प्रयास नहीं किया है | *(यंग, 2-1-1930, पृ. 4)*

राजनीतिक शक्ति

मेरी दृष्टि में, राजनीतिक शक्ति अपने आप में लक्ष्य नहीं है, बल्कि यह जीवन के हर क्षेत्र में लोगों की दशा सुधारने का एक साधन है | राजनीतिक शक्ति का अर्थ है राष्ट्रीय प्रतिनिधियों के जरिए राष्ट्रीय जीवन का नियमन करने का सामर्थ्य | यदि राष्ट्रीय जीवन इतनी पूर्णता प्राप्त कर ले कि वह स्व-नियमित हो जाए तो प्रतिनिधित्व की आवश्यकता ही नहीं रहेगी | यह प्रबुद्ध अराजकता की स्थिति है | ऐसी स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति अपना शासक स्वयं होता है | वह अपने को इस प्रकार शासित करता है कि अपने पड़ोसी के लिए कभी कोई बाधा खड़ी न हो |

इस प्रकार, आदर्श राज्य में कोई राजनीतिक शक्ति नहीं होती, क्योंकि उसमें कोई राज्य ही नहीं होता | लेकिन जीवन में आदर्श की उपलब्धि पूरी तरह कभी नहीं हो पाती | तभी थोरू की क्लासिकी उक्ति है कि सबसे अच्छी सरकार वह है जो सबसे कम शासन करे | *(यंग, 2-7-1931, पृ. 162)*

पूंजीवाद अथवा न्यासिता

मुझे पक्का विश्वास है कि अगर राज्य ने हिंसा का प्रयोग करके पूंजीवाद का दमन करना चाहा तो वह हिंसा के शिकंजे में खुद फंस जाएगा और कभी अहिंसा का विकास नहीं कर पाएगा | राज्य संकेंद्रित और संगठित रूप में हिंसा का प्रतिनिधित्व करता है | व्यक्ति के पास आत्मा होती है, लेकिन चूंकि राज्य आत्मा से विहीन तंत्र होता है इसलिए उसे हिंसा से विरत कभी नहीं किया जा सकता – उसका अस्तित्व ही हिंसा में निहित है | इसीलिए मैं न्यासिता के सिद्धांत का हिमायती हूं |

इस बात का हमेशा डर है कि राज्य उन लोगों के विरुद्ध बहुत अधिक हिंसा का व्यवहार न करे जो उससे सहमत नहीं हैं | मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी अगर लोग न्यासी के रूप में आचरण करें, लेकिन यदि वह ऐसा नहीं कर पाते तो हमें राज्य के जरिए न्यूनतम हिंसा का प्रयोग करते हुए उन्हें उनकी संपत्ति से वंचित कर देना होगा |

इसीलिए मैंने गोलमेज सम्मेलन में कहा था कि प्रत्येक न्यस्तहित की जांच-पड़ताल की जानी चाहिए और जहां आवश्यक हो, राज्यसात्करण के आदेश दिए जाएं | जिनकी संपत्ति का राज्यसात्करण करना हो, उन्हें मुआवजा दिया जाए या नहीं, इसका निर्णय हर मामले की तफसील पर गौर करके किया जाए |

मैं व्यक्तिगत रूप से इस बात को तरजीह दूंगा कि राज्य के हाथों में शक्ति के केंद्रीकरण के बजाए न्यासिता की भावना का विस्तार किया जाए क्योंकि, मेरी सम्मति में, निजी स्वामित्व की हिंसा राज्य की हिंसा से कम हानिकारक है | लेकिन अपरिहार्य हो तो मैं न्यूनतम राज्य-स्वामित्व का समर्थन करूंगा |

यह स्वीकार करते हुए कि मनुष्य अपने स्वभाव के अनुसार अपना जीवन चलाता है, मैं समझता हूं कि उसके लिए अपनी इच्छा-शक्ति का प्रयोग करते हुए जीना ज्यादा अच्छा है | मेरा यह भी विश्वास है कि मनुष्य इस प्रकार अपनी इच्छा-शक्ति का विकास करने में समर्थ हैं, जिससे शोषण घटकर न्यूनतम रह जाएगा |

मैं राज्य की शक्ति में वृद्धि से बड़ा भयभीत हूं | यद्यपि वह जाहिर तौर पर शोषण को न्यूनतम करके लोगों की भलाई करने का प्रयास करता है, पर वह वैयक्तिकता को विनष्ट करके मानव जाति की सबसे बड़ी हानि करता है, क्योंकि वैयक्तिकता ही तो सारी प्रगति की कुंजी है |

हमारे सामने अनेक ऐसे उदाहरण हैं जिनमें लोगों ने न्यासिता को अपनाया है, पर एक भी उदाहरण ऐसा नहीं है जिसमें राज्य वस्तुत: निर्धनों के हित में संचालित हुआ हो | *(मारि, अक्तू., 1935, पृ. 412)*

अहिंसक स्वराज

अहिंसा पर आधारित स्वराज में, लोगों को अपने अधिकारों की जानकारी रखने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि अपने दायित्वों को जानना आवश्यक है | प्रत्येक कर्तव्य से ही तदनुरूप अधिकार जन्म लेता है, और वे ही अधिकार सच्चे हैं जो मनुष्य के सम्यक कर्तव्यपालन से उत्पन्न होते हों | इसलिए सच्ची नागरिकता के अधिकार उन्हें ही प्राप्त होने चाहिए जो अपने राज्य की सेवा करें | ऐसे व्यक्ति ही अपने अधिकारों का न्यायोचित उपयोग कर सकते हैं |

हर आदमी को झूठ बोलने या गुंडागर्दी करने का अधिकार है | लेकिन इस अधिकार का प्रयोग करने से उस व्यक्ति तथा समाज, दोनों को हानि पहुंचती है | पर जो सत्य और अहिंसा का पालन करता है उसे प्रतिष्ठा मिलती है, और प्रतिष्ठा के साथ अधिकार प्राप्त होते हैं | साथ ही, जो लोग अपने कर्तव्य-पालन के परिणामस्वरूप अधिकार अर्जित करते हैं, वे उनका उपयोग सदैव समाज की सेवा के लिए करते हैं, अपने लिए कभी नहीं |
जनता के स्वराज का अर्थ है, सभी व्यक्तियों के स्वराज का पूर्ण योग | और यह स्वराज लोगों द्वारा नागरिकों के रूप में अपने कर्तव्य के पालन से ही उत्पन्न होता है | इसमें अपने अधिकारों के विषय में कोई नहीं सोचता | वे जब बेहतर कर्तव्यपालन के लिए आवश्यक होते हैं, तब मिल जाते हैं | *(हरि, 25-3-1939, पृ. 64)*

अहिंसा पर आधारित स्वराज में कोई किसी का शत्रु नहीं होता, प्रत्येक व्यक्ति सार्वजनिक लक्ष्य के लिए अपने हिस्से का योगदान करता है, सभी लिख-पढ़ सकते हैं और लोगों का ज्ञान निरंतर बढ़ता जाता है | बीमारी और रोग कम-से-कम रह जाते हैं | कोई कंगाल नहीं होता और श्रमिक के लिए हमेशा रोजगार उपलब्ध रहता है | ऐसी सरकार में जुआ, शराब, अनैतिकता और वर्ग-द्वेष के लिए कोई स्थान नहीं होता |

स्वराज में अमीर अपने धन को बुद्धिमानी के साथ उपयोगी काम पर खर्च करेंगे और उसे अपनी शान-शौकत तथा भोग-विलास में बढ़ोतरी करने के लिए बरबाद नहीं करेंगे | ऐसा नहीं होना चाहिए कि अमीर तो जड़ाऊ महलों में रहें और करोड़ों लोग टूटी-फूटी झोंपड़ियों में रहें जिनमें न सूरज की रोशनी पहुंचती हो, न हवा....

अहिंसक स्वराज में किसी के न्यायोचित अधिकारों का अतिक्रमण नहीं हो सकता पर साथ ही, किसी को अनुचित अधिकार दिए भी नहीं जाएंगे | सुसंगठित राज्य में, अनधिकार-ग्रहण की संभावना नहीं रहनी चाहिए और किसी अनधिकार-ग्राही को बेदखल करने के लिए बलप्रयोग की नौबत ही नहीं आनी चाहिए | *(वही, पृ. 65)*

विकेंद्रीकरण

यदि भारत को अहिंसा के मार्ग पर अपना विकास करना है तो मेरा सुझाव है कि उसे बहुत-सी चीज़ों का विकेंद्रीकरण करना होगा | पर्याप्त बल के बगैर केंद्रीकरण को कायम रखना और उसकी रक्षा करना संभव नहीं है | सादा मकानों के लिए जिनमें चुराने के वास्ते कुछ हो ही न, पुलिस का बंदोबस्त करने की जरूरत नही पड़ती; अमीरों के महलों को डाकुओं से बचाने के लिए भारी पहरे का इंतजाम करना पड़ता है | यही बात विशाल फैक्टरियों पर भी लागू होती है | ग्रामीण आधार पर संगठित भारत को सैनिक, नौसैनिक और वायुसैनिक बलों से सुसज्जित शहरीकृत भारत की अपेक्षा बाहरी आक्रमण का खतरा बहुत कम होगा | *(हरि, 30-12-1939, पृ. 391)*

एक प्रणाली के रूप में, केंद्रीकरण समाज की अहिंसक संरचना के साथ मेल नहीं खाता | *(हरि, 18-1-1942, पृ. 5)*

आधुनिक राज्य

बल पर आधारित आधुनिक राज्य, बाह्य या आंतरिक अव्यवस्था की ताकतों का अहिंसक तरीके से मुकाबला नहीं कर सकता | आदमी ईश्वर और धनलिप्सा की पूजा साथ-साथ नहीं कर सकता | न वह एक ही समय में 'संयत और क्रोधोन्मत्त' हो सकता है | यह दावा किया जाता है कि राज्य का अहिंसा पर आधारित होना संभव है अर्थात वह सैन्यबल पर आधारित किसी विश्व गुटबंदी के विरुद्ध अहिंसक प्रतिरोध का आश्रय ले सकता है | अशोक का राज्य ऐसा ही था | ऐसे और उदाहरण भी दिए जा सकते हैं | लेकिन अगर यह भी साबित कर दिया जाए कि

अशोक का राज्य अहिंसा पर आधारित नहीं था तो इससे अहिंसा के पक्ष का तर्क कमजोर नहीं हो जाता | उसकी परीक्षा गुणावगुण के आधार पर करनी होगी....

सैनिक दृष्टि से मजबूत राष्ट्र अहिंसा का प्रस्ताव नहीं कर सकता | तदनुसार यदि रूप अहिंसा की अभिव्यक्ति करना चाहे तो उसे अपनी समस्त हिंसक शक्ति का त्याग करना होगा | जो बात सही है वह यह है कि जो कभी सैनिक दृष्टि से प्रबल रहे हैं, वे यदि अपना मन बदल लें तो वे दुनिया और अपने विरोधियों के समक्ष अहिंसा का प्रदर्शन ज़्यादा बेहतर ढंग से कर सकते हैं | *(हरि, 12-5-1946, पृ. 128)*

27. हिंसा और आतंकवाद

मेरा अनुभव मुझे बताता है कि हिंसा के रास्ते पर चलकर सत्य का प्रचार कभी नहीं किया जा सकता | जिन्हें अपने लक्ष्य की न्यायोचितता में विश्वास है, उनमें असीम धैर्य होना आवश्यक है और सविनय अवज्ञा में भाग लेने के लिए योग्य व्यक्ति वही हैं जो आपराधिक अवज्ञा या हिंसा पर कभी उतारू नहीं होंगे | *(यंग, 28-4-1920, पृ. 8)*

लोक-हिंसा

अगर मैं सरकार की संगठित हिंसा से कोई वास्ता रखना नहीं चाहता तो जनता की असंगठित हिंसा से तो और भी कम वास्ता रखना चाहूंगा | मैं इन दोनों के बीच में पिस जाना ज़्यादा पसंद करूंगा | *(यंग, 24-11-1921, पृ. 382)*

मेरी दृष्टि में हमारे मार्ग में जितनी बड़ी बाधा सरकारी हिंसा है, उतनी ही बड़ी बाधा लोक-हिंसा भी है | बल्कि सच पूछा जाए तो मैं लोक-हिंसा की तुलना में सरकारी हिंसा का सामना ज्यादा कामयाबी के साथ कर सकता हूं | क्योंकि लोक-हिंसा का सामना करते समय मुझे उतना समर्थन प्राप्त नहीं होगा जितना सरकारी हिंसा का सामना करते समय होगा | *(यंग, 24-4-1930, पृ. 140)*

मैं दृढ़तापूर्वक यह कहना चाहता हूं कि हिंसा का रास्ता किसी धर्म में विहित नहीं है | जहां अधिकांश धर्मों में अहिंसा का व्यवहार मनुष्य का आवश्यक कर्तव्य माना गया है, वहीं कुछ धर्मों में खास परिस्थितियों में इसकी इज़ाज़त भर दी गई है | लेकिन मैंने भारत के सामने अहिंसा का अंतिम स्वरूप स्पष्ट नहीं किया है | *(यंग, 2-3-1922, पृ. 130)*

मुझे हिंसा से आपत्ति इसलिए है कि जब यह प्रतीत होता है कि इससे भलाई हो रही है तो वह भलाई केवल अस्थायी होती है, पर इससे जो बुराई फैलती है, वह स्थायी होती है | *(यंग, 21-5-1925, पृ. 178)*

हिंसा में कोई आस्था नहीं

मेरा यह अडिग विश्वास है कि लक्ष्य की पूर्ति में जिस सीमा तक हिंसा का सहारा लिया जाएगा, उसी सीमा तक असफलता हाथ लगेगी | हालांकि जाहिर तौर पर इसका उलटा होता दिखाई देता है, पर उसके बावजूद मैं यह बात कह रहा हूं | अगर मैं अपने रास्ते में बाधक बनने वाले व्यक्ति की हत्या कर दूं तो मुझे एक झूठी सुरक्षा का आभास हो सकता है | पर यह सुरक्षा अल्पस्थायी होगी | बात यह है कि मैंने मूल कारण को तो दूर किया ही नहीं | कुछ समय में, और लोग मेरे रास्ते में बाधक बनकर खड़े हो जाएंगे | इसलिए मैं अपने बाधक की हत्या नहीं करता, बल्कि उस कारण का पता लगाने की कोशिश करता हूं जिसके कारण वह ऐसा व्यवहार कर रहा है और फिर उस कारण का इलाज करता हूं | *(यंग, 26-2-1931, पृ. 1)*

मैं सशस्त्र विद्रोहों में विश्वास नहीं करता | वे जिस बुराई को दूर करने के लिए छेड़े जाते हैं, स्वयं उससे भी बुरे साबित होते हैं | वे प्रतिशोध, अधैर्य और क्रोध के प्रतीक होते हैं | हिंसक उपचार का कोई स्थायी लाभ नहीं होता| *(यंग, 9-6-1920, पृ. 3)*

क्रांतिकारी

मैं क्रांतिकारी की वीरता और बलिदान की भावना से इंकार नहीं करता | लेकिन बुरे उद्देश्य के लिए प्रदर्शित वीरता और किया गया बलिदान उत्तम ऊर्जा का अपव्यय है | इसके अलावा, बुरे उद्देश्य के लिए प्रदर्शित वीरता तथा बलिदान के दुरुपयोग को गौरवपूर्ण करार देने से अच्छे उद्देश्य की ओर से लोगों का ध्यान हटता है |

मुझे वीर एवं आत्मबलिदानी क्रांतिकारी के सामने तनकर खड़े होने में कोई संकोच नहीं है, क्योंकि मैं उतनी ही मात्रा में अहिंसक की वीरता एवं बलिदान की भावना प्रदर्शित कर सकता हूं, और उस पर किसी निर्दोष के रक्त का दाग भी नहीं होगा | एक निर्दोष व्यक्ति का आत्मबलिदान उन लाखों लोगों के बलिदान से ज्यादा असर पैदा करता है जो दूसरों को मारने की क्रिया में मर जाते हैं | निर्दोष व्यक्ति का स्वेच्छया बलिदान धृष्ट क्रूरता का, ईश्वर या मनुष्य द्वारा अभी तक सोचा गया सबसे शक्तिशाली प्रतिकार है |

मैं क्रांतिकारियों का ध्यान स्वराज की तीन मुख्य बाधाओं की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं – चरखे का अपूर्ण प्रचार, हिंदुओं और मुसलमानों के बीच मनमुटाव, और दलित वर्गों के ऊपर अमानवीय प्रतिबंध | मैं उनसे धैर्यपूर्वक आग्रह करता हूं कि वे इस चिरप्रतीक्षित रचनात्मक कार्य में अपना समुचित योगदान करें | यह शायद ज़्यादा शानदार काम नहीं है, लेकिन इसी कारण इसके लिए विकट धैर्य, मौन और सतत प्रयास तथा अनात्मशंसा की आवश्यकता है – ये सभी गुण महानतम क्रांतिकारी में विद्यमान होते हैं | अधैर्य क्रांतिकारी की दृष्टि को धूमिल कर सकता है जिससे उसके भटक जाने का भय है |

सरफरोशी की तमन्ना से भरकर फांसी के तख्ते पर झूल जाने की अपेक्षा भूखी जनता के बीच उसके साथ-साथ धीरे-धीरे और शानदार न दिखने वाले तरीके से स्वेच्छापूर्वक भूखमरी का शिकार होना हर हालत में ज़्यादा वीरतापूर्ण कृत्य है | *(यंग, 12-2-1925, पृ. 60)*

बर्बरता की रोकथाम

मुझे अपने देशवासियों की पीड़ाओं के निवारण से भी ज़्यादा चिंता मानव प्रकृति के बर्बरीकरण को रोकने की है....मैं जानता हूं कि जो लोग स्वेच्छा से पीड़ा का जीवन स्वीकार करते हैं, वे अपना और साथ ही, पूरी मानवता का उन्नयन करते हैं, लेकिन मैं यह भी जानता हूं कि जो लोग अपने विरोधी पर विजय पाने या दुर्बल राष्ट्रों अथवा दुर्बल लोगों का शोषण करने के दु:साहसिक प्रयास में नृशंसता के व्यवहार पर उतारू हो जाते हैं, वे न केवल स्वयं को बल्कि समूची मानवता को पतन के गर्त में ले जाते हैं | *(यंग, 29-10-1931, पृ. 325)*

फांसी के तख्ते पर झूलकर मरने में कोई अनिवार्य आकर्षण नहीं है; ऐसी मृत्यु मलेरियाग्रस्त क्षेत्रों की उबाऊ और कड़ी मेहनत की जिंदगी से प्राय: आसान होती है....मैं अपने क्रांतिकारी मित्रों से कहना चाहता हूं कि फांसी की मृत्यु से देश का उपकार उसी स्थिति में हो सकता है जबकि उसका शिकार पूरी तरह बेदाग हो | *(यंग, 9-4-1925, पृ. 124)*

....मैं हर यूरोपीय चीज़ की निंदा नहीं करता | लेकिन मैं अच्छे उद्देश्य के लिए भी गुप्त हत्याओं और अनुचित तरीकों के प्रयोग की सर्वत्र और सदा के लिए निंदा करता हूं....किसी शैतानी प्रवृत्ति के विरुद्ध सशस्त्र षड्यंत्र शैतान को शैतान से लड़ाना है | मेरे लिए चूंकि एक शैतान ही काफ़ी है इसलिए मैं उनकी संख्या बढ़ाना नहीं चाहता.... *(वही, पृ. 125)*

कायरता से, वह दार्शनिक कायरता हो या अन्य किसी प्रकार की, मुझे बड़ी नफरत है | और मुझे यदि आश्वस्त किया जा सके कि क्रांतिकारी कार्रवाई ने कायरता को मिटा दिया है तो इससे मुझे उनकी पद्धति के प्रति अपने घृणा भाव को कम करने में बड़ी मदद मिलेगी, हालांकि सिद्धांतत: मैं उनका विरोध फिर भी करता रहूंगा....

मैं किसी भी परिस्थिति में मारने, हत्या करने या आतंकवादी कार्रवाई करने को अच्छा नहीं मानता | मैं यह जरूर विश्वास करता हूं कि शहीदों के खून से सींचे जाने पर विचार बहुत जल्दी परिपक्व होते हैं | लेकिन जो व्यक्ति सेवा करते-करते जंगल ज्वर से पीड़ित होकर धीरे-धीरे मरता है, वह भी वैसी ही शहादत देता है जैसी कि फांसी के फंदे पर झूलने वाला व्यक्ति और अगर फांसी पर लटकने वाले के ऊपर किसी निर्दोष की हत्या का दोष है, तो मैं मानूंगा कि उसके विचार ही ऐसे नहीं थे जो परिपक्व होने लायक हों |

इतिहास के नायक

....उनकी (क्रांतिकारियों की) गतिविधियों की तुलना गुरु गोविंदसिंह या वाशिंग्टन अथवा गैरीबाल्डी या लेनिन से करना अत्यंत भ्रामक और खतरनाक होगा | लेकिन, अहिंसा के सिद्धांत की कसौटी पर कसते हुए मुझे यह कहने में हिचक नहीं है कि यदि मैं उनके जमाने में और उनके संबंधित देशों में जीता होता तो ज़्यादा संभावना इसी बात की है कि मैं उन्हें सफल और वीर योद्धा होने के बावजूद विभ्रांत राष्ट्रभक्त कहता....

जहां तक नायकों के कारनामों की तफसील का ताल्लुक है, मैं इतिहास पर विश्वास नहीं करता | मैं इतिहास के मोटे तथ्यों को स्वीकार करता हूं और उनसे अपने आचरण के लिए निष्कर्ष स्वयं निकालता हूं | जहां-जहां ये मोटे तथ्य जीवन के नियम के विपरीत हैं, मैं उनकी पुनरावृत्ति करना नहीं चाहता | मैं इतिहास द्वारा प्रदत्त विरल सामग्री के बल पर लोगों के बारे में कोई निर्णय लेने से साफ इंकार करता हूं |

मैं कमाल पाशा और दे वलेरा के बारे में भी निर्णय नहीं ले सकता | लेकिन अहिंसा में पूरा-पूरा विश्वास करने वाला व्यक्ति होने के कारण, जहां तक इनकी युद्ध के प्रति आस्था का संबंध है, वे मेरे जीवन के पथप्रदर्शक नहीं

हो सकते | मुझे तो कृष्ण में विश्वास है, लेकिन मेरा कृष्ण ब्रह्मांड का स्वामी और हम सबका सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता है | वह सृष्टिकर्ता है, इसलिए संहार भी कर सकता है....

क्रांति आत्मघातक

मुझमें अपने जीवन-दर्शन की शिक्षा देने की योग्यता नहीं है | मुझमें बमुश्किल इतनी योग्यता है कि मैं जिस दर्शन में विश्वास करता हूं, उस पर आचरण कर सकूं....क्रांतिकारी मेरे समूचे दर्शन को अस्वीकार करने के लिए स्वतंत्र हैं....लेकिन भारत की तुलना तुर्की, आयरलैंड या रूस जैसे देशों से नहीं की जा सकती और राष्ट्रीय जीवन के इस मोड़ पर क्रांतिकारी गतिविधियां हर तरह से आत्मघातक हैं | यदि दीर्घकालीन दृष्टि से भी देखें तो इतने विशाल, बुरी तरह विभाजित और घोर कंगाली तथा आतंक से त्रस्त जनता के देश में क्रांतिकारी गतिविधियां कैसे सफल हो सकती हैं ? *(वही, पृ. 126)*

क्रांतिकारी विरोधी के शरीर का हनन यह मानकर करता है कि इससे विरोधी की आत्मा का कल्याण होगा....मैं एक भी ऐसे क्रांतिकारी को नहीं जानता जिसने विरोधी की आत्मा के विषय में सोचा तक हो | उसका एकमात्र उद्देश्य देश का कल्याण करना है, भले ही विरोधी का शरीर और आत्मा, दोनों नष्ट हो जाएं | *(यंग, 30-4-1925, पृ. 153)*

मैं अराजकतावादी को उसके देशप्रेम के लिए सम्मान देता हूं | मैं देश के लिए मर मिटने की उसकी तत्परता में निहित वीरता के लिए उसका सम्मान करता हूं, लेकिन मैं उससे एक बात पूछता हूं : क्या हत्या करना सम्माननीय मौत के लिए हत्यारे की कटार जरूरी है ? मैं इसे नहीं मानता | *(स्पीरा, पृ. 323)*

मैं अपनी सुविचारित राय को दुहराना चाहूंगा कि, अन्य देशों के बारे में जो भी स्थिति हो, कम-से-कम भारत में राजनीतिक हत्या देश को सिर्फ नुकसान पहुंचा सकती है | *(यंग, 16-4-1931, पृ. 75)*

इतिहास के पृष्ठ आज़ादी के लिए संघर्ष करने वालों के रक्त से रंजित हैं | मैं एक भी उदाहरण ऐसा नहीं जानता जिसमें घोर परिश्रम किए बगैर कोई राष्ट्र अपना अभ्युदय कर पाया हो | हत्यारे की कटार, विष का प्याला, बंदूकधारी की गोली, भाला – आज़ादी के दीवानों द्वारा विनाश के इन सभी उपायों का आश्रय लिया जा चुका है....मैं आतंकवादी के पक्ष का समर्थन नहीं करता | *(यंग, 24-12-1931, पृ. 408)*

क्रांतिकारी कृपया मेरे साथ और मेरे लिए प्रार्थना करें कि मैं शीघ्र ही मनोविकारों से मुक्त और पाप करने के पूरी तरह नाकाबिल हो जाऊं | लेकिन इस बीच, वे मेरे साथ एक कदम उठाएं – यह कदम मुझे दिन के प्रकाश की तरह स्पष्ट दिखाई दे रहा है – और वह कदम है विशुद्ध अहिंसक उपायों से भारत की आज़ादी हासिल करना | *(हरि, 25-1-1942, पृ. 15)*

28. हिंसा और कायरता के बीच चुनाव

समूची प्रजाति के नपुंसक हो जाने का खतरा उठाने के मुकाबले मैं हिंसा को हज़ार गुना बेहतर समझता हूं | *(यंग, 4-8-1920, पृ. 5)*

हिंसा बेहतर

मेरा पक्का विश्वास है कि जहां केवल कायरता और हिंसा में से एक का चुनाव करना है, वहाँ मैं हिंसा को चुनूंगा....कायर की भांति, अपने अपमान का विवश साक्षी बनने की अपेक्षा भारत के लिए अपने सम्मान की रक्षार्थ शस्त्र उठा लेना मैं ज़्यादा अच्छा समझूंगा |

लेकिन मेरा विश्वास है कि अहिंसा हिंसा से अत्यधिक श्रेष्ठ है, दंड की अपेक्षा क्षमा अधिक मानवोचित है | क्षमा योद्धा का आभूषण है....लेकिन संयम को क्षमा की संज्ञा तभी दी जा सकती है जब संयमकर्ता में दंड देने की शक्ति हो; बेबस प्राणी द्वारा दी गई क्षमा का तो कोई अर्थ ही नहीं है....

पर मैं भारत को बेबस नहीं मानता....मैं स्वयं को बेबस प्राणी नहीं मानता....शक्ति शारीरिक क्षमता में निहित नहीं है | वह अदम्य इच्छा से उत्पन्न होती है | *(यंग, 11-8-1920, पृ. 3)*

हम मनुष्य के भीतर बैठे पशु को निकाल फेंकना जरूर चाहते हैं | लेकिन इस कारण से उसे नपुंसक बनाना तो नहीं चाहते | और यह जताने के लिए कि मैं अभी मिटा नहीं हूं, आदमी के भीतर बैठा पशु समय-समय पर अपना कुत्सित रूप दिखाएगा जरूर | *(यंग, 15-12-1921, पृ. 419)*

दुनिया केवल तर्क के सहारे नहीं चलती | जीवन में थोड़ी-बहुत हिंसा तो है ही | अत: हमें न्यूनतम हिंसा के रास्ते को अपनाना है | *(हरि, 28-9-1934, पृ. 259)*

कायरता नहीं

मैं चाहता हूं कि हिंदू और मुसलमान, दोनों मारे बिना मर जाने के धीर साहस का विकास करें | लेकिन यदि किसी में वैसा साहस न हो तो उसे, कायर की तरह, खतरा देखकर भाग खड़े होने के बजाय मार कर मरने की कला विकसित करनी चाहिए | क्योंकि भाग खड़ा होने वाला व्यक्ति तो मानसिक हिंसा करता है | वह इसलिए भागता है कि उसमें मारते हुए मर जाने का साहस नहीं है | *(यंग, 20-10-1921, पृ. 335)*

अहिंसा की मेरी विधि से शक्ति की हानि कभी नहीं होती, क्योंकि वही इस बात को संभव बनाती है कि, यदि राष्ट्र चाहे तो, संकट के समय अनुशासित और जोरदार हिंसा का प्रदर्शन कर सकता है | *(यंग, 29-5-1924, पृ. 176)*

मेरी अहिंसा में अत्यंत सक्रिय बल है | इसमें कायरता अथवा दुर्बलता के लिए कोई स्थान नहीं है | हिंसक व्यक्ति तो शायद कभी अहिंसक हो भी सकता है, लेकिन कायर से अहिंसक होने की आशा कभी नहीं की जा सकती |

इसीलिए मैंने बार-बार कहा है....कि अगर हमें यह न आता हो कि अपनी महिलाओं और पूजास्थलों की रक्षा, पीड़ा सहने के बल अर्थात अहिंसा की मदद से किस प्रकार करें तो, अगर हममें पौरुष है तो, हमें उनकी रक्षा हथियारों के बल पर ही करनी चाहिए | *(यंग, 16-6-1927, पृ. 196)*

आदमी शरीर से कितना ही कमजोर हो, पर यदि पलायन लज्जा की बात है तो उसे मुकाबले पर डटे रहना चाहिए और कर्तव्यपालन करते हुए मृत्यु का वरण करना चाहिए | यही अहिंसा तथा वीरता है | वह कितना ही कमजोर हो, पर अपने शत्रु पर शक्ति भर वार करे और ऐसा करते-करते मृत्यु को प्राप्त हो जाए – यह वीरता है, यद्यपि यह अहिंसा नहीं है | यदि आदमी संकट का सामना करने के बजाए भाग खड़ा होता है, तो यह कायरता है | पहले मामले में, आदमी के हृदय में प्रेम अथवा दयालुता का भाव होगा | दूसरे और तीसरे मामले में, उसके हृदय में घृणा अथवा अविश्वास और भय के भाव होंगे | *(हरि, 17-8-1935, पृ. 211)*

मेरी अहिंसा ऐसे लोगों के अस्तित्व को स्वीकारती है जो अहिंसा का बर्ताव नहीं कर सकते या नहीं करेंगे | अत: शस्त्र धारण करके उसका कारगर इस्तेमाल करेंगे | मैं हज़ारवीं बार यह दोहराना चाहूंगा कि अहिंसा दुर्बल का शस्त्र नहीं है, बल्कि सर्वाधिक बलवान का शस्त्र है | *(यंग, 8-5-1941)*

संकट का सामना करने के बजाए उससे भाग खड़ा होना मनुष्य और ईश्वर ही नहीं बल्कि स्वयं अपने आत्मविश्वास को खो देना है | विश्वास का ऐसा दिवाला निकालकर जीने से तो डूबकर मर जाना बेहतर है | *(हरि, 24-11-1946, पृ. 410)*

हिंसा की मदद से आत्मरक्षा

मैं बार-बार कहता आया हूं कि जो व्यक्ति मृत्यु का सामना करते हुए अहिंसक ढंग से अपने प्रियजनों की और अपने सम्मान की रक्षा नहीं कर सकते, वे शत्रु के साथ हिंसक संघर्ष करें – उन्हें ऐसा करना ही चाहिए | जो इन दोनों में से कोई रास्ता नहीं अपना सकता, वह व्यर्थ का भार है | वह परिवार का मुखिया होने लायक नहीं है | वह या तो कहीं छुपकर जा बैठे या सदा के लिए लाचारी की जिंदगी जीने और दबंग के सामने कीड़े की तरह रेंगने के लिए तैयार रहे | *(यंग, 11-10-1928, पृ. 342)*

आत्मरक्षा के लिए मारने की ताकत जरूरी नहीं है, आदमी में मरने की ताकत होनी चाहिए | जब आदमी मरने के लिए पूरी तरह तैयार होगा तो शायद उसमें हिंसा पर उतारू होने की इच्छा ही न रहे | वस्तुत: मैं इसे एक स्वत: स्पष्ट प्रस्थापना के रूप में भी व्यक्त कर सकता हूं कि मारने की इच्छा और मरने की इच्छा के बीच प्रतिलोम अनुपात है | इतिहास ऐसे अनेक उदाहरणों से भरा पड़ा है जिनमें साहस और होठों पर करुणा के शब्द लेकर मरने वालों ने अपने हिंसक विरोधियों का हृदय-परिवर्तन कर दिया है | *(यंग, 21-1-1930, पृ. 27)*

अहिंसा ऐसे व्यक्ति को नहीं सिखाई जा सकती जो मरने से भय खाता है और जिसमें प्रतिरोध की शक्ति ही नहीं है | लाचार चूहे को, जो हमेशा बिल्ली का शिकार बनता है, अहिंसक नहीं कहा जा सकता | उसका बस चले तो जरूर बिल्ली को खा जाए, पर वह उसे देखते ही भाग खड़ा होता है | हम उसे कायर नहीं कहते, क्योंकि प्रकृति ने उसे जैसा बनाया है वह वैसा ही व्यवहार करता है |

लेकिन अगर कोई आदमी, खतरा सामने आने पर, चूहे की तरह भागता है तो वह सच्चे मायने में कायर है | उसके दिल में हिंसा और नफरत है और खुद को कोई शारीरिक चोट पहुंचाए बिना यदि वह अपने शत्रु को मार सके तो जरूर मार देगा | ऐसे व्यक्ति का अहिंसा से कोई वास्ता नहीं है | इसे जितना भी उपदेश दो, सब व्यर्थ जाएगा | उसकी प्रकृति में बहादुरी है ही नहीं | उसे अहिंसा का पाठ पढ़ाने से पहले, मुकाबले पर डटना और उसका सफाया करने की ताक में खड़े शत्रु से अपनी रक्षा का प्रयास करते हुए यदि मर भी जाना पड़े तो उसके लिए तैयार रहना, सिखाना होगा | कोई और उपाय करना उसकी कायरता को ही पुष्ट करना होगा जिससे वह अहिंसा से और भी दूर चला जाएगा |

अगर मैं किसी को बदला लेने में सचमुच सहायता नहीं करता तो मुझे किसी कायर को तथाकथित अहिंसा की आड़ भी नहीं लेने देनी चाहिए | यह ज्ञान न होने के कारण कि अहिंसा किस ताकत का नाम है, बहुत-से-लोगों ने बड़ी ईमानदारी से यह विश्वास पाल लिया है कि, खास तौर से अगर अपनी जान जाने का खतरा हो तो, प्रतिरोध करने के बजाय सदैव भाग खड़े होने में ही बुद्धिमानी है | अहिंसा का शिक्षक होने के नाते मुझे लोगों को ऐसे नामर्द विश्वास के खिलाफ चेता देना चाहिए | *(हरि, 20-7-1935, पृ. 180-81)*

यदि व्यक्ति बलिदान के लिए तैयार न हो तो आत्मरक्षा ही....एकमात्र सम्मानजनक रास्ता है | *(वही, पृ. 181)*

यद्यपि हिंसा वैध नहीं है, पर आत्मरक्षा अथवा अरक्षितों की रक्षा करने के लिए की गई हिंसा, कायरतापूर्ण आत्मसमर्पण की तुलना में कहीं बेहतर वीरतापूर्ण कार्य है | कायरतापूर्ण आत्मसमर्पण न पुरुष को शोभा देता है, न स्त्री को | हिंसा के अधीन, वीरता के अनेक चरण और प्रकार हैं | इनका निर्णय मनुष्य को स्वयं करना चाहिए | इसका अधिकार किसी दूसरे व्यक्ति को नहीं है और न हो सकता है | *(हरि, 27-10-1946, पृ.369-70)*

29. आक्रमण का प्रतिरोध

मुझे जीना है | मुझे किसी राष्ट्र या व्यक्ति का दास बनकर नहीं रहना | मैं या तो पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करूंगा या मर मिटूंगा | सशस्त्र संघर्ष में जीतने की आशा करना खालिस बड़बोलापन होगा | लेकिन जो मेरी आज़ादी से मुझे वंचित करे, उसकी शक्ति को चुनौती देना, उसकी इच्छा का पालन करने से इंकार करना और इस प्रयास में निहत्थे जान दे देना बड़बोलापन नहीं है | इसमें मेरी जान तो जाएगी, पर मेरी आत्मा अर्थात मेरे सम्मान की रक्षा हो सकेगी| *(हरि, 15-10-1938, पृ. 290)*

प्रतिरोध का कर्तव्य

सच्चा लोकतांत्रिक वह है जो अपनी और अपने देश की तथा अंतत: समूची मानव जाति की आज़ादी की रक्षा विशुद्ध अहिंसक तरीके से करता है....लेकिन प्रतिरोध का कर्तव्य केवल वे ही उपार्जित कर सकते हैं जो अहिंसा को धर्म मानते हैं – वे नहीं जो गणित लगाएं और प्रत्येक मामले के गुणावगुण पर विचार करने के बाद निर्णय लें कि अमुक युद्ध का समर्थन करना है अथवा विरोध | इसका मतलब यह हुआ कि इस प्रकार के प्रतिरोध का निर्णय व्यक्ति को स्वयं करना है और अपनी अंतर्वाणी का आदेश मानते हुए करना है, यदि वह अंतर्वाणी के अस्तित्व को स्वीकारता है तो |*(हरि, 15-4-1939, पृ. 90)*

अ-प्रतिरोध के ठीक-ठीक अर्थ को प्राय: समझा नहीं गया है और उसे विकृत भी किया गया है | इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि अहिंसक व्यक्ति को आक्रांता की हिंसा के सामने घुटने टेक देने चाहिए | आक्रांता की हिंसा का जवाब हिंसा से न देते हुए, उसे उसकी नाजायज मांग को मानने से इंकार कर देना चाहिए चाहे इसमें उसे अपनी जान से भी हाथ धो देना पड़े | अ-प्रतिरोध का सही अर्थ यह है....

उसे हिंसा का जवाब हिंसा से नहीं देना है बल्कि अपने हाथ को उठने से रोकते हुए, आक्रांता की मांग को मानने से इंकार करके उसके आक्रमण को निष्प्रभावी बनाना है | दुनिया में मानव आचरण का यही एकमात्र सभ्य तरीका है | कोई और तरीका शस्त्रों की होड़ को बढ़ावा देगा – बीच-बीच में शांति के दौर भी आएंगे, पर उनके पीछे वास्तविक कारण होगा उच्चतर कोटि की हिंसा के लिए तैयारी करते-करते पैदा होने वाली थकान | उच्चतर हिंसा के बल पर स्थापित शांति अणुबम और उससे जुड़ी तमाम चीज़ों को जन्म देती है | यह अहिंसा और लोकतंत्र का पूर्णतम नकार है; वस्तुत: लोकतंत्र अहिंसा के बगैर चल नहीं सकता | *(हरि,30-3-1947, पृ.85-86)*

क्रूरता का जवाब क्रूरता से देना अपने नैतिक और बौद्धिक दिवालियापन को स्वीकार करना है और यह केवल एक दुष्चक्र को ही जन्म दे सकता है.... *(हरि, 1-6-1947, पृ. 174)*

प्रतिरोध के दोनों ही प्रकार हैं – निष्क्रिय प्रतिरोध तथा अहिंसक प्रतिरोध....लेकिन प्रतिरोध की बड़ी भारी कीमत चुकानी पड़ती है | यूरोप ने नजरथ के यीशु के बुद्धिमत्ता से युक्त दृढ़ एवं वीरतापूर्ण प्रतिरोध को, दुर्बल का

प्रतिरोध मानकर, उसका गलत अर्थ लगाया | जब मैंने पहली बार 'न्यू टेस्टामेंट' पढ़ा तो मुझे इसके चार अध्यायों में यीशु को जैसा चित्रित किया गया है, उनसे यीशु में किसी निष्क्रियता अथवा दुर्बलता के चिह्न दिखाई नहीं दिए | जब मैंने टाल्सटॉय का 'हारमनी ऑफ द गॉस्पल्स' तथा उसी विषय पर उनकी अन्य रचनाएं पढीं तो अर्थ और भी स्पष्ट हो गया | क्या यीशु को निष्क्रिय प्रतिरोधी मानने की भारी कीमत पश्चिम को नहीं चुकानी पड़ी है ? ईसाई जगत जिन युद्धों के लिए जिम्मेदार है, उनके सामने 'ओल्ड टेस्टामेंट' और अन्य ऐतिहासिक या अर्ध-ऐतिहासिक अभिलेखों में वर्णित युद्ध भी फीके पड़ जाते हैं | मैं जानता हूं कि मुझे अपनी बात में संशोधन करना पड़ सकता है, क्योंकि मुझे इतिहास – आधुनिक अथवा प्राचीन – का केवल सतही ज्ञान है | *(हरि, 7-12-1947, पृ. 453)*

मारते हुए मरने की अपेक्षा बिना मारे मृत्यु का वरण करना ज़्यादा वीरतापूर्ण है | मारना या मारते हुए मर जाना कोई बहुत ज़्यादा प्रशंसनीय बात नहीं है | लेकिन जो व्यक्ति शत्रु की इच्छा के आगे घुटने टेकने के बजाए उसके आगे अपनी गर्दन कर देता है, वह कहीं ज़्यादा उच्च कोटि के साहस का परिचय देता है | *(हरि, 21-4-1946, पृ. 95)*

अहिंसा का रास्ता

अहिंसा संसार के उन महान सिद्धांतों में से है जिसे दुनिया की कोई ताकत मिटा नहीं सकती | इसकी सच्चाई प्रमाणित करने के प्रयास में मेरे जैसे हजारों लोग मर जाएं, पर अहिंसा कभी नहीं मरेगी | और, अहिंसा का सिद्धांत उस पर आस्था रखकर उसके लिए बलि हो जाने वाले व्यक्तियों द्वारा ही प्रचारित हो सकता है | *(हरि, 17-5-1946, पृ. 140)*

अहिंसा उच्चतम आदर्श है | यह वीरों के लिए है, कायरों के लिए कदापि नहीं | औरों की बलि से लाभ उठाना और इस भ्रम में रहना कि हम बड़े धार्मिक और अहिंसक हैं, केवल अपने को धोखा देना है | *(हरि, 9-6-1946, पृ. 172)*

आपके पास अहिंसा की तलवार हो तो दुनिया की कोई शक्ति आपको अपनी अधीनता में नहीं ले सकती | यह विजेता और विजित, दोनों का उदात्तीकरण करती है | *(वही, पृ. 174)*

इस समय सारी दुनिया में हिंसा की जो लहर आई हुई है, उसका सही कारण यह है कि अभी तक वीर पुरुष की अपराजेय अहिंसा की तकनीक को पूरी तरह खोजा नहीं गया है | अहिंसक ऊर्जा का एक औंस भी कभी बेकार नहीं जाता | *(हरि, 11-1-1948, पृ. 504)*

मैं यह नहीं कहता कि 'भारत पर आक्रमण करने वाले लुटेरों, चोरों या राष्ट्रों से निपटने के लिए हिंसा का सहारा मत लो |' लेकिन इसमें अच्छी तरह कामयाब होने के लिए हमें अपने ऊपर संयम रखना सीखना चाहिए | जरा-

जरा-सी बात पर पिस्तौल उठा लेना मजबूती नहीं, बल्कि कमजोरी की निशानी है | आपसी घूंसेबाजी हिंसा का नहीं, बल्कि नामर्दगी का अभ्यास है |*(यंग, 29-5-1924, पृ. 176)*

यद्यपि हर प्रकार की हिंसा बुरी है और सिद्धांतत: उसकी निंदा की जानी चाहिए पर अहिंसा में विश्वास करने वाले व्यक्ति को आक्रामक और रक्षक के बीच भेद करने की अनुमति है, बल्कि यह उसका कर्तव्य भी है | ऐसा करने के उपरांत उसे अहिंसक तरीके से रक्षक का पक्ष लेना चाहिए अर्थात उसकी रक्षा करने में अपनी जान दे देनी चाहिए | उसके बीच में पड़ने से संभवत: द्वंद्व की स्थिति जल्दी समाप्त हो जाएगी और यह भी हो सकता है कि लड़ाकू पक्षों के बीच शांति स्थापित हो जाए | *(हरि, 21-10-1939, पृ. 309)*

मेरी अहिंसा तरह-तरह की हिंसाओं – रक्षक हिंसा और आक्रामक हिंसा – के बीच भेद मानती है | यह सही है कि दीर्घ काल में यह भेद मिट जाता है, पर आरंभिक अच्छाई फिर भी कायम रहती है | अहिंसक व्यक्ति, समय आने पर, यह जरूर कहेगा कि किसका पक्ष न्यायोचित है और किसका नहीं | इसीलिए मैंने अबीसीनियाइयों, स्पेनियों, चैकों, चीनियों और पोलैंडवासियों की सफलता की कामना की थी, हालांकि मेरी अभिलाषा थी कि इनमें से प्रत्येक को अहिंसक प्रतिरोध का आश्रय लेना चाहिए था | *(हरि, 9-12-1939, पृ. 371)*

यदि युद्ध स्वयं एक अनैतिक कृत्य है तो यह नैतिक समर्थन या आशीर्वाद के योग्य कैसे माना जा सकता है ? मैं सभी प्रकार के युद्धों को पूरी तरह गलत मानता हूं | लेकिन हम दो युद्धरता पक्षों के इरादों की छानबीन करें तो संभवत: यह पाएंगे कि उनमें से एक सही है और दूसरा गलत | उदाहरण के लिए, यदि 'अ' देश 'ब' देश पर कब्जा करना चाहता है तो स्पष्टतया यह 'ब' देश पर अन्याय है | दोनों देश सशस्त्र संघर्ष करेंगे | मैं हिंसक संघर्ष में विश्वास नहीं करता, फिर भी 'ब' देश, जिसका पक्ष न्यायोचित है, मेरी नैतिक सहायता और आशीर्वाद का पात्र होगा | *(हरि, 18-8-1940, पृ. 250)*

यदि आपमें अहिंसा के मार्ग पर चलने की बहादुरी नहीं है तो आप घूंसे का जवाब घूंसे से दे सकते हैं | लेकिन हिंसा के प्रयोग की भी एक नैतिक संहिता है | अन्यथा, हिंसा की लपटें उन्हीं को जलाकर राख कर देंगी जो उन्हें सुलगाएंगे | मुझे परवाह नहीं अगर वे सभी नष्ट हो जाएं | पर मैं भारत की आज़ादी को विनष्ट होते नहीं देख सकता| *(हरि, 17-11-1946, पृ. 402)*

भारत का रास्ता

मैंने इस बात को स्वीकार किया है कि राष्ट्र को, यदि वह चाहे तो, वास्तविक हिंसा के जरिए भी अपनी आज़ादी हासिल करने का अधिकार है | बस, यही होगा कि उस सूरत में भारत मेरे प्रेम की भूमि नहीं रह जाएगा, हालांकि वह मेरे जन्म का देश तो फिर भी रहेगा | यह स्थिति वैसे ही होगी जैसी कि यदि मेरी मां पथभ्रष्ट हो जाए तो फिर वह मेरे गौरव की पात्र नहीं रह जाएगी | *(यंग, 20-11-1924, पृ. 382)*

जब भारत स्वावलंबी, आत्मनिर्भर, और प्रलोभनों तथा शोषण से सर्वथा मुक्त हो जाएगा तो पश्चिम या पूर्व की कोई शक्ति लालच की नजरों से उसे नहीं देख सकेगी और वह महंगे हथियारों के बिना ही सुरक्षित अनुभव करने लगेगा | उसकी आंतरिक अर्थव्यवस्था किसी आक्रमण के खिलाफ मजबूत-से-मजबूत दीवार का काम देगी | *(यंग, 2-7-1931, पृ. 161)*

अहिंसक प्रतिरोध

इतिहास में ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता कि किसी राष्ट्र ने अहिंसक प्रतिरोध को अपनाया हो | यदि हिटलर मेरी पीड़ा से अप्रभावित रहता है तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता | क्योंकि इससे मेरा कुछ नहीं जाता | मेरी दृष्टि में, रक्षणीय वस्तु केवल मनुष्य का आत्मसम्मान है | और उसके लिए हिटलर की क्या, किसी की कोई आवश्यकता नहीं है | पर अहिंसा का पुजारी होने के नाते मेरे लिए उसकी संभावनाओं को सीमित करना उचित नहीं होगा | अब तक हिटलर और उस जैसी मनोवृत्ति के लोगों ने अपने एक जैसे अनुभव के बल पर यह विश्वास दृढ़ किया है कि मनुष्य ताकत के आगे घुटने टेकते हैं | यदि उनके सामने निहत्थे स्त्री, पुरुष और बच्चे, अपने मन में कोई कटुता पैदा किए बगैर, अहिंसक प्रतिरोध करें तो यह उनके लिए अनूठा अनुभव होगा | यह कौन कह सकता है कि उच्चतर और सूक्ष्मतर शक्तियों के प्रति अनुक्रिया करना हिटलर और उन जैसे लोगों की प्रकृति में नहीं है ? उनमें भी वही आत्मा है जो मेरे अंदर है....

मुझे इस आह्वान का उत्तर देना ही होगा | मुझे अपने देशवासियों को अपना संदेश सुनाना ही होगा | अपनी बात लोगों तक न पहुंचा सकने की लज्जा ने मेरे अंदर बड़ी गहरी जड़ें जमा ली हैं | जो प्रकाश मुझे मिला है, मुझे कम-से-कम उसके अनुसार कार्रवाई तो करनी ही चाहिए |

....जब मैंने सत्याग्रह की शुरुआत की तो मेरा कोई सहचर नहीं था | हम तेरह हज़ार स्त्री, पुरुष और बच्चे एक समूचे राष्ट्र के विरोध में खड़े हो गए थे जो हम सबको नष्ट कर देने में समर्थ था | मुझे नहीं मालूम था कि मेरी बात कौन सुनेगा | मेरे सामने तो जैसे एक बिजली कौंध गई थी | सभी तेरह हज़ार व्यक्तियों ने संघर्ष नहीं किया | बहुत-से पीछे रह गए | किंतु राष्ट्र के सम्मान की रक्षा हो गई | दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह ने नये इतिहास की रचना की....

मेरा उद्देश्य पूरा हो जाएगा, यदि मैं इन लोगों के हृदयों तक पहुंचकर उन्हें यह दिखा सकूं कि अगर उनकी अहिंसा उन्हें हथियारों को धारण करने और उनका इस्तेमाल करने की क्षमता के मुकाबले ज़्यादा बहादुर नहीं बना सकती तो वे ऐसी अहिंसा – जो कायरता का ही दूसरा नाम होगी – का त्याग कर दें और अपने हथियार फिर उठा लें जिसके लिए उन्हें कोई और नहीं बल्कि उनकी अपनी इच्छा-शक्ति ही रोक रही होगी |

मैं कमजोर का नहीं बल्कि वीर इंसान का हथियार....पेश कर रहा हूं | इससे बढ़कर वीरता कोई और नहीं है कि आदमी बड़ी-से-बड़ी दुनियावी ताकत के सामने घुटने टेकने से दृढ़तापूर्वक इंकार कर दे और ऐसा करते समय उसके मन में कोई कटुता न हो और इस बात का पक्का भरोसा हो कि केवल आत्मा ही अमर है, बाकी कुछ नहीं| *(हरि, 15-10-1938, पृ. 290-91)*

बुनियादी पूर्वधारणाएं

हम अपने परिवार या कुल में जिस तरह बरताव करते हैं, उसी की उपमा देकर मैंने अपना तर्क आगे बढ़ाया है | मानव जाति एक बड़ा परिवार ही तो है | यदि प्रेम की भावना पर्याप्त गहन हो, तो यह सारी मानव जाति पर लागू होनी चाहिए | यदि व्यक्तियों ने बर्बर लोगों के साथ व्यवहार में सफलता पाई है तो व्यक्तियों के समूह बर्बरों के समूह पर कामयाब क्यों नहीं हो सकते ? यदि हम अंग्रेजों के साथ कामयाब हो सकते हैं तो यह विश्वास करना आस्था का विस्तार भर है कि हम उनसे कम सभ्य और कम उदारहृदय राष्ट्रों के साथ भी कामयाब हो सकेंगे | मैं दृढ़तापूर्वक कहता हूं कि यदि हम विशुद्ध अहिंसक प्रयास से अंग्रेजों पर कामयाबी हासिल कर सकते हैं तो हम अन्य लोगों पर भी जरूर हासिल कर सकते हैं | यह उसी तरह की बात है कि अगर हम अहिंसा से आज़ादी हासिल कर सकते हैं तो अहिंसा से उसकी रक्षा भी कर सकेंगे | यदि हमारे अंदर यह आस्था पैदा नहीं होती तो हमारी अहिंसा केवल तात्कालिक है; वह मिलावट है, खरा सोना नहीं |

अव्वल तो हमें संदिग्ध अहिंसा से आज़ादी कभी हासिल होगी नहीं; और दूसरे, अगर मिल भी गई तो हम आक्रांताओं से उसकी रक्षा करने में अपने को कतई तैयार नहीं पाएंगे | अगर हमें इसमें संदेह है कि अहिंसा अंतत: सफल होगी तो यह कहीं बेहतर होगा कि कांग्रेस अपनी नीति बदल दे और राष्ट्र को हथियारों का प्रशिक्षण देना शुरू कर दे | यह बात कांग्रेस जैसी जनाधारित संस्था की गरिमा के अनुकूल नहीं होगी कि अपना मन पक्का किए बगैर वह लोगों को एक झूठे विश्वास की दिशा में प्रवृत्त कर दे | यह कायरता का काम होगा....यदि हम अहिंसा पर अपनी आस्था को त्याग दें तो इसका अनिवार्य अर्थ यह नहीं है कि हम हिंसक हो गए | इसका अर्थ सिर्फ यह होगा कि हमने मुखौटा उतार फेंका और अपने सहज रूप में आ गए | यह पूर्णत: गरिमायुक्त आचरण होगा| *(हरि, 22-10-1938, पृ. 298)*

कोई राष्ट्र या व्यक्ति-समूह कितना ही छोटा हो, वह समूची दुनिया की शस्त्र-शक्ति से अपने सम्मान और स्वाभिमान की रक्षा करने में समर्थ हो सकता है बशर्ते कि उसका चित्त स्थिर हो और संकल्प दृढ़ हो | निहत्थे की अतुल शक्ति और खूबी इसी में है | यही अहिंसक रक्षा है जो किसी भी स्थिति में पराजय को न जानती है, न उसे स्वीकार करती है | इसलिए जिस राष्ट्र अथवा व्यक्ति-समूह ने अहिंसा को अपनी अंतिम नीति मान लिया है, उसे अणु बम भी अपनी दासता के लिए मजबूर नहीं कर सकता | *(हरि, 18-8-1946, पृ. 265)*

कांग्रेस ने यह घोषणा की है कि वह भारत की आज़ादी के संघर्ष को अहिंसक तरीके से चलाएगी | लेकिन उसने अभी यह निर्णय नहीं लिया है कि वह किसी विदेशी आक्रांता से उस आज़ादी की रक्षा के लिए भी इसी तरीके को अपनाएगी |

मेरी दृष्टि में तो यह स्वत: स्पष्ट सत्य है कि यदि सभी को – शारीरिक रूप से दुर्बलतम, अपंग और पंगु को भी – आज़ादी में बराबर की भागीदारी दी जानी है तो उसकी रक्षा में भी उन सभी को योगदान करना चाहिए | मेरे जैसे साधारण बुद्धि के मनुष्य के लिए यह समझ पाना असंभव है कि अगर हथियारों का सहारा लिया गया तो यह कैसे संभव होगा | इसलिए मैं अहिंसा यानी सत्याग्रह अथवा आत्मा के बल का कट्टर हिमायती हूं और रहूंगा | इसमें शारीरिक असमर्थता बाधक नहीं बनती और कमजोर स्त्री तथा बच्चा तक बराबरी का भागीदार बनते हुए शक्तिशाली-से-शक्तिशाली हथियारों से लैस प्रबल शत्रु का मुकाबला कर सकता है | *(हरि, 21-4-1946, पृ. 94)*

जिसे श्रेय दिया जाना चाहिए, उसे उससे वंचित करने से मेरी अहिंसा मुझे रोकती है, भले ही श्रेय का पात्र हिंसा में विश्वास करने वाला व्यक्ति हो | इसीलिए यद्यपि मैंने सुभाषचंद्र बोस के हिंसा में विश्वास और उनके परिणामी कार्यों को स्वीकार नहीं किया, पर मैनें उनकी देशभक्ति, उपाय-कौशल और वीरता के लिए उनकी खुलकर प्रशंसा करने में संकोच नहीं किया है | इसी प्रकार, यद्यपि मैंने कश्मीरियों की सहायता के लिए संघ सरकार द्वारा हथियारों के इस्तेमाल का अनुमोदन नहीं किया और यद्यपि मैं शेख अब्दुल्ला द्वारा हथियार उठाए जाने से सहमत नहीं था, पर मैं उनके उपाय-कौशल और प्रशंसनीय आचरण के लिए उनकी तारीफ करने से अपने को नहीं रोक सकता, विशेषकर यदि भारत के सैनिकों और कश्मीरी रक्षकों, दोनों का एक-एक आदमी वीरतापूर्वक मौत को गले लगा ले | मैं जानता हूं कि वे यदि ऐसा कर पाए तो शायद भारत की तस्वीर ही बदल जाएगी | लेकिन उनके इरादे और कार्रवाई विशुद्ध अहिंसक होती तो मैं 'शायद' शब्द का इस्तेमाल न करता, क्योंकि तब मैं आश्वस्त होता कि इससे न केवल भारत की तस्वीर बदल जाएगी बल्कि संघ सरकार का मंत्रिमंडल, बल्कि शायद पाक मंत्रिमंडल भी, कश्मीर की रक्षा करने वालों का पक्षधर बन जाएगा |

मैं जिस अहिंसक विधि का सुझाव देना चाहता हूं, वह यह है कि रक्षकों को हथियारों की कोई सहायता न दी जाए | संघ सरकार उन्हें बेहिचक अहिंसक सहायता दे | लेकिन कश्मीरी रक्षक, उन्हें भारत से अहिंसक मदद मिले या न मिले, विशाल संख्या में जुटकर हमलावरों या अनुशासित सेना तक की शक्ति का प्रतिरोध करें | यदि कश्मीरी रक्षक अपने मन में हमलावरों के प्रति कोई दुर्भावना या क्रोध लाए बगैर और किसी प्रकार के हथियार, यहां तक कि अपनी मुट्ठी का भी इस्तेमाल किए बगैर अपने मोर्चे पर डटे रहकर प्राणोत्सर्ग कर दें तो यह ऐसी बहादुरी होगी जिसकी मिसाल इतिहास में नहीं मिलेगी | तब, कश्मीर एक ऐसी पवित्र भूमि बन जाएगी जिसकी सुगंध केवल भारत ही नहीं अपितु सारी दुनिया में फैल जाएगी | *(हरि, 16-11-1947, पृ. 413)*

30. भारत के सामने चुनने के लिए मार्ग

मैं भारत से अहिंसा को अपनाने का आग्रह इसलिए नहीं कर रहा कि वह दुर्बल है | मैं उसे अहिंसा का आचरण करने के लिए इस कारण कह रहा हूं कि मुझे उसकी मजबूती और ताकत का अहसास है | भारत को अपनी मजबूती को पहचानने के लिए हथियारों के प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं है | हमें इसकी आवश्यकता इसलिए प्रतीत होती है कि हम अपने को निरा मांस का लोथड़ा मान बैठे हैं | *(यंग, 11-8-1920, पृ. 3)*

भारत को अपना मार्ग चुनना है | वह चाहे तो लड़ाई का रास्ता चुन सकता है और आज जहां है, उससे भी गहरे पतन के गर्त में डूब सकता है....यदि भारत युद्ध के द्वारा अपनी आज़ादी हासिल कर सके तो उसकी हालत फ्रांस या ब्रिटेन से बेहतर नहीं रहेगी बल्कि बदतर ही होगी....

शांति का मार्ग

लेकिन शांति का मार्ग उसके लिए खुला है | यदि उसमें धैर्य हो तो उसका आज़ाद होना सुनिश्चित है | यद्यपि अपनी अधीर प्रकृति के कारण हमें शांति का मार्ग लंबा प्रतीत हो सकता है, पर वह होगा वस्तुत: सबसे छोटा ही | शांति के मार्ग से आंतरिक संवृद्धि और स्थिरता भी सुनिश्चित होती है | हम इस रास्ते को अपनाने से इसलिए इंकार कर देते हैं क्योंकि हम इस वहम के शिकार होते हैं कि इससे हमें शासक द्वारा हमारे ऊपर आरोपित इच्छा के वशवर्ती होना पड़ेगा | लेकिन जैसे ही हमें यह बात समझ में आ जाती है कि आरोपण केवल तथाकथित है, और हम अपने जीवन अथवा संपत्ति के नाश के लिए अप्रस्तुत होने के कारण, स्वयं उस आरोपण के लिए अंशत: उत्तरदायी हैं, हमें सिर्फ यह करना जरूरी रह जाता है कि निष्क्रिय समर्थन की अपनी नकारात्मक प्रवृत्ति में परिवर्तन ले आएं | इस परिवर्तन से जो कष्ट होगा, वह युद्ध का मार्ग अपनाने के परिणामस्वरूप निश्चित रूप से होने वाली शारीरिक पीड़ा तथा नैतिक हानि की तुलना में नगण्य होगा | एक बात और है कि युद्ध की पीड़ा दोनों पक्षों को हानि पहुंचाती है | शांति के मार्ग का अनुसरण करने से होने वाली पीड़ा दोनों पक्षों के लिए लाभप्रद होती है | वह प्रसव पीड़ा की तरह सुखद होती है....

शांति का मार्ग सत्य का मार्ग है | सत्यता शांतिमयता से भी अधिक महत्वपूर्ण है | वस्तुत: झूठ हिंसा का जनक है | सत्यनिष्ठ मनुष्य अधिक समय तक हिंसक नहीं रह सकता | उसे सत्य की शोध के दौरान यह आभास हो जाएगा कि उसे हिंसा का आश्रय लेने की आवश्यकता नहीं है और उसे यह भी ज्ञात हो जाएगा कि जब तक उसके अंदर हिंसा का लेश भी रहेगा, वह सत्य की शोध में सफल नहीं हो सकेगा | *(यंग, 20-5-1926, पृ. 154)*

अहिंसा को समझना इतना आसान नहीं है और उसे व्यवहार में लाना और भी कठिन है, क्योंकि हम दुर्बल हैं | हमें भक्तिभाव से और विनम्रतापूर्वक कार्य करना चाहिए तथा निरंतर ईश्वर से प्रार्थना करते रहना चाहिए कि वह हमारे ज्ञानचक्षुओं को खोले | साथ ही, हमें प्रतिदिन ईश्वर से मिले आलोक के अनुसार कार्य करना चाहिए |

इसलिए आज तक शांतिप्रेमी और शांतिसंवर्धक के रूप में मेरा कर्तव्य यह है कि अपनी स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए छेड़े गए अभियान में अहिंसा के प्रति अटल आस्था बनाए रखूं | यदि भारत इस मार्ग पर चलकर स्वतंत्रता प्राप्त कर सका तो यह उसका विश्व-शांति के लिए सबसे बड़ा योगदान होगा | *(यंग, 7-2-1929, पृ. 46)*

पश्चिम की नकल नहीं

आजकल यह मानकर चलने का फैशन है कि जो कुछ अमरीका और इंग्लैंड कर रहे हैं, वह हमारे लिए भी अच्छा है....युद्ध केवल पैसे का और विनाश के हथियारों के आविष्कार के लिए साधन-संपन्नता का मामला बन गया है | अब उसका वास्ता व्यक्तिगत वीरता और सहनशक्ति से नहीं रहा | पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों को विनाश के घेरे में लेने के लिए अब मुझे एक बटन दबाकर क्षण भर में उनके ऊपर विष की वर्षा कर देना पर्याप्त है |

क्या हम अपनी रक्षा करने की इस विधि की नकल करना चाहते हैं ? अगर हम चाहें भी, तो क्या हमारी वित्तीय क्षमता इतनी है ? हम निरंतर बढ़ते सैनिक व्यय की शिकायत करते हैं | लेकिन अगर हमने अमरीका या इंग्लैंड की नकल की तो हमें अपने रक्षा-व्यय-भार में दस गुनी वृद्धि करनी होगी....

राष्ट्र को हिंसा की सहायता से अहिंसा के मार्ग पर नहीं चलाया जा सकता | वह उसके भीतर से पैदा होनी चाहिए | इसलिए हमारे वास्ते विचारणीय प्रश्न यह है कि 'हमारी तात्कालिक आकांक्षाएं क्या हैं ?' क्या हम पहले पश्चिमी राष्ट्रों की नकल करके, कष्ट पाने के उपरांत, अस्पष्ट और दूर भविष्य में, अपने कदम लौटाना चाहते हैं ? या हम किसी मौलिक मार्ग पर चलना अथवा, मेरी दृष्टि में, अपने प्रधानतया शांतिपूर्ण मार्ग पर चलते रहकर उसके माध्यम से अपनी आज़ादी जीतना और उसे कायम रखना चाहते हैं ?

इसमें कायरता के साथ समझौता करने का कोई प्रश्न नहीं है | या तो हम विनाश का प्रशिक्षण लेकर शस्त्रसज्जित हो जाएं – भले ही यह विनाश आत्मरक्षार्थ हो – और इस प्रक्रिया में पीड़ा भोगने का प्रशिक्षण भी ले लें, या राष्ट्र की रक्षा अथवा उसे पराधीनता से मुक्ति दिलाने के लिए केवल पीड़ा भोगने के लिए स्वयं को तैयार कर लें | दोनों ही मामलों में, वीरता के बिना काम नहीं चलेगा | हिंसक उपाय में व्यक्तिगत वीरता का उतना महत्व नहीं है जितना कि अहिंसक उपाय में | अहिंसक उपाय को अपनाने पर भी हम शायद पूरी तरह हिंसा का त्याग नहीं कर पाएंगे | लेकिन तब हिंसा अहिंसा की वशवर्ती होगी और राष्ट्र के जीवन में उसका महत्व निरंतर घटता जाएगा |

इस समय कम-से-कम विचार और वाणी में, राष्ट्रीय धर्म अहिंसा है, लेकिन ऐसा लगता है कि हम शनैः- शनैः हिंसा की ओर प्रवृत्त हो रहे हैं | सारे वातावरण में अधीरता व्याप्त है | हमारी कमजोरी हमें हिंसा पर उतारू होने से रोक देती है | आवश्यकता इस बात की है कि हम शक्तिशाली बनें और फिर जान-बूझकर हिंसा का त्याग करें | इसके लिए कल्पनाशक्ति की तथा दुनिया के बहाव के गहन अध्ययन की जरूरत है | आज पश्चिम की ऊपरी तड़क-भड़क हमें चकाचौंध कर रही है और हम उस घुमेरी नृत्य को ही प्रगति मान बैठे हैं जो हमें रात-दिन

अपने मोहपाश में बांधे हुए है | हम यह देखना ही नहीं चाहते कि यह हमें निश्चित रूप से सर्वनाश की ओर ले जा रहा है | सबसे बढ़कर, यह समझना जरूरी है कि पश्चिमी राष्ट्रों से उनकी शर्तों पर प्रतियोगिता करना आत्महत्या के अलावा और कुछ नहीं है | अगर हम यह समझ लें कि हिंसा की आभासी प्रबलता के बावजूद, विश्व का नियमन नैतिक बल से होता है, तो हमें अहिंसा की असीम संभावनाओं पर पूरा भरोसा रखते हुए अपने आपको उसका प्रशिक्षण देना चाहिए | प्रत्येक व्यक्ति यह स्वीकार करता है कि 1922 में यदि वातावरण को अहिंसक बनाए रखा गया होता तो हमें अपना लक्ष्य पूरी तरह प्राप्त हो गया होता | फिर भी, हम अहिंसा का सामर्थ्य का जो आश्चर्यजनक प्रदर्शन – भले ही वह अपरिष्कृत था – कर सके, उससे स्वराज की मांग को ऐसा बल मिला जो आज तक कायम है | सत्याग्रह के शुरू होने से पहले राष्ट्र जिस पक्षाघाती भय से त्रस्त था, वह सदा के लिए दूर हो गया है | इसलिए, मेरी राय में, अहिंसा एक धीर प्रशिक्षण है | यदि हमें जीवित रहना है और विश्व-शांति में महत्वपूर्ण योगदान करना है तो हमें दृढ़ता के साथ प्रधानतया शांति का मार्ग चुन लेना चाहिए | *(यंग, 22-8-1929, पृ. 276-77)*

युद्ध का विकल्प

मैं लगभग पैंतीस साल के अखंड राजनीतिक अनुभव के बाद, अपने अंतरतम में यह अनुभव करता हूं कि दुनिया रक्तपात से बुरी तरह तंग आ चुकी है | वह मुक्ति का कोई मार्ग चाहती है और मैं यह सोच-सोचकर खुश हो लेता हूं कि इस क्षुधित संसार को मुक्ति का मार्ग दिखाने का श्रेय शायद भारत की प्राचीन भूमि को ही मिले |

इसलिए मुझे भारत के महान संघर्ष में उसका हार्दिक सहयोग करने के लिए विश्व के महान राष्ट्रों को आमंत्रित करते हुए किसी प्रकार का कोई संकोच अनुभव नहीं होता | *(इंके, पृ. 209)*

मैं पूरी विनम्रता के साथ यह कहना चाहता हूं कि यदि भारत सत्य और अहिंसा के जरिए अपना लक्ष्य प्राप्त कर लेता है तो विश्व आज जिस शांति का भूखा है, उसमें उसका योगदान काफी महत्वपूर्ण होगा और, इस रूप में, वह उन राष्ट्रों को बदले में कुछ दे भी सकेगा जो आज खुलकर उसकी सहायता कर रहे हैं | *(यंग, 12-3-1931, पृ. 31)*

यदि स्वतंत्रता से उद्दीप्त होकर भारत उस धर्म-पंथ का (अहिंसा का तथा भौतिक बल पर अ-निर्भरता का) निर्वाह कर सके तो दुनिया की कोई ताकत उस पर कभी अपनी कुदृष्टि नहीं डाल सकेगी | यह भारत की सर्वोच्च महिमा और विश्व की प्रगति के लिए उसकी अमूल्य देन होगी | *(हरि, 14-4-1946, पृ. 90)*

वीर की अहिंसा

हमारी अहिंसा ने हमें स्वतंत्रता के द्वार पर ला खड़ा किया है | क्या हम इस द्वार में प्रवेश करने के उपरांत अहिंसा का त्याग कर देंगे ? मुझे तो इस बात का दृढ़ विश्वास है कि जिस प्रकार अहिंसा ने हमें आज़ादी दिलाने में

प्रभावपूर्ण भूमिका निभाई है, उसी प्रकार यह विदेशी आक्रमण और आंतरिक अव्यवस्था का मुकाबला करने में भी एकदम पक्का और कारगर उपाय सिद्ध होगी |

भारत यदि वस्तुत: अहिंसक रहे तो उसे किसी विदेशी ताकत से डरने की जरूरत नहीं होगी, न उसे अपनी रक्षा के लिए ब्रिटेन की नौसेना या वायुसेना का मुंह ताकना होगा | मैं यह जानता हूं कि अभी तक हम वीर की अहिंसा को हासिल नहीं कर पाए हैं | *(हरि, 21-4-1946, पृ. 95)*

मैं यह स्पष्ट रूप से देख रहा हूं कि यदि भारत अहिंसक न रहा तो यह उसके तथा विश्व के लिए बुरी बात होगी | इससे आज़ादी हमारे हाथ से निकल जाएगी | हो सकता है कि हम सैनिक तानाशाही के शिकंजे में फंस जाएं | मैं दिन-रात यह विचार करता रहता हूं कि वीर की अहिंसा का विकास किस तरह किया जाए |

मैंने एशियाई सम्मेलन में कहा था कि मुझे आशा है कि भारत की अहिंसा की सुगंध सारे विश्व को सुवासित कर देगी | मैं यह जानने को उत्सुक हूं कि क्या मेरी यह आशा पूरी होगी ? *(हरि, 27-7-1947, पृ. 253)*

भारत का कर्तव्य

भारत अब स्वतंत्र है और वास्तविकता मेरे सामने स्पष्ट होकर आ गई है | अब जब कि पराधीनता का बोझ हमारे ऊपर से उतर गया है, अच्छाई की तमाम ताकतें एक ऐसे देश के निर्माण में लगा देनी चाहिए जिसने मानव संघर्षों को – ये चाहे दो राज्यों के बीच हों या एक ही राज्य के दो गुटों के बीच – सुलझाने के परिचित मार्ग का त्याग किया है | मुझे अब भी यह विश्वास है कि भारत समयोचित गरिमा का प्रदर्शन करेगा और दुनिया को दिखा देगा कि दो नये राज्यों का जन्म शेष मानवता के लिए अभिशाप नहीं अपितु वरदान है | स्वतंत्र भारत का यह कर्तव्य है कि यदि वह अपनी स्वतंत्रता को मूल्यवान समझता है तो सामूहिक संघर्षों को सुलझाने के लिए अहिंसा के शस्त्र को पूर्णता प्रदान करे | *(हरि, 31-8-1947, पृ. 302)*

अहिंसा ने चालीस करोड़ लोगों के शक्तिशाली राष्ट्र को बिना रक्तपात के आज़ादी दिलाई है | भारत की आज़ादी के परिणामस्वरूप ही बर्मा और लंका को भी आज़ादी हासिल हो सकी है | जिस राष्ट्र ने हथियारों की सहायता के बिना आज़ादी हासिल की है, वह बिना हथियारों के उसकी रक्षा करने में भी समर्थ सिद्ध होना चाहिए | यह इस तथ्य के बावजूद है कि भारत के पास एक थल सेना, निर्माणाधीन नौ सेना और एक वायु सेना है, और इनका आगे विकास किया जा रहा है | मैं समझता हूं कि यदि भारत अपनी अहिंसक शक्ति का विकास नहीं करता तो उसने जो कुछ हासिल किया है, उसका उसके और दुनिया के लिए कोई महत्व नहीं है | भारत का सैन्यीकरण स्वयं उसका और सारी दुनिया का विनाश कर देगा | *(हरि, 14-12-1947, पृ. 471)*

31. भारत और अहिंसक मार्ग

मैं यह मानता हूं कि कमजोर से भिन्न, वीर और बलशाली की अहिंसा का प्रचार करने में मैं अक्षम सिद्ध हुआ हूं, लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मैं यह नहीं जानता कि इस अमूल्य गुण का विकास किस प्रकार किया जाए....बजाए यह कहने के कि बलशाली की अहिंसा की सीख देने के लिए कोई कार्यक्रम लागू ही नहीं किया गया, यह कहना ज़्यादा सही होगा (यदि यह तथ्य है तो) कि भारत अभी यह पाठ पढ़ने के लिए तैयार नहीं है | यह कहना पूर्णत: उचित होगा कि....बलशाली व्यक्ति की अहिंसा का कार्यक्रम उतना आकर्षक नहीं है जितना आकर्षक कमजोर की अहिंसा का कार्यक्रम सिद्ध हुआ है | *(हरि, 29-6-1947, पृ. 209-10)*

मात्र निष्क्रिय प्रतिरोध

अहिंसा से भिन्न, निष्क्रिय प्रतिरोध में लोगों के हृदय-परिवर्तन की शक्ति नहीं है....विष को अमृत में बदलने के लिए क्या करना होगा ? क्या ऐसा करना संभव भी है ? मैं जानता हूं कि यह संभव है, और मैं समझता हूं कि मुझे इसका तरीका भी मालूम है | लेकिन जहां भारतीय मानस निष्क्रिय प्रतिरोध की कोशिश करने के लिए तैयार है, वहीं वह अहिंसा का पाठ हृदयंगम करने के लिए तैयार नहीं है, और शायद यही वह चीज़ है जिससे विष अमृत में बदल सकता है |

बहुत-से लोग यह स्वीकार करते हैं कि रास्ता तो यही है, पर उनमें इस स्वर्णिम पथ पर चलने का साहस नहीं है | मैं पूरा जोर देकर यह घोषणा करना चाहता हूं कि अहिंसा असफल नहीं हुई है, वह कभी असफल नहीं होती | लोग ही उसके अनुरूप सिद्ध होने में असफल हुए हैं |

मुझसे यह कहा जाए कि मैं अहिंसा की विधि का प्रचार करना नहीं जानता, तो मैं इसका बुरा नहीं मानूंगा | मेरे आलोचकों ने तो यहां तक आरोप लगाया है कि मेरे अपने अंदर ही अहिंसा नहीं है | ईश्वर ही लोगों के हृदयों की बात जानता है | *(हरि, 20-7-1947, पृ. 243)*

मैं एक बात स्पष्ट कर दूं | मैंने साफ-साफ और पूरी तरह यह स्वीकार किया है कि पिछले तीस सालों से हम जो आचरण करते रहे हैं, वह अहिंसक प्रतिरोध नहीं था बल्कि निष्क्रिय प्रतिरोध था, जो कमजोर लोगों का साधन है, क्योंकि उनमें सशस्त्र प्रतिरोध करने की क्षमता अथवा इच्छा नहीं होती |

अगर हम अहिंसक प्रतिरोध का इस्तेमाल करना जानते होते जो सिर्फ मजबूत लोगों के ही बस की बात है, तो हम दो टुकड़ों में बंटे भारत के बजाए दुनिया के सामने आज़ाद भारत की बिलकुल दूसरी ही तस्वीर पेश कर सकते थे | आज ये दो टुकड़े आपसी संघर्ष में इस कदर व्यस्त हैं कि इन्हें उन लाखों भूखे-नंगों के भोजन और वस्त्र की व्यवस्था पर शांत मन से विचार करने का समय ही नहीं है जो किसी धर्म को नहीं जानते और जिनका भगवान जीवन-रक्षा के लिए आवश्यक वस्तुओं के रूप में ही उनके सामने प्रकट होता है | *(हरि, 27-7-1947, पृ. 251)*

....यह सबलहृदय की अहिंसा नहीं बल्कि दुर्बलहृदय की निष्क्रियता ही थी | सबलहृदय अहिंसक तो आपसी हितों के टकराव की स्थिति में भी मानव एकता और भाईचारे की भावना का त्याग कभी न करता और अपने विरोधी पर जोर-जबर्दस्ती करने के बजाए उसके हृदय-परिवर्तन का प्रयास करता |

यदि भारत हिंसा के बल के उदात्तीकरण की विधि खोज सके....और उसे ऐसे रचनात्मक तथा शांतिपूर्ण तरीकों में बदल सके जिसमें हितों की भिन्नता को समाप्त किया जा सके तो यह बड़े सौभाग्य की बात होगी | *(हरि, 31-8-1947, पृ. 302)*

यह कहने का अधिकार किसी को नहीं है कि जो बात आज़ादी की लड़ाई में हासिल नहीं की जा सकी, वह कभी हासिल करना मुमकिन नहीं होगा | सच पूछा जाए तो अहिंसा की श्रेष्ठता के प्रदर्शन का वास्तविक अवसर तो आज उपस्थित हुआ है | माना कि हमारे लोग सार्वभौम सैन्यीकरण की भंवर में फंस गए हैं, पर यदि कुछ लोग भी अपने को इससे बाहर रख सकें तो उन्हें वीर की अहिंसा का उदाहरण प्रस्तुत करने का सौभाग्य प्राप्त होगा और उनकी गिनती भारत के प्रथम सेवकों में की जाएगी | इसे बुद्धि से सिद्ध नहीं किया जा सकता | इसलिए इसे जब तक अनुभव के द्वारा प्राप्त न किया जा सके, तब तक आस्था के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए | *(हरि, 1-2-1948, पृ. 6)*

पुलिस बल

मेरी पूरी जिंदगी का रवैया यह रहा है कि पुलिस से बचने की कोशिश न करूं और उसे अपने काम की ताक-झांक करने दूं; बात यह है कि मुझे गोपनीयता से हमेशा नफरत रही है और पुलिस की निगरानी के प्रति तटस्थ रहने के कारण मेरा जीवन और काम आसानी से चलता रहा है | इस तटस्थता और पुलिस के प्रति सदा शालीन व्यवहार करने के परिणामस्वरूप उनमें से कई का मौन हृदय-परिवर्तन भी हुआ है |

लेकिन मेरी तटस्थता एक बात है और वह मेरी निजी है | एक पद्धति के रूप में, पुलिस निगरानी बड़ी घटिया चीज़ है और अच्छी सरकार के लिए यह शोभाजनक नहीं है | यह पहले से ही कर के बोझ से दबे करदाता के ऊपर बेकार का भार है | क्योंकि हमें यह याद रखना चाहिए कि यह पूरा-का-पूरा असाधारण व्यय करोड़ों मेहनतकशों की जेबों से आता है | *(यंग, 16-5-1929, पृ. 159)*

अहिंसक राज्य में भी पुलिस बल रखना जरूरी हो सकता है | मैं मानता हूं कि यह मेरी अपूर्ण अहिंसा की निशानी है | मैंने जिस तरह सेना के विषय में कहा है, उस तरह पुलिस के बारे में यह कहने का साहस नहीं कर सकता कि हम पुलिस बल के बगैर काम चला सकते हैं | हां, मैं ऐसे राज्य की कल्पना अवश्य कर सकता हूं और करता हूं, जिसमें पुलिस की जरूरत नहीं होगी, लेकिन यह तो भविष्य ही बताएगा कि हम कभी ऐसा करने में कामयाब हो पाएंगे या नहीं |

मेरी कल्पना की पुलिस आज के पुलिस बल से बिलकुल भिन्न होगी | इसमें अहिंसा में विश्वास करने वाले लोग भरती किए जाएंगे | वे जनता के स्वामी नहीं बल्कि सेवक होंगे | लोग सहज रूप से उनकी सब प्रकार की सहायता करेंगे और परस्पर सहयोग से वे बढ़ते उपद्रवों पर आसानी से काबू पा सकेंगे |

पुलिस के पास किसी-न-किसी तरह के हथियार तो होंगे लेकिन उनके इस्तेमाल की कभी-कभार ही आवश्यकता पड़ेगी, अगर पड़ी तो | सच पूछा जाए तो पुलिसकर्मी सुधारक के रूप में काम करेंगे | पुलिस का काम मुख्यत: लुटेरों और डाकुओं तक सीमित होगा |

अहिंसक राज्य में श्रमिकों और पूंजीपतियों के बीच झगड़े और हड़तालें कभी-कभार ही होंगी, क्योंकि अहिंसक बहुमत का प्रभाव इतना अधिक होगा कि समाज के सभी प्रमुख वर्ग उसकी बात आदर के साथ मानेंगे | इसी प्रकार, सांप्रदायिक दंगों की भी कोई गुंजाइश नहीं रहेगी | *(हरि, 1-9-1940, पृ. 265)*

स्वराज में मुझे और आपको ऐसा पुलिस बल प्राप्त होगा जो अनुशासित और बुद्धिमान होगा | वह आंतरिक व्यवस्था सुनिश्चित करेगा और बाहरी हमलावरों से निपटेगा बशर्ते कि तब तक मैं या और कोई व्यक्ति इन दोनों के साथ निबटने का कोई बेहतर तरीका न खोज निकालें | *(हरि, 25-1-1942, पृ. 15)*

अपराध और दंड

अहिंसक तरीके के स्वाधीन भारत में अपराध तो होंगे, पर अपराधी नहीं होंगे | उन्हें दंड नहीं दिया जाएगा | अपराध भी किसी अन्य विकार की भांति एक रोग है जो वर्तमान सामाजिक प्रणाली से उत्पन्न होता है | इसलिए हत्या सहित सभी अपराधों को रोगों की श्रेणी में गिना जाएगा | ऐसा भारत कभी अस्तित्व में आएगा या नहीं, यह अलग बात है | *(हरि, 5-5-1946, पृ. 124)*

आज़ाद भारत में जेल कैसे होने चाहिए ? सभी अपराधियों को रोगी माना जाना चाहिए और जेलों को अस्पताल, जो इस प्रकार के रोगियों को इलाज और आरोग्यता प्रदान करने के लिए भरती करें | कोई व्यक्ति केवल मजा लेने के लिए अपराध नहीं करता | अपराध रोगी दिमाग की निशानी है | रोग-विशेष के कारणों का पता लगाकर उन्हें दूर किया जाना चाहिए |

जेल जब अस्पताल बनें तो उनके लिए आलीशान इमारतों की जरूरत नहीं पड़नी चाहिए | इतना खर्चा कोई देश नहीं उठा सकता, और भारत जैसा गरीब देश तो और भी नहीं | लेकिन जेल के कर्मचारी वर्ग का दृष्टिकोण अस्पताल के डाक्टरों और नर्सों जैसा होना चाहिए | कैदियों को ऐसा लगे कि कर्मचारी उनके मित्र हैं | वे उनको उनका मानसिक स्वास्थ्य पुन: प्राप्त करने में मदद देने के लिए हैं, उन्हें किसी तरह सताने के लिए नहीं | लोकप्रिय सरकारों को इसके लिए आवश्यक आदेश जारी करने होंगे, लेकिन इस बीच जेल का कर्मचारी वर्ग अपने प्रशासन का मानवीकरण करने की दिशा में कुछ-न-कुछ प्रगति कर ही सकता है |

कैदियों का कर्तव्य क्या है ? ....उन्हें आदर्श कैदियों की तरह व्यवहार करना चाहिए | उन्हें जेल का अनुशासन तोड़ने से बचना चाहिए | उन्हें वहां जो भी काम करने को दिया जाए, उसे दिल लगाकर करना चाहिए | मिसाल के तौर पर, जेल का खाना कैदी खुद बनाते हैं | उन्हें चावल, दाल और जो भी अनाज हों, उन्हें ठीक से साफ करना चाहिए ताकि उनमें पत्थर, कंकड़ और सुड़ियां न रह जाएं |

कैदियों को जो भी शिकायतें हों, उन्हें भद्रता के साथ जेल के अधिकारियों की जानकारी में लाएं | उन्हें अपने छोटे-से समुदाय में इस तरह व्यवहार करना चाहिए कि जब वे जेल से छूटें तो जैसे आए थे, उससे बेहतर आदमी बनकर निकलें | *(हरि, 2-11-1947, पृ. 395)*

32. भारत और हिंसक मार्ग

यदि भारत तलवार के सिद्धांत को अपनाता है तो संभवत: उसे क्षणिक विजय मिल जाए | लेकिन उस सूरत में भारत मेरे गौरव की वस्तु नहीं रह जाएगा | मैं भारत से इसलिए बंधा हूं कि मेरे पास जो कुछ है, मैंने भारत से पाया है | मुझे इस बात में पूर्ण विश्वास है कि विश्व को देने के लिए भारत के पास एक संदेश है | उसे यूरोप का अंधानुकरण नहीं करना चाहिए |

भारत द्वारा तलवार के सिद्धांत की स्वीकृति मेरी परीक्षा की घड़ी होगी | मुझे आशा है कि मैं उसमें खरा उतरूंगा | मेरे धर्म की कोई भौगोलिक सीमाएं नहीं हैं | यदि मुझे उसमें जीती-जागती आस्था है तो वह भारत के प्रति मेरे प्रेम का भी अतिक्रमण कर सकेगी | मेरा जीवन अहिंसा के धर्म के माध्यम से भारत की सेवा के प्रति समर्पित है.... *(यंग, 11-8-1920, पृ. 4)*

यदि भारत हिंसा को अपना धर्म मान लेता है, और मैं जीवित रहता हूं, तो मैं भारत में रहने की परवाह नहीं करूंगा | तब वह मेरे अंदर गौरव की भावना जगाना बंद कर देगा | मेरी देशभक्ति मेरे धर्म के अधीन है | मैं भारत के साथ इस प्रकार आबद्ध हूं जैसे कि कोई शिशु अपनी माता की छाती से चिपका रहता है, क्योंकि मुझे लगता है कि मुझे जिस आध्यात्मिक पोषण की आवश्यकता है, वह मुझे भारत से प्राप्त होता है | इसका पर्यावरण मेरी उच्चतम आकांक्षाओं के अनुरूप है | यह आस्था जिस दिन चली जाएगी, उस दिन मैं एक ऐसे अनाथ की तरह हो जाऊंगा जिसे अपने अभिभावक से मिल पाने की कोई आशा ही न रही हो | *(यंग, 6-4-1921, पृ. 108)*

निरस्त्र विजय

यह मैं जानता हूं कि यदि भारत प्रत्यक्षत: अहिंसक उपायों से अपनी प्रतिष्ठा पुन: प्राप्त करने में सफल हो जाता है तो उसे लंबी-चौड़ी थल सेना, उतनी ही बड़ी नौ सेना और उससे भी बड़ी वायु सेना की कभी जरूरत नहीं पड़ेगी | यदि उसकी आत्मचेतना इतनी ऊंचाई को छू लेती है कि वह उसे अपनी आज़ादी के संघर्ष में अहिंसक विजय दिला सके, तो विश्व के मूल्यों में परिवर्तन आ जाएगा और युद्ध का अधिकांश साज-सामान बेकार दिखाई देने लगेगा | ऐसा भारत केवल एक दिवास्वप्न, बच्चे की मूर्खता भी हो सकती है | लेकिन अगर भारत अहिंसा के जरिए आज़ादी हासिल कर लेता है तो, मेरी राय में, उसका निहितार्थ यही होगा....उसकी आवाज़ एक शक्तिशाली राष्ट्र की आवाज़ होगी जो विश्व की समस्त हिंसक शक्तियों पर अंकुश रखने का प्रयास करेगी | *(यंग, 9-5-1929, पृ. 148)*

मैं नहीं कह सकता कि राष्ट्रीय सरकार क्या नीति अपनाएगी | शायद मैं तब तक जीवित ही न रहूं, हालांकि मेरी इच्छा तो बहुत है | यदि मैं जीवित रहा तो मैं अधिकतम सीमा तक अहिंसा को अपनाने की सलाह दूंगा और वह विश्व शांति तथा एक नयी विश्व-व्यवस्था की स्थापना के लिए भारत का महान योगदान होगा | मुझे लगता है कि

भारत में अनेक युयुत्सु जातियां होने के कारण, उनकी बात तत्कालीन सरकार में जरूर सुनी जाएगी और राष्ट्रीय नीति सैन्यवाद के किसी संशोधित-परिष्कृत स्वरूप के पक्ष में झुकेगी | मैं निश्चित रूप से आशा करूंगा कि एक राजनीतिक बल के रूप में अहिंसा की सामर्थ्य को सिद्ध करना....व्यर्थ नहीं जाएगा और सच्ची अहिंसा का प्रतिनिधित्व करने वाली कोई मजबूत पार्टी देश में विद्यमान रहेगी | *(हरि, 21-6-1942, पृ. 197)*

सैन्यीकरण का मार्ग

राष्ट्रों के मंडल में भारत का स्थान क्या होगा ? क्या वह पांचवें दर्जे की शक्ति के रूप में संतुष्ट रहेगा....? भारत को पहले दर्जे की सैन्य शक्ति बनने में बहुत समय लगेगा | और इसके लिए उसे किसी पाश्चात्य शक्ति का संरक्षण स्वीकार करना होगा | *(हरि, 21-4-1946, पृ. 95)*

....भारत को यह निर्णय करना होगा कि सैन्य शक्ति बनने के प्रयास में क्या वह, कम-से-कम कुछ वर्षों के लिए, विश्व में संदेश-रहित पांचवें दर्जे की शक्ति होकर संतुष्ट रह जाएगा....अथवा अपनी अहिंसक नीति का और परिष्कार करके, उसे जारी रखते हुए स्वयं को विश्व का ऐसा प्रथम राष्ट्र सिद्ध करना चाहेगा जो घोर संघर्ष के उपरांत प्राप्त अपनी आज़ादी का इस्तेमाल विश्व को इस हिंसा के अभिशाप से मुक्त कराने के लिए करेगा जो मित्रराष्ट्रों की तथाकथित विजय के बावजूद उसे बुरी तरह रौंद रही है | *(हरि, 5-5-1946, पृ. 116)*

सत्य और अहिंसा से प्रतिबद्ध स्वतंत्र भारत दक्षिण अफ्रीका के निवासियों को शांति का पाठ पढ़ाएगा | लेकिन यह हमें और कांग्रेस को तय करना होगा कि स्वतंत्र भारत शांति के रास्ते पर चलेगा या तलवार के | यह सचमुच बुरी बात होगी अगर दुनिया के छोटे राष्ट्र मानवता को उसकी बहुमूल्य विरासत से वंचित कर दें; यह बुरी बात होगी अगर चालीस करोड़ की जनसंख्या वाला यह उपमहाद्वीप हिंसा का रास्ता चुन ले और खतरनाक तरीके से जिए | *(हरि, 30-6-1946, पृ. 206-07)*

क्या युद्ध से थके-हारे एशियाई देश जापान के पदचिह्नों पर चलकर अपना सैन्यीकरण करेंगे ? इसका उत्तर इस बात पर निर्भर है कि भारत क्या दिशा पकड़ता है....स्वतंत्र भारत विश्व को शांति का संदेश देगा अथवा घृणा और हिंसा का, जिससे दुनिया पहले ही बहुत बुरी तरह तंग आ चुकी है ? *(हरि, 8-6-1947, पृ. 177)*

यदि समूचा भारत शांति के शाश्वत नियम को स्वीकार कर ले तो वह सारे विश्व का निर्विवाद नेता बन जाएगा| *(वही, पृ. 181)*

मैं तो बस प्रार्थना कर रहा हूं और आशा लगाए हूं कि एक नये और मजबूत भारत का उदय होगा – यह भारत पश्चिम की तमाम वीभत्स चीज़ों का घटिया अनुकरण करने वाला युद्धप्रिय राष्ट्र नहीं होगा | बल्कि एक ऐसा नूतन भारत होगा जो पश्चिम की अच्छी बातों को सीखने के लिए तत्पर होगा और केवल एशिया तथा अफ्रीका ही नहीं बल्कि समस्त पीड़ित संसार उसकी ओर आशा की दृष्टि से देखेगा....

लेकिन, पश्चिम की तड़क-भड़क की झूठी नकल और पागलपन के बावजूद, मेरे और मेरे जैसे बहुत-से-लोगों के मन में यह आशा बंधी हुई है कि भारत इस सांघातिक नृत्य से उबर जाएगा, और 1915 से लेकर बत्तीस साल तक उसने निरंतर अहिंसा का जो प्रशिक्षण लिया है, चाहे वह कितना ही अपरिपक्व हो, उसके बाद वह जिस नैतिक ऊंचाई पर बैठने का अधिकारी है, उस स्थान पर आसीन होगा | *(हरि, 7-12-1947, पृ. 453)*

आकार में घटा हुआ किंतु आत्मा से शुद्ध भारत अब भी वीरों की अहिंसा की पाठशाला बन सकता है, और विश्व का नैतिक नेतृत्व ग्रहण कर सकता है तथा दलित एवं शोषित जातियों के लिए आशा और मुक्ति का संदेशवाहक बन सकता है | लेकिन एक दुर्वह और निष्प्राण भारत पश्चिम के सैनिक राज्यों की तीसरे दर्जे की नकल बनकर रह जाएगा जो उनके आक्रमण का मुकाबला करने में सर्वथा असमर्थ होगा | मुझे अपने सपनों के भारत के समाप्त हो जाने पर जीवित रहने की कोई कामना नहीं है | *(हरि, 18-1-1948, पृ. 513)*

6. सत्याग्रह

33. सत्याग्रह का दिव्य संदेश

निष्क्रिय प्रतिरोध

निष्क्रिय प्रतिरोध एक चौमुंहा खड्ग है; इसे किसी भी तरह से इस्तेमाल किया जा सकता है; यह उसका भी भला करता है जो इसका इस्तेमाल करता है और उसका भी जिसके विरुद्ध इसका इस्तेमाल किया जाता है | एक बूंद भी रक्त बहाए बिना, यह दूरगामी परिणाम देता है | न इसे जंग लगती है, न इसे कोई चुरा सकता है | *(हिंस्वं, पृ. 82)*

मेरा निश्चित मत है कि निष्क्रिय प्रतिरोध कठोर-से-कठोर हृदय को भी पिघला सकता है.... | यह एक उत्तम और बड़ा ही कारगर उपचार है....यह परम शुद्ध शस्त्र है | यह दुर्बल मनुष्य का शस्त्र नहीं है | शारीरिक प्रतिरोध करने वाले की अपेक्षा निष्क्रिय प्रतिरोध करने वाले में कहीं ज़्यादा साहस होना चाहिए |

ऐसा साहस यीशु, डेनियल, क्रेंमर, लेटिमर और रिडली में था जिन्होंने चुपचाप पीड़ा और मृत्यु का वरण किया; ऐसा ही साहस टाल्सटॉय में था जिसने रूस के जारों की अवज्ञा करने का साहस किया, जो इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है |

वस्तुत: एक ही पूर्ण प्रतिरोधकर्ता बुराई के विरुद्ध अच्छाई की विजय के लिए काफ़ी है | *(यंग, 10-11-1921, पृ. 362)*

मेरा दावा है कि....निष्क्रिय प्रतिरोध की विधि....सबसे स्पष्ट और सबसे सुरक्षित है, क्योंकि अगर प्रतिरोध का उद्देश्य सच्चा नहीं है तो हानि केवल प्रतिरोधकर्ताओं को ही पहुंचती है |

ईसा मसीह, डेनियल और सुकरात ने निष्क्रिय प्रतिरोध अथवा आत्मा के बल का सर्वोत्तम प्रतिनिधित्व किया | इन सभी महापुरुषों ने अपनी आत्मा की तुलना में अपने शरीर को कोई महत्व नहीं दिया |

टाल्सटॉय इस सिद्धांत के सर्वोत्तम और सर्वश्रेष्ठ (आधुनिक) प्रतिपादक थे | उन्होंने न केवल इसका प्रतिपादन किया बल्कि इसे अपने जीवन में उतारा भी | भारत में, इस सिद्धांत को, पश्चिम में इसका चलन होने से बहुत पहले ही, समझा और सामान्यतया व्यवहार में लाया जाता था |

यह समझना आसान है कि आत्मा का बल शरीर के बल से अत्यधिक श्रेष्ठ है | बुराई के प्रतिकार के लिए लोग यदि आत्मा के बल का सहारा लेना शुरू कर दें तो बहुत-सी मौजूदा परेशानियां दूर की जा सकती हैं |

किसी भी स्थिति में, आत्मा के बल का आश्रय किसी अन्य व्यक्ति को पीड़ा नहीं पहुंचाता | इसलिए जब भी इसका दुरुपयोग किया जाता है, यह केवल इसके प्रयोगकर्ता को हानि पहुंचाता है, उसको कभी नहीं जिसके विरुद्ध इसका प्रयोग किया गया है | सद्‌गुण की भांति, यह अपना पुरस्कार स्वयं है | आत्मा के बल के इस्तेमाल में असफलता की कोई गुंजाइश ही नहीं है | *(स्पीरा, पृ. 165)*

बुद्ध ने भयरहित भाव से, विरोधी पक्षों के बीच जा-जाकर संग्राम किया और एक उद्धत पुरोहितवाद को घुटने टेकने पर विवश कर दिया | ईसा ने यरुशलम के मंदिर से सूदखोरों को निकाल बाहर किया और पाखंडियों तथा दंभियों को स्वर्ग से शापित कराया | ये दोनों ही महापुरुष जोरदार सीधी कार्रवाई के हिमायती थे |

लेकिन दंड देते समय भी बुद्ध और ईसा ने अपने हरेक काम में पूरी भद्रता तथा प्रेम का प्रदर्शन किया | उन्होंने अपने शत्रुओं पर उंगली नहीं उठाई और जिस सत्य के लिए जिए, उस पर कोई आंच न आने देकर स्वयं को सहर्ष समर्पित करने के लिए उद्यत रहे |

अगर उनके प्रेम की ऊंचाई पुरोहितवाद को झुकाने में समर्थ सिद्ध न हुई होती तो बुद्ध पुरोहितवाद का प्रतिरोध करते हुए अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देते | ईसा एक समूचे साम्राज्य की शक्ति को चुनौती देते हुए सिर पर कांटों का ताज पहने सूली पर चढ़ गए | यदि मैं अहिंसक प्रतिरोध छेड़ता हूं तो मैं केवल इन महापुरुषों के पदचिह्नों पर विनम्रतापूर्वक चल रहा हूं.... *(यंग, 12-5-1920, पृ. 3)*

सविनय अवज्ञा

अवज्ञा सविनय तभी मानी जा सकती है जब वह सच्चे हृदय से की जाए, आदरभाव लिए हो, संयमित हो, कभी उद्धत रूप ग्रहण न करे, सुस्थापित सिद्धांतों पर आधारित हो, स्वेच्छाचारिता के दोष से मुक्त हो और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उसके पीछे कोई द्वेष या घृणा की भावना न हो | *(यंग, 24-3-1920, पृ. 4)*

मेरी निश्चित राय है कि सविनय अवज्ञा वैधानिक आंदोलन का विशुद्धतम रूप है | हां, यदि उनका 'सविनय' अर्थात अहिंसक रूप केवल छद्मावरण है तो वह घटिया तथा तिरस्करणीय है | यदि अहिंसा पर पूरी ईमानदारी से दृढ़ रहा जाए तो उग्र-से-उग्र अवज्ञा भी हिंसा को नहीं भड़काएगी, अत: उसकी निंदा करने का अवसर ही नहीं आएगा |

कोई बड़ा या तेज आंदोलन भरपूर जोखिम लिए बिना नहीं चलाया जा सकता, और बड़े-बड़े जोखिमों से भरी न हो तो जिंदगी जीने योग्य नहीं मानी जा सकती | क्या संसार का इतिहास यह नहीं बताता कि अगर जोखिम न होता तो जिंदगी में कोई रोमांच ही न होता ? *(यंग, 15-12-1921, पृ. 419)*

सविनय अवज्ञा नागरिक का जन्मजात अधिकार है | वह अपनी आदमियत को खोए बगैर इस अधिकार को छोड़ने का साहस नहीं कर सकता | सविनय अवज्ञा से अराजकता कभी उत्पन्न नहीं होती | वह आपराधिक अवज्ञा से उत्पन्न हो सकती है | प्रत्येक राज्य आपराधिक अवज्ञा को बलपूर्वक कुचल देता है | यदि नहीं, तो वह स्वयं नष्ट हो जाता है | *(यंग, 5-1-1922, पृ. 5)*

सत्याग्रही विवेकपूर्वक तथा स्वेच्छा से समाज के नियमों का पालन करता है | क्योंकि वह इसे अपना पवित्र कर्तव्य मानता है | समाज के नियमों का इस प्रकार पालन करने से ही वह ऐसी स्थिति में आ पाता है कि यह निर्णय कर सके कि कौन-से नियम अच्छे तथा न्यायोचित हैं और कौन-से अनुचित तथा अन्यायपूर्ण | तभी सुनिश्चित परिस्थितियों में, किन्हीं नियमों की सविनय अवज्ञा करने का अधिकार उसे मिलता है | *(ए. पृ. 347)*

पूर्व-शर्त

सविनय प्रतिरोध आंदोलन की पहली अपरिहार्य पूर्व-शर्त यह है कि उसमें भाग लेने वालों या सामान्य जनता की ओर से हिंसा शुरू न किए जाने की पक्की गारंटी हो | हिंसा भड़क उठने पर यह कहना बेमानी होगी कि वह राज्य अथवा सविनय प्रतिरोधकारियों के विरुद्ध अन्य तत्वों द्वारा प्रेरित थी |

यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि सविनय प्रतिरोध हिंसा के वातावरण में प्रगति नहीं कर सकता | इसका तात्पर्य यह नहीं है कि सत्याग्रही के पास अब कोई उपाय शेष नहीं रहा | उसे सविनय अवज्ञा के अलावा अन्य उपाय ढूंढने होंगे | *(हरि, 18-3-1939, पृ. 53)*

सत्याग्रह का स्वरूप

सत्याग्रह की खूबी यही है कि आदमी को इसकी कहीं बाहर जाकर खोज नहीं करनी पड़ती; वह उसके सामने खुद आ खड़ा होता है | स्वयं सत्याग्रह के सिद्धांत में ही यह गुण अंतर्निहित है |

धर्मयुद्ध, जिसमें न कोई बातें गोपनीय रखने की होती हैं और न जिसमें धूर्तता तथा असत्य के लिए कोई स्थान होता है, बिना खोजे प्रकट हो जाता है, और धर्मनिष्ठ व्यक्ति उसके लिए सदा तत्पर रहता है |

जिस संघर्ष की पहले से बाकायदा योजना तैयार करनी पड़े, वह धर्मसम्मत संघर्ष नहीं माना जा सकता | धर्मसम्मत संघर्ष में तो ईश्वर स्वयं अभियानों की योजना बनाता है और लड़ाइयों का संचालन करता है |

धर्मयुद्ध केवल ईश्वर के नाम में लड़ा जा सकता है; सत्याग्रही जब स्वयं को बिलकुल लाचार अनुभव करता है, टूटने की स्थिति में होता है और उसे चारों ओर पूर्ण अंधकार दिखाई देता है, तब ईश्वर उसकी मदद के लिए आ पहुंचता है | *(ससा, पृ. xiv)*

सत्याग्रह पर अमल करते हुए मुझे शुरू के चरणों में ही यह लग गया था कि सत्य के अनुकरण में विरोधी पर हिंसक वार करने की अनुमति नहीं है, बल्कि उसे धैर्य तथा सहानुभूति से अपनी गलती को दूर करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए | बात यह है कि कोई चीज़ जो एक आदमी को सही लगती है, वही दूसरे को गलत लग सकती है | और, धैर्य का अर्थ है आत्मपीड़न | इस प्रकार, सत्याग्रह के सिद्धांत का अर्थ हुआ विरोधी के बजाए स्वयं को पीड़ित करके सत्य को प्रमाणित करना | *(रिकप)*

सत्याग्रह और उसकी प्रशाखाएं असहयोग तथा सविनय प्रतिरोध, और कुछ नहीं बल्कि पीड़ा के नियम के ही नये नाम हैं | *(यंग, 11-8-1920, पृ. 3)*

सत्य और अहिंसा के योग से, तुम सारी दुनिया को अपने कदमों में गिरा सकते हो | सार रूप में, सत्याग्रह और कुछ नहीं बल्कि राजनीतिक यानी राष्ट्रीय जीवन में सत्य और शालीनता की प्रतिष्ठा है | *(यंग, 10-3-1920, पृ. 3)*

सत्याग्रह पूर्ण अनात्मशंसा, अधिकतम विनम्रता, असीम धैर्य तथा प्रदीप्त आस्था है | यह अपना पुरस्कार स्वयं है| *(यंग, 26-2-1925, पृ. 73)*

सत्याग्रह सत्य की अथक खोज और उस तक पहुंचने का दृढ़ संकल्प है | *(यंग, 19-3-1925, पृ. 95)*

यह ऐसा बल है जो चुपचाप, और, जाहिर तौर पर, धीरे-धीरे काम करता है | परंतु वास्तविकता यह है कि संसार में इससे ज़्यादा प्रत्यक्ष और द्रुत गति से काम करने वाला कोई दूसरा बल नहीं है | *(यंग, 4-6-1925, पृ. 189)*

सत्याग्रह शब्द का प्रयोग प्राय: बड़े शिथिल रूप में किया जाता है और उसमें प्रच्छन्न हिंसा का भाव भी शामिल माना जाता है | लेकिन इस शब्द का जनक होने के नाते मैं यह स्पष्ट करने की अनुमति चाहता हूं कि इसमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष, प्रच्छन्न या प्रकट, सभी प्रकार की हिंसा वर्जित है; इसमें मनसा, वाचा, कर्मणा हिंसा का कोई स्थान नहीं है | विरोधी को हानि पहुंचाने के विचार से उसके प्रति द्वेष-भाव रखना या उससे अथवा उसके बारे में कठोर वचन बोलना सत्याग्रह को तोड़ना है....

सत्याग्रह में शालीनता है, यह कभी चोट नहीं पहुंचाता | यह क्रोध या दुर्भावना का परिणाम नहीं होना चाहिए | इसमें बतंगड़पन, अधैर्य और शोर-शराबे के लिए कोई स्थान नहीं है | यह बाध्यता का प्रत्यक्ष विलोम है | इसकी अवतारणा हिंसा के पूर्ण स्थानापन्न के तौर पर की गई थी | *(हरि, 15-4-1933, पृ. 8)*

सत्याग्रह का संघर्ष उसके लिए है जो भावना का दृढ़ हो, जिसके मन में न संशय हो और न भीरुता | सत्याग्रह हमें जीने और मरने, दोनों की कला सिखाता है | देहधारियों का जन्म और मरण तो अवश्यंभावी है | मनुष्य को पशु से भिन्न सिद्ध करने वाली चीज़ सिर्फ यह है कि मनुष्य अपनी आत्मसिद्धि के लिए बराबर सचेतन प्रयास करता रहता है | *(हरि, 7-4-1946, पृ. 74)*

विकासशील विज्ञान

सत्याग्रह के विषय में मेरा ज्ञान दिनोंदिन बढ़ रहा है | मेरे पास जरूरत के वक्त मार्गदर्शन के लिए कोई पाठ्यपुस्तक नहीं होती, गीता तक नहीं होती जिसे मैं अपना कोश मानता हूं | मेरी धारणा का सत्याग्रह एक विज्ञान है जो अभी विकास की प्रक्रिया में है | हो सकता है कि जिसे मैं विज्ञान मान रहा हूं, वह विज्ञान सिद्ध ही न हो पाए और अगर पागल नहीं तो मात्र किसी मूर्ख का सोच और कारगुजारी ही साबित होकर रह जाए |

संभव है कि सत्याग्रह की सच्चाई पर्वतों जैसी प्राचीन निकले | लेकिन यह अभी तक विश्व समस्याओं, और खासकर युद्ध की भीषण समस्या, के समाधान में किसी काम का स्वीकार नहीं किया गया है | हो सकता है कि इसमें जो नयी बात मानी जा रही है, उसका युद्ध की समस्या के समाधान में कोई वास्तविक महत्व ही सिद्ध न हो पाए | यह भी हो सकता है कि जिन्हें सत्याग्रह अर्थात अहिंसा की सफलताएं माना जा रहा है, वे वस्तुत: सत्य और अहिंसा की सफलताएं न होकर हिंसा के भय से उत्पन्न सफलताएं हों | ये संभावनाएं सदा मेरे समक्ष रही हैं | मैं लाचार हूं | मुझे अपनी प्रार्थना का जो उत्तर भगवान से मिलता है, मैं अनुसरण के लिए वही राष्ट्र को प्रस्तुत कर देता हूं; इसे यों भी कह सकते हैं कि मैं हर समय भगवान की सेवा में उसका हुक्म बजा लाने के लिए प्रस्तुत रहता हूं | *(हरि, 24-9-1938, पृ. 266)*

सत्याग्रह की तकनीक

विजेता के हाथ अपनी आत्मा को बेचने से इंकार करने का अर्थ है कि तुम वह काम नहीं करोगे जिसे करने के लिए तुम्हारी अंतश्चेतना तुम्हें रोकती है | मान लो कि 'शत्रु' तुम्हें जमीन पर नाक रगड़ने या अपने कान पकड़ने या इसी तरह के कोई लज्जाजनक काम करने के लिए कहे तो तुम इन्हें करने से इंकार कर दोगे | लेकिन वह तुमसे तुम्हारी संपत्ति छीन ले तो तुम आपत्ति नहीं करोगे, क्योंकि अहिंसा का पुजारी होने के नाते तुमने शुरू से ही निर्णय कर लिया है कि सांसारिक पदार्थों का आत्मा से कोई वास्ता नहीं है | जिसे तुम अपना मानते हो, उसे अपने पास तभी तक रखोगे जब तक दुनिया रहने देगी |

अपने मन के वश में न होने का अर्थ यह है कि तुम किसी प्रलोभन के शिकार नहीं होंगे | आदमी प्राय: इतना दुर्बलमनस्क होता है कि वह लालच और मीठे शब्दों के जाल में फंस जाता है | हम अपने सामाजिक जीवन में यह रोज होता देखते हैं | दुर्बलमनस्क व्यक्ति सत्याग्रही नहीं हो सकता | सत्याग्रही का 'न' अटल 'न' और उसका 'हां' शाश्वत 'हां' होता है | केवल ऐसे ही व्यक्ति में सत्य और अहिंसा का पुजारी होने की ताकत होती है | लेकिन यह जरूर है कि आदमी को दृढ़ निश्चय और जिद का फर्क समझना चाहिए | यदि 'हां' अथवा 'न' कह देने के बाद आदमी को लगे कि उसका फैसला गलत था और इस जानकारी के बाद भी वह अपनी बात पर अड़ा रहे तो

यह जिद या मूर्खता होगी | फैसला लेने से पहले सभी बातों पर सावधानी से और गहराई के साथ विचार कर लेना जरूरी है |

किसी को स्वामी मानकर उसके प्रति निष्ठा रखने से इंकार करने का अर्थ स्पष्ट है | इसका अर्थ है कि तुम विजेता के प्रभुत्व के आगे झुकोगे नहीं, तुम उसे उसका उद्देश्य पूरा करने में सहायता नहीं करोगे | हर हिटलर ने कभी ब्रिटेन पर कब्जा करने का सपना नहीं देखा | वह यह चाहता है कि ब्रिटेन पराजय स्वीकार कर ले | तब विजेता पराजित से जो चाहे मांग सकता है और पराजित को विवश होकर उसकी बात माननी पड़ेगी | लेकिन अगर वह पराजय स्वीकार न करे तो शत्रु तब तक लड़ेगा जब तक वह अपने विरोधी को मार नहीं डालता | पर सत्याग्रही तो विरोधी द्वारा मारे जाने का प्रयास करने से पहले ही शरीर से मृत है, अर्थात उसने अपने शरीर का मोह त्याग दिया है और केवल आत्मा की विजय में जीता है | जब वह पहले ही मर चुका है तो वह किसी और को मारने के लिए आतुर क्यों होगा ? मारते हुए मरने का वास्तविक अर्थ है पराजित होकर मरना | क्योंकि शत्रु जो चाहता है, वह यदि तुमसे जीते जी प्राप्त नहीं कर सकता तो वह तुम्हें मार कर प्राप्त करना चाहेगा | दूसरी ओर, अगर उसे यह लगे कि अपनी जीवन-रक्षा के लिए भी उसके खिलाफ हाथ उठाने का तुम्हारा तनिक भी इरादा नहीं है, तो तुम्हें मारने का उसका उत्साह ठंडा पड़ जाएगा | हर शिकारी का अनुभव यही है | किसी ने किसी को आज तक गाय का शिकार करते नहीं सुना | *(हरि, 18-8-1940, पृ. 253-54)*

पीड़ा-भोग की शक्ति

क्रोध अथवा दुर्भावना मन में लाए बगैर पीड़ा भोगना ऐसा उदीयमान सूर्य है जिसके आगे कठोरतम हृदय और घोर-से-घोर अज्ञान भी विलुप्त हो जाते हैं | *(यंग, 19-2-1925, पृ. 61)*

पीड़ा-भोग की भी सुनिश्चित सीमाएं हैं | यह बुद्धिमत्तापूर्ण और अ-बुद्धिमत्तापूर्ण, दोनों ही प्रकार का हो सकता है, और जब इसकी सीमा पार हो जाए तो इसे जारी रखना अ-बुद्धिमत्तापूर्ण ही नहीं बल्कि मूर्खता की चरम सीमा है| *(यंग, 12-3-1931, पृ. 30)*

सच्चे पीड़ा-भोग को खुद अपना आभास नहीं होता और वह कभी गणित नहीं लगाता | उसका अपना एक आनंद है जो सभी प्रकार के आनंदों से बढ़कर है | *(यंग, 19-3-1931, पृ. 41)*

मुझे दिनोंदिन यह विश्वास होता जा रहा है कि लोगों के लिए बुनियादी महत्व की चीज़ें केवल तर्क के सहारे प्राप्त नहीं की जा सकतीं, बल्कि पीड़ा-भोग के रूप में मूल्य चुकाकर खरीदनी पड़ती है | पीड़ा-भोग मानव जाति का नियम है, युद्ध जंगल का नियम है | विरोधी का हृदय-परिवर्तन करने और विवेकसम्मत बात के लिए बंद उसके कानों को खोलने के वास्ते जंगल के नियम से कहीं ज़्यादा शक्तिशाली नियम पीड़ा-भोग का है | *(यंग, 5-11-1931, पृ. 341)*

सत्याग्रही की संहिता

सत्याग्रही भय को सदा के लिए छोड़ देता है | इसलिए वह विरोधी पर विश्वास करने से कभी डरता नहीं है | विरोधी बीस बार भी उसको धोखा दे जाए, वह इक्कीसवीं बार उस पर विश्वास करने के लिए तैयार रहेगा | बात यह है कि मानव प्रकृति में अडिग विश्वास ही सत्याग्रही के धर्म का सार है | *(सप्रा, पृ. 159)*

जिसमें कानून का पालन करने की सहज वृत्ति न हो, वह सत्याग्रही नहीं | कानून का पालन करने की अपनी प्रकृति के कारण ही वह सर्वोच्च विधि, अर्थात अपनी अंतर्वाणी की आवाज, का निर्द्वंद्व होकर पालन करता है | *(स्पीरा, पृ. 465)*

चूंकि सत्याग्रह सीधी कार्रवाई का सबसे शक्तिशाली रूप है, इसलिए सत्याग्रही सत्याग्रह शुरू करने से पहले बाकी सब तरीकों पर अमल करके देख लेता है | तदनुसार वह पहले संबंधित प्राधिकारी से संपर्क करेगा और उसे जारी रखेगा, फिर जनमत का ध्यान आकर्षित करेगा, लोगों को संबंधित समस्या से अवगत कराएगा, जो उसकी बात सुनना चाहते हैं उनके समक्ष शांतिपूर्वक अपना पक्ष प्रस्तुत करेगा, और जब सभी उपाय चूक जाएंगे तब सत्याग्रह की शरण लेगा | लेकिन एक बार अंतर्वाणी का आदेश सुन लेने के बाद यदि वह सत्याग्रह शुरू कर देता है तो फिर किसी भी हालत में उससे पीछे नहीं हटेगा | *(यंग, 20-10-1927, पृ. 353)*

सत्याग्रही यद्यपि हर समय संघर्ष के लिए तैयार रहता है, पर उसे शांति के लिए भी उतना ही उत्सुक रहना चाहिए | उसे शांति के किसी भी सम्मानजनक अवसर का स्वागत करना चाहिए | *(यंग, 19-3-1931, पृ. 40)*

मेरा परामर्श एक मात्र सत्याग्रह पर ही अवलंबित रहने का है | आज़ादी प्राप्त करने का कोई अन्य अथवा बेहतर उपाय नहीं है | *(हरि, 15-9-1946, पृ. 312)*

सत्याग्रही की संहिता में पशुबल के समक्ष आत्मसमर्पण करने जैसी कोई चीज़ नहीं है | समर्पण करना ही है तो पीड़ा के प्रति, संगीनधारी के प्रति कभी नहीं | *(यंग, 30-4-1931, पृ. 93)*

सत्याग्रही के नाते मुझे अपने पक्ष की अन्य व्यक्तियों द्वारा समीक्षा एवं पुन:समीक्षा के लिए सदा प्रस्तुत रहना चाहिए और अगर कहीं कोई त्रुटि पाई जाए तो तुरंत उसका सुधार करना चाहिए | *(हरि, 11-3-1939, पृ. 44)*

सत्याग्रही की योग्यताएं

मेरा विचार है कि भारत के प्रत्येक सत्याग्रही में....निम्नलिखित योग्यताएं होनी चाहिए :

(1) उसे ईश्वर में जीती-जागती आस्था होनी चाहिए, क्योंकि वही तो उसका एक मात्र अवलंब है |

(2) उसे सत्य और अहिंसा को अपना धर्म मानते हुए उनमें विश्वास रखना चाहिए और इसी कारण, उसे मानव-प्रकृति की अंतर्निहित अच्छाई में भी आस्था होनी चाहिए | उसे आशा रखनी चाहिए कि वह इसी अच्छाई को अपने पीड़ा-भोग के जरिए सत्य तथा प्रेम की अभिव्यक्ति करके जगाने में कामयाब होगा |

(3) उसे पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहिए और अपने ध्येय की पूर्ति के लिए अपने जीवन और अपनी संपत्ति को न्यौछावर करने के लिए तैयार तथा इच्छुक रहना चाहिए |

(4) वह आदतन खादी धारण करने वाला तथा चरखा कातने वाला होना चाहिए | भारत के संदर्भ में यह आवश्यक है |

(5) वह मद्यत्यागी और अन्य नशीले पदार्थों के सेवन से मुक्त होना चाहिए ताकि उसका विवेक सदा जागृत रहे और चित्त स्थिर रहे |

(6) वह समय-समय पर निर्धारित अनुशासन के नियमों का स्वेच्छा से पालन करे |

(7) उसे जेल के नियमों का पालन करना चाहिए, सिवा उन नियमों के जो उसके आत्मसम्मान को चोट पहुंचाने के लिए विशेष रूप से बनाए गए हों |

उपर्युक्त नियमावली सर्वसमावेशी नहीं है | यह केवल दृष्टांतिक है | *(हरि, 25-3-1939, पृ. 64)*

सत्याग्रही शैतान की पीठ पर सवार होकर तो स्वर्ग भी नहीं जाएगा | *(हरि, 15-4-1939, पृ. 86)*

सत्याग्रह में कपट, मिथ्यात्व या किसी प्रकार के असत्य के लिए कोई स्थान नहीं है | *(बांक्रा, 9-8-1942)*

सत्याग्रही सम्मानजनक शर्तों पर समझौता करने का कोई अवसर नहीं खोता, नहीं खो सकता, लेकिन समझौता-वार्ता असफल हो जाने पर उसे संघर्ष के लिए सदा तत्पर रहना चाहिए | उसे पहले से कोई तैयारी करने की जरूरत नहीं है, उसकी कार्रवाई में किसी तरह की गोपनीयता नहीं होनी चाहिए | *(यंग, 16-4-1931, पृ. 77)*

लोग प्राय: यह भूल जाते हैं कि सत्याग्रही का उद्देश्य अन्यायी को लज्जित करना कभी नहीं हो सकता | उसकी अभ्यर्थना अन्यायी के भय से नहीं, सदैव उसके हृदय से होती है और होनी चाहिए | सत्याग्रही का उद्देश्य अन्यायी पर जोर-जबर्दस्ती करना नहीं, बल्कि उसका हृदय-परिवर्तन करना है | उसे अपने समस्त व्यवहार में बनावटीपन से बचना चाहिए | वह सहज रूप से तथा अपने आंतरिक दृढ़ विश्वास के बल पर काम करता है | *(हरि, 25-3-1939, पृ. 64)*

सत्याग्रह मूलत: सत्यनिष्ठ व्यक्ति का हथियार है | सत्याग्रही अहिंसा से प्रतिबद्ध होता है और जब तक लोग मनसा, वाचा, कर्मणा इसका पालन न करें, मैं सत्याग्रह नहीं कर सकता | *(ए, पृ. 345)*

मेरी सदा से यह धारणा रही है कि अपनी गलतियों को उत्तल लेंस से और दूसरों की गलतियों को अवतल लेंस से देखने पर ही दोनों की न्यायोचित तुलना की जा सकती है | मेरा विश्वास है कि जो सत्याग्रही बनना चाहता है, उसके लिए ध्यानपूर्वक और ईमानदारी के साथ इस नियम का पालन करना आवश्यक है | *(वही, पृ. 346)*

सत्याग्रही पशुबल की यंत्रणा से बचाव के लिए भगवान पर भरोसा रखता है.... *(हरि, 7-4-1946, पृ. 73)*

कोई पक्का सत्याग्रही अपने विरोधी की ओर से आने वाले अपेक्षित या अनपेक्षित खतरों से घबराता नहीं है | हां, हर सेना की तरह, उसे भी अपने भीतर के खतरे से भय खाना चाहिए | *(हरि, 14-7-1946, पृ. 220)*

सत्याग्रह और दमन

जिस प्रकार अनचाहे युद्ध से सिपाही को प्रशिक्षण मिल जाता है उसी प्रकार दमन से सत्याग्रही प्रशिक्षित होता है | सत्याग्रहियों को दमन के कारणों का पता लगाना चाहिए | वे पाएंगे कि दमित व्यक्ति किंचित शक्ति-प्रदर्शन से ही सरलतापूर्वक डर जाते हैं और पीड़ा-भोग तथा आत्मबलिदान के लिए तैयार नहीं होते | यही सत्याग्रह के प्रथम पाठ पढ़ने का समय होता है |

जिन्हें सत्याग्रह के अतुल बल का थोड़ा-सा भी ज्ञान है, उन्हें अपने पड़ोसियों को कमजोरी तथा लाचारी के साथ नहीं बल्कि बहादुरी के साथ और जान-बूझकर दमन को बर्दाश्त करना सिखाना चाहिए....

तब भी, तैयारी के अनुत्तेजक नियम सत्याग्रह के प्रशिक्षण का सबसे महत्वपूर्ण अंग है |

जब तक सत्याग्रह का इच्छुक व्यक्ति प्रशिक्षण के आवश्यक चरणों से नहीं गुजरेगा, जो बड़ा जानमारू काम है, तब तक वह प्रबल एवं सक्रिय अहिंसा का विकास नहीं कर सकता | *(हरि, 8-4-1939, पृ. 80)*

34. सत्याग्रह की शक्ति

सत्याग्रह की विजय

जब तक दुर्भाव है तब तक सत्याग्रह की स्पष्ट विजय असंभव है | लेकिन जो अपने को दुर्बल समझते हैं, वे प्रेम करने में असमर्थ होते हैं | इसलिए हमारा पहला काम यह होना चाहिए कि प्रतिदिन प्रात:काल यह संकल्प करें : 'मैं दुनिया में किसी से नहीं डरूंगा | मैं केवल ईश्वर से डरूंगा; मैं किसी के प्रति दुर्भावना नहीं रखूंगा | मैं किसी का अन्याय सहन नहीं करूंगा | मैं असत्य पर सत्य से विजय प्राप्त करूंगा और असत्य का प्रतिकार करते हुए हर प्रकार की पीड़ा को भोगने के लिए तैयार रहूंगा |' *(सली, सं. 14, 4-5-1919)*

सत्याग्रही के लिए, समय की कोई सीमा नहीं होती, न उसकी पीड़ा-भोग की क्षमता की कोई सीमा होती है | इसलिए सत्याग्रह में पराजय नाम की कोई चीज़ नहीं है | *(यंग, 19-2-1925, पृ. 61)*

ऐसा नहीं है कि देह को कम महत्व देने के कारण मैं सत्याग्रह में हजारों लोगों को स्वेच्छा से प्राणों का उत्सर्ग करते हुए देखकर प्रसन्न होता हूं | बात यह है कि मैं यह जानता हूं कि, दीर्घकाल में, सत्याग्रह में प्राणों की हानि न्यूनतम होती है और यह बलिदानियों का उदात्तीकरण तो करती ही है, उनके बलिदान से पृथ्वी का भी उदात्तीकरण होता है | *(यंग, 8-10-1925, पृ. 345)*

एक बार यह चीज़ शुरू हो जाए और यदि यह काफ़ी गहन हो तो इसका प्रभाव संपूर्ण विश्व में व्याप्त हो सकता है | आत्मा की उच्चतम अभिव्यक्ति होने के कारण यह महानतम बल है | *(यंग, 23-9-1926, पृ. 332)*

मेरा अनुभव है कि हर न्यायोचित संघर्ष पर गुणोत्तर वृद्धि का नियम लागू होता है | लेकिन सत्याग्रह के मामले में तो यह नियम स्वयंसिद्ध है | जैसे-जैसे सत्याग्रह-संघर्ष प्रगति करता है, अन्य अनेक तत्व उसको बल प्रदान करने लगते हैं और उससे प्राप्त परिणामों में निरंतर वृद्धि होती जाती है | यह वस्तुत: अपरिहार्य है, और सत्याग्रह के प्रथम सिद्धांत के साथ ही जुड़ी है | कारण यह है कि सत्याग्रह में न्यूनतम ही अधिकतम भी है और चूंकि इस न्यूनतम में और ह्रास संभव नहीं है इसलिए सत्याग्रह में पीछे हटने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता; उसकी एक ही गति संभव है और वह है प्रगति | अन्य प्रकार के संघर्षों में मांग को थोड़ा ऊंचा करके रखा जाता है ताकि भविष्य में उसमें कुछ कमी करने की गुंजाइश रहे, इसलिए उन सब में गुणोत्तर वृद्धि का नियम निरपवाद रूप से लागू नहीं होता | *(सा, पृ. 319)*

मेरी दृष्टि में सत्याग्रह दुनिया के सर्वाधिक सक्रिय बलों में से एक है | यह सूर्य की भांति है जो हर रोज बिना नागा पृथ्वी के ऊपर चमकता है | अगर हम समझ पाएं तो सत्याग्रह करोड़ों सूर्यों से भी अत्यधिक तेजस्वी है | यह जीवन और प्रकाश तथा शांति एवं सुख का प्रसार करता है | *(यंग, 18-4-1929, पृ. 126)*

एक सच्चा सत्याग्रही

अगर एक सत्याग्रही भी अंत तक डटा रहे तो विजय निश्चित है | *(ससा, पृ. xiv)*

मारते हुए मरने वाले लाखों आदमियों के बलिदान के मुकाबले एक निर्दोष व्यक्ति का आत्मबलिदान लाखों गुना ज्यादा असर पैदा करता है | निर्दोष का स्वेच्छया बलिदान उद्धत क्रूरता का ईश्वर अथवा मनुष्य द्वारा अभी तक सोचा गया सबसे शक्तिशाली प्रतिकार है | *(यंग, 12-2-1925, पृ. 60)*

मेरी यह धारणा रही है कि फकत एक आदमी भी पूरी तरह अहिंसक रहे तो वह बड़ी-से-बड़ी अग्नि का शमन कर सकता है....लेकिन लोकतंत्र के इस युग में यह आवश्यक है कि अभीष्ट परिणाम लोगों के सामूहिक प्रयास से प्राप्त किए जाएं | किसी एक अत्यंत शक्तिशाली व्यक्ति के प्रयास से ध्येय की प्राप्ति अच्छी बात जरूर है, लेकिन उससे समुदाय को अपनी सामूहिक शक्ति का बोध कभी नहीं हो सकता | *(हरि, 8-9-1940, पृ. 277)*

मैं अकेला चलने में विश्वास करता हूं | मैं अकेला ही इस दुनिया में आया, अकेला ही मौत के साए की घाटी में चला हूं, और समय आने पर अकेला ही यह दुनिया छोड़ जाऊंगा | मैं जानता हूं कि मैं निपट अकेला होऊं तो भी सत्याग्रह छेड़ने का मुझमें पर्याप्त सामर्थ्य है | मैंने पहले भी ऐसा किया है | *(हरि, 21-7-1946, पृ. 227)*

सत्याग्रह पर अमल

सत्याग्रह ऐसा बल है जिसका प्रयोग व्यक्ति भी कर सकते हैं और समुदाय भी | इसका प्रयोग जितना अच्छी तरह राजनीतिक मामलों में किया जा सकता है, उतनी ही अच्छी तरह घरेलू मामलों में भी किया जा सकता है | इसकी सार्वभौम प्रयोज्यता इसके स्थायित्व और अपराजेयता का प्रमाण है | इसका प्रयोग पुरुष, स्त्री, बच्चे सभी समान रूप से कर सकते हैं |

यह कहना बिलकुल गलत है कि यह एक ऐसा बल है जिसका प्रयोग दुर्बल लोग उस समय तक कर सकते हैं जब तक कि वे हिंसा का जवाब हिंसा से देने में समर्थ न हो जाएं....

सत्याग्रह का बल तो हिंसा, सभी प्रकार की क्रूरता और सभी प्रकार के अन्याय को इस तरह मिटा देता है जैसे अंधकार को प्रकाश | राजनीति में इसका प्रयोग इस अटल सिद्धांत पर आधारित है कि किन्हीं लोगों पर शासन करना तभी तक संभव है जब तक कि वे जाने अथवा अनजाने अपने ऊपर शासन किए जाने के लिए सहमत हैं | *(यंग, 3-11-1927, पृ. 369)*

मैंने कभी मौलिक सत्याग्रही होने का दावा नहीं किया है | मेरा दावा तो सिर्फ यह है कि सत्याग्रह के सिद्धांत का प्रयोग प्राय: सार्वभौम पैमाने पर किया जा सकता है, किंतु अभी यह देखना और प्रदर्शित करना बाकी है कि क्या यह ऐसा सिद्धांत है जिसे सभी युगों और प्रदेशों के हजारों-लाखों लोग आत्मसात कर सकते हैं | *(यंग, 22-9-1927, पृ. 317)*

अहिंसक शास्ति

सत्याग्रह सार्वभौम प्रयुक्ति का नियम है | परिवार से आरंभ करके इसका विस्तार प्रत्येक क्षेत्र तक किया जा सकता है |

मान लीजिए कि कोई जमींदार अपने काश्तकारों का शोषण करता है और उनकी मेहनत के फल से उनको वंचित करके उसे अपने इस्तेमाल में लाता है | काश्तकारों के सविनय विरोध करने पर भी वह उनकी बात नहीं सुनता और आपत्ति करते हुए कहता है कि उसे इतना पैसा अपनी पत्नी के लिए चाहिए, इतना अपने बच्चों के लिए चाहिए, आदि-आदि | काश्तकार अथवा उनकी ओर से पैरवी करने वाले ऐसे लोग जिनका कुछ प्रभाव है, उसकी पत्नी से प्रार्थना करते हैं कि वह अपने पति से बात करे | पत्नी संभवत: कहेगी कि उसे पति द्वारा शोषित धन की अपने लिए आवश्यकता नहीं है | बच्चे भी शायद ऐसा ही कहें कि उन्हें जरूरत होगी तो वे खुद अपनी कमाई कर लेंगे |

यह भी मान लीजिए कि वह किसी की बात सुनने के लिए तैयार नहीं है या उसकी पत्नी और बच्चे भी काश्तकारों की खिलाफत करने के लिए एकजुट हो जाते हैं, तो काश्तकार उनके सामने झुकेंगे नहीं | अगर जमींदार उन्हें निकालना चाहेगा तो वे निकल जाएंगे, लेकिन वे साफ तौर पर यह बात कह देंगे कि जमीन उसी की है जो उसे जोतता है | जमींदार चूंकि सारी जमीन खुद नहीं जोत सकता, इसलिए उसे काश्तकारों की जायज मांगें माननी ही होंगी |

लेकिन हो सकता है कि जमींदार उन काश्तकारों को निकालकर दूसरे काश्तकार रख ले | ऐसी सूरत में, अहिंसक आंदोलन छेड़ा जाएगा जो तब तक जारी रहेगा जब तक नये काश्तकार अपनी गलती न मान लें और पहले वाले काश्तकारों के साथ आंदोलन में सम्मिलित न हो जाएं |

इस प्रकार, सत्याग्रह जनमत को शिक्षित करने की एक प्रक्रिया है जो समाज के सभी तत्वों को अपने में समाहित करती है और अंतत: अदम्य बन जाती है | हिंसा इस प्रक्रिया में विघ्न उपस्थित करती है और समूचे सामाजिक ढांचे की सच्ची क्रांति को लंबा कर देती है |

सत्याग्रह की सफलता के लिए आवश्यक शर्तें हैं : (1) सत्याग्रही के मन में विरोधी के लिए घृणा की भावना नहीं होनी चाहिए; (2) सत्याग्रह का मुद्दा सच्चा और महत्वपूर्ण होना चाहिए; (3) सत्याग्रही को अपने ध्येय की पूर्ति होने तक पीड़ा भोगने के लिए तैयार रहना चाहिए | *(हरि, 31-3-1946, पृ. 64)*

आत्मरक्षा का प्रशिक्षण

मैं समझता हूं कि इस युग में प्रत्येक स्त्री-पुरुष को आत्मरक्षा की कला सीखनी चाहिए | पश्चिम में इसके लिए हथियारों का प्रशिक्षण दिया जाता है | प्रत्येक वयस्क पुरुष को एक निश्चित अवधि के लिए अनिवार्यत: सैन्य सेवा

करनी पड़ती है | सत्याग्रह का प्रशिक्षण सबके लिए है, इसमें आयु अथवा स्त्री-पुरुष की कोई बंदिश नहीं है | इस प्रशिक्षण का अधिक महत्वपूर्ण पक्ष मानसिक है, शारीरिक नहीं | मानसिक प्रशिक्षण में कोई बाध्यता नहीं हो सकती | यह जरूर है कि आसपास का वातावरण मन पर असर डालता है, लेकिन इससे बाध्यता का औचित्य सिद्ध नहीं हो सकता |

सशस्त्र प्रतिरोध की अपेक्षा सत्याग्रह सदैव श्रेष्ठ है | इसे तर्क से नहीं बल्कि प्रदर्शन द्वारा ही ज़्यादा अच्छी तरह सिद्ध किया जा सकता है | सत्याग्रह का शस्त्र बलशाली का आभूषण है | यह दुर्बल का आभूषण कभी नहीं हो सकता | दुर्बल से यहां आशय मन और प्राण की दुर्बलता से है, शरीर की दुर्बलता से नहीं | यह सीमा एक गुण है जिसकी कद्र की जानी चाहिए, कोई अवगुण नहीं जिसकी निंदा की जाए |

एक और भी सीमा है जिसे समझना जरूरी है और वह यह कि सत्याग्रह का प्रयोग गलत उद्देश्य के लिए कभी नहीं किया जा सकता |

सत्याग्रहियों के जत्थे प्रत्येक गांव में और शहरों में इमारतों के प्रत्येक ब्लॉक के लिए संगठित किए जा सकते हैं | हर जत्थे के सदस्य ऐसे लोग हों जिन्हें संगठनकर्ता अच्छी तरह जानते हों | इस मायने में सत्याग्रह और सशस्त्र सेना में फर्क है | सेना में भरती के लिए राज्य प्रत्येक व्यक्ति से आग्रह करती है, लेकिन सत्याग्रह के जत्थे में सिर्फ वे ही लोग भरती किए जा सकते हैं जिनका अहिंसा और सत्य में विश्वास हो | इसलिए जत्थे में शामिल किए जाने वाले व्यक्तियों के बारे में संगठनकर्ताओं को गहरी जानकारी होनी जरूरी है | *(हरि, 17-3-1946, पृ. 45-46)*

दुराग्रह

मेरी राय में, हिंसा अपनाने से भारत घोर विपत्तियों का शिकार हो जाएगा | श्रमिक आत्महत्या करने लगेंगे और अगर अपना गुस्सा निकालने के लिए श्रमिकों ने देश के कानूनों की आपराधिक अवज्ञा शुरू कर दी तो भारत को अकथनीय कष्ट उठाने होंगे....

जब मैंने सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा की शुरुआत की थी तो इसमें आपराधिक अवज्ञा के लिए कोई स्थान नहीं था | मेरे अनुभव ने मुझे सिखाया है कि सत्य का प्रचार हिंसा के द्वारा कभी नहीं किया जा सकता |

जिन्हें अपने उद्देश्य की न्यायोचितता में विश्वास है, उनमें असीम धैर्य होना चाहिए और सविनय अवज्ञा करने के अधिकारी वही हैं जिनके हाथों आपराधिक अवज्ञा या हिंसा कभी हो ही नहीं सकती |

जिस प्रकार कोई व्यक्ति एक ही समय में संयत और क्रोधोन्मत्त नहीं हो सकता, उसी प्रकार कोई व्यक्ति सविनय अवज्ञा और आपराधिक अवज्ञा एक साथ नहीं कर सकता | और जिस प्रकार अपने मनोवेगों पर विजय पाने के उपरांत ही व्यक्ति आत्मसंयम के गुण का विकास कर सकता है, उसी प्रकार देश के नियमों के पूर्ण और स्वैच्छिक पालन का अभ्यस्त हो जाने के बाद ही व्यक्ति में सविनय अवज्ञा की क्षमता उत्पन्न होती है |

ऐसे ही, जिस प्रकार प्रलोभनों के उपस्थित होने पर उनका शिकार होने से बचने में कामयाब होने पर ही मनुष्य को प्रलोभनों से मुक्त माना जा सकता है, उसी प्रकार हमने क्रोध को जीत लिया है, यह तभी कहा जा सकता है जब क्रोध के पर्याप्त कारणों के उपस्थित होने पर भी हम संयमित रहने में कामयाब हो जाएं | *(यंग, 28-4-1920, पृ. 7-8)*

कुछ विद्यार्थियों ने 'धरने' पर बैठने के रूप में बर्बरता के पुराने स्वरूप को पुनर्जीवित किया है....मैं इसे 'बर्बरता' इसलिए कहता हूं कि यह जोर-जबर्दस्ती करने का एक भद्दा तरीका है | यह कायरतापूर्ण भी है, क्योंकि धरने पर बैठने वाला व्यक्ति जानता है कि उसे कुचला नहीं जाएगा | 'धरने' को हिंसक कहना तो कठिन है, पर यह निश्चित रूप से उससे भी बुरी चीज़ है |

अगर हम अपने विरोधी से लड़ते हैं तो कम-से-कम उसे यह अवसर तो देते हैं कि वह हमारे घूंसे का जवाब घूंसे से दे | लेकिन जब हम यह जानते हुए भी कि वह ऐसा नहीं करेगा, उसे अपनी छाती पर पांव रखकर निकल जाने के लिए ललकारते हैं तो हम उसे एक कष्टकर और लज्जास्पद स्थिति में डाल देते हैं | मैं जानता हूं कि जो विद्यार्थी धरने पर बैठे थे, उन्होंने इस कृत्य की बर्बरता के बारे में कभी विचार नहीं किया था | लेकिन जिस व्यक्ति से अपनी अंतर्वाणी का अनुगमन करने और कठिनाइयों का अकेला ही सामना करने की आशा की जाती है, उसे विवेकहीन कभी नहीं होना चाहिए |

हमें अधैर्य, बर्बरता, धृष्टता या अनुचित दबाव का प्रदर्शन कभी नहीं करना चाहिए | यदि हम लोकतंत्र की सच्ची भावना का विकास करना चाहते हैं तो हमें अधैर्य का त्याग करना होगा | अधैर्य व्यक्ति की अपने ध्येय में आस्था न होने का परिचायक है | *(यंग, 2-2-1921, पृ. 33)*

मेरे हिरासत में लिए जाने पर इतनी उत्तेजना और उपद्रव का जो प्रदर्शन हुआ, उसका कारण मेरी समझ में नहीं आया | यह सत्याग्रह नहीं है | यह तो दुराग्रह से भी गया-बीता है |

सत्याग्रह में भाग लेने वाले लोग इस अनुशासन से बंधे थे कि वे कितना ही संकट आए पर हिंसा पर उतारू नहीं होंगे, पथराव नहीं करेंगे और किसी को किसी तरह की क्षति नहीं पहुंचाएंगे | लेकिन बंबई में हमने पथराव किया है | हमने बाधाएं खड़ी करके ट्रामों को चलने से रोका है | यह सत्याग्रह नहीं है | हमने हिंसा के जुर्म में पकड़े गए 50 आदमियों को छोड़े जाने की मांग की है | हमारा कर्तव्य तो मुख्यतया गिरफ्तारी देना है | जिन्होंने हिंसक कार्रवाइयों में हिस्सा लिया है, उन्हें छुड़ाने का प्रयास करना अपने धार्मिक कर्तव्य से च्युत होना है | *(स्पीरा, पृ. 474)*

मैंने अनगिनत बार कहा है कि सत्याग्रह में हिंसा, लूटपाट और आगजनी के लिए कोई स्थान नहीं है; फिर भी, सत्याग्रह के नाम पर हमने इमारतें जलाई हैं, जबरन हथियार छीने हैं, रुपए ऐंठे हैं, रेलें रोकी हैं, टेलीफोन के तार

काट दिए हैं, निर्दोष लोगों की जानें ली हैं और दूकानों तथा निजी घरों को लूटा है | यदि ऐसे कृत्यों से मुझे जेल या फांसी से बचाया जा सके तो मैं इस तरह बचना पसंद नहीं करूंगा | *(वही, पृ. 476)*

....बुरे उद्देश्यों के लिए वीरता प्रदर्शित करना तथा बलिदान देना उत्तम ऊर्जा का अपव्यय है, और बुरे उद्देश्य के लिए वीरता तथा बलिदान के दुरुपयोग को गौरवान्वित करने से लोगों का ध्यान अच्छे उद्देश्यों की ओर से हटता है| *(यंग, 12-12-1925, पृ. 60)*

....सत्ता के अंधाधुंध प्रतिरोध से अव्यवस्था, बे-लगाम उच्छृंखलता और उसके फलस्वरूप विनाश की स्थिति ही उत्पन्न होती है | *(यंग, 2-4-1931, पृ. 58)*

35. असहयोग

असहयोग जनसाधारण में अपनी गरिमा और शक्ति की भावना जागृत करने का एक प्रयास है | यह तभी संभव है जब उन्हें यह ज्ञान कराया जाए कि यदि वे अपनी अंतरात्मा को पहचान सकें तो उन्हें पशुबल से डरने की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी | *(यंग, 1-12-1920, पृ. 3)*

असहयोग बुराई में अनजाने और अनिच्छापूर्वक भागीदारी करने के विरुद्ध किया गया प्रतिवाद है....बुराई के साथ असहयोग करना उसी प्रकार मनुष्य का कर्तव्य है जिस प्रकार अच्छाई के साथ सहयोग करना | *(यंग, 1-6-1921, पृ. 172)*

असहयोग कोई निष्क्रिय स्थिति नहीं है, यह अत्यंत सक्रिय स्थिति है – हिंसक प्रतिरोध या हिंसा से अधिक सक्रिय | निष्क्रिय प्रतिरोध एक गलत संज्ञा है | असहयोग शब्द का प्रयोग मैंने जिस अर्थ में किया है, उसमें इसका अहिंसक होना आवश्यक है और इसीलिए यह न तो दंडात्मक है और न द्वेष, दुर्भावना अथवा घृणा पर आधारित है | *(यंग, 25-8-1920, पृ. 322)*

धार्मिक आधार

मैं साहसपूर्वक यह कहना चाहता हूं कि भगवद्गीता अंधकार और प्रकाश की शक्तियों के बीच असहयोग का सिद्धांत है | यदि इसकी शाब्दिक व्याख्या की जाए तो सदुद्देश्य का प्रतिनिधित्व करने वाले अर्जुन को अन्यायी कौरवों के साथ युद्ध करने के लिए आदेश दिया गया था |

तुलसीदास ने संतों को परामर्श दिया है कि वे असंतों की संगति से बचें |

जेंदा-अवेस्ता अहुरमज्द और आरीमैन, जिनके बीच कोई मेल नहीं था, के शाश्वत द्वंद्व का प्रस्तुतीकरण है | बाइबिल के बारे में यह कहना कि यह असहयोग का निषेध करती है, ईसा को न समझना है | ईसा तो निष्क्रिय प्रतिरोधकर्ताओं के कंठहार थे, जिन्होंने संदूसियों और फरीसियों की शक्ति को दृढ़तापूर्वक ललकारा था और सत्य की खातिर बच्चों को उनके माता-पिताओं से अलग करने में भी संकोच नहीं किया था |

और इस्लाम के पैगंबर ने क्या किया ? जब तक उनका जीवन संकट में नहीं पड़ गया तब तक उन्होंने मक्का में रहते हुए डटकर असहयोग किया और जब यह देखा कि उन्हें और उनके अनुयाइयों को बेवजह जान गंवानी पड़ेगी तो मक्का की धूल पैरों से झाड़कर मदीना जा पहुंचे और मक्का तभी लौटे जब उन्होंने अपने विरोधियों का सामना करने योग्य शक्ति अर्जित कर ली |

सभी धर्मों में जिस प्रकार न्यायप्रिय व्यक्तियों तथा राजाओं के साथ सहयोग करना मनुष्य का कर्तव्य बताया गया है, उसी प्रकार अन्यायी व्यक्तियों और राजाओं के साथ असहयोग करने का कठोर आदेश दिया गया है | वस्तुत:

विश्व के अधिकांश धर्मग्रंथ असहयोग से भी आगे बढ़कर, यह कहते हैं कि बुराई के सामने नपुंसकों की तरह घुटने टेक देने से हथियार उठा लेना बेहतर है | हिंदू धार्मिक परंपरा में....असहयोग के कर्तव्य को स्पष्ट रूप से सिद्ध किया गया है | प्रह्लाद ने अपने पिता से, मीराबाई ने अपने पति से और विभीषण ने अपने अत्याचारी भाई से असहयोग ही तो किया था | *(यंग, 4-8-1920, पृ. 4)*

बुनियादी सिद्धांत

अहिंसा का पालन इस बुनियादी सिद्धांत पर टिका है कि जो अपने विषय में सही है, वही समस्त विश्व के विषय में भी सही है | सभी मनुष्य मूलत: एक जैसे हैं | इसलिए जो मैं कर सकता हूं, उसे हर कोई कर सकता है....

सार रूप में, यही अहिंसक असहयोग का सिद्धांत है | इसलिए इसका अर्थ यह है कि इसके मूल में प्रेम होना आवश्यक है | इसका उद्देश्य विरोधी को दंड देना या उसे क्षति पहुंचाना नहीं होना चाहिए | उसके साथ असहयोग करते हुए भी हमें उसे यह अनुभव करने देना चाहिए कि हम उसके मित्र हैं और जहां भी संभव हो, हमें उसकी मानवीय सेवा करके उसके हृदय को जीतने का प्रयास करना चाहिए |

वस्तुत: अहिंसा की कसौटी ही यह है कि अहिंसक संघर्ष में, उसके उपरांत कोई विद्वेष बाकी न रहे और शत्रु मित्र बन जाएं | दक्षिण अफ्रीका में जनरल स्मट्स के साथ मेरा यही अनुभव रहा | शुरू में, वह मेरे कट्टर विरोधी और आलोचक थे | आज वह मेरे अन्यतम मित्र हैं....

स्थायी गुण

समय बदलता है और प्रणालियों का ह्रास हो जाता है, लेकिन मेरा विश्वास है कि अंतत: केवल अहिंसा और अहिंसा पर आधारित चीज़ें ही बची रहेंगी | ईसाई धर्म का जन्म एक हज़ार नौ सौ वर्ष पहले हुआ था | ईसा का पौरोहित्य केवल तीन वर्ष चला | उनके उपदेशों का उनके जीवन-काल में ही गलत अर्थ लगाया गया और आज ईसाई जगत उनके प्रमुख उपदेश 'अपने शत्रु से प्रेम करो' को ही नकार रहा है | लेकिन किसी व्यक्ति के उपदेश के केंद्रीय सिद्धांत के प्रचार के लिए उन्नीस सौ वर्ष होते ही क्या हैं ?

उसके छह सौ वर्ष बाद इस्लाम धर्म आया | बहुत-से मुसलमान तो मुझे यह कहने तक की इजाजत नहीं देंगे कि इस्लाम शब्द का अर्थ ही है विशुद्ध शांति | कुरान के अध्ययन ने मेरी यह धारणा पुष्ट कर दी है कि कुरान का आधार हिंसा नहीं है |

लेकिन इसमें भी वही बात है – तेरह सौ वर्ष काल के चक्र में मात्र एक मनका है | मेरा विश्वास है कि ये दोनों महान धर्म उसी हद तक जीवित रहेंगे जिस हद तक उनके अनुयायी अहिंसा के मुख्य उपदेश को आत्मसात करेंगे | लेकिन यह बात केवल बुद्धि की सहायता से ग्रहण नहीं की जा सकती, यह हमारे हृदयों में पैठनी चाहिए| *(हरि, 12-11-1938, पृ. 327)*

असहयोग यद्यपि सत्याग्रह के शस्त्रागार का मुख्य शस्त्र है, पर यह नहीं भूलना चाहिए कि यह सत्य और न्याय पर दृढ़ रहते हुए विरोधी का सहयोग प्राप्त करने का एक साधन मात्र है | अहिंसक विधि का सार यह है कि यह विरोध को समाप्त करने का प्रयास करता है, स्वयं विरोधियों को नहीं | अहिंसक संघर्ष में तुम्हें, कुछ हद तक, जिस व्यवस्था का तुम विरोध कर रहे हो, उसकी परंपरा और रूढ़ियों को मानना पड़ता है | इसलिए विरोधी शक्ति के साथ किसी तरह का संबंध न रखना सत्याग्रही का ध्येय कभी नहीं हो सकता; उसका ध्येय तो उस संबंध का रूपांतरण अथवा शुद्धीकरण है | *(हरि, 29-4-1939, पृ. 101)*

असहयोग का नीतिशास्त्र

मैं असहयोग को इतना शक्तिशाली और शुद्ध साधन मानता हूं कि अगर इसका इस्तेमाल सच्ची भावना से किया जाए तो यह पहले ईश्वर के साम्राज्य की कामना करने के समान होगा जिसके बाद सब कुछ स्वयं प्राप्त होता जाता है | तब लोग अपनी सच्ची शक्ति को पहचान पाएंगे | वे अनुशासन, आत्मनियंत्रण, संयुक्त कार्रवाई, अहिंसा, संगठन आदि उन सभी बातों का मूल्य पहचान पाएंगे जिनसे कोई राष्ट्र महान और अच्छा, दोनों बनता है, केवल महान ही नहीं | *(यंग, 2-6-1920, पृ. 3)*

असहयोग जैसा शुद्ध, हानिरहित और फिर भी, कारगर साधन दूसरा नहीं है | विवेकपूर्वक इस्तेमाल करने पर इसके कोई दुष्परिणाम सामने नहीं आने चाहिए | और इसकी गहनता पूर्णतया लोगों की बलिदान करने की क्षमता पर निर्भर करेगी | *(यंग, 30-6-1920, पृ. 3)*

हमने 'न' कहने की शक्ति खो दी थी | सरकार से 'न' कहना निष्ठाहीन और प्राय: द्रोहपूर्ण माना जाने लगा था | सहयोग करने से जान-बूझकर इंकार करने की यह तकनीक उसी प्रकार की है जैसे कि किसान बुआई से पहले जमीन की निराई करना जरूरी समझता है | कृषि के लिए जितनी जरूरी बुआई है, उतनी ही जरूरी निराई भी है | फसल जब बढ़ रही होती है तब भी निराई की खुरपी किसान के दैनंदिन प्रयोग की चीज़ होती है |

राष्ट्र का असहयोग राष्ट्र की शर्तों पर सरकार से सहयोग करने का निमंत्रण है जो कि प्रत्येक राष्ट्र का अधिकार और प्रत्येक अच्छी सरकार का कर्तव्य है | असहयोग राष्ट्र की ओर से चेतावनी है कि वह सरकार की प्रतिपाल्यता से संतुष्ट नहीं है | *(यंग, 1-6-1921, पृ. 173)*

अहिंसक असहयोग आंदोलन और पश्चिम के ऐतिहासिक स्वाधीनता-संघर्षों के बीच कोई साम्य नहीं है | यह पशुबल या घृणा पर आधारित नहीं है | इसका ध्येय अत्याचारी का सफाया करना नहीं है | यह आत्मशुद्धीकरण का आंदोलन है | अत: इसका उद्देश्य अत्याचारी का हृदय-परिवर्तन है | यह नाकामयाब इसलिए हो सकता है कि भारत अभी जन-आंदोलन के लिए तैयार नहीं है | लेकिन आंदोलन को झूठे पैमानों से परखना गलत होगा | मेरी

निजी राय है कि आंदोलन किसी भी रूप में असफल नहीं हुआ है | इसने भारत के स्वाधीनता संग्राम में एक स्थायी स्थान बना लिया है | *(यंग, 11-2-1926, पृ. 59)*

एक कर्तव्य

कभी-कभी असहयोग भी उसी प्रकार एक कर्तव्य बन जाता है जिस प्रकार कि सहयोग है | कोई व्यक्ति अपने ही सर्वनाश अथवा दासता में सहयोग देने के लिए बाध्य नहीं है | दूसरों के प्रयास से हासिल की गई आज़ादी, वे प्रयास चाहे जितने हितकारी हों, उन्हें वापस लेते ही संकट में पड़ जाती है | दूसरे शब्दों में, ऐसी आज़ादी सच्ची आज़ादी नहीं है | लेकिन अहिंसक असहयोग की मदद से आज़ादी हासिल करने की कला सीखते ही निम्न-से-निम्न व्यक्ति भी उसकी दीप्ति का अनुभव कर सकते हैं....

मेरी निश्चित धारणा है कि जो बात अहिंसक असहयोग से अनाचारी का अंतत: हृदय-परिवर्तन करके हासिल की जा सकती है, वही हिंसा से कभी नहीं की जा सकती | भारत में, हमने अभी तक अहिंसा के हथियार को उसकी पात्रता के अनुरूप आजमाकर नहीं देखा है | चमत्कार तो यह है कि अपनी आधी-अधूरी अहिंसा से भी हमने इतना कुछ हासिल कर लिया है | *(यंग, 20-4-1920, पृ. 97)*

मैंने असहयोग को धार्मिक रूप में प्रस्तुत किया है, चूंकि मैं राजनीति में उसी सीमा तक प्रविष्ट होता हूं जहां तक वह मेरी धार्मिक शक्ति का विकास करती है | *(यंग, 19-1-1921, पृ. 19)*

मेरे असहयोग के पीछे मेरी यह उत्कट इच्छा सदा रहती है कि अपने घोर-से-घोर विरोधी के साथ भी किसी भी बहाने से सहयोग करूं | मैं स्वयं एक बड़ा ही अपूर्ण मानव हूं जिसे निरंतर ईश्वर के अनुग्रह की आवश्यकता रहती है और मेरी दृष्टि में, कोई व्यक्ति ऐसा नहीं है जिसका उद्धार संभव ही न हो | *(यंग, 4-6-1925, पृ. 193)*

....धूर्तता का समर्थन मैं कभी नहीं करूंगा | मेरी दृष्टि में, सत्याग्रह का नियम, प्रेम का नियम, एक शाश्वत सिद्धांत है | मैं हर अच्छी बात के साथ सहयोग करता हूं | मैं हर बुरी बात के साथ असहयोग करना चाहता हूं.... *(यंग, 18-6-1925, पृ. 213)*

घृणा नहीं

प्रार्थनामय अनुशासन में रहते-रहते, पिछले चालीस से भी अधिक वर्षों से मैंने किसी भी व्यक्ति को घृणा की दृष्टि से देखना बंद कर दिया है | मैं यह जानता हूं कि यह एक बड़ा दावा है | फिर भी, पूरी विनम्रता के साथ, मैं यह दावा कर रहा हूं | लेकिन बुराई जहां भी है, मैं उससे घृणा कर सकता हूं और जरूर करता हूं |

मेरे असहयोग के मूल में घृणा नहीं, प्रेम होता है | मेरा व्यक्तिगत धर्म मुझे किसी से भी घृणा करने की इजाजत नहीं देता | मैंने यह सरल किंतु महान सिद्धांत बारह वर्ष की आयु में स्कूल की एक किताब से सीखा जो आज भी

दृढ़ता के साथ मेरे मानस-पटल पर अंकित है | यह दिन-प्रतिदिन और दृढ़ होता जाता है | यह मेरे जीवन का एक तीव्र मनोवेग है | *(यंग, 6-8-1925, पृ. 272)*

ऐसा नहीं है कि मैं हर चीज़ के प्रति अनिष्ठा की भावना पालने लगता हूं, लेकिन जो असत्य है, अन्यायपूर्ण है और बुरा है, उसके प्रति मेरी कोई निष्ठा नहीं होती....मैं किसी संस्था के प्रति तभी तक नैष्ठिक रहता हूं जब तक वह मेरे और मेरे राष्ट्र के विकास में सहायक होती है | जैसे ही मुझे लगता है कि वह विकास में साधक होने के बजाय बाधक सिद्ध हो रही है, मैं उसके प्रति निष्ठाहीन होना अपना कर्तव्य समझने लगता हूं | *(यंग, 13-8-1925, पृ. 277)*

मेरा असहयोग यद्यपि मेरे धर्म का एक अंग है, पर यह सहयोग की शुरुआत होती है | मेरा असहयोग पद्धतियों और प्रणालियों के प्रति होता है, व्यक्तियों के प्रति कभी नहीं | मैं तो डायर के प्रति भी दुर्भावना नहीं पालूंगा | मैं दुर्भावना को मानव गरिमा के अनुरूप नहीं मानता | *(यंग, 12-9-1929, पृ. 300)*

कुछ लोगों ने मुझे अपने समय का सबसे बड़ा क्रांतिकारी बताया है | यह चाहे गलत हो, पर मैं स्वयं को एक क्रांतिकारी – एक अहिंसक क्रांतिकारी – अवश्य मानता हूं | असहयोग मेरा शस्त्र है | कोई व्यक्ति संबंधित लोगों के स्वेच्छा अथवा बलात् सहयोग के बिना विपुल धनराशि का संचय नहीं कर सकता |*(यंग, 26-11-1931, पृ. 369)*

मैं स्वभावत: सहयोगी हूं; मेरे असहयोग का उद्देश्य वस्तुत: सहयोग से सारी नीचता और झूठ को निकाल फेंकना होता है, क्योंकि मेरे विचार में ऐसा सहयोग किसी काम का नहीं है | *(एफा, पृ. 84)*

36. उपवास और सत्याग्रह

सत्याग्रह का शस्त्र

सत्याग्रह के शस्त्रागार में उपवास एक बड़ा शक्तिशाली शस्त्र है | इसका प्रयोग हर कोई नहीं कर सकता | उपवास करने की शारीरिक क्षमता से ही उसकी पात्रता निर्धारित नहीं की जा सकती | ईश्वर में जागृत आस्था के बिना इसका कोई उपयोग नहीं है | यह एक यांत्रिक प्रयास अथवा मात्र अनुकरण के रूप में कभी नहीं किया जाना चाहिए | उपवास की प्रेरणा व्यक्ति की आत्मा की गहराई से आनी चाहिए | इसलिए उपवास सदा एक विरल घटना होती है | *(हरि, 18-3-1939, पृ. 56)*

विशुद्ध उपवास में स्वार्थ, क्रोध, आस्थाहीनता अथवा अधैर्य का कोई स्थान नहीं हो सकता....उसमें असीम धैर्य, दृढ़ संकल्प, उद्देश्य के प्रति अडिग निष्ठा, पूर्ण शांति तथा क्रोध का अभाव होना परम आवश्यक है | लेकिन चूंकि मनुष्य के लिए इन सभी गुणों का तत्काल विकास कर पाना संभव नहीं है, इसलिए जिसने अहिंसा के नियमों के पालन का व्रत न लिया हो, उसे सत्याग्रही उपवास पर नहीं बैठना चाहिए | *(हरि, 13-10-1940, पृ. 322)*

उपवास....एक प्रबल चीज़ है और यह खतरे से पूरी तरह मुक्त नहीं होता | मुझे जब भी उपवास गलत या नैतिक दृष्टि से अनुचित लगा है तब मैंने स्वयं उसकी निंदा की है | लेकिन स्पष्ट नैतिक संकेत मिलने पर भी उपवास से जी चुराना अपने कर्तव्य से च्युत होना है | सत्याग्रही उपवास विशुद्ध सत्य तथा अहिंसा पर आधारित होना चाहिए| *(हरि, 28-7-1946, पृ. 235)*

उपवास तथा मृत्यु

आमरण उपवास सत्याग्रह के शस्त्रागार का अंतिम एवं सबसे शक्तिशाली शस्त्र है | यह एक पवित्र शस्त्र है | इसे इसके संपूर्ण निहितार्थ के साथ स्वीकार करना चाहिए | महत्वपूर्ण स्वयं उपवास नहीं है, बल्कि उसका निहितार्थ है| *(हरि, 18-8-1946, पृ. 262)*

उपवास और ईसा का मार्ग

उपवास यांत्रिक तरीके से नहीं किया जा सकता | यह एक शक्तिशाली चीज़ है, पर अनाड़ीपन के साथ करने पर यह खतरनाक साबित हो सकता है | इसके लिए पूर्ण आत्म-शुद्धीकरण की आवश्यकता होती है - उससे भी कहीं ज़्यादा आत्मशुद्धीकरण की जो केवल मन में ही प्रतिकार की भावना लेकर मौत का सामना करने के लिए चाहिए | पूर्ण बलिदान का एक ही ऐसा कृत्य समूची दुनिया के लिए काफ़ी होगा | ईसा का उदाहरण इसी कोटि में आता है | *(हरि, 27-10-1946, पृ. 272)*

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि उपवास वस्तुत: जोर-जबर्दस्ती करने का साधन बनाए जा सकते हैं | किसी स्वार्थ-सिद्धि के लिए किए गए उपवास ऐसे ही होते हैं | किसी आदमी से रुपया ऐंठने या किसी निजी

उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया गया उपवास जोर-जबर्दस्ती या अनुचित प्रभाव के प्रयोग की सीमा में आ जाता है | मैं निस्संकोच ऐसे अनुचित प्रभाव का प्रतिकार करने का समर्थन करूंगा | मैंने स्वयं अपने विरोध में किए गए ऐसे उपवासों अथवा उनकी धमकियों का सफलतापूर्वक प्रतिरोध किया है |

अगर यह तर्क दिया जाए कि स्वार्थपूर्ण और निस्स्वार्थ उद्देश्यों के बीच की विभाजक रेखा बड़ी महीन होती है तो मेरा उत्तर है कि यदि कोई व्यक्ति किसी के उपवास को स्वार्थपूर्ण या अन्य किसी रूप में निकृष्ट मानता है तो उसे दृढ़तापूर्वक उसके सामने झुकने से इंकार कर देना चाहिए, भले ही इसके फलस्वरूप उपवास पर बैठे व्यक्ति की मृत्यु हो जाए |

अगर लोग ऐसे उपवासों की अपेक्षा करने की आदत डाल लें जो, उनकी राय में, निकृष्ट उद्देश्यों को लेकर किए गए हैं, तो ऐसे उपवासों से जोर-जबर्दस्ती और अनुचित प्रभाव का कलंक दूर हो जाएगा | अन्य सभी मानव संस्थाओं की तरह, उपवास जायज और नाजायज, दोनों प्रकार का हो सकता है | *(हरि, 9-9-1933, पृ. 5)*

यदि कोई व्यक्ति, चाहे वह कितना ही जनप्रिय तथा महान हो, किसी अनुचित मुद्दे को उठाता है और उस अनौचित्य की रक्षा के लिए उपवास करता है तो यह उसके मित्रों, सहयोगियों और संबंधियों (जिनमें मैं अपनी गिनती भी करता हूं) का कर्तव्य है कि उसकी प्राणरक्षा के लिए अनुचित मुद्दे को मनवाने की अपेक्षा उसे मर जाने दें | उद्देश्य अनुचित हो तो शुद्ध-से-शुद्ध साधन भी अशुद्ध बन जाते हैं | *(हरि, 17-3-1946, पृ. 43)*

अंतिम उपाय

यहां मैं एक सामान्य सिद्धांत का निरूपण करना चाहूंगा | सत्याग्रही को उपवास का आश्रय अंतिम उपाय के रूप में तभी लेना चाहिए जब अन्याय के निवारण के सभी उपाय आजमा लिए गए हों और वे असफल हो गए हों | उपवासों में अनुकरण के लिए कोई स्थान नहीं होता | जिसमें आंतरिक शक्ति नहीं है, उसे उपवास करने की बात स्वप्न में भी नहीं सोचनी चाहिए | एक बात और है कि उपवास को सफलता के प्रति आसक्ति के साथ कभी नहीं करना चाहिए |

लेकिन सत्याग्रही अपनी दृढ़ धारणा से एक बार उपवास आरंभ कर दे तो फिर उसे उस पर कायम रहना चाहिए चाहे उसकी सफलता की संभावना हो या न हो | मैं यह नहीं कह रहा कि उपवास का फल मिलता है या कि मिल नहीं सकता | जो व्यक्ति उपवास के अनुकूल परिणाम की आशा लेकर उपवास करता है, वह प्राय: असफल हो जाता है | यदि वह असफल होता दिखाई नहीं भी देता तो भी वह उस आंतरिक आनंद से वंचित रहता है जो सच्चे उपवास से प्राप्त होता है....

बेतुके उपवास प्लेग की तरह फैलते हैं और वे हानिकारक होते हैं | लेकिन जब उपवास कर्तव्य के रूप में सामने आए तो उसका त्याग नहीं किया जा सकता | इसलिए मैं उपवास तभी करता हूं जब मुझे लगता है कि वह जरूरी

है और मैं किसी भी प्रकार से उसे टाल नहीं सकता | जो मैं करता हूं, उसे वैसी ही परिस्थितियों में करने से अन्य लोगों को रोक नहीं सकता | यह सभी जानते हैं कि अच्छी चीज़ों का भी प्राय: दुरुपयोग होता है | हम अपने चारों ओर रोज इसे घटते देखते हैं | *(हरि, 21-4-1946, पृ. 93)*

....जब मनुष्य की चतुराई जवाब दे जाती है, तो अहिंसा का पुजारी उपवास करता है | उपवास प्रार्थना के भाव में तीव्रता लाता है | यह एक आध्यात्मिक कृत्य है और इसलिए इसे ईश्वर को निवेदित करना चाहिए | लोगों के जीवन पर इसका यह प्रभाव होता है कि, यदि वे उपवास करने वाले व्यक्ति से थोड़े भी परिचित हैं तो, उनकी सुप्त चेतना जाग जाती है |

हां, इस बात का खतरा जरूर है कि भ्रांतिपूर्ण सहानुभूति के वशीभूत होकर लोग अपने प्रिय व्यक्ति की प्राणरक्षा के लिए उसकी इच्छा के विरुद्ध काम कर सकते हैं | इस खतरे का मुकाबला करना जरूरी है | आदमी अपने दृष्टिकोण की सच्चाई के प्रति आश्वस्त हो तो उसे सही कार्रवाई करने से पीछे नहीं हटना चाहिए | इससे अधिकाधिक सावधानी सुनिश्चित हो जाती है | इस प्रकार का उपवास अंतर्वाणी के आदेश का पालन करते हुए किया जाता है और इसलिए इसमें जल्दबाजी का तत्व नहीं होता | *(हरि, 21-12-1947, पृ. 476)*

7. अपरिग्रह

37. अपरिग्रह का दिव्य संदेश

सेवा की कुंजी

जब मैंने स्वयं को राजनीति की कुंडली में फंसा पाया तो मैंने अपने आपसे यह प्रश्न किया कि मुझे अनैतिकता, असत्य और तथाकथित राजनीतिक लाभ से पूर्णतया मुक्त रहने के लिए क्या करना चाहिए....शुरू में, यह एक कठिन संघर्ष था और मुझे अपनी पत्नी तथा – मुझे खूब याद है कि – अपने बच्चों तक के साथ भिड़ना पड़ा | लेकिन जो भी हुआ, मैं इस निश्चित निष्कर्ष पर पहुंच गया कि यदि मुझे उन लोगों की सेवा करनी है जिनके लिए मेरा जीवन समर्पित है और जिनके कष्टों का मैं दैनंदिन साक्षी हूं, तो मुझे अपने धन, अपनी सारी संपत्ति का त्याग कर देना चाहिए....

मैं सच्चाई के साथ यह नहीं कह सकता कि जब मेरी यह धारणा बनी तो मैंने तत्काल सभी चीज़ों का त्याग कर दिया | मुझे मानना होगा कि शुरू में प्रगति धीमी रही | और आज जब मैं संघर्ष के उन दिनों की याद करता हूं तो पाता हूं कि शुरू में मुझे इसमें कष्ट भी हुआ था | लेकिन ज्यों-ज्यों दिन गुजरते गए, मैंने देखा कि मुझे और भी बहुत-सी ऐसी चीज़ों का त्याग कर देना चाहिए जिन्हें मैं अपनी समझता था | आखिरकार एक समय ऐसा आया जब उनका त्याग करके मुझे निश्चित रूप से बड़ी प्रसन्नता का अनुभव हुआ | और एक के बाद एक, मानो गुणोत्तर क्रम में, चीज़ें मेरे हाथ से फिसलती गईं |

और, आज जब मैं अपने अनुभवों का वर्णन कर रहा हूं, मैं कह सकता हूं कि मेरे कंधों से एक भारी बोझ उतर गया और मुझे लगने लगा कि मैं अब ज़्यादा आसानी से घूम-फिर सकता हूं और अपने साथियों की सेवा ज़्यादा आराम के साथ तथा और भी अधिक आनंद का अनुभव करते हुए कर सकता हूं | इसके बाद तो कोई चीज़ अपने कब्जे में रखना कष्टप्रद और भार लगने लगा |

उस आनंद के कारण की खोज करते हुए मैंने पाया कि अगर मैं कोई चीज़ अपनी मानकर अपने पास रखता हूं तो सारी दुनिया से उसकी रक्षा करनी पड़ती है | मैंने यह भी पाया कि दुनिया में ऐसे बहुत-से लोग हैं जिनके पास वह चीज़ नहीं है, हालांकि वे उसे चाहते हैं, और अगर भूखे तथा अकालग्रस्त लोगों को मैं अकेले में कहीं मिल जाऊं तो वे न केवल मेरी चीज़ को मेरे साथ बांट लेना चाहेंगे बल्कि उसे मुझसे छीन लेना चाहेंगे और तब उसकी रक्षा के लिए मुझे पुलिस से संरक्षण मांगना होगा | तब मैंने स्वयं से कहा कि वे लोग अगर उस वस्तु को चाहते हैं और मुझसे छीन लेने पर उतारू हैं तो इसलिए नहीं कि उनके मन में मेरे प्रति कोई द्वेष है बल्कि इसलिए कि उनकी जरूरत मेरी जरूरत से बड़ी है | *(स्पीरा, पृ. 166-67)*

अपनी सारी संपत्ति का त्याग कर देने पर दुनिया....मेरे ऊपर हंस सकती है | पर मेरे लिए यह त्याग निश्चित रूप से लाभदायक सिद्ध हुआ है | मैं चाहूंगा कि लोग मेरे इस संतोष से प्रतियोगिता करें | यह मेरा सबसे कीमती खजाना है | इसलिए यह कहना शायद ठीक ही है कि यद्यपि मैं गरीबी का प्रचार करता हूं, पर मैं सबसे धनवान व्यक्ति हूं| *(यंग, 30-4-1925, पृ. 149)*

स्वैच्छिक आत्मत्याग

हमारी सभ्यता, हमारी संस्कृति और हमारा स्वराज आवश्यकताओं को बढ़ाने – विषयासक्ति - पर नहीं, अपितु आत्मत्याग पर निर्भर है | *(यंग, 23-2-1921, पृ. 59)*

अपरिग्रह अस्तेय के साथ जुड़ा है | यदि हमारे पास कोई ऐसी वस्तु है जिसकी हमें आवश्यकता नहीं है तो भले ही वह मूलत: चुराई गई वस्तु न हो, पर चोरी की संपत्ति की श्रेणी में ही गिनी जाएगी | परिग्रह का अर्थ है भविष्य के लिए व्यवस्था करना | सत्यशोधक अर्थात प्रेम के नियम का अनुयायी, कल के लिए बचाकर कुछ नहीं रख सकता | ईश्वर कल के लिए किसी वस्तु का संग्रह नहीं करता | वह वर्तमान के लिए जितना जरूरी है, उससे तनिक भी अधिक की सृष्टि कभी नहीं करता | इसलिए यदि हमें ईश्वर के विधान में आस्था है तो हमें यह भरोसा रखना चाहिए कि वह हमारे प्रतिदिन के भोजन, अर्थात हमारी आवश्यकता की सभी वस्तुओं की व्यवस्था करेगा....

दैवी नियम – जो मनुष्य को उसका दैनिक भोजन और बस इतना ही, प्रदान करता है – के अज्ञान और उसकी उपेक्षा के कारण ही आज दुनिया में इतनी असमानताएं और उससे उत्पन्न होने वाले कष्ट पैदा हुए हैं | धनवानों के पास फालतू चीज़ों का अंबार लगा है जिनकी उन्हें आवश्यकता नहीं है, अत: वे उपेक्षित रहती हैं और उनकी बर्बादी होती है जबकी लाखों-करोड़ों लोग भोजन के अभाव में भूखों मर जाते हैं |

यदि प्रत्येक व्यक्ति सिर्फ उतना रखे जितने की उसे जरूरत है तो कोई अभावग्रस्त नहीं रहेगा और सब संतोष का जीवन जिएंगे | आज जो स्थिति है, उसमें जितने असंतुष्ट निर्धन हैं, उतने ही असंतुष्ट धनवान भी हैं | निर्धन व्यक्ति लखपति बनने को उतावला है और लखपति करोड़पति बनने को |

संतोष की भावना का सार्वभौम प्रसार करने की दृष्टि से धनवानों को संपत्ति का त्याग करने में पहल करनी चाहिए | यदि वे अपनी संपत्ति को संयत सीमाओं में ही रखें तो भूखों का पेट आसानी से भरा जा सकेगा और वे भी धनवानों के साथ-साथ संतोष का पाठ पढ़ सकेंगे |

अपरिग्रह के आदर्श की पूर्ण प्राप्ति के लिए तो यह जरूरी है कि चिड़ियों की तरह मनुष्य के सिर पर भी छत न हो, न उसके पास वस्त्र हों और न कल के लिए भोजन का भंडार हो | उसे भोजनादि दैनंदिन आवश्यकता की वस्तुओं की जरूरत होगी, लेकिन उनकी व्यवस्था करना उसका नहीं अपितु भगवान का दायित्व होगा | इस आदर्श तक तो शायद विरले लोग ही पहुंच सकते हैं, लेकिन उसकी प्रतीयमान असंभवता से हम जैसे साधारण

सत्यशोधकों को उससे दूर भागना उचित नहीं है | हमें इस आदर्श को निरंतर अपने सामने रखना चाहिए और उसके प्रकाश में अपनी धन-संपत्ति का जायजा लेकर उसमें कमी करने का प्रयास करना चाहिए |

सभ्यता, सही अर्थों में, आवश्यकताओं के बहुलीकरण में निहित नहीं है, बल्कि उनमें सोच-समझकर स्वैच्छिक रूप से कमी करने में है | केवल इसी से सच्चे सुख और संतोष में वृद्धि होती है और मनुष्य की सेवा करने की क्षमता बढ़ती है |

विशुद्ध सत्य की दृष्टि से, यह देह भी एक संपत्ति है | यह ठीक ही कहा गया है कि भोग की कामना आत्मा के लिए देह की सृष्टि करती है | इस कामना के लुप्त हो जाने पर, देह की कोई आवश्यकता शेष नहीं रह जाती और मनुष्य जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा पा जाता है | आत्मा तो सर्वव्यापी है, वह पिंजरे जैसे शरीर में बंदी होना अथवा उस पिंजरे के लिए बुरे काम करना और प्राणियों की जान तक लेना क्यों चाहेगी ?

त्याग का आदर्श

इस तरह हम संपूर्ण त्याग के आदर्श तक पहुंचते हैं और देह को, जब तक यह है, सेवा के लिए काम में लाना सीखते हैं; यहां तक कि हमारे जीवन का आधार रोटी नहीं अपितु सेवा बन जाती है | हम सेवा के लिए ही खाते-पीते और सोते-जागते हैं | मन की ऐसी वृत्ति जीवन में सच्चा सुख लाती है और समय आने पर भगवद्दर्शन कराती है | हम सभी को इस दृष्टिकोण से अपना जायजा लेना चाहिए |

यह स्मरणीय है कि अपरिग्रह का सिद्धांत वस्तुओं और विचारों पर समान रूप से लागू होता है | जो व्यक्ति अपने दिमाग में निरर्थक ज्ञान भरता है वह भी इस अमूल्य सिद्धांत का उल्लंघन करता है | जो विचार हमें ईश्वर से विमुख करते हैं, या उसकी ओर अभिमुख नहीं करते, वे हमारे मार्ग में बाधक हैं |

इस संदर्भ में हमको गीता के तेरहवें अध्याय में दी गई ज्ञान की परिभाषा पर विचार करना चाहिए | उसमें हमें बताया गया है कि नम्रता (अमानित्व) आदि ज्ञान हैं और शेष सब अज्ञान है | अगर यह सही है – और इसमें संदेह नहीं कि यह सही है – तो जिसे हम आज ज्ञान समझकर गले से लगाए हुए हैं, अधिकांशत: वह निपट अज्ञान है और हमें किसी भी प्रकार से लाभान्वित करने के स्थान पर हानि ही पहुंचाता है | यह दिमाग को भटकाता ही नहीं है बल्कि उसमें शून्यता पैदा कर देता है और उससे बुराई के नाना रूपों में असंतोष की वृद्धि होती है |

कहने का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि हम जड़ हो जाएं | हमारे जीवन का प्रत्येक क्षण मानसिक अथवा शारीरिक सक्रियता से युक्त होना चाहिए, लेकिन यह सक्रियता सात्विक हो, जो हमें सत्य की ओर प्रवृत्त करे | जिसने सेवा के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया है, वह एक क्षण के लिए भी निष्क्रिय होकर नहीं बैठ सकता | लेकिन हमें अच्छे काम और बुरे काम के बीच अंतर करना सीखना चाहिए | सेवा के प्रति अनन्य समर्पण से मनुष्य में अच्छे और बुरे कामों के बीच अंतर करना सहज रूप से आ जाता है | *(फ्रायम, पृ. 23-26)*

नैतिक प्रयोजन

हम सबके पास संपत्ति क्यों होनी चाहिए ? हम, एक निश्चित समय के बाद, अपनी समस्त संपत्ति का त्याग क्यों न कर दें ? बेईमान व्यापारी कपटपूर्ण प्रयोजनों के लिए ऐसा करते हैं | तो हम एक नैतिक तथा महान प्रयोजन के लिए ऐसा क्यों नहीं कर सकते ?

एक समय था जब हिंदू सामान्यत: ऐसा ही करता था | हर हिंदू से आशा की जाती है कि एक निश्चित अवधि तक गृहस्थ जीवन जीने के उपरांत वह अपरिग्रह के जीवन में प्रवेश करे | इस उत्तम परंपरा को हम फिर से शुरू क्यों न करें ? व्यवहार में, इसका अर्थ केवल यह है कि हम अपने भरण-पोषण के लिए उन लोगों की दया पर निर्भर हो जाएं जिन्हें हम अपनी संपत्ति का हस्तांतरण कर रहे हैं | मुझे तो यह विचार आकर्षक लगता है | सद्भावपूर्ण विश्वास के ऐसे असंख्य मामलों में से कोई एकाध ही मामला ऐसा निकलता है जिसमें विश्वास भंग किया गया हो |

....इस रीति को क्या रूप दिया जाए कि बेईमान आदमी इसका अनुचित लाभ न उठा सकें, यह तो लंबे प्रयोग से ही निर्धारित किया जा सकता है | लेकिन दुरुपयोग के भय से इस प्रयोग को करने से स्वयं को रोकने की कोई आवश्यकता नहीं है | गीताकार ने तो गीता का दिव्य संदेश देने से स्वयं को रोका नहीं था, यद्यपि वे संभवत: यह जानते थे कि लोग इसकी दुहाई देकर सभी तरह की बुराइयों, यहां तक कि हत्या तक, का औचित्य सिद्ध करने का प्रयास करेंगे | *(यंग, 3-7-1924, पृ. 221)*

धर्म की उच्चतम प्राप्ति....सर्वस्व त्याग की अपेक्षा रखती है | मानव जीवन के नियम का बोध हो जाने के बाद हमें, अधिक नहीं बस जहां तक हम से बन पड़े वहां तक, उसे जीवन में उतारने का प्रयास करना चाहिए | यही मध्यमार्ग है | *(यंग, 5-2-1925, पृ. 48)*

स्वर्णिम नियम

स्वर्णिम नियम यह है....कि जो चीज़ लाखों लोगों को उपलब्ध नहीं है, उसका भोग करने से हम दृढ़तापूर्वक इंकार कर दें | इंकार करने की यह क्षमता हमारे अंदर अचानक ही नहीं आ जाएगी | पहले तो इस मानसिक वृत्ति का विकास करना होगा कि जो वस्तु अथवा सुविधा लाखों लोगों को उपलब्ध नहीं है, उसका भोग हम नहीं करेंगे | इसके बाद अगला कदम होगा इस मनोवृत्ति के अनुरूप अपने जीवन-क्रम में यथाशीघ्र परिवर्तन लाना | *(यंग, 24-6-1926, पृ. 226)*

प्रेम और अनन्य स्वामित्व साथ-साथ कभी नहीं चल सकते | सिद्धांत रूप से, जहां पूर्ण प्रेम है वहां पूर्ण अपरिग्रह भी होना आवश्यक है | शरीर हमारी अंतिम संपत्ति है | इसलिए मनुष्य पूर्ण प्रेम और पूर्ण संपत्ति-त्याग का दावा तभी कर सकता है यदि वह मानव सेवा के लिए मौत को गले लगाने और अपने शरीर का त्याग करने के लिए तत्पर हो |

लेकिन यह सिद्धांत रूप से ही ठीक है | वास्तविक जीवन में हम पूर्ण प्रेम की अवस्था को शायद ही प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि एक संपत्ति के रूप में शरीर सदा अपूर्ण रहेगा और मनुष्य सदा पूर्णता का प्रयास करता रहेगा | कहने का तात्पर्य यह है कि जब तक हम जीवित हैं तब तक प्रेम तथा अपरिग्रह की पूर्णता प्राप्त नहीं की जा सकती; फिर भी, हमें निरंतर इसके लिए प्रयासरत रहना चाहिए | *(मारि, अक्तू., 1935, पृ. 412)*

ईसा, मोहम्मद, बुद्ध, नानक, कबीर, चैतन्य, शंकर, दयानंद, रामकृष्ण ऐसे महापुरुष थे जिन्होंने हजारों लोगों को अत्यधिक प्रभावित किया था और उनके चरित्र को संवारा था | उनके जीवन से यह धरा समृद्ध हुई है | इन सभी महापुरुषों ने जान-बूझकर निर्धनता का वरण किया था....हम आधुनिक भौतिकवादी उन्माद को ज्यों-ज्यों अपना लक्ष्य मानते जा रहे हैं, त्यों-त्यों प्रगति के पथ से नीचे लुढ़कते जा रहे हैं | *(स्पीरा, पृ. 353)*

धन, सत्ता और प्रतिष्ठा मनुष्य से न जाने कितने पाप और अनाचार कराते हैं | *(ए, पृ. 168)*

किसी की अनुमति के बिना उसकी कोई वस्तु ले लेना तो चोरी है ही, पर यदि हम उसे देने वाले ने जिस काम के लिए दिया था, उससे भिन्न काम में इस्तेमाल करें या उसने जितने समय के लिए दिया था, उससे अधिक समय के लिए काम में लाएं तो यह भी चोरी ही है | यह बात इस गूढ़ सत्य पर आधारित है कि ईश्वर वर्तमान के लिए जितना आवश्यक है, उससे अधिक की सृष्टि कभी नहीं करता | इसलिए जो व्यक्ति किसी वस्तु की न्यूनतम आवश्यक मात्रा से अधिक का उपयोग करता है तो वह चोरी का दोषी है | *(आआए, पृ. 58)*

जीवन का रहस्य

सर्वस्व का त्याग करके उसे ईश्वर को समर्पित कर दो और तब जियो | इससे जीने का अधिकार त्याग से व्युत्पन्न होगा | उक्ति यह नहीं है कि 'जब सब अपने हिस्से का काम करेंगे तो मैं भी करूंगा |' उक्ति यह है कि 'दूसरों की चिंता मत करो, पहले अपना कर्तव्य करो और बाकी ईश्वर के ऊपर छोड़ दो' | *(हरि, 6-3-1937, पृ. 27)*

तुम्हें भौतिक वस्तुओं के स्वामित्व अथवा भोग का अवसर मिल सकता है, पर जीवन का रहस्य इसमें है कि तुम्हें उनका अभाव कभी खले नहीं | *(हरि, 10-12-1938, पृ. 371)*

सुखी जीवन का रहस्य त्याग में निहित है | त्याग ही जीवन है | भोग का परिणाम मृत्यु है | इसलिए हर व्यक्ति को परिणाम की चिंता किए बिना, सेवा करते हुए 125 वर्ष तक जीने का अधिकार है | ऐसा जीवन पूर्णतया सेवा को ही समर्पित होना चाहिए | इस प्रकार की सेवा के लिए धन-संपत्ति का त्याग ऐसा अनिर्वचनीय आनंद देता है जिससे तुम्हें कोई वंचित नहीं कर सकता, क्योंकि वह आनंदामृत तुम्हारे भीतर से फूटता है और तुम्हें दीर्घायु देता है | इसमें चिंता या अधैर्य के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता | इस आनंद के बिना, दीर्घायु संभव नहीं है और यदि मिल भी जाए तो उसका कोई मूल्य नहीं होगा | *(हरि, 24-2-1946, पृ. 19)*

मेरे कहने का आशय यह नहीं है कि अगर तुम्हारे पास धन है तो उसे बाहर फेंक दो और बीबी-बच्चों को घर से निकाल दो | इसका आशय यही है कि धन-संपत्ति के प्रति आसक्ति का त्याग कर दो और सर्वस्व ईश्वर को समर्पित करके उसकी दी हुई वस्तुओं को उसी की सेवा में लगा दो | *(हरि, 28-4-1946, पृ. 111)*

38. गरीबी और अमीरी

संघर्ष से बचाव

मैं ऐसे युग की कल्पना करने में असमर्थ हूं जब कोई भी व्यक्ति किसी अन्य की तुलना में अधिक धनवान नहीं होगा | लेकिन ऐसे युग की कल्पना अवश्य करता हूं जब अमीर लोग गरीबों की कीमत पर धनवान बनने का विचार त्याग देंगे और गरीब लोग अमीरों से ईर्ष्या करना छोड़ देंगे | पूर्ण-से-पूर्ण संसार में भी, असमानताओं से नहीं बचा जा सकता, पर हम संघर्ष और कटुता से बच सकते हैं और अवश्य बचना चाहिए | *(यंग, 7-10-1926, पृ. 348)*

मैं अपने अनेक देशवासियों को यह कहते सुना है कि हम अमरीका की तरह धनवान तो बनेंगे, पर (धनसंग्रह के) अमरीकी तरीकों को नहीं अपनाएंगे | मैं साहसपूर्वक कहना चाहता हूं कि यदि कभी ऐसा प्रयास किया गया तो इसकी असफलता अवश्यंभावी है | हम एक ही साथ 'बुद्धिमान, संयत और क्रोधोन्मत्त' नहीं हो सकते | *(स्पीरा, पृ. 353-54)*

भारत में जितने महल दिखाई देते हैं, वे उसकी अमीरी के नहीं बल्कि अमीरी के कारण थोड़े-से लोगों को मिली शक्ति की धृष्टता के प्रतीक हैं; इन महलों को अमीरों ने भारत के लाखों कंगालों की मेहनत का नाममात्र का मुआवजा देकर खड़ा किया है | *(यंग, 28-4-1927, पृ. 137)*

अमीरों का कर्तव्य

अमीरों को अच्छी तरह विचार करना चाहिए कि आज उनका कर्तव्य क्या है | आज अपनी संपत्ति की रखवाली के लिए वे जिन्हें तनख्वाह देकर नियुक्त करते हैं, वे रखवाले ही शायद कल उनके शत्रु बन जाएंगे | अमीरों को हथियारों से अथवा अहिंसा का सहारा लेकर संघर्ष करना सीखना पड़ेगा |

जो अहिंसा का सहारा लेना चाहते हैं, उनके लिए सबसे उत्तम और कारगर मंत्र है : तेन त्यक्तेन भुंजीथा: | इसकी व्याख्या इस प्रकार है : करोड़ों की संपत्ति जरूर कमाइए, पर यह समझ लीजिए कि यह आपकी नहीं, जनता की है | अपनी कमाई में से अपनी जायज जरूरतों के लिए अपने पास रखकर शेष को समाज के हित में खर्च कर दीजिए |

इस सच्चाई पर अभी तक अमल नहीं किया गया है, लेकिन तनाव के इस युग में भी अमीरों ने इस पर अमल नहीं किया तो वे अपनी धन-दौलत और वासनाओं के दास बने रहेंगे और अंतत: अपने ऊपर हावी होने वालों के दास बन जाएंगे |

....मैं वह दिन आता देख रहा हूं जब गरीबों का राज होगा, चाहे वह सशस्त्र संघर्ष के फलस्वरूप हो या अहिंसा के द्वारा | यह स्मरणीय है कि जिस प्रकार शरीर अस्थायी है, उसी प्रकार शारीरिक बल भी अस्थायी है | लेकिन आत्मा की शक्ति उसी प्रकार स्थायी है जिस प्रकार कि आत्मा अमर है | *(हरि, 1-2-1942, पृ. 20)*

मुझे इस मत का समर्थन करने में कोई संकोच नहीं है कि सामान्यतया अमीर लोग... या यह भी कह सकते हैं कि अधिकांश लोग – इस बात का विचार नहीं करते कि वह रुपया किस तरह कमा रहे हैं | अहिंसा की विधि का प्रयोग करने पर, इस बात की पूरी संभावना है कि प्रत्येक व्यक्ति का, चाहे वह कितना ही घटिया हो, मानवीय तथा कुशल व्यवहार के द्वारा सुधार किया जाएगा | हमें मनुष्यों के भलेपन को उभारना चाहिए और उनसे अनुकूल प्रतिक्रिया की आशा करनी चाहिए |

सबकी भलाई

क्या यह बात समाज के हित में नहीं है कि उसका प्रत्येक सदस्य अपनी संपूर्ण प्रतिभा का उपयोग केवल अपनी तरक्की के लिए न करके सबकी भलाई के लिए करे ? हम एक निष्प्राण समानता पैदा करना नहीं चाहते जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता का अधिकतम सीमा तक उपयोग करने में असमर्थ होता है अथवा कर दिया जाता है | ऐसा समाज तो अंतत: नष्ट ही हो जाएगा |

इसलिए मेरा कहना है कि मेरी यह राय बिलकुल ठीक है कि धनवान व्यक्ति करोड़ों जरूर कमाएं (हां, केवल ईमानदारी से), पर अपनी कमाई को सबकी सेवा के लिए समर्पित कर दें | तें त्यक्तेन भुंजीथा:, दुर्लभ ज्ञान पर आधारित मंत्र है | आज की दुनिया में जहां बिना इस बात की फिक्र किए कि उसके पड़ोसी पर क्या गुजर रही है, हर आदमी केवल स्वार्थ की जिंदगी जी रहा है, यह मंत्र सार्वभौम हित की एक नयी जीवन-व्यवस्था के विकास का सबसे निश्चित उपाय सुझाता है | *(हरि, 22-2-1942, पृ. 49)*

भिक्षावृत्ति

हमारा देश जिस घोर दारिद्रय और भुखमरी का शिकार है, उसके कारण प्रतिवर्ष भिखारियों की संख्या में वृद्धि होती चली जा रही है : प्राणरक्षा के निमित्त दो रोटी के लिए कड़ा संघर्ष करते-करते ये लोग शालीनता और आत्मसम्मान की सभी भावनाओं के प्रति संवेदनशून्य हो जाते हैं | और हमारे दानवीर इन्हें काम देने और काम करने पर जोर देने के बजाए उन्हें भिक्षा देते हैं | *(ए, पृ. 320)*

मेरी अहिंसा ऐसे किसी भी स्वस्थ व्यक्ति को मुफ़्त का भोजन दिया जाना सहन नहीं करेगी जिसने ईमानदारी के साथ उसके एवज में कोई-न-कोई काम न किया हो | अगर मेरी शक्ति में होता तो मैं ऐसे सभी सदाव्रत बंद करा देता जिनमें मुफ़्त भोजन कराया जाता है | यह प्रणाली राष्ट्र को गिरावट की ओर ले गई है और उसने आलस्य, अकर्मण्यता, ढोंग और यहां तक कि अपराधवृत्ति को भी बढ़ावा दिया है | अपात्रों पर दयालुता दिखाने की इस वृत्ति से राष्ट्र की संपत्ति में कोई वृद्धि नहीं होती – न भौतिक और न आध्यात्मिक – बल्कि इससे दानदाता में पुण्यशाली होने की झूठी भावना पैदा होती है |

दान नहीं, काम

यदि ये दानदाता ऐसी संस्थाएं खोल सकें जिनमें साफ-सुथरे वातावरण में उन स्त्री-पुरुषों को खाना दिया जाए जो उसके एवज में वहां कोई काम-धंधा करें तो यह कितना अच्छा और बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य होगा | मैं व्यक्तिगत रूप से सोचता हूं कि चरखा कताई या कपास की कोई और प्रक्रिया ऐसी संस्थाओं द्वारा अपनाए जाने योग्य एक आदर्श काम होगा | लेकिन वे यह न चाहें तो कोई और काम चुन सकती हैं; बस, नियम यह कि 'काम नहीं तो खाना भी नहीं'....

मैं जानता हूं कि सदाव्रत बांटना आसान है और ऐसी संस्थाएं बनाना कठिन हैं जिनमें खाना मिलने से पहले ईमानदारी के साथ कुछ काम करना जरूरी हो | आर्थिक दृष्टि से, मुफ़्त भोजनशाला चलाने की तुलना में लोगों से काम लेकर खाना खिलाना महंगा पड़ सकता है, लेकिन मुझे विश्वास है कि यदि हम अपने देश में आवारागर्दों की संख्या में गुणोत्तर वृद्धि करना नहीं चाहते तो, दीर्घकाल में, ऐसी संस्थाएं खोलना सस्ता पड़ेगा | *(यंग, 13-8-1925, पृ. 282)*

भूखों मरने वाले और निष्क्रिय लोगों के सामने ईश्वर सिर्फ एक रूप में प्रकट होने का साहस कर सकता है और वह है, काम और उसकी मजदूरी के रूप में रोटी का वायदा | *(यंग, 13-10-1921, पृ. 325)*

मैं नंगे लोगों को कपड़ा देकर उनका अपमान नहीं करूंगा – उन्हें कपड़े की नहीं, काम की जरूरत है, जो मुझे उनको देना चाहिए | मैं उनका संरक्षक बनने का पाप नहीं करूंगा, लेकिन यह ज्ञान होने पर कि उन्हें निर्धन बनाने में मेरा भी हाथ है, मैं उन्हें रोटी के चंद टुकड़े या उतारे हुए कपड़े नहीं दूंगा, बल्कि अपने अच्छे-से-अच्छे कपड़े और खाना दूंगा और उनके साथ काम में भागीदार बन जाऊंगा | *(वही)*

मैं यह महसूस करता हूं कि यद्यपि भिक्षावृत्ति को प्रोत्साहित करना बुरा है, पर मैं किसी भिखारी को काम और खाना दिए बगैर जाने नहीं दूंगा | अगर वह काम करने से इंकार करेगा तो मैं उसे खाना नहीं दूंगा | लंगड़े-लूलों आदि शारीरिक दृष्टि से असमर्थ लोगों को खिलाने-पिलाने की जिम्मेदारी राज्य की है |

मिथ्या अथवा सच्चे अंधेपन की आड़ में भी बड़ी धोखाधड़ी चल रही है | बेईमानी से पैसा कमाकर बहुत-से अंधे धनवान बन गए हैं | वे इस प्रलोभन का शिकार हों, इससे अच्छा है कि उन्हें आश्रमों में भरती कर दिया जाए | *(हरि, 11-5-1935, पृ. 99)*

नौकरों पर निर्भरता

मेरी धारणा है कि जो व्यक्ति औरों का सहयोग लेना अथवा उनके साथ सहयोग करना चाहता है, उसे नौकरों पर निर्भर नहीं रहना चाहिए | नौकरों की तंगी के वक्त में भी अगर किसी को नौकर चाहिए तो उसे नौकर को जितना

वेतन वह मांगे, उतना देना होगा और उसकी बाकी सभी शर्तें भी माननी होंगी, जिसका परिणाम यह होगा कि मालिक होने के बजाय वह स्वयं अपने कर्मचारी का नौकर हो जाएगा | यह न तो मालिक के लिए अच्छी बात है और न नौकर के लिए |

पर यदि कोई व्यक्ति किसी की दासता नहीं बल्कि उसका सहयोग चाहता है तो वह न केवल अपनी सेवा करेगा बल्कि उसकी भी करेगा जिसके सहयोग की उसे जरूरत है | इस सिद्धांत का विस्तार करने पर, मनुष्य को सारी दुनिया अपने परिवार का ही बृहत् रूप लगेगी और अपने साथियों के प्रति उसके दृष्टिकोण में भी तदनुसार परिवर्तन आ जाएगा | अभीष्ट पूर्णता तक पहुंचने का कोई और रास्ता नहीं है | *(हरि, 10-3-1946, पृ. 40)*

39. दरिद्रनारायण

दरिद्रों का भगवान

भगवान जो मनुष्य के लिए अनाम और अगाध है, उसके लाखों नामों में से एक नाम है दरिद्रनारायण, जिसका अर्थ है दरिद्रों का भगवान यानी दरिद्रों के हृदय में वास करने वाला भगवान | *(यंग, 4-4-1929, पृ. 110)*

दरिद्रों के लिए आर्थिक ही आध्यात्मिक है | इन लाखों-करोड़ों भूखे लोगों पर कोई बात असर नहीं कर सकती | तुम उन्हें रोटी दो तो वे तुम्हें ही भगवान समझने लगेंगे | कुछ और सोचने का उनका सामर्थ्य ही नहीं है | *(यंग, 5-5-1927, पृ. 142)*

अपने इन्हीं हाथों से मैंने उनके चिथड़ों में बंधी मैली-कुचैली पाइयां इकट्ठी की हैं | उनसे आधुनिक प्रगति की बात मत कीजिए | उनके सामने व्यर्थ में भगवान का नाम लेकर भगवान का अपमान मत कीजिए | अगर हम उनसे ईश्वर के बारे में बात करेंगे तो वे मुझे और आपको शैतान बताएंगे | अगर वे किसी ईश्वर को जानते हैं तो वह है आतंक और प्रतिशोध का ईश्वर, एक निर्दय अत्याचारी | *(यंग, 15-9-1927, पृ. 313)*

मैं स्वराज हासिल करने के लिए प्रयासरत हूं....उन जी-तोड़ मेहनत करने वाले और बेरोजगार लाखों-करोड़ों लोगों के लिए, जिन्हें दिन में एक बार भी भरपेट खाना नसीब नहीं होता और बासी रोटी के एक टुकड़े और चुटकी भर नमक के सहारे जिंदगी घसीटनी पड़ती है | *(यंग, 26-3-1931, पृ. 53)*

ईश्वर का संदेश

मैं उन तक ईश्वर का संदेश ले जाने का साहस नहीं कर सकता | उन लाखों-करोड़ों भूखे-नंगों के सामने, जिनकी आंखों में कोई चमक शेष नहीं है और जिनका भगवान केवल उनकी रोटी है, मेरे लिए ईश्वर का संदेश सुनाना वैसा ही है जैसा कुत्तों के आगे सुनाना | मैं उनके लिए पवित्र काम के संदेश के रूप में ही ईश्वर का संदेश लेकर जा सकता हूं |

अच्छा नाश्ता करके और बढ़िया खाने का इंतजार करते हुए यहां बैठकर ईश्वर के बारे में चर्चा की जा सकती है, पर मैं उन लाखों लोगों से ईश्वर के बारे में चर्चा कैसे करूं जिन्हें दिन में दो बार भी रोटी नहीं मिलती ? उनके लिए तो ईश्वर रोटी और मक्खन के रूप में ही प्रकट हो सकता है | भारत के किसानों को अपनी जमीन से रोटी मिल रही थी | मैंने उन्हें चरखा दिया ताकि उन्हें मक्खन भी मिल सके, और अगर आज मैं....लंगोटी बांधता हूं तो वह इसलिए कि मैं इन लाखों अध-भूखे और अध-नंगे मूक लोगों का एकमात्र प्रतिनिधि हूं | *(यंग, 15-10-1931, पृ. 310)*

मैं अपने इन लाखों-करोड़ों दरिद्र भारतवासियों को जानने का दावा करता हूं | मैं दिन के चौबीसों घंटे उनके साथ हूं | उनकी देखभाल मेरा प्रथम और अंतिम कर्तव्य है, क्योंकि मैं उन मूक लाखों-करोड़ों के हृदय में वास करने वाले भगवान के अलावा और किसी भगवान को नहीं पहचानता | वे उस ईश्वर की उपस्थिति का अनुभव नहीं करते, मैं करता हूं | और मैं इन्हीं लाखों-करोड़ों दरिद्र लोगों की सेवा के जरिए ईश्वर जो सत्य है अथवा सत्य जो ईश्वर है, उसकी पूजा करता हूं | *(हरि, 11-3-1939, पृ. 44)*

8. श्रम

40. रोटी के लिए शारीरिक श्रम का सिद्धांत

दैवी नियम

ईश्वर ने मनुष्य की सृष्टि इसलिए की कि वह अपनी रोटी के लिए श्रम करे, और कहा कि जो बिना श्रम किए खाते हैं, वे चोर हैं | *(यंग, 13-10-1921, पृ. 325)*

महान प्रकृति चाहती है कि मनुष्य अपनी रोटी के लिए पसीना बहाए | इसलिए जो व्यक्ति एक मिनट भी बर्बाद करता है वह अपने पड़ोसियों पर भार है, और ऐसा करना अहिंसा के प्रथम पाठ का उल्लंघन है | अहिंसा अगर अपने पड़ोसी का सुसंतुलित और पूरा-पूरा ध्यान रखना नहीं है तो और क्या है ? निष्क्रिय व्यक्ति में इसी बुनियादी बात की कमी होती है | *(यंग, 11-4-1929, पृ. 114-15)*

यह नियम कि मनुष्य को जीने के लिए श्रम करना चाहिए, मेरे मन में पहले-पहल तब बैठा जब मैंने टाल्सटॉय का रोटी के लिए शारीरिक श्रम से संबंधित लेखन पढ़ा | वैसे, उससे भी पहले रस्किन का 'अनटू दिस लास्ट' पढ़ने के बाद से ही मैं इस नियम का आदर करने लगा था | इस नियम पर कि मनुष्य को अपनी रोटी कमाने के लिए अपने हाथों से श्रम करना चाहिए, सबसे पहले रूसी लेखक टी. एम. बोन्डारिफ ने बल दिया था | टाल्सटॉय ने इसका विज्ञापन करके उसे व्यापक रूप से प्रचारित किया | मेरे विचार में, गीता के तीसरे अध्याय में जहां यह कहा गया है कि जो व्यक्ति यज्ञ किए बिना भोजन करता है, वह चोरी का अन्न खाता है, वह इसी नियम का प्रतिपादन है | यज्ञ से तात्पर्य यहां रोटी के लिए शारीरिक श्रम से ही हो सकता है | *(फ्रायम, पृ. 35)*

तर्कसिद्ध भी

तर्क के द्वारा भी हम इसी नतीजे पर पहुंचते हैं | जो आदमी शारीरिक श्रम नहीं करता, उसे खाना खाने का क्या अधिकार है ? बाइबिल का कथन है, 'तुझे पसीना बहाने पर ही रोटी मिलेगी' | यदि कोई लखपति दिन भर बिस्तर में पड़ा करवटें लेता रहे और खाना भी औरों के हाथ से खाए तो वह ज़्यादा दिन तक इस तरह नहीं चला सकता और जल्दी ही अपनी जिंदगी से उकता जाएगा | इसीलिए वह व्यायाम करके भूख जगाता है और अपना खाना अपने हाथ से खाता है |

इसलिए अगर गरीब-अमीर, सभी को किसी-न-किसी रूप में व्यायाम करना जरूरी है तो फिर यह उत्पादक श्रम के रूप में, अर्थात रोटी के लिए मेहनत के रूप में, क्यों न किया जाए ? किसान से कोई प्राणायाम या मांसपेशियों का व्यायाम करने के लिए नहीं कहता और मानव जाति की नब्बे प्रतिशत से भी अधिक संख्या किसानी का ही पेशा करती है | इसलिए अगर बाकी के दस प्रतिशत लोग भी बहुसंख्यकों के उदाहरण का अनुगमन करने लगें

यानी कम-से-कम अपने खाने के लायक श्रम करने लगें तो यह दुनिया आज की तुलना में कितनी सुखी, स्वस्थ और शांतिपूर्ण बन सकती है |

सामाजिक क्रांति

....पूंजी और श्रम के बीच विश्वव्यापी संघर्ष है, और गरीब लोग अमीरों से ईर्ष्या करते हैं | यदि सभी लोग रोटी के लिए श्रम करने लगें तो बड़े-छोटे के भेद मिट जाएंगे; अमीर लोग फिर भी रहेंगे, लेकिन वे स्वयं को अपनी संपत्ति का केवल न्यासी मानेंगे और उसे प्रमुखत: लोकहित के लिए इस्तेमाल में लाएंगे | *(वही, पृ. 35-36)*

ईश्वर तात्कालिक आवश्यकता से अधिक मात्रा में कभी सृजन नहीं करता | इसलिए यदि कोई व्यक्ति अपनी आवश्यकता से अधिक वस्तु का उपयोग करता है तो वह अपने पड़ोसी को दरिद्र बनाता है | विश्व के अनेक भागों में लोग इसी कारण भूखे हैं कि हममें से अनेक लोग अपनी आवश्यकता से कहीं अधिक मात्रा पर कब्जा कर लेते हैं | हम प्रकृति की देनों को जिस तरह चाहें इस्तेमाल कर सकते हैं, लेकिन प्रकृति के खाते में जमा और नामे हमेशा बराबर रहते हैं | किसी तरफ कोई बाकी नहीं होती | *(आआए, पृ. 62-63)*

चिड़ियों और पशुओं की तरह, प्रत्येक मनुष्य को जीने के लिए अनिवार्य वस्तुओं को पाने का अधिकार है | और चूंकि प्रत्येक अधिकार के साथ एक अनुरूपी कर्तव्य भी जुड़ा होता है तथा अधिकार पर हमले से बचाव के लिए अनुरूपी उपचार भी मौजूद होता है, अत: आरंभिक मौलिक समानता को सुनिश्चित करने के लिए हमें केवल यह मालूम करने की जरूरत है कि उसके तदनुरूप कर्तव्य और तदनुरूप उपचार क्या हैं | तदनुरूप कर्तव्य यह है कि मैं अपने शरीर से श्रम करूं और तदनुरूप उपचार यह है कि जो व्यक्ति मुझे मेरे श्रम के फल से वंचित करे, उसके साथ असहयोग करूं | *(यंग, 26-3-1931, पृ. 49)*

सच्ची सेवा

रोटी के लिए प्रबुद्ध श्रम निश्चय ही समाज-सेवा का सर्वोत्तम रूप है | इससे अच्छा और क्या हो सकता है कि मनुष्य अपने व्यक्तिगत श्रम से देश के उपयोगी धन में वृद्धि करें ? 'होना' ही 'करना' है |

यहां श्रम के साथ 'प्रबुद्ध' विशेषण यह बताने के लिए लगाया गया है कि श्रम को समाज-सेवा तभी माना जा सकता है जब उसके पीछे एक निश्चित प्रयोजन हो | अन्यथा हर मज़दूर को समाज-सेवा करने वाला माना जा सकता है | वह भी एक तरह से समाज-सेवा करता है, पर यहां हमारा आशय उससे कहीं बढ़कर है | जो व्यक्ति सबकी आम भलाई के लिए श्रम करता है, वह समाज का सेवक है और उसका श्रम धन्य है | इसलिए, रोटी के वास्ते किया गया इस प्रकार का श्रम समाज-सेवा से भिन्न नहीं है | *(हरि, 1-6-1935, पृ. 125)*

रोटी के लिए श्रम करने के नियम का पालन करने से समाज की संरचना में एक मौन क्रांति होगी | तब, जीवन के लिए संघर्ष करने के स्थान पर परस्पर सेवा के लिए संघर्ष करने में मानव की विजय मानी जाएगी | और पशु के नियम के स्थान पर मानव के नियम की प्रतिष्ठा होगी | *(हरि, 29-6-1935, पृ. 156)*

यदि प्रत्येक व्यक्ति जीने के लिए शारीरिक श्रम करे तो यह दुनिया स्वर्ग बन जाए | यहां, विशेष योग्यताओं के उपयोग के प्रश्न पर खास तौर से विचार करने की आवश्यकता नहीं है | यदि प्रत्येक व्यक्ति अपनी रोटी के लिए शारीरिक श्रम करे तो इसका अर्थ यह होगा कि कवि, डाक्टर, वकील आदि अपनी विशेष योग्यताओं का उपयोग मानव सेवा के लिए नि:शुल्क करना अपना कर्तव्य समझेंगे | निस्स्वार्थ भाव से कर्तव्य करने के कारण उनके काम की गुणवत्ता भी कहीं अधिक बढ़ जाएगी | *(हरि, 2-3-1947, पृ. 47)*

अमल का क्षेत्र

अहिंसा का पालन करने वाले, सत्य की आराधना करने वाले और ब्रह्मचर्य को सहज कृत्य मानकर अपनाने वाले के लिए तो रोटी के वास्ते श्रम एक वरदान ही है | रोटी के लिए श्रम का संबंध केवल कृषि के साथ हो सकता है | लेकिन वर्तमान में, सबके लिए कृषि करना संभव नहीं है | इसलिए आदमी कृषि के स्थान पर कताई, बुनाई कर सकता है या बढ़ईगीरी अथवा लुहारी कर सकता है, यद्यपि आदर्श सदैव कृषि ही है |

प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सफाई का काम खुद ही करना चाहिए | भोजन जितना आवश्यक है, उतना ही मलोत्सर्ग भी है, और सर्वोत्तम यही है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी सफाई खुद करे | यदि यह असंभव हो तो प्रत्येक परिवार को तो अपनी सफाई का जिम्मा खुद लेना ही चाहिए |

मैंने बरसों से यह महसूस किया है कि समाज के एक खास वर्ग को सफाई का जिम्मा देकर कहीं भारी गलती की गई है | इतिहास में उस आदमी का कोई उल्लेख नहीं मिलता जिसने सबसे पहले इस अनिवार्य सफाई-सेवा को निम्नतम दर्जा दिया | वह जो भी रहा हो, उसने हमारे साथ किसी अर्थ में भलाई नहीं की |

बचपन से ही हमारे मन में यह बात बैठा दी जानी चाहिए कि हम सभी सफाईपेशा हैं, और इसका सबसे आसान उपाय यह है कि हम सब रोटी कमाने के लिए सफाई का काम हाथ में लें | इस प्रकार अगर सफाई का काम बुद्धिमानी से हाथ में लिया जाए तो इंसान-इंसान की बराबरी को सच्चे रूप में समझने में बड़ी मदद मिलेगी | *(फ्रायम, पृ. 36-37)*

स्वैच्छिक मान्यता

गांवों की ओर लौटने का अर्थ है रोटी के लिए श्रम करने के कर्तव्य तथा उससे जुड़ी सभी बातों को मान्यता प्रदान करना | उधर, आलोचक कहता है, "भारत की लाखों संतानें आज गांवों में रह रही हैं, पर उन्हें मुश्किल से आधा

पेट खाना मिल पाता है |" अफसोस कि, यह बात सही है | सौभाग्य से, हमें यह पता है कि गांव के जीवन को ये लोग स्वेच्छा से नहीं जी रहे हैं | उनका बस चले तो शायद वे शारीरिक श्रम करना छोड़ दें और यह भी संभव है कि अगर उन्हें रहने की जगह मिलने का आश्वासन हो तो वे भाग कर पास के शहर में जा बसें |

मालिक का जबरन आज्ञापालन दासता है, जबकि अपने पिता का स्वेच्छा से आज्ञापालन संतान का गौरव है | इसी प्रकार, रोटी के लिए श्रम के नियम का जबरन पालन गरीबी, बीमारी और असंतोष को जन्म देता है | यह दासता की ही स्थिति है | इस नियम को स्वेच्छा से पालन करने पर संतोष और स्वास्थ्य में वृद्धि होनी चाहिए | और, स्वास्थ्य ही सच्चा धन है, सोने और चांदी के टुकड़े नहीं | *(हरि, 29-6-1935, पृ. 156)*

श्रम का विभाजन

मैं श्रम अथवा काम के विभाजन में विश्वास करता हूं | लेकिन मैं मजदूरी की बराबरी पर जोर देता हूं | वकील, डाक्टर या अध्यापक को भंगी की अपेक्षा ज़्यादा पैसा लेने का हक नहीं है | जब यह होगा तब श्रम के विभाजन से राष्ट्र अथवा विश्व का उत्थान होगा | सच्ची सभ्यता अथवा सुख की प्राप्ति का और कोई आसान रास्ता नहीं है | *(हरि, 23-3-1947, पृ. 78)*

रोटी के लिए श्रम का अर्थशास्त्र जीती-जागती जीवन-पद्धति है | इसका मतलब यह है कि हर आदमी को अपनी रोटी-कपड़े के लिए शारीरिक श्रम करना होगा | अगर मैं लोगों को रोटी के लिए श्रम का महत्व और उसकी आवश्यकता समझा सकूं तो रोटी-कपड़े की कमी कभी नहीं पड़ेगी | तब मैं आत्मविश्वास के साथ लोगों से यह कह सकूंगा कि अगर वे खेती, कताई अथवा बुनाई करने के लिए तैयार नहीं हैं तो उन्हें भूखे-नंगे रहना होगा | *(हरि, 7-9-1947, पृ. 316)*

मैंने 1925 में जो बात कही थी, उस पर आज भी कायम हूं अर्थात एक निश्चित आयु से ऊपर के सभी स्त्री-पुरुषों को वोट देने का अधिकार तभी मिलेगा जब वे राज्य को कुछ शारीरिक सेवा प्रदान करेंगे | *(हरि, 2-3-1947, पृ. 46)*

पूजा जैसा काम

मैं इससे अधिक उदात्त और राष्ट्रप्रेम की कोई और बात नहीं सोच सकता कि हम सभी प्रतिदिन, मान लीजिए, एक घंटे के लिए वह काम करें जो गरीब लोग करते हैं और इस प्रकार उनके तथा उनके माध्यम से समस्त मानवता के साथ तादात्म्य स्थापित करें | मैं भगवान की इससे बेहतर किसी पूजा की कल्पना नहीं कर सकता कि मैं उसके नाम पर गरीबों के लिए वैसा ही श्रम करूं जैसा कि वे करते हैं | *(यंग, 20-10-1921, पृ. 329)*

भगवान के नाम पर किया गया और उसे समर्पित कोई काम छोटा नहीं होता | इस भावना से किए गए सभी काम समान रूप से प्रशंसनीय हैं | एक सफाई करने वाला जो अपने काम को ईश्वर की सेवा मानकर करता है, वह भी उसी बड़ाई का हकदार है जितना कि ईश्वर के नाम पर अपने गुणों का उपयोग करते हुए तथा अपने को मात्र न्यासी मानते हुए शासनकार्य करने वाला एक राजा | *(यंग, 25-11-1926, पृ. 414)*

....सेवा करना तब तक संभव नहीं है जब तक कि उसके मूल में प्रेम अथवा अहिंसा न हो....सच्चा प्रेम समुद्र के समान असीम होता है और उसका ज्वार फैलकर सभी सीमाएं लांघते हुए समूचे विश्व में व्याप्त हो जाता है | एक बात यह भी है कि यह सेवा रोटी के लिए श्रम के बगैर संभव नहीं है, जिसे गीता में यज्ञ कहा गया है | सेवा के प्रयोजन से शारीरिक श्रम करने पर ही स्त्री अथवा पुरुष को जीने का अधिकार प्राप्त होता है | *(यंग, 20-9-1928, पृ. 320)*

त्याग का कर्तव्य

"ब्रह्मा ने अपनी प्रजा की सृष्टि करके उन पर यह कर्तव्य डाला कि वे यज्ञ करें और कहा : 'तुम यज्ञ द्वारा समृद्धि को प्राप्त हो | यह तुम्हारी सभी कामनाओं की पूर्ति करे |' जो व्यक्ति यज्ञ किए बिना भोजन करता है, वह चोरी का अन्न खाता है," – ऐसा गीता का वचन है | बाइबिल का भी कहना है : "तू पसीना बहाकर अपनी रोटी कमा |" त्याग अनेक प्रकार के हो सकते हैं | उनमें से एक, रोटी के लिए श्रम है | यदि सभी लोग केवल अपनी रोटी के लिए ही श्रम करें तो भी दुनिया में सभी को पर्याप्त भोजन और विश्राम मिल सकता है | तब न जनाधिक्य की समस्या उठेगी, न रोग होंगे और न कहीं वैसा क्लेश होगा जैसा आजकल चारों ओर दिखाई दे रहा है | रोटी कमाने के लिए किया जाने वाला श्रम सर्वोच्च स्तर का त्याग होगा | निश्चय ही मनुष्य अपने शरीर और बुद्धि से और भी अनेक प्रकार के काम करेंगे, पर वे सारे काम प्रेमवश अर्थात लोक-हित के लिए किए जाएंगे | तब न कोई अमीर होगा, न कोई गरीब; न ऊंचा होगा, न नीचा; न स्पृश्य होगा, न अस्पृश्य |

यह अप्राप्य आदर्श हो सकता है | लेकिन इस कारण से, हमें इसके लिए प्रयास करना छोड़ नहीं देना चाहिए | हम त्याग के संपूर्ण नियम, अर्थात अपने जीवन के नियम, को पूरा किए बिना अगर केवल अपनी रोटी भर के लिए ही शारीरिक श्रम करें तो भी हम इस आदर्श की प्राप्ति की दिशा में काफ़ी आगे बढ़ सकेंगे |

यदि हम ऐसा कर पाएं तो हमारी आवश्यकताएं न्यूनतम रह जाएंगी और हमारा भोजन सादा हो जाएगा | तब हम जीने के लिए खाएंगे, खाने के लिए नहीं जिएंगे | जिस व्यक्ति को इस प्रस्थापना की सच्चाई पर संदेह है, वह अपनी रोटी कमाने के लिए पसीना बहाने की कोशिश करके देख ले; उसे अपने श्रम के फल से अधिकतम आनंद की प्राप्ति होगी, उसके स्वास्थ्य में सुधार आएगा और वह यह पाएगा कि वह जिन चीज़ों का भोग कर रहा था, उनमें से बहुत-सी चीज़ें फालतू थीं | *(हरि, 29-6-1935, पृ. 156)*

कर्म का सिद्धांत

कर्म पर जितना बल दिया जाए, थोड़ा है | मैं केवल गीता द्वारा दिए गए सिद्धांत को दुहरा रहा हूं जिसमें भगवान कहते हैं : 'यदि मैं अहर्निश कर्मरत न रहूं तो मैं मानव-जाति के समक्ष एक गलत उदाहरण प्रस्तुत करूंगा |'

....यदि मुझे भगवान बुद्ध जैसे महापुरुष के साक्षात्कार का सौभाग्य प्राप्त होता तो मैं निस्संकोच उनसे यह पूछता कि उन्होंने ध्यान के सिद्धांत की अपेक्षा कर्म के सिद्धांत का उपदेश क्यों नहीं दिया ? मैं यदि तुकाराम और ज्ञानदेव आदि संतों का साक्षात्कार कर पाता तो उनसे भी यही प्रश्न करता | *(हरि, 2-11-1935, पृ. 298)*

ईश्वर ने मनुष्य को अपनी रोटी के वास्ते शारीरिक श्रम करने के लिए पैदा किया है | मैं इस बात की संभावना से ही डर जाता हूं जब मनुष्य किसी जादू की छड़ी से खाद्यपदार्थों सहित अपनी आवश्यकता की सभी वस्तुओं का उत्पादन कर सकेगा | *(हरि, 16-5-1936, पृ. 111)*

जब तक दुनिया में एक भी समर्थांग स्त्री-पुरुष बिना काम अथवा भोजन के है तब तक हमें विश्राम करने अथवा भरपेट भोजन करने में लज्जा का अनुभव करना चाहिए | *(यंग, 6-10-1921, पृ. 314)*

मैं अपने देश में व्याप्त घोर दरिद्रता और बेरोजगारी को देखकर वस्तुत: रोया हूं, पर मुझे यह स्वीकार करना होगा कि इसके लिए अधिकांशत: हमारी उपेक्षा और अज्ञानता ही जिम्मेदार है | हम श्रम की गरिमा से ही अपरिचित हैं | यहां जूता बनाने वाला इसके अलावा और कोई काम करना नहीं चाहता, बाकी सभी काम उसे अपनी गरिमा से नीचे दिखाई देते हैं | हमें इस भ्रांत धारणा का परित्याग करना होगा |

भारत में उन सभी के लिए काम मौजूद है जो ईमानदारी से अपने हाथ-पैरों से काम करना चाहते हैं | ईश्वर ने प्रत्येक व्यक्ति को काम करने और अपनी रोटी से ज़्यादा कमाई करने का सामर्थ्य प्रदान किया है, और जो व्यक्ति इस सामर्थ्य का उपयोग करने के लिए तैयार है, उसे काम की कोई कमी नहीं हो सकती | ईमानदारी की कमाई करने के इच्छुक व्यक्ति के लिए कोई काम घटिया नहीं है | जरूरत सिर्फ इस बात की है कि हम भगवान के दिए हाथ-पैरों से काम करने के लिए तैयार हों | *(हरि, 19-12-1936, पृ. 356)*

....यह निश्चित रूप से सरकार का दायित्व है कि वह सभी बेरोजगार स्त्री-पुरुषों को –उनकी संख्या चाहे जितनी हो –रोटी कमाने के लिए शारीरिक श्रम के अवसर जुटाए | *(हरि, 11-1-1948, पृ. 507)*

बौद्धिक श्रम

मुझे गलत न समझिए | मैं बौद्धिक श्रम के महत्व को नकार नहीं रहा, लेकिन आप कितना ही बौद्धिक श्रम करें, वह उस शारीरिक श्रम का स्थान नहीं ले सकता जिसे सबकी भलाई के लिए करने के वास्ते हमने जन्म लिया है | वह शारीरिक श्रम से अत्यधिक श्रेष्ठ माना जा सकता है, प्राय: होता भी है, पर वह शारीरिक श्रम का स्थानापन्न

कदापि नहीं है, और न हो सकता है | यह इसी प्रकार से है जैसे कि बौद्धिक आहार अन्न के दानों से कितना ही श्रेष्ठ हो, पर वह हमारा पेट नहीं भर सकता | सच्चाई तो यह है कि धरती की पैदावार के अभाव में कोई बौद्धिक कार्य संभव ही नहीं है | *(यंग, 15-10-1925, पृ. 355-56)*

क्या लोगों के लिए बौद्धिक श्रम के द्वारा अपनी रोटी कमाना उचित नहीं है ? नहीं | शरीर की आवश्यकता शरीर द्वारा ही पूरी की जानी चाहिए | "जो सीजर का है, वह सीजर को करने दो", उक्ति शायद यहां भी लागू होती है | मात्र मानसिक अर्थात बौद्धिक श्रम आत्मा के लिए होता है और वह अपने आप में तुष्टि का विषय है | इसके लिए पारिश्रमिक की मांग कभी नहीं की जानी चाहिए | आदर्श राज्य में डाक्टर, वकील आदि अपने लिए नहीं अपितु केवल समाज की भलाई के लिए काम करेंगे | *(हरि, 29-6-1935, पृ. 156)*

बौद्धिक कार्य महत्वपूर्ण है और जीवन-क्रम में निस्संदेह इसका स्थान है | लेकिन मैं जिस बात पर बल दे रहा हूं वह शारीरिक श्रम है | मेरा कहना है कि इस दायित्व से किसी को बरी नहीं किया जाना चाहिए | शारीरिक श्रम से मनुष्य के बौद्धिक कार्य की गुणवत्ता में भी सुधार आएगा | *(हरि, 23-2-1947, पृ. 36)*

मज़दूर कुर्सी पर बैठकर लिख नहीं सकता, लेकिन जिस व्यक्ति ने जीवन भर कुर्सी पर बैठकर काम किया है, वह निश्चित रूप से शारीरिक श्रम करना आरंभ कर सकता है | *(हरि, 18-1-1948, पृ. 520)*

41. श्रम और पूंजी

संबंधों का सामंजस्य

मैंने सदा कहा है कि मेरा आदर्श यह है कि पूंजी और श्रम एक-दूसरे के पूरक हों और एक-दूसरे की सहायता करें | वे एकता और सामंजस्य की भावना के साथ एक बड़े परिवार की तरह रहें | पूंजीपति चूंकि अपने साथ काम करने वाले श्रमिकों के कल्याण के न्यासी हैं, इसलिए उन्हें श्रमिकों के केवल भौतिक कल्याण पर ही ध्यान नहीं देना चाहिए बल्कि उनके नैतिक कल्याण को भी सुनिश्चित करना चाहिए | *(यंग, 20-8-1925, पृ. 285)*

मैं पूंजी से नहीं घबराता | मेरा संघर्ष पूंजीवाद से है | जातिगत युद्ध कोई और, तथा अपेक्षाकृत अधिक सांघातिक स्वरूप न ले ले, इसलिए पश्चिमी देश पूंजी के संकेंद्रण से बचने पर बल देते हैं | पूंजी और श्रम के बीच संघर्ष होना आवश्यक नहीं है | *(यंग, 7-10-1926, पृ. 348)*

पूंजीपति का हृदय-परिवर्तन

यदि मुझे पूंजीपति और श्रमिक की मौलिक समानता में विश्वास है, जैसा कि होना भी चाहिए, तो मुझे पूंजीपति के विनाश को अपना लक्ष्य नहीं बनाना चाहिए | मुझे उसके हृदय-परिवर्तन का प्रयास करना चाहिए | उसके साथ सहयोग करके मैं उसके द्वारा किए जाने वाले अन्याय के प्रति उसकी आंखें खोल सकता हूं....यह सिद्ध करना कठिन नहीं है कि पूंजीपति का विनाश करने से अंतत: श्रमिक का भी विनाश हो जाएगा, और चूंकि दुनिया का कोई व्यक्ति इतना बुरा नहीं है कि उसका सुधार ही न किया जा सके इसलिए कोई व्यक्ति इतना पूर्ण नहीं माना जा सकता कि उसे ऐसे व्यक्ति को विनष्ट करने का अधिकार दे दिया जाए जिसे वह पूर्णत: बुरा मानने की गलती कर रहा है | *(यंग, 26-3-1931, पृ. 49)*

गरीबों का शोषण मुट्ठी भर करोड़पतियों का विनाश करके समाप्त नहीं किया जा सकता, बल्कि इसके लिए हमें गरीबों की अज्ञानता को दूर करके उन्हें अपने शोषणकर्ताओं के साथ असहयोग करने की शिक्षा देनी होगी | इससे शोषणकर्ताओं में भी बदलाव आएगा | मैंने तो यहां तक कहा है कि इसके परिणामस्वरूप दोनों बराबर के साझीदार हो जाएंगे | पूंजी अपने आप में कोई बुरी चीज़ नहीं है, उसका गलत उपयोग बुरा है | पूंजी की किसी-न-किसी रूप में जरूरत हमेशा रहेगी | *(हरि, 28-7-1940, पृ. 219)*

श्रमिकों के कर्तव्य और अधिकार

यह मेरा सार्वत्रिक अनुभव है कि सामान्यतया श्रमिक अपने दायित्वों को मालिकों की तुलना में कहीं ज्यादा कारगर ढंग से और ईमानदारी के साथ निभाते हैं, हालांकि मालिकों को भी श्रमिकों के प्रति इसी प्रकार अपना दायित्व निभाना चाहिए | इसलिए श्रमिकों के लिए इस बात का पता लगाना जरूरी है कि वे अपने मालिकों के ऊपर अपनी इच्छा किस प्रकार आरोपित करें |

यदि श्रमिक पाएं कि उन्हें उचित पगार नहीं मिल रही है या कि उन्हें रहने के लिए मकानों की पर्याप्त व्यवस्था नहीं है तो इन्हें सुनिश्चित करने का उपाय क्या है ? श्रमिकों की सुख-सुविधा के स्तर को निर्धारित कौन करे ? निस्संदेह सर्वोत्तम तरीका तो यही है कि श्रमिक अपने अधिकार स्वयं समझें और उन्हें लागू कराने के उपाय भी निकालें | पर इसके लिए पहले कुछ प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी....कुछ शिक्षा की आवश्यकता होगी | *(स्पीरा, पृ. 1046)*

लेकिन संसार में ऐसा कोई अधिकार नहीं है जिसे पाने के लिए पहले कोई कर्तव्य करना जरूरी न हो | कोई मालिक अपनी संपत्ति को नहीं बिगाड़ता | जब आपको यह लगेगा कि यह मिल जितनी मालिक की है, उतनी ही आपकी भी है तो आप उसे कभी नुकसान नहीं पहुंचाएंगे | आप मिल-मालिकों से अपने झगड़ों का निपटारा करने के लिए क्रोध में आकर कभी कपड़ा या मशीन को नष्ट नहीं करेंगे |

संघर्ष अगर करना ही पड़े तो सच्चाई के रास्ते पर चलते हुए करें | तब ईश्वर आपका साथ देगा | मैं फिर कहता हूं कि आत्मशुद्धीकरण और पीड़ा-भोग के अलावा और कोई आसान रास्ता अपने अधिकारों को हासिल करने का नहीं है | *(यंग, 4-8-1927, पृ. 248)*

श्रमिक की शक्ति

मेरी विनम्र सम्मति में, यदि श्रमिकों के बीच पर्याप्त एकता हो और उनमें आत्मत्याग की भावना हो तो वे सदा अपनी न्यायोचितता सिद्ध कर सकते हैं | पूंजीपति कितने ही दमनकारी हों, पर मेरा विश्वास है कि जो लोग श्रमिकों से जुड़े हैं और उनके आंदोलनों का मार्गदर्शन करते हैं उन्हें स्वयं इस बात का पता नहीं है कि श्रमिक जितने साधन जुटा सकते हैं उतने पूंजीपति कभी जुटा ही नहीं सकते | यदि श्रमिक केवल यह समझ सकें और अपने मन में बैठा लें कि उनके श्रम के बिना पूंजी कुछ भी नहीं कर सकती तो वे तत्काल अपनी शक्ति को पहचान जाएंगे |

दुर्भाग्यवश हम पूंजी के सम्मोहक प्रभाव के वशीभूत होकर यह मान बैठे हैं कि इस संसार में पूंजी ही सब कुछ है | लेकिन एक क्षण के लिए भी विचार करें तो हम पाएंगे कि श्रमिक के पास जो पूंजी है, वह पूंजीपति के पास कभी नहीं हो सकती | अपने जमाने में रस्किन ने बताया था कि श्रमिक के पास अप्रतिम अवसर हैं | लेकिन उसकी बात हमारे सिर के ऊपर से निकल गई |

एक बड़ा जानदार शब्द है, यह अंग्रेजी में भी है, फ्रेंच में भी है, और विश्व की सभी भाषाओं में है – यह शब्द है 'नहीं' | जो रहस्य हमें हाथ लगा है वह यह है कि जब पूंजीपति यह चाहे कि श्रमिक 'हां' कहे तो श्रमिक को, यदि उसका मंतव्य 'न' है तो, पूरे जोर के साथ 'नहीं' कह देना चाहिए | इसके साथ ही, श्रमिकों को यह बात समझ में आ जाएगी कि उनके सामने दो विकल्प हैं – जब 'हां' कहना चाहें तो 'हां' कहने का, और जब 'न' कहना चाहें तो

'न' कहने का | जब ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाएगी तो श्रम पूंजी से स्वतंत्र हो जाएगा और पूंजी को श्रम की मनुहार करनी होगी |

तब इस बात से कतई फर्क नहीं पड़ेगा कि पूंजी के पास बंदूकें और जहरीली गैस हैं | इनके बावजूद अगर श्रम अपनी गरिमा को बनाए रखते हुए 'न' कह देगा तो पूंजी पूरी तरह लाचारी का अनुभव करेगी | तब श्रम को प्रतिकार करने की जरूरत नहीं होगी, वह बंदूकों और जहरीली गैस का डटकर सामना करेगा और फिर भी अपनी 'न' पर अडिग रहेगा |

श्रम के प्राय: असफल हो जाने का एकमात्र कारण यह है कि जो तरीका मैंने ऊपर सुझाया है, उसके अनुसार पूंजी को नाकाम कर देने के बजाए श्रम (मैं स्वयं को एक श्रमिक मानकर ही बात कर रहा हूं) पूंजी को हथियाकर स्वयं निकृष्टतम रूप में, पूंजीवादी बन जाना चाहता है | ऐसी स्थिति में पूंजीपति, जिसकी जड़ें अच्छी तरह जमी हुई हैं और जो सुसंगठित है, जब यह देखता है कि श्रमिकों में से ही कुछ लोग पूंजीपति बनने के इच्छुक हैं तो वह उनका इस्तेमाल श्रमिकों के दमन के लिए करता है | यदि हम पूंजी के सम्मोहन के वशीभूत न हों तो हममें से प्रत्येक स्त्री-पुरुष बिना किसी कठिनाई के इस अटल सत्य को समझ सकता है |

जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक प्रयोगों के द्वारा इसे स्वयं कसौटी पर कस कर देख लेने के उपरांत मैं प्रामाणिकता के साथ यह बात कह रहा हूं (आप मुझे इस गर्वोक्ति के लिए क्षमा करें) कि जब मैंने आपके सामने यह योजना रखी तो यह कोई अतिमानवीय नहीं बल्कि प्रत्येक श्रमिक – स्त्री अथवा पुरुष – के सामर्थ्य के भीतर की चीज़ मानकर रखी थी |

आप यह भी पाएंगे कि इस अहिंसक योजना में श्रमिक से जो अपेक्षा की गई है....वह वैसी ही है जैसी कि हथियारों से पूरी तरह लैस सिपाही से की जाती है | सिपाही जब अपने शत्रु पर प्रहार करता है तो अपनी जान को भी हथेली पर रखता है | मैं यही चाहता हूं कि सिपाही की पशुता अर्थात जान लेने के सामर्थ्य का अनुकरण किए बिना श्रमिक उसके साहस का अनुकरण करे और मैं आपसे कहता हूं कि जो श्रमिक आत्मरक्षा के लिए भी हथियार धारण किए बिना मौत को आमंत्रित करता है, वह सिर से पांव तक हथियारों से लैस सिपाही की तुलना में कहीं अधिक साहस का परिचय देता है | *(यंग, 14-1-1932, पृ. 17-18)*

बुद्धि का गुण

जैसे ही श्रमिक अपनी गरिमा को पहचान लेगा, रुपया अपनी सही जगह पर आ जाएगा अर्थात वह श्रमिक वर्ग के लिए न्यास के रूप में रखा जाएगा | बात यह है कि श्रमिक का महत्व रुपए से अधिक है | *(हरि, 19-10-1935, पृ. 285)*

मेरी धारणा के अनुसार श्रमिक वर्ग के लिए विभिन्न व्यवसायों की जानकारी प्राप्त करने का वही महत्व है जो पूंजीपति के लिए धातु का है | श्रमिक का कौशल ही उसकी पूंजी है | जिस प्रकार पूंजीपति श्रमिक के सहयोग के बिना अपनी पूंजी का फल प्राप्त नहीं कर सकता उसी प्रकार श्रमिक भी पूंजीपति के सहयोग के बिना अपने श्रम का फल प्राप्त नहीं कर सकता |

और, यदि श्रम तथा पूंजी, दोनों ने अपनी बुद्धि के गुण का समान रूप से विकास कर लिया है और उनमें यह विश्वास जागृत हो गया है कि वे एक-दूसरे से उचित व्यवहार का पालन कराने में समर्थ हैं तो उनमें एक-दूसरे का आदर करने और एक साझे उद्यम में बराबर का भागीदार बनने की समझ पैदा हो जाएगी | तब उनमें एक-दूसरे को स्वाभाविक रूप से पक्का विरोधी मानने की जरूरत नहीं रहेगी |

संगठन

मुश्किल यह है कि आज जहां पूंजी संगठित और भली प्रकार अपनी जड़ जमाए हुए है, श्रम की स्थिति वैसी नहीं है | श्रमिक की बुद्धि निर्जीव और यंत्रवत कार्य करते-करते कुंद हो गई है और उसे अपने मानसिक विकास के लिए प्राय: कोई समय नहीं मिल पाता | इसकी वजह से उसे अपनी शक्ति और प्रस्थिति की संपूर्ण गरिमा का भी अहसास नहीं हो पाता |

श्रमिक को यह मानकर चलने की सीख दी गई है कि उसकी मजदूरी का निर्धारण पूंजीपति करेंगे और वह इस संबंध में उनसे अपनी शर्तें मनवाने की स्थिति में नहीं है | वह सही ढंग से संगठित हो जाए, उसकी बुद्धि प्रखर हो जाए, वह कई प्रकार के काम-धंधे सीख ले तो फिर वह सिर ऊंचा करके चल सकेगा और उसे कभी अपने जीवन-निर्वाह के साधनों पर आंच आने का भय नहीं रहेगा | *(हरि, 3-7-1937, पृ. 161)*

मैं श्रम के संगठन के विरुद्ध नहीं हूं पर, और चीज़ों की तरह, उसमें भी मेरा आग्रह है कि यह संगठन भारतीय, या आप चाहें तो कह सकते हैं कि मेरी, पद्धति के अनुकूल हो | मैं वही कर रहा हूं | भारतीय श्रमिक स्वभावतया इस पद्धति को जानता है | मैं पूंजी को श्रम का बैरी नहीं मानता | मेरी धारणा है कि इन दोनों के बीच पूर्ण समन्वय संभव है |

दक्षिण अफ्रीका, चंपारण या अहमदाबाद में मैंने जिस तरह श्रम को संगठित किया उसमें पूंजीपतियों के प्रति बैर की भावना बिलकुल नहीं थी | उनमें से हरेक मामले में, प्रतिरोध और जिस सीमा तक उसे आवश्यक समझा गया उसमें पूरी कामयाबी मिली | *(यंग, 17-3-1927, पृ. 86)*

श्रमिक को यह समझना होगा कि श्रम भी पूंजी है | ज्यों ही श्रम को ठीक से शिक्षित तथा संगठित कर दिया जाएगा और वह अपनी शक्ति को पहचान लेगा, पूंजी की कितनी भी मात्रा उसे अपने अधीन नहीं कर पाएगी | संगठित और प्रबुद्ध श्रम अपनी शर्तें पूंजीपतियों से खुद मनवा सकता है | अगर हम खुद कमजोर हों तो दूसरे से

प्रतिशोध लेने का प्रण करना व्यर्थ है | हमें पहले अपनी ताकत बढ़ानी चाहिए | सबल हृदय, प्रबुद्ध मन और श्रम के लिए इच्छुक हाथ सभी कठिनाइयों और बाधाओं का मुकाबला कर सकते हैं |*(हरि, 1-3-1935, पृ. 23)*

संघर्ष अपरिहार्य नहीं

मैं नहीं समझता कि पूंजी और श्रम के बीच टकराव जरूरी है | दोनों एक-दूसरे पर निर्भर हैं | आज जरूरत इस बात की है कि पूंजीपति श्रमिकों पर शासन करना बंद कर दें | मेरी राय में मिल-मज़दूर भी उसी तरह मिल के मालिक हैं जिस तरह शेयरधारक हैं; जिस दिन मिल-मालिक यह समझ जाएंगे कि मिल के स्वामी जितने वे हैं, उतने ही मिल-मज़दूर भी हैं, उसी दिन दोनों के बीच झगड़े की स्थिति समाप्त हो जाएगी | *(यंग, 4-8-1927, पृ. 248)*

जनता जमींदारों और मुनाफाखोरों को अपना दुश्मन नहीं मानती | लेकिन उसमें यह चेतना जगानी है कि इन वर्गों ने उसके साथ ज़्यादती की है | मैं जनता को यह सीख नहीं देता कि वे पूंजीपतियों को अपना शत्रु मानें; मैं तो उनसे कहता हूं कि वे स्वयं अपने शत्रु हैं | *(यंग, 26-11-1931, पृ. 369)*

पूंजी और श्रम के बीच हितों का टकराव है, लेकिन हमें अपने कर्तव्य को पूरा करके उसे दूर करना है | जिस प्रकार शुद्ध रक्त में कोई विषाणु जन्म नहीं ले सकते उसी प्रकार श्रमिक वर्ग यदि शुद्ध हो जाए तो कोई उसका शोषण नहीं कर पाएगा |

मैंने यह कभी नहीं कहा कि शोषण और शोषण की कामना के रहते हुए भी शोषणकर्ता और शोषित के बीच सहयोग होना चाहिए | मैं तो बस इस बात में विश्वास नहीं करता कि पूंजीपतियों और जमींदारों का स्वभावतया शोषणकर्ता होना आवश्यक है या कि उनके और जनता के बीच आधारभूत अथवा अशमनीय विरोध है |

वर्ग-संघर्ष का विचार मुझे नहीं जमता | भारत में यह न केवल अपरिहार्य नहीं है, अपितु अहिंसा का संदेश समझ लेने पर हम इससे बच भी सकते हैं | जो लोग वर्ग-संघर्ष को अपरिहार्य मानते हैं वे या तो अहिंसा के निहितार्थ को समझ नहीं पाए हैं या उन्हें उसका केवल सतही ज्ञान है | *(अबाप, 3-8-1934)*

रचनात्मक उपयोग

क्या मैंने यह नहीं कहा कि यदि श्रमिक अपनी शक्ति को पहचान लें और उसका बुद्धिमत्ता के साथ तथा रचनात्मक ढंग से इस्तेमाल करें तो वे सच्चे मालिक बन सकते हैं और नियोक्ता उनके न्यासी तथा जरूरत के वक्त काम आने वाले मित्र बन जाएंगे ? यह सुखद स्थिति तभी आ सकती है जब वे यह समझ जाएंगे कि श्रम उस पूंजी से ज़्यादा सार्थक पूंजी है जो श्रमिक भूमि के गर्भ में से सोने-चांदी के रूप में निकालते हैं | *(हरि, 28-9-1947, पृ. 350)*

यदि प्रत्येक अधिकार भली प्रकार किए गए कर्तव्य से उद्‌भूत हो तो उसे कोई नहीं छीन सकता | तदनुसार मुझे मजदूरी पाने का अधिकार तभी है जब मैं उसे कमाने के लिए अपने कर्तव्य का भली प्रकार निर्वाह करूं | अगर मैं काम किए बगैर मजदूरी लूंगा तो वह चोरी का धन होगा | मैं अपना कर्तव्य पूरा किए बगैर अधिकारों को हासिल करने पर बराबर जोर देते रहने के अभियान के साथ अपने को संबद्ध करने के लिए तैयार नहीं हूं, क्योंकि अधिकार कर्तव्यों के पालन पर निर्भर करते हैं और उन्हीं से उद्‌भूत होते हैं | *(हरि, 30-11-1947, पृ. 448)*

42. हड़तालें – वैध और अवैध

मध्यस्थता पहले

मैं जानता हूं कि न्याय पाने के लिए हड़ताल करना कामगारों का सहज अधिकार है, लेकिन पूंजीपति द्वारा मध्यस्थता के सिद्धांत को स्वीकार करते ही हड़ताल अपराध करार दे दी जानी चाहिए | *(यंग, 5-5-1920, पृ. 6)*

हड़तालें और राजनीति

हड़तालें आज आम हो गई हैं | ये वर्तमान अशांति का लक्षण हैं | आज वातावरण सभी प्रकार के अस्पष्ट विचारों से व्याप्त है | सभी लोग एक धुंधली आशा से प्रेरित हैं और यदि इस आशा ने स्पष्ट स्वरूप ग्रहण न किया तो समाज में बड़ी निराशा फैल जाएगी | अन्य देशों की तरह भारत का श्रमिक संसार भी उन लोगों की दया पर निर्भर है जो उनके सलाहकार और मार्गदर्शक बनकर बैठे हुए हैं | ये लोग सदा ईमानदार नहीं होते और जो ईमानदार हैं, वे भी सदा बुद्धिमानी से काम नहीं लेते | श्रमिक अपनी स्थिति से संतुष्ट नहीं हैं | उनके असंतोष के पर्याप्त कारण भी हैं | उन्हें सिखाया जा रहा है, जो कि ठीक भी है, कि अपने नियोक्ताओं की समृद्धि में मुख्यत: उनका ही हाथ है | इसलिए जरा-सा फुसलाने से ही वे अपने औजार रख देने के लिए तैयार हो जाते हैं | राजनीतिक स्थिति भी भारत के श्रमिकों को प्रभावित करने लगी है | और ऐसे श्रमिक नेताओं की कमी नहीं है जो राजनीतिक उद्देश्यों के लिए हड़तालें कराना अनुचित नहीं समझते |

मेरी राय में, ऐसे उद्देश्य के लिए श्रमिक हड़तालों का इस्तेमाल करना बड़ी भारी गलती होगी | मैं इस बात से इंकार नहीं करता कि ऐसी हड़तालों से राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति करना संभव है | लेकिन ये अहिंसक असहयोग की परिधि में नहीं आतीं | इस बात को समझने के लिए विशेष बुद्धिमानी की दरकार नहीं है कि जब तक श्रमिक देश की राजनीतिक परिस्थिति को समझने की स्थिति में नहीं आते और सार्वजनिक हित के लिए काम करने के वास्ते तैयार नहीं होते तब तक उनका राजनीतिक इस्तेमाल करना बहुत ही खतरनाक चीज़ है | इस बात की उम्मीद नहीं करनी चाहिए कि श्रमिकों में यह बात अचानक पैदा हो जाएगी | यह तभी आ सकती है जब वे अपनी स्थिति में इतना सुधार कर लें कि सलीके की जिंदगी जी सकें |

इसलिए आज की स्थिति में श्रमिकों का सबसे बड़ा राजनीतिक योगदान यह हो सकता है कि वे अपनी स्थिति में सुधार लाएं, अपनी जानकारी के स्तर को बढ़ाएं, अपने अधिकारों पर जोर दें और अपने मालिकों पर इस बात के लिए दबाव भी डालें कि जिन चीज़ों के उत्पादन में उनका (श्रमिकों का) इतना हाथ रहा है, उनका उचित उपयोग किया जाए | इसलिए श्रमिकों के अभीष्ट विकास का स्वरूप यह होना चाहिए कि वे अपना उन्नयन करके सह-स्वामी की हैसियत हासिल करें | फिलहाल हड़तालें केवल मजदूरों की दशा में सुधार लाने के लिए ही की जानी

चाहिए और जब मजदूरों में राष्ट्र-प्रेम की भावना आ जाए तो हड़तालें अपने उत्पादनों की कीमतों के नियमन के लिए भी की जा सकती हैं |

कामयाबी की शर्तें

कामयाब हड़ताल की शर्तें बड़ी सरल हैं और यदि उन्हें पूरा किया जाए तो हड़ताल कभी नाकामयाब नहीं हो सकती | ये शर्तें हैं :

(1) हड़ताल का कारण न्यायोचित होना चाहिए |

(2) हड़ताली श्रमिकों के बीच व्यावहारिक एकता होनी चाहिए |

(3) जो श्रमिक हड़ताल में भाग न ले रहे हों, उनके विरुद्ध किसी प्रकार की हिंसा न की जाए |

(4) हड़ताल के दौरान वे इस स्थिति में होने चाहिए कि मज़दूर यूनियन की आर्थिक सहायता के बिना ही अपना जीवन-निर्वाह कर सकें और इसके लिए उन्हें अस्थायी रूप से किसी उपयोगी और उत्पादक धंधे में लग जाना चाहिए |

(5) अगर हड़ताली कर्मचारी के स्थान पर दूसरे श्रमिकों को रख लेने की सुविधा हो तो हड़ताल करना व्यर्थ है | ऐसी स्थिति में, न्यायोचित व्यवहार सुनिश्चित करने अथवा अपर्याप्त मजदूरी को बढ़वाने या ऐसी ही किन्हीं मांगों को पूरा कराने का एक ही रास्ता है और वह है, श्रमिकों द्वारा त्यागपत्र |

(6) ऐसी बहुत-सी हड़तालें कामयाब हुईं हैं जिनमें उपर्युक्त सभी शर्तें पूरी नहीं होती थीं, पर वे सिर्फ इसलिए कामयाब हुईं कि मालिक लोग कमजोर थे और वे अपराध-बोध से ग्रस्त थे | बुरे उदाहरणों की नकल करके हम प्राय: बड़ी-बड़ी भयंकर भूलें कर जाते हैं | सबसे सुरक्षित बात यह है कि हम ऐसे उदाहरणों की नकल न करें जिनके बारे में हमें पूरी जानकारी न हो, बल्कि जिन शर्तों से हम परिचित हैं और जिन्हें हम कामयाबी के लिए जरूरी मानते हैं, उन्हीं का अनुकरण करें | *(यंग, 16-2-1921, पृ. 52-53)*

राजनीतिक हड़तालें

ऐसी कोई हड़ताल नहीं की जानी चाहिए जो गुण-दोष के आधार पर न्यायोचित न ठहराई जा सके | अन्यायपूर्ण हड़ताल कभी सफल नहीं होनी चाहिए | जनता को ऐसी हड़तालों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं दिखानी चाहिए |

जब तक जनता के विश्वासपात्र निष्पक्ष लोग अपनी राय जाहिर न करें तब तक जनता किसी हड़ताल के गुण-दोष के बारे में निर्णय नहीं ले सकती | जिन लोगों के हित हड़ताल के साथ बंधे हैं, वे स्वयं अपने मामले पर निर्णय देने वाले नहीं बन सकते | इसलिए संबंधित पक्षों को या तो मध्यस्थता के लिए सहमत हो जाना चाहिए या न्यायिक निर्णय की प्रक्रिया को अमल में लाया जाना चाहिए | मध्यस्थता या न्यायनिर्णयन के लिए सहमति हो जाने की स्थिति में मामला प्राय: जनता के समक्ष नहीं आता | लेकिन अनेक मामले ऐसे हुए हैं जिनमें दंभी मालिकों ने

पंचाटों को ठुकरा दिया है अथवा अपनी शक्ति के प्रति सचेत विभ्रांत श्रमिकों ने उसी प्रकार पंचाटों को ठुकराकर जोर-जबर्दस्ती से अपनी मांगें मनवाने की कोशिश की है |

आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए की जाने वाली हड़तालों का कोई राजनीतिक उद्देश्य कभी नहीं होना चाहिए | उद्देश्यों का यह घालमेल कभी राजनीतिक ध्येय की पूर्ति में सहायक नहीं होता और डाक विभाग जैसी लोकोपयोगी सेवाओं की हड़ताल की तरह ये सार्वजनिक जीवन को अस्तव्यस्त न भी करें तो भी ऐसी हड़तालें श्रमिकों को प्राय: मुसीबत में डाल देती हैं |

सरकार को हड़तालों से कुछ असुविधा तो हो सकती है, पर उसका काम एकदम ठप्प नहीं होता | अमीर लोग तो महंगी डाक सेवाओं की अपनी कोई-न-कोई व्यवस्था कर लेते हैं, लेकिन इस प्रकार की हड़ताल के कारण विशाल जनता को एक ऐसी सुविधा से वंचित होना पड़ेगा जिसके वे पीढ़ियों से अभ्यस्त हो गए हैं | ऐसी हड़तालें तभी की जा सकती हैं जब अन्य सभी वैध उपाय अपनाकर देख लिए गए हों और वे असफल हो गए हों |

सहानुभूति में हड़ताल तब तक कदापि नहीं की जानी चाहिए जब तक यह निश्चित रूप से सिद्ध न हो जाए कि हड़ताली श्रमिकों ने वे सभी वैध उपाय करके देख लिए थे जो उनके वश में थे....

ऊपर जो कुछ कहा गया है, उसका सार यह है कि राजनीतिक हड़तालों को उनके गुण-दोष के आधार पर लिया जाना चाहिए और उन्हें आर्थिक हड़तालों के साथ कभी मिलाया अथवा संबद्ध नहीं किया जाना चाहिए | अहिंसक कार्रवाई के अंतर्गत राजनीतिक हड़तालों का एक विशिष्ट स्थान है | वे यूं ही नहीं की जा सकतीं | उनका खुले रूप में किया जाना जरूरी है और उनका संचालन गुंडों के हाथों में कभी नहीं छोड़ा जा सकता | उनमें इस बात की खास सावधानी बरती जाती है कि वे हिंसा को जन्म न दें | *(हरि, 11-8-1946, पृ. 256)*

अहिंसक हड़तालें

शांतिपूर्ण हड़ताल उन लोगों तक सीमित रहनी चाहिए जो उस शिकायत से पीड़ित हैं जिसके लिए वह हड़ताल की जा रही है | तदनुसार यदि, मान लीजिए, टिंबकटू के दियासलाई निर्माता, जो अपनी स्थिति से पर्याप्त संतुष्ट हैं, उन मिलकर्मियों की सहानुभूति में हड़ताल करते हैं जिन्हें अत्यल्प वेतन मिल रहा है तो दियासलाई निर्माताओं की यह हड़ताल हिंसा की कोटि में आएगी | इसके बजाय यदि वे टिंबकटू के मिलमालिकों के साथ अपना ब्यौहार बंद कर दें तो उन पर हिंसा का आरोप भी नहीं लगेगा और हड़ताली मिलकर्मियों की वे बड़े कारगर ढंग से मदद भी कर सकेंगे |

लेकिन ऐसे अवसरों की कल्पना की जा सकती है जब कष्ट से प्रत्यक्षत: प्रभावित न होने वाले लोगों पर भी अपना काम बंद कर देने का दायित्व आ जाता है | ऊपर हमने जिस उदाहरण की कल्पना की है, उसमें यदि दियासलाई की फैक्ट्री के मालिक टिंबकटू के मिलमालिकों के साथ गठजोड़ कर लेते हैं तो दियासलाई की फैक्ट्री के श्रमिकों

का यह स्पष्ट कर्तव्य हो जाएगा कि वे भी मिलकर्मियों का साथ दें | लेकिन मैंने यह बात केवल दृष्टांत के तौर पर जोड़ी है | हर मामले का निर्णय अंतत: उसके गुण-दोषों के आधार पर करना होगा | हिंसा एक सूक्ष्म बल है | कई बार ऐसा होता है कि आप हिंसा को महसूस तो कर रहे हैं, पर उस पर हाथ नहीं रख पा रहे हैं | *(यंग, 18-11-1926, पृ. 400)*

हड़ताल स्वत:प्रवर्तित होनी चाहिए, उसके लिए पहले से कोई जोड़-तोड़ न की जाए | अगर वह बिना किसी बाध्यता के संचालित की जाए तो उसमें गुंडागर्दी और लूटपाट की आशंका नहीं रहती | ऐसी हड़ताल में हड़तालियों के बीच पूर्ण सहयोग का वातावरण बना रहता है | हड़ताल शांतिपूर्ण होनी चाहिए और उसमें किसी तरह का बल-प्रदर्शन नहीं किया जाना चाहिए |

हड़ताल के दौरान, अपना पेट भरने के लिए हड़तालियों को व्यक्तिगत रूप से अथवा परस्पर सहयोग के द्वारा कोई काम-धंधा हाथ में ले लेना चाहिए | यह काम किस प्रकार का होगा, इस पर पहले से विचार कर लिया जाए | यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस प्रकार की शांतिपूर्ण, कारगर और मजबूत हड़ताल में उपद्रव या लूटपाट की कोई गुंजाइश नहीं होगी | ऐसी हड़तालों की जानकारी मुझे है | मैं कोई यूटोपिआई चित्र प्रस्तुत नहीं कर रहा हूं | *(हरि, 2-6-1946, पृ. 158)*

मैं किसी भी सूरत में, आम हड़ताल और सत्ता हथियाने के जुगाड़ में सहयोग नहीं दे सकता, भले ही वह अहिंसक तरीके से किया जा रहा हो | *(हरि, 28-7-1946, पृ. 237)*

पूंजीवाद और हड़तालें

श्रमिक हड़ताल के दौरान पूंजीपति कैसा व्यवहार करें ? यह प्रश्न अभी अनिर्णीत है और वर्तमान में इसका बड़ा महत्व है | एक तरीका तो दमन का है जिसे 'अमेरिकन' का नाम अथवा उपनाम दिया गया है | इसमें गुंडों की सहायता लेकर हड़तालियों का दमन किया जाता है | इस तरीके को कोई भी आदमी गलत और विनाशकारी करार देगा | दूसरा तरीका, जो सही और सम्मानजनक है, हर हड़ताल पर उसके गुण-दोषों को देखकर विचार करने और श्रमिकों की न्यायोचित मांगों को मान लेने का है – न्यायोचित से तात्पर्य उससे नहीं है जो पूंजीपति उचित समझे बल्कि उससे है जो श्रमिक स्वयं उचित समझते हों और प्रबुद्ध जनमत उचित मानता हो....

समय के साथ-साथ श्रमिक संसार नित नयी मांगों पर जोर दे रहा है और उन्हें मनवाने के लिए हिंसा का सहारा लेने में भी उसे कोई हिचक नहीं है | जोर-जबर्दस्ती के नये-नये तरीके निकाले जा रहे हैं | श्रमिकों को मालिकों की संपत्ति नष्ट करने, मशीनों को खराब करने, हड़ताल में भाग लेने के अनिच्छुक वृद्धजनों को परेशान करने और भेदियों को जबरन अपने संगठन से निकाल बाहर करने में कोई संकोच नहीं होता | ऐसी परिस्थितियों में, मालिकों का व्यवहार कैसा हो ?

....मालिकों को मेरी सलाह है कि जिस संपत्ति को वे भ्रमवश यह समझ बैठे हैं कि यह उन्होंने खड़ी की है, उसे स्वेच्छा से श्रमिकों की संपत्ति मान लें | उन्हें श्रमिकों को अच्छी शिक्षा देना भी अपने कर्तव्यों में शामिल कर लेना चाहिए जिससे कि श्रमिकों की सुप्त बुद्धि जागृत हो | साथ ही, उन्हें श्रमिकों में इस योग से उत्पन्न शक्ति का स्वागत एवं उसका सहर्ष संवर्धन करना चाहिए |

मालिक इस शुभ कार्य को एक दिन में नहीं कर सकते | इस बीच, हड़तालियों द्वारा अपने कारखानों में किए गए विनाश का मुकाबला वे कैसे करें ? इन मालिकों को मेरी बेहिचक सलाह है कि वे तुरंत अपने कारखाने का पूरा नियंत्रण हड़तालियों के हाथ में दे दें | आखिर कारखाना जितना मालिकों का है, उतना ही हड़तालियों का भी है | मालिक लोग अपना स्थान खीझ के कारण नहीं बल्कि इसलिए खाली करें कि वैसा करना उचित है | उन्हें अपनी सद्भावना का प्रमाण देने के लिए श्रमिकों को अपने इंजीनियरों तथा अन्य कुशल कर्मियों की सेवाएं भी उपलब्ध करा देनी चाहिए |

नियोक्ता पाएंगे कि अंतत: उन्हें कोई हानि नहीं हुई है | वस्तुत: उनकी सही कार्रवाई विरोधियों को निरस्त्र कर देगी और उनके अपने आदमी उन्हें प्रशंसा की दृष्टि से देखेंगे | ऐसा व्यवहार करके मालिक पूंजी का उचित उपयोग करेंगे | मैं इसे उनका कोई परोपकारी काम नहीं मानता | मैं इसे पूंजीपतियों द्वारा अपने संसाधनों का बुद्धिमत्तापूर्ण उपयोग मानता हूं | यह उनका अपने कर्मचारियों के प्रति ईमानदारी का व्यवहार होगा जिससे वे उन्हें अपना सम्माननीय साझीदार बना सकेंगे | *(हरि, 31-3-1946, पृ. 60)*

सहानुभूति में की जाने वाली हड़ताल

जरूरत से पहले सहानुभूति में हड़ताल शुरू कर बैठने से....हमारे ध्येय को अपार क्षति पहुंचेगी | अहिंसक कार्यक्रम के तहत हमें सरकार को परेशानी में डालकर उससे कोई लाभ उठाने के विचार को दृढ़तापूर्वक त्याग देना चाहिए | अगर हमारी कार्रवाई शुद्ध है और सरकार अशुद्ध है तो यदि वह स्वयं को शुद्ध नहीं बनाती तो हमारी कार्रवाई की शुद्धता ही सरकार को परेशानी में डाल देगी | इस प्रकार, शुद्ध-पवित्र आंदोलन दोनों पक्षों को लाभ पहुंचाता है, जबकि केवल विध्वंसक आन्दोलन विध्वंसक को अपवित्र-अशुद्ध रख छोड़ता है और उसे उसी निचले स्तर तक खींच लाता है जिस स्तर पर कि वह होता है, जिसे नष्ट करना इस विध्वंसक का लक्ष्य होता है |

सहानुभूति में की जाने वाली हमारी हड़तालों को भी आत्मशुद्धीकरण अर्थात असहयोग की हड़तालों का स्वरूप ग्रहण करना चाहिए | तदनुसार जब हम किसी बुराई को दूर करने के लिए हड़ताल करते हैं तो हम वस्तुत: उस बुराई के भागीदार नहीं रह जाते और बुराई करने वाले को उसके हाल पर छोड़ देते हैं | दूसरे शब्दों में, हम उसे अपनी बुराई को जारी रखने की मूर्खता को समझने का अवसर देते हैं | ऐसी हड़ताल तभी कामयाब हो सकती है जब उसके पीछे काम पर न लौटने का दृढ़ संकल्प हो....

यदि हड़ताली श्रमिकों के स्थान पर दूसरे श्रमिक रखने की सुविधा हो तो न्यायोचित कारणों से की गई हड़ताल भी असफल हो सकती है, भले ही हड़ताली कर्मचारियों में उसे अनिश्चित काल तक चलाते रहने का सामर्थ्य हो | इसलिए यदि कोई बुद्धिमान आदमी यह अनुभव करता है कि उसके स्थान पर दूसरे आदमी की नियुक्ति सरलतापूर्वक की जा सकती है तो वह अपनी मजदूरी अथवा अन्य सुख-सुविधाओं को बढ़वाने के लिए हड़ताल का सहारा नहीं लेगा | लेकिन कोई दानवीर अथवा देशप्रेमी यदि अपने पड़ोसी की व्यथा को महसूस करके स्वयं को उसके साथ जोड़ना चाहता है तो वह यह जानते हुए भी कि श्रमिकों की मांग के मुकाबले उनकी पूर्ति अधिक है, हड़ताल पर चला जाएगा | यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि जिस प्रकार की नागरिक हड़ताल का मैंने वर्णन किया है, उसमें डराने-धमकाने, आगजनी आदि हिंसात्मक कार्यों के लिए कोई स्थान नहीं है | *(यंग, 22-9-1921, पृ. 298)*

....आप पूछ सकते हैं कि भेदियों का क्या किया जाए ? दुर्भाग्यवश भेदिये तो हमेशा रहेंगे ही | लेकिन मेरा आग्रह है कि आप उनसे लड़ें नहीं, बल्कि उनसे अनुनय करें और उन्हें बताएं कि उनकी नीति संकीर्ण है और आपकी नीति संपूर्ण श्रमबल के हित की ओर अभिमुख है | यह हो सकता है कि वे आपकी बात न सुनें | ऐसी सूरत में आपको उन्हें बर्दाश्त करना चाहिए, उनसे संघर्ष करना उचित नहीं है | *(हरि, 7-11-1936, पृ. 311)*

हड़ताल की बढ़ती हुई बीमारी का मूल कारण यह है कि अन्य देशों की तरह हमारे यहां भी आज जीवन धर्म के आधार से च्युत हो गया है और, एक अंग्रेज लेखक के शब्दों में, उसका स्थान एक अर्थ-संबंध ने ले लिया है | यह बड़ा खतरनाक संबंध है | लेकिन धर्म का आधार होने पर भी हड़तालें तो होंगी ही, क्योंकि वैसी स्थिति की कल्पना करना कठिन है जिसमें सभी व्यक्तियों का जीवन धर्म पर आधारित हो | इसलिए एक ओर जहां शोषण के प्रयास जारी रहेंगे वहीं हड़तालें भी होती रहेंगी | लेकिन तब ये हड़तालें पूर्णत: अहिंसक होंगी |

अहिंसक हड़तालें कभी किसी को हानि नहीं पहुंचातीं | संभवत: ऐसी ही हड़ताल से जनरल स्मट्स को घुटने टेक देने पड़े थे | स्मट्स ने कहा था, "अगर तुमने किसी अंग्रेज को चोट पहुंचाई होती तो मैं तुम्हें गोली मार देता और तुम्हारे लोगों को देश से बाहर भी निकाल देता | जो स्थिति है, उसमें मैंने तुम्हें जेल में डाल दिया है और तुम्हें तथा तुम्हारे साथियों को झुकाने का हर संभव प्रयास किया है | लेकिन अगर तुम उसका प्रतिकार ही नहीं करते तो मैं इसे कब तक जारी रख सकता हूं |" इसलिए उसे 'कुलियों' का प्रतिनिधित्व करने वाले एक 'कुली' के साथ समझौता करना पड़ा - याद रहे कि उस समय दक्षिण अफ्रीका में सभी भारतीय 'कुली' कहलाते थे | *(हरि, 22-9-1946, पृ. 321)*

43. खेतिहर किसान

रैयत को मान्यता

यदि भारत को शांतिपूर्ण तरीके से सच्ची प्रगति करनी है तो धनिक वर्ग को यह बात निश्चित रूप से मान लेनी होगी कि रैयत की आत्मा भी वैसी ही है जैसी कि उसकी अपनी; और अपनी धन-दौलत के कारण वे निर्धन लोगों से किसी भी रूप में श्रेष्ठ नहीं हैं | जापानी अमीरों की तरह उन्हें भी यह मान लेना चाहिए कि वे अपनी संपत्ति के न्यासी हैं और यह संपत्ति रैयत की भलाई के लिए है | ऐसी धारणा बन जाने पर वे उसका उतना ही अंश अपने इस्तेमाल में लाएंगे जितना कि उनके श्रम का उचित पारिश्रमिक माना जा सकता है |

इस समय पैसे वालों की निहायत बेजरूरी शान-शौकत और फिजूलखर्ची तथा रैयत की गंदी बस्तियों और घोर निर्धनता के वातावरण के बीच कोई अनुपात नहीं है....

यदि पूंजीपति केवल वक्त के रुख को पहचाने और अपनी धन-दौलत को ईश्वर-प्रदत्त अधिकार मानने की धारणा में बदलाव ले आए तो देखते-ही-देखते देश के सात लाख गोबर के ढेर जिन्हें हम गांव कहते हैं, शांति, स्वास्थ्य और सुख-सुविधा से युक्त बस्तियों में बदले जा सकते हैं |

मुझे विश्वास है कि हमारे पूंजीपति जापान के समुराइयों का अनुकरण करें तो उनकी कोई हानि नहीं होगी, बल्कि हर तरह से फायदा ही होगा | हमारे सामने केवल दो विकल्प हैं – पूंजीपति अपने फिजूल के तामझाम को छोड़ दें और उस धन से सबके वास्तविक सुख को सुनिश्चित करें या, अगर पूंजीपति समय से न चेते तो, जागृत किंतु अज्ञानी लाखों-करोड़ों भुखमरों द्वारा समूचे देश में उत्पन्न की जाने वाली अव्यवस्था की स्थिति, जिसका सामना शक्तिशाली सरकार का सशस्त्र बल भी नहीं कर पाएगा | मेरी आशा है कि भारत ऐसी घोर अव्यवस्था की स्थिति को नहीं आने देगा | *(यंग, 5-12-1929, पृ. 396)*

मेरा स्वप्न यह नहीं है कि निजी स्वामियों की संपत्ति को छीन लिया जाए, बल्कि यह है कि उसके भोग पर इतना अंकुश लगा दिया जाए कि कंगाली और उसके परिणामस्वरूप उपजा असंतोष तथा अमीर और गरीब की जिंदगियों और उनके वातावरणों के बीच आज जो अत्यंत कुरूप असमानता है, वह दूर हो जाए | गरीबों को यह अहसास दिलाया जाए कि वे अपने जमींदारों के सहभागीदार हैं, उनके इशारे पर मेहनत करने वाले और हर ऐसे-वैसे मौके पर उन्हें तरह-तरह की भेंट-पूजा देने वाले गुलाम नहीं | *(यंग, 21-11-1929, पृ. 384)*

मैं जमींदारों और पूंजीपतियों को जनता की सेवा के लिए इस्तेमाल करना चाहूंगा | हमें पूंजीपतियों की खातिर जनता के हितों की बलि नहीं देनी है | हमें यह भरोसा रखना चाहिए कि वे जनता की सेवा के लिए अपने लाभों का त्याग करने में समर्थ हो सकेंगे | ऐसा नहीं है कि उच्चतर विचारों के प्रति वे संवेदनशून्य हैं | मेरा सदा का अनुभव है कि प्रेम से कही गई बात उन पर सीधा असर करती है | अगर हम उनके विश्वास को जीत सकें और

उन्हें सहज मन:स्थिति में ले आएं तो हम पाएंगे कि जनता के साथ अपनी धन-संपत्ति की अधिकाधिक भागीदारी के प्रति उनका रुख प्रतिकूल नहीं है | *(अबाप, 3-8-1934)*

जमींदारों का हृदय-परिवर्तन

मैं जमींदार को नष्ट करना नहीं चाहता, पर मैं जमींदार को अपरिहार्य भी नहीं मानता....मैं आशा करता हूं कि अहिंसक तरीके से जमींदारी और पूंजीपतियों का हृदय-परिवर्तन किया जा सकता है | इसलिए, मैं वर्ग-संघर्ष की अपरिहार्यता का कायल नहीं हूं | न्यूनतम प्रतिरोध के द्वारा लक्ष्य की प्राप्ति अहिंसा का आवश्यक तत्व है |

जिस दिन कृषक अपनी शक्ति को पहचान जाएंगे, जमींदारी की बुराइयां भी दूर हो जाएंगी | अगर जमीन जोतने वाला यह कह दे कि जब तक उसे स्वयं को तथा अपने परिवार को अच्छे ढंग से खाने-पहनने और शिक्षा देने लायक पैसे नहीं मिलेंगे तब तक वह खेत पर काम नहीं करेगा तो बिचारा जमींदार क्या कर पाएगा ? वास्तव में, जमीन को जोतने वाला ही फसल का स्वामी है | यदि ये लोग बुद्धिमानी के साथ संगठित हो जाएं तो वे अदम्य शक्ति के मालिक बन सकते हैं | इस प्रकार वर्ग-संघर्ष को मैं आवश्यक नहीं मानता | यदि मैं उसे अपरिहार्य मानता तो उसका प्रचार करने और उसकी शिक्षा देने में संकोच न करता | *(हरि, 5-12-1936, पृ. 338, 339)*

मैं हिटलर की शक्ति का नहीं, एक स्वतंत्र कृषक की शक्ति का अभिलाषी हूं | मैं इतने वर्षों से कृषक के साथ तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास करता आ रहा हूं, पर अभी तक इसमें सफल नहीं हो सका हूं | आज मेरे और किसान के बीच में फर्क यह है कि वह स्वेच्छा से नहीं बल्कि हालातों की मजबूरी की वजह से किसान और मज़दूर बना हुआ है, जबकि मैं स्वेच्छा से किसान और मज़दूर बनना चाहता हूं | जब मैं उसे भी स्वेच्छा से किसान और मज़दूर बना सकूंगा तो उसे उन जंजीरों को भी तोड़ फेंकने में सहायता दे पाऊंगा जिनमें आज वह बंधा है और जिनके कारण वह अपने मालिक का हुक्म बजा लाने के लिए मजबूर है | *(हरि, 7-6-1942, पृ. 184)*

किसान

किसान या खेतिहर, वह चाहे भूमिहीन श्रमिक हो या काश्तकार हो, पहले नम्बर पर आता है | वह सही अर्थों में धरतीपुत्र है – धरती सचमुच उसकी है अथवा उसकी होनी चाहिए, अन्यत्रवासी भूस्वामी या जमींदार की नहीं | लेकिन अहिंसा के नियम के अनुसार श्रमिक जबर्दस्ती अन्यत्रवासी जमींदार को बेदखल नहीं कर सकता | उसे इस प्रकार काम करना होगा कि जमींदार के लिए उसका शोषण करना असंभव हो जाए |

किसानों के बीच घनिष्ठ सहयोग का होना परम आवश्यक है | इसके लिए जहां इस समय विद्यमान नहीं हैं वहां विशेष संगठन या समितियां बनाई जानी चाहिए और जहां यह पहले से मौजूद हैं वहां उनमें यथावश्यक सुधार किया जाना चाहिए |

किसान प्राय: अशिक्षित हैं | वयस्कों और विद्यालय जाने की आयु के युवाओं, सभी को शिक्षित किया जाना चाहिए | यह बात स्त्री और पुरुष दोनों पर लागू होती है | भूमिहीन श्रमिकों को इतनी मजदूरी दी जानी चाहिए कि वे सलीके की जिंदगी जी सकें, जिसका आशय यह है कि उन्हें संतुलित भोजन, रहने के लिए मकान और पहनने के लिए कपड़ा उपलब्ध हो जो उनकी स्वास्थ्य संबंधी आवश्यकताओं को पूरा कर सकें | *(बांक्रा, 28-10-1944)*

कानून नहीं, अहिंसा

यदि स्वराज सभी लोगों के प्रयास से प्राप्त किया जाना है, जैसा कि अहिंसा के अनुसार होना भी चाहिए, तो किसानों को अपने अनुकूल प्रतिष्ठा मिलनी चाहिए और उनकी आवाज सर्वोपरि होनी चाहिए | लेकिन अगर स्वराज इस तरह हासिल नहीं होता है और इसके लिए सीमित मताधिकार के आधार पर जनता और सरकार के बीच कोई कारगर समझौता किया जाता है तो किसानों के हितों की सावधानी के साथ निगरानी करनी होगी | यदि विधानसभाएं किसानों के हितों की रक्षा करने में असमर्थ सिद्ध होती हैं तो किसानों के पास सविनय अवज्ञा और असहयोग का अचूक उपाय तो सदा है ही |

लेकिन....अंतत: कागजी कानून या साहसपूर्ण शब्दों अथवा तूफानी भाषणों से कुछ होने वाला नहीं है, बल्कि अहिंसक संगठन, अनुशासन और त्याग की शक्ति ही लोगों को अन्याय अथवा दमन से बचा सकेगी |

मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि यदि हम लोकतांत्रिक स्वराज स्थापित कर पाते हैं –आज़ादी अहिंसा के जरिए हासिल की गई तो यही होना भी चाहिए – तो किसानों को राजनीतिक शक्ति सहित सभी प्रकार की शक्तियां प्राप्त होंगी | *(बांक्रा, 12-1-1945)*

वर्षों पहले मैंने एक कविता पढ़ी थी जिसमें किसान को संसार का जनक बताया गया था | यदि ईश्वर सृष्टि का पालन करता है तो किसान ईश्वर का हाथ है | किसान से उऋण होने के लिए हमारा क्या करने का विचार है ? आज तक तो हम उसके पसीने की कमाई पर ही जीते आए हैं | *(हरि, 25-8-1946, पृ. 281)*

44. श्रमिक वर्ग के सामने मौजूद रास्ते

आज भारत के सामने दो रास्ते खुले हैं | पहला रास्ता पश्चिम के 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' के सिद्धांत का है और दूसरा रास्ता पूर्व के 'सत्यमेव जयते' का है जिसके अनुसार सत्य कभी अनिष्टकारी नहीं होता और जिसमें सबल तथा दुर्बल दोनों को समान रूप से न्याय पाने का अधिकार है |

विकल्प के चयन की शुरुआत श्रमिक वर्ग से होगी | क्या श्रमिकों को अपनी मजदूरियों में वृद्धि के लिए हिंसा का सहारा लेना चाहिए, यदि वैसा करना किसी तरह संभव हो ? उनकी मांगें कितनी भी जायज हों, पर उन्हें मनवाने के लिए वे हिंसा जैसी किसी चीज़ का सहारा नहीं ले सकते |

अधिकारों की प्राप्ति के लिए हिंसा का प्रयोग आसान दिखाई दे सकता है, पर कालांतर में यह बड़ा कंटकाकीर्ण सिद्ध होता है | जो तलवार के सहारे जीते हैं, वे तलवार के वार से ही मरते भी हैं | तैराकों की मृत्यु प्राय: डूबने से होती है | यूरोप को देखिए | वहां कोई सुखी दिखाई नहीं देता, क्योंकि एक भी व्यक्ति संतुष्ट नहीं है | श्रमिक को पूंजीपति पर भरोसा नहीं है और पूंजीपति को श्रमिक पर विश्वास नहीं है | दोनों में ही एक तरह की स्फूर्ति और शक्ति है, पर यह तो सांडों में भी होती है | वे लड़-लड़कर मर जाते हैं |

सभी गति प्रगति नहीं होती | ऐसा विश्वास करने का कोई कारण हमारे पास नहीं है कि यूरोप के लोग प्रगति कर रहे हैं | उनकी दौलत उनके नैतिक अथवा आध्यात्मिक गुणों को सुनिश्चित नहीं करती | दुर्योधन अकूत धन का स्वामी था, पर उसके होते हुए भी वह विदुर और सुदामा की तुलना में दरिद्री था | आज दुनिया विदुर और सुदामा की पूजा करती है जबकि दुर्योधन का नाम सर्वथा त्याज्य दुर्गुणों का पर्याय बन गया है....

श्रम की शक्ति

पूंजी और श्रम के संघर्ष में, आम तौर पर यह कहा जा सकता है कि गलती प्राय: पूंजीपतियों की होती है | लेकिन जब श्रमिक वर्ग अपनी शक्ति को पूरी तरह पहचान जाता है तो वह पूंजीपतियों से भी ज़्यादा क्रूरता पर उतर आता है | यदि श्रमिकों में मिलमालिकों जैसी बुद्धि का विकास हो जाए तो मिलमालिकों को श्रमिकों की शर्तों पर ही काम करना पड़ेगा | लेकिन यह स्पष्ट है कि श्रमिकों का उतना बौद्धिक विकास कभी नहीं हो पाएगा | अगर हो सके तो फिर वे श्रमिक न होकर खुद स्वामी बन जाएंगे | पूंजीपति केवल पैसे के बल पर ही नहीं लड़ते | उनके पास बुद्धि और चतुराई का बल भी होता है....

इन दोनों पक्षों के बीच एक तीसरा पक्ष और पैदा हो गया है | वह श्रमिकों का मित्र बन गया है | ऐसे पक्ष की श्रमिकों को आवश्यकता भी है | लेकिन श्रमिक उससे उसी सीमा तक मित्रता स्थापित कर सकते हैं जिस सीमा तक वह पक्ष अनासक्त भाव से उनके साथ मित्रता का निर्वाह करे |

अब समय आ गया है जब श्रमिकों को अनेक प्रकार से मोहरा बनाकर इस्तेमाल किया जाएगा | समय की मांग है कि राजनीति में भाग लेने वाले इस पर विचार करें | वह क्या चुनेंगे ? अपना हित अथवा श्रमिकों तथा राष्ट्र की सेवा ? श्रमिक वर्ग को मित्रों की बड़ी जरूरत है | वह नेतृत्व के बिना आगे नहीं बढ़ सकता | श्रमिकों की दशा इसी पर निर्भर करेगी कि उन्हें कैसे लोगों का नेतृत्व प्राप्त होता है |

हड़ताल, कामबंदी आदि निस्संदेह बड़े कारगर हथियार हैं, पर इनका दुरुपयोग करना कठिन नहीं है | श्रमिकों को अपने मजबूत संघ बना लेने चाहिए | और उनकी सहमति के बगैर किसी भी सूरत में हड़ताल नहीं करनी चाहिए|

मिलमालिकों से बातचीत किए बिना हड़ताल करने का खतरा कभी मोल नहीं लेना चाहिए | यदि मिलमालिक मध्यस्थता के लिए कहें तो पंचायत का सिद्धांत स्वीकार कर लेना चाहिए | और, एक बार पंचों की नियुक्ति हो जाए तो उनका फैसला दोनों पक्षों को अनिवार्यत: मान लेना चाहिए, चाहे वह उन्हें पसंद आए या न आए | *(यंग, 11-2-1920, पृ. 7-8)*

9. सर्वोदय

45. सर्वोदय का दिव्य संदेश

मानव की एकता

मैं इसमें विश्वास नहीं करता....कि एक आदमी का आध्यात्मिक लाभ हो जाए और उसके आसपास के लोग दुख भोगें | मैं अद्वैत में विश्वास करता हूं, मुझे मानव की ही नहीं बल्कि प्राणिमात्र की अनिवार्य एकता में विश्वास है | इसलिए मेरा विश्वास है कि अगर एक आदमी को आध्यात्मिक लाभ मिलता है तो उसके साथ सारी दुनिया का लाभ होता है, और अगर एक आदमी का पतन होता है तो उस सीमा तक सारी दुनिया का पतन होता है | *(यंग, 4-12-1924, पृ. 398)*

मैं यह नहीं मानता कि आध्यात्मिक नियम के प्रवर्तन का अपना कोई विशिष्ट क्षेत्र है | इसके विपरीत, वह जीवन के दैनंदिन कार्यकलाप के माध्यम से ही स्वयं को अभिव्यक्त करता है | इस प्रकार, यह आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक, सभी क्षेत्रों को प्रभावित करता है | *(यंग, 3-9-1925, पृ. 304)*

अगर हम ईश्वर की सेवा में लग जाएं या उसके साथ एकाकार हो जाएं तो हमारे कार्यकलाप भी उसी की तरह अक्लांत हो जाएंगे | समुद्र से बिछड़ी बूंद को तो क्षणिक विश्राम भी मिल सकता है, पर जो बूंद समुद्र का ही एक अंश है, उसे विश्राम कहां ? यही बात हमारे साथ भी है |

ज्यों ही हम ईश्वर रूपी समुद्र के साथ एकाकार होते हैं, हम विश्राम की स्थिति से ऊपर उठ जाते हैं – हमें वस्तुत: विश्राम की आवश्यकता ही नहीं रह जाती | हम नींद में भी कार्यरत रहने लगते हैं | जब हम सोते हैं तब भी हमारे हृदय में ईश्वर का ध्यान बना रहता है | यह विकलता ही सच्चा विश्राम है | यह अनंत क्षोभ ही अनिर्वचनीय शांति की कुंजी है | पूर्ण समर्पण की इस सर्वोच्च अवस्था का वर्णन करना कठिन है, किंतु यह मानव अनुभूति से परे की वस्तु नहीं है | इसकी प्राप्ति अनेक निष्ठावान व्यक्ति कर चुके हैं और स्वयं हम भी कर सकते हैं |*(फ्रायम, पृ. 47)*

गरीबों के साथ तादात्म्य

मैं इससे अधिक उदात्त और राष्ट्रप्रेम की किसी अन्य बात की कल्पना नहीं कर सकता कि हम सभी प्रतिदिन, मान लीजिए, एक घंटे के लिए वह काम करें जो गरीबों को करना पड़ता है और इस प्रकार उनके तथा उनके माध्यम से सारी मानव जाति के साथ तादात्म्य स्थापित करें | मैं ईश्वर की इससे बेहतर और किसी आराधना की कल्पना नहीं कर सकता कि मैं, उसके नाम पर, गरीबों के लिए वही काम करूं जो वे स्वयं करते हैं | *(यंग, 20-10-1921, पृ. 329)*

सच्ची स्वतंत्रता, जो जीवन का एकमात्र प्राप्तव्य है, प्रदान करने के एवज में ईश्वर हमसे आत्मसमर्पण से कम और कोई कीमत स्वीकार नहीं करता | और, एक बार अपना सर्वस्व समर्पण करते ही मनुष्य स्वयं को ईश्वर की सृष्टि की सेवा में खड़ा पाता है | *(यंग, 20-12-1928, पृ. 420)*

सत्य हमारे समस्त कार्यकलाप का केंद्र होना चाहिए | सत्य ही हमारे जीवन की श्वास हो | जीवन-यात्रा में एक बार यह स्थिति आ जाए तो सच्चे जीवन के अन्य सभी नियम बिना प्रयास उपस्थित हो जाते हैं और मनुष्य सहज रूप से उनका पालन करने लग जाता है | लेकिन सत्य के बिना जीवन में किन्हीं सिद्धांतों अथवा नियमों का पालन करना असंभव है | *(फ्रायम, पृ. 2)*

विधाता के विधान पर आस्था

सत्यशोधक अर्थात प्रेम के नियम का अनुकरण करने वाला व्यक्ति कल के लिए कुछ भी बचा कर नहीं रखता | ईश्वर कल के लिए कोई व्यवस्था नहीं करता; वह दिन-प्रतिदिन की आवश्यकता के लिए जितना चाहिए, सिर्फ उतने की सृष्टि करता है | इसलिए यदि हमें उसके विधान में आस्था है तो हमें इस बात के प्रति आश्वस्त रहना चाहिए कि वह हमें नित्य हमारी आवश्यकतानुसार रोटी अवश्य देगा | *(यंग, 4-9-1930, पृ. 1)*

मानव सेवा

मनुष्य का चरम ध्येय ईश्वर की प्राप्ति है, और उसके सभी सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक कार्यकलाप ईश्वर-साक्षात्कार के इस चरम ध्येय द्वारा ही निर्देशित होने चाहिए | सभी मानवों की प्रत्यक्ष सेवा इस प्रयास का अनिवार्य अंग है, क्योंकि ईश्वर-प्राप्ति का उपाय यही है कि हम उसे उसकी सृष्टि में ढूंढें और उसके साथ एकाकार हो जाएं | इसे मानवमात्र की सेवा करके ही किया जा सकता है | मैं समष्टि का ही एक अंश हूं और ईश्वर को शेष मानवता से पृथक कहीं नहीं पा सकता |

मेरे देशवासी मेरे निकटस्थ पड़ोसी हैं | वे इतने लाचार, साधनहीन और जड़ हो गए हैं कि मुझे अपना सारा ध्यान उनकी सेवा पर ही केंद्रित कर देना चाहिए | यदि मैं अपने आपको यह विश्वास दिला सकता कि ईश्वर-प्राप्ति हिमालय की गुफा में होगी तो मैं तत्काल वहां के लिए प्रस्थान कर देता | लेकिन मैं जानता हूं कि मानवता से पृथक ईश्वर के दर्शन कहीं नहीं हो सकते | *(हरि, 29-8-1936, पृ. 226)*

मेरे ईश्वर के असंख्य रूप हैं | कभी वह मुझे चरखे में दिखाई देता है, कभी सांप्रदायिक एकता में और कभी छुआछूत के निवारण में | इस प्रकार, जिधर-जिधर मेरी अंतरात्मा मुझे संचालित करती है, वहीं-वहीं मैं ईश्वर के साथ संपर्क स्थापित करता हूं | *(हरि, 8-5-1937, पृ. 99)*

चरखा : एक साधन

जो व्यक्ति गरीबों के सामने चरखा कातता है और उन्हें भी ऐसा करने के लिए आमंत्रित करता है, वह ईश्वर की अनन्य सेवा करता है | भगवद्गीता में भगवान कहते हैं, 'जो व्यक्ति भक्तिभाव से मुझे एक फल, एक फूल अथवा एक पत्ता भी निवेदित करता है, वह मेरा सेवक है |'

ईश्वर का पादपीठ दीन-हीनों और गुमनाम लोगों के बीच स्थापित है | अत: ऐसे लोगों के लिए चरखा कातना सबसे बड़ी प्रार्थना, सबसे बड़ी आराधना और सबसे बड़ा त्याग है | *(यंग, 24-9-1925, पृ. 331-32)*

दुनिया युद्ध के परवर्ती प्रभावों से क्लांत है | जिस प्रकार चरखा आज भारत को सुख-शांति दे रहा है, शायद कल वह सारी दुनिया को भी दे, क्योंकि यह अधिकतम लोगों की ही अधिकतम भलाई नहीं करता, बल्कि सभी लोगों की अधिकतम भलाई करता है | *(यंग, 10-2-1927, पृ. 43-44)*

मैं 'अनटू दिस लास्ट' वाक्यांश के निहितार्थ का समर्थक हूं | इस पुस्तक ने मेरे जीवन की दिशा ही बदल दी | हमें दुनिया से जो कुछ चाहिए, वह पहले हम खुद दुनिया के दीनतम व्यक्ति को उपलब्ध कराएं | सभी व्यक्तियों को समान अवसर मिलना चाहिए | अवसर मिले तो प्रत्येक व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास की एक जैसी संभावना है | चरखा इसी भावना का प्रतीक है | *(हरि, 17-11-1946, पृ. 404)*

आत्मशुद्धि

आत्मशुद्धि के बिना प्राणिमात्र के साथ तादात्म्य स्थापित करना असंभव है | आत्मशुद्धीकरण के बिना अहिंसा के नियम का पालन कोरा स्वप्न ही है; जिसका हृदय शुद्ध नहीं है वह ईश्वर की प्राप्ति नहीं कर सकता | अत: आत्मशुद्धीकरण का अर्थ जीवन के सभी क्षेत्रों में शुद्धीकरण से लिया जाना चाहिए | और चूंकि शुद्धीकरण बड़ी संक्रामक चीज़ है, इसलिए एक व्यक्ति के शुद्धीकरण से अनिवार्यत: उसके आसपास का वातावरण भी शुद्ध हो जाता है |

किंतु शुद्धीकरण का मार्ग कठिन और बड़ा ढालू है | पूर्ण शुद्धीकरण के लिए मनुष्य को मनसा, वाचा, कर्मणा विकारमुक्त होना पड़ता है; उसे प्रेम और घृणा तथा आसक्ति और विरक्ति की विरोधी धाराओं से ऊपर उठना पड़ता है | मैं जानता हूं कि अथक प्रयास के बावजूद मैं अभी तक इस त्रिविध शुद्धि को प्राप्त नहीं कर पाया हूं | इसीलिए दुनिया की प्रशंसा मुझे गुदगुदाती नहीं है, बल्कि प्राय: दंश ही देती है |

मुझे लगता है कि हथियारों की मदद से विश्वविजय करने की तुलना में सूक्ष्म मनोवेगों पर विजय पाना ज़्यादा कठिन है |

....मुझे अपने अंदर सुप्त पड़े विकारों का अनुभव है | उनके विषय में जानकर मुझे लज्जा का अनुभव हुआ है, हालांकि मुझमें पराजय का भाव कभी पैदा नहीं हुआ | इन अनुभवों तथा प्रयोगों ने ही मुझे जीवित रखा है और बड़ा आनंद दिया है | लेकिन मैं जानता हूं कि मुझे अभी बड़ा कठिन रास्ता तय करना है | मुझे अपनी हस्ती को पूरी तरह मिटा देना होगा | जब तक मनुष्य अपने सहचरों में स्वयं को सबसे पीछे खड़ा नहीं कर देता तब तक उसकी मुक्ति संभव नहीं है | अहिंसा विनम्रता की चरम सीमा है | *(ए, पृ. 371)*

साध्य और साधन

मेरे जीवन-दर्शन में साधन और साध्य परिवर्तनीय शब्द हैं | *(यंग, 26-12-1924, पृ. 424)*

साधन की उपमा बीज से दी जा सकती है और साध्य की वृक्ष से; जो अविच्छिन्न संबंध बीज और वृक्ष के बीच है, वही साधन और साध्य के बीच है | *(हिंस्व, पृ. 71)*

पार्थक्य नहीं

उनका कहना है कि 'साधन तो आखिर साधन ही है |' मैं कहता हूं कि 'साधन ही सब कुछ है |' जैसे साधन, वैसा साध्य....साधन और साध्य के बीच उन्हें अलग करने वाली कोई दीवार नहीं है | वस्तुत: सृष्टिकर्ता ने हमें साधनों पर नियंत्रण (यद्यपि सीमित ही) दिया है, साध्य पर कोई नियंत्रण नहीं दिया | साधनों के ठीक-ठीक अनुपात में ही लक्ष्य की सिद्धि होती है | इस प्रस्थापना का कोई अपवाद नहीं है | *(यंग, 17-7-1924, पृ. 236-37)*

हर चीज़ के लिए विधाता ने एक निश्चित समय का विधान कर रखा है | परिणामों पर हमारा वश नहीं है, हम केवल प्रयास कर सकते हैं | जहां तक मेरा संबंध है, मेरे संतोष के लिए इतना पर्याप्त है कि मैंने अपने कर्तव्य-पालन के लिए भरसक प्रयत्न किया है | *(हरि, 6-5-1939, पृ. 112)*

अधिकार और कर्तव्य

अधिकार का सच्चा स्रोत कर्तव्य है | यदि हम सभी अपने कर्तव्यों का पालन करें तो अधिकारों की प्राप्ति कठिन नहीं रहेगी | किंतु यदि हम अपने कर्तव्यों को भूलकर अधिकारों के पीछे भागेंगे तो वे हमसे छलावे जैसा व्यवहार करेंगे | छलावे के पीछे आप जितना भागिए, वह आपसे उतनी ही दूर होता जाता है | भगवान कृष्ण ने अपनी अमर वाणी में यही संदेश दिया है : 'केवल कर्म ही तेरे वश में है | फल की चिंता बिलकुल छोड़ दे |' यहां कर्म कर्तव्य है और फल अधिकार है | *(यंग, 8-1-1925, पृ. 15-16)*

जो व्यक्ति अपने कर्तव्यों का भली प्रकार निर्वाह करता है, उसे अधिकारों की प्राप्ति स्वत: हो जाती है | सच पूछा जाए तो अपने कर्तव्य-पालन का अधिकार ही एक ऐसा अधिकार है जिसके लिए जीना और मर जाना उचित है |

यह सभी वैध अधिकारों को स्वयं में समाहित करता है | शेष सभी किसी-न-किसी रूप में छीना-झपटी है और उसमें हिंसा के बीच विद्यमान हैं |

पूंजीपति और जमींदार अपने अधिकारों की बात करते हैं और श्रमिक अपने अधिकारों की, राजा शासन करने के अपने दैवी अधिकार की और रैयत उनका प्रतिरोध करने के अधिकार की | यदि सभी लोग केवल अधिकारों पर जोर देंगे और कर्तव्य को भूल जाएंगे तो संसार में घोर अव्यवस्था और अराजकता फैल जाएगी | *(हरि, 27-5-1939, पृ. 143)*

यदि अधिकारों पर बल देने के बजाय प्रत्येक व्यक्ति अपना कर्तव्य करने लगे तो मानव जाति में तत्काल व्यवस्था का राज्य स्थापित हो जाए....मैं तो कहूंगा कि जो अधिकार सुनिष्पादित कर्तव्य से प्रत्यक्षत: उद्‌भूत न होते हों, वे हासिल करने योग्य नहीं हैं | वे जबर्दस्ती छीने गए अधिकार हैं जिन्हें जितनी जल्दी त्याग दिया जाए उतना अच्छा है | जो अधम पिता अपने बच्चों के प्रति अपने कर्तव्य को पूरा किए बिना उनसे आज्ञाकारिता की अपेक्षा रखता है, उसके पल्ले केवल अवमानना ही पड़ती है |

किसी दुराचारी पति का अपनी कर्तव्यपरायणा पत्नी से हर मामले में आज्ञापालन की अपेक्षा करना धार्मिक उपदेशों को विकृत करना है | लेकिन जो पिता अपने बच्चों के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करने के लिए तत्पर है, यदि उसके बच्चे उसकी अवज्ञा करते हैं तो वे कृतघ्न माने जाएंगे और वे अपने पिता की अपेक्षा अपनी ही हानि अधिक करेंगे | यही बात पति-पत्नी पर भी लागू होती है |

यदि आप इस सरल और सार्वभौम नियम को मालिकों और मज़दूरों, जमींदारों और काश्तकारों, राजाओं और उनकी प्रजाओं या हिंदुओं और मुसलमानों पर लागू करें तो आप देखेंगे कि जन-जीवन और व्यवसाय में उपद्रव और अव्यवस्था उत्पन्न किए बिना जीवन के सभी क्षेत्रों में मधुरतम संबंधों की स्थापना की जा सकती है | मैं जिसे सत्याग्रह का नियम कहता हूं, उसका निगमन कर्तव्यों की समझ और अधिकारों के उनसे प्रवाहमान होने में ही निहित है | *(हरि, 6-7-1947, पृ. 217)*

46. यज्ञ का दर्शन

यज्ञ का अर्थ

यज्ञ का अर्थ है कोई ऐसा कृत्य जो फल की कामना किए बगैर दूसरों के कल्याण के लिए किया गया हो; यह कृत्य लौकिक अथवा आध्यात्मिक, किसी भी प्रकार का हो सकता है | 'कृत्य' का यहां व्यापकतम अर्थ लिया जाना चाहिए, जिसमें मन, वाणी और कर्म तीनों सम्मिलित हैं | 'दूसरों' में केवल मनुष्य ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण जीवन-जगत सम्मिलित है....

इसके अलावा, मौलिक त्याग कोई ऐसा कृत्य होना चाहिए जो अधिकतम व्यापक क्षेत्र के अधिकतम जीवों का अधिकतम कल्याण करने वाला हो और जिसे अधिकतम स्त्री-पुरुष कम-से-कम कष्ट उठाकर कर सकते हों | तदनुसार किसी तथाकथित ऊंचे उद्देश्य के लिए किया गया कृत्य यदि एक जीव को भी हानि पहुंचाने के उद्देश्य से किया गया हो तो वह यज्ञ नहीं कहला सकता, महायज्ञ तो और भी नहीं | गीता हमें उपदेश देती है तथा अनुभव इस बात को प्रमाणित करता है कि जो कर्म यज्ञ की कोटि में नहीं आता, वह केवल बंधन को बढ़ाने वाला है |

इस अर्थ में यज्ञ किए बिना यह संसार एक क्षण के लिए भी नहीं टिक सकता और इसीलिए गीता के द्वितीय अध्याय में सद्‌बुद्धि की चर्चा करने के उपरांत तीसरे अध्याय में उसे प्राप्त करने के उपायों पर चर्चा की गई है और इस बात को स्पष्टतया घोषित किया गया है कि यज्ञ का जन्म सृष्टि के साथ-ही-साथ हुआ | इसलिए यह शरीर हमें केवल इसलिए मिला है कि हम इससे सृष्टिमात्र की सेवा करें | इसीलिए गीता में कहा गया है कि जो यज्ञ किए बिना खाता है, वह चोरी का भोजन खाता है | शुद्ध जीवन जीने वाले व्यक्ति का हर काम यज्ञस्वरूप होना चाहिए |

यज्ञ हमारे जन्म के साथ ही आता है; हम आजीवन ऋणी हैं और इसलिए विश्व की सेवा करने के लिए कर्तव्यबद्ध हैं | जिस प्रकार कोई क्रीतदास अपने स्वामी की सेवा के बदले भोजन-वस्त्र आदि पाता है, उसी प्रकार इस विश्व का नियंता हमें जो भी दे, उसे हमको कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करना चाहिए | हमें जो कुछ उससे मिले, उसे उपहार मानना चाहिए, क्योंकि ऋणी होने के नाते हमें अपने दायित्वों के निर्वाह के बदले कोई प्रतिफल पाने का अधिकार नहीं है | अत: यदि हमें वह न मिले तो उसके लिए ईश्वर को दोष नहीं देना चाहिए | हमारा यह शरीर उसी का है – वह अपनी इच्छा से इसका जब तक चाहे पोषण करे और जब चाहे, फेंक दे |

यह शिकायत अथवा खेद का विषय नहीं है बल्कि अगर हम ईश्वरीय व्यवस्था में अपने उचित स्थान को समझ सकें तो पाएंगे कि यह न केवल एक स्वाभाविक बल्कि सुखद और वांछनीय स्थिति है | ईश्वर की इस परम कृपा का अनुभव करने के लिए सचमुच बड़ी दृढ़ आस्था की आवश्यकता है | सभी धर्मों में प्राय: यही आदेश दिया गया है, 'अपनी चिंता बिलकुल न करो, सारी चिंता भगवान पर छोड़ दो |'

इससे किसी को भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है | जो व्यक्ति शुद्ध हृदय से अपने आपको सेवा के लिए समर्पित कर देता है, उसे दिन-पर-दिन उसकी अधिकाधिक आवश्यकता अनुभव होने लगती है और आस्था निरंतर दृढ़ होती जाती है | सेवा का मार्ग उसके लिए नहीं है जो स्वार्थ के त्याग और अपने जन्म की शर्तों को मानने के लिए तैयार नहीं है | हममें से प्रत्येक व्यक्ति जाने-अनजाने कुछ सेवा करता ही है | यदि हम इस सेवा को जान-बूझकर करने का अभ्यास डाल लें तो सेवा करने की हमारी इच्छा निरंतर बढ़ती जाएगी, जिससे न केवल हमें सुख प्राप्त होगा अपितु समूचे संसार के सुख में वृद्धि होगी | *(फ्रायम, पृ. 53-56)*

व्यवहार में यज्ञ

यज्ञ दिन के चौबीसों घंटे किया जाने वाला कर्तव्य अथवा की जाने वाली सेवा है....निष्काम सेवा करके हम दूसरों का नहीं अपितु अपना ही उपकार करते हैं; यह ठीक वैसा ही है जैसे कि ऋण को उतारकर हम अपना ही उपकार करते हैं, अपना ही भार हल्का करते हैं और अपने ही कर्तव्य को पूरा करते हैं | एक बात और है कि मानवता की सेवा के लिए अपने साधनों को लगा देने के दायित्व केवल सत्पुरुषों का ही नहीं है, बल्कि हम सबका है | और यदि यह नियम सही है, जो कि निश्चित रूप से है, तो जीवन में आसक्ति का कोई स्थान नहीं रह जाता और उसका स्थान त्याग ले लेता है | त्याग की भावना ही मनुष्य....जाति को पशु-जगत से अलग करती है....

लेकिन त्याग से आशय यह नहीं है कि आप संसार छोड़कर जंगल में जा बसें | त्याग की भावना हमारे जीवन के समस्त कार्यकलाप को संचालित करे | यदि कोई व्यक्ति गृहस्थ जीवन को आसक्ति न मानकर कर्तव्य मान ले तो ऐसा नहीं है कि वह गृहस्थ नहीं रह जाता | त्याग की भावना से अपने व्यवसाय को संचालित करने वाला व्यापारी अपने हाथों से करोड़ों रुपये गुजारने के बावजूद अगर इस नियम का पालन करता है तो वह अपनी योग्यताओं का इस्तेमाल सेवा के लिए करता है | वह न धोखा देगा, न सट्टा करेगा बल्कि सादा जीवन जिएगा और एक भी व्यक्ति को चोट नहीं पहुंचाएगा तथा एक भी व्यक्ति को हानि पहुंचाने की अपेक्षा खुद लाखों का घाटा उठा लेना बेहतर समझेगा |

कोई यह न समझे कि इस प्रकार का व्यापारी केवल कल्पना में निवास करता है | संसार का सौभाग्य है कि ऐसे व्यापारी पश्चिम में भी हैं और पूर्व में भी | यह सही है कि ऐसे व्यापारियों को उंगलियों पर गिना जा सकता है, लेकिन अगर एक भी व्यक्ति इस कसौटी पर खरा उतरता है तो आप इसे काल्पनिक नहीं कह सकते....और अगर आप गहराई में जाकर देखें तो आपको जीवन के हर क्षेत्र में ऐसे लोग मिल जाएंगे जो समर्पित जीवन जी रहे हैं | ऐसे त्यागी पुरुष निस्संदेह अपने जीवन-निर्वाह के लिए कोई आजीविका भी करते हैं लेकिन वह उनका ध्येय नहीं है, वह उनके काम का उपोत्पाद मात्र है....

त्याग का जीवन कला का चरमोत्कर्ष है और सच्चे आनंद को देने वाला है | जो यज्ञ मनुष्य को भारस्वरूप लगे या उसमें झुंझलाहट पैदा करे, वह यज्ञ नहीं है | आत्मासक्ति विनाश की ओर ले जाती है जबकि त्याग अमरता की ओर | आनंद की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है | यह जीवन के हमारे दृष्टिकोण पर निर्भर करता है | एक व्यक्ति को मंच के दृश्य आनंदित करते हैं तो दूसरे को आकाश में निरंतर परिवर्तित होते हुए नये-नये प्राकृतिक दृश्य | इस प्रकार आनंद का संबंध व्यक्ति एवं राष्ट्रीय शिक्षा से है | हमें बचपन से जिन चीज़ों में आनंद का अनुभव करने की सीख दी जाती है, हम उसी से आनंदित होने लगते हैं | भिन्न-भिन्न राष्ट्रीय रुचियों के उदाहरण देकर यह बात आसानी से समझाई जा सकती है....

स्वैच्छिक सेवा

जो व्यक्ति सेवा के लिए समर्पित है, वह एक क्षण के लिए भी अपनी सुख-सुविधाओं की चिंता नहीं करता; यह चिंता वह भगवान के ऊपर छोड़ देता है – वह दे या न दे | इसलिए वह अपने सामने पड़ने वाली हर चीज़ को लादकर नहीं चलता, वह सिर्फ उतनी चीज़ ले लेता है जितनी उसके लिए अनिवार्य है और बाकी छोड़ देता है | वह शांत, क्रोधमुक्त और असुविधा की स्थिति में भी मन से अविचल रहता है | सद्‌गुण की तरह उसकी सेवा भी स्वयं अपना ही पुरस्कार है और वह इसी में संतोष का अनुभव करता है |

एक बात और है कि सेवा में प्रमाद अथवा शैथिल्य कभी नहीं होना चाहिए | जो यह समझता है कि उसे अपना निजी व्यवसाय तो परिश्रमपूर्वक करना है और बिना कोई पैसा लिए किया जाने वाला सार्वजनिक कार्य वह जैसे चाहे और जब चाहे, कर सकता है तो यह मान लेना चाहिए कि उसे अभी त्याग के विज्ञान के बुनियादी नियमों का भी ज्ञान नहीं है | मनुष्य को स्वैच्छिक सेवा करते समय अपनी अधिकतम योग्यता का इस्तेमाल करना चाहिए और उसे अपने निजी काम से पहले करना चाहिए | वस्तुत: सच्चा भक्त बिना किसी शर्त के स्वयं को मानवता की सेवा के लिए समर्पित कर देता है | *(वही, पृ. 57-60)*

47. यह शैतानी सभ्यता

मेरा पक्का विश्वास है कि यूरोप आज ईश्वर या ईसाइयत का प्रतिनिधित्व नहीं करता, बल्कि शैतान की भावना का प्रतिनिधित्व करता है | और, शैतान सबसे ज्यादा कामयाब तब होता है जब वह अपने होठों पर ईश्वर का नाम लेकर प्रकट होता है | यूरोप आज केवल नाम के लिए ही ईसाई है | वास्तव में वह कुबेर की ही पूजा कर रहा है| *(यंग, 8-9-1920, पृ. 2-3)*

मेरा ध्येय रेलों या अस्पतालों को नष्ट करना नहीं है, हालांकि अगर वे अपनी मौत मर जाएं तो मुझे निश्चित रूप से खुशी ही होगी | रेल अथवा अस्पताल किसी उच्च और विशुद्ध सभ्यता की कसौटी नहीं है | अधिक-से-अधिक वे अनिवार्य बुराइयां हैं | इनसे राष्ट्र के नैतिक स्तर में एक इंच की भी बढ़ोतरी नहीं होती |

इसी प्रकार अदालतों का स्थायी विनाश भी मेरा ध्येय नहीं है, हालांकि मैं दिल से ऐसा ही चाहता हूं | सारी मशीनों और मिलों को नष्ट करने का तो मैं और भी कम प्रयास कर रहा हूं | इसके लिए जितनी सादगी और त्याग की अपेक्षा है, उसके लिए लोग अभी तैयार नहीं हैं | *(यंग, 26-1-1921, पृ. 27)*

आत्मा की प्रतिष्ठा

मैं समृद्धि चाहता हूं, मैं आत्मनिर्णय चाहता हूं, मैं आज़ादी चाहता हूं लेकिन ये सभी चीज़ें मैं आत्मा के लिए चाहता हूं | मुझे संदेह है कि चकमक युग से इस्पात के युग तक पहुंचना कोई उन्नति है | मैं इसके प्रति उदासीन हूं | आत्मा का विकास ही एक ऐसी चीज़ है जिसके लिए हमारी बुद्धि और समस्त क्षमताओं का इस्तेमाल किया जाना चाहिए | *(यंग, 13-10-1921, पृ. 325)*

भारत का मार्ग

मैं चाहूंगा कि हमारे नेता हमें विश्व में सर्वोच्च नैतिक स्थान पाने की सीख दें | हम सुनते हैं कि हमारी इस भूमि में कभी देवताओं का वास था | आप ऐसी जगह पर देवताओं के वास की कल्पना नहीं कर सकते जो धुएं और मिलों की चिमनियों और फैक्ट्रियों के शोरगुल से दूषित है और जिसमें सड़कों पर असंख्य कारों को खींचते हुए इंजन बेतहाशा दौड़ रहे हैं जिनमें बैठे लोगों को प्राय: यह भी पता नहीं होता कि वे किस चीज़ के पीछे भाग रहे हैं, जो आम तौर पर बेसुध होते हैं, जो बसों में भेड़-बकरियों की तरह ठुंसे होने के कारण चिड़चिड़ा जाते हैं और स्वयं को नितांत अजनबियों के बीच बैठा पाते हैं जिन्हें अगर उनका वश चले तो वे बाहर फेंक दें या अगर अजनबियों का वश चले तो वे उन्हें बाहर फेंक दें | मैं इन चीज़ों की चर्चा इसलिए कर रहा हूं कि ये भौतिक प्रगति की प्रतीक मानी जाती हैं | सच्चाई यह है कि ये हमारे सुख में रंचमात्र की भी वृद्धि नहीं करतीं | *(स्पीरा, पृ. 354-55)*

आधुनिक सभ्यता

पहले लोग जब एक-दूसरे से युद्ध करना चाहते थे तो अपने प्रतिद्वंद्वी की शारीरिक शक्ति का अनुमान लगाते थे, लेकिन आज एक पहाड़ की चोटी पर बैठा बन्दूक-धारी अकेला ही हज़ारों लोगों की जान ले सकता है | यह सभ्यता है ! पहले आदमी जितनी देर चाहे, खुली हवा में काम करता था | अब हजारों लोग एक साथ फैक्ट्रियों या खानों में काम करते हैं | उनकी दशा पशुओं से भी गई-बीती है | उन्हें करोड़पतियों की खातिर अत्यंत खतरनाक किस्म के काम अपनी जान को जोखिम में डालकर करने के लिए बाध्य होना पड़ता है....यह सभ्यता ऐसी है कि आप केवल दम साधे देखते रहिए, यह अपने आप नष्ट हो जाएगी | *(हिंस्व, पृ. 36-37)*

क्या तेज़ गति से दौड़ने वाले वाहनों की वजह से संसार कोई बेहतर जगह बन गई है ? क्या इनसे मनुष्य की भौतिक उन्नति हुई है ? क्या अंतत: ये उस उन्नति में बाधक नहीं हैं ? और, क्या मनुष्य की महत्वाकांक्षा की कोई सीमा है ? एक समय था जब हम कुछ घंटे प्रति मील की रफ्तार से सफर करके संतोष का अनुभव करते थे; आज हम एक घंटे में सैकड़ों मील तय करना चाहते हैं; एक दिन शायद अंतरिक्ष में भी उड़ना चाहेंगे | परिणाम क्या होगा ? केवल अव्यवस्था | *(यंग, 21-1-1926, पृ. 31)*

मैं दूरी और समय को नष्ट करने की, पाशविक भूख को बढ़ाने की और उसकी संतुष्टि के लिए आकाश-पाताल के कुलाबे मिलाने की इस पागल दौड़ की हृदय से निंदा करता हूं | अगर आधुनिक सभ्यता यही है – मैंने तो यही समझा है – तो मैं इसे शैतानी ही कहूंगा.... *(यंग, 17-3-1927, पृ. 85)*

औद्योगीकरण की नियति

यह औद्योगिक सभ्यता एक बीमारी है, क्योंकि यह हर दृष्टि से बुरी है | आकर्षक शब्दों और नारों के धोखे में न आएं | मुझे जलपोतों या टेलीग्राफ से कोई शिकायत नहीं है | उद्योगवाद और उससे जुड़ी तमाम बातों के समर्थन के बिना वे यदि बने रह सकते हों तो बने रहें | वे साध्य नहीं हैं | जलपोतों और टेलीग्राफ की खातिर हमें शोषण का शिकार नहीं बनना | मानव जाति के स्थायी कल्याण के लिए ये किसी भी रूप में अपरिहार्य नहीं हैं | अब जबकि हमें भाप और बिजली के उपयोग की जानकारी हो चुकी है तो हमें उद्योगवाद से बचने के उपाय सीखने के पश्चात इनका अवसरानुकूल उपयोग करना चाहिए | हमें किसी भी कीमत पर उद्योगवाद को विनष्ट करना है| *(यंग, 7-10-1926, पृ. 348)*

समय आ रहा है जब वे लोग जो आज अपनी आवश्यकताओं को अंधाधुंध बढ़ा रहे हैं और समझ रहे हैं कि इसी में जीवन का सच्चा सार है और विश्व का सच्चा ज्ञान है, वे अपने कदमों को लौटाएंगे और पूछेंगे : 'हमारी उपलब्धि क्या है ?'

सभ्यताएं आई हैं और गई हैं, और हमारी समस्त तथाकथित प्रगति के बावजूद मुझे बार-बार यह पूछने की इच्छा होती है कि 'इस सबका प्रयोजन क्या है ?' डार्विन के एक समसामयिक चिंतक वेलेस ने भी कुछ ऐसा ही कहा है | उसका कहना है कि पचास साल के अद्‌भुत आविष्कारों और खोजों ने मानव जाति की नैतिक ऊंचाई में एक इंच की भी वृद्धि नहीं की है | टालस्टॉय, जिसे चाहें तो आप स्वप्नद्दष्टा भी कह सकते हैं, का भी यही कहना था | ईसा मसीह और बुद्ध तथा हजरत मुहम्मद जिनके धर्म को आज मेरे अपने ही देश में वंचित और विकृत किया जा रहा है, के भी ऐसे ही विचार थे |

ईश्वर और धन-लिप्सा (मैमन)

'सरमन ऑन द माउंट' में बेशक कितने ही गहरे गोते लगाइए, पर तब आपको टाट और भस्म को ही धारण करना पड़ेगा | सरमन के उपदेश हममें से प्रत्येक व्यक्ति के लिए थे | आप ईश्वर और धन-लिप्सा की सेवा एक साथ नहीं कर सकते | करुणा और दया की मूर्ति ईश्वर, जो सहिष्णुता का अवतार है, मैमन (यूरोप में, धन-लिप्सा का प्रतीक पौराणिक माया-पुरुष) को नौ दिन तक अपना जादू फैलाने की छूट देता है | लेकिन मैं आपसे कहता हूं....कि धन-लिप्सा (मैमन) के आत्मघाती किंतु विनाशक प्रभाव से दूर भागिए | *(यंग, 8-12-1927, पृ. 414)*

यदि मेरे पास शक्ति होती तो मैं इस तंत्र को आज ही विनष्ट कर देता | मैं इसके लिए घातक-से-घातक शस्त्रों का प्रयोग करता बशर्ते कि मुझे इस बात का भरोसा होता कि उनसे इस तंत्र को नष्ट किया जा सकता है | मैं सिर्फ इसलिए चुप रह जाता हूं कि ऐसे हथियारों के इस्तेमाल से मैं इस तंत्र के वर्तमान संचालकों को तो शायद नष्ट कर दूं, पर यह तंत्र चिरस्थायी हो जाएगा | *(यंग, 17-3-1927, पृ. 85)*

पश्चिम

मैं इस बात को विनम्रतापूर्वक स्वीकार करने के लिए तैयार हूं कि पश्चिम में ऐसा बहुत कुछ है जिसे आत्मसात करके हमारा लाभ हो सकता है | बुद्धिमत्ता किसी एक देश अथवा एक जाति की बपौती नहीं है | पाश्चात्य सभ्यता का प्रतिरोध मैं केवल इसलिए करता हूं कि मैं इसके अंधाधुंध और विवेकहीन अनुकरण के विरुद्ध हूं जो इस धारणा पर आधारित है कि एशिया के लोगों में पश्चिम से आने वाली हर चीज़ की नकल करने भर की योग्यता है |

मुझे विश्वास है कि यदि भारत के पास पीड़ा की अग्नि-परीक्षा से गुजरने और अपनी सभ्यता के अवैध अतिक्रमण का प्रतिरोध करने लायक धैर्य हो तो वह अपनी सभ्यता के द्वारा, जो निस्संदेह अपूर्ण होने के बावजूद समय की मार को सहने में आज तक कामयाब हुई है, विश्व-शांति और विश्व की ठोस प्रगति में स्थायी योगदान कर सकता है | *(यंग, 11-8-1927, पृ. 253)*

48. मनुष्य बनाम मशीन

अगर मशीनों का लोप हो जाए तो मैं दुख नहीं मनाऊंगा, न इसे कोई घोर संकट की बात मानूंगा | लेकिन मशीनों का नाश मेरा ध्येय नहीं है | *(यंग, 19-1-1921, पृ. 21)*

मानव की पुन:प्रतिष्ठा

मानव सर्वोपरि है | ऐसा नहीं होने देना चाहिए कि मशीनें मनुष्य के हाथ-पैरों को ही बेजान बना दें | *(यंग, 13-11-1924, पृ. 378)*

मेरा अंत:करण बोलता है कि जब मशीन युग की समस्त उपलब्धियों का लोप हो जाएगा तब भी हमारे हस्तशिल्प जीवित रहेंगे; जब शोषण का अंत हो जाएगा तब भी सेवा और ईमानदारी से किया गया श्रम जीवित रहेगा | यही आस्था मुझे जीवित रखे हुए है और इसी के बल पर मैं अपना काम किए जा रहा हूं....अपने कार्य के प्रति अडिग आस्था ने ही स्टीफेंसन और कोलंबस जैसे लोगों को जीवित रखा था | अपने काम के प्रति आस्था ही मुझे भी जीवित रखे हुए है | *(हरि, 30-11-1935, पृ. 329)*

अपने काम के प्रति आस्था मुझे जीवित रखे है, पर एक अतिरिक्त विश्वास यह भी है कि मेरी आस्था को जो चीज़ें चुनौती देती प्रतीत होती हैं, उन सबका भविष्य अंधकारमय है....मुझे इसमें कोई संशय नहीं है कि जहां मशीन युग का ध्येय मनुष्य को मशीन में परिवर्तित कर देना है, वहीं मेरा ध्येय मशीन बने हुए मनुष्य को अपनी मूल स्थिति में पुन:प्रतिष्ठित कर देना है | *(हरि, 29-8-1936, पृ. 228)*

आदर्श की बात करें तो....मैं सारी मशीनों का उसी प्रकार त्याग कर देना चाहूंगा जिस प्रकार कि अपने इस शरीर का, जो मोक्ष की प्राप्ति में सहायक नहीं है; इसे त्यागकर मैं आत्मा की संपूर्ण मुक्ति के लिए प्रयास करना चाहूंगा | इस दृष्टि से, मैं सभी मशीनों का त्याग करना चाहूंगा पर मशीनें तो रहेंगी क्योंकि, शरीर की तरह, ये अपरिहार्य हैं | शरीर स्वयं....एक परिपूर्ण यंत्र है लेकिन चूंकि यह आत्मा के चरमोत्कर्ष में बाधक है, अत: यह त्याज्य है | *(यंग, 20-11-1924, पृ. 386)*

मशीन एक बुराई

मशीन सांप की बांबी की तरह है जिसमें एक सांप भी हो सकता है और सौ भी | जहां मशीनें हैं, वहां बड़े शहर हैं; जहां बड़े शहर हैं, वहां ट्रामें और रेलगाड़ियां हैं | और वहीं बिजली है | ईमानदार चिकित्सक आपको बताएंगे कि जहां परिवहन के यांत्रिक साधन हैं वहां लोगों के स्वास्थ्य अच्छे नहीं हैं | मुझे याद है कि यूरोप के एक शहर में जब पैसे की कमी हुई तो ट्राम कंपनी, वकीलों और डाक्टरों की आमदनी घट गई और लोगों का स्वास्थ्य बेहतर हो गया | मुझे मशीनों में एक भी गुण दिखाई नहीं देता | *(हिंस्व, पृ. 96)*

श्रम की बचत

मुझे आपत्ति मशीनों से नहीं, बल्कि मशीनों के पीछे दीवाना हो जाने से है | यह दीवानगी तथाकथित श्रमबचाऊ मशीनों के लिए है | लोग तब तक 'श्रम बचाते' जाते हैं जब तक कि हजारों लोग बेरोजगार होकर भूखों मरने की स्थिति में सड़कों पर नहीं आ जाते | मैं मानव जाति के एक छोटे-से अंश के लिए नहीं बल्कि सबके लिए समय और श्रम की बचत करना चाहता हूं |

हमारा उद्देश्य लोभ नहीं, अपितु व्यक्ति के श्रम की बचत करना होना चाहिए | उदाहरण के लिए, मैं तकुए को सीधा करने की मशीन का सदैव स्वागत करूंगा | इससे लुहारों का तकुआ बनाने का काम बंद नहीं होगा, वे फिर भी तकुए बनाते रहेंगे, लेकिन जब तकुआ खराब हो जाएगा तो हर कताई करने वाले के पास उसे सीधा करने की मशीन होगी | इसलिए लोभ-लालच के स्थान पर प्रेम की स्थापना करो तो बाकी सब कुछ ठीक हो जाएगा | *(यंग, 13-11-1924, पृ. 378)*

मैं ऐसी मशीनों का कतई हिमायती नहीं हूं जो या तो बहुत-से लोगों को गरीब बनाकर मुट्ठी भर लोगों को अमीर बनाती हैं या अनेक लोगों के उपयोगी श्रम को अकारण विस्थापित कर देती हैं | *(हरि, 22-6-1935, पृ. 146)*

मशीनीकरण वहां ठीक है जहां काम की तुलना में काम करने वालों की कमी हो | उस स्थिति में जबकि काम की अपेक्षा उपलब्ध श्रमिकों की संख्या ज़्यादा हो, जैसी कि भारत में है, मशीन बुराई ही पैदा करती है | हमारे सामने समस्या यह नहीं है कि हम अपने गांवों में रहने वाले लाखों-करोड़ों लोगों को आराम किस प्रकार पहुंचाएं | हमारी समस्या तो यह है कि हम उनके खाली समय के उपयोग के साधन ढूंढें जो साल में छह महीने के कार्यदिवसों के बराबर बैठता है | *(हरि, 16-11-1934, पृ. 316)*

लोग कहते हैं कि लाखों लोगों के श्रम में बचत करके उन्हें बौद्धिक कार्यों के लिए अधिक समय उपलब्ध कराने में क्या बुराई है ? आराम केवल एक सीमा तक ही अच्छा और जरूरी है | ईश्वर ने हम सबको पसीना बहाकर अपनी रोटी कमाने के लिए पैदा किया है और मैं उस स्थिति की कल्पना मात्र से भयभीत हो जाता हूं जब मनुष्य खाद्यान्न सहित अपनी आवश्यकता की सभी चीज़ें जादू की छड़ी घुमाकर पैदा करने में समर्थ हो जाएगा |
फैक्ट्री सैकड़ों मज़दूरों को काम देती है और हजारों को बेकार कर देती है | मैं एक तेल-मिल से टनों तेल का उत्पादन कर सकता हूं, लेकिन उससे हजारों तेली बेकार हो जाएंगे | मैं इसे विनाशकारी ऊर्जा कहता हूं, जबकि लाखों लोगों का अपने हाथ से किया श्रम रचनात्मक होता है और उससे सबका कल्याण होता है | बिजली से चलने वाली मशीनों द्वारा विशाल पैमाने पर किया गया उत्पादन बेकार है, भले ही उसका स्वामित्व राज्य के हाथ में हो | *(हरि, 16-5-1936, पृ. 111)*

मशीनों के प्रति मेरे विरोध के बारे में लोगों को बहुत ज़्यादा गलतफहमी है | मैं हर मशीन का विरोधी नहीं हूं | मैं केवल उन्हीं मशीनों का विरोधी हूं जो श्रमिकों को विस्थापित करके उन्हें बेरोजगार बना देती हैं | *(हरि, 15-9-1946, पृ. 310)*

मशीनों की प्रतीयमान विजय मुझे चकाचौंध नहीं कर सकती | मैं सभी विनाशकारी मशीनों का पूर्णतया विरोधी हूं | मैं ऐसे सीधेसादे औजारों, उपकरणों और यंत्रों का स्वागत करता हूं जो व्यक्ति के श्रम को बचाते हैं और लाखों झोंपड़ियों के काम के बोझ को हल्का करते हैं | *(यंग, 17-6-1926, पृ. 218)*

मेरा मत है कि जब किसी काम को आसानी से वे लाखों लोग कर सकते हैं जिनके पास करने को कोई और काम नहीं है तो इस काम के लिए मशीनों का प्रयोग करना हानिकारक है | उन्नीस सौ मील लम्बे और पंद्रह सौ मील चौड़े भारत के सात लाख गांवों में फैले लाखों-करोड़ों लोग जिस प्रकार अपना भोजन स्वयं बनाते हैं, उसी प्रकार यदि अपने वस्त्र भी खुद ही तैयार करने लगें तो यह हर दृष्टि से बेहतर और अधिक सुरक्षित होगा | यदि हमारे गांवों का अपने जीवन की प्रमुख आवश्यकताओं के उत्पादन पर नियंत्रण न रहा तो वे उस आज़ादी को कायम नहीं रख पाएंगे जिसका सुख वे अनादि काल से उठाते आ रहे हैं | *(यंग, 2-7-1931, पृ. 161)*

विशाल पैमाने का उत्पादन

विशाल पैमाने का उत्पादन उपभोक्ता की वास्तविक आवश्यकताओं का ध्यान नहीं रखता | यदि विशाल पैमाने का उत्पादन स्वयं में कोई अच्छी चीज़ होती तो उसमें अनंत वृद्धि किए जाने की क्षमता होनी चाहिए थी | लेकिन यह निश्चित रूप से सिद्ध किया जा सकता है कि विशाल पैमाने की स्वयं अपनी सीमाएं हैं | यदि सभी देश विशाल पैमाने के उत्पादन की प्रणाली को अपना लें तो उनके उत्पादों को खपाने लायक विशाल बाजार उपलब्ध नहीं होगा | तब उस पर अंकुश लगा देना होगा | *(हरि, 2-11-1934, पृ. 301)*

मैं पक्के तौर पर अपनी राय जाहिर करना चाहूंगा कि विशाल पैमाने के उत्पादन का उन्माद विश्व-संकट के लिए उत्तरदायी है | एक क्षण के लिए अगर मान भी लें कि मशीनें मानव जाति की सभी आवश्यकताओं को पूरा कर सकती हैं तो भी इनका कार्य उत्पादन के विशिष्ट क्षेत्रों पर ही केंद्रित होगा और आपको वितरण का नियमन करने के लिए एक जटिल व्यवस्था अलग से करनी होगी | इसके विपरीत, जिस क्षेत्र में जिस वस्तु की आवश्यकता है, अगर वहीं उसका उत्पादन और वितरण, दोनों किये जाएं तो इनका नियमन स्वयंमेव हो जाता है और उसमें धोखेधड़ी की गुंजाइश कम रहती है तथा सट्टेबाजी की तो बिलकुल ही नहीं |

मैं विशाल पैमाने के उत्पादन की कल्पना तो जरूर करता हूं, लेकिन वह बल पर आधारित नहीं होना चाहिए | चरखे का संदेश इसका एक उदाहरण है | यह विशाल पैमाने का उत्पादन है, लेकिन इसका स्थान लोगों के

अपने-अपने घर हैं | यदि आप एक व्यक्ति के उत्पादन को लाखों से गुणा करें तो क्या वह एक जबर्दस्त पैमाने पर विशाल उत्पादन नहीं कहा जा सकता ? *(वही, पृ. 301,302)*

धन का केंद्रीकरण

मैं धन का केंद्रीकरण चाहता हूं, पर वह कुछ हाथों में न होकर सभी के हाथों में हो | आज मशीन मुट्ठी भर लोगों को लाखों लोगों की पीठ पर सवार होने में सहायक बन रही है | इसके पीछे जो प्रेरणा काम कर रही है वह श्रम बचाने की लोकोपकारिता नहीं है, बल्कि लोभ है | मैं अपनी पूरी शक्ति के साथ इसके खिलाफ लड़ाई लड़ रहा हूं.... *(यंग, 13-11-1924, पृ. 378)*

मुट्ठी भर हाथों में धन और सत्ता के केंद्रीकरण तथा लाखों लोगों के शोषण के लिए मशीन तंत्र के संचालन को मैं पूरी तरह गलत मानता हूं | आज का मशीन तंत्र प्राय: इसी प्रकार का है | चरखे का अभियान मशीन को अनन्यता और शोषण की स्थिति से हटाकर अपने युक्तियुक्त स्थान पर बिठाने का ही एक संगठित प्रयास है | इसलिए मेरी योजना के तहत मशीनों के मालिक केवल अपने या अपने राष्ट्र का ही हित चिंतन नहीं करेंगे अपितु सम्पूर्ण मानव जाति का करेंगे | *(यंग, 17-9-1925, पृ. 321)*

निर्जीव मशीनों को भारत के सात लाख गांवों में फैली ग्रामवासी रूपी सजीव मशीनों के मुकाबले पर खड़ा नहीं किया जाना चाहिए | मशीन का सदुपयोग इसमें है कि वह मानव श्रम में सहायता दे और उसे सरल बनाए | मशीनों का वर्तमान उपयोग लाखों-करोड़ों स्त्री-पुरुषों के मुंह से रोटी का कौर छिनकर उनकी नितांत उपेक्षा करते हुए मुट्ठी भर लोगों के हाथों में धन का केंद्रीकरण करने के लिए किया जा रहा है | *(हरि, 14-9-1935, पृ. 244)*

विकेंद्रीकरण

जब उत्पादन और उपभोग दोनों स्थानीकृत होते हैं तो उत्पादन में अंधाधुंध और किसी भी कीमत पर वृद्धि करने का लालच समाप्त हो जाता है | तब हमारे वर्तमान अर्थतंत्र की सभी अनंत कठिनाइयां और समस्याएं समाप्त हो जाएंगी....तब मुट्ठी भर लोगों के पास वस्तुओं के बेशुमार संचय और शेष लोगों को उसके बावजूद वस्तुओं के अभाव की स्थिति पैदा नहीं होगी....

मेरी योजना में मुख्य महत्व श्रम का है, धातु का नहीं | कोई व्यक्ति जो अपने श्रम का इस्तेमाल करेगा, उसके पास धन होगा | वह अपने श्रम को कपड़े में बदल सकता है या चाहे तो अन्न में बदल सकता है | अगर उसे पैराफिन तेल चाहिए, जिसे वह खुद पैदा नहीं कर सकता, तो वह अपने फालतू अन्न को देकर तेल ले सकता है | यह स्वाधीन, उचित और बराबरी की शर्तों पर श्रम की अदलाबदली है | इसलिए यह डकैती नहीं है | आप आपत्ति

कर सकते हैं कि यह तो वस्तुओं की अदलाबदली की आदिम पद्धति की ओर लौट जाना होगा | लेकिन क्या समस्त अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार वस्तुविनिमय की प्रणाली नहीं है ? *(हरि, 2-11-1934, पृ. 302)*

मैं, व्यक्तिगत रूप से, लंबी-चौड़ी मशीनों की सहायता से उद्योगों के केंद्रीकरण और बड़े-बड़े ट्रस्ट बनाने के खिलाफ हूं....यदि भारत खद्दर और उससे जुड़ी तमाम बातों को अंगीकार कर ले तो मुझे आशा है कि वह आधुनिक मशीनों में से सिर्फ उन्हीं को अपनाएगा जो जीवन को सुविधाजनक बनाने और श्रम को बचाने के लिए आवश्यक हैं | *(यंग, 24-7-1924, पृ. 246)*

शोषण नहीं

इस प्रकार, लंकाशायर के लोग अपनी मशीनों का उपयोग भारत और अन्य देशों के शोषण के लिए नहीं करेंगे, बल्कि वे ऐसे तरीके निकालेंगे जिनसे भारत अपने ही गांवों में कपास से कपड़े तैयार कर सके | इसी प्रकार, अमरीकी लोग भी आविष्कार करने की अपनी योग्यता का इस्तेमाल दुनिया की अन्य जातियों का शोषण करके स्वयं को अमीर बनाने के लिए नहीं करेंगे | *(यंग, 27-9-1925, पृ. 321)*

वर्तमान अव्यवस्था का कारण क्या है ? मेरी राय में, यह शक्तिशाली राष्ट्रों द्वारा दुर्बल राष्ट्रों का शोषण नहीं है, बल्कि समकक्ष राष्ट्रों द्वारा एक-दूसरे का शोषण है | मशीनों के प्रति मेरा मौलिक विरोध इसी कारण से है कि इसने इन राष्ट्रों को अन्य राष्ट्रों का शोषण करने में सहायता पहुंचाई है | मशीन अपने आप में एक जड़ वस्तु है और उसका अच्छा या बुरा, दोनों प्रकार से इस्तेमाल किया जा सकता है | लेकिन, जैसा कि हम जानते हैं, किसी भी चीज़ का बुरा इस्तेमाल करना ज़्यादा आसान होता है | *(यंग, 22-10-1931, पृ. 318)*

मशीनों का स्थान

मशीनों का अपना स्थान है, इनका लोप होने की संभावना नहीं है | पर इस बात की इजाजत नहीं दी जानी चाहिए कि मशीनें अनिवार्य मानव श्रम का स्थान ले लें....

कोई बेहतर किस्म का हल विकसित हो सके तो यह अच्छी बात है | परंतु यदि किसी मशीनी आविष्कार की सहायता से कोई एक ही आदमी भारत की समस्त भूमि को जोत सके और समस्त फसल पर नियंत्रण स्थापित कर ले और यदि लाखों-करोड़ों लोगों के पास करने के लिए कोई और काम न हो तो वे भूखों मर जाएंगे, और बेकार होने के कारण बुद्धि से जड़ हो जाएंगे, जैसे कि बहुत-से लोग पहले ही हो चुके हैं | अनेक लोगों की इसी दयनीय स्थिति में पहुंचने का लगातार खतरा है |

मैं कुटीर उद्योग की मशीनों में हर सुधार का स्वागत करता हूं, लेकिन जब तक हम अपने लाखों-करोड़ों किसानों को उन्हीं के घर में किए जा सकने लायक कोई और काम-धंधे न दे सकें तब तक बिजली से चलने वाले तकुए लगाकर हाथ की मेहनत को विस्थापित करना एक अपराध है | *(यंग, 5-1-1925, पृ. 377)*

मैं सबकी भलाई के लिए किए जाने वाले प्रत्येक आविष्कार का स्वागत करूंगा | लेकिन एक आविष्कार और दूसरे आविष्कार में फ़र्क है | मुझे एक ही बार में हज़ारों आदमियों को मार देने की क्षमता रखने वाली जहरीली गैसों को महत्व नहीं देना चाहिए | लोकोपयोगी सेवाओं के लिए इस्तेमाल की जाने वाली भारी मशीनें जिनका मानव श्रम के रूप में कोई विकल्प सम्भव नहीं है, निश्चित रूप से अनिवार्य हैं, लेकिन उन पर राज्य का स्वामित्व होना चाहिए और उनका प्रयोग लोगों के हित के लिए ही किया जाना चाहिए | *(हरि, 22-6-1935, पृ. 146)*

मशीन युग की चुनौती

हमारे युग को मशीन युग कहा गया है, क्योंकि हमारी अर्थव्यवस्था पर मशीन का प्रभुत्व है | यह पूछा जा सकता है कि 'मशीन क्या है ?' एक अर्थ में मनुष्य आज तक बनी सभी मशीनों में सबसे अद्‌भुत मशीन है | न इस जैसी कोई और मशीन बनाई जा सकती है, न इसकी नकल की जा सकती है | लेकिन मैं इस शब्द का व्यापक अर्थ में प्रयोग नहीं कर रहा हूं, बल्कि एक उपकरण के रूप में कर रहा हूं जो मानव अथवा पशु के श्रम का पूरक होने या उसकी कार्यकुशलता को बढ़ाने के बजाए उसको विस्थापित करने का कार्य करता है | मशीन का यह पहला भेदमूलक लक्षण है | इसका दूसरा लक्षण है कि इसकी वृद्धि या विकास की कोई सीमा नहीं है | यह बात मानव श्रम के बारे में नहीं कही जा सकती | आप मानव श्रम की क्षमता अथवा उसकी यांत्रिक कुशलता को एक हद से ज़्यादा नहीं बढ़ा सकते | इसी लक्षण में से आधुनिक मशीन का लक्षण उत्पन्न होता है |

उसके ऊपर अपनी ही इच्छा अथवा प्रतिभा सवार मालूम होती है | वह मानव श्रम की विरोधी है | एक मशीन एक हज़ार नहीं तो कम-से-कम एक सौ आदमियों को बेकार कर देती है जिससे बेरोजगारों और अल्प-रोजगारों की सेना बढ़ती ही जाती है | मशीन ऐसा इसलिए नहीं करती कि यह वांछनीय है, बल्कि इसलिए कि यही उसका नियम है | अमरीका में यह स्थिति सम्भवत: चरम सीमा तक पहुंच चुकी है |

मैंने इसका विरोध अब शुरू नहीं किया है, बल्कि 1908 से भी पहले से करता आया हूं जब मैं दक्षिण अफ्रीका में था जहां मेरे चारों ओर मशीनें-ही-मशीनें थीं | वहां की मशीनों ने मुझे प्रभावित नहीं किया था, बल्कि मेरे अंदर तिरस्कार का भाव पैदा किया था | उसी समय मेरे मन में इस विचार का उदय हुआ था कि लाखों-करोड़ों लोगों का दमन और शोषण करने के लिए मशीन एक ऐसा दैत्य है जिसका कोई जवाब नहीं है | यदि समाज में सभी लोगों को बराबरी का दर्जा दिया जाना है तो मानव अर्थव्यवस्था में मशीन का कोई स्थान नहीं हो सकता | मेरा विश्वास है कि मशीन ने आदमी की हैसियत में कोई इज़ाफा नहीं किया है और जब तक हम इसे इसके उचित स्थान पर नहीं बिठाएंगे तब तक यह दुनिया की सेवा नहीं करेगी बल्कि उसे विघटित कर देगी |

दक्षिण अफ्रीका में ही मैंने डरबन जाते समय रेलयात्रा के दौरान रस्किन की 'अनटू दिस लास्ट' पढ़ी और मैं तत्काल उससे अभिभूत हो गया | मेरे मन में यह बात स्पष्ट हो गई कि अगर मानव जाति को प्रगति करनी है और

समानता तथा भाईचारे के आदर्श को प्राप्त करना है, तो उसे 'अनटू दिस लास्ट' को अपनाकर उसके सिद्धांत पर चलना होगा | उसे गूंगों, लंगड़ों और अपंगो को भी अपने साथ लेकर चलना होगा | क्या धर्मराज युधिष्ठिर ने अपने स्वामिभक्त कुत्ते के बिना स्वर्ग में प्रवेश करने से इंकार नहीं कर दिया था ? *(हरि, 25-8-1946, पृ. 281)*

आज भारत पर पश्चिम की मशीनें इस कदर हावी हो रही हैं कि यदि भारत उनका सफलतापूर्वक प्रतिरोध कर सका तो यह किसी चमत्कार से कम नहीं होगा | *(यंग, 17-11-1946, पृ. 405)*

49. औद्योगीकरण का अभिशाप

मानव प्रकृति में आस्था होना अच्छी बात है | अपनी उसी आस्था के कारण मैं जीवित हूं | लेकिन इस आस्था के होने पर भी मैं इस ऐतिहासिक तथ्य को नहीं झुठला सकता कि यद्यपि अंतत: सब ठीक ही होता है, पर आज से पहले भी व्यक्ति और राष्ट्र कहलाने वाले व्यक्ति-समूह नष्ट हो चुके हैं | रोम, ग्रीस, बैबिलॉन, मिस्र और बहुत-से अन्य देश इस बात के उदाहरण हैं कि अपने कुकृत्यों के कारण अनेक राष्ट्र नष्ट हुए हैं |

हमें आशा करनी चाहिए कि अपनी तीक्ष्ण और वैज्ञानिक बुद्धि के कारण यूरोप वस्तुस्थिति को समझेगा और अपने कदम पीछे हटाकर नैतिक पतन की ओर ले जाने वाले औद्योगीकरण से बचने का कोई रास्ता ढूंढ निकालेगा | इसके लिए पिछले वक्त की निपट सादगी की ओर लौटना जरूरी नहीं है | इसके लिए समाज को ऐसा पुनर्गठन करना होगा जिसमें ग्राम जीवन की भूमिका प्रमुख हो और जिसमें पाशविक और भौतिक बलों पर आध्यात्मिक बल का अंकुश हो | *(यंग, 6-8-1925, पृ. 273)*

उद्योगवाद का भविष्य अंधकारमय है | अमरीका, जापान, फ्रांस और जर्मनी आज इंग्लैंड के सफल प्रतियोगी बनकर सामने आ गए हैं | भारत के मुट्ठी भर मिल भी इंग्लैंड के मिलों से प्रतियोगिता कर रहे हैं और जिस तरह भारत में जागृति आई है, उसी तरह अत्यधिक संपन्न प्राकृतिक, खनिज और मानव साधनों वाले दक्षिण अफ्रीका में भी जागृति आएगी |

अफ्रीका की शक्तिशाली जातियों के सामने शक्तिशाली अंग्रेज बौने दिखाई देते हैं | आप कहेंगे कि आखिर ये हैं तो कुलीन बर्बर ही | कुलीन तो ये अवश्य हैं पर बर्बर नहीं हैं, और कुछ ही वर्षों में पश्चिमी राष्ट्र यह पाएंगे कि अब वे अपने उत्पादों को अफ्रीका के बाजारों में खपाने में असमर्थ हैं | अगर उद्योगवाद का भविष्य पश्चिम में अंधकारमय है तो क्या भारत के लिए और भी अधिक अंधकारमय सिद्ध नहीं होगा ? *(यंग, 12-11-1931, पृ. 355)*

मुझे भय है कि उद्योगवाद मानव जाति के लिए अभिशाप सिद्ध होगा | एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र का शोषण सदा के लिए नहीं चल सकता | उद्योगवाद पूर्णतया आपके शोषण करने का सामर्थ्य, उपलब्ध विदेशी बाजारों और प्रतियोगियों के अभाव पर निर्भर करता है.... *(वही)*

जब मैं रूस की तरफ देखता हूं जहां औद्योगीकरण का चरमोत्कर्ष हो चुका है तो मुझे वहां का जीवन स्पृहणीय प्रतीत नहीं होता | बाइबिल की भाषा का प्रयोग करूं तो 'अगर आदमी को पूरी दुनिया मिल जाए और बदले में उसकी आत्मा नष्ट हो जाए तो उसे मिला क्या ?' आधुनिक शब्दों में, अपनी व्यक्तिकता को खोकर मशीन का सिर्फ एक दांता बन जाना मानव गरिमा के अनुकूल नहीं है | मैं चाहूंगा कि प्रत्येक व्यक्ति समाज का ओजस्वी और पूर्णत: विकसित सदस्य बने | *(हरि, 28-1-1939, पृ. 438)*

ईश्वर न करे कि भारत कभी पश्चिमी ढंग के उद्योगवाद को अपनाए | अगर तीस करोड़ की आबादी वाला समूचा राष्ट्र पश्चिमी ढंग के आर्थिक शोषण पर उतर आए तो वह टिड्डी दल की तरह सारी दुनिया को चट कर जाएगा | यदि भारत के पूंजीपति जनता के कल्याण के न्यासी बनकर और अपनी प्रतिभा का उपयोग संपत्ति जोड़ने के बजाए परोपकार की भावना से जनता की सेवा के लिए करके इस त्रासदी से हमें नहीं बचाएंगे तो अंत में, या तो उनके हाथों जनता नष्ट हो जाएगी या जनता उन्हें नष्ट कर देगी | *(यंग, 20-12-1928, पृ. 422)*

भारत जब अन्य राष्ट्रों का शोषण करना शुरू कर देगा – यदि वह औद्योगीकृत हो गया तो यही करेगा – तो वह अन्य राष्ट्रों के लिए अभिशाप बन जाएगा, सारी दुनिया के लिए संकट पैदा करने वाला बन जाएगा | मैं अन्य राष्ट्रों का शोषण करने के लिए भारत को औद्योगीकृत करने की बात क्यों सोचूं ? क्या आप इस स्थिति की त्रासदी को नहीं देखते कि हम तो अपने 30 करोड़ बेरोजगारों के लिए काम ढूंढ सकते हैं, लेकिन इंग्लैंड अपने तीस लाख लोगों को काम नहीं दे सकता और वह ऐसी समस्या से रू-ब-रू है जिसका समाधान इंग्लैंड के बड़े-से-बड़े बुद्धिमान लोग भी नहीं कर पा रहे | *(यंग, 12-11-1931, पृ. 355)*

औद्योगीकरण का विकल्प

मैं नहीं समझता कि औद्योगीकरण किसी देश के लिए किसी भी सूरत में जरूरी है | भारत के लिए तो यह और भी जरूरी नहीं है | सच पूछा जाए तो मुझे विश्वास है कि अपनी हजारों कुटियों का विकास करके एक सादा किंतु उदात्त जीवन को अपनाकर और दुनिया के साथ शांतिपूर्ण तरीके से रहकर ही भारत आर्तनाद करती दुनिया के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह कर सकता है | कुबेर द्वारा हम पर आरोपित तेज रफ्तार पर आधारित जटिल भौतिक जीवन का उच्च विचारों वाली जीवन-शैली से कोई मेल नहीं है | उदात्त जीवन जीने की कला सीखने पर ही जिंदगी की सच्ची खुशियां हासिल की जा सकती हैं....

संशयवादी पूछ सकते हैं कि हथियारों से सिर से पांव तक लैस और तड़क-भड़क तथा आडंबर में जी रही इस दुनिया में क्या कोई राष्ट्र, फिर चाहे वह कितना ही बड़ा तथा अधिक आबादी वाला क्यों न हो, सबसे अलग-थलग रहकर सादा जीवन को अपना आदर्श बना सकता है ? जवाब सीधा-सादा है | यदि सादा जीवन जीने योग्य है तो चाहे एक ही व्यक्ति अथवा समूह इसके लिए प्रयास करे, हमें उसका स्वागत करना चाहिए |

राजकीय नियंत्रण

इसके साथ ही, मैं यह मानता हूं कि कुछ प्रमुख उद्योगों का अस्तित्व आवश्यक है | मैं अव्यावहारिक अथवा सशस्त्र समाजवाद में विश्वास नहीं करता | मैं संपूर्ण परिवर्तन की प्रतीक्षा किए बिना अपने विश्वास के अनुसार काम करने में विश्वास करता हूं | अत: प्रमुख उद्योगों के नाम गिनाए बगैर मैं कहना चाहूंगा कि जिन उद्योगों में बड़ी संख्या में लोग एक साथ काम करते हों, वे राजकीय स्वामित्व में होने चाहिए | इनमें कुशल और अकुशल,

दोनों ही प्रकार के श्रमिक राज्य के माध्यम से अपने उत्पादों के स्वामी होंगे | लेकिन मेरी कल्पना का ऐसा राज्य चूंकि केवल अहिंसा पर आधारित होगा, इसलिए इसमें धनिक वर्ग से जबरन उनकी धन-संपत्ति नहीं छिनी जाएगी, बल्कि उन्हें राजकीय स्वामित्व स्थापित करने की प्रक्रिया में सहयोग करने के लिए आमंत्रित किया जाएगा | समाज में अस्पृश्य कोई नहीं है, चाहे वह लखपति हो अथवा कंगाल | ये दोनों एक ही बीमारी के नासूर हैं | *(हरि, 1-9-1946, पृ. 285)*

ग्राम उद्योगों का पुनरुज्जीवन

जिन ग्राम उद्योगों का पुनरुज्जीवन संभव है, उनके पुनरुज्जीवन का प्रयास करते हुए....मैं वही कर रहा हूं जो ग्राम जीवन का प्रत्येक प्रेमी, ग्रामों के विघटन का अर्थ समझने वाला प्रत्येक व्यक्ति कर रहा है अथवा करने का प्रयास कर रहा है | मैं ग्रामवासी से अपना आटा खुद पीसकर उसे पौष्टिक चोकर निकाले बिना इस्तेमाल करने या बिक्री के लिए नहीं तो कम-से-कम अपनी जरूरत लायक गुड़ अपने गन्ने से स्वयं तैयार करने की कहकर आधुनिक सभ्यता के रुख को पीछे की ओर मोड़ने का प्रयास क्यों कर रहा हूं ? मैं अगर ग्रामवासी से केवल फसल उगाने तक सीमित न रहकर उसे बिक्री-योग्य उत्पाद में रूपांतरित करने का आग्रह करता हूं ताकि वह अपनी दैनिक आमदनी में कुछ पैसे जोड़ सके तो क्या मैं आधुनिक सभ्यता के रुख को पीछे की ओर मोड़ रहा हूं ? *(हरि, 4-1-1935, पृ. 372)*

गांवों का पुनरुज्जीवन तभी संभव है जब उसका शोषण बंद हो | विशाल पैमाने के औद्योगीकरण से अनिवार्यत: गांवों का निष्क्रिय अथवा सक्रिय शोषण होगा, क्योंकि उसके साथ प्रतियोगिता और विपणन की समस्याएं जुड़ी हैं | इसलिए हमें गांवों की आत्मनिर्भरता पर बल देना होगा जो अपने इस्तेमाल की चीज़ें स्वयं तैयार करेंगे | ग्राम उद्योगों का यह स्वरूप अक्षुण्ण रखा जाए तो फिर ग्रामवासियों द्वारा ऐसी आधुनिक मशीनों और औजारों का प्रयोग किए जाने पर कोई आपत्ति नहीं है जिन्हें वे खरीदकर इस्तेमाल कर सकते हों | शर्त यही है कि इनका इस्तेमाल दूसरे लोगों के शोषण के लिए न करें | *(हरि, 28-9-1946, पृ. 226)*

वास्तविक आयोजन

मैं इस प्रस्थापना का हार्दिक समर्थन करता हूं कि जो योजना देश के कच्चे माल के दोहन पर बल देती है और अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली सिद्ध होने की संभावना से युक्त मानव-शक्ति की उपेक्षा करती है, वह असंतुलित है और उससे मनुष्यों के बीच समानता कभी स्थापित नहीं की जा सकती....

वास्तविक आयोजन से मतलब है भारत की संपूर्ण मानव शक्ति का इष्टतम उपयोग और भारत के कच्चे माल का निर्यात करके वहां से ऊंची कीमतों पर तैयार माल के पुन: क्रय के स्थान पर उसका भारत के असंख्य गांवों में वितरण | *(हरि, 23-3-1947, पृ. 79)*

50. समाजवाद

सच्चा समाजवाद हमें अपने पूर्वजों से मिला है जिन्होंने सिखाया कि 'सबै भूमि गोपाल की' | तो फिर सीमा-रेखा कहां है ? मनुष्य ही उस रेखा को बनाने वाला है और वही उसे मिटा भी सकता है | गोपाल का शाब्दिक अर्थ है चरवाहा; इसका अर्थ ईश्वर भी है | आधुनिक भाषा में इसका अर्थ है राज्य अर्थात जनता | यह सही है कि आज भूमि जनता के स्वामित्व में नहीं है पर इसमें हमारे पूर्वजों की सीख का दोष नहीं है | दोष हमारा है कि हम उसे अपने जीवन में उतार नहीं पाए |

मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि रूस सहित किसी भी राष्ट्र के लिए इसे हासिल करना जितना मुमकिन है, उतना ही हमारे लिए भी है और इसके लिए हिंसा के इस्तेमाल की जरूरत नहीं है | *(हरि, 2-1-1937, पृ. 375)*

गरिमामय जीवन के लिए जितनी भूमि की आवश्यकता है, उससे अधिक किसी के पास नहीं होनी चाहिए | इस तथ्य से कौन असहमत हो सकता है कि आम लोगों की घोर दरिद्रता का कारण यह है कि उनके पास अपनी कहने के लिए कोई जमीन नहीं है ? *(हरि, 20-4-1940, पृ. 97)*

पाश्चात्य समाजवाद

मैं पाश्चात्य समाज-व्यवस्था का एक सहानुभूतिपूर्ण विद्यार्थी रहा हूं और मैंने पाया है कि पश्चिम की आत्मा के उत्ताप की तह में सत्य की अथक खोज विद्यमान है | मैं इस भावना का आदर करता हूं | हमें वैज्ञानिक अन्वेषण की इसी भावना के साथ अपनी प्राच्य संस्थाओं का अध्ययन करना चाहिए; इससे हम एक ऐसे सच्चे समाजवाद और सच्चे साम्यवाद का विकास कर सकते हैं जिसकी दुनिया ने अब तक कल्पना ही नहीं की है | यह मान लेना निश्चित रूप से गलत है कि आम जनता की गरीबी के मसले का पाश्चात्य समाजवाद अथवा साम्यवाद सर्वोत्कृष्ट तथा अंतिम समाधान है |*(अबाप, 3-8-1934)*

समाजवाद का जन्म पूंजीपतियों द्वारा पूंजी के दुरुपयोग की खोज के साथ नहीं हुआ | जैसा कि मेरा कहना है, ईशोपनिषद् के प्रथम श्लोक में समाजवाद ही नहीं बल्कि साम्यवाद की भी स्पष्ट झलक है | सच्चाई यह है कि जब कुछ समाज-सुधारकों की आस्था हृदय-परिवर्तन की विधि से उठ गई तो वैज्ञानिक समाजवाद की तकनीक का जन्म हुआ | मैं उसी समस्या को सुलझाने में लगा हूं जिसका सामना वैज्ञानिक समाजवादी कर रहे हैं |

यह सही है कि मेरा तरीका हमेशा विशुद्ध अहिंसा पर आधारित होता है | संभव है कि मैं असफल हो जाऊं | अगर ऐसा होता है तो यह अहिंसा की तकनीक के संबंध में मेरी अज्ञानता के कारण ही होगा | जिस सिद्धांत में मेरी आस्था दिनोंदिन बढ़ रही है, मैं उसका बुरा प्रतिपादक भी तो सिद्ध हो सकता हूं | *(हरि, 20-2-1937, पृ. 12)*

मेरा समाजवाद

मेरा दावा रहा है कि मैं समाजवाद को अपनाने वाले अपने परिचित देशवासियों की तुलना में बहुत पहले से ही समाजवादी था | लेकिन मेरा समाजवाद मेरे लिए सहज था और इसकी धारणा किन्हीं पुस्तकों पर आधारित नहीं थी | यह अहिंसा में मेरे अडिग विश्वास से उत्पन्न हुआ था | यह नहीं हो सकता कि कोई आदमी सक्रिय अहिंसक हो किंतु वह सामाजिक अन्याय के विरुद्ध उठ खड़ा न हो, फिर चाहे यह अन्याय कहीं भी हो रहा हो | दुर्भाग्य से, जहां तक मैं समझता हूं, पश्चिम के समाजवादियों ने समाजवादी सिद्धांतों को लागू करने के लिए हिंसा का सहारा लेना जरूरी माना है |

मेरी सदा से यह धारणा रही है कि समाज के सबसे छोटे और निम्नतम वर्ग को भी सामाजिक न्याय जोर-जबर्दस्ती करके नहीं दिलाया जा सकता | मुझे इस बात में भी विश्वास है कि समाज के निम्नतम व्यक्तियों को यदि अहिंसक उपायों से उचित प्रशिक्षण दिया जाए तो वे अपने प्रति होने वाले अन्यायों को दूर करा सकते हैं | अहिंसक असहयोग इसका तरीका है | *(हरि, 20-4-1940, पृ. 97)*

यद्यपि मैं अपने समाजवादी मित्रों की आत्मत्याग और बलिदान की भावना का अत्यंत प्रशंसक हूं, पर मैंने उनकी और अपनी पद्धतियों के सुस्पष्ट भेद को कभी छुपाया नहीं है | वे साफ तौर से हिंसा और उससे जुड़ी तमाम बातों पर विश्वास करते हैं | मैं पूरी तरह अहिंसा में विश्वास करता हूं....

मेरा समाजवाद अंतिम व्यक्ति तक का हित करने के लिए है | मैं अंधों, बहरों और गूंगों की बलि देकर अपना उत्कर्ष करना नहीं चाहता | उनके समाजवाद में, इनके लिए संभवत: कोई स्थान नहीं है | उनका एकमात्र उद्देश्य भौतिक उन्नति है |

उदाहरण के लिए, अमरीका का ध्येय है कि प्रत्येक नागरिक के पास कार हो | मेरा ध्येय यह नहीं है | मैं अपने व्यक्तित्व की पूर्ण अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता चाहता हूं | मुझे इस बात की स्वतंत्रता होनी चाहिए कि मैं चाहूं तो लुब्धक तारे (सिरिअस) तक जाने के लिए सीढ़ी बना सकूं | इसका मतलब यह नहीं है कि मैं ऐसा कुछ करना चाहता हूं | दूसरी तरह के समाजवाद में, व्यक्तिगत स्वतंत्रता नाम की कोई चीज़ नहीं है | उसमें आपका किसी वस्तु पर स्वामित्व नहीं है, स्वयं अपने शरीर पर भी नहीं है | *(हरि, 4-8-1946, पृ. 246)*

समाजवाद में समानता

समाजवाद एक सुंदर शब्द है और जहां तक मैं समझता हूं, समाजवाद में समाज के सभी सदस्य बराबर हैं – न कोई नीचा है, न कोई ऊंचा | आदमी के शरीर में, सिर इस कारण ऊंचा नहीं है कि वह शरीर में सबसे ऊपर स्थित है और पैर इसलिए नीचे नहीं है कि वे पृथ्वी को स्पर्श करते हैं | जिस प्रकार शरीर के सभी अंग बराबर हैं, उसी प्रकार समाज के सभी सदस्य भी बराबर हैं | यह समाजवाद है |

इसमें, राजा और किसान, अमीर और गरीब, मालिक और कर्मचारी सभी का स्तर समान है | धार्मिक शब्दों में, समाजवाद में कोई द्वैत नहीं है | केवल एकत्व है |

आज सारी दुनिया की सामाजिक व्यवस्था में द्वैत अथवा अनेकत्व के अलावा और कुछ नहीं है | एकत्व के तो कहीं दर्शन ही नहीं होते | यह आदमी ऊंचा है, यह नीचा, यह हिंदू है, वह मुसलमान है, तीसरा ईसाई है, चौथा पारसी है, पांचवा सिख है, छठा यहूदी है | इनमें भी फिर उप-विभाग हैं | एकत्व की जो मेरी धारणा है, उसके अंतर्गत बाह्य अनेकत्व में पूर्ण एकत्व विद्यमान है |

इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए हमें दार्शनिक दृष्टिकोण अपनाते हुए यह नहीं कहना है कि जब तक सब लोग समाजवाद को नहीं अपना लेंगे तब तक हम हाथ पर हाथ धरे बैठे रहेंगे | अपने जीवन में परिवर्तन लाए बगैर हम भाषण देते रहें, पार्टियां बनाते रहें और शिकार सामने आते ही बाज की तरह झपट्टा मार दें | पर यह समाजवाद नहीं है | जितना ही हम इसे झपट्टा मारने योग्य शिकार समझते रहेंगे, उतना ही यह हमसे दूर होता जाएगा |

साधन

समाजवाद अपने प्रथम आचरणकर्ता के साथ शुरू हो जाता है | यदि ऐसा एक भी व्यक्ति है तो आप उसके बाद शून्य लगाते जाइए, पहला शून्य उसे दस गुना बना देगा और बाद के शून्य पिछली संख्या को दस गुना करते जाएंगे | लेकिन अगर शुरू में ही शून्य है अर्थात कोई शुरुआत करने वाला ही नहीं है तो बाद के शून्य भी शून्य-मूल्य का ही बोध कराएंगे | शून्य लगाने में जो समय और कागज खर्च होगा, वह भी व्यर्थ जाएगा |

मेरा यह समाजवाद स्फटिक की तरह स्वच्छ है | अत: इसे पाने के साधन भी स्फटिक की तरह स्वच्छ होने चाहिए | मलिन साधनों से मलिन ध्येय सिद्ध होता है | तदनुसार, राजा का सिर काट देने से राजा और किसान बराबर नहीं हो जाएंगे और न मालिक का सिर काट देने से उसके कर्मचारी उसके बराबर हो जाएंगे |

असत्य के द्वारा सत्य की प्राप्ति नहीं की जा सकती | सत्यपरक आचरण से ही सत्य की प्राप्ति संभव है | क्या अहिंसा और सत्य जुड़वां नहीं हैं ? इसका स्पष्ट उत्तर है कि 'नहीं' | अहिंसा सत्य में समाहित है और उसका विलोम भी सही है | इसीलिए यह कहा गया है कि ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं | इन्हें एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता | सिक्के के किसी पहलू को पढ़ लीजिए | शब्द भिन्न होंगे, पर सिक्के का मूल्य वही रहेगा |

यह सौभाग्यपूर्ण स्थिति पूर्ण शुद्धता के बिना प्राप्त नहीं की जा सकती | मन में अथवा शरीर में अशुद्धता को पलने-बढ़ने का अवसर देते ही तत्काल आपके भीतर असत्य और हिंसा उभर आएगी |
इसलिए केवल सत्यनिष्ठ, अहिंसक और शुद्ध हृदय वाले समाजवादी ही भारत में और विश्व में समाजवादी समाज की स्थापना कर पाएंगे | जहां तक मेरी जानकारी है, विश्व का एक भी देश ऐसा नहीं है जो विशुद्ध रूप से

समाजवादी हो | मैंने ऊपर जिन साधनों का वर्णन किया है, उन्हें अपनाए बिना इस प्रकार के समाज का अस्तित्व असंभव है| *(हरि, 13-7-1947, पृ. 232)*

समाजवादी और साम्यवादी कहते हैं कि वे आर्थिक समानता लाने के लिए आज कुछ भी नहीं कर सकते | वे केवल उसके पक्ष में प्रचार करेंगे और इस निमित्त घृणा पैदा करने और उसे बढ़ाने में उनका विश्वास है | उनका कहना है कि 'जब हमें राज्य पर नियंत्रण प्राप्त हो जाएगा तो हम बलपूर्वक समानता लागू कर देंगे |'

....यद्यपि मैं अमीरों द्वारा उपलब्ध की गई कारों और अन्य सुविधाओं का इस्तेमाल करता हूं, पर मेरा दावा है कि मैं चोटी का साम्यवादी हूं | इन अमीरों का मेरे ऊपर जरा भी प्रभाव नहीं है और ज्यों ही मुझे लगेगा कि आम जनता के हितों के लिए इन्हें त्यागने की जरूरत है त्यों ही एक क्षण में मैं उन्हें अपने से दूर कर दूंगा | *(हरि, 31-3-1946, पृ. 64)*

शिक्षा के द्वारा

लेकिन यह समझ लेना चाहिए कि सुधार जल्दबाजी में नहीं किए जा सकते | अगर उन्हें अहिंसक उपायों से लागू करना है तो इसका तरीका यही हो सकता है कि हम 'धनी' और 'निर्धन', दोनों को शिक्षित करें | 'धनिकों' को यह आश्वासन देना है कि उनके विरुद्ध बल का प्रयोग कभी नहीं किया जाएगा | 'निर्धनों' को यह शिक्षा देनी है कि तुम्हारी इच्छा के बिना कोई व्यक्ति तुम्हें कुछ भी करने के लिए वस्तुत: बाध्य नहीं कर सकता और तुम अहिंसा अर्थात कष्ट सहन की कला को सीखकर अपनी आज़ादी स्वयं हासिल कर सकते हो |

यदि हमें अपने ध्येय को प्राप्त करना है तो मैंने ऊपर जिस शिक्षा की रूपरेखा प्रस्तुत की है, उसे अभी शुरू कर देना चाहिए | पहला कदम तो यह है कि हम परस्पर आदर और विश्वास का वातावरण तैयार करें | विशिष्ट वर्गों और आम जनता के बीच हिंसक संघर्ष नहीं हो सकता | *(हरि, 20-4-1940, पृ. 97)*

ईश्वर में आस्था

समाजवाद में सत्य और अहिंसा का अवतरण होना आवश्यक है | इसके लिए जरूरी है कि समाजवाद के हिमायती को ईश्वर में जीवंत आस्था हो | अगर उसमें सत्य और अहिंसा के प्रति केवल औपचारिक आग्रह होगा तो वह ऐन वक्त पर जवाब दे जाएगा | इसीलिए मैं कहता हूं कि सत्य ही ईश्वर है |

यह ईश्वर एक जीवंत बल है | हमारा जीवन इसी बल के अधिकार में है | यही बल हममें निवास करता है, पर यह हमारा शरीर नहीं है | जो व्यक्ति इस महान बल के अस्तित्व को नकारता है, वह इस अपार शक्ति के इस्तेमाल से अपने को वंचित रखता है और पौरुषहीन बना रहता है | वह एक पालरहित नौका की तरह से है जो कभी इधर और कभी उधर हिचकोले खाती रहती है और अपने रास्ते पर आगे बढ़े बिना नष्ट हो जाती है | ऐसे लोगों का

समाजवाद स्वयं उनकी कोई भलाई नहीं कर सकता, उस समाज की भलाई की तो बात ही छोड़िए जिसमें वे रहते हैं |

अगर ऐसी बात है तो क्या इसका अर्थ यह है कि एक भी समाजवादी ईश्वर में विश्वास नहीं करता ? अगर ऐसे कुछ समाजवादी हैं तो वे कोई स्पष्ट प्रगति क्यों नहीं कर पाए ? इसके अलावा, अनेक धर्मपरायण लोग हमसे पहले इस दुनिया में रह चुके हैं, वे समाजवादी राज्य की नींव रखने में सफल क्यों नहीं हुए ?

इन दो प्रश्नों का पूरा समाधान देना कठिन है | फिर भी यह कहा जा सकता है कि समाजवाद में विश्वास रखने वाले किसी व्यक्ति को संभवत: यह सूझा ही नहीं है कि उसके समाजवाद और ईश्वर में विश्वास के बीच कोई संबंध है | यह भी बेहिचक कहा जा सकता है कि धर्मपरायण लोगों ने आम जनता के सामने समाजवाद का आदर्श कभी रखा ही नहीं |

धर्मपरायण स्त्री-पुरुषों के होते हुए भी दुनिया में अंधविश्वास फलते-फूलते रहे हैं | स्वयं हिंदुओं में छुआछूत का अभी हाल तक बड़ा जोर रहा है |

तथ्य यह है कि इस महान बल और उसकी गूढ़ संभावनाओं का ज्ञान प्राप्त करना सदा से ही अथक अनुसंधान का विषय रहा है |

सत्याग्रह एक अचूक विधि

मेरा दावा है कि सत्याग्रह की खोज उसी अनुसंधान का परिणाम है | लेकिन मैं यह दावा नहीं करता कि सत्याग्रह के सभी नियम निर्धारित हो चुके हैं या कि उनका पता लगा लिया गया है | हां, एक बात मैं निर्भय होकर और पक्के तौर से कह सकता हूं कि सत्याग्रह के प्रयोग से किसी भी अच्छे उद्देश्य की प्राप्ति की जा सकती है | यह सर्वोच्च और अचूक साधन है, यह महानतम बल है | समाजवाद किसी अन्य उपाय से हासिल नहीं किया जा सकेगा | सत्याग्रह समाज को उसकी राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक सभी बुराइयों से मुक्त कर सकता है | *(हरि, 20-7-1947, पृ. 240)*

राष्ट्रीयकरण

जैसा कि कराची कांग्रेस के प्रस्ताव में कहा गया है, मैं प्रमुख और प्रधान उद्योगों की राष्ट्रीयकरण में विश्वास करता हूं | इससे अधिक और किसी बात की कल्पना मैं इस समय नहीं कर सकता | न मैं उत्पादन के सभी साधनों के राष्ट्रीयकरण के पक्ष में हूं | क्या रवींद्रनाथ ठाकुर का भी राष्ट्रीयकरण कर देना चाहिए ? ये सब दिवास्वप्न हैं | *(मासो, पृ. 10)*

मेरा विश्वास निजी उद्यम में है और आयोजनबद्ध उत्पादन में भी है | अगर समस्त उत्पादन केवल राजकीय क्षेत्र में हुआ तो लोग नैतिक और बौद्धिक दृष्टि से कंगाल हो जाएंगे | वे अपनी जिम्मेदारियां भूल जाएंगे | इसलिए मैं पूंजीपतियों के पास उनकी फैक्टरियां और जमींदारों के पास उनकी जमीनें रहने दूंगा, लेकिन उनसे यह कहूंगा कि वे स्वयं को अपनी संपत्ति का न्यासी ही समझें | *(वही, पृ. 12)*

राजकीय नियंत्रण के बिना भी राष्ट्रीयकरण संभव है | मैं श्रमिकों के हितार्थ मिलें खोल सकता हूं | *(वही, पृ. 13)*

51. समाज का समाजवादी ढांचा

समाजवादी व्यवस्था

अगर मैं देश को अपने दृष्टिकोण से सहमत कर सकूं तो भावी सामाजिक व्यवस्था मुख्य रूप से चरखा और उससे जुड़ी बातों पर आधारित होगी | इसमें वे सभी चीज़ें शामिल होंगी जिनसे ग्रामवासियों के कल्याण में वृद्धि होती हो | इसमें उद्योग त्याज्य नहीं होंगे....जब तक कि वे गांवों और ग्रामवासियों का गला घोंटने वाले न हों |

मेरी कल्पना के अनुसार गांव की दस्तकारियों के साथ-साथ बिजली, पोत-निर्माण, लोहे के कारखाने, मशीन बनाने के कारखाने आदि भी रहेंगे | किंतु निर्भरता का क्रम उलट जाएगा | अभी तक औद्योगीकरण की योजनाएं इस प्रकार बनाई गई हैं कि वे गांवों और गांवों की दस्तकारियों को नष्ट कर दें | भारत के भावी राज्य में देश के उद्योग गांवों और उनकी दस्तकारियों के सहायक की भूमिका निभाएंगे |

अहिंसक आधार

मैं इस समाजवादी विश्वास को सही नहीं मानता कि यदि केंद्रीकृत उद्योगों की आयोजना और स्वामित्व राज्य के हाथ में हो तो जीवन के लिए अनिवार्य वस्तुओं का केंद्रीकरण सार्वजनिक कल्याण में सहायक होगा | पश्चिम की समाजवादी धारणा का जन्म हिंसा के वातावरण में हुआ था | पश्चिम के ढंग के और पूर्व के ढंग के समाजवाद के पीछे मंतव्य एक ही है – सम्पूर्ण समाज का अधिकतम कल्याण और उन भयंकर असमानताओं का उन्मूलन जिनके परिणामस्वरूप लाखों-करोड़ों लोग निर्धन हैं और मुट्ठी भर लोग 'धनी' हैं | मेरा विश्वास है कि इस ध्येय की प्राप्ति तभी हो सकती है जब दुनिया के प्रखरतम बुद्धि वाले लोग अहिंसा को न्यायोचित सामाजिक व्यवस्था के निर्माण का आधार मान लें | मेरी पक्की धारणा है कि सर्वहारा की हिंसा के द्वारा सत्ता-प्राप्ति अंतत: असफल हो जाएगी | जो चीज़ हिंसा के द्वारा हासिल की जाती है, उसका अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली हिंसा के हाथों अंत अवश्यंभावी है | *(हरि, 27-1-1940, पृ. 428)*

स्वाधीनता की शुरुआत नीचे से होनी चाहिए | तदनुसार प्रत्येक गांव एक गणतंत्र अथवा पंचायत का रूप लेगा जिसे पूरी शक्तियां प्राप्त होंगी | इसका तात्पर्य यह है कि हर गांव को आत्मनिर्भर बनना होगा और अपने मामलों की देखभाल स्वयं करनी होगी; यहां तक कि समूची दुनिया से अपनी रक्षा करने का भार भी स्वयं उसी के ऊपर होगा | उसे बाहरी आक्रमण से अपनी रक्षा करने के प्रयास में नष्ट हो जाने का प्रशिक्षण दिया जाएगा और उसके लिए उद्यत किया जाएगा |

इस प्रकार, अंतत: व्यक्ति ही इकाई माना जाएगा | इसका मतलब यह नहीं है कि वह पड़ोसियों या बाहरी दुनिया पर कतई निर्भर नहीं होगा या उनके द्वारा स्वेच्छा से की गई सहायता भी स्वीकार नहीं करेगा | लेकिन यह पारस्परिक व्यवहार उभय पक्षों की स्वतंत्रता और स्वेच्छा से संचालित होगा | इस प्रकार का समाज अनिवार्यत:

अत्यंत सुसंस्कृत होगा जिसमें प्रत्येक स्त्री-पुरुष को यह पता होगा कि उसे क्या चाहिए और इससे भी बड़ी बात यह है कि उसे यह मालूम होगा कि उसे ऐसी किसी चीज़ की इच्छा नहीं करनी चाहिए जिसे दूसरे लोग भी उतने ही श्रम से न पा सकते हों |

असंख्य गांवों से बने इस ढांचे में एक के बाद एक विस्तारशील किंतु कभी ऊर्ध्वगामी न होने वाले वलय होंगे | जीवन एक पिरामिड की तरह नहीं होगा जिसमें आधार को शीर्ष का भार वहन करना पड़ता है, बल्कि वह एक समुद्री वलय की तरह होगा जिसके केंद्र में व्यक्ति होगा जो अपने गांव के लिए मर मिटने के वास्ते सदा तैयार रहेगा, गांव गांव-समूहों के लिए नष्ट हो जाने को तैयार रहेगा, और यह प्रक्रिया वहां तक चलती रहेगी जहां संपूर्ण विश्व एक जीवन का रूप धारण कर लेगा; सभी व्यक्ति इस एक जीवन के अंग होंगे, वे कभी अहंकारवश आक्रामक रुख नहीं अपनाएंगे, बल्कि सदा विनम्र रहेंगे और उस समुद्री वलय के ऐश्वर्य में भागीदार होंगे जिसकी वे अंगभूत इकाई हैं |

इस समुद्री वलय की बाह्यतम परिधि के पास आंतरिक वलय को कुचलने की शक्ति नहीं होगी, बल्कि वह अपने अंदर के सभी वलयों को शक्ति प्रदान करेगी और स्वयं उनसे शक्ति प्राप्त करेगी | लोग मुझे पलटकर उलाहना दे सकते हैं कि ये सब यूटोपिआई बातें हैं और जरा भी विचारणीय नहीं हैं | यदि यूक्लिड के बिंदु का, भले ही कोई मनुष्य उसे कागज पर उतारने में सक्षम न हो, अक्षय मूल्य है तो मेरी उपर्युक्त तस्वीर का भी मानव जाति के लिए मूल्य है | भारत को इस सच्ची तस्वीर के लिए जीना चाहिए, भले ही हम उसे कभी पूर्णतया प्राप्त न कर सकें | हम जो चाहते हैं, हमारे सामने पहले उसकी सही तस्वीर होनी चाहिए, तभी हम उसे प्राप्त करने की दिशा में प्रयास कर सकते हैं | अगर भारत का प्रत्येक गांव कभी गणतंत्र बना तो मेरा दावा है कि मेरी तस्वीर ही सच्ची साबित होगी जिसमें निम्नतम व्यक्ति उच्चतम के समकक्ष होगा अर्थात न कोई उच्चतम होगा और न कोई निम्नतम | *(हरि, 28-7-1946, पृ. 236)*

देवत्व में विश्वास

यह समाज स्वभावतया सत्य और अहिंसा पर आधारित होना चाहिए जो, मेरी राय में, ईश्वर में जीवंत विश्वास के बिना संभव नहीं है | ईश्वर जो एक स्वयंभू और सर्वज्ञ जीवंत बल है, जो विश्व के प्रत्येक ज्ञात बल में अंतर्निहित है, जो किसी पर निर्भर नहीं है और जो सभी बलों के विनष्ट हो जाने अथवा निष्क्रिय हो जाने के बाद भी विद्यमान रहेगा | इस सर्वसमावेशी जीवंत ज्योति में विश्वास के बिना मैं अपने जीवन की कल्पना ही नहीं कर सकता |

इस तस्वीर में प्रत्येक धर्म को पूरा और बराबर का स्थान प्राप्त है | हम सभी एक महान ऐश्वर्यशाली वृक्ष की पत्तियां हैं जिसकी जड़ें पृथ्वी के गर्भ में इस तरह जमी हुई हैं कि उसके तने को जड़ों से अलग नहीं किया जा सकता | भयंकर झंझावात भी इस वृक्ष को हिला नहीं सकता |

इस तस्वीर में ऐसी मशीनों के लिए कोई स्थान नहीं है जो मानव श्रम को विस्थापित करती हैं और मुट्ठी भर लोगों में शक्ति का केंद्रीकरण करती हैं | सुसंस्कृत मानव परिवार में श्रम का स्थान अद्वितीय है | ऐसी हर मशीन का स्वागत है जो प्रत्येक व्यक्ति की सहायता करती है | लेकिन मैं यह बात मानने को तैयार हूं कि मैं अभी तक इस प्रश्न पर विचार नहीं कर पाया हूं कि ऐसी मशीन कौन-सी हो सकती है | सिंगर की सिलाई मशीन मेरे ध्यान में आई है | लेकिन वह भी सरसरी तौर पर ही है | अपनी तस्वीर को भरने के लिए मुझे उसकी जरूरत नहीं है | *(वही)*

52. साम्यवादी पंथ – बीज

बुनियादी प्रश्न

मुझे कामयाबी हासिल करने के सुगम हिंसक तरीकों में विश्वास नहीं है....मैं अच्छे मंतव्यों के साथ कितनी ही सहानुभूति रखूं और उनकी कितनी ही प्रशंसा करूं, पर मैं अच्छे-से-अच्छे उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भी हिंसक तरीकों को अपनाने का सख्त विरोधी हूं | इसलिए मेरे और हिंसा के समर्थकों के बीच सहमति की वस्तुत: कोई गुंजाइश नहीं है |

लेकिन अहिंसा में मेरी आस्था मुझे अराजकतावादियों और हिंसा में विश्वास रखने वालों के साथ भी साहचर्य स्थापित करने की केवल अनुमति ही नहीं देती बल्कि उसके लिए बाध्य भी करती है | यह जरूर है कि उस साहचर्य का एकमात्र उद्देश्य उन्हें उस मार्ग से विरत करना है जो मुझे गलत लगता है | बात यह है कि मेरा अनुभव है कि असत्य और हिंसा का परिणाम स्थायी कल्याण कभी नहीं हो सकता | अगर मेरी आस्था केवल एक प्रिय भ्रांति है तो भी यह तो मानना ही होगा कि यह एक मोहक भ्रांति है | *(यंग, 11-12-1924, पृ. 406)*

मैं यह मानता हूं कि मैं अभी तक बोल्शेविकवाद का अर्थ पूरी तरह नहीं समझ सका हूं | मैं बस यही जानता हूं कि इसका उद्देश्य निजी संपत्ति की संस्था का उन्मूलन करना है | यह अर्थजगत में अपरिग्रह के नीतिपरक आदर्श की प्रयुक्ति ही है और इस आदर्श को यदि लोग स्वेच्छा से अपना लें अथवा उन्हें शांतिपूर्ण तरीके से इसे अपनाने के लिए प्रेरित किया जा सके तो इससे बेहतर बात कोई नहीं हो सकती |

लेकिन जहां तक मैं बोल्शेविकवाद को जानता हूं, यह न केवल बलप्रयोग को प्रतिबाधित नहीं करता अपितु निजी संपत्ति के स्वामित्वहरण और उसके सामूहिक राजकीय स्वामित्व को बनाए रखने के लिए खुल्लमखुल्ला बलप्रयोग की इज़ाज़त भी देता है | यदि ऐसा ही है तो मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि बोल्शेविक व्यवस्था का यह रूप बहुत दिनों तक नहीं चल सकता | कारण कि, मेरी यह पक्की धारणा है कि हिंसा के बल पर खड़ी की गई कोई चीज़ ज़्यादा नहीं टिक सकती |

जो भी हो, पर इसमें कोई संदेह नहीं है कि बोल्शेविक आदर्श के पीछे असंख्य स्त्री-पुरुषों का विशुद्धतम त्याग है जिन्होंने उसके लिए अपने सर्वस्व का बलिदान किया है; ऐसा आदर्श कभी व्यर्थ नहीं जा सकता जिसे लेनिन जैसी महान आत्माओं ने अपने बलिदानों से पवित्र किया है; उनके त्याग के उत्तम उदाहरण का सदैव गुणगान किया जाएगा और वह कालांतर में इस आदर्श को विशुद्ध रूप प्रदान करेगा | *(यंग, 15-11-1928, पृ. 381)*

पश्चिम के समाजवाद और साम्यवाद जिन धारणाओं पर आधारित हैं, वे हमारी धारणाओं से मूलत: भिन्न हैं | इनमें से एक धारणा यह है कि वे मानव प्रकृति की अनिवार्य स्वार्थपरता में विश्वास करते हैं | मैं इससे सहमत नहीं हूं, क्योंकि मैं जानता हूं कि मनुष्य और पशु के बीच एक मौलिक भेद यह है कि मनुष्य अपनी आत्मा की आवाज़ को

सुन सकता है, उन मनोवेगों पर काबू पा सकता है जो उसके और पशुओं के बीच समान रूप से विद्यमान हैं और इसलिए वह स्वार्थपरता और हिंसा से ऊपर उठ सकता है जो पशु की प्रकृति के अंग हैं, पर मानव की अमर आत्मा के गुण नहीं हैं |

यह हिंदुत्व की मौलिक धारणा है और इस सत्य की खोज के पीछे हजारों वर्ष का तप और सादगी है | इसीलिए हमारे यहां ऐसे संत तो हुए हैं जिन्होंने आत्मा के रहस्यों को जानने के लिए अपने शरीर को गला दिया और अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया पर पश्चिम की तरह, ऐसे कोई नहीं हुए जिन्होंने पृथ्वी के दूरतम और उच्चतम प्रदेशों की खोज करते हुए अपने प्राण दिए हों | इसलिए हमारा समाजवाद अथवा साम्यवाद अहिंसा पर तथा श्रम और पूंजी एवं जमींदार और काश्तकार के बीच सामंजस्यपूर्ण सहयोग पर आधारित होना चाहिए | *(अबाप, 2-8-1934)*

साम्यवाद का अर्थ

रूसी ढंग का साम्यवाद, यानी लोगों पर आरोपित साम्यवाद, भारत के अनुकूल नहीं होगा | अगर साम्यवाद हिंसा के बिना आए तो उसका स्वागत होगा | क्योंकि तब संपत्ति का जो भी स्वामी होगा, वह उसे जनता के लिए और उनकी ओर से धारण करेगा | लखपति के पास लाखों रुपए होंगे, पर वे जनता के लिए होंगे | राज्य को सार्वजनिक उद्देश्य के लिए जब भी आवश्यकता होगी, वह उन्हें उससे ले सकेगा | *(हरि, 13-2-1937, पृ. 6)*

साम्यवाद का आशय अंतत: क्या है ? इसका आशय है वर्गहीन समाज – एक ऐसा आदर्श जो निश्चित रूप से अभीप्सित है | किंतु इसे प्राप्त करने के लिए जब बलप्रयोग की बात आती है, तो मैं इससे किनारा कर लेता हूं | हम सभी समकक्ष पैदा हुए हैं, पर सदियों से हमने ईश्वर के इस विधान का प्रतिरोध किया है | असमानता का विचार, 'ऊंच और नीच' की भावना एक बुराई है, लेकिन मैं बंदूक के दम पर इसके उन्मूलन में विश्वास नहीं करता | मनुष्य की छाती बंदूक के लिए नहीं बनी है | *(हरि, 13-3-1937, पृ. 40)*

मैं परोपकारी (या उपकारक) या अन्य किसी प्रकार की तानाशाही को स्वीकार नहीं कर सकता | उसमें न तो अमीर मिटेंगे और न गरीबों को संरक्षण प्राप्त होगा | हां, कुछ अमीर मार जरूर दिए जाएंगे और कुछ गरीबों को घर बैठे रोटी दे दी जाएगी | तथाकथित परोपकारी तानाशाही के बावजूद, एक वर्ग के रूप में, अमीर भी रहेंगे और गरीब भी | असली इलाज अहिंसक लोकतंत्र है, जिसे सबके लिए सच्ची शिक्षा भी कहा जा सकता है | अमीरों को कारिंदे के रूप में काम करने के सिद्धांत की सीख दी जानी चाहिए और गरीबों को स्वावलंबन की | *(हरि, 8-6-1940, पृ. 159)*

वर्गहीन समाज एक आदर्श है जो केवल हमारा ध्येय ही नहीं होना चाहिए बल्कि हमें उसके लिए प्रयास भी करना चाहिए और ऐसे समाज में, वर्गों अथवा समुदायों का कोई स्थान नहीं होता | *(हरि, 17-2-1946, पृ. 10)*

मैं स्वयं को साम्यवादी भी कहता हूं....मेरा साम्यवाद समाजवाद से बहुत अधिक भिन्न नहीं है | वह दोनों का सामंजस्यपूर्ण मेल है | जहां तक मैंने समझा है, साम्यवाद समाजवाद की स्वाभाविक परिणति है | *(हरि, 4-8-1946, पृ. 246)*

10. न्यासिता

53. न्यासिता का दिव्य संदेश

ऊंच-नीच का समतलीकरण

आर्थिक समानता अहिंसक स्वाधीनता की सर्वकुंजी ('मास्टर की') है | आर्थिक समानता के लिए कार्य करने का मतलब है पूंजी और श्रम के अंतहीन संघर्ष का उन्मूलन | इसका अर्थ है, एक ओर तो उन मुट्ठी भर धनवानों के स्तर को नीचा करना जिनके हाथ में राष्ट्र की अधिकांश संपदा केंद्रित है और दूसरी ओर, आधा-पेट भोजन पर जीवन-निर्वाह करने वाले लाखों-करोड़ों लोगों के स्तर को ऊपर उठाना |

जब तक धनवानों और लाखों-करोड़ों भूखे लोगों के बीच की खाई नहीं पटती तब तक अहिंसक किस्म की सरकार की स्थापना करना नितांत असंभव है | नयी दिल्ली के आलीशान भवनों और उनके पास ही मज़दूरों की टूटी-फूटी झोपड़ियों का अंतर स्वतंत्र भारत में एक दिन भी नहीं चल सकता, जिसमें देश के गरीब लोगों के हाथों में भी उतनी ही शक्ति होगी जितनी कि सर्वाधिक धनी लोगों के हाथों में |

अगर धनवानों ने अपनी धन-दौलत और उससे प्राप्त शक्ति का स्वेच्छा से त्याग न किया और आम जनता को उसके हित के लिए उसमें साझीदार न बनाया तो निश्चित रूप से एक दिन हिंसक और रक्तरंजित क्रांति हो जाएगी| *(काप्रो, पृ. 20-21)*

मैं अपने न्यासिता के सिद्धांत पर दृढ़ हूं, भले ही लोगों ने इसकी जमकर खिल्ली उड़ाई हो | यह सही है कि इसे प्राप्त करना कठिन है | अहिंसा की प्राप्ति भी उसी प्रकार कठिन है | पर 1920 में हमने फैसला किया कि हम इस कठिन चढ़ाई पर चढ़ेंगे | आज हमें अपनी मेहनत सफल होती दिखाई दे रही है | *(वही, पृ. 21)*

अहिंसक तरीका

अहिंसक पद्धति में हम पूंजीपति को नष्ट करने का प्रयास नहीं करते, बल्कि पूंजीवाद को समाप्त करने का प्रयास करते हैं | हम पूंजीपति से आग्रह करते हैं कि वह स्वयं को उन लोगों का न्यासी समझे जिनके ऊपर वह अपनी पूंजी के निर्माण, उसकी रक्षा और उसके संवर्धन के लिए निर्भर है | श्रमिक को भी उसके हृदय-परिवर्तन के लिए प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है | यदि पूंजी में शक्ति है तो श्रम में भी है | शक्ति का प्रयोग विनाश के लिए भी किया जा सकता है और सृजन के लिए भी | दोनों एक-दूसरे पर निर्भर हैं | अपनी शक्ति का अहसास होते ही श्रमिक पूंजीपति का गुलाम होने के स्थान पर उसका सह-भागीदार होने की स्थिति में आ जाता है |

अगर वह एकमात्र स्वामी बनने की कोशिश करेगा तो अधिक संभावना इसी बात की है कि वह सुनहरी अंडा देने वाली मुर्गी को ही मार देगा |

मुझे इस बात का भय नहीं है कि मेरे द्वारा असहयोग किए जाने की स्थिति में कोई अन्य व्यक्ति मेरा स्थान ले लेगा, क्योंकि मुझे आशा है कि मैं अपने सहकर्मियों पर यह प्रभाव डाल सकूंगा कि वे अपने मालिक के दुराचार में सहायक न बनें | श्रमिकों की विशाल संख्या को इस तरह की शिक्षा देना निस्संदेह एक धीमी प्रक्रिया है, पर चूंकि यह अचूक भी है इसलिए यह अनिवार्यत: सबसे कम समय लेने वाली है | इसे आसानी से सिद्ध किया जा सकता है कि पूंजीपति को नष्ट करने से अंतत: श्रमिक का भी नाश हो जाएगा और जिस प्रकार कोई व्यक्ति इतना बुरा नहीं है कि उसका सुधार ही न किया जा सके उसी प्रकार कोई व्यक्ति इतना पूर्ण नहीं है कि उसे किसी व्यक्ति को जिसे वह गलती से पूरी तरह बुरा समझ बैठा है, नष्ट करने की अनुमति दे दी जाए | *(यंग, 26-3-1931, पृ. 49)*

सामुदायिक कल्याण

मैं उन व्यक्तियों को जो आज अपने आपको मालिक समझ रहे हैं, न्यासी के रूप में काम करने के लिए आमंत्रित कर रहा हूं अर्थात यह आग्रह कर रहा हूं कि वे स्वयं को अपने अधिकार की बदौलत मालिक न समझें, बल्कि उनके अधिकार की बदौलत मालिक समझें जिनका उन्होंने शोषण किया है | *(यंग, 26-11-1931, पृ. 369)*

आजकल यह कहने का फैशन हो गया है कि समाज को अहिंसक ढंग से संगठित अथवा संचालित नहीं किया जा सकता | मैं इस मुद्दे पर बहस के लिए तैयार हूं | परिवार में जब पिता अपने दोषी बच्चे को थप्पड़ लगाता है तो बच्चा उसका बदला लेने की नहीं सोचता | वह अपने पिता की आज्ञा का पालन थप्पड़ के असर की वजह से नहीं करता, बल्कि इसलिए करता है कि वह थप्पड़ के पीछे छुपे आहत प्रेम को पहचानता है | मेरी राय में यही उस विधि का सार है जिसके अनुसार समाज चलता है अथवा चलाया जाना चाहिए | जो बात एक परिवार के बारे में सही है वही समाज के बारे में भी सही होनी चाहिए, क्योंकि समाज एक बृहत्तर परिवार ही तो है | *(हरि, 3-12-1938, पृ. 358)*

मान लीजिए कि मेरे पास विरासत में या उद्योग-व्यापार करके काफ़ी धन इकट्ठा हो गया है तो मुझे यह समझना चाहिए कि यह सारा धन मेरा नहीं है, मेरा अधिकार तो बस सम्माननीय ढंग से रह सकने का है और इसका स्तर भी उससे ऊपर नहीं होना चाहिए जो लाखों लोगों को प्राप्त है | मेरा शेष धन समुदाय का है और वह उसी के कल्याण में खर्च किया जाना चाहिए |

मैंने इस सिद्धांत का प्रतिपादन उस समय किया था जब देश के सामने जमींदारों और राजा-महाराजाओं की धन-संपत्ति के विषय में समाजवादी सिद्धांत प्रस्तुत किया गया था | समाजवादियों का कहना था कि वे इनके विशेषाधिकार समाप्त कर देंगे | इसके विपरीत मैं चाहता हूं कि वे लोग अपने लालच और स्वामित्व की भावना से ऊपर उठें और अपनी दौलत के बावजूद उस स्तर पर उतर कर आ जाएं जिस पर पसीने की कमाई से पेट भरने

वाला श्रमिक जीवन-निर्वाह करता है | श्रमिक को यह समझना होगा कि धनवान व्यक्ति अपनी संपत्ति का स्वामी उससे भी कम है जितना कि वह अपनी संपत्ति अर्थात काम करने की शक्ति का स्वामी है |

व्यवहार में

इस प्रश्न का कोई महत्व नहीं है कि इस परिभाषा के अनुसार कितने लोग सच्चे न्यासी के रूप में आचरण कर सकते हैं | अगर यह सिद्धांत सही है तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि इस पर अनेक लोग चल रहे हैं या केवल एक ही आदमी चल रहा है | प्रश्न केवल दृढ़ आस्था का है | अगर आप अहिंसा के सिद्धांत को स्वीकार करते हैं तो आपको उस पर चलने का प्रयास करना होगा, भले ही आप सफल हों या असफल | इस सिद्धांत में ऐसी कोई बात नहीं है जो बुद्धि की पकड़ के बाहर हो, हालांकि आप यह कह सकते हैं कि इसे व्यवहार में लाना कठिन है| *(हरि, 3-6-1939, पृ. 145)*

मुझे यह स्वीकार करने में कोई लज्जा नहीं है कि अनेक पूंजीपतियों का मेरे प्रति मैत्रीभाव है और वे मुझसे भय नहीं खाते | वे जानते हैं कि मैं पूंजीवाद को समाप्त करने का लगभग उतना ही इच्छुक हूं जितने कि सर्वाधिक उन्नत समाजवादी अथवा साम्यवादी हैं | लेकिन हमारे तरीके अलग-अलग हैं, हमारी भाषाएं अलग-अलग हैं |

कामचलाऊ नहीं

'न्यासिता' का मेरा सिद्धांत कोई कामचलाऊ सिद्धांत नहीं है – निश्चित रूप से, यह कोई छद्मावरण नहीं है | मुझे पक्का विश्वास है कि अन्य सभी सिद्धांतों का लोप हो जाने के बाद भी यह सिद्धांत जीवित रहेगा | यह दर्शन और धर्म द्वारा अनुमोदित है | धनवान लोगों ने इस सिद्धांत के अनुसार आचरण नहीं किया है, इससे सिद्धांत झूठा सिद्ध नहीं हो जाता, इससे सिर्फ धनवानों की दुर्बलता सिद्ध होती है | अन्य किसी सिद्धांत का अहिंसा के साथ मेल नहीं है | अहिंसक पद्धति में दुराचारी यदि अपने दोष को दूर नहीं करता तो वह स्वयं अपने अंत का कारण बनता है | चूंकि अहिंसक असहयोग के परिणामस्वरूप या तो उसे अपना दोष दिखाई दे जाता है और वह उसका मार्जन कर लेता है या फिर वह बिलकुल अकेला पड़ जाता है | *(हरि, 16-12-1939, पृ. 376)*

धन-संपत्ति का अर्जन

आज जिनके पास दौलत है, उनसे कहना है कि वे इस तरह आचरण करें मानो उनके पास यह दौलत गरीबों की ओर से एक न्यास के रूप में रखी गई हो | आप कह सकते हैं कि न्यासिता कानून की दृष्टि से एक कल्पना मात्र है | लेकिन अगर लोग इस पर बराबर विचार करें और इसके अनुसार आचरण करने का प्रयास करें तो दुनिया आज जितने प्रेम से चलाई जा रही है, उससे कहीं अधिक प्रेम का संचार हो सकता है | यूक्लिड की बिंदु की परिभाषा की तरह पूर्ण न्यासिता भी एक अमूर्त विचार है और इसे प्राप्त करना भी उतना ही असंभव है | लेकिन

अगर हम उसके लिए प्रयास करते रहें तो हम धरती पर समानता स्थापित करने की दिशा में अन्य किसी उपाय की अपेक्षा (न्यासिता के सिद्धांत पर आचरण करके) अधिक प्रगति कर सकते हैं |*(मारि, अक्तू., 1935, पृ. 412)*

मुझे पक्का विश्वास है कि जान-बूझकर गलत काम किए बिना भी दौलत कमाई जा सकती है | उदाहरण के लिए, मेरी एक एकड़ भूमि में अचानक सोने की खान निकल सकती है | लेकिन मैं इस प्रस्थापना को स्वीकार करता हूं कि संपत्ति को अर्जित करने और उसका न्यासी बनने की अपेक्षा संपत्ति की कामना न करना बेहतर है | मैं अपनी संपत्ति बहुत पहले ही त्याग चुका हूं, जो इस बात का पर्याप्त प्रमाण होना चाहिए कि मैं औरों से क्या करने की अपेक्षा रखता हूं | लेकिन मैं उन लोगों को क्या सलाह दूं जो पहले से ही धनवान हैं या जो धन की कामना को छोड़ना नहीं चाहते ? ऐसे लोगों को मेरा परामर्श यही हो सकता है कि वे अपने धन का इस्तेमाल सेवा के लिए करें |

यह सही है कि आम तौर से धनी लोग अपने ऊपर जरूरत से ज़्यादा खर्च करते हैं | लेकिन इससे बचा जा सकता है | जमनालाल जी अपनी समकक्ष आर्थिक स्थिति के लोगों अथवा बहुत-से मध्यम वर्ग के लोगों के मुकाबले भी अपने ऊपर कम पैसा खर्च करते थे | मैं ऐसे असंख्य धनवानों से मिला हूं जो अपने ऊपर खर्च करने में काफ़ी कंजूस हैं | बहुत-से लोगों का तो यह स्वभाव ही होता है कि वे अपने ऊपर लगभग कोई पैसा खर्च नहीं करते और वे यह नहीं जानते कि ऐसा करने में कोई अच्छाई है |

यही बात धनवानों के बच्चों पर भी लागू होती है | व्यक्तिगत रूप से, मैं विरासत में मिली धन-दौलत में विश्वास नहीं करता | धनवान लोगों को अपने बच्चों को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए और उनका पालन-पोषण इस प्रकार करना चाहिए कि वे अपने पैरों पर खड़ा होना सीखें | दुख का विषय है कि वे ऐसा नहीं करते | उनके बच्चे थोड़े-बहुत पढ़ जाते हैं, वे गरीबी के गुणगान में कुछ कविताएं भी सुनाने लगते हैं, लेकिन उन्हें अपनी पैतृक संपत्ति का उपभोग करने में कोई तकलीफ महसूस नहीं होती | ऐसी स्थिति में, मैं अपनी सामान्य बुद्धि का इस्तेमाल करते हुए वही परामर्श देता हूं जो व्यावहारिक हो |

हममें से जो लोग गरीबी को अपनाना अपना कर्तव्य समझते हैं और जिन्हें आर्थिक समानता में विश्वास है और चाहते हैं कि इसकी स्थापना हो, उन्हें धनवानों से ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए बल्कि अपनी गरीबी में सच्ची खुशी का प्रदर्शन करना चाहिए जिसका अन्य लोग अनुकरण कर सकें | यह दुख की बात है कि इस प्रकार खुश रहने वालों की संख्या बहुत ही कम है | *(हरि, 8-3-1942, पृ. 67)*

न्यासी का कोई वारिस नहीं होता, जनता ही उसकी वारिस होती है | अहिंसा के आधार पर संगठित राज्य में न्यासिता का नियमन किया जाएगा | राजा और जमींदार अन्य धनवानों के समकक्ष ही माने जाएंगे | *(हरि, 12-4-1942, पृ. 116)*

विकल्प

जहां तक धन-संपत्ति के वर्तमान स्वामियों का प्रश्न है, उन्हें वर्ग-युद्ध और अपनी धन-संपत्ति के न्यासी के रूप में स्वेच्छा से अपने आपको परिवर्तित कर देने के बीच किसी एक का चुनाव करना होगा | उन्हें अपनी धन-दौलत के स्वामित्व को बनाए रखने, अपनी प्रतिभा का इस्तेमाल करने और अपनी दौलत में वृद्धि करने की अनुमति होगी, लेकिन अपनी खातिर नहीं बल्कि राष्ट्र की खातिर | इसलिए इसमें शोषण के लिए भी कोई स्थान नहीं होगा|

इन्हें अपनी सेवा और समाज के लिए उसके मूल्य को देखते हुए कमीशन मिलेगा जिसकी दर का नियमन राज्य द्वारा किया जाएगा | उनके बच्चों को उनके स्थान पर न्यासी बनने की आज्ञा तभी मिलेगी जबकि वे स्वयं को इसके योग्य सिद्ध कर सकेंगे |

मान लीजिए, भारत कल स्वतंत्र हो जाता है तो उसके सभी पूंजीपतियों को कानूनी न्यासी बनने का अवसर मिलेगा | लेकिन इसका कानून ऊपर से नहीं थोपा जाएगा | यह नीचे से आएगा |

जब लोग न्यासिता के अर्थ को समझने लगेंगे और वातावरण उसके अनुकूल हो जाएगा तो लोग स्वयं ही ऐसे कानून बनाना शुरू कर देंगे और यह शुरुआत ग्राम पंचायतों से होगी | ऐसी चीज़ नीचे से शुरू हो तो उसे लोग आसानी से स्वीकार कर लेते हैं | ऊपर से शुरू होने पर यह एक बोझ महसूस होती है | *(हरि, 31-3-1946, पृ. 63-64)*

जमींदार, किसान

बहस की खातिर मैं यह मानने के लिए तैयार हूं कि जमींदार अनेक अपराधों और भूलचूकों के लिए दोषी हैं | लेकिन इस कारण से किसानों और मज़दूरों का, जो धरती को जीवन देते हैं, अपराधों की नकल करना उचित नहीं ठहराया जा सकता | अगर नमक में से जायका जाता रहा तो नमक में जायका कहां से आएगा ?....
जमींदारों से मेरा कहना है कि आपके विरुद्ध जो बातें कही जा रही हैं, अगर वे सही हैं तो समझिए कि आपके दिन पूरे होने वाले हैं | आप और ज़्यादा दिन तक स्वामी और मालिक नहीं बने रह सकते | हां, अगर आप गरीब किसानों के न्यासी बनने को तैयार हों तो आपका भविष्य उज्ज्वल है | लेकिन न्यासी नाम को ही नहीं, असलियत में बनना होगा | ऐसा न्यासी सिर्फ उतना ही पारिश्रमिक लेगा जितना उसकी मेहनत और देखभाल का उचित मुआवजा ठहराया जा सकता है | यदि ऐसा हो सके तो वे पाएंगे कि कोई कानून उन्हें अपदस्थ नहीं कर सकता | और, किसान उनके मित्र बन जाएंगे | *(हरि, 4-5-1947, पृ. 134)*

अगर जमींदार अपनी रैयत की खातिर सचमुच अपनी जमींदारी के न्यासी बन जाएं तो दोनों के बीच कभी सांठ-गांठ नहीं हो सकती | जमींदारी का कठिन प्रश्न अभी सुलझाना बाकी है....इससे अच्छा और क्या हो सकता है कि छोटे-बड़े सभी जमींदारों, रैयत और सरकारों के बीच कोई उचित, निष्पक्ष और संतोषजनक समझौता हो जाए

ताकि जब कानून पास हो तो उस पर अमल हो सके और जमींदारों तथा रैयत के विरुद्ध बल-प्रयोग की आवश्यकता न पड़े | क्या ऐसे सभी परिवर्तन, जिनमें से कुछ आमूल प्रकृति के भी होंगे, पूरे भारत में बिना रक्तपात और बल-प्रयोग के लागू किए जा सकेंगे | ? *(हरि, 21-9-1947, पृ. 332)*

व्यावहारिक न्यासिता सूत्र*

(1) न्यासिता समाज की वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था को समतावादी व्यवस्था में रूपांतरित करने का एक साधन है| न्यासिता पूंजीवाद को बख्शती नहीं है, पर वह वर्तमान मालिक वर्ग को सुधार का एक अवसर प्रदान करती है | यह इस विश्वास पर आधारित है कि मानव प्रकृति कभी सुधार से परे नहीं होती |

(2) यह निजी स्वामित्व के किसी अधिकार को नहीं मानती, सिवा उसके जिसकी अनुमति समाज अपने कल्याण के लिए दे |

(3) यह धन-संपत्ति के स्वामित्व और उपयोग के कानूनी विनियमन की वर्जना नहीं करती |

(4) तदनुसार राज्य द्वारा विनियमित न्यासिता के तहत, कोई व्यक्ति अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए अथवा समाज के हितों की अनदेखी करते हुए अपनी संपत्ति को धारण करने अथवा उसका इस्तेमाल करने के लिए स्वतंत्र नहीं होगा |

(5) जिस प्रकार एक समुचित न्यूनतम निर्वाह मज़दूरी नियत करने का प्रस्ताव है, उसी तरह समाज में व्यक्ति की अधिकतम आय भी नियत कर देनी चाहिए | न्यूनतम और अधिकतम आयों के बीच जो अंतर हो वह युक्तिसंगत और न्यायोचित हो और उसमें समय-समय पर इस दृष्टि से परिवर्तन किया जाए कि अंतत: वह अंतर मिट जाए |

(6) गांधीवादी अर्थव्यवस्था में, उत्पादन का स्वरूप सामाजिक आवश्यकता द्वारा निर्धारित होगा, व्यक्तिगत सनक या लोभ द्वारा नहीं | *(हरि, 25-10-1952, पृ. 301); समझा जाता है कि यह* दस्तावेज प्रो. एम. एल. *दांतवाला ने तैयार किया था |*

---

*यह 'सरल और व्यावहारिक न्यासिता सूत्र' किशोरलाल मश्रूवाला और नरहरि पारिख द्वारा तैयार किया गया था और गांधीजी ने इसे कुछ संशोधनों के साथ, अनुमोदित कर दिया था |

54. अहिंसक अर्थव्यवस्था

अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र

मैं मानता हूं कि मैं अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र के बीच कोई सुस्पष्ट या किसी अन्य प्रकार का भेद नहीं करता | वह अर्थशास्त्र अनैतिक और इसीलिए पापयुक्त है जो किसी व्यक्ति अथवा राष्ट्र के नैतिक कल्याण को क्षति पहुंचाता हो | तदनुसार वह अर्थशास्त्र पापयुक्त है जो यह अनुमति देता है कि एक देश दूसरे देश को लूट ले | शोषित श्रम द्वारा तैयार की गई वस्तुओं को खरीदना और उनका इस्तेमाल करना पापयुक्त है | *(यंग, 13-10-1921, पृ. 325)*

वह अर्थशास्त्र जो नैतिक और भावनात्मक दृष्टिकोणों की अनदेखी करता है, मोम से बनी मूर्तियों के समान है जिनमें आकृति-साम्य तो होता है पर जीवित प्राणी की जीवंतता नहीं होती | हर संकट के समय ये नवदंतुरित आर्थिक नियम अव्यावहारिक सिद्ध हुए हैं | जो राष्ट्र अथवा व्यक्ति इन्हें अपने मार्गदर्शक सूत्रों के रूप में स्वीकार करेगा, उसका नाश अवश्यंभावी है | *(यंग, 27-10-1921, पृ. 344)*

जो अर्थशास्त्र नैतिक मूल्यों की अनदेखी अथवा उपेक्षा करता है, वह झूठा है |अर्थशास्त्र के क्षेत्र में अहिंसा के नियम की प्रयुक्ति का अर्थ कम-से-कम इतना तो है कि अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्य में नैतिक मूल्यों को एक विचारणीय तत्व माना जाए | *(यंग, 26-10-1924, पृ. 421)*

आदर्श अर्थशास्त्र

मेरे विचार में भारत, और भारत ही क्यों सारी दुनिया, का आर्थिक गठन ऐसा होना चाहिए कि उसमें किसी को रोटी-कपड़े की तंगी न रहे | दूसरे शब्दों में, प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन-निर्वाह के लिए पर्याप्त काम उपलब्ध होना चाहिए |

यह आदर्श सर्वत्र तभी प्राप्त किया जा सकता है जब जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं के उत्पादन के साधन आम जनता के नियंत्रण में हों | ये उसी प्रकार सबको मुक्त रूप से उपलब्ध होने चाहिए जिस प्रकार ईश्वर की दी गई वायु और जल हैं अथवा होने चाहिए; इन्हें दूसरों के शोषण का अवैध साधन नहीं बनाया जाना चाहिए | किसी भी देश, राष्ट्र अथवा व्यक्ति-समूह द्वारा इन पर एकाधिकार करना अनुचित है | इस सीधे-सादे सिद्धांत की अवहेलना आज केवल इसी दुखी देश की नहीं बल्कि दुनिया के अन्य भागों की दरिद्रता का भी कारण है | *(यंग, 15-11-1928, पृ. 381)*

सच्चा अर्थशास्त्र कभी उच्चतम नैतिक मानकों का विरोधी नहीं होता, ठीक उसी प्रकार जैसे कि सच्चा नीतिशास्त्र वही माना जा सकता है जो नीतिशास्त्र होने के साथ-ही-साथ अच्छा अर्थशास्त्र भी हो | वह अर्थशास्त्र झूठा और

निराशाजनक है जो कुबेर की पूजा को प्रश्रय देता है और शक्तिशाली लोगों को दुर्बल लोगों की कीमत पर धन का संचय करने में मदद करता है | वह तो मौत का पैगाम है | इसके विपरीत, सच्चा अर्थशास्त्र सामाजिक न्याय सुनिश्चित करता है, दुर्बलतम व्यक्तियों सहित सबकी भलाई को बढ़ावा देता है और ढंग की जिंदगी जीने के लिए अपरिहार्य होता है | *(हरि, 9-10-1937, पृ. 292)*

अगर हम अपने घरों, महलों और मंदिरों से धन-दौलत के प्रतीकों को हटाकर उनकी जगह नैतिकता के प्रतीकों की प्रतिष्ठा करें तो भारी-भरकम फौज के खर्च का बोझ उठाए बिना दुनिया की किन्हीं भी आक्रामक शक्तियों का मुकाबला कर सकते हैं | पहले हम ईश्वर के साम्राज्य और उसकी नेकियों की कामना करें तो यह पक्का वायदा है कि हमें सब कुछ प्राप्त हो जाएगा | यही वास्तविक अर्थशास्त्र है | आइए, हम इसकी कद्र करें और अपने जीवन में इसे उतारें | *(स्पीरा, पृ. 355)*

न्यूनतम हिंसा

ठीक-ठीक कहा जाए तो थोड़ी-बहुत हिंसा, उसकी मात्रा कितनी ही कम हो, के बिना कोई कार्यकलाप या कोई उद्योग संभव नहीं है | जीने मात्र में भी थोड़ी-बहुत हिंसा होती है | करना यह है उसकी मात्रा जितनी कम हो सके, रखें | सच पूछा जाए तो अहिंसा शब्द, जो कि एक नकारात्मक शब्द है, का अर्थ ही यह है कि यह जीवन में अपरिहार्य हिंसा के त्याग का प्रयास है | इसलिए जो व्यक्ति अहिंसा में विश्वास करता है, वह ऐसे काम-धंधे को अपनाएगा जिनमें न्यूनतम हिंसा होती हो |

तदनुसार, इस बात की कल्पना नहीं की जा सकती कि अहिंसा में विश्वास करने वाला व्यक्ति कसाई का काम करेगा | ऐसा नहीं है कि मांसभक्षी अहिंसक नहीं हो सकता....लेकिन अहिंसा में विश्वास रखने वाला मांसभक्षी शिकार के लिए नहीं जाएगा और वह युद्ध तथा युद्ध की तैयारियों में भाग नहीं लेगा | इस प्रकार, ऐसे बहुत-से कार्यकलाप और धंधे हैं जिनमें अनिवार्यत: हिंसा होती है और अहिंसक व्यक्ति को इनसे दूर रहना चाहिए |

लेकिन कृषि के बगैर तो जीवन नहीं चल सकता और कृषि में थोड़ी-बहुत हिंसा होती ही है | इसलिए निर्धारक बात यह है कि क्या वह धंधा हिंसा पर आधारित है ? लेकिन चूंकि सभी कार्यकलाप में कुछ-न-कुछ हिंसा होती ही है, इसलिए हमें करना यह है कि हिंसा की मात्रा को जितना हो सके, कम रखने का प्रयास करें | इसके लिए अहिंसा में हृदय से विश्वास रखना आवश्यक है |

मान लीजिए, कोई व्यक्ति वास्तविक हिंसा नहीं करता, अपनी रोटी कमाने के लिए मेहनत भी करता है लेकिन उसके मन में सदा दूसरों की धन-संपत्ति के प्रति ईर्ष्या की भावना रहती है | ऐसा व्यक्ति अहिंसक नहीं कहला सकता | अत: अहिंसक व्यवसाय वह है जो मूलत: हिंसा से मुक्त हो और जिसमें दूसरों के शोषण अथवा उनके प्रति ईर्ष्या का कोई स्थान न हो |

ग्रामीण अर्थशास्त्र

मेरे पास इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण तो नहीं है, पर मेरा विश्वास है कि एक समय ऐसा था जब भारत की ग्राम अर्थव्यवस्था इसी तरह के अहिंसक काम-धंधों के आधार पर संगठित थी; वह मनुष्य के अधिकारों नहीं अपितु उसके कर्तव्यों के आधार पर टिकी थी | ऐसे काम-धंधों में लगे लोग अपनी रोटी-रोजी जरूर कमाते थे, पर उनका श्रम समुदाय की भलाई में योगदान करता था....

शारीरिक श्रम इन काम-धंधों और उद्योगों का मुख्य तत्व था और बड़े पैमाने की मशीनें तब नहीं थीं | बात यह है कि जब आदमी के पास उतनी ही जमीन होती है जितनी कि वह अपनी मेहनत से जोत सकता है तो वह दूसरे लोगों का शोषण नहीं कर सकता | हस्तशिल्पों में शोषण और दासता की गुंजाइश ही नहीं है |

बड़े पैमाने की मशीनें एक आदमी के हाथ में धन का केंद्रीकरण कर देती हैं जो बाकी लोगों पर हुकुम चलाता है और वे उसकी गुलामी करते हैं | हो सकता है कि वह अपने कारीगरों के लिए आदर्श परिस्थितियां पैदा करने का प्रयास करे, पर तब भी शोषण तो वह करता ही है जो हिंसा का ही एक रूप है |

जब मैं कहता हूं कि एक समय ऐसा था जब समाज शोषण पर नहीं बल्कि न्याय पर आधारित था तो मेरे कहने का अर्थ यह होता है कि तब सत्य और अहिंसा व्यक्तियों के ही गुण नहीं थे बल्कि पूरा समुदाय उन पर आचरण करता था | मेरी दृष्टि में, उस गुण का कोई मूल्य नहीं रह जाता जो केवल व्यक्तियों तक ही सीमित हो या उस पर आचरण करना केवल व्यक्तियों के लिए ही संभव हो | *(हरि, 1-9-1940, पृ. 271-72)*

55. आर्थिक समानता

बुद्धि और अवसर की भी असमानता हमेशा बनी रहेगी | नदी के किनारे पर रहने वाले व्यक्ति को शुष्क मरुस्थल में रहने वाले व्यक्ति की तुलना में फसल उगाने की निश्चित रूप से अधिक सुविधा है | लेकिन अगर इस तरह की असमानताएं स्पष्ट रूप से विद्यमान हैं तो बुनियादी समानताएं भी उसी प्रकार स्पष्ट परिलक्षित हैं | *(यंग, 26-3-1931, पृ. 49)*

समाज की मेरी संकल्पना

समाज की मेरी संकल्पना यह है कि यद्यपि हम समकक्ष पैदा हुए हैं अर्थात हमें बराबर अवसर पाने का अधिकार है, पर हम सबकी क्षमता एक जैसी नहीं होती | यह स्वभावतया असंभव है | उदाहरण के लिए, सबका एक जैसा कद, रंग या बुद्धि की मात्रा आदि नहीं हो सकते, इसलिए यह स्वाभाविक है कि कुछ लोगों में ज़्यादा पैसा कमाने की योग्यता होगी और कुछ में कम |

प्रतिभाशाली व्यक्ति ज़्यादा योग्य होंगे और वे अपनी योग्यता का इस्तेमाल ज़्यादा पैसा कमाने में करेंगे | यदि वे अपनी प्रतिभा का इस्तेमाल भद्रतापूर्वक करेंगे तो वे राज्य के हित में कार्य करेंगे | ऐसे लोग न्यासी बनकर ही रह सकते हैं, अन्यथा नहीं |

मैं बुद्धिमान व्यक्ति को अधिक कमाई करने का अवसर दूंगा, मैं उसकी प्रतिभा का गला नहीं घोटूंगा | लेकिन उसकी अतिरिक्त कमाई का ज़्यादा हिस्सा राज्य की भलाई के लिए इस्तेमाल किया जाना चाहिए, ठीक उसी प्रकार जैसे कि एक पिता के सभी कमाऊ लड़कों की आमदनी परिवार के साझे कोष में जाती है | ऐसे लोग केवल न्यासी के रूप में अपनी कमाई करेंगे | *(यंग, 26-11-1931, पृ. 368)*

बात यह है कि मैं सबकी हैसियत बराबर कर देना चाहता हूं | विगत शताब्दियों में श्रमिक वर्गों को अलग-थलग करके निचला दर्जा दे दिया गया है | वे शूद्र हो गए हैं, 'शूद्र' शब्द को घटिया हैसियत का बोधक मान लिया गया है | मैं बुनकर, कृषक और स्कूल अध्यापक के बच्चों में कोई भेद नहीं रहने देना चाहता | *(हरि, 15-1-1938, पृ. 416)*

असमता का निवारण

आर्थिक समानता से मेरा आशय यह नहीं है कि सब आदमियों के पास बिलकुल एक बराबर पैसा होगा | इसका आशय केवल यह है कि प्रत्येक व्यक्ति के पास अपनी जरूरतों के लायक पैसा होना चाहिए....आर्थिक समानता का वास्तविक अर्थ है 'प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार' | यही मार्क्स की परिभाषा है | अगर अकेला

आदमी भी उतने पैसे की मांग करे जितना कि चार बच्चों वाला विवाहित व्यक्ति करे तो आर्थिक समानता का उल्लंघन होगा |

उच्च वर्गों और आम जनता तथा राजा और कंगाल के बीच पाए जाने वाले विशाल अंतर को कोई यह कहकर उचित न ठहराए कि उच्च वर्गों और राजाओं की जरूरतें ज्यादा हैं | यह व्यर्थ का कुतर्क और मेरे तर्क की विडंबना होगी |

आज अमीर और गरीब के बीच जो विषमता है, उसे देखकर बेहद दुख होता है | गरीब ग्रामवासियों का....उनके ही देशवासियों – शहरों के निवासियों द्वारा शोषण किया जा रहा है | ग्रामवासी अन्न उगाता है, पर खुद भूखा है | वह दूध पैदा करता है, पर उसी के बच्चों को दूध मयस्सर नहीं है | यह शर्म की बात है |

प्रत्येक व्यक्ति को संतुलित भोजन, रहने को ठीक-ठाक मकान, अपने बच्चों की शिक्षा के लिए सुविधाएं और पर्याप्त चिकित्सा व्यवस्था उपलब्ध होनी चाहिए....

मेरी योजना के तहत राज्य का कर्तव्य होगा कि वह जनता की इच्छा को कार्यान्वित करे, यह नहीं कि जनता पर हुकुम चलाए या उससे बलपूर्वक अपनी इच्छा का पालन कराए | मैं घृणा के स्थान पर प्रेम की शक्तियों का इस्तेमाल करते हुए लोगों को अपने दृष्टिकोण से सहमत करूंगा और इस प्रकार अहिंसा के जरिए आर्थिक समानता लाऊंगा | मैं तब तक प्रतीक्षा नहीं करूंगा जब तक कि सारा समाज मेरे दृष्टिकोण से सहमत न हो जाए, बल्कि मैं तत्काल अपने से शुरुआत कर दूंगा | यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि अगर खुद मेरे ही पास पचास मोटरकारें या दस बीघा जमीन हो तो मैं देश में आर्थिक समानता लाने की आशा नहीं कर सकता | इसके लिए मुझे अपने आपको देश के निर्धनतम व्यक्ति के स्तर तक उतारना होगा | *(हरि, 31-3-1946, पृ. 63)*

सबको समान अवसर मिलने चाहिए | अवसर दिया जाए तो हर व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति की एक जैसी संभावना होती है | *(हरि, 17-11-1946, पृ. 404)*

निजी व्यक्तियों द्वारा पूंजी का संचय हिंसक तरीकों को अपनाए बिना संभव नहीं है, लेकिन किसी अहिंसक समाज में राज्य द्वारा पूंजी का संचय न केवल संभव अपितु वांछनीय तथा अपरिहार्य भी है | किसी व्यक्ति को समाज के अन्य सदस्यों की सहायता या सहयोग से भौतिक अथवा आध्यात्मिक पूंजी का संचय करके उसे अपने निजी लाभ के लिए इस्तेमाल करने का नैतिक अधिकार नहीं है | *(हरि, 16-2-1947, पृ. 25)*

आज घोर आर्थिक असमानता विद्यमान है | समाजवाद का आधार आर्थिक समानता है | अन्यायपूर्ण असमानताओं की इस वर्तमान स्थिति में जिसमें मुट्ठी भर लोग ऐश्वर्य भोग रहे हैं और आम आदमी के पास पेट भरने तक का पैसा नहीं है, रामराज्य की स्थापना नहीं की जा सकती | *(हरि, 1-6-1947, पृ. 172)*

समान वितरण का सिद्धांत

हम अपनी राष्ट्रीय शक्ति को संगठित करना चाहते हैं | यह उत्पादन की सर्वोत्तम विधि को ही नहीं, बल्कि उत्पादन और वितरण दोनों की सर्वोत्तम विधि को अपनाकर ही किया जा सकता है | *(यंग, 28-7-1920, पृ. 5)*

भारत को मुट्ठी भर लोगों के हाथों में पूंजी के केंद्रीकरण की जरूरत नहीं है, बल्कि उसके इस प्रकार वितरण की जरूरत है कि वह 1900 मील लंबे और 1500 मील चौड़े इस देश के साढ़े सात लाख गांवों को सहज प्राप्य हो सके | *(यंग, 23-3-1921, पृ. 93)*

मेरा आदर्श समान वितरण है पर जहां तक मैं देख पाता हूं, इसे हासिल करना संभव नहीं है | इसीलिए मैं न्यायोचित वितरण का प्रयास कर रहा हूं | *(यंग, 17-3-1927, पृ. 86)*

समान वितरण का वास्तविक निहितार्थ यह है कि प्रत्येक के पास अपनी सभी स्वाभाविक आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन हों और बस, इससे अधिक कुछ न हो | उदाहरण के लिए, अगर किसी आदमी का हाजमा कमजोर है और उसे अपना पेट भरने के लिए सिर्फ आधा पाव आटा चाहिए और दूसरे आदमी को आधा सेर चाहिए, तो दोनों को अपनी-अपनी जरूरतों के मुताबिक आटा उपलब्ध होना चाहिए |

नयी सामाजिक व्यवस्था

इस आदर्श स्थिति को प्राप्त करने के लिए समूची सामाजिक व्यवस्था का पुनर्निर्माण करना होगा | अहिंसा पर आधारित समाज किसी अन्य आदर्श का परिपोषण नहीं कर सकता | हम भले ही इस लक्ष्य को प्राप्त न कर पाएं, पर हमें इसे ध्यान में रखना चाहिए और इसके जितने निकट पहुंच सकें, उसके लिए निरंतर प्रयास करते रहना चाहिए |

हम जितना ही इस लक्ष्य की ओर बढ़ेंगे, हमें उतने ही अधिक संतोष और सुख की प्राप्ति होगी और उसी सीमा तक हम अहिंसक समाज की स्थापना में योगदान कर सकेंगे |

कोई भी व्यक्ति दूसरों की प्रतीक्षा किए बिना इस जीवन-पद्धति को अपना सकता है | और यदि एक व्यक्ति आचरण के किसी नियम का पालन कर सकता है तो ऐसा करना व्यक्ति-समूह के लिए भी संभव होना चाहिए | मैं इस बात पर जोर देना जरूरी समझता हूं कि सही रास्ता अपनाने के लिए मनुष्य को दूसरे लोगों की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है | लोगों को अगर यह लगता है कि किसी ध्येय को पूरी तरह प्राप्त नहीं कर सकते तो वे प्राय: उसकी ओर बढ़ने की शुरुआत करने से हिचकते हैं | मन की यह वृत्ति वस्तुत: प्रगति के मार्ग में बाधक है |

अहिंसा के जरिए

अब यह विचार करें कि अहिंसा के जरिए समान वितरण कैसे सुनिश्चित किया जा सकता है ? जिस व्यक्ति ने इस आदर्श को अपने जीवन का अंग बना लिया हो, उसे पहला कदम तो यह उठाना चाहिए कि अपने व्यक्तिगत

जीवन में आवश्यक परिवर्तन लाए | वह भारत की गरीबी को ध्यान में रखते हुए, अपनी जरूरतों में ज़्यादा-से-ज़्यादा कमी कर देगा | उसकी कमाई में बेईमानी का कोई योग नहीं होगा | वह सट्टे की इच्छा का परित्याग कर देगा | उसका निवास उसकी नयी जीवन-पद्धति को प्रतिबिंबित करेगा | वह जीवन के हर क्षेत्र में आत्मसंयम से काम लेगा | जब वह अपने जीवन में ये सभी परिवर्तन ले आएगा तब वह इस योग्य बनेगा कि अपने साथियों और पड़ोसियों के बीच अपने आदर्श का प्रचार कर सके |

सच पूछा जाए तो समान वितरण के सिद्धांत की जड़ में धनवानों की अपनी अनावश्यक धन-संपत्ति की न्यासिता का सिद्धांत होना जरूरी है, क्योंकि इस सिद्धांत के अनुसार उनके पास अपने पड़ोसियों की तुलना में एक रुपया भी ज़्यादा नहीं होना चाहिए |

इसे किस तरह किया जाए ? अहिंसक उपायों से या धनी लोगों से उनकी दौलत छीनकर ? ऐसा करने के लिए तो स्वभावतया हमें हिंसा का सहारा लेना होगा | और, हिंसक कार्रवाई से तो समाज का हित नहीं होगा | इससे तो समाज की हानि ही होगी, क्योंकि वह ऐसे आदमी की योग्यता से वंचित हो जाएगा जिसे धन का संचय करना आता है | इसलिए अहिंसक उपाय निश्चित रूप से बेहतर है | धनवान को अपनी संपत्ति अपने अधिकार में रखने की छूट होगी, पर वह उसमें से उतनी का ही इस्तेमाल करेगा जितनी उसकी निजी आवश्यकताओं के लिए जरूरी है और शेष के लिए वह न्यासी के रूप में काम करेगा और उसका इस्तेमाल समाज के हित के लिए करेगा | इसमें हम यह मान कर चले हैं कि न्यासी ईमानदारी से काम करेगा |

मानव प्रकृति में परिवर्तन

ज्यों ही मनुष्य स्वयं को समाज का सेवक मानने लगता है, समाज के लिए ही कमाता है और उसी के हितार्थ व्यय करता है, उसकी कमाई में शुद्धता का प्रवेश होने लगता है और उसका उपक्रम अहिंसा से युक्त हो जाता है | इसके अलावा, अगर लोगों के दिमाग इस जीवन-पद्धति की ओर मुड़ने लगेंगे तो समाज में कटुता उत्पन्न हुए बगैर एक शांतिपूर्ण क्रांति हो जाएगी |

यह पूछा जा सकता है कि क्या इतिहास में इसका उल्लेख है कि मानव प्रकृति में कभी इस तरह का परिवर्तन आया हो ? व्यक्तियों के जीवन में तो ऐसे परिवर्तन निश्चित रूप से हुए हैं | लेकिन समूचे समाज में ऐसा हुआ हो, इसके उदाहरण शायद न मिलें | लेकिन इसका कारण यही है कि अहिंसा को लेकर बड़े पैमाने पर अभी तक कभी प्रयोग नहीं किया गया है |

अहिंसा पर अमल

पता नहीं कैसे हमारे मन में यह गलत बात बैठ गई है कि अहिंसा मुख्यतया व्यक्ति का हथियार है और इसलिए उसका प्रयोग व्यक्ति तक ही सीमित रखा जाना चाहिए | पर वास्तव में ऐसा है नहीं | अहिंसा निश्चित रूप से समाज का गुण है | लोगों को इसी सत्य की प्रतीति कराने के लिए मैं प्रयास और प्रयोग कर रहा हूं |

आश्चर्यों के इस युग में यह कोई नहीं कह सकता कि कोई वस्तु या विचार इसलिए बेकार है कि वह नया है | यह कहना भी आज के युग की भावना के अनुकूल नहीं है कि यह इसलिए असंभव है क्योंकि इसे प्राप्त करना कठिन है | जिन चीज़ों की स्वप्न में भी कल्पना नहीं की जा सकती थी, वे रोज सामने आ रही हैं; असंभव बातें बराबर संभव होती जा रही हैं | हिंसा के क्षेत्र में आजकल ऐसी-ऐसी विस्मयकारी खोजें हो रही हैं जिनके बारे में जानकर हमें चकित होना पड़ता है | मेरा कहना है कि अहिंसा के क्षेत्र में भी अकल्पनीय और असंभव लगने वाली खोजें होंगी | धर्म का इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है....

लेकिन अधिकतम प्रयास के बावजूद अगर धनवान सही अर्थों में गरीबों के अभिभावक बनने को तैयार नहीं होते और गरीबों को अधिकाधिक कुचला जाता है और वे भुखमरी के शिकार बनते हैं तो क्या करना होगा ? इस पहेली को सुलझाने की कोशिश करते-करते मुझे दो सही और अचूक उपाय सूझे हैं और ये हैं अहिंसक असहयोग तथा सविनय अवज्ञा | धनी लोग समाज के गरीबों के सहयोग के बिना धन-संपत्ति का संचय नहीं कर सकते |

आदमी शुरू से ही हिंसा से परिचित है, क्योंकि उसने यह शक्ति अपने भीतर बैठे पशु से विरासत में पाई है | अहिंसा का ज्ञान उसकी आत्मा में तभी जगा जब वह चौपाए (पशु) से दुपाया (मनुष्य) बना | उसके भीतर इस ज्ञान का विकास धीरे-धीरे पर निश्चित रूप से हुआ है | अगर यह ज्ञान गरीबों के जीवन में प्रवेश करके उनके बीच प्रसार पा जाए तो वे मजबूत बन जाएंगे और अहिंसा के जरिए स्वयं को उन भयंकर असमानताओं से मुक्त करा सकेंगे जिन्होंने उनको भुखमरी के कगार पर ला खड़ा किया है | *(हरि, 25-8-1940, पृ. 260-61)*

11. ब्रह्मचर्य

56. ब्रह्मचर्य का दिव्य संदेश

आत्मसंयम

मानव समाज एक अविरत संवृद्धि है; आध्यात्मिक दृष्टि से कहें तो क्रमश: विकसित होने की प्रक्रिया है | अगर ऐसा है तो यह निश्चित रूप से देह की आवश्यकताओं को अधिकाधिक संयमित करने पर आधारित होना चाहिए | तदनुसार विवाह को एक ऐसा संस्कार मानना चाहिए जो पति-पत्नी को अनुशासित करता है, उन्हें केवल आपस में ही शरीर-संबंध रखने के लिए प्रतिबाधित करता है और वह भी केवल संतानोत्पत्ति के लिए और तब जबकि पति-पत्नी दोनों उसके लिए इच्छुक और तैयार हों |*(यंग, 16-9-1926, पृ. 324)*

पशु और मनुष्य के बीच मुख्य अंतर यही है कि मनुष्य होश संभालते ही सतत आत्मसंयम का जीवन जीना शुरू कर देता है | ईश्वर ने मनुष्य को यह बुद्धि दी है कि वह अपनी मां, अपनी बेटी और अपनी पत्नी के बीच भेद कर सके| *(विगांसी, पृ. 84)*

ब्रह्मचर्य की आवश्यकता

अगर हम स्त्री-पुरुषों के परस्पर संबंधों को स्वस्थ और शुद्ध दृष्टि से देखने लगें और स्वयं को भावी पीढ़ियों के नैतिक कल्याण का न्यासी समझने लगें तो आज के अनेक दुखों को दूर किया जा सकता है | *(यंग, 27-9-1928, पृ. 324)*

ब्रह्मचर्य के बिना मुझे जीवन फीका और पशुवत प्रतीत होता है | पशु स्वभाव से ही आत्मसंयम नहीं जानता | मनुष्य इसीलिए मनुष्य है कि वह जितना चाहे उतना आत्मसंयम बरतने में समर्थ है | जो पहले मुझे अपनी धार्मिक पुस्तकों में ब्रह्मचर्य की अतिरेकी प्रशंसा प्रतीत होती थी, वही आज अधिकाधिक स्पष्टता के साथ, पूर्णत: उचित और अनुभवाश्रित लगती है | *(ए, पृ. 234)*

मेरी पक्की धारणा है कि आध्यात्मिक पूर्णता की प्राप्ति के लिए जीवन में मनसा, वाचा, कर्मणा पूर्ण आत्मनिग्रह का होना आवश्यक है | और जिस राष्ट्र में ऐसे लोग नहीं हैं, वह इस अभाव की वजह से दरिद्रतर राष्ट्र है | *(यंग, 13-10-1920, पृ. 3)*

ईश्वर में आस्था

मैं यह मानता हूं कि निग्रह के नियम का पालन तब तक असंभव है जब तक कि मनुष्य को ईश्वर में, जो जीवंत सत्य है, जीवंत आस्था न हो | आजकल ईश्वर के अस्तित्व को पूरी तरह नकारने और इस बात पर बल देने का फैशन है कि जीवन के उच्चतम स्तर की उपलब्धि के लिए जीवंत ईश्वर में जीवंत आस्था का होना जरूरी नहीं है | मैं इस बात को स्वीकार करता हूं कि जिन लोगों को अपने से अत्यंत उच्च किसी शक्ति में आस्था नहीं है और

जिन्हें उसकी आवश्यकता महसूस नहीं होती, उनसे इस नियम की सत्यता को मनवाने का सामर्थ्य मुझमें नहीं है | मेरे निजी अनुभव ने मुझे यह ज्ञान दिया है कि संपूर्ण ब्रह्मांड को संचालित करने वाले जीवंत नियम में अडिग आस्था रखे बगैर जीवन की पूर्णता को प्राप्त नहीं किया जा सकता | *(हरि, 25-4-1936, पृ. 84)*

उस जीवंत बल को जिसे हम ईश्वर कहते हैं....जानने का उपाय यह है कि हम उस नियम को जानें और उसका अनुगमन करें जिससे हमें अपने अंदर ईश्वर की उपस्थिति का बोध होता है | लेकिन यह स्वत: स्पष्ट है कि ईश्वरीय नियम को जानने के लिए कठिन परिश्रम करना पड़ता है | इस नियम को, एक शब्द में, 'ब्रह्मचर्य' कहा जा सकता है | ब्रह्मचर्य के पालन का सबसे सीधा रास्ता रामनाम है | *(हरि, 22-6-1947, पृ. 200)*

सही अर्थ

ब्रह्मचर्य का पूरा और सही अर्थ है ब्रह्म की खोज | ब्रह्म प्रत्येक जीव में व्याप्त है, इसलिए इसे अपनी अंतरात्मा में गोता लगाकर और उसकी सिद्धि के द्वारा खोजा जा सकता है | अंतरात्मा की सिद्धि इंद्रियों पर पूरा नियंत्रण पाए बिना संभव नहीं है | इस प्रकार, ब्रह्मचर्य का अर्थ हुआ अपनी सभी इंद्रियों पर सदैव एवं सर्वत्र मनसा, वाचा, कर्मणा नियंत्रण |

ब्रह्मचर्य का पूरी तरह पालन करने वाले स्त्री-पुरुष मनोवेगों से पूर्णतया मुक्त होते हैं | ऐसे व्यक्ति ईश्वर के सान्निध्य में निवास करते हैं, वे ईश-तुल्य होते हैं | मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि ऐसे ब्रह्मचर्य का मनसा, वाचा, कर्मणा पूरी तरह पालन करना संभव है | *(यंग, 5-6-1924, पृ. 186)*

ब्रह्मचर्य क्या है ? यह ऐसी जीवन-पद्धति है जो हमें ब्रह्म (ईश्वर) से मिलाती है | इसमें प्रजनन-क्रिया पर पूरा नियंत्रण सम्मिलित है | यह नियंत्रण मनसा, वाचा, कर्मणा होना चाहिए | यदि मन पर नियंत्रण न हो तो वाणी और कर्म पर नियंत्रण पाने का कोई मूल्य नहीं है | हिंदुस्तानी में एक कहावत है : "जिसका हृदय शुद्ध है, उसके घर गंगा का सर्वपवित्रकारी जल निवास करता है |" बात यह है कि जिसका मन पर नियंत्रण है उसके लिए बाकी सब कुछ मात्र बच्चों का खेल है | मेरी धारणा का ब्रह्मचारी स्वस्थ होगा और सहज दीर्घजीवी होगा | उसे कभी सिरदर्द तक नहीं होगा | मानसिक और शारीरिक श्रम से उसे थकान नहीं होगी | वह सदा तेजस्वी दिखाई देगा, आलस्य उसके पास भी नहीं फटकेगा | उसकी बाह्य स्वच्छता उसकी आंतरिक स्वच्छता को पूर्णतया प्रतिबिंबित करेगी | गीता में स्थितप्रज्ञ के जो गुण बताए गए हैं, उसमें वे सभी दिखाई देंगे | कोई चिंता नहीं अगर एक भी व्यक्ति ऐसा दिखाई न देता हो जो इस प्रकार के गुणों से युक्त हो |

क्या यह आश्चर्य का विषय है कि जो व्यक्ति मानव के सृजन में समर्थ वीर्य की पूर्णतया रक्षा करके ऊर्ध्वरेता बन गया है, उसमें ऊपर बताए गए सभी गुण दिखाई देते हैं ? उस ऊर्ध्वगामी वीर्य की सृजनात्मक शक्ति को कौन माप सकता है जिसकी मात्र एक बूंद मानव जीवन की सृष्टि करने में समर्थ है ? *(हरि, 8-6-1947, पृ. 180)*

परिभाषा

जब तक मन पूर्णतया इच्छाशक्ति के वश में नहीं हो जाता तब तक पूर्ण ब्रह्मचर्य की प्राप्ति संभव नहीं है | अनैच्छिक विचार मन की एक प्रवृत्ति है, इसलिए विचार पर नियंत्रण पाने का मतलब है मन को नियंत्रित करना जो वायु को नियंत्रित करने से भी अधिक कठिन है | फिर भी, अंत:करण में ईश्वर का अस्तित्व मन को नियंत्रित करना भी संभव बना देता है | कोई यह न समझे कि चूंकि यह कठिन है इसलिए यह असंभव है | यह उच्चतम लक्ष्य है, अत: इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है कि उसकी प्राप्ति के लिए प्रयास भी अधिकतम करना पड़ता है| *(ए, पृ. 153)*

मन

अन्य नियमों की भांति ब्रह्मचर्य का पालन भी मनसा, वाचा, कर्मणा किया जाना चाहिए | गीता में बताया गया है, और अनुभव इस कथन की पुष्टि करता है, कि जिसने प्रकट रूप में अपनी देह पर नियंत्रण पा लिया है पर मन में कुविचारों को पालता रहता है, उसकी साधना व्यर्थ है | अगर मन इधर-उधर भटक रहा है तो देह का दमन करना हानिकारक सिद्ध हो सकता है | जिधर मन जा रहा है, उधर देह भी देर-सवेर जाएगी ही....

....मन को कलुषित विचार पालने देना और बात है और हमारे प्रयासों के बावजूद मन का उनमें भटकना बिलकुल दूसरी बात है | अगर हम मन की कलुषित भटकनों के साथ असहयोग करने लगें तो अंत में हम विजयी होंगे | *(फ्रायम, पृ, 12-13)*

आंतरिक दशा

ब्रह्मचर्य एक मानसिक दशा है | मनुष्य का बाह्य आचरण उसकी आंतरिक दशा का तत्काल पता और प्रमाण देता है | जिसने अपनी कामवासना को मार दिया है, वह किसी भी रूप में कभी उसका दोषी नहीं पाया जा सकता | कितनी भी सुंदर स्त्री हो, पर वह उस व्यक्ति को आकर्षित नहीं कर पाएगी जिसमें कामवासना है ही नहीं | यह बात स्त्री पर भी लागू होती है....

ब्रह्मचर्य ऐसा गुण नहीं है जिसका विकास बाह्य निग्रहों से किया जा सके | जो व्यक्ति स्त्री के अपरिहार्य संपर्क से भी दूर भागता है, वह ब्रह्मचर्य के संपूर्ण अर्थ को नहीं समझता....

सच्चा ब्रह्मचारी झूठे निग्रहों से दूर रहेगा | उसे अपनी सीमाओं को ध्यान में रखते हुए अपने बचाव की विधियां स्वयं ही निर्धारित करनी होंगी और जैसे-जैसे वे अनावश्यक लगती जाएं, उन्हें छोड़ते जाना होगा | पहली चीज़ तो यह है कि आदमी यह जाने कि सच्चा ब्रह्मचर्य क्या है, फिर उसका मूल्य पहचाने और अंत में, इस अमूल्य गुण को विकसित करने का प्रयास करे | मेरी धारणा है कि इस देश की सच्ची सेवा करने के लिए ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक है | *(हरि, 15-6-1947, पृ. 192)*

इंद्रियों का नियंत्रण

....लोग यह समझते रहे हैं कि कामवासना पर नियंत्रण पाना ही ब्रह्मचर्य का पालन है | मैं समझता हूं कि यह धारणा अधूरी और गलत है | ब्रह्मचर्य का अर्थ है सभी इंद्रियों का नियंत्रण | जो केवल एक इंद्रिय को नियंत्रित करने का प्रयास करता है और शेष को मनमानी करने देता है, वह निश्चित ही अपने प्रयास में असफल हो जाएगा|

कानों से अश्लील कहानियां सुनना, आंखों से अश्लील दृश्य देखना, उत्तेजक भोजन करना, हाथ से उत्तेजक चीज़ें छूना और फिर भी, बाकी बची एक इंद्रिय का नियंत्रण करने में सफल होने की आशा करना वैसा ही है जैसा आग में हाथ डालकर जलने से बचने की कोशिश करना | इसलिए जो उस एक इंद्रिय पर नियंत्रण पाने का संकल्प करता है, उसे शेष सभी को नियंत्रित करने का भी दृढ़ संकल्प लेना होगा |

मैंने सदा यह अनुभव किया है कि ब्रह्मचर्य की संकुचित परिभाषा से बड़ी हानि हुई है | यदि हम सभी दिशाओं में एक साथ नियंत्रण करने का प्रयास करें तो वह ज़्यादा वैज्ञानिक तरीका होगा और उसकी सफलता की संभावना ज़्यादा होगी | रसनेंद्रिय का नियंत्रण कदाचित सबसे कठिन है | *(फ्रायम, पृ. 13-14)*

स्थितप्रज्ञ

स्थितप्रज्ञ के लक्षण....क्या हैं ? स्थितप्रज्ञ वह है जो अपनी इंद्रियों को इंद्रियों के विषयों से समेटकर उन्हें उसी प्रकार अपनी आत्मा की ढाल के पीछे कर लेता है जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को अपने अंदर समेट लेता है | जिसकी बुद्धि स्थिर नहीं है, वह क्रोध, कुविचारों अथवा अपशब्दों का शिकार हो सकता है | इसके विपरीत, स्थिर बुद्धि का व्यक्ति प्रशंसा अथवा अपशब्दों से समान रूप से अप्रभावित रहता है | वह जानता है कि अपशब्द उस जिह्वा को ही कलुषित करते हैं जो उन्हें निकालती है, उसे कभी नहीं जिसके विरुद्ध वे कहे जाते हैं | इसलिए स्थिर बुद्धि वाला व्यक्ति कभी किसी की बुराई नहीं चाहेगा और अपनी अंतिम श्वास तक अपने शत्रु के लिए भी प्रार्थना करेगा | *(हरि, 28-4-1946, पृ. 110-11)*

मेरा ब्रह्मचर्य

मेरे लिए तो कायिक ब्रह्मचर्य का पालन भी बड़ा कठिन सिद्ध हुआ है | आज मैं कह सकता हूं कि मैं स्वयं को काफी सुरक्षित अनुभव करता हूं, लेकिन मुझे अभी अपने विचारों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करना है, जो बड़ा आवश्यक है | ऐसा नहीं है कि मेरे अंदर इच्छा अथवा प्रयास की कमी है, पर मैं अब तक यह नहीं जान सका हूं कि अवांछनीय विचार कहां से आकर हम पर चढ़ाई कर देते हैं |

मुझे इसमें संदेह नहीं है कि अवांछनीय विचारों को निवारित करने का भी कोई उपाय अवश्य है, पर यह प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं ढूंढना पड़ता है | संतों और ऋषियों ने हमारे लिए अपने अनुभव तो छोड़े हैं, पर उन्होंने कोई

अचूक और सार्वभौम उपचार नहीं बताया है | बात यह है कि पूर्णता अर्थात त्रुटिरहित होने की स्थिति केवल प्रभुकृपा से प्राप्त होती है और इसीलिए भगवत्प्राप्ति का प्रयास करने वाले ऋषि अपनी तपश्चर्या से पुनीत करके रामनाम जैसे मंत्र हमारे लिए छोड़ गए हैं |

अपने को पूरी तरह ईश्वरार्पण किए बिना विचारों पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त करना असंभव है | प्रत्येक महान धर्मग्रंथ का यही उपदेश है और पूर्ण ब्रह्मचर्य के लिए प्रयास करते हुए मैं प्रतिक्षण इसकी सत्यता का अनुभव कर रहा हूं| *(ए, पृ. 234)*

सक्रिय जीवन के बीच रहते हुए मैंने पिछले तीस से अधिक वर्षों से पर्याप्त सफलता के साथ ब्रह्मचर्य का पालन किया है | ब्रह्मचारी का जीवन जीने का निर्णय लेने के उपरांत अपनी पत्नी के प्रति मेरे आचरण को छोड़कर, मेरे बाह्य आचरण में शायद ही कोई अंतर आया हो....

मेरा ब्रह्मचर्य किताबों से लिया गया नहीं है | मैंने अपने और, मेरे आग्रह पर, इस प्रयोग में सम्मिलित होने वाले अपने साथियों के लिए मार्गदर्शक नियम स्वयं बनाए | न सिर्फ यह कि मैंने पूर्वनिर्धारित नियमों को नहीं माना है, बल्कि मैंने इस कथन को भी नकार दिया है कि स्त्री सभी बुराइयों और प्रलोभनों की जड़ है, हालांकि इसका उल्लेख धार्मिक पुस्तकों तक में है | बात यह है कि मेरे अंदर जो भी अच्छाई है, उसका श्रेय मैं अपनी मां को ही देता हूं | मैंने स्त्री को कभी वासना की तृप्ति का साधन नहीं माना, बल्कि अपनी मां के समान ही पूज्य माना है | पुरुष ही प्रलोभन देता है, पुरुष ही आक्रामक है | स्त्री का स्पर्श पुरुष को भ्रष्ट नहीं करता, पुरुष प्राय: स्वयं ही इतना अपवित्र होता है कि स्त्री का स्पर्श करने योग्य नहीं रह जाता....

मैं प्रयोगरत हूं | मैंने यह दावा कभी नहीं किया कि मैं अपनी परिभाषा के अनुसार पूर्ण ब्रह्मचर्य की प्राप्ति कर चुका हूं | मुझे अपने विचारों पर उतना नियंत्रण प्राप्त नहीं हो सका है जितना अहिंसा से संबंधित मेरे अनुसंधानों के लिए आवश्यक है | यदि मेरी अहिंसा को संसर्गज और संक्रामक बनना है तो मुझे अपने विचारों पर अपेक्षाकृत अधिक नियंत्रण प्राप्त करना होगा | *(हरि, 23-7-1938, पृ. 193)*

जिस दिन से मैंने ब्रह्मचर्य की शुरुआत की, हम स्वतंत्र होने लगे | मेरी पत्नी एक स्वतंत्र स्त्री बन गई, उसके स्वामी के रूप में मैं उस पर जो अधिकार चलाता था उससे वह मुक्त हो गई और मैं अपनी उस भूख की गुलामी से छुटकारा पा गया जिसकी तृप्ति का साधन वह थी | किसी अन्य स्त्री के प्रति मेरे मन में उस तरह का आकर्षण नहीं था जैसा कि अपनी पत्नी के प्रति था | मैं अपनी पत्नी के प्रति इतना नैष्ठिक था और अपनी मां के सामने किए गए प्रण से इतना बंधा था कि मैं किसी अन्य स्त्री का दास नहीं बन सकता था | लेकिन मेरा ब्रह्मचर्य जिस रूप में मुझे मिला, उससे मैं स्त्री को मनुष्य की मां समझते हुए उसकी ओर अवश होकर खिंचता चला गया | वह मेरे

लिए इतनी पवित्र हो गई कि भोग की वस्तु कदापि नहीं बन सकती थी | और इस प्रकार, हर स्त्री तत्काल मेरे लिए मेरी बहिन अथवा बेटी बन गई | *(हरि, 4-11-1939, पृ. 326)*

अगर मैं स्त्रियों के प्रति यौनाकर्षण का अनुभव करता तो मुझमें इतना साहस था कि, इस उम्र में भी, बहुविवाह करने से न चूकता | मुझे स्वच्छंद प्रेम – वह प्रकट हो अथवा गुप्त – में विश्वास नहीं है | स्वच्छंद और प्रकट प्रेम को मैं कुत्तों की वासना का दर्जा देता हूं | और गुप्त भोग तो, उसके अलावा, कायरतापूर्ण भी है | *(वही)*

57. विवाह का आदर्श

विवाह का आदर्श है शारीरिक सम्मिलन के माध्यम से आध्यात्मिक सम्मिलन की प्राप्ति | विवाह के फलस्वरूप जिस मानव प्रेम की अवतारणा होती है, वह दिव्य अथवा सार्वभौम प्रेम तक पहुंचने की एक सीढ़ी है | *(यंग, 21-5-1931, पृ. 115)*

पूर्ण त्याग अर्थात पूर्ण ब्रह्मचर्य एक आदर्श स्थिति है | यदि आपमें उसे हासिल कर सकने का साहस नहीं है तो विवाह अवश्य कीजिए, पर कम-से-कम आत्मनियंत्रण से तो रहिए | *(हरि, 7-9-1935, पृ. 234)*

पूर्ण ब्रह्मचर्य अथवा विवाहित ब्रह्मचर्य उनके लिए है जो आध्यात्मिक अर्थात उच्चतर जीवन जीने के आकांक्षी हों; इस तरह के जीवन के लिए ब्रह्मचर्य का पालन अनिवार्य शर्त है | *(हरि, 5-6-1937, पृ. 134)*

विवाह जीवन की एक स्वाभाविक चीज़ है और इसे किसी भी अर्थ में अपकर्षकारी समझना बिलकुल गलत है....आदर्श स्थिति यह है कि विवाह को एक पवित्र संबंध माना जाए और विवाहित अवस्था में आत्मसंयम के साथ जीवन व्यतीत किया जाए | *(हरि, 22-3-1942, पृ. 38)*

कामवासना की तुष्टि के लिए किया गया विवाह, विवाह नहीं है | वह व्यभिचार है |[23] *(हरि, 24-4-1937, पृ. 82)*

मनु ने पहली संतान को धर्मज कहा है – धर्मज अर्थात कर्तव्य के निर्वाह के लिए उत्पन्न की गई संतान; और उसके बाद की संतानों को कामज – अर्थात वासना से उत्पन्न | संक्षेप में, यही यौन संबंधों का नियम है | और ईश्वर यदि नियम नहीं तो और क्या है ? ईश्वर की आज्ञा का पालन नियम का पालन ही है | *(वही, पृ. 83)*

कामवासना की तुष्टि के लिए किया गया संभोग पशुत्व की ओर प्रत्यावर्तन है, अत: मनुष्य को इससे ऊपर उठने का प्रयास करना चाहिए | लेकिन पति-पत्नी यदि ऐसा करने में असफल हो जाएं तो इसे पाप अथवा कलंक का विषय नहीं माना जा सकता | दुनिया में करोड़ों लोग अपनी रसना की तुष्टि के लिए खाते हैं; इसी प्रकार, करोड़ों पति-पत्नी अपनी वासना की तुष्टि के लिए संभोग करते हैं और करते रहेंगे जिसके लिए वे असंख्य विपत्तियों के रूप में कठोर दंड के भागी होते रहेंगे जो प्रकृति अपनी व्यवस्था का किसी भी प्रकार से उल्लंघन करने वालों को देती है | *(हरि, 5-6-1937, पृ. 134)*

पति-पत्नी के बीच का निष्कलंक प्रेम मनुष्य को जिस प्रकार ईश्वर के निकट ले जाता है, उस प्रकार कोई और प्रेम नहीं ले जा सकता | जब इस निष्कलंक प्रेम में कामासक्ति आ मिलती है तो यह हमें अपने ईश्वर से दूर ले जाती है | इसलिए यह प्रश्न विचारणीय है कि अगर कोई काम-चेतना और काम-संबंध न हो तो क्या तब भी विवाह की आवश्यकता है ? *(हरि, 19-10-1947, पृ. 374)*

विवाह का ध्येय

जो विवाह संयुक्त रूप से सेवा करने के लिए किए जाते हैं, उनकी अपनी अच्छाइयां हैं | जो विवाह आत्मतुष्टि के लिए किए जाते हैं, वे बिलकुल व्यर्थ हैं | *(हरि, 19-5-1946, पृ. 133)*

विवाह का सच्चा उद्देश्य पुरुष और स्त्री के बीच घनिष्ठ मित्रता और सहचारिता स्थापित करना है | इसमें कामवासना की तुष्टि के लिए कोई स्थान नहीं है | वह विवाह विवाह नहीं है जो कामेच्छा की तुष्टि के लिए किया गया हो | कामेच्छा की तुष्टि सच्ची मित्रता का खंडन है | *(हरि, 7-7-1946, पृ. 214)*

मैं अंग्रेजों के बीच संपन्न ऐसे विवाहों के विषय में जानता हूं जो सहचारिता और परस्पर सेवा की खातिर किए गए थे | यदि मेरे विवाहित जीवन की चर्चा को अप्रासंगिक न माना जाए तो मैं यह बताना चाहूंगा कि मैंने और मेरी पत्नी ने विवाहित जीवन की सच्ची खुशी का स्वाद तभी चखा जब हमने यौन संबंधों का त्याग कर दिया, और वह भी भरी जवानी में | तभी जाकर हमारी सहचारिता के फूल खिले और हम दोनों भारत तथा व्यापक मानवता की सच्ची सेवा करने योग्य बन सके....सच पूछा जाए तो हममें आत्मत्याग की यह भावना सेवा करने की हमारी उत्कट इच्छा के कारण ही उत्पन्न हुई थी |

यह सही है कि असंख्य विवाह सामान्य रूप से होते हैं और होते रहेंगे | इनमें विवाह के भौतिक पक्ष को अधिक प्रधानता दी जाती है |

असंख्य व्यक्ति अपनी रसना की तुष्टि के लिए खाते हैं, पर इस कारण यह मनुष्य का कर्तव्य तो नहीं हो जाता | बहुत थोड़े लोग जीवित रहने के लिए खाते हैं, पर वे ही हैं जो सचमुच भोजन के नियम को जानते हैं | इसी प्रकार, उन्हीं लोगों का विवाह सच्चा है जो विवाह-बंधन की शुद्धता और पवित्रता का अनुभव करने और उसमें निहित देवत्व की प्राप्ति के लिए विवाह करते हैं | *(वही)*

वैवाहिक संबंध

पत्नी पति की क्रीतदासी नहीं है अपितु उसकी सहचरी और सहायिका है और उसकी खुशियों और गमों में बराबर की हिस्सेदार है – वह अपना रास्ता चुनने के लिए उतनी ही स्वतंत्र है जितना कि पति | *(ए, पृ. 18)*

मेरी दृष्टि में, विवाहित अवस्था उसी प्रकार अनुशासन की एक अवस्था है जैसे कि कोई अन्य अवस्था हो सकती है | जीवन एक कर्तव्य है, एक परिवीक्षाकाल है | विवाहित जीवन का उद्देश्य इस जन्म में और उसके बाद भी, परस्पर हित को बढ़ावा देना है | इसका उद्देश्य मानवता की सेवा भी है |

यदि एक साथी अनुशासन को तोड़े तो दूसरे को विवाह-बंधन को तोड़ने का हक पहुंचता है | यहां 'तोड़ना' नैतिक अर्थ में है, भौतिक अर्थ में नहीं | इसमें तलाक का स्थान नहीं है | पति या पत्नी उस ध्येय की पूर्ति के लिए अलग होंगे जिसके लिए वे विवाह-बंधन में बंधे थे |

हिंदू धर्म सबको बिलकुल एक बराबर मानता है | इसमें संदेह नहीं कि व्यवहार में जाने कब से कुछ और बात पैदा हो गई है | और भी बहुत-सी बुराइयां चुपचाप घुस आई हैं | पर मैं एक बात जानता हूं – हिंदू धर्म प्रत्येक व्यक्ति को आत्मसिद्धि के लिए, जो उसके जीवन का एकमात्र प्रयोजन है, जो वह चाहे, उसे करने की पूरी-पूरी छूट देता है | *(यंग, 21-10-1926, पृ. 365)*

मैं सीता को आदर्श पत्नी मानता हूं और राम को आदर्श पति | लेकिन सीता राम की दासी नहीं थी | या यह भी कहा जा सकता है कि दोनों एक-दूसरे के दास थे | राम सदा सीता का लिहाज करते थे | *(वही, पृ. 364)*

तुम्हें अपनी पत्नी के सम्मान की रक्षा करनी चाहिए और स्वयं को उसका स्वामी न मानकर मित्र मानना चाहिए | तुम्हें उसके शरीर और उसकी आत्मा को उसी प्रकार पवित्र मानना चाहिए जिस प्रकार मेरा विश्वास है कि वह तुम्हारे शरीर और तुम्हारी आत्मा को मानती है | इसके लिए तुम्हें भक्तिमय श्रम, सादगी और आत्मसंयम का जीवन जीना होगा | तुममें से कोई भी दूसरे को अपनी वासना का पात्र न समझे | *(यंग, 2-2-1928, पृ. 35)*

मैं मानता हूं कि पति-पत्नी के बीच कोई बात गुप्त नहीं रहनी चाहिए | मेरी धारणा है कि पति-पत्नी को एक-दूसरे में विलीन हो जाना चाहिए | वे एक आत्मा और दो शरीर होकर रहें | *(हरि, 9-3-1940, पृ. 30)*

जबरन विवाह

माता-पिताओं का अपनी बेटियों का जबरन विवाह करना सरासर गलत है | उनका अपनी बेटियों को जीविकोपार्जन के योग्य न बनाना भी गलत है | किसी पिता को इस बात का अधिकार नहीं है कि बेटी द्वारा विवाह के लिए इंकार कर देने पर उसे घर से निकाल दे | *(हरि, 15-9-1946, पृ. 311-12)*

सिविल विवाह

मुझे सिविल विवाहों में विश्वास नहीं है लेकिन सुधार की खातिर, सिविल विवाह की संस्था को एक जरूरी सुधार मानकर मैं इसका स्वागत करता हूं |*(हरि, 16-3-1947, पृ. 68)*

58. बच्चे

यदि मैं भारत के, और भारत ही क्यों बल्कि मेरी शक्ति हो तो समूचे संसार के, निम्नतम व्यक्ति की व्यथा के साथ तादात्म्य स्थापित करना चाहूं तो मुझे उन बच्चों के दोषों के साथ तादात्म्य करना चाहिए जो मेरी देखरेख में हैं | परम विनम्रता के साथ ऐसा करते हुए मुझे आशा है कि मैं किसी दिन ईश्वर – अर्थात सत्य – का साक्षात्कार कर सकूंगा| *(यंग, 3-12-1925, पृ. 422)*

चरित्र

बच्चों को विरासत में अपने माता-पिता का रंग-रूप ही नहीं मिलता, उनके गुण भी मिलते हैं | वातावरण की भूमिका भी महत्वपूर्ण है किंतु बच्चा अपना जीवन जिस मूल पूंजी को लेकर आरंभ करता है, वह उसे अपने पूर्वजों से विरासत में मिली होती है | मैंने बहुत-से बच्चों को अपनी दोषयुक्त विरासत के प्रभाव पर सफलतापूर्वक काबू पाते हुए देखा है | लेकिन इसका श्रेय उस शुद्धता को है जो आत्मा का सहज गुण है | *(ए, पृ. 230)*

ऐसा नहीं है कि रूई में लिपटे बच्चे सदा ही प्रलोभन अथवा संक्रमण से मुक्त रहते हों | *(वही, पृ. 252)*

कोई पिता अपने सभी बच्चों को यदि कोई वास्तविक संपत्ति बराबर-बराबर हस्तांतरित कर सकता है तो वह है उसका चरित्र और शैक्षिक सुविधाएं | माता-पिता को चाहिए कि अपने बच्चों को आत्मनिर्भर बनाएं ताकि वे शारीरिक श्रम के द्वारा ईमानदारी से जीविकोपार्जन के योग्य बन सकें | *(यंग, 17-10-1929, पृ. 340)*

बच्चों के लिए सबक

मुझे पूरी विनम्रता के साथ इस सच्चाई को मानना होगा कि मैं अपने अस्तित्व के प्रत्येक तंतु में प्रेम की झलक पैदा करने का प्रयास करता हूं, भले ही मैं इसे कितने ही तटस्थ भाव से करूं | मैं अपने सिरजनहार की, जो सत्य स्वरूप है, उपस्थिति का अनुभव करने के लिए अधीर हूं, और मैंने अपने जीवन के आरंभिक वर्षों में ही जान लिया था कि अगर मुझे सत्य को पाना है तो मुझे अपनी जान की परवाह न करते हुए प्रेम के नियम का पालन करना चाहिए | प्रभुकृपा से जब मुझे संतान की प्राप्ति हुई तो मैंने पाया कि प्रेम के नियम को छोटे बच्चों के द्वारा ही सबसे अच्छी तरह समझा और सीखा जा सकता है |

मैं निर्विवाद रूप से इसमें विश्वास करता हूं कि कोई बच्चा बदमाशी की वृत्ति लेकर पैदा नहीं होता | यदि बच्चे के जन्म से पहले और उसके उपरांत, जब वह बढ़ रहा हो, उसके माता-पिता उसके साथ ठीक से व्यवहार करें तो यह सुविदित तथ्य है कि बच्चा सहज रूप से सत्य के नियम और प्रेम के नियम का पालन करने लगेगा | अपने जीवन के आरंभिक वर्षों में जब मैंने यह सबक सीखा तो जीवन में धीरे-धीरे किंतु एक निश्चित परिवर्तन आने लगा....

विश्वास कीजिए, मैं सैकड़ों नहीं हजरों बच्चों के निजी अनुभव के आधार पर कह रहा हूं कि हमारी अपेक्षा बच्चों में आत्मसम्मान की बड़ी सूक्ष्म अनुभूति होती है | अगर हममें विनम्रता हो तो हम जीवन के महानतम पाठ तथाकथित अबोध बच्चों से सीख सकते हैं, उनके लिए बड़ी उमर के विद्वानों के पास जाने की आवश्यकता नहीं है |

ईसा ने इससे ऊंचे और महान सत्य की बात कोई नहीं कही कि ज्ञान की बातें भोले-भाले बच्चों के मुंह से फूटती हैं | मैं इससे पूरी तरह सहमत हूं | मैंने अपने अनुभव में यह बात पाई है कि अगर हम विनम्रता और भोलेपन के साथ बच्चों से बात करें तो उनसे ज्ञान का पाठ पढ़ सकते हैं....

यदि हमें इस संसार में सच्ची शांति प्राप्त करनी है और युद्ध के खिलाफ सच्ची लड़ाई लड़नी है तो हमें बच्चों से शुरुआत करनी होगी; और अगर बच्चे अपने सहज भोले-भाले रूप में बड़े हो सकें तो न हमें संघर्ष करना पड़ेगा और न व्यर्थ के प्रस्ताव पास करने पड़ेंगे | तब हम एक प्रेम से दूसरे प्रेम और एक शांति से दूसरी शांति तक बढ़ते चले जाएंगे, यहां तक कि विश्व में सर्वत्र शांति और प्रेम का साम्राज्य छा जाएगा जिसके लिए आज सारी दुनिया तरस रही है | *(यंग, 19-11-1931, पृ. 361)*

59. संतति-निग्रह

प्रजनन का कार्य

मेरे विचार में यह समझना मूर्खता की चरम सीमा है कि सोने या खाने की तरह ही मैथुन भी जरूरी है और यह एक स्वतंत्र कार्य है | दुनिया का अस्तित्व प्रजनन-कार्य पर निर्भर है, और चूंकि दुनिया ईश्वर की लीलाभूमि है और उसकी महिमा का प्रतिबिंब है इसलिए प्रजनन-कार्य को दुनिया की संवृद्धि के हित में नियंत्रित किया जाना चाहिए | जो इस बात को समझता है, वह किसी भी कीमत पर अपनी कामुकता पर नियंत्रण रखेगा, अपनी संतति के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक कल्याण के लिए स्वयं को तैयार करेगा और इस प्रकार अर्जित ज्ञान से संतति को लाभान्वित करेगा | *(ए, पृ. 148)*

सहवास का उद्देश्य भोग-विलास नहीं है, अपितु संतानोत्पत्ति है | संतानोत्पत्ति की कामना न हो तो सहवास एक अपराध है | *(यंग, 12-3-1925, पृ. 88)*

स्त्री और पुरुष के मन में एक बार यह बात बैठ जाए कि जननेंद्रिय का एकमात्र और अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य संतानोत्पत्ति है तो वे किसी अन्य प्रयोजन से सहवास करना वीर्य का आपराधिक अपव्यय और उससे पुरुष और स्त्री को मिलने वाली उत्तेजना की ऊर्जा का वैसा ही आपराधिक अपव्यय मानने लगेंगे |*(हरि, 21-3-1936, पृ. 48)*

हमारे कानों में यह भर दिया गया है कि कामोत्तेजना की तुष्टि करना वैसा ही पवित्र दायित्व है जैसा कि विधिपूर्वक ऋण लेकर उसे चुकाना, और ऐसा न करने पर मनुष्य को बौद्धिक क्षय का दंड भुगतना पड़ेगा | इस कामोत्तेजना को संतानोत्पत्ति की कामना से अलग कर दिया गया है और संतति-निग्रह के साधनों का इस्तेमाल करने के हिमायती यह कहते हैं कि गर्भ-धारण एक ऐसा संयोग है जिसे यदि स्त्री-पुरुष संतान न चाहते हों तो घटने से रोक देना चाहिए | मेरा कहना है कि यह बड़ा ही खतरनाक सिद्धांत है और इसका प्रचार नहीं किया जाना चाहिए |

कामोत्तेजना एक सुंदर और उदात्त चीज़ है | इसमें लज्जा की कोई बात नहीं है | किंतु इसका प्रयोजन केवल संतानोत्पत्ति की क्रिया है | इसका और कोई उपयोग ईश्वर तथा मानवता के विरुद्ध अपराध है | *(हरि, 28-3-1936, पृ. 53)*

कलात्मक दृष्टिकोण

मनुष्य निस्संदेह एक कलाकार तथा सर्जक है | उसे सौंदर्य और रंग उपलब्ध होने ही चाहिए | उसकी उच्चतम कलात्मक एवं सृजनात्मक प्रकृति ने उसे भेद करने की दृष्टि दी और उसने जाना कि रंगों का कैसा भी मिश्रण

सौंदर्य उत्पन्न नहीं कर सकता, न आनंदोपभोग का हर तरीका अपने आप में अच्छा है | मनुष्य की कलात्मक दृष्टि ने उसे उपयोगिता में आनंद की खोज करना सिखाया |

तदनुसार उसने विकास के आरंभिक चरण में ही यह जान लिया था कि उसे खाने की खातिर नहीं खाना चाहिए, जैसा कि हममें से कुछ लोग आज भी करते हैं, बल्कि जीवित रहने के लिए खाना चाहिए | आगे चलकर उसने यह जाना कि सिर्फ अपने ही लिए जीने में कोई खूबी या मजा नहीं है, बल्कि उसे अपने साथियों और उनके जरिए ईश्वर की सेवा के लिए जीना चाहिए |

इसी प्रकार, जब उसने मैथुन से प्राप्त होने वाली आनंदानुभूति पर विचार किया तो उसने पाया कि अन्य इंद्रियों की भांति जननेंद्रिय का भी उपयोग और दुरुपयोग है | और उसने पाया कि इसका सच्चा कार्य अर्थात सही उपयोग इसे प्रजनन-क्रिया तक सीमित करने में है | उसे लगा कि इसका कोई अन्य उपयोग वीभत्स है जिसके व्यक्ति तथा प्रजाति, दोनों के लिए बड़े गंभीर परिणाम हो सकते हैं | *(हरि, 4-4-1936, पृ. 61)*

संतति-निग्रह की आवश्यकता

संतति-निग्रह की जरूरत के बारे में दो राय नहीं हो सकतीं | लेकिन युगों से इसकी एक ही विधि बताई गई है और वह है, आत्मनियंत्रण अर्थात ब्रह्मचर्य | यह एक अचूक और सर्वश्रेष्ठ विधि है और उस पर आचरण करने वालों के लिए कल्याणकारी है | यदि चिकित्सा जगत के लोग संतति-निग्रह के कृत्रिम साधनों का आविष्कार करने के बजाए आत्मनियंत्रण के उपायों का पता लगा सकें तो वे मानवता का बड़ा उपकार करेंगे....

संतति-निग्रह के कृत्रिम साधन तो दुराचार को राह देने के समान हैं | इनसे स्त्री-पुरुष में विवेकहीनता फैलती है | इनके औचित्य को जिस प्रकार रेखांकित किया जा रहा है, उससे उन संयमों का देखते-ही-देखते विघटन हो जाएगा जिन्हें मनुष्य जनमत का लिहाज करते हुए अपनाता है | कृत्रिम साधनों को अपनाने से निश्चय ही लोगों में मूढ़ता और स्नायविक दुर्बलता बढ़ेगी | इलाज बीमारी से भी ज़्यादा हानिकर सिद्ध होगा |

अपने किए के परिणामों से बचने की कोशिश करना गलत और अनैतिक है | जिस व्यक्ति ने अधिक भोजन कर लिया है उसे सिरदर्द होना और उसके द्वारा उपवास किया जाना उसके हित में है | उसके लिए यह अच्छा नहीं है कि पहले तो वह अनाप-शनाप खाए और उसके बाद दवाइयां लेकर उसके परिणामों से बचने का प्रयास करे | इससे भी बुरा यह है कि आदमी पहले तो कामवासना में लिप्त हो जाए और फिर अपनी कारगुजारी के नतीजे से बचने की कोशिश करे | प्रकृति बड़ी कठोर है, वह अपने नियमों के ऐसे उल्लंघनों का पूरा-पूरा बदला लेगी | नैतिक परिणाम केवल नैतिक निग्रहों से ही प्राप्त किए जा सकते हैं | अन्य सभी प्रकार के निग्रह उस प्रयोजन को ही नष्ट कर देंगे जिसके लिए वे अपनाए जा रहे हैं | *(यंग, 12-3-1925, पृ. 88-89)*

आबादी की अधिकता

अगर कोई यह कहे कि देश में आबादी ज़्यादा होने के कारण संतति-निग्रह के उपाय अपनाना आवश्यक है तो मैं इससे सहमत नहीं हूं | ज़्यादा आबादी की बात को आज तक सिद्ध नहीं किया जा सका है | मेरी राय में, उचित भूमि-व्यवस्था, बेहतर कृषि और पूरक उद्योगों के बल पर यह देश आज से दूनी जनसंख्या का भरण-पोषण कर सकता है | *(यंग, 2-4-1925, पृ. 118)*

बढ़ती जन्म-दर का हौआ कोई नयी चीज़ नहीं है | यह अक्सर खड़ा किया जाता रहा है | जनसंख्या की वृद्धि कोई महासंकट नहीं है और न समझा जाना चाहिए | असली महासंकट तो कृत्रिम उपायों से उसका नियमन अथवा नियंत्रण है, हम इसे समझें या न समझें | अगर यह सर्वत्र लागू हो गया तो इससे निश्चित रूप से प्रजाति की गुणवत्ता घटेगी | लेकिन ईश्वर की कृपा से, यह कभी सर्वत्र लागू नहीं हो पाएगा | अनचाही संतानों के लिए उत्तरदायी घृणित कामलिप्सा का दंड हमें महामारियों, युद्ध और दुर्भिक्ष के रूप में भुगतना पड़ता है | यदि हम इन तीनों अभिशापों से बचना चाहते हैं तो हमें आत्मनियंत्रण की सर्वश्रेष्ठ विधि को अपनाकर स्वयं को अनचाही संतानों के अभिशाप से भी बचाना चाहिए | विवेकशील मनुष्य अभी से ही कृत्रिम उपायों के दुष्परिणामों को समझ रहे हैं | नैतिक-अनैतिक की चर्चा उठाए बगैर मैं यही कहना चाहता हूं कि चूहों की तरह अपनी प्रजाति की अंधाधुंध वृद्धि को अवश्य ही रोका जाना चाहिए, लेकिन इस तरह नहीं कि हमारे कष्ट और भी बढ़ जाएं | इसे ऐसे उपायों से रोकना चाहिए जिनसे प्रजाति का उदात्तीकरण हो | दूसरे शब्दों में, यह मुद्दा उचित शिक्षा का है जिसकी परिधि में जीवन के सभी कार्यकलाप आ जाने चाहिए; तब एक बुराई का इलाज करने से अन्य सभी बुराइयों का भी इलाज हो जाएगा | हमें कोई रास्ता सिर्फ इसलिए नहीं छोड़ देना चाहिए कि उसमें चढ़ाई है और इस कारण वह कठिन है | मनुष्य की प्रगति का मार्ग सदा अधिकाधिक कठिनाईयुक्त रहेगा जिसका हमें स्वागत करना चाहिए | *(हरि, 31-3-1946, पृ. 66)*

आदमी को दो में से एक रास्ता चुनना होगा, ऊपर की ओर जाने वाला या नीचे की ओर ले जाने वाला | लेकिन चूंकि उसके अंदर पशु बैठा हुआ है, इसलिए उसे ऊपर के बजाए नीचे की ओर ले जाने वाले रास्ते को चुनना ही सहज प्रतीत होगा, विशेषकर यदि नीचे वाले रास्ते को उसके सामने आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया जाए | पाप को पुण्य का जामा पहना दिया जाए तो मनुष्य उसकी ओर बड़ी सरलता से झुक जाता है; मेरी स्टोप्स और बाकी लोग आज यही कर रहे हैं | *(हरि, 1-2-1935, पृ. 410)*

मुझे भय है कि संतति-निग्रह के समर्थक यह मानकर चल रहे हैं कि कामवासना में लिप्त होना जीवन के लिए आवश्यक है और यह स्वयं में एक वांछनीय चीज़ है | स्त्री जाति के प्रति जो सरोकार दिखाया जा रहा है, वह अत्यंत दयनीय है | मेरी राय में, कृत्रिम उपायों से संतति-निग्रह के समर्थन में स्त्री जाति के पक्ष को उभारना उसका अपमान करना है | वस्तुस्थिति यह है कि मनुष्य ने अपनी कामलिप्सा के लिए स्त्री को पहले ही काफ़ी

नीचे गिरा दिया है, कृत्रिम उपाय उसका दर्जा और भी घटा देंगे, भले ही इन उपायों के समर्थकों की नीयत कितनी ही साफ हो |

कृत्रिम उपायों के समर्थकों से मेरा अनुरोध है कि वे इन परिणामों पर विचार करें | इन उपायों का प्रयोग व्यापक पैमाने पर हुआ तो विवाह-बंधन का विघटन हो जाएगा और उसका स्थान स्वच्छंद प्रेम ले लेगा | अगर पुरुष कामवासना को ही लक्ष्य मानकर उसमें लिप्त रहने लगा तो वह उस समय क्या करेगा जब, मिसाल के तौर पर, उसे काफ़ी दिनों के लिए घर से बाहर रहना हो अथवा लंबी लड़ाई में सिपाही के तौर पर भाग लेने के लिए जाना पड़े अथवा वह विधुर हो जाए अथवा उसकी पत्नी इतनी बीमार हो कि कृत्रिम उपाय का इस्तेमाल करने पर भी वह अपने स्वास्थ्य की हानि किए बगैर पति के साथ सहवास करने की स्थिति में न हो ? *(यंग, 2-4-1925, पृ. 118)*

मुझे तो संतति-निग्रह एक मनहूस अंधगर्त दिखाई देता है | यह अज्ञात शक्तियों के साथ खिलवाड़ करना है | यह मान भी लिया जाए कि किन्हीं परिस्थितियों में कृत्रिम उपायों से संतति-निग्रह करना उचित है तो भी लाखों-करोड़ों लोगों के बीच इसका प्रचार करना नितांत असंभव है | मुझे लगता है कि आम लोगों को गर्भ-निरोधकों के बजाए आत्मनियंत्रण के द्वारा संतानोत्पत्ति का नियमन करने के लिए ज़्यादा आसानी से राजी किया जा सकता है |

हमारी यह नन्हीं-सी दुनिया कल ही नहीं जनमी है | असंख्य वर्षों के अपने जीवन में यह कभी आबादी की अधिकता से पीड़ित नहीं हुई है | यह कैसे हो सकता है कि अचानक ही कुछ लोगों के सम्मुख यह सत्य कौंध जाए कि यदि गर्भ-निरोधकों के जरिए जन्म-दर को नियंत्रित न किया गया तो दुनिया खाद्य पदार्थों के अभाव में नष्ट हो जाएगी ? *(हरि, 14-9-1935, पृ. 244)*

ज़्यादा बड़ा पाप

अनचाही संतान पैदा करना पाप है, लेकिन मैं समझता हूं कि उससे भी बड़ा पाप अपने किए के परिणामों से दूर भागना है | यह तो मर्द को नामर्द बनाने वाली बात है | *(हरि, 7-9-1935, पृ. 234)*

ईश्वर ने कृपा करके पुरुष को सर्वाधिक शक्तिशाली बीज दिया है और स्त्री को ऐसा उर्वर क्षेत्र दिया है जिसकी तुलना दुनिया के किसी क्षेत्र से नहीं की जा सकती | निश्चित रूप से यह पुरुष की घोर मूर्खता है यदि वह अपनी इस अमूल्य संपत्ति को व्यर्थ बहा दे | उसे अपने महंगे-से-महंगे मोतियों से भी ज़्यादा सावधानी के साथ इसकी रक्षा करनी चाहिए |

वह स्त्री भी घोर मूर्ख है जो अपने उर्वर क्षेत्र में पुरुष के बीज को यह जानते हुए भी ग्रहण करती है कि वह उसे व्यर्थ बह जाने देगी | पुरुष और स्त्री, दोनों ही प्रकृति से मिली अपनी क्षमताओं के दुरुपयोग के दोषी माने जाएंगे और प्रकृति उन्हें उनकी अमूल्य संपत्ति से वंचित कर देगी | *(हरि, 28-3-1936, पृ. 53)*

मेरी समझ में, अपने कृत्यों के परिणामों को भुगतने से इंकार करना कायरता है | जो गर्भ-निरोधकों का प्रयोग करते हैं, वे शायद आत्मनिग्रह की अच्छाई को कभी नहीं समझ पाएंगे | उन्हें इसकी जरूरत ही नहीं है | गर्भ-निरोधकों के इस्तेमाल से बच्चों की पैदाइश रुक सकती है, पर ये स्त्री-पुरुष दोनों की जीवनी शक्ति को चाट जाएंगे – पुरुषों को स्त्रियों की अपेक्षा शायद ज़्यादा नुकसान होगा | राक्षस के साथ युद्ध करने से इंकार करना नामर्दी की निशानी है | *(हरि, 17-4-1937, पृ. 84)*

सामाजिक दुराचार

मुझे पता है कि गुप्त दुराचार ने स्कूली छात्र-छात्राओं के बीच कितनी तबाही मचाई है | विज्ञान के नाम पर गर्भ-निरोधकों के प्रवेश और समाज के जाने-माने नेताओं को प्राप्त लेखन-स्वातंत्र्य ने स्थिति को और भी उलझा दिया है तथा सामाजिक जीवन की स्वच्छता के लिए काम करने वाले सुधारकों के काम को लगभग असंभव बना दिया है.... *(हरि, 28-3-1936, पृ. 53)*

नारीत्व का अपमान

मैं जानता हूं कि कुछ आधुनिक महिलाएं कृत्रिम उपायों का समर्थन करती हैं | लेकिन मुझे इसमें संदेह नहीं है कि अधिकांश महिलाएं इन्हें अपनी गरिमा के प्रतिकूल होने के कारण अस्वीकार कर देंगी | यदि पुरुष स्त्री की भलाई चाहते हैं तो उन्हें अपने ऊपर नियंत्रण करना चाहिए | स्त्री पुरुष को नहीं लुभाती | वास्तव में, आक्रामक होने के कारण पुरुष ही सही अर्थों में दोषी है और लुभाता भी वही है | *(यंग, 2-4-1925, पृ. 118)*

मेरा ख्याल है कि गर्भ-निरोधकों के सर्वाधिक बुद्धिमान समर्थक इनका इस्तेमाल उन विवाहित महिलाओं तक सीमित रखेंगे जो अपनी और अपने पतियों की कामक्षुधा को तुष्ट करना चाहती हैं, पर संतान नहीं चाहतीं | मैं इस वृत्ति को मानव जाति के सदस्यों के लिए अप्राकृतिक मानता हूं; ऐसी कामतुष्टि मानव परिवार की आध्यात्मिक उन्नति के लिए हानिकारक ही सिद्ध होगी | *(हरि, 2-5-1936, पृ. 92)*

भारत की स्त्रियों में गर्भ-निरोधकों का इस्तेमाल करने का आग्रह करना घोड़े की दुम में लगाम लगाने के समान है | सबसे पहले तो उन्हें मानसिक दासता से मुक्ति दिलानी है, उन्हें अपने शरीर की पवित्रता का बोध कराना है तथा राष्ट्र और मानवता की सेवा की गरिमा का पाठ पढ़ाना है | *(वही, पृ. 93)*

गर्भ-निरोधक नारीत्व का अपमान हैं | एक वेश्या और गर्भ-निरोधकों का इस्तेमाल करने वाली स्त्री के बीच यही अंतर है कि वेश्या अपना शरीर कई पुरुषों को बेचती है जबकि वह केवल एक पुरुष को | पुरुष को तब तक अपनी पत्नी का स्पर्श करने का अधिकार नहीं है जब तक कि वह संतान न चाहती हो और स्त्री के अंदर इतनी संकल्प-शक्ति होनी चाहिए कि वह अपने पति का भी प्रतिरोध कर सके | *(हरि, 5-5-1946, पृ. 118)*

इसमें संदेह नहीं है कि गर्भ-निरोधकों के पक्ष में धुंआधार प्रचार करने वाले अनेक संतति-निग्रह-सुधारक उपकार की भावना से ही इस कार्य में लगे हैं | मेरा अनुरोध है कि वे अपनी अनुचित उपकार-भावना के अनर्थकारी परिणामों पर विचार करें | अपने लक्ष्य-वर्ग के बीच वे कभी इसका व्यापक प्रयोग सुनिश्चित नहीं कर पाएंगे | जिन्हें इनका प्रयोग नहीं करना चाहिए, वे अवश्य इनका प्रयोग करेंगे जिससे उनका और उनके वैवाहिक साथी का घोर अनर्थ होगा | यदि गर्भ-निरोधकों का प्रयोग शारीरिक और नैतिक दृष्टि से पूर्णतया सही सिद्ध हो जाए तो भी यह अनर्थ तो होगा ही | *(हरि, 12-9-1936, पृ. 244)*

संयम

प्रत्येक पति-पत्नी इस बात का दृढ़ निश्चय कर सकते हैं कि वे रात में एक ही कमरे या एक ही बिस्तर का इस्तेमाल नहीं करेंगे और सिवा उस एक प्रयोजन के जो मनुष्य और पशु, दोनों के मामले में लागू है, और किसी भावना से प्रेरित होकर यौन संपर्क नहीं करेंगे | पशु तो निर्विवाद रूप से इस नियम का पालन करते हैं | आदमी को चूंकि चुनने का अधिकार है, इसलिए उसने गलत चुनाव करके एक भयंकर भूल कर दी है....स्त्री और पुरुष, दोनों को जानना चाहिए कि कामक्षुधा की तुष्टि को संयमित करने से कोई बीमारी नहीं लगती, बल्कि स्वास्थ्य और ओज में वृद्धि होती है बशर्ते कि मन भी शरीर के साथ सहयोग करे | *(यंग, 27-9-1925, पृ. 324)*

'न' कहने का साहस

स्त्रियों को अपने पतियों का प्रतिरोध करना होगा | यदि गर्भ-निरोधकों का इस्तेमाल हुआ तो इसके भयंकर परिणाम होंगे | स्त्री-पुरुष केवल कामोपभोग के लिए ही जिएंगे | वे दुर्बल मस्तिष्क वाले और विक्षिप्त हो जाएंगे | सच पूछा जाए तो वे मानसिक और नैतिक दृष्टि से टूट जाएंगे | *(अबाप, 12-1-1935)*

मैंने अनुभव किया है कि यदि मैं अपने जीवन के शेष वर्ष स्त्रियों के मन में यह सच्चाई बैठाने में लगा दूं कि वे स्वतंत्र हैं तो भारत में संतति-निग्रह नाम की कोई समस्या नहीं रह जाएगी | यदि वे अपने पतियों के कामासक्त होकर पास आने पर 'न' कहना सीख लें....तो सब कुछ ठीक हो जाएगा....असली समस्या यह है कि वे उनका प्रतिरोध करना नहीं चाहतीं | इसके लिए उनका शिक्षित होना आवश्यक है | मैं चाहता हूं कि स्त्रियां प्रतिरोध के मूल अधिकार के बारे में जानें | अभी तो वे यह समझती हैं कि उन्हें ऐसा कोई अधिकार नहीं है | *(एए, नवंबर 1935)*

मैं नहीं मानता कि स्त्री भी कामेच्छा की उतनी ही शिकार होती है जितना कि पुरुष | पुरुष की अपेक्षा उसके लिए आत्मसंयम का पालन करना ज़्यादा आसान है | *(हरि, 2-5-1936, पृ. 93)*

आत्मनियंत्रण

अगर हम यह मानने लगे कि कामवासना में लिप्त होना आवश्यक, हानिरहित और निष्पाप है तो हम उसे खुली छूट दे देंगे और हमारे अंदर उसका प्रतिरोध करने की शक्ति नहीं रह जाएगी | इसके विपरीत, अगर हम अपने आपको यह विश्वास करना सिखाएं कि यह हानिकारक, पापमय, अनावश्यक और नियंत्रणीय है तो हम पाएंगे कि आत्मसंयम पूर्णतया संभव है | *(यंग, 19-8-1926, पृ. 289)*

गर्भ-निरोधकों का समर्थन करने वाले लोगों से मेरा झगड़ा यह है कि वे यह मानकर चल रहे हैं कि साधारण मनुष्य आत्मसंयम नहीं बरत सकता | कुछ तो यहां तक कहते हैं कि अगर यह साधारण मनुष्यों के लिए संभव भी हो तो भी उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए | वे चाहे अपने क्षेत्र के कितने ही जाने-माने व्यक्ति हों, मेरा उनसे पूरी विनम्रता किंतु अधिकतम आत्मविश्वास के साथ यह कहना है कि वे आत्मसंयम की संभावनाओं का अनुभव प्राप्त किए बिना बात कर रहे हैं | उन्हें मानव आत्मा की क्षमता को सीमित करने का कोई अधिकार नहीं है |

मेरी दलील, जो निश्चित अनुभव पर आधारित है, यह है कि जिस प्रकार सत्य और अहिंसा भी केवल गिनेचुने लोगों के लिए नहीं है बल्कि समूची मानवता के दैनंदिन आचरण के लिए है, ठीक उसी प्रकार आत्मनियंत्रण केवल कुछ 'महात्माओं' के लिए ही नहीं है बल्कि समूची मानवता के लिए है | जिस प्रकार मानवता को अपने आदर्शों को इस कारण नीचा करने की जरूरत नहीं है कि बहुत-से लोग असत्यवादी और हिंसक हैं, उसी प्रकार चाहे अधिकांश लोग आत्मसंयम के संदेश को मानने के लिए तैयार न हों पर हमें अपने आदर्श को नीचा करने की आवश्यकता नहीं है | *(हरि, 30-5-1936, पृ. 126)*

वंध्यकरण

मैं वंध्यकरण कानून को लोगों पर थोपना अमानवीय समझता हूं | लेकिन जीर्ण रोगों से ग्रस्त व्यक्तियों का वंध्यकरण वांछनीय है बशर्ते कि वे उसके लिए राजी हों | वंध्यकरण एक गर्भ-निरोधक है और यद्यपि मैं स्त्रियों के द्वारा गर्भ-निरोधकों के इस्तेमाल के विरुद्ध हूं, मैं पुरुषों के वंध्यकरण का विरोध नहीं करूंगा क्योंकि आक्रामक पुरुष ही है | *(अबाप, 12-1-1935)*

60. समाज में स्त्रियों की स्थिति और भूमिका

आदमी जितनी बुराइयों के लिए जिम्मेदार है उनमें सबसे ज़्यादा घटिया, बीभत्स और पाशविक बुराई उसके द्वारा मानवता के अर्धांग अर्थात नारी जाति का दुरुपयोग है | वह अबला नहीं, नारी है | नारी जाति निश्चित रूप से पुरुष जाति की अपेक्षा अधिक उदात्त है; आज भी नारी त्याग, मूक दुख-सहन, विनम्रता, आस्था और ज्ञान की प्रतिमूर्ति है | *(यंग, 15-9-1921, पृ. 292)*

स्त्री को चाहिए कि वह स्वयं को पुरुष के भोग की वस्तु मानना बंद कर दे | इसका इलाज पुरुष की अपेक्षा स्वयं स्त्री के हाथों में ज़्यादा है | उसे पुरुष की खातिर, जिसमें पति भी शामिल है, सजने से इंकार कर देना चाहिए | तभी वह पुरुष के साथ बराबर की साझीदार बन सकेगी | मैं इसकी कल्पना नहीं कर सकता कि सीता ने राम को अपने रूप-सौंदर्य से रिझाने पर एक क्षण भी नष्ट किया होगा | *(यंग, 21-7-1921, पृ. 229)*

यदि मैंने स्त्री के रूप में जन्म लिया होता तो मैं पुरुष के इस दावे के विरुद्ध विद्रोह कर देता कि स्त्री उसके मनबहलाव के लिए ही पैदा हुई है | स्त्री के हृदय में स्थान पाने के लिए मुझे मानसिक रूप से स्त्री बन जाना पड़ा है | मैं तब तक अपनी पत्नी के हृदय में स्थान नहीं पा सका जब तक कि मैंने उसके प्रति अपने पहले के व्यवहार को बिलकुल बदल डालने का निश्चय नहीं कर लिया | इसके लिए मैंने उसके पति की हैसियत से प्राप्त सभी तथाकथित अधिकारों को छोड़ दिया और ये अधिकार उसी को लौटा दिए | आप देखेंगे कि आज वह वैसा ही सादा जीवन जीती है जैसा कि मैं |

वह न कोई आभूषण धारण करती है, न अलंकार | मैं चाहता हूं कि आप भी उसी की तरह हो जाओ | अपनी मौज-मस्तियों की गुलामी और पुरुष की गुलामी छोड़ो | अपना श्रृंगार करना छोड़ो, इत्र और लवैंडरों का त्याग कर दो; सच्ची सुगंध वह है जो तुम्हारे हृदय से आती है, यह पुरुष को ही नहीं अपितु पूरी मानवता को मोहित करने वाली है | यह तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है | पुरुष स्त्री से उत्पन्न होता है, उसकी मांस-मज्जा से बना है | अपनी प्रतिष्ठा पुन: प्राप्त करो और अपना संदेश फिर सुनाओ | *(यंग, 8-12-1927, पृ. 406)*

अबला नहीं

नारी को अबला कहना उसकी निंदा करना है; यह पुरुष का नारी के प्रति अन्याय है | यदि शक्ति का अर्थ पाशविक शक्ति है तो सचमुच पुरुष की तुलना में स्त्री में पाशविकता कम है | और यदि शक्ति का अर्थ नैतिक शक्ति है तो स्त्री निश्चित रूप से पुरुष की अपेक्षा कहीं अधिक श्रेष्ठ है | क्या उसमें पुरुष की अपेक्षा अधिक अंत:प्रज्ञा, अधिक आत्मत्याग, अधिक सहिष्णुता और अधिक साहस नहीं है ? उसके बिना पुरुष का कोई अस्तित्व नहीं है | यदि अहिंसा मानव जाति का नियम है तो भविष्य नारी जाति के हाथ में है....हृदय को आकर्षित करने का गुण स्त्री से ज़्यादा और किसमें हो सकता है ? *(यंग, 10-4-1930, पृ. 121)*

यदि पुरुष ने अपने अविवेकपूर्ण स्वार्थ के वशीभूत होकर स्त्री की आत्मा को इस तरह कुचला न होता और स्त्री 'आनंदोपभोग' की शिकार न बन गई होती तो उसने संसार को अपनी अंतर्हितअनंत शक्ति का परिचय दे दिया होता | जब स्त्री को पुरुष के बराबर अवसर प्राप्त हो जाएंगे और वह परस्पर सहयोग और संबंध की शक्तियों का पूरा-पूरा विकास कर लेगी तो संसार स्त्री-शक्ति का उसकी संपूर्ण विलक्षणता और गौरव के साथ परिचय पा सकेगा| *(यंग, 7-5-1931, पृ. 96)*

मेरा मानना है कि स्त्री आत्मत्याग की मूर्ति है, लेकिन दुर्भाग्य से आज वह यह नहीं समझ पा रही कि वह पुरुष से कितनी श्रेष्ठ है | जैसा कि टाल्सटॉय ने कहा है, वे पुरुष के सम्मोहक प्रभाव से आक्रांत हैं | यदि वे अहिंसा की शक्ति पहचान लें तो वे अपने को अबला कहे जाने के लिए हरगिज राजी नहीं होंगी |*(यंग, 14-1-1932, पृ. 19)*

स्थान-व्यतिक्रम

स्त्री पुरुष की सहचरी है, उसकी मानसिक क्षमताएं पुरुष के बराबर हैं | पुरुष के छोटे-से-छोटे कार्यकलाप में भाग लेने का उसे अधिकार है और जितनी स्वाधीनता और आज़ादी का हकदार पुरुष है, उतनी ही हकदार स्त्री भी है|

स्त्री को कार्यकलाप के अपने क्षेत्र में सर्वोच्च स्थान पाने का वैसा ही हक है जैसा कि पुरुष को अपने क्षेत्र में है | स्वभावतया यही स्थिति होनी चाहिए; ऐसा नहीं है कि स्त्री के पढ़-लिख जाने पर ही वह इसकी हकदार बनेगी |

गलत परंपरा के जोर पर ही मूर्ख और निकम्मे लोग भी स्त्री के ऊपर श्रेष्ठ बनकर मजे लूट रहे हैं, जब कि वे इस योग्य हैं ही नहीं और उन्हें यह बेहतरी हासिल नहीं होनी चाहिए | स्त्रियों की इस दशा के कारण ही हमारे बहुत-से आंदोलन अधर में लटके रह जाते हैं | *(स्पीरा, पृ. 425)*

तथाकथित अबला वर्ग के ऊपर यह जो हीनावस्था विधि का नियामक होने के नाते पुरुष द्वारा आरोपित कर दी गई है, उसका उसे बहुत ही भयावह दंड भुगतना होगा | पुरुष के फंदे से आज़ाद होकर स्त्री जब अपने पूर्ण उत्कर्ष को प्राप्त होगी और मनुष्यकृत विधान तथा उसके द्वारा गठित संस्थाओं के विरुद्ध विद्रोह करेगी तो उसका विद्रोह यद्यपि अहिंसक होगा, पर फिर भी बड़ा प्रभावकारी सिद्ध होगा | *(यंग, 16-4-1925, पृ. 133)*

स्त्री ने अनजाने में अनेक विचक्षण उपायों से पुरुष को विविध प्रकार से फंसाया हुआ है और इसी प्रकार, पुरुष ने भी स्त्री को अपने ऊपर वर्चस्व प्राप्त न करने देने के लिए अनजाने में उतना ही किंतु व्यर्थ संघर्ष किया है | परिणामत: एक गतिरोध की स्थिति उत्पन्न हो गई है | इस दृष्टि से देखें तो यह एक गंभीर समस्या है जिसका समाधान भारत माता की प्रबुद्ध बेटियों को करना है | उन्हें पश्चिम के तरीकों का अनुकरण नहीं करना है, जो शायद वहां के वातावरण के अनुकूल हैं | उन्हें भारत की प्रकृति और यहां के वातावरण को देखकर अपने तरीके लागू करने होंगे | उनके हाथ मजबूत, नियंत्रणशील, शुचिकारी और संतुलित होने चाहिए जो हमारी संस्कृति के

उत्तम तत्वों को तो बचा रखें और जो कुछ निकृष्ट तथा अपकर्षकारी है, उसे बेहिचक निकाल फेंकें | यह काम सीताओं, द्रौपदियों, सावित्रियों और दमयंतियों का है, मुस्तंडियों और नखरेबाज स्त्रियों का नहीं | *(यंग, 17-10-1929, पृ. 340)*

पुरुष ने स्त्री को अपनी कठपुतली समझ लिया है | स्त्री को भी इसका अभ्यास हो गया है और अंतत: उसे यह भूमिका सरल और मजेदार लगने लगी है, क्योंकि जब पतन के गर्त में गिरने वाला व्यक्ति किसी दूसरे को भी अपने साथ खींच लेता है तो गिरने की क्रिया सरल लगने लगती है | *(हरि, 25-1-1936, पृ. 396)*

मेरा दृढ़ मत है कि इस देश की सही शिक्षा यह होगी कि स्त्री को अपने पति से भी 'न' कहने की कला सिखाई जाए और उसे यह बताया जाए कि अपने पति की कठपुतली या उसके हाथों में गुड़िया बनकर रहना उसके कर्तव्य का अंग नहीं है | उसके अपने अधिकार हैं और अपने कर्तव्य हैं | *(हरि, 2-5-1936, पृ. 93)*

सही शिक्षा

मैं स्त्री की उचित शिक्षा में विश्वास करता हूं | लेकिन मेरा पक्का विश्वास है कि पुरुष की नकल करके या उसके साथ होड़ लगाकर वह दुनिया में अपना योगदान नहीं कर सकेगी | वह होड़ लगा सकती है, पर पुरुष की नकल करके वह उन ऊंचाइयों को नहीं छू सकती जिनका सामर्थ्य उसके अंदर है | उसे पुरुष का पूरक बनना है | *(हरि, 27-2-1937, पृ. 19)*

आत्मसंरक्षण

जो लोग सीता को राम की स्वेच्छया दासी के रूप में देखते हैं, वे सीता की स्वाधीनता की ऊंचाई या हर बात में राम द्वारा सीता के लिहाज को नहीं समझ पाते | सीता अपनी और अपने सम्मान की रक्षा में असमर्थ कोई विवश निर्बल स्त्री नहीं थी | *(हरि, 2-5-1936, पृ. 93)*

मुझे भय है कि आधुनिक लड़की को आधे दर्जन छैलाओं की प्रेमिका बनना अच्छा लगता है | उसे जोखिम पसंद है....वह जिस तरह के वस्त्र धारण करती है वे उसे हवा, पानी और धूप से बचाने के लिए नहीं बल्कि लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए होते हैं | वह रंग-रोगन लगाकर और असाधारण दिखाई देने का प्रयास करके प्रकृतिदत्त सुंदरता को बढ़ाने का उपक्रम करती है | अहिंसा का मार्ग ऐसी लड़कियों के लिए नहीं है| *(हरि, 31-12-1938, पृ. 409)*

स्त्रियों को अपनी सुरक्षा के लिए पुरुषों पर निर्भर नहीं रहना है | उसे द्रौपदी की भांति अपने चरित्र की शक्ति और निर्मलता पर तथा ईश्वर पर भरोसा करना चाहिए | *(हरि, 15-9-1946, पृ. 312)*

सही स्थान

जीवन में जो कुछ पवित्र और धार्मिक है, स्त्रियां उसकी विशिष्ट अभिरक्षक हैं | प्रकृति से रूढ़िवादी होने के कारण वे यदि अंधविश्वास को त्यागने में शिथिल हैं तो जीवन में जो कुछ पवित्र और उदात्त है, उसका त्याग करने में भी शिथिल हैं | *(हरि, 25-3-1933, पृ. 2)*

मैं इस बात की कल्पना नहीं कर पाता कि पत्नी सामान्यतया अपने पति से स्वतंत्र कोई जीविका करे | बच्चों का पालन-पोषण और घर की देखभाल ही उसकी सारी शक्ति का इस्तेमाल करने के लिए काफ़ी हैं |

सुव्यवस्थित समाज में, परिवार के भरण-पोषण का अतिरिक्त भार महिला पर नहीं पड़ना चाहिए | पुरुष परिवार के भरण-पोषण का उत्तरदायित्व ले और महिला घर-गृहस्थ के प्रबंध को देखे, इस प्रकार दोनों एक-दूसरे के पूरक और अनुपूरक बनें |

मुझे इसमें स्त्री के अधिकारों अथवा उसकी आज़ादी के दमन की कोई बात दिखाई नहीं देती....हमारे साहित्य में पत्नी को अर्धांगिनी और सहधर्मिणी कहकर सम्मानित किया गया है | पति द्वारा पत्नी को देवी कहकर संबोधित किया जाना उसे तुच्छ समझने का बोध तो नहीं कराता |

....जो स्त्री अपने कर्तव्य को समझती है और उसे पूरा करती है, उसे अपनी गरिमामय प्रतिष्ठा की प्राप्ति होती है | वह जिस घर की अधिष्ठात्री है, उसकी दासी नहीं अपितु स्वामिनी होती है | *(हरि, 12-10-1934, पृ. 276-77)*

लेकिन पुरुष ने किसी-न-किसी तरह से युगों से स्त्री पर अपना प्रभुत्व जमा रखा है जिसके परिणामस्वरूप स्त्री में हीनभावना घर कर गई है | उसने पुरुष की इस स्वार्थमय सीख में विश्वास कर लिया है कि वह पुरुष से कमतर है | लेकिन मनीषियों ने स्त्री को बराबरी का दर्जा ही दिया है |

तब भी, इसमें संदेह नहीं कि एक बिंदु ऐसा है जहां से द्विशाखन होता है | यद्यपि मूल रूप से स्त्री और पुरुष समान हैं, पर यह भी सही है कि दोनों के स्वरूप में महत्वपूर्ण अंतर है | इसलिए दोनों के कार्यक्षेत्र भिन्न-भिन्न होने चाहिए | *(हरि, 24-2-1940, पृ. 13)*

स्त्री और अहिंसा

मेरा विश्वास है कि अहिंसा के उच्चतम और सर्वोत्कृष्ट स्वरूप का प्रदर्शन करना स्त्री का जीवन-लक्ष्य है....कारण यह है कि अहिंसा के क्षेत्र में खोज करने और साहसिक कदम उठाने के लिए स्त्री अधिक उपयुक्त है....आत्मत्याग का साहस पुरुष की अपेक्षा स्त्री में निश्चित रूप से कहीं ज़्यादा है, ठीक उसी प्रकार जैसे कि पशुता का साहस पुरुष में स्त्री की अपेक्षा ज़्यादा है | *(हरि, 5-11-1938, पृ. 317)*

मेरी अपनी राय में चूंकि पुरुष और स्त्री मूलत: एक हैं, अत: उनकी समस्या भी तत्वत: एक होनी चाहिए | दोनों में एक ही आत्मा का वास है | दोनों एक-सा जीवन जीते हैं, दोनों की भावनाएं एक जैसी होती हैं | दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं | दूसरे की सक्रिय सहायता के बिना इनमें से कोई भी जी नहीं सकता | *(हरि, 24-2-1940, पृ. 13)*

मैंने कहा है कि....स्त्री अहिंसा का अवतार है | अहिंसा का अर्थ है असीम प्रेम, जिसका अर्थ है पीड़ा भोगने का असीम सामर्थ्य | यह सामर्थ्य स्त्री, जो पुरुष की मां है, से अधिक और किसमें है ? अपने गर्भ में नौ मास तक शिशु का पोषण करके और उस क्लेश को प्रसन्नतापूर्वक झेलकर वह इस सामर्थ्य का प्रचुर प्रमाण देती है | प्रसव-पीड़ा से बड़ी पीड़ा कोई और है ? लेकिन सृजन के सुख में वह उसे भी भुला देती है |

बच्चे के दैनंदिन विकास के लिए और कौन है जो रोज खटता है ? स्त्री को चाहिए कि वह इस प्रेम का विस्तार करके समूची मानवता को इसमें समाविष्ट कर ले और यह भूल जाए कि वह पुरुष की वासना का विषय है | यदि ऐसा हो सके तो वह पुरुष के साथ उसकी मां, उसकी सृष्टिकर्ता और उसकी मूक पथप्रदर्शिका के रूप में अपने गौरवमय पद की प्राप्ति कर सकेगी | शांति के लिए व्याकुल युद्धरत संसार को शांति का पाठ स्त्री को ही पढ़ाना है| *(वही, पृ. 13-14)*

विशेष जीवन-लक्ष्य

मातृत्व का कर्तव्य, जो अधिकांश स्त्रियां सदा निभाएंगी, वहन करने के लिए जिन गुणों की अपेक्षा होती है, उनका पुरुष में होना आवश्यक नहीं है | स्त्री निष्क्रिय है, पुरुष सक्रिय है | मुख्यतया, वह गृहस्वामिनी है | पुरुष रोजी कमाता है, स्त्री भोजन की व्यवस्था और वितरण करती है | वह हर दृष्टि से रक्षक की भूमिका निभाती है | प्रजाति के शिशुओं को पाल-पोसकर बड़ा करना उसका विशिष्ट तथा एकल अधिकार है | वह देखभाल न करे तो संपूर्ण प्रजाति लुप्त हो जाए |

मेरी राय में, स्त्री से गृहस्थ के संचालन की जिम्मेदारी छोड़कर उसकी रक्षा के लिए बंदूक उठाने को कहना पुरुष और स्त्री, दोनों के लिए गिरावट की बात है | यह बर्बरता की ओर लौटना है और अंत की शुरुआत है | पुरुष जिस घोड़े पर सवार है उसी पर सवारी करने की कोशिश में स्त्री स्वयं भी गिरेगी और अपने साथ पुरुष को भी गिराएगी |

यदि पुरुष ने स्त्री को अपनी विशिष्ट भूमिका त्यागने के लिए प्रलोभित अथवा बाध्य किया तो इसका पाप मनुष्य के सिर पर ही होगा | अपने घर को सुव्यवस्थित रखने में भी उतनी ही वीरता है जितनी कि उसकी बाह्य आक्रमण से रक्षा करने में....

इस गहन समस्या के समाधान में मेरा योगदान यह है कि मैं जीवन के हर क्षेत्र में, व्यक्तियों और राष्ट्रों, दोनों के समक्ष सत्य और अहिंसा को अपनाने का प्रस्ताव रखता हूं | मैंने यह आशा बांध रखी है कि इसमें स्त्री निर्विवाद

नेता बनकर सामने आएगी और इस प्रकार मानव के विकास में अपना स्थान सुनिश्चित करने के फलस्वरूप वह अपनी हीन भावना का भी त्याग कर सकेगी |

यदि वह सफलतापूर्वक ऐसा कर सकी तो वह इस आधुनिक सीख में विश्वास करने से भी दृढ़तापूर्वक इंकार कर देगी कि इस दुनिया में हर चीज़ यौन आवेग द्वारा निर्धारित और विनियमित होती है.... *(वही, पृ. 13)*

स्वयं पीड़ा भोगना स्त्री के स्वभाव में है | इसलिए अहिंसा उसके लिए अधिक सहज है |*(हरि,5-5-1946, पृ.118)*

मैं पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों से अधिक प्रेम और सहिष्णुता की आशा करता हूं | मुझे आश्चर्य है कि वे भटक कर किधर जा रही हैं और अगर उनके घरों में घृणा का वातावरण फैल गया तो वे अपने बच्चों को क्या सिखाएंगी या सिखा सकेंगी ? *(हरि, 18-5-1947, पृ. 155)*

स्त्री-पुरुष समानता

जहां तक स्त्रियों के अधिकारों का सवाल है, मैं कोई समझौता नहीं करूंगा | मेरी राय में, उन्हें ऐसी किसी कानूनी निर्योग्यता का शिकार नहीं बनाया जाना चाहिए जो पुरुष पर लागू नहीं होतीं | मैं बेटे और बेटियों के साथ बिलकुल एक जैसा व्यवहार करना चाहूंगा | *(हरि, 17-10-1929, पृ. 340)*

स्त्री-पुरुष समानता का यह अर्थ नहीं है कि काम-धंधे भी समान हों | यह सही है कि स्त्री के आखेट करने अथवा भाला लेकर चलने पर कोई कानूनी बंदिश नहीं होनी चाहिए | लेकिन जो काम पुरुष का है, उसे करने से वह स्वभावतया झिझकती है | प्रकृति ने स्त्री और पुरुष को एक-दूसरे का पूरक बनाया है | जिस प्रकार उनके शरीर के आकार परिभाषित हैं उसी प्रकार उनके काम भी परिभाषित हैं |*(हरि, 2-12-1939, पृ. 359)*

कानून बनाने का काम ज़्यादातर पुरुषों के हाथ में रहा है, और इस स्वनिर्धारित काम को करते समय पुरुष ने सदा औचित्य और विवेक से काम नहीं लिया है | स्त्रियों के पुनरुद्धार का सबसे बड़ा काम यह है कि हम उन कलंकों को मिटा दें जिन्हें हमारे शास्त्रों ने स्त्रियों के अनिवार्य और स्वभावगत लक्षण बताया है | इसे कौन करेगा और कैसे करेगा ?

मेरी विनम्र सम्मति में, इसके लिए हमें सीता, दमयंती और द्रौपदी जैसी निर्मल, दृढ़ और आत्मनियंत्रित महिलाएं पैदा करनी होंगी | यदि हम यह कर सकें तो हिंदू समाज इन आधुनिक बहनों को भी वही आदर देगा जो वह बीते युग की महान देवियों को देता आया है | उनके शब्द भी शास्त्र के समान प्रामाणिक माने जाएंगे | हम अपनी स्मृतियों में उन पर कहीं-कहीं किए गए आक्षेपों के लिए शर्म महसूस करेंगे और जल्दी ही उन्हें भुला देंगे | हिंदू समाज में ऐसी क्रांतियां पहले हुई हैं और भविष्य में भी होंगी; वस्तुत: इससे धर्म को स्थिरता प्राप्त होगी | *(स्पीरा, पृ. 424)*

मैं स्त्री और पुरुष में कोई भेद नहीं करता | स्त्रियों को भी पुरुषों के समान स्वयं को स्वाधीन अनुभव करना चाहिए | वीरता केवल पुरुषों की बपौती नहीं है | *(हरि, 5-1-1947, पृ. 478)*

आज बहुत कम महिलाएं राजनीति में भाग लेती हैं और इनमें से अधिकांश स्वतंत्र चिंतन नहीं करतीं | वे अपने माता-पिता अथवा अपने पति के आदेशों का पालन करके ही संतोष का अनुभव कर लेती हैं | अपनी निर्भरता का अहसास होने पर वे स्त्री-अधिकार की आवाज़ बुलंद करने लगती हैं | महिला कार्यकर्ताओं को चाहिए कि ऐसा करने के बजाए स्त्रियों के नाम मतदाता सूचियों में लिखाएं, उन्हें व्यावहारिक शिक्षा दें या दिलाने की व्यवस्था करें, उन्हें स्वतंत्र रूप से सोचने की सीख दें और जात-पांत के बंधनों से मुक्त कराएं ताकि बदलाव आए | इससे पुरुष उनकी शक्ति और त्याग की क्षमता को पहचानने और उन्हें प्रतिष्ठित स्थानों पर बिठाने के लिए बाध्य होंगे | *(हरि, 21-4-1946, पृ. 96)*

स्त्रियों का स्वयं को पुरुषों के अधीन या उनसे हीन समझने का कोई कारण नहीं है | विभिन्न भाषाओं में स्त्री को पुरुष का अर्धांग कहा गया है और इसी तर्क से, पुरुष स्त्री का अर्धांग हुआ | ये अलग सत्ताएं नहीं हैं, बल्कि एक ही के दो भाग हैं | अंग्रेजी भाषा और भी आगे बढ़ते हुए स्त्री को पुरुष का बेहतर अर्धांग (बैटर हाफ) कहकर पुकारती है |

इसलिए स्त्रियों को मेरी सलाह है कि वे सभी अवांछनीय और निकम्मी बंदिशों के खिलाफ सविनय विद्रोह करें | बंदिशें वे ही फायदा पहुंचा सकती हैं जो स्वैच्छिक हों | सविनय विद्रोह से कोई हानि होने की आशंका नहीं है, चूंकि उसके मूल में शुद्धता और सुविवेचित प्रतिरोध होते हैं | *(हरि, 23-3-1947, पृ. 80)*

पुरुष को चाहिए कि स्त्री को उचित स्थान देना सीखे; जिस देश अथवा समुदाय में स्त्री का आदर नहीं होता, उसे सुसंस्कृत नहीं कहा जा सकता | *(हरि, 11-1-1948, पृ. 508)*

पर्दा

स्त्री के चरित्र की निर्मलता को लेकर इतनी विकृत चिंता करने की क्या जरूरत है ? क्या पुरुष के चरित्र की निर्मलता के मामले में स्त्री को बोलने दिया जाता है ? पुरुष की पाकीजगी के बारे में स्त्री की चिंता की बात कभी सुनाई नहीं देती | स्त्री के चरित्र की निर्मलता को विनियमित करने का अधिकार पुरुष के हाथों में क्यों रहें ? यह चीज़ ऊपर से नहीं थोपी जा सकती | यह अंदर से पैदा होने वाली चीज़ है, इसलिए यह व्यक्ति के अपने प्रयास पर छोड़नी होगी | *(यंग, 25-11-1926, पृ. 415)*

सतीत्व किसी तापगृह में विकसित नहीं होता | पर्दे की दीवार खड़ी करके उसकी रक्षा नहीं की जा सकती | यह अंदर से पैदा होने वाली चीज़ है और इसका महत्व तभी है जब यह प्रत्येक अयाचित प्रलोभन का मुकाबला कर सके | *(यंग, 3-2-1927, पृ. 37)*

दहेज प्रथा

यह प्रथा समाप्त होनी ही चाहिए | विवाह माता-पिता द्वारा पैसे के जुगाड़ का साधन नहीं रहना चाहिए | इस प्रथा का जाति प्रथा से घनिष्ट संबंध है | जब तक चयन का क्षेत्र किसी जाति-विशेष के कुछ सौ युवा लड़के अथवा लड़कियों तक सीमित रहेगा, दहेज प्रथा कायम रहेगी, भले ही उसके विरोध में कितनी ही आवाज़ उठाई जाए | अगर इस बुराई का उन्मूलन करना है तो लड़के-लड़कियों या उनके माता-पिताओं को जाति के बंधन तोड़ने होंगे | इसके लिए हमारी शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जो राष्ट्र की युवा पीढ़ी की मानसिकता में क्रांति ला दे | *(हरि, 23-5-1936, पृ. 117)*

जो युवक दहेज को अपनी शादी की शर्त बनाता है, वह अपनी शिक्षा और देश को बदनाम करता है और स्त्रीत्व का अनादर करता है |

....दहेज की कुत्सित प्रथा के विरुद्ध जबर्दस्त जनमत तैयार किया जाना चाहिए और जो युवक इस पाप के पैसे से अपने हाथ काले करें, उन्हें समाज से बहिष्कृत कर दिया जाना चाहिए | लड़कियों के माता-पिताओं को अंग्रेजी उपाधियों की चकाचौंध में नहीं आना चाहिए और अपनी लड़कियों के लिए सच्चे वीर युवक ढूंढने के लिए अपनी जाति अथवा प्रांत से बाहर जाने में संकोच नहीं करना चाहिए | *(यंग, 21-6-1929, पृ. 207)*

विधवा पुनर्विवाह

अपने जीवन-साथी के प्रेमवश यदि कोई विधवा जान-बूझकर स्वेच्छा से वैधव्य स्वीकार करती है तो वह अपने घर को पवित्र करती है और स्वयं धर्म का उन्नयन करती है | लेकिन धर्म या प्रथा द्वारा आरोपित वैधव्य एक असहनीय भार है और यह घर को गुप्त पाप से अपवित्र करता है तथा धर्म का पतन करता है |

यदि हमें शुद्ध रहना है और हिंदुत्व की रक्षा करनी है तो हमें इस बलात वैधव्य के विष से अपने आपको मुक्त करना चाहिए | इस सुधार की शुरुआत उन घरों से की जानी चाहिए जिनमें बाल विधवाएं हैं | लोगों को साहस करके अपने अभिभावकत्व में रहने वाली बाल विधवाओं का बाकायदा अच्छी जगह विवाह कर देना चाहिए | मैं 'पुनर्विवाह' शब्द का प्रयोग इसलिए नहीं कर रहा कि उनका तो वस्तुत: विवाह कभी हुआ ही नहीं था | *(यंग, 5-8-1926, पृ. 276)*

तलाक

विवाह दो व्यक्तियों के बीच शरीर-संबंध के अधिकार की पुष्टि करता है; इसमें यह बात निहित है कि वे किसी अन्य व्यक्ति से शरीर-संबंध नहीं रखेंगे | पति-पत्नी के बीच शरीर-संबंध, उनकी संयुक्त सम्मति से, उनके द्वारा जब वांछनीय समझा जाए तब होगा | लेकिन विवाह पति अथवा पत्नी को यह अधिकार नहीं देता कि वह जब

चाहे, शरीर-संबंध के लिए अपने साथी को विवश करे | यदि एक साथी नैतिक अथवा अन्य कारणों से दूसरे साथी की इच्छा का पालन न करे तो उस स्थिति में क्या किया जाना चाहिए, यह एक अलग प्रश्न है | व्यक्तिगत रूप से, अगर तलाक ही एकमात्र विकल्प हो तो मैं अपनी नैतिक प्रगति में बाधा डालने के बजाए तलाक के विकल्प को चुनने में हिचकिचाऊंगा नहीं, बशर्ते कि मेरा इरादा विशुद्ध नैतिक आधार पर स्वयं को संयमित करने का हो | *(यंग, 8-10-1925, पृ. 346)*

61. यौन शिक्षा

हमारी शिक्षा पद्धति में यौन विज्ञान की शिक्षा का....क्या स्थान है, या उसका कोई स्थान होना भी चाहिए अथवा नहीं ? यौन विज्ञान दो प्रकार का है – एक वह जो काम के आवेग को नियंत्रित अथवा उस पर विजय पाने से संबंधित है और दूसरा, जो उसे उद्दीप्त करने और तृप्त करने से संबंधित है | पहले प्रकार के यौन विज्ञान की शिक्षा बच्चे के लिए उतनी ही आवश्यक है जितनी कि दूसरे प्रकार की यौन शिक्षा हानिकारक और खतरनाक है और इसलिए सर्वथा त्याज्य है | सभी महान धर्मों ने काम को मनुष्य का सबसे कट्टर शत्रु माना है, जो ठीक भी है; क्रोध अथवा घृणा का नंबर उसके बाद ही आता है | गीता के अनुसार, क्रोध काम से ही उत्पन्न होता है | वैसे, गीता में, 'काम' को व्यापक अर्थ में लिया गया है | लेकिन यह उस संकुचित अर्थ पर भी उसी प्रकार लागू होता है जिसमें हम यहां उसका प्रयोग कर रहे हैं |

हमारा प्रश्न अभी भी अनुत्तरित है – क्या किशोर वय के बच्चों को प्रजनन अंगों के प्रयोग और उनके कार्य का ज्ञान कराना वांछनीय है ? मुझे लगता है कि एक सीमा तक ऐसा ज्ञान कराना आवश्यक है | वर्तमान में, वे यह ज्ञान यहां-वहां से चुराते हैं जिसके परिणामस्वरूप अनेक कुप्रवृत्तियां जन्म लेती हैं | हम काम के आवेग की ओर से आंख मूंदकर उसे नियंत्रित अथवा जीत नहीं सकते | इसलिए मैं पक्के तौर पर इस बात का समर्थन करता हूं कि किशोर वय के लड़के-लड़कियों को अपने प्रजनन अंगों के महत्व और प्रयोग की शिक्षा दी जानी चाहिए | मैंने, अपने तरीके से, उन किशोर लड़के-लड़कियों को जिनके प्रशिक्षण का दायित्व मेरे ऊपर था, यह ज्ञान देने का प्रयास किया भी है |

लेकिन जिस यौन शिक्षा का समर्थन मैं कर रहा हूं, उसका ध्येय काम के आवेग को जीतना और उसका उदात्तीकरण होना चाहिए | इस शिक्षा से बच्चों के मन में अपने आप यह बात घर कर जानी चाहिए कि मनुष्य और पशु के बीच में एक मौलिक भेद है और वह यह कि प्रकृति ने मनुष्य को सोचने और महसूस करने, दोनों की योग्यताएं देकर विशेष रूप से उपकृत किया है | 'मनुष्य' शब्द का अर्थ ही यह है कि वह ऐसा जीव है जो केवल महसूस ही नहीं कर सकता बल्कि सोच भी सकता है | इसलिए विवेकशून्य वृत्तियों के ऊपर विवेक के प्रभुत्व को त्यागना मनुष्यत्व को ही त्यागने के समान है | मनुष्य तेजी से सोच सकता है और यह सोच उसकी वृत्तियों को निर्देशित कर सकती है | इसके विपरीत, पशु की आत्मा सुप्तावस्था में रहती है | हृदय को जगाना आत्मा को जगाना है जिससे विवेक जाग्रत होता है और भले-बुरे के बीच भेद करने की क्षमता विकसित होती है |

इस सच्चे यौन विज्ञान की शिक्षा कौन दे ? जाहिर है कि यह शिक्षा वही दे सकता है जिसने अपनी वासनाओं पर विजय प्राप्त कर ली हो | खगोलशास्त्र और विज्ञान की अन्य शाखाओं को पढ़ाने के लिए ऐसे अध्यापक नियुक्त किए जाते हैं जिन्होंने उनका प्रशिक्षण लिया है और जिन्हें अपने विषय का प्रामाणिक ज्ञान है | इसी प्रकार यौन

विज्ञान अर्थात यौन नियंत्रण की शिक्षा देने वाले अध्यापक ऐसे होने चाहिए जिन्होंने इस विषय का अध्ययन किया है और जो स्वयं पर नियंत्रण पा चुके हैं | आप कितनी ही ऊंची-ऊंची बातें कीजिए, पर जब तक उनके पीछे ईमानदारी और अनुभव नहीं होगा तब तक वे जड़ और निष्प्राण रहेंगी और लोगों के हृदय में पैठने और उन्हें प्रेरित करने में नितांत असफल सिद्ध होंगी | इसके विपरीत, जो वाणी आत्मसिद्धि और सच्चे अनुभव से उद्‌भूत होती है, वह सदा अपने उद्देश्य में सफल होती है |

आज हमारा संपूर्ण पर्यावरण – हमारी पढ़ाई, हमारा चिंतन और हमारा सामाजिक व्यवहार – प्राय: कामेच्छा को सहारा देने और उसकी पूर्ति के उपाय करने की ओर प्रवृत्त है | इसके चंगुल से निकलना आसान नहीं है | लेकिन हमें इसके लिए पूरा जोर लगा देना चाहिए | अगर थोड़े-से भी अध्यापक ऐसे हों जिन्हें व्यावहारिक अनुभव हो, जो आत्मनियंत्रण को मनुष्य का सर्वोच्च कर्तव्य मानते हों और जो अपने लक्ष्य की प्राप्ति के प्रति सच्चे तथा अमिट विश्वास से अनुप्राणित हों तो उनका श्रम बच्चों के जीवन-पथ को आलोकित कर सकता है....असावधानों को कामुकता के दलदल में फंसने से बचा सकता है और जो पहले ही उसके शिकार हो चुके हैं, उनका उद्धार कर सकता है | *(हरि, 21-11-1936, पृ. 322)*

62. स्त्रियों के विरुद्ध अपराध

औरत की आबरू

मेरी सदा से यह धारणा रही है कि स्त्री की इच्छा के विरुद्ध उसके साथ कुकृत्य करना असंभव है | ऐसा तभी होता है जब वह भयग्रस्त हो जाती है या अपनी नैतिक शक्ति को नहीं पहचान पाती | यदि वह आक्रांता की शारीरिक शक्ति का मुकाबला न कर पाए तो उसके चरित्र की निर्मलता उसे पुरुष की पाशविकता का शिकार होने से पहले ही अपने प्राण दे देने की शक्ति प्रदान करेगी |

सीता का उदाहरण लीजिए | शारीरिक दृष्टि से वह रावण के आगे कमजोर थी, लेकिन उसकी चारित्रिक निर्मलता रावण के अकूत बल पर भी भारी थी | उसने सीता को अनेक प्रकार के प्रलोभन दिए, पर वह सीता की सहमति के बिना उसके शरीर का स्पर्श नहीं कर सका | इसके विपरीत, यदि स्त्री अपनी शारीरिक शक्ति या हथियार पर भरोसा करे तो उस शक्ति के चूकते ही वह परास्त हो जाएगी | *(हरि, 1-9-1940, पृ. 266)*

मेरी निश्चित धारणा है कि जो स्त्री निर्भय है और यह जानती है कि उसकी चारित्रिक निर्मलता उसकी सबसे बड़ी ढाल है, उसकी आबरू कभी नहीं लूट सकती | पुरुष कितना ही पाशविक हो, वह उसकी निर्मलता के अग्निस्तंभ के सामने शर्म से झुक जाएगा....

इसीलिए मैं महिलाओं से कहता हूं....यह साहस पैदा करने की कोशिश करो | अगर वे ऐसा कर सकें तो वे निर्भय हो जाएंगी और आक्रमण का विचार मन में आते ही आज की तरह कांपना बंद कर देंगी....अभिभावकों और पतियों को चाहिए कि महिलाओं को निर्भय बनने की शिक्षा दें | इसका सबसे अच्छा तरीका ईश्वर में जाग्रत आस्था पैदा करना है | यद्यपि ईश्वर दिखाई नहीं देता, पर वह मनुष्य का अचूक संरक्षक है | जिसे ईश्वर में आस्था है, वह व्यक्ति सर्वाधिक निर्भय होता है....

जब स्त्री पर आक्रमण हो तो उसे हिंसा, अहिंसा की बात नहीं सोचनी चाहिए | उसका प्रमुख कर्तव्य अपनी रक्षा करना है | अपनी आबरू को बचाने के लिए जो भी उपाय उसको सूझे, वह उसे अपनाए | ईश्वर ने उसे नाखून और दांत दिए हैं | उसे अपनी पूरी ताकत के साथ उनका इस्तेमाल करना चाहिए और जरूरी हो तो इस प्रयास में जान दे देनी चाहिए | जिस पुरुष या स्त्री ने मृत्यु के भय को जीत लिया है, वह अपनी जान देकर स्वयं अपनी ही रक्षा नहीं कर सकता बल्कि दूसरों की भी कर सकता है | *(हरि, 1-3-1942, पृ. 60)*

जिस समाज में हम रह रहे हैं उसमें स्त्री की आबरू पर इस तरह के हमले होते रहते हैं....अहिंसक स्त्री अथवा पुरुष को अपनी आत्मरक्षा के लिए अथवा अपने घर की स्त्रियों की आबरू बचाने के लिए प्रतिकार, क्रोध या दुर्भावना मन में लाए बगैर अपने जीवन की बलि दे देनी चाहिए | यह परम वीरता है | *(हरि, 15-9-1946, पृ. 312)*

वीरता और इज्जत के साथ मरने की कला सीखने के लिए किसी प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती; इसके लिए केवल ईश्वर में जाग्रत विश्वास चाहिए | *(हरि, 5-10-1947, पृ. 354)*

वेश्यावृत्ति

वेश्यावृत्ति उतनी ही पुरानी है जितनी यह दुनिया, लेकिन आज यह जिस प्रकार नगर-जीवन का एक नियमित लक्षण बन गई है, वैसी शायद पहले कभी नहीं थी | जो भी हो, एक वक्त ऐसा जरूर आएगा जब मानवता इस अभिशाप के विरुद्ध विद्रोह कर देगी और वेश्यावृत्ति बीते जमाने की चीज़ हो जाएगी | मानवता ने अनेक कुरीतियों से, भले ही वे बहुत अर्से से चली आ रही हों, इसी तरह छुटकारा पाया है | *(यंग, 28-5-1925, पृ. 187)*

वेश्यावृत्ति के साथ निपटने का सही तरीका यह है कि महिलाएं दोहरा प्रचार करें : (अ) उन स्त्रियों के बीच जो आजीविका के लिए अपना शरीर बेचती हैं, और (आ) पुरुषों के बीच, जिन्हें वे अपनी उन बहनों के प्रति बेहतर व्यवहार करने के लिए मजबूर करें जिन्हें वे अज्ञानता या धृष्टतावश अबला कह कर पुकारते हैं |

मुझे याद है कि वर्षों पहले, उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में, वीर साल्वेशन आर्मी के सदस्य, अपने प्राणों को दांव पर लगाकर, बंबई की बदनाम गलियों में जहां वेश्यागृह थे, धरना दिया करते थे | कोई कारण नहीं कि ऐसे ही अभियान और बड़े पैमाने पर न चलाए जा सकें | *(हरि, 4-9-1937, पृ. 233)*

'वेश्या' शब्द व्यभिचारिणी स्त्री के लिए प्रयुक्त होता है | लेकिन वेश्यागामी पुरुष भी उन स्त्रियों से कम पाप के भागी नहीं हैं जो, अनेक मामलों में, अपना पेट भरने के लिए ही अपने शरीर को बेचती हैं | इस कुप्रथा को अवैध घोषित कर देना चाहिए | लेकिन कानून भी एक सीमा तक ही मदद कर सकता है | कानून के बावजूद प्रत्येक देश में चोरी-छिपे शरीर का व्यापार चलता है | इसमें जाग्रत लोकमत कानून की उसी प्रकार सहायता कर सकता है जिस प्रकार वह अनेक कानूनों को व्यर्थ कर देता है | *(हरि, 15-9-1946, पृ. 310)*

63. आश्रम के व्रत

मैंने जीवन का एक सूत्र माना है और वह यह कि आदमी चाहे जितना बड़ा हो, उसके द्वारा किया गया कोई काम तब तक नहीं फले-फूलेगा जब तक कि वह व्यक्ति धर्मनिष्ठ न हो | लेकिन धर्म है क्या ? ....मेरा उत्तर है : धर्म वह नहीं है जो तुम्हें दुनिया भर के धर्मग्रंथों को पढ़ने पर मिलेगा; धर्म वस्तुत: बुद्धिग्राह्य नहीं है, यह हृदयग्राह्य है | यह हमारे लिए कोई बाहर की चीज़ नहीं है, बल्कि इसका विकास हमारे भीतर से ही होता है | यह हमेशा हमारे भीतर रहता है : कुछ को इसका बोध होता है, कुछ इससे बेखबर रहते हैं | लेकिन यह रहता हमेशा है; हम अपने अंदर विद्यमान इस धार्मिक वृत्ति को बाहरी सहायता से जगाएं या आंतरिक विकास करके, हम जो भी तरीका अपनाएं; पर अगर हम कोई काम ठीक ढंग से करना चाहते हैं या ऐसा कुछ करना चाहते हैं जो टिकने वाला हो तो हमें अपनी धार्मिक वृत्ति को जगाना अवश्य होगा |

हमारे धर्मग्रंथों ने कुछ नियम निर्धारित किए हैं जिन्हें उन्होंने जीवन के सूत्र और स्वयंसिद्ध बातें कहा है जिनको हमें स्वत: स्पष्ट सत्य मानकर चलना है....इनमें वर्षों तक गहन विश्वास करते हुए और उन पर वस्तुत: आचरण करने का प्रयास करते हुए....मैंने उन लोगों का साथ लेना आवश्यक समझा है जो इस संस्था की स्थापना में मेरे वैचारिक साथी रहे हैं....जो नियमावली तैयार की गई है और जिसका पालन आश्रम की सदस्यता चाहने वाले हर व्यक्ति को करना अनिवार्य है, इस प्रकार है :

सत्य का व्रत

यहां सत्य से आशय वह नहीं है जो हम सामान्यतया समझते हैं; सत्य से आशय वह भी नहीं है जो 'सत्यवादिता सबसे अच्छी नीति है' में प्रतिध्वनित होता है जिसका निहितार्थ यह है कि अगर यह सबसे अच्छी नीति न हो तो हम इसका त्याग कर सकते हैं | आश्रम में सत्य से आशय यह है कि हमें अपने जीवन को हर कीमत पर सत्य के नियम के अनुसार चलाना है, और इसे परिभाषित करने के लिए मैंने प्रह्लाद के दृष्टांत को आदर्श माना है | सत्य की रक्षा के लिए प्रह्लाद ने स्वयं अपने पिता का विरोध करने का साहस किया, उन्होंने प्रतिकार द्वारा अथवा पिता के विरुद्ध जवाबी कार्रवाई करके अपनी रक्षा नहीं की | लेकिन सत्य को जैसा प्रह्लाद जानते थे, उसकी रक्षा के लिए वे अपने पिता और उनके अनुचरों द्वारा दी गई यातनाओं का प्रतिकार किए बिना अपने प्राण देने के लिए प्रस्तुत हो गए | यही नहीं, उन्होंने उन यातनाओं से स्वयं को बचाने का भी प्रयास नहीं किया; उन्होंने अपने होठों पर मुस्कान लिए हुए वे सभी असंख्य यातनाएं झेलीं जिनके परिणामस्वरूप अंत में सत्य की विजय हुई | प्रह्लाद ने यातनाएं इसलिए नहीं झेलीं कि उन्हें पता था कि अपने जीवनकाल में ही एक-न-एक दिन वे सत्य के नियम की अचूकता को अवश्य सिद्ध कर सकेंगे | होना तो यही था, लेकिन अगर यातनाएं झेलते-झेलते उनके प्राण भी चले

जाते तो भी वे सत्य पर दृढ़ रहते | यही वह सत्य है जिसका मैं पालन करना चाहूंगा....आश्रम का नियम है कि जब हम 'न' कहना चाहें तो हमें 'न' ही कहना चाहिए, भले ही उसका परिणाम कुछ भी हो |

अहिंसा का सिद्धांत

अहिंसा का शाब्दिक अर्थ है 'न मारना' | लेकिन मेरी दृष्टि में इसके हजारों अर्थ हैं जो मुझे बड़ी ऊंचाई, बल्कि कहूं कि अनंत ऊंचाई के दर्शन कराते हैं....अहिंसा का वास्तविक आशय है कि तुम किसी को कष्ट नहीं पहुंचाओगे; जो व्यक्ति तुम्हें अपना शत्रु समझता है, उसके लिए भी अपने मन में द्वेष की भावना नहीं लाओगे | जो व्यक्ति इस सिद्धांत में विश्वास करता है, वह किसी को अपना शत्रु नहीं मानता....फिर भी कुछ लोग ऐसे जरूर होते हैं जो स्वयं को उसका शत्रु मानते हैं....इसलिए हमने यह धारणा बनाई है कि ऐसे लोगों के बारे में भी अपने मन में दुर्भावना न लाएं | अगर हम घूंसे का जवाब घूंसे से देंगे तो हम अहिंसा के सिद्धांत से च्युत हो जाएंगे | मैं इससे भी एक कदम आगे जाता हूं | अगर हम अपने किसी मित्र या तथाकथित शत्रु की कार्रवाई का बुरा मान जाएं तो यह भी अहिंसा के सिद्धांत से विचलित होना है | जब मैं कहता हूं कि 'बुरा न मानें' तो मेरा आशय यह नहीं है कि उसके प्रति मौन साध लें, बल्कि 'बुरा न मानने' से मेरा तात्पर्य यह है कि हम यह मनौती न मनाएं कि शत्रु का किसी तरह अपकार हो जाए, या कि वह समाप्त हो जाए – हमारी या किसी अन्य व्यक्ति की कार्रवाई के कारण ही नहीं, बल्कि दैवी घटना के फलस्वरूप भी नहीं | यदि हम ऐसी मनौती भी मानते हैं तो वह भी अहिंसा के सिद्धांत से विचलित होना है | जो व्यक्ति आश्रम के सदस्य बनना चाहते हैं, उनके लिए अहिंसा के इस अर्थ को शब्दश: स्वीकार करना अनिवार्य है |

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि हम इस सिद्धांत पर शत-प्रतिशत आचरण करते हैं | ऐसा कहां कर पाते हैं ? यह तो एक आदर्श है जो हमें प्राप्त करना है और यदि हम इसे प्राप्त करने में समर्थ हों तो यह इसी क्षण प्राप्त करने योग्य है | लेकिन यह कोई ज्यामितिक साध्य नहीं है और न ही उच्चतर गणित का कोई कठिन प्रश्न है – यह इन सबसे कहीं ज़्यादा कठिन चीज़ है | तुममें से बहुतों ने उन समस्याओं को सुलझाने के लिए कठिन परिश्रम किया है | अगर तुम इस सिद्धांत का पालन करना चाहते हो तो तुम्हें कठिन परिश्रम से भी कहीं ज्यादा उद्योग करना होगा | तुम्हें जाने कितनी रातें आखों-ही-आंखों में काट देनी होंगी और अनेक मानसिक यातनाओं तथा घोर पीड़ाओं से गुजरना होगा, तब कहीं जाकर तुम्हें वह लक्ष्य दिखाई देगा | अगर हम यह जानना चाहते हैं कि धार्मिक जीवन क्या होता है तो तुम्हें और मुझे इस लक्ष्य को प्राप्त करना ही होगा; इससे कम किसी चीज़ से काम नहीं चलेगा |

....जो व्यक्ति इस सिद्धांत की प्रभाविता में विश्वास करता है, वह जब इस लक्ष्य के निकट पहुंचने लगेगा तो पाएगा कि सारा संसार उसके चरणों में है....अगर तुम अपने प्रेम – अर्थात अहिंसा – को इस रूप में प्रकट कर पाते हो

कि वह तुम्हारे तथाकथित शत्रु पर अमिट प्रभाव छोड़ जाता है, तो वह निश्चय ही उस प्रेम का प्रतिदान देगा....इस नियम के अंतर्गत पूर्व-नियोजित हत्याओं या खुल्लमखुल्ला कत्लों अथवा....अपने देश के लिए या तुम्हारी देखरेख में जो प्रियजन हैं, उनके सम्मान की रक्षा के लिए भी किसी तरह की हिंसा का कोई स्थान नहीं है | क्योंकि वह उनके सम्मान की निकृष्ट रक्षा ही होगी | अहिंसा का सिद्धांत कहता है कि जो तुम्हारी देखरेख में है, उनके सम्मान की रक्षा करने के लिए तुम्हें स्वयं को अत्याचारी के हाथों में दे देना चाहिए | और इसके लिए हिंसा पर उतारू होने की अपेक्षा कहीं अधिक शारीरिक और मानसिक साहस की जरूरत है....अगर तुम अपने प्रियजन और विरोधी के बीच डटे रहते हो और बिना प्रतिकार किए विरोधी की मार खाते रहते हो, तो परिणाम क्या होता है ? मैं तुम्हें वचन देता हूं कि अत्याचारी अपनी सारी हिंसा तुम्हारे ऊपर निकालेगा, और तुम्हारा प्रियजन सही-सलामत रहेगा | इस जीवन-पद्धति में, राष्ट्रप्रेम की ऐसी कोई धारणा नहीं है जिसके कारण उस प्रकार के युद्धों को उचित ठहराया जा सके जैसे आज यूरोप में लड़े जा रहे हैं |

ब्रह्मचर्य का व्रत

जो राष्ट्र-सेवा करना चाहते हैं अथवा सच्चे धार्मिक जीवन की झलक पाना चाहते हैं उन्हें, वे विवाहित हों या अविवाहित, ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए | विवाह केवल स्त्री को पुरुष के निकट लाता है और वे एक विशेष अर्थ में मित्र बन जाते हैं – मित्रता का यह बंधन न इस जन्म में टूटता है और न अगले जन्मों में | लेकिन मैं नहीं समझता कि विवाह की हमारी जो धारणा है, उसमें कामवासना का प्रवेश होना चाहिए | जो भी हो, हम आश्रम में आकर रहने वालों के सामने यह व्रत प्रस्तुत करते हैं | मैं यहां इसकी और चर्चा नहीं करूंगा |

रसनेंद्रिय के नियंत्रण का व्रत

जो आदमी सरलता के साथ अपनी वासनाओं पर नियंत्रण स्थापित करना चाहता है, उसे अपनी रसनेंद्रिय को वश में करना चाहिए | मुझे मालूम है कि यह व्रत सबसे कठिन है – जब तक हम उद्दीपक, गरम और उत्तेजक मसालों से छुटकारा पाने के लिए कमर नहीं कसेंगे....हम वासनाओं के अतिरेकी, अनावश्यक और उत्तेजक उद्दीपन को नियंत्रित नहीं कर पाएंगे....यदि हमने ऐसा न किया....तो हम ईश्वर द्वारा प्रदत्त इस शरीर रूपी पवित्र थाती का दुरुपयोग करेंगे और पशुओं से भी बदतर जीवन जीते हुए खान, पान, मैथुन आदि उन्हीं वासनाओं में लिप्त रहे आएंगे जो समान रूप से मनुष्य और पशु, दोनों के लक्षण हैं | लेकिन क्या तुमने कभी गाय या घोड़े को हमारी तरह जीभ की गुलामी करते हुए देखा है ? तुम्हारे विचार में क्या यह संस्कृति की पहचान है, सच्चे जीवन की पहचान है, कि हम अपने व्यंजनों की संख्या में इतनी वृद्धि करते जाएं कि यह भी पता न रहे कि हम कहां हैं, और नये-नये व्यंजनों की तलाश में तब तक लगे रहें जब तक कि पूरी तरह पागल बनकर अखबारों के पीछे न भागने लगें जिनमें नित नये व्यंजनों के विज्ञापन दिए रहते हैं ?

अस्तेय का व्रत

मेरा मानना है कि हम सब एक तरह से चोर ही हैं | अगर मैं कोई ऐसी चीज़ लेकर अपने पास रख लेता हूं जिसकी मुझे तत्काल आवश्यकता नहीं है तो मैं किसी अन्य व्यक्ति से वह चीज़ चुरा रहा हूं | प्रकृति का यह मौलिक नियम है, जिसका कोई अपवाद नहीं है, कि वह हमारी दैनंदिन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जितना जरूरी है, ठीक उतना ही उत्पादन करती है; और यदि प्रत्येक व्यक्ति उसमें से सिर्फ उतना हिस्सा ही ले जितने की उसे जरूरत है और फालतू बिलकुल न ले तो दुनिया में से कंगाली उठ जाएगी और कोई आदमी भूख से नहीं मरेगा | मैं समाजवादी नहीं हूं और मैं जिनके पास संपत्ति है, उनसे उसका हरण करना भी नहीं चाहता, लेकिन मैं यह जरूर कहता हूं कि जो व्यक्ति अंधकार में से आते हुए आलोक के दर्शन करना चाहते हैं, उन्हें इस नियम का पालन करना होगा | मैं किसी से उसकी संपत्ति छिनना नहीं चाहता, क्योंकि यह अहिंसा के नियम का त्याग होगा | अगर किसी के पास मुझसे ज्यादा संपत्ति है तो हो | लेकिन जहां तक मेरे जीवन के नियमन का प्रश्न है, मुझे जिस चीज़ की जरूरत नहीं है, उसे मैं अपने पास रखने का साहस नहीं करूंगा | भारत में लाखों लोग ऐसे हैं जो सिर्फ एक जून रोटी खाकर रहते हैं और वह भी रुखी, सिर्फ चुटकी भर नमक के साथ | जब तक इन गरीबों को भोजन और वस्त्र उपलब्ध नहीं होते तब तक हमारे पास आज जो संपत्ति है, उसे रखने का हमें कोई अधिकार नहीं है | आपको और हमको, जो ज़्यादा समझदार हैं, अपनी आवश्यकताओं का समंजन करना चाहिए, और स्वेच्छापूर्वक अभाव की जिंदगी भी जीनी चाहिए ताकि इन गरीबों की देखभाल हो सके और उन्हें भोजन-वस्त्र मिल सकें |

अपरिग्रह का व्रत

यह तो फिर अपने आप आ जाता है |

स्वदेशी का व्रत

स्वदेशी का व्रत अनिवार्य व्रत है | जब हम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपने पड़ोसी को छोड़कर किसी और के पास जाते हैं तो मानव जाति के एक पवित्र नियम को तोड़ते हैं | अगर कोई आदमी बंबई से आकर तुम्हें कुछ सामान बेचना चाहता है और यदि तुम्हारे मद्रास में जन्मे और पले-बढ़े किसी व्यापारी के पास भी बेचने के लिए वही सामान है तो तुम्हारा बंबई के व्यापारी से सामान खरीदना उचित नहीं है |

स्वदेशी की मेरी धारणा यही है | अपने गांव में तुम्हें मद्रास से बाल काटने का प्रशिक्षण लेकर आए नाई के बजाए गांव के नाई को ही प्रश्रय देना है | अगर तुम समझते हो कि तुम्हारे गांव का नाई भी मद्रास के नाई जैसा कुशल हो जाए तो उसे इसका प्रशिक्षण दिला सकते हो | चाहो तो उसे जरूर मद्रास भेजो और उसे वहां से प्रशिक्षण दिला दो | जब तक तुम यह नहीं करते तब तक उस नाई को छोड़ना तुम्हारे लिए उचित नहीं है | यह स्वदेशी की भावना है | तदनुसार अगर हमें लगे कि बहुत-सी चीज़ें भारत में उपलब्ध नहीं हैं तो हमें उनके बगैर भी काम

चलाना चाहिए | हमें बहुत-सी चीज़ों के बगैर काम चलाना पड़ सकता है, लेकिन मेरा विश्वास करो कि वैसी मन:स्थिति विकसित कर लेने पर तुम्हें लगेगा कि तुम्हारे कंधों से एक बड़ा बोझ उतर गया है | यह अनुभव ठीक वैसा ही होगा जैसा कि 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' नामक अद्वितीय पुस्तक में पिलग्रिम को हुआ था | एक समय ऐसा आया जब पिलग्रिम के ऊपर से वह भारी बोझा उतर गया जिसे वह अनजाने ही ढो रहा था और तब उसे अनुभव हुआ कि वह जब यात्रा पर रवाना हुआ था तब के मुकाबले अब कितना ज़्यादा आज़ाद था | उसी प्रकार की अनुभूति स्वदेशी की भावना को स्वीकार करते ही तुमको भी होगी |

अभय का व्रत

मैंने भारत-भ्रमण करते हुए पाया कि मेरे देशवासी एक जड़ताकारी भय से ग्रस्त हैं | हम सार्वजनिक रूप से अपनी बात कहने का साहस नहीं कर पाते, हम छुपे तौर पर ही अपनी राय जाहिर करते हैं | हम अपने घर की चहारदिवारी में कुछ भी करें, लेकिन उन चीज़ों का पता जनता को नहीं लगता |

अगर हमने मौनव्रत रखा होता तो मुझे कोई आपत्ति न होती | मेरा कहना है कि हमें केवल एक शक्ति से डरना चाहिए, और वह शक्ति है ईश्वर | जब हम ईश्वर से डरने लगेंगे तो मनुष्य से डरने की जरूरत नहीं रहेगी, वह चाहे जितना उच्च पदस्थ हो; और अगर तुम सत्य का व्रत लेना चाहते हो तो अभय परम आवश्यक है | भारत की नियति को निर्देशित करने की आकांक्षा करने से पहले हमें अभय का अभ्यास डालना होगा |

'अछूतों' के संबंध में व्रत

आज हिंदुत्व के ऊपर एक अमिट लांछन लगा हुआ है | मुझे इस बात पर विश्वास करने से इंकार है कि यह प्रथा अनंत काल से चली आ रही है और हमें विरासत में मिली है | मेरे ख्याल में हमारा समाज जब घोर पतन की अवस्था में होगा तब यह 'छूआछूत' की दुखदायी, घृणित और गुलामी की प्रतीक भावना पैदा हुई होगी | इस कुप्रथा ने हमारे समाज में जड़ें जमा ली हैं और आज भी हम इसके शिकार हैं | मेरी समझ में, यह एक अभिशाप है; और जब तक यह अभिशाप हमारे साथ लगा है तब तक यह समझना चाहिए कि इस पवित्र भूमि पर जो-जो विपदाएं आ रही हैं, वे सब हमारे इस घोर पाप का ही दंड है | मेरी समझ में नहीं आता कि किसी व्यक्ति को उसके काम की वजह से अछूत क्यों समझा जाना चाहिए; और आप छात्रगण जो आधुनिक शिक्षा पा रहे हैं, यदि इस अपराध के भागीदार बने रहे तो अच्छा यही होता कि आप अशिक्षित ही रह जाते |

मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा

यूरोप में, प्रत्येक सुसंस्कृत व्यक्ति केवल अपनी ही भाषा नहीं सीखता, बल्कि अन्य भाषाएं भी सीखता है |

भारत की भाषा समस्या को हल करने के लिए हम आश्रमवासियों को अधिक-से-अधिक भारतीय भाषाएं सीखने पर बल देना चाहिए | इन भाषाओं को सीखने का कष्ट अंग्रेजी में निपुणता प्राप्त करने की तुलना में कुछ भी नहीं

है | हम अपने बचपन के वर्षों को कैसे भूल सकते हैं ? लेकिन जब हम विदेशी भाषा के माध्यम से उच्च शिक्षा ग्रहण करने की शुरुआत करते हैं तो ठीक यही होता है | इससे एक दरार पैदा हो जाती है जो हमें बहुत महंगी पड़ेगी | आप शिक्षा और छूआछूत के संबंध को ही देखिए – ज्ञान और शिक्षा का प्रसार होने पर भी छूआछूत कायम है | शिक्षा के प्रभाववश हम छूआछूत की भयंकर बुराई को देखते तो हैं, पर हम भय से जकड़े हुए हैं, अत: हम उसके निराकरण के लिए कुछ कर नहीं पाते |

खादी का व्रत

आप पूछ सकते हैं, 'हम अपने हाथों का इस्तेमाल क्यों करें ?' आप कह सकते हैं, 'हाथ का काम वे करें तो अशिक्षित हैं | मैं तो साहित्य और राजनीतिक निबंध पढ़ने में अपने समय का उपयोग करूंगा |' हमें श्रम की गरिमा को पहचानन चाहिए | अगर कोई नाई या मोची कालिज में पढ़ने लगे तो उसे अपना पेशा नहीं छोड़ देना चाहिए | मैं इन पेशों को डाक्टरी के पेशे के समकक्ष ही मानता हूं |

जब आप इन सभी नियमों का पालन करने लगेंगे तो, अंत में, आपके सामने आएगा :

राजनीति का धार्मिक उपयोग

धर्म से अलग, राजनीति का कोई अर्थ ही नहीं है | यदि छात्रजगत इस देश के राजनीतिक मंच पर एकत्र हो जाए तो यह राष्ट्रीय संवृद्धि का कोई स्वस्थ चिह्न नहीं है; लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि अपने विद्यार्थी-जीवन में तुम्हें राजनीति का अध्ययन नहीं करना चाहिए | राजनीति हमारे जीवन का एक हिस्सा है, हमें अपनी राष्ट्रीय संस्थाओं को समझना चाहिए | हमें अपने बचपन से ही यह समझ पैदा करनी चाहिए | इसीलिए हमारे आश्रम में प्रत्येक बच्चे को देश की राजनीतिक संस्थाओं को समझने की शिक्षा दी जाती है और बताया जाता है कि देश में कौन-कौन सी नयी भावनाएं, नयी-नयी आकांक्षाएं और नया जीवन पनप रहा है | लेकिन हम धार्मिक आस्था के स्थिर और अमिट प्रकाश का प्रसार भी चाहते हैं – उस आस्था का नहीं जो केवल बुद्धिजीवियों को आकर्षित करती है, बल्कि वह आस्था जो हृदय पर स्थायी रूप से अंकित हो जाती है | सबसे पहले हम अपनी धार्मिक चेतना को प्राप्त करना चाहते हैं, इसके साथ ही जीवन का संपूर्ण क्षेत्र हमारे सामने खुल जाता है; यह पवित्र विशेषाधिकार सभी का है ताकि आज के किशोर जब पुरुषत्व को प्राप्त हों तो वे जीवन-संघर्ष के लिए पूरी तरह तैयार हों | आज स्थिति यह है कि अधिकांश राजनीतिक गतिविधियां छात्रों तक सीमित हैं और जब उनका छात्रजीवन समाप्त हो जाता है तो छोटे-मोटे रोजगारों में लगकर वे गुमनामी के शिकार हो जाते हैं | न उन्हें ईश्वर के बारे में कोई ज्ञान होता है, न वे ताजी हवा या चमकते प्रकाश अथवा सच्ची स्फूर्तिदायक स्वतंत्रता के बारे में जानते हैं जो उन नियमों का पालन करने से आती है जिन्हें मैंने आपके समक्ष प्रस्तुत किया है.... *YMCA सभागार, मद्रास में भाषण, फरवरी 16, 1916; (स्पीरा, पृ. 377-90)*

12. स्वतंत्रता और लोकतंत्र

64. स्वतंत्रता का दिव्य संदेश

धीमी स्वतंत्रता जैसी कोई चीज़ नहीं है | स्वतंत्रता तो जन्म के समान है | जब तक हम पूर्ण स्वतंत्र नहीं, हम गुलाम हैं | सभी प्रकार के जन्म एक क्षण में ही घटित होते हैं | *(यंग, 9-3-1922, पृ. 148)*

मुलम्मेदार गुलामी

स्वाभिमानी व्यक्ति के लिए सोने की जंजीरें भी उतनी ही क्लेशकारी होती हैं जितनी कि लोहे की जंजीरें | दंश जंजीर में निहित है, उस धातु में नहीं जिससे जंजीर बनाई जाती है | *(यंग, 6-6-1929, पृ. 188)*

मेरी दृष्टि में सोने की जंजीरें लोहे की जंजीरों की तुलना में कहीं ज़्यादा बुरी हैं, क्योंकि लोहे की जंजीर की क्लेशकारी प्रकृति मनुष्य आसानी से समझ पाता है जबकि सोने की जंजीर का दुख प्राय: भूल जाता है | इसलिए अगर भारत को जंजीरों में बंधे रहना है तो मैं चाहूंगा कि ये सोने या किसी अन्य बहुमूल्य धातु की अपेक्षा लोहे की ही हों | *(यंग, 16-1-1930, पृ. 17)*

स्वतंत्रता का अधिकार

वह स्वतंत्रता बेमानी है जिसमें गलती करने और यहां तक कि पाप करने की स्वतंत्रता भी शामिल न हो | यदि सर्वशक्तिमान प्रभु ने अपने दीनतम प्राणियों को भी गलती करने की स्वतंत्रता दी है तो मैं यह नहीं समझ पाता कि कुछ लोग, वे चाहे जितने अनुभवी और योग्य हों, दूसरे मनुष्यों को उस बहुमूल्य अधिकार से वंचित करके किस प्रकार आनंदित हो सकते हैं | *(यंग, 12-3-1931, पृ. 31)*

जिस प्रकार प्रत्येक देश में खाने, पीने और श्वास लेने का सामर्थ्य होता है उसी प्रकार प्रत्येक राष्ट्र में अपने मामलों की देखभाल करने का सामर्थ्य होता है, चाहे वह इसे कितने ही भद्दे ढंग से करे | *(यंग, 15-10-1931, पृ. 305)*

ऊपर से थोपा गया नियंत्रण सदैव बुरा होता है....जब यह नियंत्रण हट जाएगा तो राष्ट्र आज़ादी से सांस ले सकेगा और उसे गलतियां करने का अधिकार होगा | गलती करते हुए और उन्हें सुधारते हुए प्रगति करने की प्राचीन विधि ही सही विधि है | *(हरि, 21-12-1947, पृ. 477)*

व्यक्तिगत स्वतंत्रता

मेरी निश्चित धारणा है कि व्यक्ति केवल अपनी दुर्बलता के कारण ही अपनी स्वतंत्रता को खोता है | *(इंके, पृ. 209)*

मैं व्यक्तिगत स्वतंत्रता को मूल्यवान समझता हूं, पर आपको यह नहीं भूलना चाहिए कि मनुष्य बुनियादी तौर पर एक सामाजिक प्राणी है | अपने व्यक्तिवाद को सामाजिक प्रगति की अपेक्षाओं के साथ समायोजित करके ही वह इतनी उन्नति कर सका है | अप्रतिबंधित व्यक्तिवाद तो जंगल के पशु का नियम है | हमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक संयम के बीच एक मध्यमार्ग की खोज करनी होगी | समूचे समाज की भलाई के लिए स्वेच्छापूर्वक सामाजिक संयम को स्वीकार करने से व्यक्ति और समाज, जिसका वह सदस्य है, दोनों की संवृद्धि होती है | *(हरि, 27-5-1939, पृ. 144)*

अगर व्यक्तिगत स्वतंत्रता जाती रहे तो निश्चित समझिए कि सब कुछ चला गया, क्योंकि अगर व्यक्ति का ही महत्व न रहा तो समाज में बचा ही क्या ? व्यक्तिगत स्वतंत्रता ही मनुष्य को समाज-सेवा के लिए स्वेच्छापूर्वक पूर्णतया समर्पित करा सकती है | अगर यह समर्पण उससे बलपूर्वक कराया जाएगा तो वह यंत्रचालित मनुष्य के समान काम करेगा और उसके फलस्वरूप समाज बरबाद हो जाएगा | मनुष्य को व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित करके संभवत: किसी समाज की रचना नहीं की जा सकती | यह मनुष्य की प्रवृत्ति के सर्वथा प्रतिकूल है | जिस प्रकार मनुष्य सींग और पूंछ नहीं उगा सकता, उसी प्रकार यदि उसकी बुद्धि उससे छीन ली जाए तो वह फिर मनुष्य नहीं रह जाएगा | वस्तुत: वे लोग भी जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता में विश्वास नहीं करते, स्वयं की स्वतंत्रता में विश्वास करते हैं | चंगेज खां के आधुनिक संस्करण अपनी स्वतंत्रता को अक्षुण्ण रखते हैं | *(हरि, 1-2-1942, पृ. 27)*

स्वतंत्रता की संकल्पना

स्वतंत्रता की मेरी संकल्पना कोई संकुचित संकल्पना नहीं है | उसमें मनुष्य की अपने संपूर्ण ऐश्वर्य के साथ पूर्ण स्वतंत्रता समाविष्ट है | *(हरि, 7-6-1942, पृ. 183)*

प्रत्येक व्यक्ति को अपनी प्रतिभा का उपयोग करने की पूरी-पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए और इसके साथ ही, उसके पड़ोसियों को भी अपनी-अपनी प्रतिभाओं का उपयोग करने की वैसी ही स्वतंत्रता मिलनी चाहिए, किंतु किसी व्यक्ति को अपनी प्रतिभा से होने वाले लाभों के मनमाने उपयोग का अधिकार नहीं होना चाहिए | व्यक्ति राष्ट्र अथवा, कहिए कि, अपने चहुं ओर विद्यमान सामाजिक संरचना का अंग है |

इसलिए वह अपनी प्रतिभा का उपयोग केवल अपने हित में नहीं कर सकता, बल्कि उसे उसका उपयोग उस सामाजिक संरचना के हित में करना चाहिए जिसका वह अंग है और जिसकी मौन अनुमति से वह अपना जीवन जीता है | *(हरि, 2-8-1942, पृ. 249)*

स्वतंत्र होने का संकल्प

कोई अत्याचारी आज तक अपने शिकार के सहयोग के बिना अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सका है | यह अवश्य है कि उसने यह सहयोग प्राय: बलपूर्वक प्राप्त किया है | अधिकांश व्यक्ति प्रतिरोध के परिणामों को भुगतने के बजाए अत्याचारी की इच्छा के सामने घुटने टेक देते हैं | यही कारण है कि आतंक अत्याचारी का प्रमुख शस्त्र होता है | लेकिन इतिहास में ऐसे उदाहरण मौजूद हैं जब अत्याचारी आतंक का सहारा लेने के बावूजद अपने शिकार पर अपनी इच्छा लादने में कामयाब नहीं हुए हैं | *(यंग, 9-6-1920, पृ. 3)*

निरंकुश-से-निरंकुश सरकार भी अपने शासितों की सहमति के बगैर चल नहीं सकती; यह जरूर है कि निरंकुश सरकार यह सहमति प्राय: बलप्रयोग के द्वारा प्राप्त करती है | लेकिन ज्योंही प्रजा के मन से निरंकुश शक्ति का भय जाता रहता है, निरंकुश की शक्ति तिरोहित हो जाती है | *(यंग, 30-6-1920, पृ. 3)*

जब गुलाम यह संकल्प कर लेता है कि वह अब गुलामी नहीं करेगा तो उसी समय उसकी जंजीरें टूट जाती हैं | वह आज़ाद हो जाता है और दूसरों को भी आज़ादी का रास्ता दिखा देता है | आज़ादी और गुलामी मानसिक स्थितियां हैं | इसलिए पहली जरूरत इस बात की है कि हम स्वयं से कहें : 'मुझे अब गुलामी करना मंजूर नहीं है | मैं आदेशों का ज्यों-का-त्यों पालन नहीं करूंगा, बल्कि उन आदेशों को मानने से इंकार कर दूंगा जो मेरे अंत:करण को स्वीकार्य नहीं हैं |'

तुम्हारा तथाकथित स्वामी तुम्हारे ऊपर कोड़े बरसा सकता है और तुमसे अपनी चाकरी कराने के लिए जोर-जबर्दस्ती करने की कोशिश कर सकता है | तुम्हें कहना होगा : 'नहीं, मैं पैसे की खातिर या तुम्हारी धमकी में आकर तुम्हारी चाकरी नहीं करूंगा |' इसके लिए तुम्हें पीड़ा भोगनी पड़ सकती है | पर पीड़ा भोगने की तुम्हारी तत्परता के फलस्वरूप आज़ादी की मशाल जल उठेगी जो फिर कभी नहीं बुझाई जा सकेगी | *(हरि, 24-2-1946, पृ. 18)*

स्वतंत्रता की कीमत

हम एक हों अथवा अनेक, हमें अपने आत्मसम्मान या अपनी परम प्रिय मान्यताओं की कीमत देकर बदले में स्वतंत्रता लेने से इंकार कर देना चाहिए | मैंने देखा है कि छोटे-छोटे बच्चे तक अपने मां-बाप के द्वारा उनके पक्के इरादों को, जिन्हें मां-बाप बिलकुल तुच्छ समझते हैं, ध्वस्त करने का प्रयास किए जाने पर तनकर खड़े हो जाते हैं| *(यंग, 15-12-1921, पृ. 418)*

यदि हम स्वतंत्र स्त्री-पुरुष के रूप में नहीं जी सकते तो इसकी अपेक्षा हमें मौत को गले लगा लेने में अधिक संतोष मानना चाहिए | *(यंग, 5-1-1922, पृ. 5)*

मनुष्य को अपनी पराधीनता के लिए स्वयं को ही दोषी मानना चाहिए | वह जिस क्षण संकल्प कर ले, उसी क्षण स्वाधीन हो सकता है | *(हरि, 11-1-1936, पृ. 380)*

स्वतंत्रता किसी भी कीमत पर महंगी नहीं होती | स्वतंत्रता जीवन का श्वास है | आदमी जीने के लिए क्या नहीं दे देगा ? *(हरि, 10-12-1938, पृ. 368)*

दीनतम व्यक्ति के लिए भी स्वतंत्रता

जब मैं देखता हूं कि कुछ लोग स्वतंत्र भारत में अपने भविष्य को लेकर चिंतित हैं तो मुझे पीड़ा और आश्चर्य, दोनों का अनुभव होता है | जहां तक मेरी मान्यता है, यदि भारत अपनी सीमाओं....केवल कृत्रिम ही नहीं अपितु प्राकृतिक सीमाओं – के भीतर पैदा होने वाले दीनतम प्राणियों तक को स्वतंत्रता की गारंटी नहीं देता तो उसे स्वतंत्र भारत नहीं कहा जाएगा |

हमारा भय हमारी सोचने की शक्तियों को कुंद कर देता है, अन्यथा हमें यह बात तत्काल समझ में आ जानी चाहिए कि आज़ादी एक ऐसी स्थिति है जो हर ईमानदार स्त्री-पुरुष के लिए वर्तमान से तो हर सूरत में बेहतर है | स्वतंत्रता के उदय से केवल उन्हीं को भयभीत होने की आवश्यकता है जो शोषक हैं, दूसरों का पैसा हड़प जाने वाले हैं, डकैत हैं या इसी तरह के अपराधी लोग हैं | *(यंग, 26-12-1929, पृ. 421)*

मैं ऐसे संविधान के लिए प्रयास करूंगा जो भारत को हर प्रकार की दासता और संरक्षण से मुक्त कर दे और जरूरी हो तो, उसे पाप करने का अधिकार भी दे | मैं ऐसे भारत के लिए प्रयास करूंगा जिसमें गरीब-से-गरीब आदमियों को यह अनुभव हो कि यह देश उनका है और इसके निर्माण में उनकी कारगर भूमिका है; एक ऐसा भारत जिसमें लोगों का न कोई उच्च वर्ग होगा और न निम्न वर्ग; एक ऐसा भारत जिसमें सभी समुदाय पूर्ण मैत्रीभाव के साथ रहेंगे | ऐसे भारत में छूआछूत के अभिशाप अथवा मादक द्रव्यों या नशीली दवाइयों के अभिशाप के लिए कोई स्थान नहीं होगा | स्त्रियों को भी पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त होंगे |

चूंकि हमारा बाकी दुनिया के साथ शांतिपूर्ण संबंध होगा....न हम किसी का शोषण करेंगे और न किसी को अपना शोषण करने देंगे....इसलिए हमें कम से कम फौज रखने की जरूरत होगी | उन सभी देशी अथवा विदेशी हितों का पूरी तरह सम्मान किया जाएगा जो भारत के करोड़ों मूक वासियों के हितों के विरुद्ध नहीं हैं | व्यक्तिगत रूप से, मैं देशी और विदेशी के भेद को हिकारत की नजर से देखता हूं | मेरे सपनों का भारत यही है....मुझे कोई और भारत नहीं चाहिए | *(यंग, 10-9-1931, पृ. 255)*

कोई शोषण नहीं

अगर मैं अपने देश के लिए आज़ादी चाहता हूं तो, मेरा विश्वास कीजिए, मैं यह आज़ादी इसलिए नहीं चाहता कि मैं समस्त मानव जाति के पांचवें हिस्से की आबादी वाले राष्ट्र के रूप में, संसार की किसी अन्य प्रजाति अथवा किसी

एक भी व्यक्ति का शोषण करूं | अगर मैं अपने देश की आज़ादी चाहता हूं तो मुझे इसे हासिल करने का तब तक कोई अधिकार नहीं है जब तक कि मैं दुनिया की हरेक प्रजाति को, वह दुर्बल हो अथवा सबल, आज़ादी के इसी अधिकार का उपयोग करने का सहर्ष अवसर नहीं देता और उनके उस अधिकार की कद्र नहीं करता | *(यंग, 1-10-1931, पृ. 278)*

जो लोग खुद आज़ाद होना चाहते हैं, वे दूसरों को गुलाम बनाने की बात सोच भी नहीं सकते | अगर वे ऐसा सोचेंगे तो वे अपनी गुलामी की जंजीरों में ही और ज़्यादा जकड़ जाएंगे | *(हरि, 13-4-1947, पृ. 106)*
मेरी धारणा की स्वतंत्रता आपके भीतर और इस समूचे विश्व में 'ईश्वर के साम्राज्य' की प्राप्ति से किसी अंश में कम नहीं है | मैं इसी स्वप्न को साकार करने के लिए प्रयास करना और उसी के लिए मर जाना पसंद करूंगा, भले ही वह स्वप्न कभी साकार न हो पाए | उसके लिए असीम धैर्य और अध्यवसाय की आवश्यकता है |

यदि भारत केवल राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करके संतुष्ट हो जाता है और मेरे करने योग्य कोई बेहतर काम शेष नहीं रहता तो मैं हिमालय की ओर प्रस्थान कर जाऊंगा और मेरी वाणी सुनने के इच्छुक व्यक्तियों को मुझे वहां ही खोजना होगा | *(हिंस्ट, 1-4-1940)*

ठोस शब्दों में कहें तो....आज़ादी राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक, तीनों प्रकार की होनी चाहिए |

'राजनीतिक' से अनिवार्यत: यह तात्पर्य है कि अंग्रेजी फौज के प्रत्येक स्वरूप का नियंत्रण पूरी तरह हटा लिया जाए | 'आर्थिक' से तात्पर्य है अंग्रेजी पूंजीपतियों और पूंजी तथा उनके भारतीय प्रतिरूपियों से पूरी तरह मुक्ति | दूसरे शब्दों में दीन-से-दीन व्यक्ति को भी यह लगना चाहिए कि वह सर्वाधिक शक्तिसंपन्न व्यक्ति के समकक्ष है | यह तभी संभव है जब पूंजी अथवा पूंजीपति अपने कौशल और पूंजी में दीनतम और निम्नतम व्यक्ति को भागीदारी करने दें |

'नैतिक' से तात्पर्य सशस्त्र रक्षा बलों से मुक्ति है | *(हरि, 5-5-1946, पृ. 116)*

शांति के उपाय

भारत ने कभी किसी राष्ट्र के विरुद्ध लड़ाई नहीं लड़ी है | उसने तो बस कभी-कभी आत्मरक्षा के लिए कुव्यवस्थित अथवा अर्धव्यवस्थित ढंग से आक्रमणकारी का प्रतिरोध किया है | इसलिए उसे शांति की इच्छा का विकास करने की आवश्यकता नहीं है | वह जाने या न जाने, उसे यह पहले से ही प्रचुर मात्रा में प्राप्त है |

वह शांतिपूर्ण उपायों से अपने शोषण का प्रतिरोध करके शांति को बढ़ावा दे सकता है | दूसरे शब्दों में, उसे अपनी आज़ादी....शांतिपूर्ण उपायों से हासिल करनी होगी | अगर वह ऐसा कर सका तो वह किसी एक राष्ट्र द्वारा विश्व शांति के लिए किया गया सबसे बड़ा योगदान होगा | *(यंग, 4-7-1929, पृ. 218)*

मैं तो व्यक्तिगत रूप से, रक्तपात के जरिए आज़ादी हासिल करने की अपेक्षा, जरूरत हुई तो युगों तक प्रतीक्षा करना मंजूर करूंगा | मैं लगभग पैंतीस साल के अविच्छिन्न राजनीतिक अनुभव के बाद, अपने हृदय की अंतरतम गहराइयों से यह अनुभव करता हूं कि दुनिया रक्तपात से बेहद ऊब चुकी है | वह इसका कोई समाधान चाहती है और मैं यह सोच-सोच कर प्रसन्न होता रहता हूं कि इस क्षुधित दुनिया को शांति का मार्ग दिखाने का श्रेय संभवत: इस प्राचीन देश भारत को ही प्राप्त होगा |

इसलिए मुझे दुनिया के सभी बड़े राष्ट्रों को भारत के महान संघर्ष में अपना हार्दिक सहयोग देने के लिए आमंत्रित करते हुए किसी तरह के संकोच का अनुभव नहीं होता | यह दृश्य ध्यान से देखने और स्मरण रखने योग्य है कि करोड़ों लोग राष्ट्र की गरिमा और सम्मान की रक्षा के लिए बिना कोई प्रतिकार किए पीड़ा भोगने के लिए प्रस्तुत हैं| *(इंके, पृ. 209)*

मैं सत्य की बलि देकर आज़ादी हासिल करने से बेहतर यह समझूंगा कि भारत मिट जाए |*(यंग, 1-10-1931, पृ. 281)*

अगर भारत अपनी आज़ादी हासिल कर ले और विश्व-शांति में योगदान न करे तो उससे मेरी आत्मा संतुष्ट नहीं होगी | मेरी धारणा है कि ब्रिटेन जब भारत को लूटना बंद कर देगा तो वह अन्य राष्ट्रों को लूटना भी बंद कर देगा | जो भी हो, भारत हत्यारों में शामिल नहीं होगा | *(यंग, 3-12-1931, पृ. 380*)

भारत की स्वतंत्रता का अर्थ

....भारत की स्वतंत्रता शांति और युद्ध के प्रति विश्व के दृष्टिकोण में निश्चय ही क्रांति ला देगी | भारत की नपुंसकता समस्त मानव जाति को प्रभावित करती है | *(यंग, 17-9-1925, पृ. 322)*

मेरी आकांक्षा स्वतंत्रता से कहीं बढ़कर है | भारत की मुक्ति के जरिए मैं दुनिया की सभी तथाकथित दुर्बल प्रजातियों को पाश्चात्य शोषण से मुक्त कराना चाहता हूं.... *(यंग, 12-1-1928, पृ. 13)*

राष्ट्रीय स्वतंत्रता काल्पनिक वस्तु नहीं है | यह उतनी ही आवश्यक है जितनी कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता | लेकिन अगर ये अहिंसा पर आधारित हों तो कभी एक-दूसरे के लिए भयोत्पादक सिद्ध नहीं हो सकतीं | और, जो बात व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय स्वतंत्रता पर लागू होती है वही अंतर्राष्ट्रीय स्वतंत्रता पर भी लागू है | विधि का यह सूत्र कि 'तुम अपनी संपत्ति का उपयोग इस प्रकार करो कि वह किसी अन्य के अधिकारों को क्षति न पहुंचाए' समान रूप से एक नैतिक सूत्र भी है | यह बहुत ही ठीक कहा गया है कि ब्रह्मांड अणु में समाया हुआ है | ऐसा नहीं है कि अणु के नियम एक हैं और ब्रह्मांड के कोई दूसरे | *(यंग, 30-1-1930, पृ. 37)*

अंतर्राष्ट्रीय सहयोग

मैं सभ्यता के निस्तारण के लिए राष्ट्रों के बीच सहयोग चाहता हूं, लेकिन सहयोग की पूर्वशर्त यह है कि वह स्वतंत्र राष्ट्रों के बीच होना चाहिए जो सहयोग देने में समर्थ हों | *(यंग, 12-11-1931, पृ. 353*)

शोषित प्रजातियों की स्वतंत्रता

मेरे जाने के बाद भारत स्वतंत्र होगा और न केवल भारत अपितु सारी दुनिया स्वतंत्र होगी | मैं नहीं मानता कि ब्रिटेन और अमरीका स्वतंत्र हैं | जब तक उनके पास अश्वेत राष्ट्रों को अपनी अधीनता में रखने की शक्ति है तब तक वे स्वतंत्र नहीं होंगे | मैं अपने ध्येय को पहचानता हूं और स्वतंत्रता क्या है, यह भी जानता हूं | स्वतंत्रता की व्याख्या जो मैं देखता तथा अनुभव करता हूं, उसी के अनुसार करूंगा | *(बांक्रा, 9-8-1942)*

भारत की स्वतंत्रता दुनिया की शोषित प्रजातियों के सामने यह स्पष्ट कर देगी कि स्वतंत्रता बहुत निकट है और किसी भी सूरत में अब उनका शोषण नहीं किया जा सकेगा | *(वही, 18-4-1945)*

65. स्वराज का मेरे लिए क्या अर्थ है

मेरे लिए स्वराज का अर्थ है अपने सर्वाधिक दीनहीन देशवासियों की स्वतंत्रता....मुझे भारत को केवल अंग्रेजों की पराधीनता से मुक्त कराने में ही दिलचस्पी नहीं है | मैं भारत को सभी प्रकार की पराधीनताओं से मुक्त कराने के लिए कटिबद्ध हूं | मुझे एक शासक के स्थान पर दूसरे शासक को लाने की जरा भी इच्छा नहीं है | *(यंग, 12-6-1924, पृ. 195)*

स्वराज से मेरा तात्पर्य ऐसी भारत सरकार से है जो देश की वयस्क जनसंख्या के बहुमत की राय से कायम की गई हो; वयस्कों में स्त्री अथवा पुरुष, यहां जन्मे तथा बाहर से आकर बसे वे सभी लोग सम्मिलित होंगे जिन्होंने राज्य की सेवा में किसी प्रकार का शारीरिक श्रमदान किया होगा तथा मतदाता के रूप में अपने नाम को पंजीकृत कराने का कष्ट उठाया होगा |

सच्चा स्वराज मुट्ठी भर लोगों द्वारा सत्ता-प्राप्ति से नहीं आएगा, बल्कि सत्ता का दुरुपयोग किए जाने की सूरत में, उसका प्रतिरोध करने की जनता का सामर्थ्य विकसित होने से आएगा | दूसरे शब्दों में, स्वराज जनता को सत्ता का नियमन तथा नियंत्रण करने की अपनी क्षमता का विकास करने की शिक्षा देने से आएगा | *(यंग, 29-1-1925, पृ. 41)*

स्वराज का अर्थ है सरकार के नियंत्रण से मुक्त होने का सतत प्रयास, यह सरकार विदेशी हो अथवा राष्ट्रीय | *(यंग, 6-8-1925, पृ. 276)*

स्वराज एक पवित्र शब्द है, यह एक वैदिक शब्द है जिसका अर्थ है स्वशासन तथा आत्मनिग्रह; इसका अर्थ सब प्रकार के संयमों से मुक्ति नहीं है जैसा कि प्राय: 'स्वाधीनता' का अर्थ लगाया जाता है | *(यंग, 19-3-1931, पृ.38)*

गरीबों का स्वराज

मेरे-हमारे-सपनों का स्वराज किसी प्रजातिगत अथवा धार्मिक भेदभावों को नहीं मानता | न यह शिक्षितों अथवा धनवानों की इजारेदारी होगा | स्वराज सभी का होगा, शिक्षितों और धनवानों का भी, पर इसमें खास तौर से अपंग, नेत्रहीन, भूखे और मेहनतकश करोड़ों भारतवासी शामिल होंगे | *(यंग, 1-5-1930, पृ. 149)*

मेरे सपनों का स्वराज गरीबों का स्वराज है | जीवन की अनिवार्य वस्तुएं तुम्हें भी उसी प्रकार उपलब्ध होनी चाहिए जिस प्रकार राजाओं और धनवानों को उपलब्ध हैं | लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम्हारे पास उन जैसे ही महल भी होंगे | सुखी जीवन के लिए ये आवश्यक नहीं हैं | तुम या मैं तो उनमें खो जाएंगे | लेकिन तुम्हें जीवन की वे सभी सामान्य सुख-सुविधाएं मिलनी चाहिए जो एक धनी व्यक्ति को उपलब्ध हैं | मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि जब तक तुम्हें उन सुख-सुविधाओं की गारंटी नहीं मिलती तब तक स्वराज पूर्ण स्वराज नहीं माना जा सकता | *(यंग, 26-3-1931, पृ. 46)*

....पूर्ण स्वराज से क्या अभिप्राय है और हम उससे क्या पाना चाहते हैं....पूर्ण स्वराज जनसाधारण के बीच एक जागृति है, उनमें अपने वास्तविक हित की जानकारी और समूची दुनिया का मुकाबला करके भी उस हित को साधने की क्षमता है....यह एक सामंजस्य है, भीतरी अथवा बाहरी आक्रमण से मुक्ति है, और आम लोगों की आर्थिक स्थिति में क्रमिक सुधार है.... *(यंग, 18-6-1931, पृ. 147)*

सच्चे स्वराज का अनुभव स्त्री, पुरुष और बच्चों, सभी को होना चाहिए | इस संसिद्धि के लिए प्रयास करना ही सच्ची क्रांति है | भारत संसार की सभी शोषित प्रजातियों के लिए एक आदर्श बन गया है, क्योंकि भारत ने एक खुला और निहत्था संघर्ष किया है जो शोषणकर्ता को क्षति पहुंचाए बिना सभी से बलिदान मांगता है | यदि हमारा संघर्ष खुला तथा निहत्था न होता तो भारत की करोड़ों जनता में जागृति न फैलती | संघर्ष के सीधे रास्ते से हम जब-जब विचलित हुए हैं तब-तब कुछ समय के लिए हमारी विकासात्मक क्रांति को धक्का लगा है | *(हरि, 3-3-1946, पृ. 31)*

बहुसंख्यकों का शासन नहीं

यह कहा गया है कि भारत का स्वराज बहुसंख्यकों अर्थात हिंदुओं का शासन होगा | इससे बड़ी भ्रांति और कोई नहीं हो सकती | यदि ऐसा हो तो मैं उसे स्वराज मानने से इंकार कर दूंगा और अपनी पूरी शक्ति के साथ उसका विरोध करूंगा....क्योंकि मेरी दृष्टि में हिंद के स्वराज का अर्थ है सब लोगों का शासन, न्याय का शासन | इस शासन में, मंत्री चाहे हिंदू हों, मुसलमान हों या सिख हों और विधान सभाओं के सदस्य चाहे केवल हिंदू हों, केवल मुसलमान हों अथवा किसी अन्य समुदाय के हों, सबको निष्पक्ष न्याय करना होगा | *(यंग, 16-4-1931, पृ. 78)*

आज हमारे मन विभ्रांत हैं | हम अज्ञानवश एक-दूसरे से लड़ रहे हैं और अपने ही भाइयों के साथ दंगा-फसाद कर रहे हैं | ऐसे लोगों के लिए न मोक्ष है, न स्वराज | स्वशासन अथवा स्वराज की पहली शर्त आत्मानुशासन है | *(हरि, 28-4-1946, पृ. 111)*

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

हमारे जैसे विशाल देश में, सभी ईमानदारीपूर्ण विचार-संप्रदायों के लिए स्थान होना चाहिए | इसलिए हमारा अपने प्रति और दूसरों के प्रति कम-से-कम यह दायित्व अवश्य है कि हम अपने विरोधी के दृष्टिकोण को समझने का प्रयास करें और यदि हम उसे स्वीकार न कर पाएं तो उसका उसी प्रकार पूरी तरह सम्मान करें जिस प्रकार हम चाहते हैं कि वह हमारे दृष्टिकोण का करे | यह स्वस्थ सार्वजनिक जीवन की एक अपरिहार्य कसौटी है और इसलिए स्वराज के लिए भी आवश्यक है | *(यंग, 17-4-1924, पृ. 170)*

वाणी और लेखनी की स्वतंत्रता स्वराज की आधारशिला है | अगर यह खतरे में है तो तुम्हें अपनी संपूर्ण शक्ति लगाकर इसकी रक्षा करनी चाहिए | *(हरि, 29-9-1940, पृ. 306)*

स्वराज की प्राप्ति

मैंने यह कहने की ढिठाई की है कि स्वराज हमें भगवान भी नहीं दे सकता | यह तो हमें स्वयं ही अर्जित करना होगा | स्वराज की प्रकृति ही ऐसी है कि वह किसी के देने की चीज़ नहीं है | *(यंग, 25-5-1921, पृ. 164)*

स्वराज मृत्यु के भय का परित्याग है | जो राष्ट्र स्वयं को मृत्यु के भय से प्रभावित होने देता है वह स्वराज प्राप्त नहीं कर सकता, और यदि किसी प्रकार कर भी ले तो उसकी रक्षा नहीं कर सकता | *(यंग, 13-10-1921, पृ. 326)*

स्वराज किसी एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र को नि:शुल्क भेंट के रूप में कभी नहीं दिया जा सकता | यह तो ऐसी निधि है जो राष्ट्र के सबसे मूल्यवान लहू को देकर खरीदनी पड़ती है | इतने महंगे दाम खरीदी गई चीज़ भेंट नहीं मानी जाएगी....स्वराज सतत श्रम एवं अपरिमित पीड़ा-भोग के फलस्वरूप प्राप्त होगा | *(यंग, 5-1-1922, पृ. 4)*

स्वराज निश्चय ही आसमान से नहीं टपकेगा | यह धैर्य, अध्यवसाय, अथक परिश्रम, साहस और पर्यावरण की विवेकपूर्ण समझ के फलस्वरूप प्राप्त होगा | *(यंग, 27-8-1925, पृ. 297)*

मेरी दृष्टि में, स्वराज के लिए एक ही प्रशिक्षण आवश्यक है और वह है समूची दुनिया से अपनी रक्षा करने तथा पूर्ण स्वतंत्रता के साथ प्रकृत जीवन जीने की योग्यता विकसित करना; इसमें अनेक दोष रह जाएं, पर उसकी चिंता नहीं | सु-शासन स्वशासन का स्थानापन्न कदापि नहीं हो सकता | *(यंग, 22-9-1920, पृ. 1)*

स्वराज की तीर्थयात्रा एक कठिन चढ़ाई है | इसमें छोटी-से-छोटी बातों पर भी ध्यान देना पड़ता है | इसका अर्थ है संगठन की जबर्दस्त योग्यता, इसका अर्थ है ग्रामवासियों की सेवा के उद्देश्य से गांवों में पैठ | दूसरे शब्दों में, इसका अर्थ है राष्ट्रीय शिक्षा अर्थात सर्वसाधारण की शिक्षा | इसका अर्थ है सर्वसाधारण में राष्ट्रीय चेतना का विकास | यह जादूगर के आम की तरह सहसा प्रकट नहीं हो सकता | यह तो बरगद के वृक्ष की तरह लगभग अलक्षित रूप से विकसित होगा | रक्तिम क्रांति से यह चमत्कार कभी पैदा नहीं हो सकता | 'जल्दी का काम शैतान का' वाली कहावत यहां पूरी तरह लागू होती है | *(यंग, 21-5-1925, पृ. 178)*

कभी-कभी सुनने को मिलता है : 'भारत सरकार हमारे हाथ में आ जाए, फिर सब कुछ ठीक हो जाएगा |' इससे बढ़कर अंधविश्वास और कोई नहीं हो सकता | किसी राष्ट्र को इस प्रकार स्वाधीनता प्राप्त नहीं हुई है | बसंत का वैभव जब हर वृक्ष से प्रकट होता है, तब सारी धरती ही यौवन की ताजगी से भर जाती है | इसी प्रकार, जब स्वराज की भावना सचमुच समाज के भीतर व्याप्त हो जाएगी तो हमारे बीच सहसा आ जाने वाले किसी अजनबी को जीवन के हर क्षेत्र में ऊर्जा के दर्शन होंगे, वह पाएगा कि राष्ट्रीय सेवक विभिन्न प्रकार के सार्वजनिक कार्यकलाप में अपनी-अपनी योग्यतानुसार योगदान कर रहे हैं | *(स्पीरा, पृ. 416)*

स्वराज का आधार आत्मत्याग

स्वराज तभी कायम रह सकता है जब बड़ी संख्या में नैष्ठिक और राष्ट्रीय लोग अपने निजी लाभ और दूसरे तमाम सरोकारों से बढ़कर राष्ट्र की भलाई को सर्वोपरि समझेंगे | *(यंग, 28-7-1921, पृ. 238)*

मेरा स्वराज....दूसरों की हत्या का परिणाम नहीं होगा, बल्कि सतत आत्मत्याग की स्वत:स्फूर्त भावना से पैदा होगा | मेरा स्वराज रक्तपात द्वारा अधिकारों को हथियाकर प्राप्त नहीं किया जाएगा, बल्कि वह भली प्रकार एवं सच्चे रूप में अपने कर्तव्य के निर्वाह का सुंदर एवं सहज फल होगा | यह नीरो जैसा नहीं बल्कि चैतन्य जैसा....उत्तेजन प्रदान करेगा | स्वराज ऐसे समय भी आ सकता है – कभी-कभी आता भी है – जब क्षितिज अंधकारमय हो | लेकिन मैं जानता हूं कि स्वराज से पहले युवा स्त्री-पुरुषों के एक ऐसे वर्ग का उदय होगा जिन्हें राष्ट्र के लिए काम, काम और केवल काम में पूर्ण उत्तेजना का अनुभव होगा | *(यंग, 27-8-1925, पृ. 297)*

आत्मत्यागी और दृढ़ संकल्प वाले कार्यकर्ताओं की एक विशाल सेना के बिना आम जनता की वास्तविक प्रगति होना मैं असंभव मानता हूं | और इस प्रगति के बिना, स्वराज जैसी कोई चीज़ नहीं आ सकती | गरीबों की सेवा के लिए अपना सर्वस्व समर्पित करने का साहस रखने वाले कार्यकर्ताओं की संख्या में जितनी वृद्धि होगी, स्वराज की दिशा में ठीक उतनी ही प्रगति होती जाएगी | *(यंग, 24-6-1926, पृ. 226)*

जनता के स्वराज का अर्थ है व्यक्तियों के स्वराज (स्वशासन) का पूर्ण योग | ऐसा स्वराज व्यक्तियों द्वारा नागरिक के रूप में अपने कर्तव्य के निर्वाह से ही पैदा होता है | इसमें अपने अधिकारों की बात कोई नहीं सोचता | कर्तव्य के बेहतर निर्वाह के लिए जब उनकी आवश्यकता होती है तो वे स्वयं मिल जाते हैं | *(हरि, 25-3-1939, पृ. 64)*

सत्य और अहिंसा के जरिए

यदि हम सत्य और अहिंसा के जरिए स्वराज हासिल करना चाहते हैं तो उसका एकमात्र उपाय रचनात्मक प्रयास द्वारा इसका नींव से शुरू करके ऊपर की ओर धीरे-धीरे किंतु मजबूती से निर्माण करना है | इसमें जान-बुझकर ऐसी अराजक स्थिति के निर्माण का कोई स्थान नहीं है जो स्थापित व्यवस्था को इस आशा से उखाड़ फेंके कि हमारे बीच से कोई ऐसा तानाशाह उभर आएगा जो डंडे की जोर पर शासन करेगा और अव्यवस्था को व्यवस्था में बदल देगा | *(हरि, 18-1-1942, पृ. 4)*

हम सभी – शासक तथा शासित दोनों – इतने लंबे समय से एक घुटन-भरे एवं अप्राकृतिक वातावरण में रहते आ रहे हैं कि शुरू में तो शायद हमें यह लगेगा कि हमारे पास अब आज़ादी के स्फूर्तिदायक वातावरण में श्वास लेने योग्य फेफड़े बचे ही नहीं हैं | यदि वास्तविकता एक व्यवस्थित अर्थात अहिंसक ढंग से आए और इसलिए आए कि संबंधित पक्ष उसका आना ठीक मानते हैं तो यह सारी दुनिया की आंखें खोल देगी | *(हरि, 7-4-1946, पृ. 70)*

हमारी सभ्यता की प्रतिभा

मेरा स्वराज अपनी सभ्यता की प्रतिभा को अक्षुण्ण रखने के लिए है | मैं बहुत-सी नयी बातें लिखना चाहता हूं, लेकिन वे सभी भारतीय स्लेट पर ही लिखी जाएंगी | मैं पश्चिम से उधार लेने के लिए सहर्ष प्रस्तुत हूं, पर तभी जबकि मैं उसे उचित ब्याज के साथ लौटा सकूं | *(यंग, 26-6-1924, पृ. 210)*

यदि स्वराज हमें सभ्य न बनाए, हमारी सभ्यता को निर्मल और दृढ़ न करे तो यह बेकार है | हमारी सभ्यता का सारतत्व यही है कि हम अपने सार्वजनिक या निजी, सभी कामों में नैतिकता को सर्वोपरि स्थान देते हैं | *(यंग, 23-1-1930, पृ. 26)*

66. मैं ब्रिटेन-विरोधी नहीं हूं

मानव प्रकृति में मेरा विश्वास अडिग है और अत्यंत प्रतिकूल परिस्थितियों में भी, मैंने अंग्रेजों को तर्क और अनुनय के सामने झुकते देखा है | चूंकि स्पष्टत: अनुचित काम करते हुए भी वे सदैव न्यायप्रिय दिखाई देना चाहते हैं, इसलिए और लोगों की अपेक्षा उन्हें सही काम करने के लिए विवश करना ज़्यादा आसान है | *(यंग, 7-1-1920, पृ. 2)*

मेरा व्यक्तिगत धर्म....मुझे यह सामर्थ्य देता है कि मैं अंग्रेजों, या किन्हीं अन्य लोगों, को क्षति पहुंचाए बिना अपने देशवासियों की सेवा कर सकूं | जो मैं अपने सगे भाई के साथ करने के लिए तैयार नहीं हूं, वह मैं किसी अंग्रेज के साथ भी नहीं करूंगा | मैं किसी राज्य को हासिल करने के लिए उसे चोट नहीं पहुंचाऊंगा | लेकिन आवश्यकता हुई तो मैं उससे अपना सहयोग उसी प्रकार वापस ले लूंगा जिस प्रकार, जरूरी होने पर, मैंने अपने भाई (जो अब स्वर्गवासी हो चुके हैं) से ले लिया था | मैं ब्रिटिश साम्राज्य की अनीतियों में भागीदारी न करके उसकी सेवा कर रहा हूं | *(यंग, 5-5-1920, पृ. 4)*

मैं अंग्रेज-विरोधी नहीं हूं, मैं ब्रिटेन-विरोधी नहीं हूं, मैं किसी सरकार के विरोध में भी नहीं हूं पर मैं असत्य के विरोध में हूं, छल-कपट के विरोध में हूं और अन्याय के विरोध में हूं | जब तक सरकार अन्याय पर आरूढ़ है तब तक वह मुझे अपना शत्रु, कठोर शत्रु मान सकती है | *(स्पीरा, पृ. 523)*

कोई मेरे ऊपर यह आरोप नहीं लगा सकता कि मेरी प्रवृत्ति अंग्रेज-विरोधी है | सच पूछा जाए तो मुझे अपने विवेक पर गर्व है | उनकी बहुत-सी बातों का मैंने साभार अनुकरण किया है | समय-पालन, अल्पभाषिता, सार्वजनिक स्वच्छता, स्वतंत्र चिंतन, विवेक का प्रयोग आदि कई बातें मैंने अंग्रेजों के साहचर्य से ही सीखी हैं | *(यंग, 6-3-1930, पृ. 80)*

मेरा राष्ट्रवाद इतना संकुचित नहीं है कि मैं....अंग्रेजों की परेशानियों को महसूस न कर सकूं या कि उन पर प्रसन्नता का अनुभव करूं | मैं किसी दूसरे देश की खुशी की बलि देकर अपने देश की खुशी हासिल करना नहीं चाहता| *(यंग, 15-10-1931, पृ. 309)*

मेरे अंदर कोई कटुता नहीं है | मैं क्षुद्रतम पशुओं को भी अपना बंधू मानता हूं | तो फिर अंग्रेजों को भी अपना बंधू क्यों न मानूं जिनके साथ हम एक शताब्दी से भी अधिक समय से, भले अथवा बुरे कारणों से, बंधे हुए हैं और जिनमें से कुछ तो मेरे अन्यतम मित्र हैं ? आप (अंग्रेज) पाएंगे कि मैं एक सरल व्यक्ति हूं, लेकिन अगर आप मेरी दोस्ती के हाथ को झटक देंगे तो मैं आपसे दूर हो जाऊंगा, पर इसके लिए मेरे मन में कटुता नहीं होगी, बल्कि मैं समझूंगा कि मैं इतना निर्मल नहीं था कि आपके हृदयों में स्थान पा सकता | *(वही, पृ. 310)*

ब्रिटेनवासियों के प्रति मेरा प्रेम उतना ही है जितना कि अपने देशवासियों के प्रति | यह कोई खास बात नहीं है, क्योंकि मैं निरपवाद रूप से सभी मानवों को एक जैसा प्रेम करता हूं | मैं उसका कोई प्रतिदान नहीं मांगता | मैं इस दुनिया में किसी को अपना शत्रु नहीं मानता | यही मेरा धर्म है | *(बांक्रा, 9-8-1942)*

....मैंने ऐसी परिस्थितियों में जिनमें कोई भी व्यक्ति विद्रोही बन जाता, उन्नीस वर्ष के अपने अविच्छिन्न सार्वजनिक जीवन के दौरान ब्रिटिश सरकार के साथ जितना सहयोग किया है, उससे अधिक किसी भारतीय ने नहीं किया....

मैंने ब्रिटिश साम्राज्य की खातिर चार बार अपने जीवन को संकट में डाला है; बोअर युद्ध के समय जब मैं एम्बुलेंस कोर का प्रमुख था और हमारे काम की प्रशंसा जनरल बुलर ने अपने खरीते में की थी; नेटाल में जुलू विद्रोह के समय जब मैं इसी प्रकार एम्बुलेंस कोर का प्रमुख था; गत विश्व युद्ध की शुरुआत के समय जब मैंने एक एम्बुलेंस कोर खड़ी की थी और कठिन प्रशिक्षण के फलस्वरूप मुझ पर प्लूरिसी का भयंकर आक्रमण हो गया था; और अंतिम बार, दिल्ली में आयोजित युद्ध सम्मेलन में | लार्ड चेम्सफोर्ड को दिए गए वचन को पूरा करने के लिए जब मैंने खेड़ा जिले में रंगरूटों की भरती के लिए लंबी और कष्टदायक पैदल यात्राएं कीं तो मैं पेचिश का ऐसा शिकार हुआ कि मरते-मरते बचा | मैंने ये सारे काम इस विश्वास में किए कि शायद इनसे मेरे देश को ब्रिटिश साम्राज्य में बराबरी का दर्जा मिल जाए | *(यंग, 27-10-1920, पृ. 1)*

निरंकुश शासन

वर्तमान भारत सरकार जैसे बंद एकाधिकारी संगठन में मौलिकता नाम की कोई चीज़ नहीं हो सकती | *यह विश्व का सबसे बड़ा निरंकुश संगठन है | लोकतंत्र तो केवल ग्रेट ब्रिटेन के लिए सुरक्षित है | जब वह अन्य प्रजातियों के करोड़ों लोगों पर शासन करता है तो अत्यंत स्पष्ट और पक्की बुराई या पाप का रूप ग्रहण कर लेता है | तब यह विचार समूचे द्वीप को बुद्धिभ्रष्ट कर डालता है कि एक प्रबुद्ध लोकतंत्र का सर्वोत्कृष्ट कार्य यही शोषण है | यदि मेरा अनुमान ठीक है तो यह मौलिक तथ्य स्मरण रखने योग्य है | आसन्न समस्या से निपटते समय अगर हम इस बात को समझ लें तो वर्तमान सत्ताधीशों के साथ हम धैर्यपूर्वक व्यवहार कर सकेंगे | यहां मैं बुराई को सहन करने का आह्वान नहीं कर रहा | यह भेद हमें बुराई से निपटने में मदद देगा | *(हरि, 17-2-1946, पृ. 12)*

ऐसे किसी भी व्यक्ति का स्वागत अवश्य किया जाएगा जो हमारा प्रभु बनकर नहीं बल्कि एक सच्चे मित्र के रूप में सेवा की भावना से यहां आएगा | स्वाधीनता के उपरांत भारत को इस प्रकार की हर मदद की जरूरत होगी | अंग्रेजों के प्रति अविश्वास की भावना....तो यहां है | वह भारतीय विद्यार्थियों को इंग्लैंड भेजने से समाप्त नहीं हो जाएगी | आपको उसे समझना होगा और उसके लिए स्वयं को तैयार करना होगा, क्योंकि इसकी जड़ें इतिहास में हैं | *(हरि, 31-3-1946, पृ. 60)*

....अभी तक भारतवासियों ने अंग्रेजों को शासक जाति के सदस्यों के रूप में ही देखा है – कृपालु या फिर, दंभी | आम भारतीय इस तरह के अंग्रेज और अच्छे, विनम्र यूरोपवासी में भेद नहीं करता | वह पुराने ढंग के सुपरिचित साम्राज्य-निर्माता अंग्रेज और नये ढंग के अंग्रेज, जिनमें अपने पूर्वजों के किए-धरे का प्रायश्चित्त करने की अदम्य इच्छा है, के बीच भेद नहीं कर पाता | *(वही, पृ. 61)*

———————

*1947 से पूर्व

एक नया अध्याय

मैं यह नहीं भूल सकता कि ब्रिटेन का भारत के साथ संबंध तोड़े गए वायदों और ध्वस्त आशाओं की एक त्रासदी है | हमें अपना दिमाग खुला रखना चाहिए | कोई सत्यशोधक अपने विरोधी के वक्तव्य के प्रति अविश्वास के साथ अपना व्यवहार कभी शुरू नहीं करेगा | अत: मैं आशान्वित हूं और वस्तुत: कोई जिम्मेदार भारतीय इसके अलावा कुछ और नहीं सोच रहा | मैं समझता हूं कि इस बार अंग्रेज जो कह रहे हैं, वही करेंगे | लेकिन आज़ादी का प्रस्ताव सहसा आया है....

....कटुता का ज्वार पूरे जोरों पर है और आत्मा के लिए यह शुभ नहीं है....यह केवल भारत और ब्रिटेन के इतिहास का ही नहीं अपितु समूचे विश्व इतिहास के मील का पत्थर है.... *(हरि, 14-4-1946, पृ. 90)*

राष्ट्रमंडल

भारत का गौरव इसमें नहीं है कि वह अंग्रेजों को अपना पक्का दुश्मन समझे और यह माने कि ये मौका मिलते ही भारत से खदेड़ देने योग्य हैं, बल्कि इसमें है कि हम उन्हें अपना मित्र बना लें और एक ऐसे साम्राज्य के स्थान पर जो दुनिया के कमजोर अथवा अविकसित राष्ट्रों और प्रजातियों के शोषण अर्थात बलप्रयोग पर टिका था, एक नये राष्ट्रमंडल में उनके साथ भागीदारी करें | *(यंग, 5-1-1922, पृ. 4)*

सम्राट (किंग इम्परर) की भूमिका का महत्व मुझे एंड्रूज ने समझाया | ब्रिटेन का राजा डोमिनियनों का राजा भी है, पर भारत का वह सम्राट है | साम्राज्य केवल भारत है | डोमिनियनों में तो आपके (अंग्रेजों के) भाई बसते हैं | लेकिन हम भारतीय, जिनकी संस्कृति और परंपराएं भिन्न हैं, कभी ब्रिटिश परिवार के सदस्य नहीं बन सकते | हम राष्ट्रों के विश्वव्यापी परिवार के सदस्य हो सकते हैं, पर पहले हम पददलितों की श्रेणी से तो निकलें | इसीलिए मैं आज़ादी हासिल करना चाहता हूं....

अंग्रेजों को बनिया नहीं, ब्राह्मण बनना सीखना चाहिए | बनिया व्यापारी होता है या, जैसा कि नेपोलियन ने कहा था, दूकानदार होता है | ब्राह्मण वह है जिसमें जीवन के भौतिक मूल्यों की अपेक्षा नैतिक मूल्यों को अधिक महत्व देने की बौद्धिक क्षमता होती है....अंग्रेजों को अभी अपने अंदर उस ब्राह्मणत्व का विकास करना है....

यदि भारत आज़ादी हासिल कर लेता है तो संभवत: ऐसी किसी (ब्रिटेन के साथ रक्षात्मक मैत्री की) संधि में शामिल हो सकता है, पर इसका निर्णय वह अपनी स्वतंत्र इच्छा से करेगा | यदि ऐसा हुआ तो भारत और ब्रिटेन की स्वत:प्रसूत मैत्री का विस्तार अन्य शक्तियों तक हो सकेगा जो परस्पर मिलकर शक्ति संतुलन स्थापित करेंगे क्योंकि नैतिक बल केवल उन्हीं के पास होगा | इस स्वप्न को साकार होते देखने के लिए मैं 125 वर्ष की अवस्था तक जीना चाहता हूं | *(यंग, 14-4-1946, पृ. 91)*

67. रामराज्य

रामराज्य से मेरा अभिप्राय हिंदू राज से नहीं है | रामराज्य से मेरा अभिप्राय है दैवी राज्य अर्थात ईश्वर का साम्राज्य | मेरी दृष्टि में राम और रहीम एक ही हैं | मैं केवल एक ही ईश्वर को जानता हूं और वह है सत्य तथा सदाचार का ईश्वर |

मेरी कल्पना के राम कभी इस पृथ्वी पर रहे हों या न रहे हों, रामराज्य का प्राचीन आदर्श निस्संदेह एक सच्चा लोकतंत्र है जिसमें क्षुद्रतम नागरिक भी लंबी-चौड़ी और महंगी प्रक्रिया के बिना शीघ्र न्याय पा सकता है | कवि के वर्णन के अनुसार रामराज्य में कुत्ते तक को न्याय मिला था | *(यंग, 19-9-1929, पृ. 305)*

मेरे सपने के रामराज्य में राजा और रंक, दोनों के अधिकार समान होते हैं | *(अबाप, 2-8-1934)*

स्वाधीनता की परिभाषा

राजनीतिक स्वाधीनता से मेरा अभिप्राय हाउस ऑफ कामन्स, या रूस के सोवियत शासन या इटली के फासिस्टवादी शासन अथवा जर्मनी के नाजी शासन के अनुकरण से नहीं है | ये प्रणालियां उनकी अपनी-अपनी प्रकृति के अनुकूल हैं | हमारी प्रणाली हमारे अनुकूल होनी चाहिए | वह जो मैं बता सकता हूं, उससे भी बढ़कर हो सकती है | मैंने उसे रामराज्य कहा है अर्थात लोगों की संप्रभुता, जिसका आधार विशुद्ध नैतिक सत्ता हो | *(हरि, 2-1-1937, पृ. 374)*

मित्रों ने मुझे बार-बार चुनौती दी है कि मैं स्वाधीनता को परिभाषित करूं | मैं फिर कहता हूं कि मेरे सपनों की स्वाधीनता का अर्थ है रामराज्य अर्थात पृथ्वी पर ईश्वर के साम्राज्य की स्थापना | मैं नहीं जानता कि स्वर्ग में ईश्वर का साम्राज्य कैसा होगा | इतनी दूर की चीज़ को जानने की मुझे कामना भी नहीं है | यदि वर्तमान पर्याप्त आकर्षक है तो भविष्य भी उससे बहुत भिन्न नहीं हो सकता | *(हरि, 5-5-1946, पृ. 116)*

बलप्रयोग नहीं

मेरी धारणा के रामराज्य में ब्रिटेन की फौज की जगह कोई राष्ट्रीय आधिपत्य-सेना नहीं आएगी | ऐसा देश जिस पर किसी सेना का शासन हो, चाहे वह उसकी राष्ट्रीय सेना ही क्यों न हो, कभी नैतिक दृष्टि से स्वतंत्र नहीं माना जा सकता और इसलिए उसका तथाकथित दुर्बलतम नागरिक कभी अपने पूर्णतम नैतिक उत्कर्ष को प्राप्त नहीं कर सकता | *(वही)*

आज की अन्यायपूर्ण असमानताओं की स्थिति में जिसमें मुट्ठी भर लोग ऐश्वर्य भोग रहे हैं और आम आदमी के लिए पेट भरना भी कठिन है, रामराज्य कभी नहीं आ सकता....समाजवादियों और अन्य लोगों से मेरा विरोध यही है कि मैं किसी भी स्थायी सुधार के लिए हिंसा का सहारा लेना गलत समझता हूं | *(हरि, 1-6-1947, पृ. 172)*

मैं निर्वाण की तुलना रामराज्य अथवा पृथ्वी पर ईश्वर के साम्राज्य के साथ करता हूं....ब्रिटिश सत्ता के हट जाने से रामराज्य नहीं आएगा | यदि हम अपने हृदयों में अहिंसा के वेश में हिंसा को पालते आ रहे हैं तो रामराज्य कहां से आ जाएगा ? *(हरि, 3-8-1947, पृ. 262)*

दूसरों का आदर

मेरा हिंदुत्व मुझे सभी धर्मों का आदर करना सिखाता है | रामराज्य का रहस्य इसी में निहित है | *(हरि, 19-10-1947, पृ. 378)*

यदि आप रामराज्य के रूप में ईश्वर का दर्शन करना चाहते हैं तो पहले आपको आत्मनिरीक्षण करना होगा | आपको अपने दोषों को हज़ार गुना बढ़ाकर देखना होगा और अपने पड़ोसियों के दोषों से आंख मूंद लेनी होगी | सच्ची प्रगति का यही एक मार्ग है | *(हरि, 26-10-1947, पृ. 387)*

68. कश्मीर

समस्या और समाधान

स्थिति क्या है ? बताया जाता है कि अफरीदी लोगों और उन जैसे अन्य बागियों की एक फौज, कुशल अधिकारियों के निर्देशन में, श्रीनगर की ओर बढ़ रही थी और उसने रास्ते में पड़ने वाले गांवों को लूट लिया था और जला डाला था | साथ ही, उसने बिजलीघर को भी नष्ट कर दिया था जिससे श्रीनगर अंधकार में डूब गया था | यह विश्वास करना कठिन है कि कश्मीर में बलवाइयों का यह प्रवेश पाकिस्तान सरकार की किसी-न-किसी मदद के बगैर संभव था | इस मामले के गुण-दोषों के बारे में निर्णय करने के लिए मेरे पास यथेष्ट जानकारी नहीं है | न मेरे प्रयोजन के लिए उसकी आवश्यकता है | मैं तो सिर्फ यह जानता हूं कि संघ सरकार ने श्रीनगर के लिए सैनिक टुकड़ियां, भले ही वे थोड़ी ही हों, रवाना करके सही कदम उठाया है | इससे इतना तो होगा ही कि कश्मीरियों में आत्मविश्वास की भावना जगेगी....परिणाम तो भगवान के हाथ में है | आदमी तो कर या मर ही सकते हैं | संघ सरकार द्वारा भेजी गई थोड़ी-सी-फौज अगर कश्मीर की रक्षा करते हुए, स्पार्टनों की तरह, सारी-की-सारी शहीद हो जाए तो भी मैं एक बूंद आंसू नहीं बहाऊंगा | इसी प्रकार, मुसलमान, हिंदू और सिख भाई – स्त्री और पुरुष – यदि कश्मीर की रक्षा करते हुए अपना जीवन उत्सर्ग कर दें तो मुझे तनिक भी पछतावा नहीं होगा | यह तो शेष भारत के लिए एक शानदार उदाहरण होगा | ऐसा वीरतापूर्ण रक्षा-कार्य समूचे भारत को अनुप्राणित कर देगा और हम भूल जाएंगे कि हिंदू, मुसलमान और सिख कभी दुश्मन थे | *(हरि, 9-11-1947, पृ. 406)*

मुझे आश्चर्य है कि पाकिस्तान सरकार ने राष्ट्रसंघ के सम्मुख भारत द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन की सत्यता को चुनौती दी है और इस बात से इंकार किया है कि हमलावरों द्वारा कश्मीर पर किए गए आक्रमण में उसका कोई हाथ है | केवल इंकार करने से कुछ नहीं होता | हमलावरों को खदेड़ने के लिए जब कश्मीर ने भारत संघ से सहायता मांगी तो उसके लिए कश्मीर की मदद के लिए पहुंचना लाजमी था और पाकिस्तान का यह कर्तव्य था कि वह इसमें भारत की संघ सरकार के साथ सहयोग करता | लेकिन पाकिस्तान ने सहयोग करने की इच्छा तो व्यक्त की, पर इस दिशा में कोई ठोस कदम नहीं उठाया....

दोनों डोमिनियनों में युद्ध हुआ तो ये किसी तीसरी शक्ति के नियंत्रण में चले जाएंगे जिससे बुरी कोई और बात नहीं हो सकती | मैं मित्रता और सद्भावना के लिए अपील करता हूं....लेकिन मेलजोल सच्चे मन से किया जाए | मन में घृणा रखना तो युद्ध से भी बदतर है | *(हरि, 12-1-1948, पृ. 509)*

69. भारत में विदेशी बस्तियां

(अ) गोवा

अब बदलाव जरूरी

यह छोटी-सी पुर्तगाली बस्ती जो ब्रिटिश सरकार की मौन अनुमति से ही यहां टिकी है, उसके कुत्सित तौर-तरीकों की नकल करके चल नहीं सकती | स्वतंत्र भारत में, गोवा को स्वतंत्र राज्य के कानूनों का विरोध करते हुए अपना अलग अस्तित्व बनाए रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती | एक भी गोली चले बिना, गोवा के लोग स्वतंत्र राज्य के नागरिक अधिकार प्राप्त करने में सफल हो जाएंगे | वर्तमान पुर्तगाली सरकार गोवा के निवासियों को उनकी इच्छा के बगैर अपनी अधीनता में अलग-थलग रखने के लिए अब ब्रिटिश हथियारों के संरक्षण पर निर्भर नहीं रह सकेगी | मैं गोवा की पुर्तगाली सरकार को परामर्श देना चाहूंगा कि वह समय के संकेतों को पहचाने और अपने तथा ब्रिटिश सरकार के बीच हुई किसी संधि का आश्रय लेने के बजाए गोवावासियों के साथ सम्मानजनक समझौता कर ले | *(हरि, 30-6-1946, पृ. 208)*

आतंक का राज्य

....मैं मौजांबीक, डेलगोवा और इन्यमबान गया हूं | मैंने वहां लोकोपकार की दृष्टि से चलाई जाने वाली कोई सरकार नहीं देखी | वस्तुत: मुझे यह देखकर अचंभा हुआ कि वहां की सरकार भारतीयों और पुर्तगालियों तथा अफ्रीकियों और अपने बीच भेद करती है | भारत में पुर्तगाली बस्तियों का इतिहास भी उनके लोकोपकारी शासन के दावे को सिद्ध नहीं करता | गोवा के हालात के बारे में मैंने जो देखा-सुना है, वह कतई प्रशंसनीय नहीं है । गोवा के भारतीयों ने अभी तक आवाज़ नहीं उठाई है; यह पुर्तगाली सरकार की निर्दोषिता अथवा परोपकारी प्रकृति के कारण नहीं है, बल्कि वहां व्याप्त आतंक के राज्य के कारण है |[88] *(हरि, 11-8-1946, पृ. 260)*

....पुर्तगाल को गोवा के भारतीयों की जन्मभूमि कहना....बिलकुल बेतुकी बात है | जिस प्रकार मेरी मातृभूमि भारत है, उसी प्रकार उनकी मातृभूमि भी भारत ही है | गोवा ब्रिटिश भारत से बाहर जरूर है, पर वह भौगोलिक दृष्टि से भारत का ही अंग है | और पुर्तगालियों तथा गोवा के भारतीयों के बीच शायद ही कोई समानता है | *(हरि, 8-9-1946, पृ. 305)*

नागरिक स्वतंत्रता

गोवावासियों से मेरा कहना है कि वे पुर्तगाली सरकार का डर अपने मन से उसी तरह निकाल दें जिस तरह भारत के अन्य भागों के लोगों ने शक्तिशाली ब्रिटिश सरकार का डर अपने मन से निकाल दिया है और नागरिक

स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार तथा उनसे जुड़ी अन्य बातों को हासिल करने के लिए आवाज़ उठाएं | *(हरि, 30-6-1946, पृ. 208)*

आंदोलन की सफलता के लिए यह परम आवश्यक है कि गोमंतक इसे नागरिक स्वतंत्रता के स्पष्टतम मुद्दे को लेकर चलाएं | स्वराज का बड़ा मुद्दा तब तक प्रतीक्षा कर सकता है जब तक कि संपूर्ण भारत स्वराज प्राप्त नहीं कर लेता | हां, यह बात और है कि पुर्तगाली सरकार बुद्धिमानी से काम लेते हुए स्वयं ही अपनी बस्तियों के निवासियों के साथ मैत्रीपूर्ण बातचीत के द्वारा कोई समझौता कर ले | गोवा के नागरिक किसी सीधी कार्रवाई के द्वारा, वह हिंसक हो अथवा अहिंसक, स्वराज प्राप्त नहीं कर सकते | अहिंसक कार्रवाई में सफलता अवश्य मिलती है, पर उसके लिए प्रत्येक देशवासी को वीर की भांति अपना जीवन दांव पर लगाने के लिए उद्यत होना पड़ता है | भारत के मुकाबले, जिसकी जनसंख्या विशाल है और जिसके पास अनुभव है तथा जहां जागृति भी काफी फैल चुकी है, गोवा में अभी इसकी आशा करना कठिन है | इसीलिए अभी तो नागरिक स्वतंत्रता के स्पष्टतम मुद्दे को ही अपना लक्ष्य बनाना ठीक होगा |

कामयाबी की दूसरी शर्त यह है कि संघर्ष अहिंसक हो और, इसलिए, पूर्णतया प्रकट रूप में चलाया जाए |

तीसरे, सत्ता और पद के लिए किन्हीं पार्टियों के बीच संघर्ष न हो | जब लक्ष्य समान हो तो भिन्न-भिन्न पार्टियों का कोई अर्थ नहीं होता | *(हरि, 28-7-1946, पृ. 235)*

भारत के इस भाग में मुझे व्यक्तिगत रूप से जो विवरण प्राप्त हुए हैं अथवा जो कुछ मैंने समाचारपत्रों में पढ़ा है, उससे तो यही सिद्ध होता है कि गोवा में नागरिक स्वतंत्रता है ही नहीं | मैं समझता हूं कि कोर्ट मार्शल द्वारा डा. ब्रिगेंजा को आठ साल की सजा तथा उन्हें किसी दूरस्थ पुर्तगाली बस्ती में निर्वासित करने का समाचार इस बात का पक्का सबूत है कि गोवा में नागरिक स्वतंत्रता का घोर अभाव है | डा. ब्रिगेंजा जैसे कानून के पाबंद नागरिक को इतना खतरनाक क्यों समझा गया कि उनके निर्वासन का आदेश दिया गया ?....

गोवावासी स्वाधीनता के लिए तब तक प्रतीक्षा कर सकते हैं जब तक कि बृहत्तर भारत को स्वाधीनता प्राप्त नहीं हो जाती | लेकिन कोई व्यक्ति अथवा वर्ग अपना आत्मसम्मान खोए बगैर नागरिक स्वतंत्रता के बिना इस प्रकार जीवित नहीं रह सकता | *(हरि, 11-8-1946, पृ. 260)*

....नागरिक स्वतंत्रता के प्रेमियों को निशाना बनाने का खेल गोवा में खूब खेला जा रहा है | छोटी शक्ति, अपने छोटे होने के कारण, प्राय: दंड के भय से मुक्त अनुभव करते हुए काम करती है जोकि बड़ी शक्ति नहीं कर पाती | पुर्तगाल तो परोपकार की भावना तथा रोमन कैथोलिक चर्च के साथ अपनी मैत्री की बड़ी शेखी बघारता है | उसे मनुष्य और ईश्वर के सामने अपने कृत्यों की न्यायोचितता सिद्ध करनी पड़ेगी | निर्दोषों का रक्त....उनके मकबरों

या भस्मों से चीख-चीखकर पुकारेगा | उसमें जीवित व्यक्तियों की वाणी से कहीं अधिक शक्ति होती है, वे व्यक्ति चाहे कितने ही शक्तिशाली और वाक्पटु हों | *(हरि, 1-9-1946, पृ. 286)*

(आ) फ्रांसीसी भारत

....साम्राज्यवाद के हाथ सदा रक्तरंजित होते हैं | साम्राज्यवादी शक्तियां, अशोक महान की तरह, जितनी जल्दी अपने साम्राज्यवाद का त्याग कर दें, इस कराहती दुनिया के लिए उतना ही अच्छा है | लेकिन फ्रांस प्रशंसनीय है, अत: उसकी प्रशंसा की जा सकती है; फ्रांसीसी भारत की स्थिति इसका एक उदाहरण है.... *(हरि, 8-9-1946, पृ. 305)*

मेरा यह निश्चित मत है कि इन फ्रांस-अधिकृत क्षेत्रों के भारतीय समय रहते स्वतंत्र भारत के अंग बन जाएंगे | बस यही है कि इन क्षेत्रों के भारतीयों को कानून अपने हाथ में नहीं लेना चाहिए | संवैधानिक उपाय उन्हें उपलब्ध हैं और फिर, हमारे मुख्यमंत्री (जवाहरलाल नेहरू) भी हैं जिन्होंने इंडोनेशिया को स्वतंत्रता प्राप्त कराई है | निश्चय ही, वे (फ्रांस-अधिकृत) इन दो क्षेत्रों के अपने ही लोगों की उपेक्षा नहीं करेंगे | *(हरि, 24-8-1947, पृ. 295)*

....आखिर, फ्रांसीसी बड़े महान लोग हैं और वे स्वतंत्रता-प्रेमी हैं | भारत द्वारा, जिसने अपनी स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है, उन पर कोई दबाव नहीं डाला जाना चाहिए | *(हरि, 31-8-1947, पृ. 298)*

....मेरी राय बिलकुल साफ है | अब जबकि करोड़ों भारतवासी ब्रिटिश शासन से मुक्त हो चुके हैं तो इन छोटी-सी विदेशी बस्तियों के निवासियों को पराधीन रहने के लिए विवश नहीं किया जा सकता | मैं यह कभी सहन नहीं कर सकता कि इन छोटी-छोटी विदेशी बस्तियों की स्थिति शेष भारत से कमतर रहे | मैं आशा करता हूँ कि....महान फ्रांसीसी राष्ट्र भारत में या कहीं अन्यत्र काले अथवा भूरे लोगों के दमन में कभी योग नहीं देगा | *(हरि, 16-11-1947, पृ. 416)*

70. भारत और पाकिस्तान

विभाजन गैर-इस्लामी

मेरी पक्की धारणा है कि मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की जो मांग उठाई है, वह गैर-इस्लामी है, इसलिए मैंने निस्संकोच उसे पापमय कहा है |

इस्लाम मानव जाति की एकता और भाईचारे का समर्थक है, वह मानव परिवार की एकता को खंडित करने का पक्षधर नहीं है | इसलिए जो लोग भारत को दो युयुत्सु वर्गों में बांट देना चाहते हैं, वे भारत के भी शत्रु हैं और इस्लाम के भी | *(हरि, 6-10-1946, पृ. 339)*

द्वि-राष्ट्र सिद्धांत गलत

भारत के मुसलमान एक पृथक राष्ट्र हैं, इसके पक्ष में शायद कुछ तर्क दिए जा सकते हों | लेकिन मैंने कभी किसी को यह कहते नहीं सुना कि दुनिया में जितने धर्म हैं, उतने ही राष्ट्र हैं | *(हरि, 11-11-1939, पृ. 336)*

'द्वि-राष्ट्र सिद्धांत' गलत है | भारत के अधिकांश मुसलमान या तो वे हैं जिन्होंने इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया है या फिर, ऐसे धर्म-परिवर्तितों के वंशज हैं | धर्म-परिवर्तन करते ही वे एक पृथक राष्ट्र नहीं बन गए | *(हरि, 6-4-1940, पृ. 76)*

मेरी सदा से यह धारणा रही है कि हिंदुओं और मुसलमानों में कोई भेद नहीं है | भले ही उनके रीति-रिवाजों में फर्क है, पर इससे वे पृथक नहीं माने जा सकते | यह सही है कि वे भिन्न-भिन्न धर्मों के अनुयायी हैं, लेकिन अन्य लोगों की भांति, उनका मूल एक ही है | *(हरि, 9-11-1947, पृ. 400)*

विभाजन का बलपूर्वक प्रतिरोध नहीं

अगर भारत के मुसलमान वस्तुत: इसके लिए जोर देते हैं तो अहिंसा का पुजारी होने के नाते मैं प्रस्तावित विभाजन का बलपूर्वक प्रतिरोध नहीं करूंगा | लेकिन मैं राष्ट्र के टुकड़े किए जाने का स्वेच्छापूर्वक समर्थन कभी नहीं कर सकता | *(हरि, 13-4-1940, पृ. 92)*

मैंने जीवन में अनेक समझौते किए हैं, पर उन्होंने मुझे अपने लक्ष्य के निकट पहुंचने में मदद ही की है....अब यदि ईश्वर की यही इच्छा है तो मुझे अपने सपनों के टूटने का विवश साक्षी बनना पड़ेगा | *(हरि, 4-5-1940, पृ. 115)*

....यदि आठ करोड़ मुसलमान यही चाहते हैं तो हिंसक अथवा अहिंसक विरोध करने पर भी दुनिया की कोई ताकत विभाजन को नहीं रोक सकती | *(वही, पृ. 117)*

पाकिस्तान को ताकत के बल पर समाप्त करना, स्वराज को समाप्त करना होगा | *(हरि, 5-10-1947, पृ. 355)*

यदि सभी आशंकांए दूर कर दी जाएं और शत्रुता को मित्रता में तथा अविश्वास को विश्वास में बदल दिया जाए तो पाकिस्तान, जिसे मैंने एक बुराई की संज्ञा दी है, विशुद्ध अच्छाई में परिवर्तित हो सकता है | *(हरि, 13-7-1947, पृ. 236)*

अल्पसंख्यकों का संरक्षण

मैं ऐसे पाकिस्तान की कल्पना नहीं कर सकता जिसमें गैर-मुस्लिम लोग शांति और सुरक्षा के साथ न रह सकें, न ऐसे हिंदुस्तान की कल्पना कर सकता हूं जिसमें मुसलमान असुरक्षित हों | *(हरि, 27-4-1947, पृ. 123)*

मैं इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए काम कर रहा हूं | मैं ऐसी सूरत पैदा करने की कोशिश कर रहा हूं कि प्रत्येक राज्य का बहुसंख्यक समुदाय स्वयं आगे आकर स्वतंत्रता के लिए आवश्यक परिस्थितियां उत्पन्न करे | *(हरि, 14-9-1947, पृ. 323)*

मेरी अहिंसा मुझे आदेश देती है कि मैं अल्पसंख्यकों की सेवा के लिए अपने को समर्पित कर दूं | अगर दोनों जगहों के हिंदू और मुसलमान शांति से रहना आरंभ कर दें और अपनी शत्रुता को भूल जाएं तो यह एक नये जन्म के समान होगा और मुझे अतिरिक्त शक्ति प्रदान करेगा | *(हरि, 11-5-1947, पृ. 146)*

यह पाकिस्तान के बहुसंख्यकों और उसी प्रकार भारत संघ के बहुसंख्यकों का गुरुतर कर्तव्य है कि वे अपने यहां के अल्पसंख्यकों को संरक्षण प्रदान करें जिनकी आबरू और जान-माल की हिफ़ाजत उनके हाथों में हैं....

हर मुसलमान को भारत से निकाल बाहर करने और हर हिंदू तथा सिख को पाकिस्तान से खदेड़ देने का परिणाम होगा युद्ध और देश का सदा के लिए सर्वनाश | *(हरि, 28-9-1947, पृ. 352)*

मतभेदों का निपटारा : युद्ध नहीं

भारत और पाकिस्तान को चाहिए कि अपने मतभेदों को आपसी बातचीत से सुलझाएं और अगर उसमें कामयाब न हो पाएं तो पंच फैसले का सहारा लें | *(हरि, 5-10-1947, पृ. 363)*

अगर पाकिस्तान ने अपना गलत रवैया जारी रखा तो भारत और पाकिस्तान के बीच युद्ध निश्चित है | *(हरि, 28-9-1947, पृ. 349)*

अगर भारत और पाकिस्तान के बीच निरंतर शत्रुता रही और उनमें परस्पर युद्ध हुआ तो दोनों डोमिनियन बर्बाद हो जाएंगे और उनकी इतनी कठिनाई से मिली स्वतंत्रता का शीघ्र ही लोप हो जाएगा | मैं वह दिन देखने के लिए जीवित रहना नहीं चाहता | *(वही, पृ. 339)*

यह सही है कि दोनों डोमिनियनों के बीच युद्ध नहीं होना चाहिए | उन्हें मित्रों की तरह रहना होगा या फिर वे नष्ट हो जाएंगे | दोनों को निकट सहयोग रखते हुए काम करना होगा | एक-दूसरे से स्वतंत्र होते हुए भी उनमें बहुत-

सी बातें समान हैं | यदि उन्होंने शत्रुता का भाव रखा तो उनमें कुछ भी समान नहीं रह जाएगा | यदि उनके बीच सच्ची मित्रता रही तो दोनों राज्यों के निवासी एक-दूसरे के प्रति निष्ठावान रह सकेंगे | ये दोनों एक ही राष्ट्रमंडल के सदस्य हैं | ये परस्पर शत्रु कैसे हो सकते हैं ?[114] *(हरि, 5-10-1947, पृ. 356)*

71. भारत का ध्येय

आत्मिक बल का आश्रय

मैं यह अनुभव करता हूं कि भारत का ध्येय दूसरे देशों से भिन्न है | भारत के पास विश्व का धार्मिक नेतृत्व करने का सामर्थ्य है | उसने स्वेच्छा से जिस प्रकार अपना शुद्धीकरण किया है, उसकी मिसाल दुनिया में नहीं मिलती | भारत को फौलादी हथियारों की जरूरत उतनी नहीं है, उसने अपनी लड़ाई दैवी हथियारों से लड़ी है; वह आज भी यह कर सकता है | अन्य राष्ट्र पशुबल के पक्षधर रहे हैं | यूरोप में जो विकट युद्ध छिड़ा हुआ है, वह इसी सच्चाई का जोरदार सबूत है | भारत अपने आत्मिक बल से सभी को जीत सकता है |

इतिहास में अनेक उदाहरण इस बात के उपलब्ध हैं जिनसे सिद्ध होता है कि आत्मिक बल के सामने पशुबल कुछ भी नहीं है | इसका गुणगान कवियों ने किया है और मनीषियों ने उसके संबंध में अपने अनुभवों का वर्णन किया है | *(स्पीरा, पृ. 405)*

भारत कायरों का राष्ट्र नहीं है, यह उसकी युद्धप्रिय जातियों – वे चाहे हिंदू हों, मुसलमान हों, सिख हों या गोरखा हों – की व्यक्तिगत वीरता और साहस के वृत्तांतों से सिद्ध होता है | मेरा कहना यह है कि युद्ध की भावना भारत-भूमि के लिए परायी है और उसे संभवत: विश्व के विकास में एक उच्चतर भूमिका निभानी है | समय ही बताएगा कि उसकी नियति क्या होगी | *(यंग, 22-6-1921, पृ. 199)*

मैं ईश्वर का साक्षात करना चाहता हूं | मैं जानता हूं कि ईश्वर सत्य है | मेरी दृष्टि में, ईश्वर को जानने का एकमात्र निश्चित साधन अहिंसा अर्थात प्रेम है | मैं भारत की आज़ादी के लिए ही जी रहा हूं और उसी के लिए मरूंगा, क्योंकि वह सत्य का अंश है | केवल स्वतंत्र भारत ही सच्चे ईश्वर की आराधना कर सकता है |

मैं भारत की स्वतंत्रता के लिए प्रयासरत हूं, क्योंकि मेरी स्वदेशी की भावना मुझे यह सिखाती है कि भारत का निवासी होने और उसकी संस्कृति का वारिस होने के नाते मैं उसकी सेवा करने के सर्वाधिक योग्य हूं और मेरी सेवा पर उसका सर्वोपरि अधिकार है |

लेकिन मेरा राष्ट्रप्रेम अनन्य नहीं है; इसमें न केवल किसी अन्य राष्ट्र को हानि न पहुंचाने की बात है, बल्कि सच्चे अर्थों में सभी का हित करना भी शामिल है | भारत की स्वतंत्रता की मेरी जो धारणा है, उसके अनुसार वह दुनिया को कष्ट देने वाली कभी सिद्ध नहीं होगी | *(यंग, 3-4-1924, पृ. 109)*

भारत की नियति पश्चिम के रक्तरंजित मार्ग पर चलने में निहित नहीं है, जिससे वह स्वयं थक चला है; भारत को तो शांति के रक्तहीन मार्ग पर चलना है जो सादा और दैवी जीवन जीने से पैदा होता है | भारत के सम्मुख अपनी आत्मा के नाश का संकट है | उसकी आत्मा न रही तो वह भी जीवित नहीं रहेगा | इसलिए उसे अकर्मण्यता और

लाचारी के स्वर में यह नहीं कहना चाहिए कि 'मैं पश्चिम से आने वाली हवा को नहीं रोक पा रहा |' उसे इतनी मजबूती दिखानी होगी कि अपनी और दुनिया की खातिर इस हवा का प्रतिरोध कर सके | *(यंग, 7-10-1926, पृ. 348)*

भारत में अनादि काल से अहिंसा की अविच्छिन्न परंपरा है | लेकिन जहां तक मैं जानता हूं, उसके प्राचीन इतिहास में ऐसा समय कभी नहीं आया जब सारे देश में पूर्ण अहिंसा का राज्य रहा हो | फिर भी, मुझे अडिग विश्वास है कि मानव जाति को अहिंसा का संदेश सुनाने का शुभ कार्य भारत ही करेगा | इसे फलित होने में युगों का समय लग सकता है | लेकिन जहां तक मैं समझता हूं, भारत से पहले कोई और देश यह काम नहीं कर सकेगा | *(हरि, 12-10-1935, पृ. 276)*

संसार की सभी शोषित प्रजातियों के मार्गदर्शन का भार भारत पर ही है | भारत में जब तक अहिंसा का राज्य और ज़्यादा नहीं फैलेगा तब तक भारत इस भार को उठाने योग्य नहीं बनेगा | मैं अपने संघर्ष को और भी व्यापक रूप देकर भारत को इस योग्य बनाने का प्रयास कर रहा हूं | भारत दमित तथा शोषित प्रजातियों के लिए प्रकाशस्तंभ तभी बन सकेगा जब वह अपने मामले में अहिंसा के सिद्धांत की सत्यता प्रमाणित कर दे और विदेशी नियंत्रण से मुक्त होते ही अहिंसा का परित्याग न कर दे | *(हरि, 19-5-1946, पृ. 134)*

कर्मभूमि

....भारत भोगभूमि नहीं, अपितु मूलत: कर्मभूमि है | *(यंग, 5-2-1925, पृ. 45)*

....भारत की हर चीज़ मुझे आकर्षित करती है | इसके पास वह सब कुछ है जो किसी मानव को अपनी उच्चतम आकांक्षाओं की प्राप्ति के लिए अपेक्षित प्रतीत हो सकता है | *(यंग, 21-2-1929, पृ. 60)*

भारत और दुनिया

यूरोप के चरणों में नत भारत मानवता को आशा की कोई किरण नहीं दिखा सकता | जाग्रत और स्वतंत्र भारत ही कराहती दुनिया को शांति और सद्भावना का संदेश दे सकता है | *(यंग, 1-6-1921, पृ. 173)*

मानवता के लिए प्राणोत्सर्ग करने की आकांक्षा पालने से पहले भारत को जीना सीखना होगा | *(यंग, 13-10-1921, पृ. 326)*

....मेरी न्यूनतम आकांक्षा यह है कि भारत के प्रयासों के जरिए अंतर्राष्ट्रीय मामले नैतिकता पर आधारित हो जाएं| *(यंग, 26-12-1924, पृ. 421)*

मैं भारत का उत्थान चाहता हूं ताकि सारी दुनिया उससे लाभान्वित हो सके | मैं यह नहीं चाहता कि भारत का निर्माण किन्हीं अन्य राष्ट्रों के ध्वसांवशेषों के ऊपर हो | इसलिए यदि भारत सुदृढ़ और योग्य बना तो वह सारी

दुनिया को अपनी कलाकृतियों और स्वास्थ्यवर्द्धक मसालों का निर्यात करेगा, पर अफीम या मादक द्रव्यों का निर्यात करने से इंकार कर देगा, भले ही इससे उसे प्रचुर धन की प्राप्ति हो सकती हो | *(यंग, 12-3-1925, पृ. 88)*

मैं भारत को स्वतंत्र और सुदृढ़ देखना चाहता हूं ताकि वह दुनिया की खुशहाली के लिए स्वयं को स्वेच्छापूर्वक एक विशुद्ध बलि के रूप में प्रस्तुत कर सके | व्यक्ति यदि शुद्ध होता है तो वह परिवार के लिए अपनी बलि दे देता है; इसी प्रकार, परिवार गांव के लिए, गांव जिले के लिए, जिला प्रांत के लिए, प्रांत राष्ट्र के लिए और राष्ट्र सबके हित के लिए बलि हो जाता है | *(यंग, 17-9-1925, पृ. 321)*

मैं पूरी विनम्रता के साथ यह स्वीकार करता हूं कि हम पश्चिम की बहुत-सी बातों को आत्मसात करके लाभान्वित हो सकते हैं | बुद्धिमत्ता किसी एक महाद्वीप अथवा प्रजाति की बपौती नहीं है | पश्चिमी सभ्यता के प्रति मेरा विरोध वस्तुत: उसके अंधाधुंध और विवेकहीन अनुकरण के प्रति है जो इस धारणा पर आधारित है कि एशियावासियों में पश्चिम से आने वाली हर चीज़ की नकल करने भर की योग्यता है |

मुझे विश्वास है कि यदि भारत में पीड़ा की अग्नि से गुजरने का धैर्य हो और वह अपनी अपूर्ण किंतु समय की कसौटी पर खरी उतरने वाली सभ्यता के ऊपर किए गए किसी भी नाजायज आक्रमण का मुकाबला कर सके तो वह विश्व की शांति और उसकी ठोस प्रगति में स्थायी योगदान कर सकता है | *(यंग, 11-8-1927, पृ. 253)*

भारत का ध्येय कहीं अधिक उदात्त है अर्थात विश्व में मैत्री और शांति की स्थापना | शांति केवल सम्मेलन करने से नहीं आती | हम सभी देखते हैं कि सम्मेलन होते रहते हैं और फिर भी, शांति भंग होती है | *(हरि, 17-11-1946, पृ. 404)*

सहिष्णुता का पाठ

भद्रता और सहिष्णुता का मूल्य तभी है जब वह कठिन-से-कठिन परिस्थितियों में भी अक्षुण्ण रहे | यदि ऐसा नहीं हुआ तो वह भारत के लिए खेद का अवसर होगा.... *(हरि, 5-10-1947, पृ. 354)*

क्या भारत संघ एक धर्मतंत्रीय राज्य होगा और हिंदू धर्म के सिद्धांत अहिंदुओं पर थोपे जाएंगे ? मैं नहीं समझता कि ऐसा होगा | यदि हुआ तो भारत संघ आशा और विश्वास का देश नहीं रह जाएगा | एक ऐसा देश नहीं रह जाएगा जिसकी ओर एशियाई और अफ्रीकी प्रजातियां ही नहीं बल्कि समूची दुनिया उम्मीद की नजरों से देख रही है |

दुनिया भारत से क्षुद्रता और हठधर्मिता की आशा नहीं करती....वह भारत से महानता और साधुता की आशा करती है जिससे समूची दुनिया सीख ले सके और अपने वर्तमान अंधकारमय वातावरण में प्रकाश पा सके | *(हरि, 16-11-1947, पृ. 411)*

जब भारत सच्चे अर्थों में स्वतंत्र होगा तो वह अफगानिस्तान, लंका और बर्मा जैसे अपने पड़ोसियों की विपत्तियों में सहायता करने के लिए अवश्य दौड़ेगा | यही बात उपर्युक्त तीनों देशों के पड़ोसियों पर भी लागू होती है जिसका अर्थ है कि वे भी भारत के पड़ोसी हो गए | इस प्रकार, यदि व्यक्तिगत बलिदान जीता-जागता बलिदान है तो वह समूची मानवता को अपने में समेट लेता है | *(हरि, 23-3-1947, पृ. 78)*

भारत और एशिया

यदि भारत असफल हुआ तो एशिया का कोई भविष्य नहीं रह जाएगा | भारत को अनेक मिली-जुली संस्कृतियों और सभ्यताओं की पोषणस्थली कहा गया है, जो सर्वथा उपयुक्त भी है | भारत को एशिया, अफ्रीका और दुनिया के किसी भी हिस्से की शोषित प्रजातियों के लिए आशा का केंद्र बनना और बने रहना चाहिए | *(हरि, 5-10-1947, पृ. 354)*

सभी आंखें भारत पर टिकी हैं जो एशिया और अफ्रीका ही नहीं बल्कि समूची दुनिया की आशा का केंद्र बन चुका है | यदि भारत को इस आशा के अनुरूप बनना है तो उसे भ्रातृहत्या बंद करनी होगी और सभी भारतीयों को मित्रों तथा भाइयों की तरह रहना होगा | निर्मल हृदय उस सुखद अवस्था की पहली शर्त है | *(हरि, 26-10-1947, पृ. 388)*

72. लोकतंत्र का सार

लोकतंत्र की भावना कोई यांत्रिक वस्तु नहीं है जिसे ढांचों का उन्मूलन करके समायोजित किया जा सके | उसके लिए हृदय-परिवर्तन आवश्यक है....उसके लिए भाईचारे की भावना का विकास आवश्यक है.... *(यंग, 8-12-1920, पृ. 3)*

सार रूप में, लोकतंत्र का अर्थ होना चाहिए सभी की आम भलाई के लिए लोगों के सभी वर्गों के समस्त भौतिक, आर्थिक और आध्यात्मिक संसाधनों के जुटाव की कला तथा विज्ञान | *(हरि, 27-5-1939, पृ. 143)*

अनुशासन

स्वतंत्रता के उच्चतम स्वरूप के लिए अधिकतम अनुशासन और विनम्रता की अपेक्षा होती है | जो स्वतंत्रता अनुशासन और विनम्रता से उत्पन्न होती है वह छीनी नहीं जा सकती; बे-लगाम स्वेच्छाचार असभ्यता का चिह्न है जो व्यक्ति को भी हानि पहुंचाता है और उसके पड़ोसियों को भी | *(यंग, 3-6-1926, पृ. 203)*

अनुशासित और प्रबुद्ध लोकतंत्र दुनिया की सबसे बढ़िया चीज़ है | पूर्वाग्रहयुक्त, अज्ञानमय और अंधविश्वासपूर्ण लोकतंत्र अव्यवस्था को जन्म देता है और स्वयं ही अपना विनाश कर लेता है | *(यंग, 30-7-1931, पृ. 199)*

व्यक्ति का उत्तरदायित्व

सच्चे लोकतंत्र में, प्रत्येक स्त्री-पुरुष को स्वयं विचार करने की शिक्षा दी जाती है | मैं नहीं जानता कि सुधार के अलावा, जो दान की तरह अपने से ही आरंभ किया जाना चाहिए, और कौन-सी विधि है जिससे यह सच्ची क्रांति लाई जा सकती है | *(हरि, 14-7-1946, पृ. 220)*

लोकतंत्र में व्यक्ति की इच्छा समाज की इच्छा, जिसे राज्य कहा जाता है, के द्वारा शासित और मर्यादित होती है जो लोकतंत्र द्वारा और उसके हित के लिए चलाया जाता है | यदि हर व्यक्ति कानून को अपने हाथों में लेने लगे तो राज्य नाम की चीज़ ही नहीं रहेगी, अराजकता फैल जाएगी जिसका अर्थ है कि सामाजिक कानून यानी राज्य का लोप हो जाएगा | इसी से अंतत: स्वतंत्रता का नाश होता है | इसलिए आपको अपने क्रोध को वश में रखना चाहिए और न्याय सुनिश्चित करने का काम राज्य को करने देना चाहिए | *(हरि, 28-9-1947, पृ. 350)*

कसौटी

लोकतंत्र की सबसे ऊंची कसौटी यह है कि जब तक व्यक्ति किसी दूसरे के जान-माल को हानि न पहुंचाए तब तक उसे जो वह चाहे वह करने की आज़ादी होनी चाहिए | सार्वजनिक आचार को गुंडागीरी से नियंत्रित करना असंभव है | *(यंग, 1-8-1920, पृ. 4)*

यदि निर्धनतम मनुष्य के साथ पूर्ण तादात्म्य स्थापित करने, उससे बेहतर जीवन न जीने की उत्कट इच्छा रखने और अपनी अधिकतम योग्यतानुसार उस स्तर तक पहुंचने का सचेतन प्रयास करने से कोई व्यक्ति लोकतांत्रिक कहला सकता हो तो मैं लोकतांत्रिक कहलाने का दावेदार हूं | *(बांक्रा, 18-9-1934)*

जन्मजात लोकतांत्रिक जन्मजात अनुशास्ता होता है | जिस व्यक्ति का सामान्य स्वभाव सभी मानव-निर्मित अथवा दैवी नियमों के स्वेच्छापूर्वक पालन करने का है, उसे लोकतंत्र सहज प्रतीत होता है....जिन्हें लोकतंत्र की सेवा करने की आकांक्षा है, उन्हें चाहिए कि पहले अपने आप को लोकतंत्र की इस कसौटी पर कसकर देखें | एक बात और है कि लोकतांत्रिक व्यक्ति को परम निस्स्वार्थी होना चाहिए | उसे अपने अथवा अपनी पार्टी के हित के बारे में नहीं सोचना चाहिए बल्कि केवल लोकतंत्र के संदर्भ में सोचना चाहिए | ऐसा व्यक्ति ही सविनय अवज्ञा करने का अधिकारी होता है |

मैं यह नहीं चाहता कि कोई व्यक्ति अपनी धारणाओं का त्याग करे अथवा अपना दमन करे | मैं नहीं मानता कि स्वस्थ और सच्चा मतभेद हमारे ध्येय को हानि पहुंचा सकता है | लेकिन अवसरवाद, छद्मावरण अथवा ऊपरी मन से किए गए समझौते अवश्य हानि पहुंचाते हैं | अगर आप किसी बात से असहमत हैं तो यह ध्यान रखें कि आपकी सम्मति आपकी अंतरतम की धारणाओं का प्रतिनिधित्व करे, वह केवल किसी सुविधाजनक दलीय नारे के रूप में इस्तेमाल किए जाने के लिए न हो | *(हरि, 27-5-1939, पृ. 136)*

लोकतंत्र किसी पर आश्रित रहकर नहीं चलाया जा सकता | वह तो केवल विश्वास के सहारे टिक सकता है | *(हरि, 16-11-1947, पृ. 409)*

पूंजी अपनी वृद्धि करने के लिए कुछ लोगों के श्रम का शोषण करती है | करोड़ों लोगों के श्रम का कुल योग, अगर बुद्धिमानी से किया जाए तो उससे करोड़ों लोगों की संपत्ति में स्वत: वृद्धि की जा सकती है | उसी में सच्चा लोकतंत्र, सच्चा पंचायत राज निहित है | *(हरि, 28-12-1947, पृ. 488)*

लोकतंत्र में प्रतिनिधित्व

मैं इसे पूर्णतया भ्रांत धारणा मानता हूं कि प्रतिनिधियों की संख्या अधिक होने से कार्य संचालन बेहतर होता है या कि इससे लोकतंत्र के सिद्धांत की रक्षा होती है | जैसे-तैसे चुने गए छह हज़ार प्रतिनिधियों की तुलना में ऐसे पंद्रह सौ प्रतिनिधि हर हाल में लोकतंत्र की बेहतर ढंग से रक्षा कर सकते हैं जो जनता के हितों के प्रति सतर्क हों, खुले दिमाग के हों और सत्यनिष्ठ हों | लोकतंत्र की रक्षा करने के लिए लोगों में स्वाधीनता, आत्मसम्मान और एकता की उत्कट भावना होनी चाहिए और उन्हें ऐसे ही लोगों को अपना प्रतिनिधि चुनना चाहिए जो भले और सत्यनिष्ठ हों| *(ए, पृ. 369)*

अगर लोगों के प्रतिनिधि थोड़ी ही संख्या में हों पर वे लोगों की भावना, आशा तथा आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करते हों तो इससे सच्चे लोकतंत्र की कोई हानि नहीं होती | मेरी धारणा है कि जोर-जबर्दस्ती करके लोकतंत्र का विकास नहीं किया जा सकता | वह तो अंदर से ही प्रस्फुटित होनी चाहिए | *(बांक्रा, 18-9-1934)*

लोकतंत्र का सार यही है कि प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र के सभी तरह-तरह के हितों का प्रतिनिधित्व करे | यह सही है कि इसमें विशेष हितों के लिए विशेष प्रतिनिधित्व की कोई मनाही नहीं है, और न होनी चाहिए, पर यह प्रतिनिधित्व उसकी कसौटी नहीं है | वह तो उसकी अपूर्णता का चिह्न है | *(हरि, 22-4-1939, पृ. 99)*

भारत के सच्चे लोकतंत्र में, गांव को इकाई माना जाएगा....सच्चा लोकतंत्र केंद्र में बैठे बीस लोगों के द्वारा नहीं चलाया जा सकता | इसका संचालन तो नीचे से, हर गांव के लोग करेंगे | *(हरि, 18-1-1948, पृ. 519)*

....इसमें संदेह नहीं कि यदि लोग आम तौर पर किसी खास चीज़ में विश्वास करते हों और उसे चाहते हों तो लोकतंत्र में उसे कार्यरूप देने में भीरुता का अनुभव नहीं किया जाना चाहिए | जन-प्रतिनिधियों को जनता की मांग को उचित स्वरूप देकर उसकी पूर्ति का उपाय अवश्य करना चाहिए | ऐसा देखा गया है कि यदि जनता की मानसिक प्रवृत्ति अनुकूल हो तो संघर्षों में विजय पाने में बड़ी मदद मिलती है | *(वही, पृ. 518)*

जनता

जनता की आवाज़ ईश्वर की आवाज़ अर्थात पंचायत की आवाज़ मानी जा सकती है | लेकिन जहां लोग स्वयं ही शोषणकर्ता हों वहां उनकी आवाज़ ईश्वर की आवाज़ कैसे होगी.... ? अगर लोगों की आवाज़ ईश्वर की आवाज़ है तो वह दलीय हितों से ऊपर होनी चाहिए | ईश्वर हर मुद्दे को सत्य और अहिंसा की तुला पर रखकर निष्पक्ष निर्णय करेगा | *(हरि, 29-9-1946, पृ. 332)*

मैंने असंख्य बार कहा है कि राष्ट्र का काम करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं के पास राजनीतिक शक्ति हो | लेकिन यह आवश्यक है कि लोग जिनके हाथों में सत्ता दें, उनके साथ निरंतर संपर्क बनाए रखें | ये लोग गिनती में बहुत थोड़े होते हैं | लेकिन जनता अगर अपनी शक्ति को पहचाने और उसे बुद्धिमानी के साथ तथा अच्छी तरह इस्तेमाल में लाए तो चीज़ें अपने आप ठीक हो जाएंगी | *(हरि, 14-9-1947, पृ. 321)*

लोकतंत्र में, यदि सरकार कोई गलती करे तो लोगों को उसका ध्यान उस गलती की ओर आकर्षित करके ही संतुष्ट हो जाना चाहिए | अगर वे चाहें तो सरकार को हटा सकते हैं | लेकिन सरकार के विरुद्ध आंदोलन करके उसके काम में बाधा नहीं डाली जानी चाहिए | हमारी सरकार कोई विदेशी सरकार नहीं है जिसके पास उसकी सहायता के लिए शक्तिशाली स्थल एवं नौसेना हो | वह तो अपनी शक्ति जनता से ही प्राप्त करती है | *(हरि, 26-10-1947, पृ. 382)*

लोकतंत्र में जनता की इच्छा ही सर्वोपरि है.... *(हरि, 14-12-1947, पृ. 471)*

यदि अधिकांश लोग स्वार्थी और अविश्वसनीय हों तो लोकतंत्र अर्थात पंचायत राज किस तरह चल सकता है? *(हरि, 28-12-1947, पृ. 486)*

बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक

विवेक के मामले में, बहुसंख्या के नियम का कोई स्थान नहीं है | *(यंग, 4-8-1920, पृ. 4)*

हमें जनादेश के सिद्धांत को बेतुकी सीमा तक नहीं खींच ले जाना चाहिए और बहुसंख्यकों के संकल्पों का दास नहीं बन जाना चाहिए | वह पशुबल का और भी सांघातिक रूप में पुनरुज्जीवन होगा | यदि अल्पसंख्यकों के अधिकारों का सम्मान किया जाना है तो बहुसंख्यकों को उनकी राय और कार्रवाई को सहन करना चाहिए और उसका आदर करना चाहिए....यह सुनिश्चित करना बहुसंख्यकों का काम है कि अल्पसंख्यकों की बात ठीक से सुनी जाती है और उनका किसी भी रूप में अपमान नहीं होता | *(यंग, 8-12-1921, पृ. 403)*

यदि हम स्वतंत्र रूप से राय जाहिर करने और कार्य करने का अधिकार चाहते हैं तो हमें यही अधिकार औरों को भी देना चाहिए | बहुसंख्यकों का शासन जब अवपीड़क हो जाता है तो वह अल्पसंख्यक नौकरशाही की तरह ही असहनीय हो उठता है | हमें प्यार से समझा-बुझाकर और तर्क का इस्तेमाल करके अल्पसंख्यकों को अपने दृष्टिकोण से सहमत करना चाहिए | *(यंग, 26-1-1922, पृ. 54)*

बहुसंख्या के शासन के नियम की प्रयुक्ति काफी सीमित है; वह यह है कि ब्यौरे की बातों में हमें बहुसंख्या की बात माननी चाहिए | लेकिन बहुसंख्या जो भी निर्णय करे, उन्हें मानना दासता है....लोकतंत्र भेड़चाल नहीं है | लोकतंत्र में, राय जाहिर करने और कार्य करने की व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सावधानी के साथ रक्षा की जाती है | इसलिए मैं मानता हूं कि अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यकों से भिन्न दिशा में कार्य करने का पूरा-पूरा अधिकार है | *(यंग, 2-3-1922, पृ. 129)*

जीती-जागती आस्था की रचना बहुसंख्या के नियम द्वारा नहीं की जा सकती | *(यंग, 16-3-1922, पृ. 161)*

असहिष्णुता

यदि हम लोकतंत्र की सच्ची भावना का विकास करना चाहते हैं तो हमें असहिष्णु नहीं होना चाहिए | असहिष्णुता इस बात का प्रमाण होती है कि हमें अपने ध्येय में पूरी आस्था नहीं है | *(यंग, 2-2-1921, पृ. 33)*

मैंने बार-बार कहा है कि कोई विचार-संप्रदाय इस बात का दावा नहीं कर सकता कि सही निर्णय लेने का अधिकार केवल उसी का है | हम सभी से गलती हो सकती है और हमें प्राय: अपने फैसले में रद्दोबदल करनी पड़ती है | हमारे जैसे विशाल देश में, खरे विचार प्रस्तुत करने वाले सभी संप्रदायों के लिए स्थान होना चाहिए और, इसलिए, हमारा अपने तथा दूसरों के प्रति कम-से-कम इतना कर्तव्य तो है ही कि हम विरोधी के दृष्टिकोण

को समझने का प्रयास करें और यदि उसे स्वीकार न कर सकें तो उसे उसी प्रकार पूरा सम्मान दें जिस प्रकार हम चाहते हैं कि विरोधी हमारे दृष्टिकोण का सम्मान करे | स्वस्थ सार्वजनिक जीवन की यह एक अपरिहार्य कसौटी है, अत: यह स्वराज के लिए भी आवश्यक है |

यदि हममें उदारता और सहिष्णुता नहीं है तो हम कभी शांतिपूर्वक अपने मतभेदों को दूर नहीं कर सकेंगे और हमें हमेशा विवाचन के लिए किसी तृतीय पक्ष अर्थात विदेशी शक्ति का मुंह देखना होगा | *(यंग, 17-4-1924, पृ. 130)*

असहिष्णुता, अशिष्टता और कठोरता....सभी अच्छे समाजों में वर्जित होते हैं और ये निस्संदेह लोकतंत्र की भावना के प्रतिकूल हैं |[163] *(हरि, 14-8-1937, पृ. 209)*

यदि हम दूसरे पक्ष की बात सुनने के लिए तैयार नहीं हैं तो लोकतंत्र का विकास नहीं हो सकता | जब हम अपने विरोधी की बात को सुनने से इंकार कर देते हैं या सुनकर उसका मखौल उड़ाते हैं तो हम तर्क का द्वार ही बंद कर देते हैं | यदि असहिष्णुता हमारी आदत बन जाए तो सत्य का हमारे हाथों से फिसल जाने का खतरा पैदा हो जाता है | एक ओर जहां हमें ईश्वर से मिले प्रकाश का अपनी सीमित बुद्धि के अनुसार अर्थ लगाकर उस पर निर्भयतापूर्वक अमल करना चाहिए वहीं हमें अपने दिमाग को हमेशा खुला रखना चाहिए और सदा इस बात के लिए तैयार रहना चाहिए कि जिसे हम सत्य समझे बैठे थे वह अंतत: सत्य नहीं था | दिमाग का यह खुलापन हमारे अंदर के सत्य को दृढ़ करता है और उसमें यदि कोई दोष है तो उसे दूर कर देता है | *(हरि, 31-5-1942, पृ. 172)*

संख्या नहीं, गुणवत्ता

मैं मात्रा जितनी भी हो, उसकी तुलना में गुणवत्ता को अधिक महत्व देता हूं....संदेह, कलह, परस्पर विरोधी हित, अंधविश्वास, भय, अविश्वास आदि के रहते हुए संख्याओं में कोई सुरक्षा नहीं है बल्कि खतरा भी हो सकता है....जब लोग कड़े अनुशासन के अधीन पूरी तरह एक होकर कार्रवाई करते हैं तो उन्हें दबाना मुश्किल हो जाता है | लेकिन जब प्रत्येक व्यक्ति अपना-अपना सुर अलापता है अथवा किसी को यह पता नहीं होता कि किधर जाना है तो जनशक्ति अपना सर्वनाश स्वयं कर लेती है | *(यंग, 30-4-1925, पृ. 152)*

मैं उम्मीदवार से केवल यह पूछूंगा, 'तुममें कितना पौरुष अथवा स्त्रीत्व है ? क्या तुम्हारे अंदर समय की मांग को देखते हुए स्वयं को उसके अनुरूप सिद्ध करने की योग्यता है ?' यदि वह इस परीक्षा में खरा उतरता है तो मैं पहले उस उम्मीदवार को चुनूंगा जो सबसे अल्पसंख्यक वर्ग का होगा | इस प्रकार, मैं भारत के कल्याण को ध्यान में रखते हुए सभी अल्पसंख्यकों को उचित अधिमान दूंगा....भारत के कल्याण का अर्थ है समूचे भारत का कल्याण, केवल हिंदू या मुसलमान या किसी समुदाय विशेष का ही कल्याण नहीं | *(यंग, 13-8-1925, पृ. 278)*

मैं आपसे कहता हूं कि इस विचार से भयभीत मत होइए कि आप संख्या में बहुत कम हैं | कभी-कभी तो यह विशेषाधिकार की स्थिति होती है | मैंने प्राय: कहा है कि यदि मैं एक के अत्यल्प मत में रह जाऊं तो मुझे बड़ा अच्छा लगेगा क्योंकि यह कृत्रिम बहुमत जो लोगों के मेरे प्रति आदरभाव का परिणाम है, मेरी प्रगति को अवरुद्ध कर देता है | यह अवरोध न हो तो मैं निर्द्वंद्व होकर अवज्ञा करूं.... *(वही, पृ. 279)*

अहिंसा में पक्का विश्वास होने का अर्थ यह अवश्य है कि मैं अल्पसंख्यकों की बात मानूंगा, यदि वे वस्तुत: कमजोर होंगे | समुदायों को कमजोर बनाने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि उनकी बात मानते जाओ | प्रतिरोध केवल उनमें संदेह पैदा करेगा और उनके विरोध को शक्ति प्रदान करेगा | *(यंग, 2-7-1931, पृ. 162)*

लोकमत

लोकमत ही किसी समाज को शुद्ध और स्वस्थ रख सकता है | *(यंग, 1-12-1920, पृ. 4)*

कोई लोकप्रिय सरकार लोकमत से आगे बढ़कर कभी कार्रवाई नहीं कर सकती | अगर वह लोकमत के विरुद्ध जाएगी तो वह नष्ट हो जाएगी | *(हरि, 30-7-1931, पृ. 199)*

स्वस्थ, तथ्याधारित और संतुलित आलोचना सार्वजनिक जीवन का ओजोन है | *(हरि, 13-11-1937, पृ. 332)*

लोकतंत्र तो केवल औसत अथवा उससे भी निचले स्तर का प्रतिनिधित्व कर सकता है | इसलिए लोकतांत्रिक संस्था तभी शुद्ध रह सकती है जब वह दीनतम और निम्नतम वर्गों की सर्वतोमुखी शिक्षा पर ध्यान दे | उसे सभी अंधविश्वासों और सामाजिक बुराइयों को मिटाना चाहिए | ऐसे समाज में न कोई ईसाई होगा, न गैर-ईसाई; स्त्री-पुरुष का भेद भी मिट जाएगा | *(हरि, 5-5-1946, पृ. 124)*

लोकतंत्र को ठीक से चलाने के लिए वस्तुत: तथ्यों के ज्ञान की नहीं, अपितु सही शिक्षा की आवश्यकता होती है| *(हरि, 29-9-1946, पृ. 334)*

स्वस्थ लोकमत का क्या असर होता है, यह हम अभी पूरी तरह समझ नहीं पाए हैं....लोकमत जब हिंसक और आक्रमक रवैया अपना लेता है तब वह असहनीय हो जाता है | *(यंग, 7-5-1931, पृ. 103)*

लोकतंत्र के पास एक ही बल है और वह है लोकमत का | सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा और उपवासों तथा बल के प्रच्छन्न या प्रकट प्रयोग के बीच कोई साम्य नहीं है | लेकिन लोकतंत्र में उनका भी सीमित उपयोग ही है | *(हरि, 7-9-1947, पृ. 316)*

विधान

लोकमत से आगे बढ़कर बनाया गया विधान प्राय: बिलकुल बेकार होता है | लोकमत को तैयार करने का सबसे त्वरित उपाय असहयोग है | *(यंग, 29-9-1921, पृ. 208)*

लोकतंत्र में कानून बनाने से पहले उसके विषय में लोगों को धैर्यपूर्वक जानकारी देना आवश्यक है | *(हरि, 16-6-1946, पृ. 181)*

राजनीतिक कार्य

....मैं राजनीतिक क्षेत्र में आने के लिए विवश इसलिए हुआ कि मैंने देखा कि राजनीति का स्पर्श किए बिना मैं सामाजिक कार्य तक नहीं कर सकता | मैं अनुभव करता हूं कि राजनीतिक कार्य को सामाजिक और नैतिक प्रगति के संदर्भ में लिया जाना चाहिए | लोकतंत्र में, जीवन का कोई अंग राजनीति से अछूता नहीं होता | *(हरि, 6-10-1946, पृ. 341)*

सत्ता की प्रकृति

सत्ता मिलने पर मनुष्य अंधे-बहरे हो जाते हैं | ऐन अपनी नाक के नीचे होने वाली बातें भी उन्हें दिखाई नहीं देतीं, न अपने कानों से टकराने वाले शब्द ही सुनाई देते हैं | इसलिए यह कोई नहीं कह सकता कि सत्ता के मद में उन्मत्त सरकार क्या नहीं कर बैठेगी | अत: ....देशप्रेमियों को मृत्यु, जेल और इसी तरह की अन्य घटनाओं के लिए तैयार रहना चाहिए | *(यंग, 13-10-1921, पृ. 327)*

निष्ठा के साथ सेवा करने से जो शक्ति प्राप्त होती है, वह मनुष्य का उदात्तीकरण करती है | लेकिन वह सत्ता जिसे सेवा की दुहाई देकर हथियाने का प्रयास किया जाए और जो केवल अधिक वोटों के बल पर प्राप्त की जा सकती हो, केवल एक भ्रांति है और इसके फंदे से बचना चाहिए.... *(यंग, 11-9-1924, पृ. 301)*

सत्ता दो प्रकार की होती है | एक वह जो दंड के भय द्वारा प्राप्त की जाती है और दूसरी वह जो प्रेम की कलाओं से अर्जित की जाती है | प्रेम पर आधारित सत्ता दंड के भय से उद्‌भूत सत्ता की तुलना में हज़ार गुना अधिक कारगर और स्थायी होती है | *(यंग, 8-1-1925, पृ. 15)*

मेरी दृष्टि में, राजनीतिक सत्ता अपने आप में कोई लक्ष्य नहीं है, बल्कि यह जीवन के सभी क्षेत्रों में लोगों की दशा को सुधारने का एक साधन मात्र है | राजनीतिक सत्ता का अर्थ है राष्ट्रीय प्रतिनिधित्व के द्वारा राष्ट्रीय जीवन को विनियमित करने की क्षमता | यदि राष्ट्रीय जीवन इतना पूर्ण बन जाए कि वह अपना नियमन स्वयं कर सके तो फिर किसी प्रतिनिधित्व की आवश्यकता नहीं है | तब वह प्रबुद्ध अराजकता की स्थिति कहलाती है | इस स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति अपना शासक स्वयं होता है | वह अपने ऊपर इस प्रकार शासन करता है कि अपने पड़ोसी के मार्ग में कभी बाधक न बने | इसलिए आदर्श राज्य में राजनीतिक सत्ता नाम की कोई चीज़ नहीं होती, क्योंकि उसमें राज्य का ही अस्तित्व नहीं होता | लेकिन जीवन में आदर्श की पूरी तरह प्राप्ति कभी नहीं हो पाती | इसीलिए थोरू का क्लासिकी कथन ही सत्य है कि सबसे अच्छी सरकार वह है जो सबसे कम शासन करे | *(यंग, 2-7-1931, पृ. 162)*

जहां ऊपर से थोपी गई सत्ता को सदा पुलिस और फौज की जरूरत रहती है वहां अंदर से उत्पन्न सत्ता के लिए इनका बहुत थोड़ा या कोई उपयोग नहीं होना चाहिए | *(हरि, 4-9-1937, पृ. 233)*

लोकतंत्र तब तक संभव नहीं है जब तक सत्ता में सभी की भागीदारी न हो, लेकिन लोकतंत्र का इतना पतन नहीं होने देना चाहिए कि वह भीड़तंत्र का रूप ले ले | स्वशासन में अछूत या मज़दूर की भी, जिनकी बदौलत आप अपनी आजीविका कमा पाते हैं, भागीदारी होगी | लेकिन आपको उनके संपर्क में आना होगा, जाकर उनकी झोंपड़ियां देखनी होंगी जिनमें वे भेड़-बकरियों की तरह भरे रहते हैं | मानवता के इस हिस्से की देखभाल करने का काम आपका है | उनके जीवन को बनाना या बिगाड़ना आपके हाथों में है | *(यंग, 1-12-1927, पृ. 404)*

ऐसी कोई मानव संस्था नहीं है जो खतरों से मुक्त हो | जितनी ही बड़ी संस्था, उसके दुरुपयोग का उतना ही ज़्यादा खतरा | लोकतंत्र एक महान संस्था है, इसलिए उसका बहुत अधिक दुरुपयोग संभव है | इसका इलाज यह नहीं है कि हम लोकतंत्र से परहेज करें, बल्कि यह है कि उसके दुरुपयोग की संभावनाओं को यथासंभव कम कर दें| *(यंग, 7-5-1931, पृ. 99)*

....जब लोगों को राजनीतिक सत्ता की प्राप्ति हो जाती है तो उनकी स्वतंत्रता में दखलंदाजी भी कम से कम रह जाती है | दूसरे शब्दों में, वही राष्ट्र सच्चे अर्थों में लोकतांत्रिक है जो राज्य की इस तरह की दखलंदाजी के बगैर अपना कार्य सुचारू रूप से तथा प्रभावी ढंग से चलाता है | जहां ऐसी स्थिति नहीं है वहां लोकतंत्र केवल नाम के लिए है | *(हरि, 11-1-1936, पृ. 380)*

तानाशाही

अनेक व्यक्तियों के ऊपर एक व्यक्ति का शासन असहनीय है | वह समाप्त होना चाहिए | प्रश्न यह है कि 'कैसे' ? रास्ता यह है कि लोग जीना शुरू करें | किसी शासक का सिर काट देना काफ़ी आसान काम है | रावण की कथा याद कीजिए | उसके दस सिर थे | एक सिर के कटते ही उसके स्थान पर दूसरा सिर उग आता था | इससे सीख यह मिलती है कि जनता जाग्रत हो तो सिर काटने की जरूरत ही नहीं पड़ती | *(हरि, 6-10-1946, पृ. 341)*

लोगों का, लोगों के द्वारा और लोगों के लिए शासन किसी एक व्यक्ति के इशारे पर नहीं चलाया जा सकता, वह व्यक्ति चाहे कितना ही महान क्यों न हो | *(हरि, 14-9-1947, पृ. 320)*

व्यक्तिगत रूप से मैं शासन के कोप की उतनी चिंता नहीं करता जितनी कि भीड़ के कोप की करता हूं | भीड़ का कोप राष्ट्रीय अस्वास्थ्य का चिह्न होता है इसलिए शासन की अपेक्षा, जो एक छोटा-सा तंत्र होता है, भीड़ के साथ निपटना काफ़ी कठिन काम है | जिस सरकार में शासन करने की योग्यता नहीं रह गई है, उसे अपदस्थ करना सरल है, किंतु उन्मत्त अनजान लोगों की भीड़ का इलाज करना कठिन है | *(यंग, 28-7-1920, पृ. 3)*

भीड़तंत्र

....भीड़ को प्रशिक्षित करने से ज़्यादा आसान काम दूसरा नहीं है, क्योंकि न तो उसके पास बुद्धि होती है, न कोई पूर्वचिंतन | वे तो उन्माद के अधीन होकर काम करते हैं | उन्हें पछतावा भी बड़ी जल्दी होता है....मैं लोकतंत्र का विकास करने के लिए असहयोग के अस्त्र का इस्तेमाल कर रहा हूं | *(यंग, 8-9-1920, पृ. 5)*

....हमें इन जनसमूहों को प्रशिक्षित करना चाहिए जिनके हृदय बड़े निर्मल हैं, जिन्हें देश का खयाल है और जो चाहते हैं कि उन्हें कोई सिखाए और उनका नेतृत्व करे | बस, थोड़े-से प्रबुद्ध और सच्चे स्थानीय कार्यकर्ता मिल जाएं तो समूचे राष्ट्र को बुद्धिमत्ता के साथ कार्य करने के लिए संगठित किया जा सकता है और भीड़तंत्र में से लोकतंत्र का विकास किया जा सकता है | *(यंग, 22-9-1920, पृ. 3)*

लोकतांत्रिक संस्था में हर कीमत पर सही कदम उठाने का साहस होना चाहिए | जो व्यक्ति लोगों की कमजोरियों को हवा देता है वह अपना और लोगों का, दोनों का पतन करता है और उन्हें लोकतांत्रिक नहीं अपितु भीड़ के शासन की ओर ले जाता है | लोकतंत्र और भीड़तंत्र के बीच अंतर करने वाली रेखा प्राय: बड़ी महीन होती है, पर वह फौलाद से भी ज़्यादा मजबूत होती है |

लोकतंत्र जीवन और प्रगति की ओर ले जाता है, जबकि भीड़तंत्र विशुद्ध मृत्यु की ओर | हमें अपने पतन का कारण अंतत: अपने अंदर ही खोजना चाहिए, बाहर नहीं | यदि हम लोग संदेह और प्रलोभन के शिकार न हुए होते तो दुनिया के सारे साम्राज्य मिलकर भी हमें पराधीन नहीं बना सकते थे | इसे सिर्फ घिसी-पिटी बात न समझिए | अगर हम मौलिक तथ्यों को समझ लें तो हम सच्चाई और धैर्य के साथ व्यवहार कर सकेंगे और भीतर या बाहर से पैदा होने वाली हर कठिनाई का सामना कर सकेंगे | *(हरि, 31-3-1946, पृ. 66)*

सैन्यवाद

....लोकतंत्र और सेना तथा पुलिस पर निर्भरता में कोई मेल नहीं है | आप यह नहीं कह सकते कि यह एक जगह ठीक है और दूसरी जगह ठीक नहीं है | सेना से सहायता लेने पर आपके अंदर गिरावट आ जाएगी | लोकतंत्र में, मतदाता यदि किसी गुंडे को शासनाध्यक्ष चुन लेते हैं, तो या तो उन्हें अपने किए का परिणाम भोगना पड़ेगा या अगर आवश्यकता हुई तो सत्याग्रह की सहायता से मतदाताओं में परिवर्तन लाना होगा | यही लोकतंत्र है | *(हरि, 12-1-1947, पृ. 488-89)*

मैं लोकतंत्र और सैन्य भावना को एक-दूसरे का विरोधी मानता हूं | लोकतांत्रिक व्यक्ति दुनिया के सामने अपने राज्य के शस्त्रों का प्रदर्शन नहीं करता, बल्कि दुनिया के लाभ के लिए उसे अपने राज्य का नैतिक बल उपलब्ध कराता है | *(हरि, 13-7-1947, पृ. 233)*

सरकारी या लोकप्रेरित आतंकवाद के बीच लोकतंत्र की भावना का विकास नहीं किया जा सकता | कई मामलों में सरकारी आतंकवाद की अपेक्षा लोकप्रेरित आतंकवाद लोकतंत्र की भावना के विकास का प्रबलतर विरोधी सिद्ध होता है | कारण यह है कि सरकारी आतंकवाद लोकतंत्र की भावना को दृढ़ करता है जबकि जनप्रेरित आतंकवाद उसे नष्ट ही कर देता है | *(यंग, 23-2-1921, पृ. 59)*

लोकतंत्र और अहिंसा

लोकतंत्र और हिंसा साथ-साथ नहीं चल सकते | जो राज्य आज नाम के लोकतांत्रिक हैं, उन्हें या तो खुल्लमखुल्ला सर्वसत्तात्मक बन जाना होगा या, अगर वे सचमुच लोकतांत्रिक बनना चाहते हैं तो हिम्मत करके अहिंसक रूप धारण करना होगा | यह कहना निंदापूर्ण है कि अहिंसा पर आचरण केवल व्यक्ति कर सकते हैं, राष्ट्र कभी नहीं, जो कि व्यक्तियों से ही मिलकर बनते हैं | *(हरि, 12-11-1938, पृ. 328)*

सच्चा लोकतांत्रिक वह है जो विशुद्ध अहिंसक उपायों से अपनी स्वाधीनता की और उसके जरिए अपने देश तथा अंतत: सारी दुनिया की स्वाधीनता की रक्षा करता है | *(हरि, 15-4-1939, पृ. 90)*

सच्चा लोकतंत्र अथवा स्वराज झूठे और हिंसक साधनों का आश्रय लेकर कभी स्थापित नहीं किया जा सकता | क्योंकि इनके प्रयोग का स्वाभाविक उपपरिणाम यह होगा कि आपको अपने हर प्रकार के विरोध को समाप्त करने के लिए दमनचक्र चलाना होगा या विरोधियों को देशनिकाला दे देना होगा | हम इसे व्यक्तिगत स्वतंत्रता नहीं कह सकते | व्यक्तिगत स्वतंत्रता केवल विशुद्ध अहिंसा के वातावरण में ही पल्लवित हो सकती है | *(हरि, 27-5-1939, पृ. 143)*

मेरी लोकतंत्र की धारणा यह है कि इसमें दुर्बलतम व्यक्ति को भी वही अवसर उपलब्ध होना चाहिए जो सबलतम को प्राप्य है | यह अहिंसा के अलावा और किसी तरीके से संभव नहीं है | आज दुनिया का कोई देश ऐसा नहीं है जो दुर्बलों के प्रति कृपाभाव के अलावा कोई और अनुकूल भाव प्रदर्शित करता हो....पश्चिम में लोकतंत्र आज जिस प्रकार चलाया जा रहा है, उसे हम हल्का नाजीवाद या फासिस्टवाद ही कह सकते हैं | ज़्यादा-से-ज़्यादा, यह साम्राज्यवाद का नाजीवादी अथवा फासिस्टवादी प्रवृत्तियों को छिपाने का आवरण कहा जा सकता है.... *(हरि, 18-5-1940, पृ. 129)*

मेरा विश्वास है कि सच्चा लोकतंत्र केवल अहिंसा का परिणाम हो सकता है | *(गांकग, 1942-44, पृ. 143)*

....पूर्ण लोकतंत्र तब तक संभव नहीं है जब तक वह पूर्ण अहिंसा द्वारा समर्थित न हो | *(हरि, 2-3-1947, पृ. 44)*

लोकतंत्र : पूर्वी तथा पश्चिमी

पश्चिमी लोकतंत्र अगर पहले ही असफल नहीं हो चुका है तो परीक्षाधीन तो है ही | क्यों न भारत अपनी योग्यता का प्रत्यक्ष प्रदर्शन करके लोकतंत्र के सच्चे विज्ञान को विकसित करने का श्रेय ले ? भ्रष्टाचार और पाखंड लोकतंत्र

की अपरिहार्य उपज नहीं होनी चाहिए, जैसे कि निस्संदेह दिखाई दे रहे हैं; न परिमाण लोकतंत्र की सच्ची कसौटी है | *(प्रेस वक्तव्य, 17-9-1934)*

मेरी राय में, पश्चिम में जो लोकतंत्र है, वह केवल नाम के लिए है | यह सही है कि उसमें सच्चे लोकतंत्र के बीज विद्यमान हैं | पर सच्चा लोकतंत्र तभी स्थापित हो सकता है जब सब प्रकार की हिंसा का त्याग कर दिया जाए और कदाचार का नामोनिशान न रहे | ये दोनों चीज़ें साथ-साथ चलती हैं | सच पूछा जाए तो कदाचार हिंसा का ही एक रूप है | यदि भारत को सच्चे लोकतंत्र का विकास करना है तो उसे हिंसा या झूठ के साथ कोई समझौता नहीं करना चाहिए | *(हरि, 3-9-1938, पृ. 24)*

भारत सच्चे अर्थात हिंसारहित लोकतंत्र को विकसित करने का प्रयत्न कर रहा है | हमारे हथियार हैं : चरखे के रूप में व्यक्त होने वाला सत्याग्रह, ग्रामोद्योग, छूआछूत-निवारण, सांप्रदायिक सद्भावना, मद्यनिषेध और श्रमिकों का अहमदाबाद की तरह का अहिंसक संगठन | इनके लिए बड़े पैमाने पर प्रयास और लोक शिक्षा की आवश्यकता है | इन कार्यकलापों को चलाने के लिए हमारे पास बड़ी-बड़ी एजेंसियां हैं | ये पूर्णतया स्वैच्छिक हैं और निम्नतम व्यक्ति की सेवा ही इनका पुरस्कार है | *(हरि, 18-5-1940, पृ. 129)*

73. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस

कांग्रेस का अपकर्ष

जब कांग्रेस में विवेक और नैतिक प्रभाव का स्थान गुंडागर्दी ले लेगी तो उसकी स्वाभाविक मृत्यु हो जाएगी, जो ठीक भी होगा | *(हरि, 18-6-1938, पृ. 149)*

कांग्रेस में फैली गंदगी को दूर करने के लिए केवल संकल्प की आवश्यकता है | लेकिन अगर कांग्रेस समितियों के अध्यक्ष उदासीन अथवा अकर्मण्य रहे तो भ्रष्टाचार से निपटना संभव नहीं होगा | 'जब नमक में से उसका जायका जाता रहेगा तो नमक में जायका कहां से आएगा ?' *(हरि, 22-10-1938, पृ. 299)*

रोम का अपकर्ष उसके पतन से पहले ही शुरू हो गया था | इसी तरह कांग्रेस, जिसका पोषण पचास से अधिक वर्षों तक देश के आला-से-आला दिमागों ने किया है, अपकर्ष आरंभ होते ही एकदम नहीं टूट जाएगी | वस्तुत: यदि समय रहते भ्रष्टाचार का इलाज कर लिया गया तो कांग्रेस के टूटने की नौबत बिलकुल नहीं आएगी | *(हरि, 28-1-1939, पृ. 444)*

कांग्रेस और अहिंसा

कांग्रेस अपना प्रभाव तभी कायम रख सकती है जब वह अहिंसा का दामन न छोड़े | उसकी एकमात्र पूंजी उसका नैतिक प्रभाव है | कोई और स्थिति सांघातिक झगड़ों और रक्तपात को जन्म दे सकती है | *(हरि, 29-7-1939, पृ. 218)*

अगर आपके दिल में तलवार हो और आप नाम अहिंसा का लें तो यह केवल पाखंड और बेईमानी ही नहीं बल्कि कायरतापूर्ण भी होगा | ब्रिटिश सरकार के समक्ष हमने जिस अहिंसा का प्रदर्शन किया, वह कमजोर आदमी की अहिंसा थी | ऐसा न होता तो हमारे बीच यह तू-तू मैं-मैं क्यों होती ?

....कमजोर और नपुंसक आदमी की नकली अहिंसा से अधिक भ्रष्ट करने वाली चीज़ कोई और नहीं है | अगर हमारे अंदर सच्ची अहिंसा होती तो हमारे सार्वजनिक जीवन में सहिष्णुता का प्रमुख स्थान होता | तब जितने मत होते, उतनी ही पार्टियों के लिए गुंजाइश रहती | तब, मतभेद बुद्धि की स्वस्थ स्वाधीनता का चिह्न होते, जो जीवन का नियम है, दलीय कुचक्रों और दलीय कलह का चिह्न न होते जिनका स्वाधीनता से कोई लेना-देना नहीं है | *(हरि, 6-10-1946, पृ. 338)*

बुनियादी लक्ष्य

कांग्रेस यदि कठिनाई के समय में लोकप्रिय न रह पाए तो वह लोकप्रिय संस्था नहीं कहलाएगी | अगर यह बेरोजगार और भूखे लोगों को काम न दे सके, अगर यह लूटमार से लोगों की रक्षा न कर सके या उन्हें उसका

मुकाबला करना न सिखा सके, अगर यह खतरे के वक्त लोगों की मदद न कर सके तो यह अपनी प्रतिष्ठा और लोकप्रियता खो बैठेगी | *(हरि, 18-1-1942, पृ. 4)*

हमारी पार्टी

कांग्रेस में केवल एक ही पार्टी हो सकती है, कोई दूसरी नहीं, और वह है कांग्रेसियों की पार्टी | कहने का आशय यह नहीं है कि कांग्रेस में भिन्न-भिन्न राय रखने वाले व्यक्तियों या समूहों के लिए कोई स्थान नहीं है | मैं जड़ एकरूपता में विश्वास नहीं करता | प्रकृति के इस नियम का कि सभी व्यक्ति समकक्ष और स्वतंत्र पैदा होते हैं, शाब्दिक अर्थ नहीं लेना चाहिए | उदाहरण के लिए, सभी व्यक्ति एक-सी बुद्धि लेकर पैदा होते हैं, लेकिन समानता का यह सिद्धांत तभी सत्य सिद्ध हो सकता है जब अधिक बुद्धिमान लोग अपनी बुद्धि का इस्तेमाल दूसरों की कीमत पर अपनी तरक्की के लिए न करके अपने से कम बुद्धिमान लोगों की सेवा के लिए करेंगे | आज कांग्रेस में सभी तरह के लोग हैं.... *(हरि, 6-10-1946, पृ. 338)*

....सत्ता-प्राप्ति के साथ ही कांग्रेसजन यह समझने लगे हैं कि सब कुछ उन्हीं का है | एक अर्थ में तो यह सही है | लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि हम अनुशासन को धता बता दें | अनुशासन और विनम्रता कांग्रेसजनों के लिए गौरव का विषय होना चाहिए | *(हरि, 1-6-1947, पृ. 176)*

कांग्रेस दलीय कुचक्रों से ऊपर उठेगी और समूचे भारत की एकता और सेवा का प्रतीक बनेगी | *(वही, पृ. 175)*

पूर्ण स्वराज का लक्ष्य

कांग्रेस को, जो सबसे पुराना राष्ट्रीय राजनीतिक संगठन है और जिसने अनेक संघर्षों के बाद अहिंसक मार्ग पर चलते हुए स्वतंत्रता प्राप्त की है, टूटने नहीं दिया जा सकता | यह तो राष्ट्र के साथ ही टूटेगी | कोई भी सप्राण संगठन या तो बराबर बढ़ता रहता है या फिर वह समाप्त हो जाता है | कांग्रेस ने राजनीतिक स्वतंत्रता तो हासिल कर ली है पर उसे अभी आर्थिक, सामाजिक और नैतिक स्वतंत्रता हासिल करनी है | राजनीतिक की अपेक्षा इन स्वतंत्रताओं को हासिल करना कठिन है, क्योंकि ये रचनात्मक हैं तथा उतना जोश पैदा करने वाली और देखने में उतनी शानदार नहीं हैं | सर्वसमावेशी रचनात्मक कार्य के लिए जनता के प्रत्येक सदस्य की ऊर्जा का योग अपेक्षित है |

कांग्रेस ने अपनी स्वतंत्रता के प्रारंभिक और आवश्यक पहलू को हासिल कर लिया है | लेकिन कठिन कार्य तो अब आएगा | लोकतंत्र की कठिन चढ़ाई के दौरान इसने अपरिहार्य रूप से ऐसे बेकार के गढ़ खड़े कर दिए हैं जिनसे भ्रष्टाचार पनपता है और ऐसी संस्थाएं खड़ी हो गई हैं जो केवल कहने के लिए ही लोकप्रिय तथा लोकतांत्रिक हैं | इस अपकारक और बेतुकी बढ़वार से किस तरह मुक्त हुआ जाए ?

संघटन

कांग्रेस को अपने सदस्यों का विशेष रजिस्टर रखना बंद कर देना चाहिए; इसमें कभी एक करोड़ से ज़्यादा नाम दर्ज नहीं रहे और तब भी उन सभी सदस्यों की पहचान कर पाना आसान नहीं था | कांग्रेस का एक अज्ञात रजिस्टर भी था जिसमें लाखों-करोड़ों लोगों के नाम शामिल थे जिनकी कभी जरूरत नहीं पड़ सकती थी | अब कांग्रेस के रजिस्टर में उन सभी स्त्री-पुरुषों के नाम शामिल माने जाने चाहिए जो देश की मतदाता सूचियों में दर्ज हैं | यह सुनिश्चित करना कांग्रेस का काम है कि इन सूचियों में कोई फर्जी नाम शामिल न हो पाए और कोई वैध नाम शामिल होने से छूट न जाए | कांग्रेस के अपने रजिस्टर में उन राष्ट्रसेवकों के नाम होंगे जो, कार्यकर्ताओं के रूप में, समय-समय पर उन्हें सौंपे गए कामों को अंजाम देंगे |

देश के लिए यह दुर्भाग्य की बात है कि फिलहाल अधिकांश कार्यकर्ता नगरवासी होंगे जिनसे गांवों में जाकर गांवों के लिए काम करने को कहा जाएगा | लेकिन गांवों से अधिकाधिक संख्या में कार्यकर्ता भरती करने के प्रयास किए जाने चाहिए |

लोकसेवक

इन लोकसेवकों से अपेक्षा की जाएगी कि वे विधि के अनुसार पंजीकृत अपने अड़ोस-पड़ोस के मतदाताओं की सेवा करें | और भी बहुत-से व्यक्ति और दल उन्हें अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास करेंगे | जिसका कार्य सर्वोत्तम होगा, वही उनका हृदय जीतेगी | यही एक उपाय है जिससे कि कांग्रेस देश में अपनी अद्वितीय किंतु तेजी से गिरती हुई स्थिति को पुन: प्राप्त कर सकती है | अभी कल की बात है जब कांग्रेस अनजाने में ही राष्ट्र की सेवक थी, उसे खुदाई खिदमतगार अर्थात ईश्वर का सेवक कहा जाता था | अब उसे स्वयं अपने तथा दुनिया के समक्ष यह घोषित कर देना चाहिए कि वह केवल ईश्वर की सेवक है – न इससे कम, न ज़्यादा | अगर वह सत्ता की भद्दी उठा-पटक में उलझ गई तो एक दिन पाएगी कि उसका अस्तित्व ही नहीं रहा है | ईश्वर का धन्यवाद है कि अब राजनीतिक क्षेत्र में कांग्रेस ही एकमात्र दल नहीं है | *(हरि, 1-2-1948, पृ. 4)*

लोक सेवक संघ*

दो हिस्सों में बंट जाने के बावजूद, भारत ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा जुटाए गए साधनों की सहायता से राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है | अत: एक प्रचार-माध्यम और संसदीय तंत्र के तौर पर कांग्रेस के वर्तमान स्वरूप की अब कोई उपयोगिता नहीं रह गई है | शहरों और कस्बों से भिन्न, अपने सात लाख गांवों के लिए भारत को अभी सामाजिक, नैतिक और आर्थिक स्वाधीनता हासिल करनी है | जब भारत अपने लोकतांत्रिक लक्ष्य की ओर प्रगति करेगा तो यह निश्चित है कि उसकी असैनिक शक्ति सैनिक शक्ति के ऊपर अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए संघर्ष करेगी | उसे राजनीतिक पार्टियों और सांप्रदायिक संस्थाओं की गंदी प्रतियोगिता से परे

रखना आवश्यक है | इस और ऐसे ही अन्य कारणों से, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी वर्तमान कांग्रेस संगठन को विघटित करने का संकल्प करती है और एक लोक सेवक संघ की स्थापना का निश्चय करती है जिसके नियम नीचे लिखे अनुसार होंगे जिनमें समय की मांग को देखते हुए परिवर्तन करने का अधिकार संघ को होगा |

पंचायत

पांच वयस्क पुरुषों अथवा स्त्रियों की पंचायत को इकाई माना जाएगा | ये स्त्री-पुरुष ग्रामवासी या ग्रामोन्मुखी वृत्ति वाले लोग होंगे |

———————

*कांग्रेस के इस नये रूप के बारे में गांधीजी का प्रस्ताव 'हरिजन' में 'हिज लास्ट विल एंड टेस्टामेंट' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था |

दो निकटस्थ पंचायतें मिलकर एक कार्यकारी दल (वर्किंग पार्टी) का रूप लेंगी जो अपने बीच से चुने गए एक नेता के अधीन कार्य करेगा |

ऐसी सौ पंचायतें हो जाने पर उनके पचास प्रथम स्तर के नेता अपने बीच से एक द्वितीय स्तर का नेता चुनेंगे और यही प्रक्रिया आगे जारी रहेगी; इस दौरान प्रथम स्तर के नेता द्वितीय स्तर के नेता के अधीन कार्य करेंगे | दो-दो सौ पंचायतों के समानांतर समूह तब तक बनते जाएंगे जब तक कि समूचे भारत में इनका जाल नहीं फैल जाएगा; पंचायतों का हर नया समूह प्रथम स्तर के नेता की तरह अपना द्वितीय स्तर का नेता भी चुनता जाएगा | द्वितीय स्तर के सभी नेता अपने-अपने क्षेत्र की और साथ ही, समूचे देश की सेवा करेंगे | द्वितीय स्तर के नेता जब आवश्यक समझें तो अपने बीच से एक प्रमुख का चुनाव कर सकेंगे जो, उनके प्रसाद पर्यन्त, सभी समूहों का विनियमन करेगा और उन्हें आवश्यक आदेश देगा |

(चूंकि प्रांतों अथवा जिलों का अंतिम निर्माण अभी अनिश्चय की स्थिति में है, इसलिए सेवकों के इस समूह को प्रांतीय अथवा जिला परिषदों में विभाजित करने का कोई प्रयास नहीं किया गया है | जिस समय तक जितने समूह बन जाएंगे, उनके क्षेत्राधिकार में सारा देश होगा | ध्यान रहे कि सेवकों के इस निकाय के पास जो भी अधिकार अथवा शक्ति होगी वह उसे अपने स्वामी अर्थात समूचे भारत की खुशी-खुशी और विवेकपूर्वक सेवा करने से प्राप्त होगी |)

कार्यकर्ताओं की योग्यताएं

(1) हर कार्यकर्ता आदतन हाथ से कते सूत अथवा ऑल इंडिया स्पिनर्स एसोसिएशन द्वारा प्रमाणित सूत से बने खादी के वस्त्र धारण करेगा | उसके लिए मद्यत्यागी होना आवश्यक है | यदि वह हिंदू है तो उसने तथा उसके परिवार ने छूआछूत के सभी रूपों का सशपथ त्याग कर दिया हो, उसे सांप्रदायिक एकता के आदर्श में विश्वास

हो, सभी धर्मों के प्रति समान श्रद्धा तथा आदर का भाव हो, तथा जाति, पंथ अथवा स्त्री-पुरुष के भेद-भाव के बिना सभी को समान अवसर दिए जाने के सिद्धांत में आस्था हो |

(2) वह अपने क्षेत्र के प्रत्येक ग्रामवासी के व्यक्तिगत संपर्क में आएगा |

(3) वह ग्रामवासियों में से कार्यकर्ताओं की भरती करेगा, उन्हें प्रशिक्षण देगा और ऐसे सभी कार्यकर्ताओं का एक रजिस्टर रखेगा |

(4) वह अपने प्रतिदिन के काम का लेखाजोखा रखेगा |

(5) वह गांवों को इस प्रकार संगठित करेगा कि वे अपनी कृषि और दस्तकारियों की सहायता से स्वत:पूर्ण और आत्मनिर्भर बन सकें |

(6) वह गांव के लोगों को सफाई और स्वास्थ्य-रक्षा की शिक्षा देगा और उनमें अस्वास्थ्य तथा बीमारी की रोकथाम के लिए सभी संभव उपाय करेगा |

(7) वह हिंदुस्तानी तालीमी संघ द्वारा निर्धारित नीति के अनुसार नयी तालीम के ढर्रे पर गांव के लोगों की आजीवन शिक्षा की व्यवस्था करेगा |

(8) वह यह सुनिश्चित करेगा कि जिन लोगों के नाम मतदाता सूचियों में नहीं हैं, उनके नाम उनमें दर्ज हो जाएं |

(9) जिन लोगों ने अभी तक मतदान का अधिकार प्राप्त करने की योग्यता हासिल नहीं की है, उन्हें अपेक्षित योग्यता हासिल करने के लिए प्रोत्साहित करेगा |

(10) उपर्युक्त प्रयोजनों और इसमें समय-समय पर जोड़े जाने वाले अन्य कामों के लिए, लोक सेवक संघ द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार, स्वयं को प्रशिक्षित करेगा और योग्य बनाएगा |

रचनात्मक संगठन

संघ निम्नलिखित स्वायत्त निकायों को अपने साथ संबद्ध करेगा :

1. ए. आई. एस. ए. [आल-इंडिया स्पिनर्स एसोसिएशन],

2. ए. आई. वी. आई. ए. [आल-इंडिया विलेज इंडस्ट्रीज एसोसिएशन],

3. हिंदुस्तानी तालीमी संघ,

4. हरिजन सेवक संघ,

5. गोसेवा संघ |

वित्त

संघ अपने ध्येय की पूर्ति के लिए ग्रामवासियों और दूसरे लोगों से धनराशि एकत्र करेगा; इसमें विशेष बल निर्धन व्यक्तियों के योगदान पर दिया जाएगा | *(हरि, 15-2-1948, पृ. 32)*

74. लोकप्रिय मंत्रिमंडल

मंत्रिमंडलों की रचना

विभिन्न हितों की संतुष्टि के लिए मंत्रियों के पद बनाना निश्चित रूप से गलत होगा | यदि मैं प्रधानमंत्री होऊं और मुझे इस तरह के दावों से परेशान किया जाए तो मैं तो अपने निर्वाचकों से कह दूं कि वे मेरे स्थान पर दूसरा नेता चुन लें | इस तरह के पद तटस्थ भाव से धारण किए जाने चाहिए, ऐसा न हो कि आप उनसे चिपक ही जाएं | ये कांटों के ताज होने चाहिए, प्रसिद्धि प्राप्त करने के साधन कदापि नहीं | पदों को ग्रहण करते समय दृष्टि यह होनी चाहिए कि ये अपने लक्ष्य तक पहुंचने की हमारी गति को तीव्र करें |

यह बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण होगा यदि स्वार्थी और पथभ्रष्ट कट्टर समर्थकों को इस बात की छूट मिल जाए कि वे प्रधानमंत्री के ऊपर स्वयं को थोपकर राष्ट्र की प्रगति को अवरुद्ध कर सकें | यदि उन लोगों की तसल्ली करना आवश्यक है जिनसे अंतत: मंत्रियों को शक्ति प्राप्त होनी है तो यह कहीं अधिक आवश्यक है कि उनसे समझदारी, असंदिग्ध निष्ठा और अनुशासन के स्वैच्छिक पालन का आश्वासन लिया जाए |

और अंत में, असली कसौटी यह है कि जिन्हें मंत्रिपद दिया जाए, वे पार्टी के उन सदस्यों को भी पसंद हों जिनके हाथ में प्रधानमंत्रियों का नामांकन है | कोई प्रधानमंत्री एक क्षण के लिए भी अपनी पसंद के स्त्री अथवा पुरुष को पार्टी के ऊपर नहीं थोप सकता | वह प्रधान इसलिए है कि पार्टी को उसकी योग्यता, लोगों के विषय में उसकी जानकारी, तथा उसके अन्य गुणों पर पूरा-पूरा भरोसा है | *(हरि, 7-8-1937, पृ. 204)*

मंत्रियों और कांग्रेस टिकट पर निर्वाचित होकर आने वाले विधायकों को निर्भयतापूर्वक अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए | उन्हें अपनी सीटों अथवा पदों के चले जाने का जोखिम उठाने के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए | कांगेस की प्रतिष्ठा और शक्ति को बढ़ाने की योग्यता के अलावा इन पदों और विधानमंडलों की सीटों का और कोई महत्व नहीं है | और चूंकि ये दोनों बातें पूर्णतया सार्वजनिक और निजी नैतिक गुणों पर निर्भर करती हैं, अत: यह समझ लेना चाहिए कि कोई भी नैतिक चूक कांग्रेस को चोट पहुंचाएगी | यह अहिंसा का अनिवार्य निहितार्थ है| *(हरि, 23-4-1938, पृ. 88)*

इसमें संदेह नहीं कि मंत्री अपनी पार्टी का हित-संवर्धन करता है, लेकिन यह कभी समूचे राष्ट्र की कीमत पर नहीं किया जा सकता | सच पूछा जाए तो वह कांग्रेस की भलाई उसी सीमा तक कर सकता है जिस सीमा तक देश की भलाई कर सकता है | क्योंकि वह जानता है कि वह अगर विदेशी शासन का मुकाबला नहीं कर सकता तो राष्ट्र के अंदर के अपने विरोधियों का भी नहीं कर सकता | और चूंकि असेंबली एक ऐसा स्थान है जहां सभी समुदाय परस्पर मिल बैठने के लिए बाध्य हैं, अत: वह यदि वहां अपने विरोधियों को अपने पक्ष में कर सके तो जो निर्णय वहां लिए जाएंगे, उनका प्रतिरोध नहीं होगा | यदि असेंबली को....राष्ट्र की समस्याओं को सुलझाने का मंच

मान लिया जाए तो....सांप्रदायिक एकता सहित राष्ट्र की सभी समस्याएं सुलझाई जा सकती हैं.... *(हरि, 16-7-1938, पृ. 184)*

सादगी में भी एक सौंदर्य तथा कला है | साफ-सुथरा और गरिमामय जीवन जीने के लिए धन की आवश्यकता नहीं होती | ठाठ-बाट और आडंबर से प्राय: कुरुचि ही झलकती है | *(हरि, 17-7-1937, पृ. 180)*

पद-धारण ऐसी चीज़ है जिससे या तो व्यक्ति की प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है या फिर वह पूरी तरह मिट्टी में मिल जाती है | अगर प्रतिष्ठा से पूरी तरह हाथ नहीं धो बैठना है तो मंत्रियों और विधायकों को अपने निजी और सार्वजनिक आचरण पर पूरा-पूरा ध्यान देना चाहिए | सीजर की पत्नी की तरह उन्हें भी सभी संदेहों से परे रहना होगा |

उन्हें अपने या अपने रिश्तेदारों अथवा मित्रों के निजी लाभ के लिए कोई काम नहीं करना चाहिए | यदि रिश्तेदारों अथवा मित्रों की कहीं नियुक्ति हो तो वह केवल इसी आधार पर हो कि वे उपलब्ध उम्मीदवारों में सर्वश्रेष्ठ थे और उनका बाजार-मूल्य सरकार में उन्हें मिलने वाले पारिश्रमिक से सदैव अधिक होना चाहिए | *(हरि, 23-4-1938, पृ. 88)*

मंत्रियों के लिए संहिता

कांग्रेस सरकार में प्रत्येक पद केवल सेवा की भावना से धारण किया जाना चाहिए; उसमें निजी लाभ की आशा का लेश भी नहीं होना चाहिए | *(हरि, 3-9-1938, पृ. 242)*

अगर कांग्रेस को जनता का संगठन बने रहना है तो उसके मंत्री साहब लोगों की तरह से नहीं रह सकते और न वे सरकारी काम के लिए मिलने वाली सुविधाओं का निजी काम के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं | *(हरि, 29-9-1946, पृ. 333)*

मंत्रियों को जनता की आलोचना को सहन करना सीखना चाहिए | उन्हें छिद्रान्वेषी आलोचना तक को अविचलित भाव से ग्रहण करना चाहिए....आलोचकगण जनता के इन सेवकों से अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक सादगी, साहस, ईमानदारी और परिश्रमशीलता की आशा रखते हैं.... *(हरि, 21-9-1947, पृ. 325)*

हमारे मंत्री जनता के हैं और जनता में से लिए गए हैं | उन्हें यह नहीं समझ बैठना चाहिए कि उन्हें उन अनुभवी लोगों से अधिक ज्ञान है जो मंत्रिपद पर आसीन नहीं हैं | *(हरि, 16-11-1947, पृ. 409)*

नेताओं के हाथ में सरकार की बागडोर है और खर्च करने के लिए करोड़ों रुपए हैं | अत: उन्हें सतर्क रहना चाहिए | उन्हें विनम्रता का व्यवहार करना चाहिए | लोग प्राय: सहज भाव से वायदे करके उनसे मुकरते रहते हैं | मंत्रियों को कभी ऐसे वायदे नहीं करने चाहिए जिन्हें वे पूरा न कर सकते हों | एक बार जो वायदा कर लिया जाए, वह हर कीमत पर पूरा किया जाना चाहिए | *(हरि, 14-12-1947, पृ. 467)*

मंत्रिगण जनता के सेवक हैं | वे जनता की स्पष्ट इच्छा के विरुद्ध कोई काम नहीं कर सकते | जनता जितने दिन चाहे, उससे एक दिन भी अधिक वे अपने पद पर नहीं रह सकते | *(हरि, 4-1-1948, पृ. 495)*

विधानमंडल

आइए, विधानमंडलों की उपयोगिता पर विचार करें | विधानमंडल सरकार के दोषों को उजागर कर सकते हैं, पर यह उतनी महत्वपूर्ण सेवा नहीं है | सच्ची सेवा तो वह करता है जो लोगों को यह बताता है कि वे सरकार के दोषों का ज्ञान होने के बावजूद उसके शिकार क्यों बने हुए हैं और उन्हें सिखाता है कि सरकार के अन्यायों का विरोध किस तरह किया जाए | यह अनिवार्य सेवा विधानमंडलों के सदस्य प्रदान नहीं कर सकते, क्योंकि उनका काम तो लोगों को इस बात के लिए प्रेरित करना है कि वे अन्यायों के निराकरण के लिए उनका सहारा लें |

विधानमंडलों की दूसरी उपयोगिता अवांछनीय कानूनों को पास होने से रोकना है और ऐसे विधेयक प्रस्तुत करना है जो लोकोपयोगी हों और जिनसे रचनात्मक कार्यक्रम को अधिकाधिक सहायता मिल सके |

विधानमंडलों से अपेक्षा की जाती है कि वे जनता की इच्छा का पालन करें | इन निकायों में भाषणकला का थोड़ा-बहुत तात्कालिक महत्व हो सकता है, पर अंतत: उसकी आवश्यकता नहीं है | आवश्यकता तो उन विशेषज्ञों की है जिन्हें व्यावहारिक ज्ञान है और उन लोगों की है जो इन विशेषज्ञों को अपेक्षित समर्थन प्रदान कर सकें | जो संगठन सेवा के लिए बना है और जिसने पदवियों और इस प्रकार की अन्य तुच्छ चीज़ों का बहिष्कार किया हुआ है, उसकी सदस्यता के लिए उम्मीदवारी को अगर प्रतिष्ठा का प्रतीक माना जाएगा तो यह हानिप्रद होगा | यदि इस भावना ने जड़ पकड़ ली तो इससे कांग्रेस की बदनामी होगी और अंतत: यह उसकी बर्बादी का कारण सिद्ध होगी |

यदि कांग्रेसजनों में इतनी गिरावट आ गई तो भारत के करोड़ों कंकालों को नवजीवन कौन देगा ? भारत और संसार किसकी ओर आशा-भरी दृष्टि से देखेंगे ? *(हरि, 17-2-1946, पृ. 13)*

लोकप्रिय मंत्रिमंडल विधानमंडलों के प्रति उत्तरदायी होते हैं और उनकी सहमति के बिना कोई काम नहीं कर सकते | लोकप्रिय विधानमंडलों का प्रत्येक सदस्य अपने मतदाताओं के प्रति उत्तरदायी होता है | अत: जनता का प्रतिनिधित्व करने वाले मतदाता को अपने ही द्वारा बनाई सरकार की आलोचना करने के पहले अच्छी तरह सोच-विचार कर लेना चाहिए |

इसके अलावा, लोगों की एक बुरी आदत ध्यान में रखनी चाहिए | वे किसी तरह का कोई कर देना नहीं चाहते | सरकार अच्छी हो तो करदाता को अपने धन के बदले पूरा प्रतिफल मिल जाता है | नगरों में दिया जाने वाला जल-कर इसका एक उदाहरण है | कोई करदाता इतनी साधारण धनराशि से पानी की निजी व्यवस्था नहीं कर

सकता | लेकिन इसके बावजूद लोग इस तरह के कर देने से भी कतराते हैं, हालांकि वे जनता की इच्छा से ही लगाए जाते हैं |

यह सही है कि सभी करों से मिलने वाले लाभ को इस तरह सिद्ध नहीं किया जा सकता जिस तरह ऊपर दिए गए जल-कर के उदाहरण में संभव है | लेकिन जैसे-जैसे समाज का आकार बढ़ता है और सेवा का क्षेत्र विस्तृत होता है, हर करदाता को यह समझाना कठिन होता जाता है कि किसी कर विशेष से उसे क्या प्रतिफल मिला | लेकिन यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि, कुल मिलाकर, करों से होने वाली आय पूरे समाज के हितार्थ व्यय की जानी चाहिए | यदि ऐसा न हो तो यह तर्क नहीं टिक सकता कि कर जनता की इच्छा से लगाए गए हैं | *(हरि, 8-9-1946, पृ. 293)*

75. मेरे सपनों का भारत

हिंदू-मुस्लिम एकता और अहिंसक उपायों अर्थात विशुद्ध आत्मत्याग के जरिए सच्ची स्वाधीनता और आत्माभिव्यक्ति हासिल करके भारत वर्तमान अंधकार से बाहर निकलने का मार्ग दिखा सकता है | *(यंग, 6-10-1920, पृ. 4)*

अगर जनता की आवाज ईश्वर की आवाज़ है तो उसमें ईमानदारी, वीरता, सौम्यता, विनम्रता और पूर्ण आत्मत्याग की ध्वनि होनी चाहिए | *(यंग, 19-11-1925, पृ. 400)*

मेरा विश्वास है कि कोई चीज़ स्थिर नहीं रहती | मानव प्रकृति का या तो उत्कर्ष होता है या फिर, अपकर्ष | हम आशा करें कि भारत में इसका उत्कर्ष हो रहा है | अन्यथा भारत और संभवत: पूरी दुनिया में प्रलय हो जाएगी |....

स्वतंत्र भारत विश्व के सम्मुख शांति का पाठ प्रस्तुत करेगा या घृणा और हिंसा का जिससे दुनिया पहले ही बुरी तरह त्रस्त है ? *(हरि, 8-6-1947, पृ. 177)*

यदि संपूर्ण भारत प्रेम के इस शाश्वत नियम को अंगीकार कर ले तो वह समूचे विश्व का निर्विवाद नेता बन जाएगा....मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि हमें विवेक के अतिरिक्त और किसी की बात नहीं माननी चाहिए| *(वही, पृ. 181)*

नया भारत

मैं केवल आशा लगाए हूं और प्रार्थना कर रहा हूं....कि एक नये और स्वस्थ भारत का उदय होगा जो पश्चिम की सभी बीभत्स बातों की घटिया नकल करने वाला एक युद्धप्रिय राष्ट्र नहीं होगा, अपितु ऐसा नया भारत होगा जो पश्चिम की उत्कृष्ट बातों को सीखेगा और केवल एशिया तथा अफ्रीका ही नहीं बल्कि सारी दुनिया के लिए आशा की किरण बनेगा |

मैं मानता हूं कि जिस तरह आज हम सेना और नंगे पशुबल से जुड़ी तमाम बातों का आश्रय ले रहे हैं, उसे देखते हुए ऐसी आशा लगाना व्यर्थ है....फिर भी, पश्चिम की तड़क-भड़क की झूठी नकल और उन्माद के बावजूद, मैं और भारत के दूसरे बहुत-से लोगों के मन आशा की इस डोर से बंधे हैं कि भारत इस मरण-नृत्य से बच निकलेगा और 1915 से लेकर बत्तीस वर्ष तक उसने, आधा-अधूरा ही सही पर, अहिंसा का जो प्रशिक्षण लिया है, उसके फलस्वरूप वह जिस ऊंचे नैतिक आसन पर बैठने का हकदार है, उसे अवश्य ग्रहण करेगा | *(हरि, 7-12-1947, पृ. 453)*

'पृथ्वी पर स्वर्ग'

जब मैंने 1896 में आगरे और दिल्ली के किले देखे थे तो उनमें से किसी में एक दरवाजे के ऊपर एक शेर खुदा देखा था जिसका अनुवाद है : 'यदि पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है, तो वह यहां है, यहां है, यहां है |' अपनी सारी शान के

बावजूद मुझे वह किला स्वर्ग नहीं लगा था | पर मुझे खुशी होगी अगर पाकिस्तान के सभी प्रवेशद्वारों पर इंसाफ के साथ उपर्युक्त शेर खुदा हो | ऐसे स्वर्ग में, चाहे वह भारत में हो या पाकिस्तान में, न कोई कंगाल होगा न भिखारी, न ऊंच न नीच, न लखपति न अधभूखा कर्मचारी, न मादक पेय, न नशीली दवाइयां | वहां जो सम्मान पुरुषों को प्राप्त होगा वही स्त्रियों को भी दिया जाएगा, स्त्री-पुरुषों की पवित्रता और शुद्धता की सावधानीपूर्वक रक्षा की जाएगी, वहां अपनी पत्नी के अतिरिक्त हर स्त्री को, सभी धर्मावलंबी, उसकी आयु के अनुसार माता, बहिन या बेटी मानकर व्यवहार करेंगे, वहां छूआछूत का नामोनिशान नहीं होगा और सभी धर्मों को समान आदर की दृष्टि से देखा जाएगा | वहां सभी लोग रोटी कमाने के लिए प्रसन्नतापूर्वक और स्वेच्छा से श्रम करने में गौरव का अनुभव करेंगे | *(यंग, 18-1-1948, पृ. 526)*

76. वापस गांवों की ओर

सच्चा भारत

मेरा विश्वास रहा है और मैंने अनेक बार यह बात दोहराई है कि भारत उसके शहरों में नहीं बसता, बल्कि उसके 7 लाख गांवों में बसता है | हम नगरवासी यह समझते हैं कि भारत नगरों में बसता है और गांव केवल हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए हैं | हमने कभी यह जानने का कष्ट नहीं उठाया है कि उन निर्धन ग्रामवासियों के पास खाने और पहनने के लिए पर्याप्त व्यवस्था है अथवा नहीं और उनके पास धूप और वर्षा से अपनी रक्षा करने के लिए कोई आश्रय-स्थली भी है या नहीं | *(हरि, 4-4-1936, पृ. 63)*

अब तक गांव वालों ने हजारों की संख्या में अपने जीवन की बलि दी है ताकि हम नगरवासी जीवित रह सकें | अब उनके जीवन के लिए हमको अपना जीवन देने का समय आ गया है | लेकिन इन दोनों के बीच मौलिक भेद है | ग्रामवासी ने अनजाने और अनचाहे अपने प्राणों की आहुति दी है | उनके इस विवश बलिदान से हम नगरवासी पतित हुए हैं | अब यदि हम जान-बूझकर उनके लिए अपना बलिदान करें तो इससे हमारा और समूचे राष्ट्र का उदात्तीकरण होगा | यदि हमें एक स्वाधीन और आत्मसम्मानी राष्ट्र के रूप में जीवित रहना है तो हमें इस आवश्यक त्याग से पीछे नहीं हटना चाहिए | *(यंग, 17-4-1924, पृ. 130)*

गांव और शहर

शहर अपनी देखभाल करने में स्वयं समर्थ हैं | इसलिए हमें गांवों की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है | हमें उन्हें उनके पूर्वाग्रहों, अंधविश्वासों, संकीर्ण दृष्टिकोण आदि से मुक्त कराना है | और इसका इससे अच्छा और कोई उपाय नहीं है कि हम उनके बीच में जाकर रहें, उनकी खुशियों और गमों में भागीदार बनें और उनके बीच शिक्षा और उपयोगी जानकारी का प्रसार करें | *(यंग, 30-4-1931, पृ. 94)*

मैंने पाया है कि नगरवासी ने आम तौर पर ग्रामवासी का शोषण किया है | सच पूछा जाए तो वह निर्धन ग्रामवासी की परवरिश पर जीता आया है | बहुत-से अंग्रेज अधिकारियों ने भारतवासियों की दशा के बारे में लिखा है | लेकिन जहां तक मेरी जानकारी है, किसी ने यह नहीं कहा है कि भारत के ग्रामवासी के पास अपनी प्राणरक्षा के लिए आवश्यक साधन उपलब्ध हैं | इसके विपरीत, उन्होंने यह स्वीकार किया है कि अधिकांश जनसंख्या लगभग भूखों मरने की स्थिति में रह रही है और 10 प्रतिशत लोगों को तो आधा-पेट ही भोजन मिल पाता है और करोड़ों लोग ऐसे हैं जिन्हें गंदे नमक, मिर्च और पालिश किए हुए चावल या भुने अन्न पर ही जीवन निर्वाह करना पड़ता है|

आप सच मानिए कि अगर हममें से किसी को यह खाना खाना पड़े तो हम एक महीने से अधिक जीवित नहीं रह पाएंगे या अपनी मानसिक क्षमताएं खो बैठेंगे | फिर भी हमारे ग्रामवासी इस जीवन को जी रहे हैं | *(हरि, 4-4-1936, पृ. 63-64)*

किसान

आप भारतीय किसान से बात करना शुरू कीजिए; जैसे ही वह अपना मुंह खोलता है, उससे बुद्धिमत्तापूर्ण बातें निकलनी आरंभ हो जाती हैं | ऊपर से गंवार दिखाई देने पर भी उसके अंदर आप आध्यात्मिकता का गहरा सागर पाएंगे | मैं इसी को संस्कृति कहता हूं – यह बात आपको पश्चिम में नहीं मिलेगी | आप यूरोप के किसी किसान से बात करने की कोशिश कीजिए तो आप देखेंगे कि उसे आध्यात्मिक बातों में कोई दिलचस्पी ही नहीं है|

जहां तक भारतीय ग्रामवासी का संबंध है, उसके गंवारपन की पपड़ी के नीचे युगों पुरानी संस्कृति छिपी हुई है | उसकी यह पपड़ी उतार दीजिए, उसकी जमाने से चली आ रही गरीबी और निरक्षरता को हटा दीजिए तो आप पाएंगे कि वह एक सुसंस्कृत, सभ्य और स्वतंत्र नागरिक का उत्तम नमूना है | *(हरि, 28-1-1939, पृ. 439)*

हमारी जनसंख्या के 75 प्रतिशत से भी अधिक लोग खेतिहर हैं....लेकिन अगर हम उन्हें उनके श्रम के लगभग पूरे प्रतिफल से वंचित कर देते हैं या किन्हीं और लोगों को ऐसा करने देते हैं तो यह नहीं कहा जा सकता कि हमारे अंदर स्वशासन की कोई उल्लेखनीय भावना विद्यमान है | *(स्पीरा, पृ. 323)*

जब हमारे नगर गांवों से प्राप्त शक्ति और पोषण के बदले उन्हें पर्याप्त प्रतिफल देना अपना कर्तव्य मान लेंगे और अपने स्वार्थवश उनका शोषण बंद कर देंगे तभी नगरवासियों और ग्रामवासियों के बीच स्वस्थ और नैतिक संबंध जन्म ले पाएंगे | यदि शहर के बच्चों को सामाजिक पुनर्निर्माण के इस महान कार्य में अपना योगदान करना है तो उन्हें जिन व्यवसायों के जरिये अपनी शिक्षा ग्रहण करनी है, वे प्रत्यक्ष रूप से गांवों की आवश्यकताओं से संबंधित होने चाहिए | *(हरि, 9-10-1937, पृ. 293)*

मैं नगरों की बढ़वार को एक बुराई मानता हूं; यह मानव जाति और दुनिया के लिए दुर्भाग्य का विषय है; यह इंग्लैंड और, निश्चित रूप से, भारत के लिए भी दुर्भाग्य का विषय है | अंग्रेजों ने शहरों के माध्यम से भारत का शोषण किया है | शहरों ने पलटकर गांवों का शोषण किया है | शहरों का भवन-निर्माण गांवों के रक्त रूपी सीमेंट से हुआ है | मैं चाहता हूं कि जो रक्त आज नगरों की धमनियों में बह रहा है, वह फिर एक बार गांवों की रक्तवाहिकाओं में बहने लगे | *(हरि, 23-6-1946, पृ. 198)*

....मैं जानता हूं कि अगर भारत को निर्मल विचारों पर आधारित निर्मल कर्म के क्षेत्र में नेतृत्व प्रदान करना है तो ईश्वर बड़े लोगों की बुद्धि को चकरा देगा और गांव वालों को अपनी बात उस रूप में रखने की शक्ति देगा जिस रूप में उसका रखा जाना उचित है | *(हरि, 28-7-1946, पृ. 236)*

भारत गांवों से मिलकर बना है, लेकिन हमारे प्रबुद्ध वर्ग ने उनकी उपेक्षा की है....गांवों का जीवन नगर के जीवन की नकल या उसका पुंछल्ला नहीं होना चाहिए | शहरों को चाहिए कि वे गांवों की जीवन-पद्धति को अपनाएं और गांवों के लिए अपना जीवन दें | *(हरि, 3-11-1946, पृ. 381)*

हमारा कर्तव्य

हमें उन ग्रामवासियों के साथ तादात्म्य स्थापित करना चाहिए जो अपनी झुकी पीठों के ऊपर कड़ी धूप सहते हुए घोर परिश्रम करते हैं और यह देखना चाहिए कि जिस पोखर में वे नहाते हैं, अपने कपड़े-बर्तन धोते हैं और उनके पशु पानी पीते और तैरते रहते हैं, क्या हम उनका पानी पी सकते हैं ? जब तक यह नहीं होगा तब तक हम सच्चे रूप में अपने देश की जनता का प्रतिनिधित्व नहीं कर पाएंगे और निश्चय जानिए कि वे भी हमारी हर बात को नहीं सुनेंगे | *(यंग, 11-9-1924, पृ. 300)*

हमें आदर्श ग्रामवासी बनना है, ऐसे ग्रामवासी नहीं जिनके विचार स्वच्छता के विषय में बड़े विचित्र हों या कोई विचार ही न हों और जिन्हें इस बात का कोई ध्यान ही न हो कि वह क्या खा रहे हैं और कैसे खा रहे हैं | हमें उनमें से अधिकांश की तरह यह नहीं करना है कि किसी भी तरह पका लिया, कैसे ही खा लिया और किसी भी तरह रह लिए | हमें उनको यह बताना है कि आदर्श भोजन क्या है | हमें केवल पसंदगी और नापसंदगी की बात ही नहीं करनी है, बल्कि उन पसंदगियों और नापसंदगियों की जड़ तक भी जाना है....|

हमें ग्रामवासियों को यह बताना है कि वे बिना किसी विशेष खर्च के अपने उपयोग की साग-सब्जियां पैदा कर सकते हैं और स्वस्थ जीवन बिता सकते हैं | हमें उन्हें यह भी बताना है कि जब वे पत्तों को पकाते हैं तो उनके अधिकांश विटामिन नष्ट हो जाते हैं |

हमें ग्रामवासियों को यह सिखाना है कि समय, स्वास्थ्य और धन की बचत कैसे करें.... | लियोनेल कर्टिस ने हमारे गांवों को गोबर के ढेर कहकर पुकारा है | हमें इन्हें आदर्श गांवों में बदलना है | हमारे गांवों के लोगों के चारों ओर यद्यपि ताजी हवा होती है, पर स्वयं उन्हें यह नसीब नहीं होती; वे ताजे-से-ताजे खाद्य पदार्थों के बीच रहते हैं, पर ये पदार्थ उन्हें नहीं मिलते | भोजन के मामले में मैं एक मिशनरी की भाषा बोल रहा हूं, क्योंकि मेरा मिशन गांवों को सुंदर बस्तियों में बदल देने का है | *(हरि, 1-3-1935, पृ. 21)*

इसका केवल एक ही उपाय है कि हम ग्रामवासियों के बीच में जाकर बैठें और उनके संरक्षकों के रूप में नहीं बल्कि पूरी आस्था के साथ अपने सभी आग्रहों और पक्षपातों को भूलकर उनके मेहतरों, परिचारकों और सेवकों के रूप में काम करें | हमें एक क्षण के लिए स्वराज की बात भूल जानी चाहिए और उन 'सम्पन्न' व्यक्तियों को भी भूल जाना चाहिए जिनकी उपस्थिति हमें हर कदम पर आतंकित करती है | उन्हें अपनी जगह रहने दीजिए | इन बड़ी समस्याओं से निबटने के लिए बहुत-से लोग हैं | हमें गांव के इस छोटे-से काम को हाथ में लेना चाहिए जो अब नितांत आवश्यक है और हमारे अपने लक्ष्य प्राप्त कर लेने के बाद भी आवश्यक रहेगा | सच पूछा जाए तो गांव के काम में सफलता प्राप्त होने से हम अपने लक्ष्य के और भी निकट पहुंच जाएंगे | *(हरि, 16-5-1936, पृ. 112)*

ग्राम आंदोलन

ग्राम आंदोलन जिस प्रकार ग्रामवासियों के लिए एक शिक्षा है उसी प्रकार यह नगरवासियों के लिए भी है | ग्राम-विकास करने के लिए शहरों से जो कार्यकर्ता आएं उन्हें अपने अंदर गांवों की मानसिकता का विकास करना चाहिए और ग्रामवासियों की तरह जीवनयापन की कला सीखनी चाहिए | इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वे ग्रामवासियों की तरह भूखे रहने लगें, लेकिन इसका आशय यह अवश्य है कि उन्हें अपने जीवन की पुरानी पद्धति में आमूल परिवर्तन करना चाहिए | *(हरि, 11-4-1936, पृ. 68)*

स्वाधीनता की जो तस्वीर मेरे मन में है उसमें ग्राम समुदाय को इकाई माना जाएगा | स्वाधीनता की अधिरचना ग्राम इकाई के ऊपर खड़ी नहीं की जाएगी जिससे कि वे 40 करोड़ लोग कुचल न जाएं जो इस देश का आधार हैं.... |

ग्राम इकाई की जो धारणा मैंने बनाई है उसके अनुसार वह एक सुदृढ़तम इकाई होगी | मेरी कल्पना के ग्राम में लगभग 1000 की आबादी होगी | यदि ऐसी इकाई का संगठन आत्मनिर्भरता के आधार पर किया गया तो वह बहुत ही अच्छा परिणाम प्रदर्शित कर सकती है | *(हरि, 4-8-1946, पृ. 251,252)*

आज हमारे सामने खतरा यह है कि कहीं हम अपने हाथों का इस्तेमाल करना न भूल जाएं | यदि हम यह भूल गए कि जमीन कैसे खोदी जाती है और मिट्टी की देखभाल किस तरह की जाती है तो समझिए हम स्वयं को भूल गए | यदि आप यह समझते हैं कि केवल शहरों की सेवा करके ही आप अपने मंत्री-पद को सफल सिद्ध कर सकते हैं तो आप यह भूलते हैं कि भारत वस्तुत: अपने 7 लाख गांवों में बसता है | आदमी को सारी दुनिया मिल जाए, लेकिन बदले में उसे अपनी आत्मा दे देनी पड़े तो उसके पास बचा ही क्या ? *(हरि, 25-8-1946, पृ. 282)*

77. समग्र ग्राम सेवा

सच्चा भारत उसके 7 लाख गांवों में बसता है | यदि भारतीय सभ्यता को एक स्थायी विश्व व्यवस्था के निर्माण में अपना पूरा-पूरा योगदान करना है तो गांवों में बसने वाली इस विशाल जनसंख्या को....फिर से जीना सिखाना होगा | *(हरि, 27-4-1947, पृ. 122)*

आज हमारे गांव जिन तीन बीमारियों के चंगुल में हैं, वे हैं : (i) सामूहिक स्वच्छता का अभाव, (ii) अपर्याप्त आहार, (iii) जड़ता.... | ग्रामवासियों को स्वयं अपने कल्याण में रुचि नहीं है | वे सफाई के आधुनिक तरीकों की खूबियां नहीं देख पाते | वे अपने खेतों को जोतने या अरसे से चले आ रहे मेहनत के कामों के अलावा कोई और काम करना नहीं चाहते | यह कठिनाइयां वास्तविक और गंभीर हैं | लेकिन हमें इनसे घबराना नहीं चाहिए |

हमें अपने ध्येय में अदम्य आस्था होनी चाहिए | हमें लोगों के साथ धीरज से पेश आना चाहिए | अभी हम स्वयं ही ग्राम-कार्य में नौसिखिये हैं | हमें पुरानी बीमारियों का इलाज करना है | अगर हममें धैर्य और अध्यवसाय होगा तो हम बड़ी-से-बड़ी कठिनाइयों को पार कर सकेंगे | हम उन परिचारिकाओं की तरह से हैं जिन्हें अपने रोगियों को इसलिए छोड़कर नहीं चले जाना चाहिए कि वे असाध्य रोगों से ग्रस्त हैं | *(हरि, 16-5-1936, पृ. 111-12)*

गांव बहुत लम्बे समय से उन लोगों की उपेक्षा के शिकार रहे हैं जो शिक्षित हैं | शिक्षित लोग शहरों में जा बसे हैं | ग्राम आंदोलन गांवों के साथ स्वस्थ संपर्क स्थापित करने का एक प्रयास है जिसके लिए उन लोगों को गांवों में जाकर बसने के लिए प्रेरित करना है जिनमें सेवा की उत्कट भावना है और जो ग्रामवासियों की सेवा में आत्माभिव्यक्ति का सुख अनुभव करते हैं.... |

जो लोग सेवा की भावना से गांवों में जाकर बस गए हैं, वे अपने सामने आने वाली कठिनाइयों से घबराये नहीं हैं | वे वहां जाने से पहले ही जानते थे कि उन्हें ग्रामीण भाइयों की रुखाई सहित अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा | इसलिए गांवों की सेवा वही लोग कर सकेंगे जिन्हें अपने में और अपने ध्येय में आस्था है |

कार्यकर्ता

लोगों के बीच रहकर सच्चा जीवन बिताना अपने आप में एक पदार्थ पाठ है | इसका अपने आसपास के वातावरण पर प्रभाव अवश्य पड़ना चाहिए | कठिनाई शायद यह है कि हमारे युवाजन सेवा की भावना के बगैर ही केवल जीविकोपार्जन के लिए गांवों में गए हैं |

मैं मानता हूं कि जो लोग धनोपार्जन के विचार से गांवों में जाते हैं, उनके लिए वहां कोई आकर्षण नहीं है | यदि सेवा की प्रेरणा नहीं है तो ग्रामजीवन नवीनता की अनुभूति समाप्त होते ही नीरस लगने लगेगा | गांवों में जाने वाले युवकों को थोड़ी-सी कठिनाई आते ही अपने ध्येय को छोड़ नहीं देना चाहिए | धैर्यपूर्वक प्रयास करने से सिद्ध हो

जाएगा कि गांवों के लोग शहर के लोगों से ज़्यादा भिन्न नहीं हैं और उन पर आपके प्रेम और उनकी समस्याओं की ओर ध्यान दिए जाने का अनुकूल प्रभाव अवश्य पड़ेगा |

यह निश्चित रूप से सही है कि गांवों में आपको देश के महान नेताओं से संपर्क के अवसर नहीं मिल पाएंगे | लेकिन ज्यों-ज्यों ग्राम मानसिकता में वृद्धि होगी त्यों-त्यों नेताओं को भी गांवों का दौरा करना आवश्यक प्रतीत होने लगेगा और वे गांवों के अधिकाधिक संपर्क में आएंगे | इसके अलावा, अगर आपको महान पुरुषों का सत्संग चाहिए तो आप चैतन्य, रामकृष्ण, तुलसीदास, कबीर, नानक, दादू, तुकाराम, तिरुवल्लुवर आदि अनेक जाने-माने महापुरुषों की रचनाओं को पढ़कर उसका सुख प्राप्त कर सकते हैं | इनके अलावा और भी अनेक संत हुए हैं जो इन्हीं के समान प्रसिद्ध और पवित्र आत्मा थे |

साहित्य

कठिनाई अपने मन को स्थायी मूल्यों को ग्रहण करने के अनुकूल बनाने की है | यदि हमें राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और वैज्ञानिक क्षेत्रों से संबंधित आधुनिक विचारों का अध्ययन करना है तो हमारी उत्सुकता को शांत करने के लिए साहित्य उपलब्ध है | लेकिन मैं मानता हूं कि जितनी सरलता से धार्मिक साहित्य उपलब्ध है, उतनी सरलता से आधुनिक साहित्य उपलब्ध नहीं है | संतों ने आम जनता के लिए लिखा और उपदेश किया था | अभी आधुनिक विचारों को आम जनता के समझने योग्य भाषा में अनूदित करने की परंपरा ठीक से शुरू नहीं हुई है | लेकिन समय के साथ-साथ इसमें प्रगति अवश्य होगी |

अत: मैं युवकों को परामर्श दूंगा कि वे....हिम्मत न हारें और अपने प्रयास जारी रखें तथा अपनी उपस्थिति से गांवों को रहने योग्य और आकर्षक बनाएं | यह काम वे तभी कर सकते हैं जबकि वे गांवों की सेवा उस रूप में करें जिस रूप में वह ग्रामवासियों के लिए स्वीकार्य हो | इसकी शुरुआत हर आदमी अपने परिश्रम के द्वारा गांवों की सफाई करके और अपनी क्षमता के अनुसार गांवों में निरक्षरता का निवारण करके कर सकता है | यदि कार्यकर्ताओं का रहन-सहन साफ-सुथरा, व्यवस्थित और परिश्रमपूर्ण होगा तो इसमें संदेह नहीं है कि वे जिन गांवों में काम कर रहे होंगे वहां इसका प्रभाव अवश्य फैलेगा | *(हरि, 20-2-1937, पृ. 16)*

समग्र ग्राम-सेवा

समग्र ग्राम-सेवक का अपने गांव के प्रत्येक निवासी से परिचय होना चाहिए और उसे जितना बन पड़े उतनी सेवा ग्रामवासियों की करनी चाहिए | इसका मतलब यह नहीं है कि वह सारा काम अकेले ही कर सकता है | वह ग्रामवासियों को यह बताएगा कि वे किस प्रकार अपनी सहायता स्वयं कर सकते हैं और उन्हें जो सहायता एवं सामग्री की आवश्यकता होगी, उसे उनके लिए उपलब्ध कराएगा | वह अपने सहायकों को भी प्रशिक्षित करेगा | वह ग्रामवासियों के मन को इस तरह जीतने का प्रयास करेगा कि वे उसके पास परामर्श के लिए आने लगेंगे |

मान लीजिए मैं एक कोल्हू लेकर किसी गांव में जाकर बस जाता हूं तो मैं 15-20 रुपये माहवार कमाने वाला कोई साधारण तेली नहीं होऊंगा | मैं तो एक महात्मा तेली होऊंगा | मैंने यहां 'महात्मा' शब्द का प्रयोग विनोद के लिए किया है; मेरा असली आशय तो यह है कि तेली के रूप में मैं ग्रामवासियों के अनुकरण के लिए एक आदर्श बन जाऊंगा | मैं ऐसा तेली होऊंगा जिसे गीता और कुरान की जानकारी है | मैं इतना पढ़ा-लिखा होऊंगा कि उनके बच्चों को शिक्षा दे सकूं | यह बात और है कि मुझे इसके लिए शायद समय न मिले | तब गांव वाले मेरे पास आएंगे और मुझ से कहेंगे, "मेहरबानी करके हमारे बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था कर दीजिए |" तब मैं उनसे कहूंगा, "मैं आपके लिए एक शिक्षक की व्यवस्था कर सकता हूं, पर आपको उसका खर्च बर्दाश्त करना होगा |" और वे खुशी-खुशी इसके लिए तैयार हो जाएंगे |

मैं उन्हें कताई सिखाऊंगा और जब वे मुझ से किसी बुनकर को लाने के लिए आग्रह करेंगे तो मैं उन्हें उसी प्रकार बुनकर लाकर दूंगा जिस प्रकार मैंने उन्हें शिक्षक लाकर दिया है | यह बुनकर उन्हें सिखायेगा कि वे अपना कपड़ा किस प्रकार बुन सकते हैं | मैं उन्हें स्वास्थ्य-रक्षा और सफाई के महत्व के प्रति जागरूक करूंगा और जब वे मुझ से कहेंगे कि मैं उनके लिए एक मेहतर की व्यवस्था कर दूं तो मैं कहूंगा, "मैं आपका मेहतर हूं और आपको इस काम की शिक्षा मैं दूंगा |"

समग्र ग्राम-सेवा की मेरी धारणा यह है | आप कह सकते हैं कि इस जमाने में मुझे ऐसा तेली कहीं नहीं मिलेगा जैसा कि मैंने ऊपर वर्णन किया है | मेरा उत्तर होगा कि यदि ऐसा है तो हम इस जमाने में अपने गांवों के सुधार की आशा नहीं कर सकते....आखिर, जो आदमी तेल-मिल चलाता है वह तेली तो होता ही है | उसके पास पैसा तो होता है, पर उसकी शिक्षा उसके पैसे में निहित नहीं होती | उसकी सच्ची शिक्षा उसके ज्ञान में निहित होती है | सच्चा ज्ञान मनुष्य को नैतिक प्रतिष्ठा और नैतिक शक्ति देता है | ऐसे व्यक्ति से हर कोई परामर्श लेना चाहता है|
(हरि, 17-3-1946, पृ. 42)

आर्थिक सर्वेक्षण

सभी गांवों का सर्वेक्षण कराया जाएगा और उन चीज़ों की सूची तैयार कराई जाएगी जो कम से कम या किसी तरह की सहायता के बिना स्थानीय रूप से तैयार की जा सकती हैं और जो या तो गांवों के ही इस्तेमाल में आ जाएंगी या जिन्हें बाहर बेचा जा सकेगा | उदाहरण के लिए, कोल्हू से पेरा गया तेल और खली, कोल्हू से पेरा गया जलाने का तेल, हाथ से कुटे चावल, ताड़ गुड़, शहद, खिलौने, चटाइयां, हाथ से बना कागज, साबुन आदि | इस प्रकार यदि पर्याप्त ध्यान दिया जाए तो ऐसे गांवों में जो निष्प्राण हो चुके हैं या निष्प्राण होने की प्रक्रिया में हैं, नवजीवन का संचार हो सकेगा तथा उनकी स्वयं अपने और भारत के शहरों और कस्बों के इस्तेमाल के लिए

आवश्यकता की अधिकांश वस्तुओं के निर्माण की अनंत संभावनाओं का पता चल सकेगा | *(हरि, 28-4-1946, पृ. 104)*

कला और शिल्प

ग्रामवासियों को अपने कौशल में इतनी वृद्धि कर लेनी चाहिए कि उनके द्वारा तैयार की गई चीज़ें बाहर जाते ही हाथों-हाथ बिक जाएं | जब हमारे गांवों का पूर्ण विकास हो जाएगा तो वहां ऊंचे दर्जे के कौशल और कलात्मक प्रतिभा वाले लोगों की कमी नहीं रहेगी | तब गांवों के अपने कवि भी होंगे, कलाकार होंगे, वास्तुशिल्पी होंगे, भाषाविद् होंगे और अनुसंधानकर्ता भी होंगे | संक्षेप में, जीवन में जो कुछ भी प्राप्य है, वह सब गांवों में उपलब्ध होगा |

आज हमारे गांव गोबर के ढेर मात्र हैं | कल वे सुंदर-सुंदर वाटिकाओं का रूप ले लेंगे जिनमें इतनी प्रखर बुद्धि के लोग निवास करेंगे जिन्हें न कोई धोखा दे सकेगा और न उनका शोषण कर सकेगा | ऊपर बताई गई पद्धति के अनुसार गांवों के पुनर्निर्माण का कार्य तत्काल शुरू कर देना चाहिए....गांवों का पुनर्निर्माण अस्थायी नहीं, स्थायी आधार पर किया जाना चाहिए | *(हरि, 10-11-1946, पृ. 394)*

आर्थिक पुनर्गठन

पूर्ण स्वदेशी से संबंधित अपने लेखन में मैंने बताया है कि किस प्रकार इसके कुछ पहलुओं को तुरंत हाथ में लिया जा सकता है जिससे लाखों भूखे लोगों को आर्थिक दृष्टि से और स्वास्थ्य-रक्षा की दृष्टि से लाभ पहुंच सकता है | देश के धनी-से-धनी व्यक्ति इस लाभ में भागीदार हो सकते हैं | मान लीजिए, यदि पुरानी पद्धति के अनुसार गांवों में चावल की हथकुटाई हो सके तो इससे मिलने वाली मजदूरी उन बहनों की जेब में जाएगी जो चावल कूटने का काम करेंगी और चावल खाने वाले लाखों लोगों को पालिश किए हुए चावल से प्राप्त होने वाली शुद्ध माड़ी के स्थान पर हाथ से कुटे चावल से मिलने वाले पोषक तत्वों का लाभ प्राप्त हो सकेगा |

मनुष्य का लोभ जो हमें लोगों के स्वास्थ्य या उनकी संपत्ति की कोई परवाह ही नहीं करने देता, चावल पैदा करने वाले क्षेत्रों में सर्वत्र फैले भद्दे चावल-मिलों के लिए उत्तरदायी है | यदि लोकमत शक्तिशाली बन जाए तो वह बगैर पालिश किए चावल के उपयोग पर जोर देकर सब चावल-मिलों को बंद करा सकता है और चावल-मिलों के मालिकों से अपील कर सकता है कि वे ऐसी चीज़ का उत्पादन बंद कर दें जिससे समूचे राष्ट्र के स्वास्थ्य की हानि होती है और गरीबों को आजीविका के एक निर्दोष साधन से वंचित होना पड़ता है | *(हरि,26-10-1934, पृ.292)*

....मेरा कहना तो यह है कि अगर गांव नष्ट होते हैं तो भारत भी नष्ट हो जाएगा | तब भारत भारत नहीं रहेगा | दुनिया में भारत का अपना मिशन ही खत्म हो जाएगा | गांवों का पुनरुज्जीवन तभी संभव है जब उनका शोषण

समाप्त हो | बड़े पैमाने के औद्योगीकरण से अनिवार्यत: ग्रामवासियों का निष्क्रिय अथवा सक्रिय शोषण होगा, क्योंकि औद्योगीकरण के साथ प्रतियोगिता और विपणन की समस्याएं जुड़ी हुई हैं |

इसलिए हमें गांवों को स्वत:पूर्ण बनाने पर जोर देना होगा जो अपने इस्तेमाल की चीज़ें खुद बनाएंगे | यदि ग्राम उद्योगों के इस स्वरूप की रक्षा की जाती है तो फिर ग्रामवासियों द्वारा उन आधुनिक मशीनों और औजारों का इस्तेमाल करने पर भी कोई आपत्ति नहीं है जिन्हें वे बना सकते हों और जिनका इस्तेमाल करने का सामर्थ्य उनमें हो | यह जरूर है कि उन्हें दूसरों के शोषण का साधन नहीं बनाया जाना चाहिए | *(हरि, 29-8-1936, पृ. 226)*

अहिंसक अर्थव्यवस्था

आप फैक्टरी सभ्यता के ऊपर अहिंसा का भवन खड़ा नहीं कर सकते, पर स्वत:पूर्ण गांवों के ऊपर कर सकते हैं....ग्राम अर्थव्यवस्था की जो मेरी धारणा है, उसमें शोषण का कोई स्थान नहीं है, और शोषण ही हिंसा का सार है| इसलिए यदि आप अहिंसक बनना चाहते हैं तो आपको अपने अंदर गांव की मानसिकता का विकास करना होगा और गांव की मानसिकता के मानी हैं चरखे में आस्था | *(हरि, 4-11-1939, पृ. 331)*

हमें दो में से एक चीज़ चुननी होगी – गांवों का भारत जो उतने ही प्राचीन हैं जितना कि स्वयं भारत है, या शहरों का भारत जो विदेशी आधिपत्य की देन हैं | आज प्रभुत्व शहरों का है, जो गांवों को इस तरह चूस रहे हैं कि वे खंडहर हुए जा रहे हैं | मेरी खादी की मानसिकता मुझे बताती है कि जब शहरों का प्रभुत्व समाप्त हो जाएगा तो वे गांवों के सहायक की भूमिका में आ जाएंगे | गांवों का शोषण अपने आप में एक संगठित हिंसा है | यदि हम चाहते हैं कि स्वराज अहिंसा पर आधारित हो तो हमें गांवों को उनका उचित स्थान देना होगा | *(हरि, 20-1-1940, पृ. 423)*

आहार विषयक सुधार

चूंकि गांवों के आर्थिक पुनर्गठन का काम आहार विषयक सुधारों से शुरू किया गया है, इसलिए इस बात का पता लगाना आवश्यक है कि वे सादे-से-सादे और सस्ते खाद्य पदार्थ कौन-से हैं जिनसे ग्रामवासी अपने खोए हुए स्वास्थ्य को पुन:प्राप्त कर सकते हैं | उनके आहार में हरे पत्ते शामिल करने से वे उन अनेक बीमारियों का शिकार होने से बच सकेंगे जिनसे वे इस समय ग्रस्त हैं |

ग्रामवासियों के आहार में विटामिनों की कमी है; इनमें से बहुत-से विटामिन ताजे हरे पत्तों से मिल सकते हैं | एक प्रसिद्ध डाक्टर ने मुझे बताया है कि हरे पत्तों के सही इस्तेमाल से आहार विषयक प्रचलित विचारों में क्रांति आ सकती है और जो पोषण इस समय दूध से मिल रहा है, वह हरे पत्तों से प्राप्त किया जा सकता है | *(हरि, 15-2-1935, पृ. 1)*

शक्तिचालित मशीनें

अगर प्रत्येक गांव के सभी घरों में बिजली आ जाए तो मुझे ग्रामवासियों द्वारा अपनी मशीनों और औजारों को बिजली से चलाए जाने पर कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए | लेकिन बिजलीघरों का स्वामित्व या तो राज्य के पास होना चाहिए या ग्राम समुदायों के पास, जैसा कि इस समय चरागाहों के विषय में है | लेकिन जहां न बिजली है, न मशीनें हैं, वहां खाली हाथ क्या करें ? *(हरि, 22-6-1935, पृ. 146)*

मैं हजारों गांवों में लगी अनाज पीसने की चक्कियों को लाचारगी की हद मानता हूं | मेरा अनुमान है कि इन सभी इंजनों और चक्कियों का विनिर्माण भारत में ही नहीं होता....गांवों में बड़ी संख्या में इन मशीनों और इंजनों को लगाना लोभ-लालच की निशानी भी है | क्या गरीब आदमी के पेट पर लात मारकर इस तरह अपनी जेब भरना ठीक है ? ऐसी हर मशीन हजारों हथचक्कियों को बेकार कर देती है जिससे हजारों घरेलु औरतें बेरोजगार हो जाती हैं और चक्कियां बनाने वाले कारीगरों का धंधा चौपट हो जाता है |

इसके अलावा यह भी है कि यह प्रवृत्ति संक्रामक होती है, इसलिए यह गांव के सभी उद्योगों को अपनी चपेट में ले लेगी | अगर ग्रामोद्योग नष्ट हो गए तो कलाओं का भी क्षय हो जाएगा | हां, अगर पुरानी दस्तकारियों का स्थान नयी दस्तकारियां ले लें तो कोई विशेष आपत्ति की बात नहीं है | लेकिन वैसा नहीं होता | जिन हजारों गांवों में शक्तिचालित आटा चक्कियां लग गई हैं, वहां मुंह-अंधेरे सुनाई देने वाला हथचक्कियों का मधुर संगीत अब सदा के लिए सो गया है | *(हरि, 10-3-1946, पृ. 34)*

78. पंचायत राज

ग्राम गणतंत्र

भारत को ग्राम गणतंत्रों का अनुभव है | मेरी कल्पना है कि ये अनजाने ही अहिंसा द्वारा शासित थे....अब एक जानी-बुझी अहिंसक योजना के तहत इनके पुनरुज्जीवन का प्रयास करना होगा | *(हरि, 4-8-1940, पृ. 240)*

सबसे उत्तम, त्वरित और कुशल उपाय नीचे से निर्माण करने का है....प्रत्येक गांव को एक स्वावलंबी गणतंत्र बनना होगा | इसके लिए लंबे-चौड़े प्रस्ताव पास करने की जरूरत नहीं है | इसके लिए साहसिक, सामूहिक और विवेकपूर्ण कार्य की जरूरत है.... *(हरि, 18-1-1922, पृ. 4)*

स्वाधीनता नीचे से शुरू होनी चाहिए | तदनुसार प्रत्येक गांव एक गणतंत्र या पंचायत होगी जिसे समस्त शक्तियां प्राप्त होंगी | इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक गांव को आत्मनिर्भर होना पड़ेगा और अपने मामलों की देखरेख स्वयं करनी होगी; यहां तक कि उसे दुनिया से अपनी रक्षा करने का सामर्थ्य भी विकसित करना होगा | गांव को बाहरी आक्रमण से अपनी रक्षा करने और आवश्यक हो तो उस प्रयास में नष्ट हो जाने के लिए प्रशिक्षित और उद्यत किया जाएगा | इस प्रकार अंतत: व्यक्ति ही इकाई माना जाएगा |

इसका मतलब यह नहीं है कि वह पड़ोसियों पर या बाहरी दुनिया पर कतई निर्भर नहीं होगा या उनके द्वारा स्वेच्छा से की गई सहायता को भी स्वीकार नहीं करेगा | लेकिन यह पारस्परिक व्यवहार उभय पक्षों की स्वतंत्रता और स्वेच्छा से संचालित होगा | ऐसा समाज अनिवार्यत: अत्यंत सुसंस्कृत होगा, जिसमें प्रत्येक स्त्री-पुरुष को यह ज्ञान होगा कि उसे क्या चाहिए और इससे भी बड़ी बात यह है कि उसे यह मालूम होगा कि उसे ऐसी किसी चीज़ की इच्छा नहीं करनी चाहिए जिसे दूसरे लोग भी उतना ही श्रम करके प्राप्त न कर सकते हों |
यह समाज स्वभावतया सत्य और अहिंसा पर आधारित होना चाहिए जो, मेरी राय में, तब तक संभव नहीं है जब तक मनुष्य को ईश्वर में जाग्रत आस्था न हो – ईश्वर जो स्वयंभू और सर्वज्ञ है, जो विश्व को ज्ञात सभी बलों में अंतर्निहित है, जो किसी पर आश्रित नहीं है और जो सभी बलों के नष्ट अथवा निष्क्रिय हो जाने पर भी विद्यमान रहेगा | इस सर्वसमावेशी जाग्रत आलोक में आस्था रखे बिना मैं तो अपने जीवन की कल्पना ही नहीं कर सकता|

विस्तारशील वलय

असंख्य गांवों से बने इस ढांचे में एक के बाद एक विस्तारशील किंतु कभी ऊर्ध्वगामी न होने वाले वलय होंगे | जीवन एक पिरामिड की तरह नहीं होगा जिसमें आधार को शीर्ष का भार वहन करना पड़ता है बल्कि वह एक समुद्री वलय की तरह होगा जिसके केंद्र में व्यक्ति होगा जो सदैव अपने गांव के लिए मर-मिटने के वास्ते तैयार रहेगा, गांव गांव-समूहों के वास्ते नष्ट हो जाने के लिए तैयार रहेगा, और यह प्रक्रिया वहां तक चलती रहेगी जहां संपूर्ण विश्व एक जीवन का रूप धारण कर लेगा; सभी व्यक्ति इस एक जीवन के अंग होंगे, वे कभी आक्रामक

रुख नहीं अपनाएंगे बल्कि सदा विनम्रता का व्यवहार करेंगे और उस समुद्री वलय के ऐश्वर्य में भागीदार होंगे जिसकी वे अंगभूत इकाइयां हैं |

इस समुद्री वलय की बाह्यतम परिधि के पास आंतरिक परिधि को कुचलने की शक्ति नहीं होगी, बल्कि वह अपने अंदर की सभी परिधियों को शक्ति प्रदान करेगी और स्वयं उनसे शक्ति प्राप्त करेगी | लोग मुझे पलटकर उलाहना दे सकते हैं कि ये सब यूटोपिआई बातें हैं और जरा भी विचारणीय नहीं हैं | यदि यूक्लिड के बिंदु का, भले ही कोई भी मनुष्य उसे कागज पर न उतार सके, अक्षय मूल्य है तो मेरी उपर्युक्त तस्वीर का भी मानव जाति के लिए मूल्य है |

आदर्श

भारत को इस सच्ची तस्वीर के लिए जीना चाहिए, भले ही हम उसे कभी पूरी तरह प्राप्त न कर सकें | हम जो चाहते हैं, हमारे सामने पहले उसकी सही तस्वीर होनी चाहिए, तभी हम उसे प्राप्त करने की दिशा में प्रयास कर सकते हैं | अगर भारत का प्रत्येक गांव कभी गणतंत्र बना तो मेरा दावा है कि मेरी तस्वीर ही सच्ची साबित होगी जिसमें निम्नतम व्यक्ति उच्चतम के समकक्ष होगा अर्थात न कोई उच्चतम होगा न कोई निम्नतम |

इस तस्वीर में हर धर्म को पूरा और बराबर का स्थान प्राप्त है | हम सभी एक शानदार वृक्ष की पत्तियां हैं जिसकी जड़ें पृथ्वी के गर्भ में इस तरह जमी हुई हैं कि उसके तने को उसकी जड़ों से अलग नहीं किया जा सकता | तेज-से-तेज झंझावात भी इस वृक्ष को हिला नहीं सकता |

इस तस्वीर में ऐसी मशीनों के लिए कोई स्थान नहीं है जो मानव श्रम को विस्थापित करती हैं और मुट्ठी भर लोगों में शक्ति का केंद्रीकरण करती हैं | सुसंस्कृत मानव परिवार में श्रम का स्थान बेजोड़ है | ऐसी हर मशीन का स्वागत है जो प्रत्येक व्यक्ति की सहायता करती है | हां, मैं यह बात मानने के लिए तैयार हूं कि मैं अभी तक इस प्रश्न पर विचार नहीं कर पाया हूं कि ऐसी मशीन कौन-सी हो सकती है | सिंगर की सिलाई मशीन मेरे ध्यान में आई है | लेकिन यह भी सरसरी तौर पर ही है | अपनी तस्वीर को भरने के लिए मुझे इसकी जरूरत नहीं है | *(हरि, 28-7-1946, पृ. 236)*

मैं जानता हूं कि एक आदर्श गांव का निर्माण उतना ही कठिन है जितना कि आदर्श भारत का निर्माण है | लेकिन जहां एक व्यक्ति के लिए एक-न-एक दिन एक गांव को आदर्श रूप प्रदान करने की अपनी आकांक्षा को पूरा करना संभव है वहीं सारे भारत को आदर्श देश बनाने के लिए किसी एक व्यक्ति का जीवनकाल बहुत थोड़ा है | लेकिन अगर एक आदमी एक गांव को आदर्श स्वरूप प्रदान कर सकता है तो वह न केवल सारे देश बल्कि पूरी दुनिया के सामने एक नमूना पेश करेगा | सत्यशोधक को इससे बड़ी उपलब्धि की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए | *(हरि, 4-8-1940, पृ. 235)*

ग्राम गणतंत्रों के अंतर्गत

मैं ऐसे भारत की कल्पना नहीं कर रहा हूं जो निर्धनता का शिकार होगा और जिसमें करोड़ों अज्ञानी लोगों का वास होगा | मेरी कल्पना का भारत अपनी प्रकृति के अनुरूप निरंतर प्रगति करने वाला देश होगा | लेकिन मैं यह नहीं चाहता कि भारत पश्चिम की मरणासन्न सभ्यता की घटिया – या बढ़िया-से-बढ़िया – अनुकृति बने |

अगर मेरा सपना सच होता है और देश के सात लाख गांवों में से प्रत्येक गांव एक स्वस्थ गणतंत्र बनता है जिसमें कोई व्यक्ति निरक्षर नहीं होगा, कोई बेरोजगार नहीं होगा, हरेक के पास भरपूर काम होगा और पौष्टिक भोजन होगा, हवादार मकान होंगे, तन ढकने के लिए पर्याप्त खादी होगी, सभी ग्रामवासियों को स्वास्थ्य-रक्षा तथा स्वच्छता के नियमों का ज्ञान होगा और वे उनका पालन करते होंगे, तो ऐसी स्थिति में राज्य की आवश्यकताएं विविध और वर्धमान होंगी जिनकी पूर्ति उसे करनी होगी अन्यथा उसकी प्रगति अवरुद्ध हो जाएगी | *(हरि, 30-7-1938, पृ. 200)*

ग्राम स्वराज

ग्राम स्वराज की मेरी धारणा के अनुसार वह एक पूर्ण गणतंत्र होगा जो अपनी बुनियादी आवश्यकताओं के मामले में अपने पड़ोसियों पर निर्भर नहीं होगा | फिर भी, जिन मामलों में निर्भरता आवश्यक है, उनमें गांवों के बीच परस्पर निर्भरता की स्थिति होगी | तदनुसार, प्रत्येक गांव का पहला काम अपने खाने के लायक अन्न और कपड़े के लिए कपास उगाना होगा | वह अपने पशुओं के लिए चरागाह और वयस्कों तथा बच्चों के लिए मनोरंजन और खेल के मैदान की व्यवस्था भी करेगा | इसके बाद अगर और जमीन उपलब्ध होगी तो उस पर गांजा, तंबाकू और अफीम को छोड़कर अन्य नकदी फसलें उगाई जाएंगी |

गांव में एक मंच, स्कूल और सार्वजनिक सभागार होगा | उसका अपना जल संस्थान होगा जो स्वच्छ जल की आपूर्ति सुनिश्चित करेगा | इसकी व्यवस्था नियंत्रित कुओं या तालाबों से की जा सकती है | बुनियादी पाठ्यक्रम के अंतिम वर्ष तक की शिक्षा अनिवार्य होगी | जहां तक संभव होगा, प्रत्येक कार्यकलाप सहकारिता के आधार पर चलाया जाएगा | आज जैसी जातियां जिनमें न्यूनाधिक छूआछूत प्रचलित है, समाप्त हो जाएंगी |

सत्याग्रह और असहयोग की तकनीक से युक्त अहिंसा ग्राम समुदाय की दंड-शक्ति होगी | ग्राम-रक्षकों के रूप में सबको अनिवार्य सेवा करनी होगी; रक्षकों का चुनाव गांव द्वारा रखे जाने वाले रजिस्टर में से बारी-बारी से किया जाएगा |

गांव का शासन

गांव का शासन पांच व्यक्तियों की पंचायत चलाएगी जो न्यूनतम निर्धारित योग्यता रखने वाले वयस्क स्त्री-पुरुषों द्वारा प्रतिवर्ष चुनी जाएगी | इन पंचों के पास समस्त प्राधिकार और अपेक्षित क्षेत्राधिकार होंगे | चूंकि दंड का

सामान्यतया जो अर्थ लगाया जाता है उस अर्थ में कोई दंड-प्रणाली लागू नहीं होगी, इसलिए यह पंचायत ही अपने कार्यकाल के दौरान विधायिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका, तीनों को स्वयं में समाविष्ट करते हुए उनके कर्तव्यों का निर्वाह करेगी....

मैंने यहां इस बात पर विचार नहीं किया है कि पंचायत के अपने पड़ोसी गांवों और केंद्र के साथ, यदि हुआ तो, क्या संबंध होंगे | मेरा उद्देश्य ग्राम शासन की रूपरेखा प्रस्तुत करना है | गांव में पूर्ण लोकतंत्र चलेगा जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर आधारित होगा | व्यक्ति ही अपनी सरकार का निर्माता होगा | उस पर और उसकी सरकार पर अहिंसा के नियम का शासन होगा | वह और उसका गांव सारी दुनिया की ताकत को चुनौती दे सकेंगे | कारण कि, प्रत्येक ग्रामवासी इस नियम से शासित होगा कि वह अपने और अपने गांव के सम्मान की रक्षा में अपने प्राणों की आहुति देने के लिए तैयार रहेगा....

ऊपर जो तस्वीर पेश की गई है, उसमें कोई बात ऐसी नहीं है जिसे असंभव कहा जा सके | ऐसे आदर्श गांव की स्थापना करने में व्यक्ति का पूरा जीवनकाल लग सकता है | सच्चे लोकतंत्र और ग्राम-जीवन का कोई प्रेमी यदि एक गांव चुन ले और उसे अपनी दुनिया तथा एकमात्र कार्य मानकर जुट जाए तो उसे निश्चय ही काफ़ी अच्छे परिणाम प्राप्त होंगे | *(हरि, 26-7-1942, पृ. 238)*

लोकमत

पंचायत राज की स्थापना हो जाने पर लोकमत वह काम कर सकता है जो हिंसा कभी नहीं कर सकती | जमींदारों, पूंजीपतियों और राजाओं की वर्तमान शक्ति का बोलबाला तभी तक रह सकता है जब तक आम लोगों को अपनी शक्ति का अहसास नहीं होता | अगर लोग जमींदारी या पूंजीवाद की बुराइयों के साथ असहयोग करने लगें तो वह अर्थहीन होकर नष्ट हो जाएगा | पंचायत राज में केवल पंचायत का ही आदेश चलेगा और पंचायत अपने ही बनाए कानूनों के मुताबिक काम करेगी | *(हरि, 1-6-1947, पृ. 172)*

असली शासक तो मेहनतकश जनता है |*(हरि, 15-6-1947, पृ. 193)*

किसान मेरुदंड है

स्वाभाविक है कि पंचायत राज के अंतर्गत, भारत में सर्वाधिक महत्व किसान का होगा | प्रश्न यह है कि उसे किस प्रकार आगे बढ़ाया जाए ? *(हरि, 7-12-1947, पृ. 458)*

पंचायतों के पास जितनी अधिक शक्ति होगी, लोगों के लिए उतना ही अच्छा है | एक बात और है कि पंचायतें तभी कारगर और कुशल बन सकती हैं जब लोगों की शिक्षा के स्तर में पर्याप्त वृद्धि की जाए | मैं लोगों की शक्ति में वृद्धि की जो बात कह रहा हूं, वह सैन्य शक्ति नहीं बल्कि नैतिक शक्ति की बात है | स्वभावतया, इस संदर्भ में मैं नयी तालीम का कायल हूं | *(हरि, 21-12-1947, पृ. 473)*

पंचायत के कार्य

पंचायत का काम ईमानदारी और अध्यवसाय की पुन:प्रतिष्ठा करना है....यह काम पंचायतों का है कि अगर उन्हें झगड़ों को सुलझाना है तो वे गांव वालों को झगड़ों से बचने की सीख दें | इससे बिना किसी खर्च के शीघ्र न्याय दिया जा सकेगा | न आपको पुलिस की जरूरत पड़ेगी, न सेना की....

पंचायत को पशुओं की नस्ल के सुधार पर ध्यान देना चाहिए....उन्हें दुग्ध उत्पादन में वृद्धि करके दिखानी चाहिए....पंचायत को गांव में पैदा होने वाले खाद्यान्न की मात्रा में भी वृद्धि प्रदर्शित करनी चाहिए | इसके लिए जमीन में ठीक से खाद डालने की आवश्यकता होगी |

आपके पास खेलने के लिए देसी खेल हैं | आपको अपने बीच से मादक पेयों और नशीली दवाइयों के सेवन को बिलकुल समाप्त कर देना चाहिए | अगर आपकी गांव में अब भी थोड़ी-बहुत छूआछूत विद्यमान है तो मैं आशा करता हूं कि आप उसका नामोनिशान मिटा देंगे | हिंदुओं, मुसलमानों, सिखों, पारसियों और ईसाइयों को भाइयों और बहनों की तरह रहना चाहिए | मैंने ऊपर जो कुछ कहा है, अगर आप उसे कर दिखाएंगे तो भारत भर से लोग आपके आदर्श गांव को देखने के लिए आएंगे और आपसे प्रेरणा ग्रहण करेंगे | *(हरि, 4-1-1948, पृ. 500)*

पंचायत की स्थिति

अगर हम पंचायत राज अर्थात सच्चे लोकतंत्र का सपना पूरा होता देख सके तो हम दीनतम और निम्नतम भारतीय को भी देश के बड़े-से-बड़े व्यक्ति के समकक्ष भारत के शासक का दर्जा दे पाएंगे | यह तभी संभव है जब सब लोग शुद्ध हों और जो शुद्ध नहीं हैं, वे शुद्ध बनें | और शुद्धता के साथ बुद्धिमत्ता का भी योग हो | तब कोई व्यक्ति एक समुदाय और दूसरे समुदाय तथा जाति और जाति-बहिष्कृत के बीच भेद नहीं मानेगा | प्रत्येक व्यक्ति सभी को अपने बराबर समझेगा और उन्हें अपने साथ स्नेह की रेशमी डोर में बांधकर रखेगा | कोई किसी को अछूत नहीं मानेगा | हम मेहनतकश मज़दूर को और धनी पूंजीपति को एक समान समझेंगे | हर आदमी को शारीरिक परिश्रम करके ईमानदारी से अपनी रोजी-रोटी कमाना आएगा और वह बौद्धिक तथा शारीरिक श्रम के बीच कोई भेद नहीं मानेगा | इसकी यथाशीघ्र संसिद्धि के लिए हम सभी स्वेच्छा से अपने को झाड़ूबरदार मान लेंगे | कोई भी बुद्धिहीन व्यक्ति अफीम, शराब या किसी मादक पदार्थ को कभी नहीं छुएगा | हर व्यक्ति स्वदेशी को जीवन का नियम मानेगा और हर पुरुष अपनी पत्नी के अलावा हर स्त्री को, उसकी आयु के अनुसार अपनी माता, बहिन अथवा पुत्री मानेगा और अपने हृदय में उसके प्रति कभी कामेच्छा उत्पन्न नहीं होने देगा | वह आवश्यकता पड़ने पर अपने प्राणों की आहुति देने के लिए तैयार रहेगा, पर कभी किसी दूसरे के प्राण लेने का विचार नहीं करेगा.... *(हरि, 18-1-1948, पृ. 517)*

79. शिक्षा

प्राचीन सूक्ति 'सा विद्या या विमुक्तये' आज भी उतनी ही सत्य है जितनी कि पहले थी | शिक्षा से यहां आशय केवल आध्यात्मिक शिक्षा से नहीं है, न विमुक्ति से आशय मृत्यु के उपरांत मोक्ष से है | ज्ञान में वह समस्त प्रशिक्षण समाहित है जो मानव जाति की सेवा के लिए उपयोगी है और विमुक्ति का अर्थ है वर्तमान जीवन की भी सभी प्रकार की पराधीनताओं से मुक्ति | पराधीनता दो प्रकार की होती है : बाहरी आधिपत्य की दासता और आदमी की अपनी कृत्रिम आवश्यकताओं की दासता | इसी आदर्श की प्राप्ति के लिए किया गया ज्ञानार्जन सच्ची शिक्षा है | *(हरि, 10-3-1946, पृ. 38)*

जीने का ज्ञान

आज शुद्ध जल, शुद्ध पृथ्वी और शुद्ध वायु हमारे लिए अपरिचित हो गए हैं | हम आकाश और सूर्य के अपरिमेय मूल्य को नहीं पहचानते | अगर हम पंच तत्वों* का बुद्धिमत्तापूर्ण उपयोग करें और सही तथा संतुलित भोजन करें तो हम युगों का काम पूरा कर सकेंगे | इस ज्ञान के अर्जन के लिए न डिग्रियों की आवश्यकता है, न करोड़ों रुपयों की | इसके लिए ईश्वर में जाग्रत विश्वास चाहिए, सेवा करने का उत्साह चाहिए, पंचतत्वों से परिचय चाहिए और आहारविज्ञान की जानकारी चाहिए | इन्हें स्कूलों और कालिजों में समय बर्बाद किए बिना भी अर्जित किया जा सकता है | *(हरि, 1-9-1946, पृ. 286)*

निरंतर शंका और शुद्ध जिज्ञासा किसी भी प्रकार के ज्ञानार्जन की पहली शर्तें हैं | जिज्ञासा के मूल में विनम्रता और गुरु के प्रति आदरभाव होना चाहिए | ध्यान रहे कि वह विकृत होकर उद्धतता में न बदल जाए | उद्धतता बुद्धि की ग्रहणशीलता की शत्रु है | विनम्रता और सीखने की इच्छा के बिना ज्ञान की प्राप्ति असंभव है | *(हरि, 8-9-1946, पृ. 306)*

नये संसार की रचना के लिए शिक्षा भी नयी तरह की होनी चाहिए | *(हरि, 19-1-1947, पृ. 494)*

आदमी साक्षरता अथवा विद्वत्ता से आदमी नहीं बनता, बल्कि सच्चे जीवन के लिए ली गई शिक्षा से बनता है| *(हरि, 2-2-1947, पृ. 3)*

मेरा आग्रह है कि वयस्क मताधिकार के साथ-ही-साथ, अथवा उससे भी पहले, सर्वजनीन शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए जिसका पुस्तकीय होना अनिवार्य नहीं है – पुस्तकें तो संभवत: उसकी सहायक की भूमिका ही निभा सकती हैं | मेरा मानना है कि अंग्रेजी शिक्षा ने हमारे दिमागों को कंगाल बना दिया है, कमजोर कर दिया है और उन्हें साहसी नागरिकता के लिए कभी तैयार नहीं किया | मैं उन्हें समृद्ध भाषाओं में ऐसा पर्याप्त ज्ञान दूंगा जिस पर कोई भी देश गर्व कर सके | यदि हममें ईमानदारी और उत्साह हो तो नागरिकता के मर्म को समझने की शिक्षा अल्पसमय में ही ग्रहण की जा सकती है | *(हरि, 2-3-1947, पृ. 46)*

श्रम की गरिमा

मेरी धारणा है कि चूंकि हमारा अधिकांश समय रोजी-रोटी के लिए श्रम करने में जाता है, इसलिए हमारे बच्चों को शुरू से ही इस प्रकार के श्रम की गरिमा का पाठ पढ़ाया जाना चाहिए | हमारे बच्चों की शिक्षा ऐसी नहीं होनी चाहिए कि वे श्रम को हेय समझने लगें | कोई कारण नहीं है कि किसान का बेटा, स्कूल जाने के बाद, खेतिहर श्रमिक के रूप में काम करना न चाहे, जैसा कि आजकल देखने में आ रहा है | *(यंग, 1-9-1921, पृ. 277)*

———

*पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि और वायु |

पुस्तकीय शिक्षा हाथ की शिक्षा के बाद आरंभ होनी चाहिए – हाथ मनुष्य को प्रकृति की ऐसी देन है जो उसे पशु से भिन्न बनाती है | यह सोचना अंधविश्वास है कि पढ़ने-लिखने की कला जाने बिना मनुष्य का पूरा-पूरा विकास असंभव है | यह सही है कि पढ़ना-लिखना आने से जीवन की श्रीवृद्धि होती है, लेकिन यह किसी भी रूप में मनुष्य के नैतिक, शारीरिक अथवा भौतिक विकास के लिए अपरिहार्य नहीं है | *(हरि, 8-3-1935, पृ. 28)*

मेरी धारणा है कि बुद्धि की सच्ची शिक्षा केवल हाथ, पैर, नेत्र, कान, नाक आदि शारीरिक अंगों के उचित व्यायाम एवं प्रशिक्षण से ही प्राप्त की जा सकती है | दूसरे शब्दों में, बच्चे को उसके शारीरिक अंगों के बुद्धिमत्तापूर्ण उपयोग की शिक्षा देना ही उसकी बुद्धि का सर्वोत्तम और शीघ्रतम विकास करने की विधि है | लेकिन जब तक बुद्धि और शरीर के विकास के साथ-साथ, उसी गति से, आत्मा की जागृति का काम भी नहीं चलता तब तक विकास एकांगी ही सिद्ध होगा | आध्यात्मिक प्रशिक्षण से मेरा आशय है हृदय की शिक्षा | इसलिए बुद्धि का उचित और समग्र विकास तभी हो सकता है जब वह बच्चे की शारीरिक एवं आध्यात्मिक क्षमताओं की शिक्षा के समरूप प्रगति करे | यह सब एक अविभाज्य इकाई है | अत: इस सिद्धांत के अनुसार, यह समझना नितांत भ्रांतिपूर्ण है कि इनका विकास खंडश: अथवा एक-दूसरे से स्वतंत्र रूप में किया जा सकता है |

सामंजस्यपूर्ण मेल

शरीर, बुद्धि और आत्मा की विविध क्षमताओं के बीच उचित समन्वय और सामंजस्य के अभाव के दुष्परिणाम स्पष्ट हैं | उन्हें हम अपने चहुं ओर देख सकते हैं; बस यही है कि अपने वर्तमान विकृत साहचर्यों के कारण हमें उनका बोध नहीं होता.... *(हरि, 8-5-1937, पृ. 104)*

मनुष्य न केवल बुद्धि है, न निपट पाशविक शरीर और न केवल हृदय अथवा आत्मा | समग्र मानव इन तीनों के उचित और सामंजस्यपूर्ण योग से ही बनता है और शिक्षा की सच्ची योजना में इसी का समावेश होना चाहिए| *(वही)*

शिक्षा से मैं यह अर्थ लेता हूं कि वह बच्चे और मनुष्य की काया, बुद्धि और आत्मा में जो कुछ श्रेष्ठ है, उसे समग्र रूप से उभार दे | साक्षरता न तो शिक्षा की परिणति है और न उसका आरंभ | यह तो केवल स्त्री अथवा पुरुष को शिक्षित करने के साधनों में से एक है | साक्षरता अपने आप में शिक्षा नहीं है | इसलिए मैं बच्चे की शिक्षा का आरंभ उसे किसी उपयोगी दस्तकारी को सिखाकर करूंगा और यह कोशिश करूंगा कि वह प्रशिक्षण आरंभ होते ही कोई-न-कोई चीज़ बनाने लगे....मेरी धारणा है कि शिक्षा की ऐसी प्रणाली के अंतर्गत बुद्धि और आत्मा का अधिकतम विकास किया जा सकता है | बस यह है कि आज की तरह दस्तकारी की शिक्षा केवल यांत्रिक रूप से न दी जाए, बल्कि वैज्ञानिक विधि से दी जाए अर्थात बच्चे को हर प्रक्रिया के बारे में यह मालूम होना चाहिए कि वह किसलिए की गई | *(हरि, 31-7-1937, पृ. 197)*

मैं शिक्षा के साहित्यिक पहलू की तुलना में उसके सांस्कृतिक पहलू को कहीं अधिक महत्व देता हूं | *(हरि, 5-5-1946, पृ. 120)*

अक्लमंदी से किया गया उपयोगी शारीरिक श्रम बुद्धि

के विकास का सर्वोत्तम साधन है....शरीर, बुद्धि और आत्मा के सामंजस्यपूर्ण विकास से ही संतुलित बुद्धि का विकास संभव है....जो बुद्धि समाजोपयोगी श्रम के माध्यम से विकसित की जाएगी वह सेवा का साधन बनेगी और उसे आसानी से भटकाया या गलत रास्तों पर नहीं डाला जा सकेगा | *(हरि, 8-9-1946, पृ. 306)*

नयी तालीम

वही आधारभूत शिल्प शिक्षा का माध्यम बन सकता है जो सार्वभौमिक/ता की कसौटी पर खरा उतरता हो | *(हरि, 25-8-1946, पृ. 283)*

शिल्प, कला, स्वास्थ्य और शिक्षा, सभी को एक योजना में समन्वित कर देना चाहिए | नयी तालीम इन चारों का एक सुंदर मिश्रण है और गर्भ-धारण से लेकर मृत्यु के क्षण तक मनुष्य की संपूर्ण शिक्षा को अपने में समाहित करती है....शिल्प और उद्योग को शिक्षा से भिन्न मानने के बजाए मैं उन्हें शिक्षा का माध्यम मानता हूं | *(हरि, 10-11-1946, पृ. 394)*

मेरी नयी तालीम धन पर निर्भर नहीं है | इसे चलाने का खर्च स्वयं शिक्षा प्रक्रिया से ही निकल आना चाहिए | इसकी जो भी आलोचना हो, मैं यह जानता हूं कि शिक्षा वही है जो 'आत्मनिर्भर' हो | *(हरि, 2-3-1947, पृ. 48)*

इसे शिक्षा की नयी पद्धति इसलिए कहते हैं कि यह विदेशों से आयातित अथवा उनके द्वारा आरोपित नहीं है, अपितु भारत के पर्यावरण के अनुकूल है जो ग्राम-प्रधान है | यह शरीर, बुद्धि और आत्मा – जिनसे मिलकर मनुष्य बना है – के बीच संतुलन स्थापित करने पर विश्वास करती है | यह पाश्चात्य शिक्षा जैसी नहीं है जो प्रधानतया सैन्यवादी है, जिसमें मुख्य रूप से शरीर और बुद्धि की ओर ध्यान दिया जाता है और आत्मा को गौण समझा जाता है | सबसे अच्छा तरीका यह है कि शिक्षा हस्तशिल्पों के माध्यम से दी जाए | नयी तालीम की दूसरी

विशेषता यह है कि यह पूर्णतया आत्मनिर्भर है | इसलिए इसे चलाने के वास्ते करोड़ों रुपए खर्च करने की जरूरत नहीं है | *(हरि, 11-5-1947, पृ. 147)*

अध्यापक जो लेते हैं वही उनकी कमाई है | नयी तालीम जीने की कला की पक्षधर है | इसलिए अध्यापक और शिष्य, दोनों को सिखाने और सीखने की प्रक्रिया में ही कुछ उत्पादन करना पड़ता है | यह शुरू से ही जीवन को समृद्ध बनाती है | यह राष्ट्र को रोजगार ढूंढने के झंझट से मुक्ति दिलाती है | *(वही, पृ. 145)*

हमारी शिक्षा पद्धति बुद्धि, शरीर और आत्मा, तीनों का विकास करती है | इसकी तुलना में, सामान्य शिक्षा पद्धति केवल बुद्धि की ओर ध्यान देती है | *(हरि, 9-11-1947, पृ. 401)*

इसे आम तौर पर लोग हस्तशिल्पों के माध्यम से शिक्षा कहकर पुकारते हैं, जो ठीक ही है | लेकिन यह सत्य का केवल एक अंश है | वस्तुत: नयी तालीम की जड़ें और भी गहरी जाती हैं | वे मानव क्रिया के प्रत्येक क्षेत्र में सत्य और प्रेम की प्रयुक्ति तक फैली हुई हैं | हस्तशिल्पों के माध्यम से शिक्षा देने की धारणा इस विचार से उद्‌भूत है कि जीवन के कार्यकलाप सत्य और प्रेम से व्याप्त होने चाहिए | प्रेम की अपेक्षा है कि सच्ची शिक्षा सभी को सरलता से प्राप्य होनी चाहिए और वह प्रत्येक ग्रामवासी के दैनंदिन जीवन के लिए उपयोगी होनी चाहिए | ऐसी शिक्षा पुस्तकों से ग्रहण नहीं की जाती और न वह उन पर निर्भर होती है | इसका धार्मिक पंथों से भी कोई संबंध नहीं है | यदि इसका धर्म से कोई संबंध माना जा सकता है तो वह सार्वभौम धर्म है जिससे सभी धार्मिक पंथ निकले हैं | इसलिए यह शिक्षा जीवन की पुस्तक से ग्रहण की जाती है जिस पर कोई लागत नहीं आती और जिसे दुनिया की कोई ताकत आपसे नहीं छीन सकती | *(हरि, 21-12-1947, पृ. 480)*

विश्वविद्यालयी शिक्षा

विश्वविद्यालयी शिक्षा का ध्येय देश के सच्चे सेवक तैयार करना होना चाहिए जो देश की स्वतंत्रता के लिए जिएं और मरें | इसलिए मेरी राय है कि विश्वविद्यालयी शिक्षा का बुनियादी शिक्षा के साथ समन्वय किया जाना चाहिए और यह उसी सांचे में ढली होनी चाहिए.... *(हरि, 25-8-1946, पृ. 283)*

जहां तक स्त्री शिक्षा का संबंध है, मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि यह पुरुषों की शिक्षा से भिन्न होनी चाहिए या नहीं और इसकी शुरुआत कब होनी चाहिए | लेकिन मेरी पक्की राय है कि स्त्रियों को भी पुरुषों के समकक्ष शिक्षा-सुविधाएं मिलनी चाहिए और जहां आवश्यक हो वहां उन्हें विशेष सुविधाएं भी दी जानी चाहिए | *(हरि, 5-8-1950, पृ. 195); आश्रम एक्टिविटीज (1932), अनु. बी. जी. देसाई*

मैं अपने विद्यार्थियों के विदेश जाने का हिमायती कभी नहीं रहा हूं | मेरा अनुभव है कि ये विद्यार्थी विदेशों से लौटने पर यहां के वातावरण में खप नहीं पाते | अनुभव वही सबसे मूल्यवान होता है और देश की समृद्धि में सर्वाधिक योगदान करता है जो अपनी ही धरती से पैदा हुआ हो | *(हरि, 8-9-1946, पृ. 308)*

विद्यार्थियों के लिए संहिता

आंदोलन केवल उन लोगों के लिए है जिन्होंने अपना अध्ययन पूरा कर लिया है | अध्ययन के दौरान विद्यार्थियों का एकमात्र कार्य अपने ज्ञान में वृद्धि करना होना चाहिए....देश में दी जाने वाली हर प्रकार की शिक्षा, देश की प्रगति को बढ़ाने वाली सिद्ध होनी चाहिए | *(हरि, 7-9-1947, पृ. 312)*

सर्वोपरि बात यह है कि विद्यार्थियों को विनम्र और सद्‌वृत्तियों वाला होना चाहिए....सबसे महान वही है जो स्वेच्छा से निम्नतम स्थान ग्रहण करे | यदि मैं हिंदू आस्था के ज्ञान के आधार पर कह सकूं तो विद्यार्थी का जीवन उसके अध्ययन की समाप्ति के समय तक संन्यासी जैसा होना चाहिए | उसे कठोर अनुशासन में रहना चाहिए | वह विवाह नहीं कर सकता, न दुराचरण में लिप्त हो सकता है | वह किसी तरह की नशीली वस्तुओं का सेवन नहीं कर सकता, उसका व्यवहार एक आदर्श संयमी का-सा होना चाहिए | *(वही, पृ. 314)*

शिक्षा का माध्यम

शिक्षा के गलत अवभारतीयकरण से करोड़ों छात्रों को जो निरंतर और अधिकाधिक हानि पहुंच रही है, उसके प्रमाण मैं नित्य देखता हूं....

हम यह समझने लगे हैं कि अंग्रेजी जाने बगैर कोई 'बोस' नहीं बन सकता | इससे बड़े अंधविश्वास की बात और कोई नहीं हो सकती | जैसी लाचारगी के शिकार हम हो गए लगते हैं वैसी किसी जापानी को तो महसूस नहीं होती....

शिक्षा का माध्यम तत्काल बदल देना चाहिए और प्रांतीय भाषाओं को हर कीमत पर उनका उचित स्थान दिया जाना चाहिए | हो सकता है, इससे उच्चतर शिक्षा में कुछ समय के लिए अव्यवस्था आ जाए, पर आज जो भयंकर बर्बादी हो रही है, उसकी अपेक्षा वह अव्यवस्था कम हानिकर होगी |

प्रांतीय भाषाओं की प्रतिष्ठा और उनके बाजार-मूल्य को बढ़ाने के लिए मैं चाहूंगा कि प्रांत की कानूनी अदालतों की भाषा उस प्रांत की भाषा ही बना देनी चाहिए | प्रांतीय विधानमंडलों की कार्यवाही उसी प्रांत की भाषा में होनी चाहिए और अगर किसी प्रांत में एक से अधिक भाषाएं प्रचलित हैं तो वह उन सभी भाषाओं में चलाई जा सकती है....केंद्र में सर्वोपरि स्थान हिंदुस्तानी को दिया जाना चाहिए |

मेरी राय में यह प्रश्न ऐसा नहीं है जिसका निर्णय विद्वानों के ऊपर छोड़ दिया जाए....जब देश सचमुच स्वतंत्र होगा तो शिक्षा के माध्यम के प्रश्न का केवल यही एक हल होगा | विद्वान लोगों का काम पाठ्यक्रम बनाना और उनके अनुसार पाठ्य-पुस्तकें तैयार करना होगा | तब आप देखेंगे कि स्वतंत्र भारत में शिक्षा ग्रहण करके जो छात्र निकलेंगे वे देश की आवश्यकताओं के अनुरूप होंगे....मुझे डर है कि जब तक हम पढ़े-लिखे लोग इस प्रश्न से

खिलवाड़ करते रहेंगे तब तक हम अपने सपनों के स्वतंत्र और स्वस्थ भारत का निर्माण नहीं कर सकेंगे | हमें कठोर प्रयत्न करके अपनी गुलामी के बंधनों को तोड़ना होगा, यह बंधन चाहे शैक्षिक हों, आर्थिक हों या सामाजिक अथवा राजनीतिक हों | तीन-चौथाई लड़ाई तो प्रयत्नों में ही निहित है | *(हरि, 9-7-1938, पृ. 177-78)*

मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि जिन लोगों के हाथों में युवाओं की शिक्षा है, वे यदि निर्णय लेना चाहेंगे तो पाएंगे कि मातृभाषा मनुष्य के मानसिक विकास के लिए उसी प्रकार स्वाभाविक है जिस प्रकार मां का दूध शिशु के शरीर के विकास के लिए है | इसके अलावा कोई और बात हो भी कैसे सकती है ? शिशु अपना पहला पाठ मां से सीखता है | इसलिए बच्चों के मानसिक विकास के लिए उनके ऊपर मातृभाषा के अलावा कोई और भाषा थोपना मैं मातृभूमि के विरुद्ध पापाचार समझता हूं | *(मीइन्स, पृ. 8)*

राष्ट्रभाषा

अंत:प्रांतीय भाषा....केवल देवनागरी या उर्दू में लिखी गई हिंदुस्तानी ही हो सकती है....

अंग्रेजी को सांस्कृतिक अनधिकारग्राही मानकर देश से निकालने का आग्रह मैं उसी तरह कर रहा हूं जिस तरह हमने अंग्रेज अनधिकारग्राहीयों के राजनीतिक शासन को सफलतापूर्वक देश से निकाला है | समृद्ध अंग्रेजी भाषा का वाणिज्य और कूटनीति की अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्वाभाविक स्थान सदा बना रहेगा | *(हरि, 21-9-1947, पृ. 332)*

यदि प्रांतीय भाषाओं का अधिकतम उत्कर्ष करना है तो प्रांतों का भाषायी आधार पर पुनर्गठन आवश्यक है | हिंदुस्तानी भारत की राष्ट्रभाषा होगी, पर वह प्रांतीय भाषाओं का स्थान नहीं ले सकती | वह प्रांतों में शिक्षा का माध्यम नहीं बन सकती – और अंग्रेजी तो कतई नहीं | उसका कार्य प्रांतों को भारत के साथ अपने आंगिक संबंध को समझने में मदद देना है | *(हरि, 1-2-1948, पृ. 14)*

अंग्रेजी भाषा

भारतीय मानस का अधिकतम विकास अंग्रेजी के ज्ञान के बिना संभव होना चाहिए | *(यंग, 2-2-1921, पृ. 34)*

मेरा सुविचारित मत है कि अंग्रेजी की शिक्षा जिस रूप में हमारे यहां दी गई है उसने अंग्रेजी पढ़े-लिखे भारतीयों का दुर्बलीकरण किया है, भारतीय विद्यार्थियों की स्नायविक ऊर्जा पर जबर्दस्त दबाव डाला है, और हमें नकलची बना दिया है....अनुवादकों की जमात पैदा करके कोई देश राष्ट्र नहीं बन सकता | *(यंग, 27-4-1921, पृ. 130)*

आज अंग्रेजी निर्विवाद रूप से विश्व-भाषा है | अत: मैं इसे स्कूल स्तर पर तो नहीं, पर विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में वैकल्पिक भाषा के रूप में द्वितीय स्थान पर रखूंगा | वह कुछ चुने हुए लोगों के लिए ही हो सकती है – लाखों

के लिए नहीं....यह हमारी मानसिक दासता है जो हम समझते हैं कि अंग्रेजी के बिना हमारा काम नहीं चल सकता | मैं इस पराजयवाद का समर्थन कभी नहीं कर सकता | *(हरि, 25-8-1946, पृ. 284)*

साहित्य

यह न समझिए कि मैं अंग्रेजी अथवा उसके उदात्त साहित्य की निंदा कर रहा हूं | 'हरिजन' के स्तंभ मेरे अंग्रेजी-प्रेम के पर्याप्त प्रमाण हैं | लेकिन जिस प्रकार इंग्लैंड की शीतोष्ण जलवायु या दृश्यावली का लाभ भारत नहीं उठा सकता, उसी प्रकार उसका उदात्त साहित्य भारत के काम नहीं आ सकता | भारत को अपनी ही जलवायु, अपनी ही दृश्यावली और अपने ही साहित्य में पनपना होगा, भले ही ये इंग्लैंड की जलवायु, दृश्यावली और साहित्य से कमतर हों | हमें और हमारी संतानों को अपनी ही विरासत पर अपनी प्रगति का प्रासाद खड़ा करना है | यदि हम किसी दूसरे की विरासत उधार लेंगे तो अपनी विरासत को खो बैठेंगे | हम पराया अन्न खाकर कभी नहीं पनप सकते | मैं चाहूंगा कि हम अंग्रेजी और, उसी प्रकार, विश्व की अन्य भाषाओं के उत्कृष्ट साहित्य को भारतीय भाषाओं के माध्यम से पढ़ें | मुझे रवीन्द्रनाथ की अनुपम कृतियों का रसास्वादन करने के लिए बंगला सीखने की आवश्यकता नहीं है | उन्हें मैं सुंदर अनुवादों के माध्यम से पढ़ सकता हूं | टाल्सटॉय की लघु कथाओं का आनंद लेने के लिए गुजराती लड़के-लड़कियों को रूसी भाषा नहीं पढ़नी पड़ती | उन्हें वे अच्छे अनुवादों के माध्यम से पढ़ सकते हैं | अंग्रेजों को इस बात का गर्व है कि विश्व का सर्वोत्कृष्ट साहित्य प्रकाशन के एक सप्ताह के अंदर-अंदर राष्ट्र को सरल अंग्रेजी में उपलब्ध हो जाता है | तो फिर, मुझे शेक्सपिअर और मिल्टन का साहित्य पढ़ने के लिए अंग्रेजी सीखने की आवश्यकता क्यों होनी चाहिए ? *(हरि, 9-7-1938, पृ. 177)*

80. भाषावार प्रांत

कांग्रेस के कामकाज के लिए प्रांतों के भाषावार पुनर्गठन को मान्यता दिलाने में मेरी प्रमुख भूमिका थी | मैंने हमेशा यह आवाज़ उठाई है कि सरकार भी इस तरह के पुनर्गठन को स्वीकार कर ले | *(हरि, 29-3-1942, पृ. 97)*

मेरा विश्वास है कि प्रांतों के सीमारेखांकन का सही आधार भाषाएं हैं | पर मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है अगर एक ही भाषा को बोलने वाले राज्य दो हो जाएं, बशर्ते कि वे भौगोलिक दृष्टि से एक-दूसरे के साथ सटे न हों | उदाहरण के तौर पर, अगर केरल और कर्नाटक में एक ही भाषा बोली जाती हो तो भी मैं उन्हें दो अलग-अलग प्रांत मानूंगा | *(हरि, 19-4-1942, पृ. 118)*

प्रांतीय विश्वविद्यालय

मैं मानता हूं कि ऐसे विश्वविद्यालय होने चाहिए....यदि समृद्ध प्रांतीय भाषाओं और उन्हें बोलने वाले लोगों को अपना पूर्ण विकास करना है तो | पर मुझे भय है कि हमने यदि इस ध्येय की पूर्ति में अनावश्यक आतुरता दिखाई तो हम अपने ही साथ धोखा करेंगे | पहला कदम होना चाहिए प्रांतों का भाषायी आधार पर राजनीतिक पुनर्गठन| *(हरि, 2-11-1947, पृ. 392)*

अनन्यता की भावना हमेशा सर्वोपरि पाई जाती है | हर आदमी अपने और अपने परिवार के बारे में सोचता है | पूरे भारत के बारे में कोई नहीं सोचता | केंद्राभिमुखी बल होता तो अवश्य है, पर वह कभी मुखर नहीं होता, कभी प्रचंड नहीं होता; इसकी तुलना में, केंद्रापसारी बल सदा प्रत्यक्ष रहता है, उसकी प्रकृति ही ऐसी है कि वह सबसे ज़्यादा शोर करता है और सबका ध्यान आकर्षित करता है | वह सांप्रदायिक स्वरूप लेकर उभर आता है | इससे अन्य क्षेत्रों में भी भय उत्पन्न हो गया है....

उत्साही सुधारक भी विवादास्पद मुद्दों को ऐसे अनुकूल समय के लिए टाल देते हैं जब, देश के हित में, 'आदान-प्रदान' की भावना को खुले मन से मान्यता दी जाएगी और भारत की भलाई के एकमात्र हित को, जिसमें सबकी भलाई निहित है, वर्गीय हितों के ऊपर वरीयता दी जाएगी |

इसलिए मेरे जैसे लोगों को, जो यह चाहते हैं कि रचनात्मक सुझावों पर तत्काल अमल शुरू कर दिया जाए, स्वस्थ वातावरण तैयार करने के लिए प्रयास करना होगा जिसमें मनमुटाव के स्थान पर मैत्री, संघर्ष के स्थान पर शांति, अवनति के स्थान पर प्रगति और मृत्यु के स्थान पर जीवन पनप सके | *(हरि, 30-11-1947, पृ. 436)*

अनन्य प्रांतवाद नहीं

मेरी धारणा है कि सभी प्रांतों के लोग भारत के हैं और भारत उन सबका है | शर्त सिर्फ यह है कि कोई आदमी किसी दूसरे प्रांत में उसका शोषण करने, उस पर शासन करने या उसके हितों को क्षति पहुंचाने के इरादे से

जाकर बस नहीं सकता | सभी लोग भारत के सेवक हैं और वे केवल सेवा की भावना लेकर जिएंगे | *(हरि, 7-9-1947, पृ. 311)*

अनन्य प्रांतवाद हमारे जीवन का अभिशाप है | सच पूछा जाए तो मेरे प्रांत की सीमारेखा भारत की सीमारेखा तक फैली होनी चाहिए ताकि अंतत: वह समूची दुनिया को अपने में समेट सके | यह नहीं होगा तो सब कुछ नष्ट हो जाएगा | *(यंग, 21-9-1947, पृ. 333)*

भारत की एकता

कांग्रेस प्रांतों के भाषावार पुनर्गठन के सिद्धांत को पहले ही स्वीकार कर चुकी है और उसने घोषणा कर दी है कि सत्ता में आते ही वह इसको संवैधानिक स्वरूप दे देगी; अत: यह पुनर्गठन देश की सांस्कृतिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त करेगा | लेकिन इस पुनर्गठन से भारत की आंगिक एकता को क्षति नहीं पहुंचनी चाहिए | स्वायत्तता का अर्थ विघटन नहीं है और न होना चाहिए | इसका अर्थ यह नहीं होना चाहिए कि प्रांत एक-दूसरे की अथवा केंद्र की परवाह किए बिना जो मर्जी आए करें | यदि प्रत्येक प्रांत स्वयं को एक पृथक संप्रभु इकाई मानने लगेगा तो भारत की स्वाधीनता का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा और इसके साथ ही, उसकी विभिन्न इकाइयों की स्वतंत्रता का भी लोप हो जाएगा....

बाहरी दुनिया हमें गुजरातियों, मराठियों, तामिलों आदि के रूप में नहीं जानती बल्कि केवल भारतीय के रूप में जानती है |

इसलिए हमें विघटनकारी प्रवृत्तियों को दृढ़तापूर्वक हतोत्साहित करना चाहिए और भारतीयों की तरह अनुभव और व्यवहार करना चाहिए | इस सर्वोपरि विचार की रक्षा की जाती रहे तो भारत के भाषावार पुनर्गठन से शिक्षा और व्यापार को प्रोत्साहन मिलेगा | *(यंग, 1-2-1948, पृ. 11)*

81. गोरक्षा

गाय का स्थान

गाय करुणा का काव्य है | यह सौम्य पशु मूर्तिमान करुणा है | वह करोड़ों भारतीयों की मां है | गोरक्षा का अर्थ है ईश्वर की समस्त मूक सृष्टि की रक्षा | प्राचीन ऋषि ने, वह जो भी रहा हो, आरंभ गाय से किया | सृष्टि के निम्नतम प्राणियों की रक्षा का प्रश्न और भी महत्वपूर्ण है क्योंकि ईश्वर ने उन्हें वाणी नहीं दी है | *(यंग, 6-10-1921, पृ. 36)*

....गाय अवमानवीय सृष्टि का पवित्रतम रूप है | वह प्राणियों में सबसे समर्थ अर्थात मनुष्य के हाथों न्याय पाने के वास्ते सभी अवमानवीय जीवों की ओर से हमसे गुहार करती है | वह अपनी आंखों की भाषा में हमसे कहती प्रतीत होती है : 'ईश्वर ने तुम्हें हमारा स्वामी इसलिए नहीं बनाया है कि तुम हमें मार डालो, हमारा मांस खाओ अथवा किसी अन्य प्रकार से हमारे साथ दुर्व्यवहार करो, बल्कि इसलिए बनाया है कि तुम हमारे मित्र तथा संरक्षक बनकर रहो | *(यंग, 26-6-1924, पृ. 214)*

मैं गाय की पूजा करता हूं और उसकी पूजा का समर्थन करने के लिए दुनिया का मुकाबला करने के लिए तैयार हूं| *(यंग, 1-1-1925, पृ. 8)*

गोमाता अनेक अर्थों में हमें जन्म देने वाली माता से श्रेष्ठ है | हमारी माता हमें दो वर्ष दुग्धपान कराती है और यह आशा करती है कि हम बड़े होकर उसकी सेवा करेंगे | गाय हमसे चारे और दाने के अलावा किसी और चीज़ की आशा नहीं करती | हमारी मां प्राय: रुग्ण हो जाती है और हमसे सेवा करने की अपेक्षा करती है | गोमाता शायद ही कभी बीमार पड़ती है |

गोमाता हमारी सेवा आजीवन ही नहीं करती, अपितु अपनी मृत्यु के उपरांत भी करती है | अपनी मां की मृत्यु होने पर हमें उसे दफनाने या उसका दाह संस्कार करने पर धनराशि व्यय करनी पड़ती है | गोमाता मर जाने पर भी उतनी ही उपयोगी सिद्ध होती है जितनी अपने जीवन-काल में थी | हम उसके शरीर के हर अंग – मांस, अस्थियां, आंतें, सींग और चर्म – का इस्तेमाल कर सकते हैं | मैं यह बात हमें जन्म देने वाली मां की निंदा के विचार से नहीं कह रहा हूं, बल्कि यह दिखाने के लिए कह रहा हूं कि मैं गाय की पूजा क्यों करता हूं | *(हरि, 15-9-1940, पृ. 281)*

हिंदू धर्म में गाय

हिंदू धर्म का केंद्रीय तत्त्व गोरक्षा है | मैं गोरक्षा को मानव विकास की सबसे अद्‌भुत घटना मानता हूं | यह मानव का उदात्तीकरण करती है | मेरी दृष्टि में गाय का अर्थ समस्त अवमानवीय जगत है | गाय के माध्यम से मनुष्य समस्त जीवजगत के साथ अपना तादात्म्य स्थापित करता है | गाय को देवत्वारोपण के लिए क्यों चुना गया, इसका

कारण स्पष्ट है | भारत में गाय मनुष्य की सबसे अच्छी साथिन थी | उसे कामधेनु कहा गया | वह केवल दूध ही नहीं देती थी, बल्कि उसी की बदौलत कृषि संभव हो पाई....

गोरक्षा विश्व को हिंदू धर्म की देन है | हिंदू धर्म तब तक जीवित रहेगा जब तक गोरक्षक हिंदू मौजूद हैं....

हिंदुओं की परख उनके तिलकों, मंत्रों के शुद्ध उच्चारण, तीर्थयात्राओं तथा जात-पात के नियमों के अत्यौपचारिक पालन से नहीं की जाएगी, बल्कि गाय की रक्षा करने की उनकी योग्यता के आधार पर की जाएगी | *(यंग, 6-10-1921, पृ. 36)*

गोवध

जिस प्रकार मैं किसी गाय की रक्षा करने के लिए मनुष्य को नहीं मारूंगा उसी प्रकार मनुष्य की रक्षा के लिए – उसका जीवन चाहे जितना मूल्यवान हो – गाय का वध नहीं करूंगा | *(यंग, 18-5-1921, पृ. 156)*

मेरा धर्म मुझे सिखाता है कि मुझे अपने आचरण से उन लोगों के मन में जिनका मत मुझसे भिन्न है, यह विश्वास पैदा करना चाहिए कि गोवध पाप है अत: इसे बंद करना चाहिए | *(यंग, 29-1-1925, पृ. 38)*

गोवध कानून से कभी बंद नहीं किया जा सकता | ज्ञान, शिक्षा और गाय के प्रति दयाभाव से ही यह बंद किया जा सकता है | उन पशुओं को बचाना संभव नहीं होगा जो भूमि पर भार हैं, बल्कि उस मनुष्य की भी रक्षा नहीं की जा सकती जो भारस्वरूप है | *(हरि, 15-9-1946, पृ. 310)*

मेरी आकांक्षा है कि गोरक्षा के सिद्धांत की मान्यता संपूर्ण विश्व में हो | पर इसके लिए यह आवश्यक है कि पहले भारत में गोवंश की दुर्गति समाप्त हो और उसे उचित स्थान मिले | *(यंग, 29-1-1925, पृ. 38)*

मेरी दृष्टि में, गोरक्षा का अर्थ केवल गाय की रक्षा नहीं है | इसका अर्थ संसार के उन सभी जीवों की रक्षा है जो असहाय हैं और दुर्बल हैं | *(यंग, 7-5-1925, पृ. 160)*

मैं इस बात को दुहराना चाहूंगा....कि गोवध पर कानूनन पाबंदी गोरक्षा के कार्यक्रम का सबसे गौण पहलू है....लोग शायद यह सोचते हैं कि किसी बुराई के विरुद्ध कानून पास होते ही वह बिना किसी अतिरिक्त प्रयास के समाप्त हो जाएगी | इससे बड़ी आत्मप्रवंचना कोई और नहीं हो सकती | किसी अज्ञानी या छोटे-से दुष्टबुद्धि तबके के खिलाफ बनाया गया कानून तो फिर भी कारगर हो सकता है, लेकिन ऐसा कानून कभी कामयाब नहीं हो सकता जिसका विरोध समझदार और संगठित लोकमत द्वारा किया जा रहा हो या कोई कट्टरपंथी अल्पसंख्यक वर्ग धर्म की आड़ लेकर कर रहा हो |

मैं गोरक्षा के प्रश्न पर जितना ही अधिक विचार करता हूं, मेरी यह धारणा दृढ़ होती जाती है कि गौ और गोवंश की रक्षा तभी संभव है जब हम मेरे द्वारा सुझाए गए उपाय अपनाते हुए एक अविरत एवं दीर्घकालीन रचनात्मक कार्यक्रम हाथ में लें | *(यंग, 7-7-1927, पृ. 219)*

गोसेवा

पशुओं का संरक्षण गोसेवा का महत्वपूर्ण अंग है | भारत के लिए इसका बड़ा महत्व है....इसके लिए गंभीर अध्ययन और त्याग की भावना की तत्काल आवश्यकता है | विपुल धन का संचय और दान-पुण्य सच्ची व्यावसायिक क्षमता का परिचायक नहीं है | पशुओं के संरक्षण के विषय में ज्ञानार्जन, जनता के बीच उस ज्ञान का प्रसार और स्वयं को उस आदर्श के अनुरूप बनाना तथा इस कार्य के लिए रुपया खर्च करना सच्चा व्यवसाय है| *(हरि, 17-2-1946, पृ. 11)*

जहां तक गोरक्षा की शुद्ध आर्थिक आवश्यकता का प्रश्न है, यदि इस पर केवल इसी दृष्टि से विचार किया जाए तो इसका हल आसान है | तब तो बिना कोई विचार किए उन सभी पशुओं को मार देना चाहिए जिनका दूध सुख गया है या जिन पर आने वाले खर्च की तुलना में उनसे मिलने वाले दूध की कीमत कम है या जो बूढ़े और नाकारा हो गए हैं | लेकिन इस हृदयहीन अर्थव्यवस्था के लिए भारत में कोई स्थान नहीं है, यद्यपि विरोधाभासों की इस भूमि के निवासी वस्तुत: अनेक हृदयहीन कृत्यों के दोषी हैं |

सकारात्मक उपाय

तब, पर्याप्त दूध न दे सकने या किसी अन्य रूप में अलाभकर सिद्ध हो जाने पर गाय को मारे जाने से किस तरह बचाया जाए ? इस प्रश्न का समाधान, संक्षेप में, यह हो सकता है :

(1) हिंदू गाय और गोवंश के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करें | यदि वे ऐसा करेंगे तो हमारे पशु भारत और विश्व के लिए गर्व की वस्तु होंगे | वर्तमान स्थिति इसके बिलकुल विपरीत है |

(2) पशुपालन के विज्ञान का अध्ययन किया जाए | आज इस क्षेत्र में पूर्ण अराजकता है |

(3) बधिया बनाने की वर्तमान क्रूरतापूर्ण विधि के स्थान पर पश्चिम की मानवोचित विधि को अपनाया जाए |

(4) भारत के पिंजरापोलों (बूढ़ी गायों के लिए बनी संस्थाएं) का आमूल सुधार किया जाए | आज जिन लोगों के हाथों में इनका प्रबंध है, वे नितांत अज्ञानी हैं और बिलकुल अव्यवस्थित ढंग से काम करते हैं |

(5) जब ये बुनियादी बातें की जाएंगी तो हम देखेंगे कि मुसलमान, अपने हिंदू भाइयों की खातिर ही सही, गोमांस अथवा अन्य उद्देश्यों के लिए गोवध न करने की आवश्यकता को स्वेच्छा से स्वीकार कर लेंगे |

पाठक पाएंगे कि उपयुक्त अपेक्षाओं की जड़ में एक चीज़ है और वह है अहिंसा, जिसे सार्वभौम करुणा भी कहा जा सकता है | यदि हम उस पर आचरण करने लगें तो बाकी सब कुछ आसान हो जाएगा | जहां अहिंसा है, वहां असीम धैर्य, आंतरिक, शांति, विवेक, आत्मत्याग और सच्चे ज्ञान का वास होता है | *(हरि, 31-8-1947, पृ. 300)*

82. सहकारी पशुपालन

यह किसी किसान के लिए संभव नहीं है कि वह अपने पशु को अपने घर में ही रखकर उचित एवं वैज्ञानिक ढंग से उसकी देखभाल कर सके | गाय और सामान्यत: सभी पशुओं की दुर्दशा के अनेक कारणों में से एक प्रमुख कारण सामूहिक प्रयास का अभाव है |

आज दुनिया जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सामूहिक अथवा सहकारी प्रयास के आदर्श की ओर बढ़ रही है | इसमें काफी सफलता मिली है और मिल रही है | इस विचार ने हमारे देश में भी प्रवेश पाया है, लेकिन वह ऐसे विकृत रूप में आया है कि निर्धन लोगों को उसका लाभ नहीं मिल सका है | हमारी जनसंख्या में वृद्धि होने के साथ-साथ, औसत किसान की जोत बराबर छोटी होती जा रही है | और, व्यक्ति के पास तो प्राय: बहुत ही कम जमीन रह गई है |

ऐसे किसानों के लिए अपने घर में पशु रखना आत्मघाती ही है; लेकिन फिर भी आज यही हो रहा है | जो लोग अर्थशास्त्र को सर्वोपरि मानते हैं और धार्मिक, नैतिक या मानवीय दृष्टिकोण को बहुत कम महत्व देते हैं, वे पूरे जोर के साथ यह बात कह रहे हैं कि पशुओं के चारे पर होने वाले खर्च की तुलना में उनसे होने वाली आमदनी इतनी कम है कि वस्तुत: पशु किसान को खाए जा रहा है | उनका कहना है कि ऐसे सभी अनुपयोगी पशुओं का वध न कर देना मूर्खता है | प्रश्न यह है कि मानवतावादी लोग क्या करें ? इसका स्पष्ट उत्तर यह है कि हम कोई ऐसा मार्ग निकाले जिससे न केवल पशुओं की जीवन-रक्षा हो सके बल्कि वे किसान पर बोझ न रहें | मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि इसमें सहकारी प्रयास बहुत हद तक हमारी सहायता कर सकता है | इस संदर्भ में, निम्नलिखित तुलना लाभकारी सिद्ध हो सकती है :

(1) सामूहिक प्रणाली के अंतर्गत कोई किसान अपने घर में पशु नहीं रख सकता, जैसा कि वह आज कर रहा है | पशु वायु को दूषित करते हैं और अपने आसपास गंदगी फैलाते हैं | पशु के साथ रहने में न बुद्धिमानी है, न मानवतावाद | आदमी पशुओं के साथ रहने के लिए नहीं बना | यदि सामूहिक प्रणाली अपना ली जाए तो घर में जो स्थान इस समय पशु के रहने के काम में आ रहा है वह किसान और उसके परिवार के लिए उपलब्ध हो जाएगा|

(2) जैसे-जैसे पशुओं की संख्या बढ़ती है, किसान का अपने घर का जीवन कठिन होता जाता है | इसलिए वह बछड़ों को बेच देता है, पड्डों को मार देता है या भूखों मर जाने के लिए घर से बाहर निकाल देता है | अगर पशुपालन सहकारिता के आधार पर होने लगे तो यह अमानवीय कृत्य बंद हो जाएंगे |

(3) सामूहिक पशुपालन की स्थिति में, पशुओं के बीमार पड़ने पर उनकी चिकित्सा की व्यवस्था सुनिश्चित हो सकेगी | कोई साधारण किसान अपने बूते पर इसका खर्च नहीं उठा सकता |

(4) इसी प्रकार, सामूहिक प्रणाली में, कई गायों के लिए एक बढ़िया सांड पाला जा सकता है | अन्यथा इसकी व्यवस्था असंभव है – कोई उपकार कर दे तो और बात है |

(5) सहकारी प्रणाली के अंतर्गत, चरागाह या पशुओं को फिराने के लिए जमीन आसानी से उपलब्ध हो सकेगी, जबकि आज सामान्यतया किसान को व्यक्तिगत रूप से ऐसी कोई सुविधा प्राप्त नहीं है |

(6) सामूहिक प्रणाली में चारे का खर्च भी अपेक्षाकृत कम बैठता है |

(7) दूध की अच्छी कीमतों पर बिक्री की भी बड़ी सुविधा हो जाएगी और किसान को दूध में मिलावट करने की जो आवश्यकता या प्रलोभन आज है, उसकी भी गुंजाइश नहीं रहेगी |

(8) प्रत्येक पशु की क्षमता की जांच कराना हर किसान के बस के बाहर है, पर पूरे गांव के सारे पशुओं के लिए इसकी व्यवस्था आसानी से की जा सकती है | इससे पशुओं की नस्ल को सुधारना आसान हो जाएगा |

(9) उपर्युक्त लाभ सहकारी पशुपालन के समर्थन में पर्याप्त तर्क प्रस्तुत करते हैं | इसके पक्ष में सबसे प्रबल तर्क तो यही है कि हर किसान द्वारा अपने-अपने पशुओं को पालने की प्रणाली ने हमारी और हमारे पशुओं की दशा को दयनीय बना दिया है | यह आवश्यक परिवर्तन करके ही हम स्वयं को और अपने पशुओं को बचा सकते हैं |

मेरा यह भी पक्का विश्वास है कि जब तक हम सहकारी खेती को नहीं अपनाएंगे तब तक खेती के पूरे फायदे हमें नहीं मिलेंगे | क्या यह बात समझना कठिन है कि सौ छोटे-छोटे खेतों पर जैसी-तैसी खेती करने की तुलना में यह कहीं बेहतर है कि गांव के सौ परिवार अपनी जमीनों पर सामूहिक रूप से खेती करें और उसकी आमदनी को आपस में बांट लें ? और, जो बात खेती पर लागू होती है, ठीक वही पशुओं पर भी लागू है |

यह बात दूसरी है कि लोगों को एकाएक इस जीवन-पद्धति को स्वीकार करने के लिए सहमत करना कठिन हो सकता है | सीधी और संकरी सड़क पर चलना हमेशा मुश्किल होता है | गोसेवा के कार्यक्रम का प्रत्येक चरण कठिनाइयों से भरा है | लेकिन इन कठिनाइयों का मुकाबला करके ही हम अपना रास्ता सरल बना सकते हैं |

इस समय तो मेरा प्रयोजन यही दिखाना है कि सामूहिक पशुपालन व्यक्तिगत पशुपालन से श्रेष्ठ है | मेरा यह भी मत है कि सामूहिक प्रणाली ही ठीक है, व्यक्तिगत प्रणाली गलत है | सच पूछा जाए तो व्यक्ति अपनी स्वाधीनता की रक्षा सहकारिता के माध्यम से ही कर सकता है | पशुपालन के व्यक्तिश: प्रयास ने स्वार्थ और अमानुषिकता को ही बढ़ावा दिया है, जबकि सामूहिक प्रयास इन दोनों बुराइयों को दूर नहीं तो काफ़ी हद तक कम जरूर कर सकता है | *(हरि, 5-2-1942, पृ. 39)*

83. प्राकृतिक चिकित्सा

मेरा विश्वास है कि मनुष्य को दवाइयां लेने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं पड़नी चाहिए | हज़ार में से 999 मामले सुनियमित आहार, पानी तथा मिट्टी के उपचार और इसी तरह के घरेलू उपायों से ठीक किए जा सकते हैं| *(ए, पृ. 199)*

मेरी धारणा है कि जहां स्वच्छता के निजी, घरेलू और सार्वजनिक नियमों का कठोरता से पालन किया जाता है और आहार तथा व्यायाम के संबंध में उचित सावधानी बरती जाती है, वहां हारी-बीमारी का कोई भय नहीं होना चाहिए | जहां पूर्ण आंतरिक और बाह्य शुचिता है, वहां बीमारी पास नहीं फटक सकती | अगर गांव के लोग इस बात को समझ जाएं तो उन्हें डाक्टरों, हकीमों या वैद्यों की जरूरत नहीं पड़ेगी.... *(हरि, 26-5-1946, पृ. 153)*

बेहतर जीवन

प्राकृतिक चिकित्सा में यह बात निहित है कि मनुष्य की जीवनचर्या आदर्श होनी चाहिए और यह तभी संभव है जबकि शहरों और गांवों की रहन-सहन की परिस्थितियां आदर्श हों | एक बात और है कि प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली भगवान के नाम को अपना संबल मानकर चलती है | *(वही)*

प्राकृतिक चिकित्सा में यह बात निहित है कि उपचार सस्ते-से-सस्ता और सरलतम होना चाहिए | सबसे अच्छा तो यह है कि ऐसा उपचार गांवों में रहते हुए ही किया जाए | गांवों के लोग इसके लिए आवश्यक साधन और उपकरण जुटाने में समर्थ होने चाहिए | जो चीज़ गांवों में उपलब्ध न हो, वह बाहर से मंगाई जा सकती है |

प्राकृतिक चिकित्सा से स्वयं जीवन के प्रति मनुष्य के दृष्टिकोण में लाभकारी परिवर्तन आता है | वह मनुष्य को इस बात के लिए प्रेरित करती है कि वह अपने जीवन में स्वास्थ्य के नियमों का पालन करे | यह अस्पताल जाकर मुफ़्त में या पैसे देकर दवाई लाने जैसी चीज़ नहीं है | जो व्यक्ति अस्पताल से मुफ़्त इलाज कराता है, वह दान लेता है | जो व्यक्ति प्राकृतिक चिकित्सा का आश्रय लेता है, वह कभी दान नहीं मांगता | स्वावलंबन से आत्मसम्मान में वृद्धि होती है | वह अपने शरीर से विषों को निकालकर रोगमुक्त होने के उपाय करता है और ऐसे एहतियात बरतता है कि फिर बीमार न पड़े.... *(हरि, 2-6-1946, पृ. 165)*

सही आहार

सही एवं संतुलित आहार आवश्यक है | आज हमारे गांव हमारी तरह ही दिवालिया हो गए हैं | गांवों में पर्याप्त सब्जियों, फल और दूध का उत्पादन प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली का आवश्यक अंग है | इस पर खर्च होने वाले समय को अपव्यय नहीं मानना चाहिए | इससे सभी गांवों को और अंतत: सारे भारत को लाभ अवश्य पहुंचेगा| *(वही)*

प्राकृतिक चिकित्सा का सार यह है कि हम स्वास्थ्य-रक्षा और स्वच्छता के नियमों को समझें और उनका तथा उचित पोषण से संबंधित नियमों का पालन करें | इससे हर आदमी अपना डाक्टर स्वयं बन जाता है |

जो व्यक्ति जीवित रहने के लिए भोजन करता है, जो पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि और वायु, इन पंचतत्वों के साथ मैत्री भाव रखता है और इन सबके सृष्टा ईश्वर का सेवक है, वह कभी बीमार पड़े भी तो उसे भगवान पर भरोसा करते हुए चित्त को शांत रखना चाहिए और, अंत समय आ ही जाए तो शांतिपूर्वक प्राण त्याग कर देना चाहिए | अगर उसके गांव के खेतों में कोई चिकित्सीय जड़ी-बूटियां हों तो वह उनका सेवन कर सकता है | करोड़ों लोग इसी प्रकार सहज भाव से जीते और मरते हैं | वे जानते तक नहीं कि डाक्टर क्या होता है, देखने की तो बात दूर है | *(हरि, 1-9-1946, पृ. 285-86)*

बीमारी

बीमारी प्रकृति के नियमों को अज्ञानतावश या जान-बूझकर भंग करने से पैदा होती है | इसका अर्थ यह हुआ कि अगर हम समय रहते फिर उन नियमों का पालन करने लगें तो पुन: स्वास्थ्य-लाभ कर सकते हैं | जिस व्यक्ति ने प्रकृति का लंबे समय तक निरंतर उल्लंघन किया है, उसे या तो प्रकृति द्वारा दिए गए दंड को भोगना होगा या उससे बचने के लिए, आवश्यकतानुसार, कायचिकित्सक या शल्यचिकित्सक की सहायता लेनी होगी | जिस दंड के आप भागी हैं, उसे शिरोधार्य करने से मानसिक शक्ति बढ़ती है और उस दंड से बचने का उपाय करने से वह घटती है | *(हरि, 15-9-1946, पृ. 311)*

प्राकृतिक चिकित्सा और देसी चिकित्सा पद्धतियों के प्रति मेरे प्रेम का यह अर्थ नहीं है कि मैं पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति द्वारा की गई प्रगति की अनदेखी कर रहा हूं, हालांकि मैंने उसे काला जादू कहकर उसकी निंदा की है | मैंने यह कठोर शब्द इसलिए इस्तेमाल किया – और इसे वापिस लेने का मेरा इरादा भी नहीं है – कि पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति जीवच्छेदन और उससे जुड़ी तमाम घिनौनी बातों को प्रोत्साहित करती है और शरीर में प्राण की अधिक-से-अधिक समय तक रक्षा करने के लिए बुरे-से-बुरा तरीका भी अपनाने से नहीं चूकती, तथा शरीर में निवास करने वाली अमर आत्मा की उपेक्षा करती है | मैं प्राकृतिक चिकित्सा की बड़ी-से-बड़ी कमियों और प्राकृतिक चिकित्सकों के लंबे-चौड़े दावों के बावजूद उसका हिमायती हूं | *(हरि, 11-8-1946, पृ. 259)*

गांवों के लिए है

प्राकृतिक चिकित्सा की मेरी योजना केवल ग्रामवासियों और गांवों के लिए है | इसलिए उसमें सूक्ष्मदर्शियों, एक्स-रे आदि के लिए कोई स्थान नहीं है | न उसमें कुनैन, इमेटिन और पेनिसिलीन जैसी दवाइयों का कोई काम है | उसमें तो बुनियादी महत्व व्यक्तिगत स्वच्छता और स्वास्थ्यकर जीवन-पद्धति का है | बस, ये ही काफ़ी हैं |

यदि प्रत्येक व्यक्ति इस कला में पारंगत हो जाए तो बीमारी रहेगी ही नहीं | और यदि प्रकृति के सभी नियमों का पालन करते हुए भी बीमारी घुस आए तो सबसे कारगर इलाज रामनाम है | लेकिन रामनाम का इलाज पलक झपकते ही सबके लिए कारगर सिद्ध नहीं हो सकता | मरीज में आस्था जगाने के लिए यह आवश्यक है कि चिकित्सक स्वयं रामनाम की शक्ति का जीता-जागता उदाहरण हो | *(वही, पृ. 260)*

आइए, हम वस्तुत: ग्रामोन्मुखी हो जाएं | हमारे पास गांव के बच्चे और वयस्क लोग आते हैं | हम उन्हें जीने के सच्चे ढंग की सीख दें | डाक्टरों का कहना है कि 99 प्रतिशत बीमारियां गंदगी, गलत भोजन और अपोषण के कारण होती हैं | यदि हम इस 99 प्रतिशत को जीने की कला सिखा सकें और शेष 1 को भूल भी जाएं तो कोई बात नहीं....हो सकती है, उन्हें चिकित्सा के लिए कोई लोकोपकारी डाक्टर मिल जाए.... | उनकी चिंता करने की हमें आवश्यकता नहीं है | *(हरि, 1-9-1946, पृ. 286)*

मैं जानना चाहूंगा कि डाक्टर और वैज्ञानिक देश के लिए क्या कर रहे हैं ? वे विशेष बीमारियों की चिकित्सा के नये तरीकों को सीखने के लिए विदेश जाने को सदा तत्पर रहते हैं | मेरा आग्रह है कि वे भारत के सात लाख गांवों की ओर ध्यान दें | वे पाएंगे कि ग्रामसेवा के लिए सभी योग्यताप्राप्त स्त्री और पुरुष चिकित्सकों की आवश्यकता है; यह अवश्य है कि वह ग्रामसेवा पूर्वी ढंग की होगी, पाश्चात्य ढंग की नहीं | तब वे स्वयं को अनेक देसी प्रणालियों के अनुकूल बना लेंगे |

भारत के गांवों में जब स्वयं ही औषधियों का अक्षय भंडार पैदा होता है तो हमें पश्चिम से दवाइयां मंगाने की कोई जरूरत नहीं है | लेकिन दवाइयों से ज़्यादा जरूरी यह है कि डाक्टर लोग ग्रामवासियों को जीने का सही ढंग सिखाएं | *(हरि, 15-6-1947, पृ. 184-85)*

84. सामूहिक स्वच्छता

नागरिक विवेक

सामूहिक स्वच्छता तभी सुनिश्चित की जा सकती है जब सामूहिक विवेक हो और सार्वजनिक स्थानों को स्वच्छ रखने के प्रति सामूहिक आग्रह हो | हमारी सड़कों और निजी तथा सार्वजनिक शौचालयों की गंदगी के लिए बहुत हद तक हमारी छूआछूत जिम्मेदार है |

आरंभ में, छूआछूत स्वच्छता का एक नियम था, जो भारत को छोड़कर दुनिया के सभी भागों में आज भी है | नियम यह है कि अस्वच्छ व्यक्ति या वस्तु अछूत है, लेकिन उसकी अस्वच्छता दूर होते ही वह अछूत नहीं रह जाती | तदनुसार, सफाई करने वाला व्यक्ति, वह चाहे पैसे लेकर काम करने वाला मेहतर हो या नि:शुल्क काम करने वाली हमारी मां हो, तभी तक अस्वच्छ है जब तक कि उसने गंदगी दूर करने के बाद अपनी सफाई नहीं कर ली है | *(हरि, 11-2-1933, पृ. 8)*

नगरपालिकाएं

कोई नगरपालिका कर लगाकर या सवेतन कर्मचारी रखकर नगर की गंदगी और भीड़-भाड़ से पार नहीं पा सकती | यह महत्वपूर्ण सुधार धनी और निर्धन, सभी लोगों के स्वैच्छिक सहयोग से ही संभव है | *(यंग, 26-11-1925, पृ. 416)*

मैं यदि किसी परिषद या नगरपालिका की सीमाओं में निवास करने वाला करदाता होता तो जब तक कि हमारे पैसे के चौगुने के बराबर की सेवाएं हमें न मिलतीं तब तक अतिरिक्त करों के रूप में एक पैसा भी न देता और अन्य लोगों को भी ऐसा ही करने का परामर्श देता | जो लोग हमारे प्रतिनिधि बनकर स्थानीय परिषदों या नगरपालिकाओं में जाते हैं, उन्हें समझना चाहिए कि वे वहां सम्मान पाने या आपस में स्पर्धा करने के लिए नहीं बल्कि प्रेमजन्य सेवा के लिए गए हैं जिसके लिए धन की आवश्यकता नहीं होती |

हमारा देश कंगाल है | यदि हमारे नगरपालिका-पार्षदों में सेवा की सच्ची भावना होगी तो वे अवैतनिक झाड़ूवाले, मेहतर और सड़क बनाने वाले मज़दूर के रूप में काम करने के लिए आगे आएंगे और इसमें गर्व का अनुभव करेंगे | वे अपने उन साथी पार्षदों को भी, जो कांग्रेस की टिकट पर चुन कर नहीं आए हैं, अपने साथ श्रम करने के लिए आमंत्रित करेंगे और अगर उन्हें अपने में तथा अपने ध्येय में विश्वास है तो उनका आमंत्रण व्यर्थ नहीं जाएगा |

इसका अर्थ यह है कि नगरपालिका का पार्षद पूर्णकालिक होना चाहिए | उसका कोई निजी स्वार्थ नहीं होना चाहिए | अगला कदम यह हो कि नगरपालिका अथवा स्थानीय परिषद की सीमा में निवास करने वाली सारी

वयस्क जनसंख्या की सूची तैयार की जाए | सभी से नगरपालिका के कार्यकलाप में अपना योगदान करने के लिए कहा जाए | एक नियमित रजिस्टर रखा जाए | जो इतने निर्धन हैं कि द्रव्य के रूप में कोई अंशदान नहीं कर सकते पर समर्थांग हैं और शारीरिक रूप से सक्षम हैं, उन्हें श्रमदान करने के लिए कहा जा सकता है | *(हरि, 18-2-1939, पृ. 22)*

प्रकृति के विरुद्ध अपराध

कोई व्यक्ति जो लापरवाही से यहां-वहां थूककर, कूड़ा-करकट फेंककर या किसी अन्य रूप में जमीन को गंदा करके वायु को दूषित करता है, वह मनुष्य और प्रकृति, दोनों के प्रति पाप करता है | मनुष्य का शरीर भगवान का मंदिर है | जो व्यक्ति इस मंदिर में प्रवेश करने वाली वायु को दूषित करता है, वह मंदिर को अपवित्र करता है | वह कितना ही रामनाम जपे, सब बेकार है | *(हरि, 7-4-1946, पृ. 69)*

राष्ट्रीय अथवा सामाजिक स्वच्छता की भावना हमारे गुणों में सम्मिलित नहीं हैं | हम स्नान तो करते हैं, पर उस कुएं या तालाब अथवा नदी को गंदा करने से नहीं चूकते जिसके किनारे या जिसमें हम नहाते-धोते हैं | मैं इस दोष को बड़ी भारी बुराई मानता हूं जो हमारे गांवों और पवित्र नदियों के पवित्र कूलों की दुर्दशा तथा गंदगी से पैदा होने वाली बीमारियों के लिए जिम्मेदार है | *(काप्रो, पृ. 15)*

85. सांप्रदायिक सद्‌भाव

मैं जानता हूं कि यदि मेरे जीवनकाल में नहीं तो मेरी मृत्यु के बाद हिंदू और मुसलमान, दोनों इसके साक्षी होंगे कि मैंने सांप्रदायिक शांति की लालसा कभी नहीं छोड़ी थी | *(यंग, 11-5-1921, पृ. 148)*

मेरी लालसा है कि, यदि आवश्यक हो तो, मैं अपने रक्त से हिंदू और मुसलमानों के बीच संबंधों को दृढ़ कर सकूं| *(यंग, 25-9-1924, पृ. 314)*

मैं हिंदुओं को जितना प्रेम करता हूं, उतना ही मुसलमानों को भी करता हूं | मेरे हृदय में जो भाव हिंदुओं के लिए उठते हैं, वही मुसलमानों के लिए भी उठते हैं | यदि मैं अपना हृदय चीरकर दिखा सकता तो आप पाते कि उसमें कोई अलग-अलग खाने नहीं हैं, एक हिंदुओं के लिए, दूसरा मुसलमानों के लिए, तीसरा किसी और के लिए, आदि-आदि | *(यंग, 13-8-1921, पृ. 215)*

एकता का अर्थ

मैं अपनी युवावस्था के आरंभ से ही हिंदू-मुस्लिम एकता का दीवाना रहा हूं | कई उत्तम कोटि के मुसलमान मेरे अन्यतम मित्र हैं | इस्लाम की एक भक्तिन मेरी पुत्री के समान है | वह हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए जीती है और इसके लिए खुशी-खुशी अपनी जान न्यौछावर कर देगी | बंबई की जामा मस्जिद के मुअज्जन का बेटा मेरे आश्रम का पक्का संवासी रह चुका है | *(हरि, 30-4-1938, पृ. 99)*

हिंदू-मुस्लिम एकता का अर्थ यह है कि हमारा समान प्रयोजन हो, समान ध्येय हो और समान गम हों | हम एक-दूसरे के गमों में साझी होकर और परस्पर सहिष्णुता की भावना रखकर एक-दूसरे के साथ सहयोग करते हुए अपने सामान्य लक्ष्य की ओर बढ़ेंगे तो यह हिंदू-मुस्लिम एकता की दिशा में सबसे मजबूत कदम होगा | *(यंग, 25-8-1920, पृ. 3)*

हिंदू-मुस्लिम एकता का अर्थ केवल हिंदुओं और मुसलमानों के बीच एकता नहीं है, बल्कि उन सब लोगों के बीच एकता है जो भारत को अपना घर समझते हैं, उनका धर्म चाहे जो हो | *(यंग, 11-5-1921, पृ. 148)*

हमारी मैत्री का आधार प्रेम है, जो धर्म का भी आधार है | मैं प्रेम के अधिकार के बल पर मुसलमानों से मैत्री चाहता हूं | यदि एक संप्रदाय भी प्रेम पर आरूढ़ रहे तो हमारे राष्ट्रीय जीवन में एकता की समस्या कभी पैदा नहीं होगी | *(यंग, 20-10-1921, पृ. 333)*

एक परिवार

सर्वोत्तम उपाय विश्व-मैत्री है जिसका अर्थ है, समस्त मानवों को अपने परिवार के सदस्य मानना | जो व्यक्ति अपने परिवार और दूसरे परिवार के सदस्यों के बीच भेद करता है, वह अपने ही परिवार के सदस्यों की कुशिक्षा का दोषी है और मनमुटाव तथा अधर्म का मार्ग प्रशस्त करता है | *(हरि, 17-11-1946, पृ. 402)*

सांप्रदायिक उपद्रव

सांप्रदायिक अव्यवस्था एक बहुमुखी राक्षस है | यह उसके लिए जिम्मेदार लोगों सहित अंतत: सभी को क्षति पहुंचाता है | *(हरि, 15-9-1940, पृ. 284)*

यदि एक पक्ष जवाबी कार्रवाई बंद कर दे तो उपद्रव जारी नहीं रह सकता | *(हरि, 14-7-1946, पृ. 219)*

गलत काम करने वाले व्यक्ति के सहधर्मियों या रिश्तेदारों से बदला लेना कायरतापूर्ण कृत्य है | *(हरि, 17-11-1946, पृ. 408)*

इस्लाम में और हिंदू धर्म में ऐसे लोग पैदा होने चाहिए जिनका चरित्र अपेक्षतया निर्मल हो और जो गुंडों के बीच जाकर काम करें | *(यंग, 29-8-1924, पृ. 181)*

हम गुंडों का हृदय-परिवर्तन करेंगे और उन्हें नियंत्रित करेंगे | *(हरि, 7-4-1946, पृ. 74)*

किसी भी अच्छे धर्म में, चाहे वह इस्लाम हो, हिंदू या कोई और हो, गुंडागर्दी के लिए कोई स्थान नहीं है | *(हरि, 5-1-1947, पृ. 478)*

धर्मों के प्रति आदर

प्रत्येक व्यक्ति को दूसरे के धर्म का आदर करना चाहिए और उसके अपकार की बात मन में भी नहीं लानी चाहिए | *(यंग, 7-5-1919)*

ऐसे किसी प्रचार की अनुमति नहीं दी जा सकती जो दूसरे धर्मों की निंदा करता हो |*(यंग, 29-5-1924, पृ. 180)*

एक-दूसरे के धर्म की निंदा करना, गैर-जिम्मेदाराना वक्तव्य देना, झूठ बोलना, निर्दोष लोगों के सिर फोड़ना, मंदिरों या मस्जिदों को अपवित्र करना भगवान को नकारना है |[362] *(यंग, 25-9-1924, पृ. 313)*

सांप्रदायिक समस्या के समाधान की कुंजी यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने धर्म की सर्वोत्कृष्ट बातों को माने और अन्य धर्मों तथा उनके मानने वालों को उतना ही सम्मान दे | *(हरि, 4-1-1948, पृ. 497)*

प्राचीन संस्कृति के गूढ़ कोषों की खोज का प्रयास करते हुए मुझे यह अमूल्य रत्न हाथ लगा है कि प्राचीन हिंदू संस्कृति के सनातन तत्व ईसा, बुद्ध, मुहम्मद और जरदुश्त के उपदेशों में भी मौजूद हैं | *(विगांसी, पृ. 131)*

हिंदू धर्म ने विश्व के सभी धर्मों की उत्कृष्ट बातें आत्मसात की हैं और इस अर्थ में यह कोई एकांतिक धर्म नहीं है | इसलिए इसका इस्लाम या उसके अनुयाइयों के साथ कोई झगड़ा नहीं हो सकता | *(हरि, 28-9-1947, पृ. 349)*

तलवार इस्लाम की प्रतीक नहीं है | लेकिन इस्लाम ऐसे पर्यावरण में पैदा हुआ था जहां तलवार सर्वोपरि कानून थी, और आज भी है....तलवार का अब भी मुसलमानों में बड़ा जोर है | यदि इस्लाम अपने शब्दार्थ यानी 'शांति' के अनुरूप सिद्ध होना चाहता है तो उसे तलवार को म्यान में रख देना चाहिए | *(यंग, 30-12-1926, पृ. 458)*

इस्लाम का विशेष योगदान है....ईश्वर के एकत्व में उसका दृढ़ विश्वास और अपने अनुयाइयों के बीच भाईचारे की सच्चाई की व्यावहारिक प्रयुक्ति | *(यंग, 21-3-1929, पृ. 95)*

'इस्लाम' शब्द का अर्थ है 'शांति' | शांति केवल मुसलमानों तक सीमित नहीं रखी जा सकती | उसका अर्थ संपूर्ण विश्व की शांति होना चाहिए | *(यंग, 22-8-1940, पृ. 294)*

धर्मांतरण

बलात धर्म-परिवर्तन के दिन अब लद गए | *(यंग, 11-5-1921, पृ. 148)*

एक धर्म को छोड़कर दूसरे धर्म को अंगीकार करने और प्रतिस्पर्धी धर्मों का खंडन करने से ही परस्पर घृणा की भावना पैदा होती है | *(यंग, 6-1-1927, पृ. 1)*

कुरान में ऐसा कुछ नहीं है जो धर्मपरिवर्तन के लिए बलप्रयोग का समर्थन करता हो |[371] *(यंग, 29-9-1921, पृ. 307)*

जिस प्रकार हम नागरिक समस्याओं को लेकर एक-दूसरे का सिर नहीं फोड़ते उसी प्रकार हमें धार्मिक मामलों में भी यह नहीं करना चाहिए | *(यंग, 29-5-1924, पृ. 176)*

मुझे विश्वास है कि अगर नेतागण लड़ने पर उतारू न हों तो आम जनता लड़ना नहीं चाहेगी | इसलिए अगर नेता इस बात के लिए तैयार हो जाएं कि अन्य उन्नत देशों की तरह वे भी अपने आपसी झगड़ों को बर्बर और अधार्मिक मानकर सार्वजनिक जीवन से मिटा देंगे तो इसमें कोई संदेह नहीं है कि आम जनता चुपचाप उनका अनुगमन करेगी | *(वही, पृ. 182)*

मध्यस्थता (बीच-बचाव)

बीच-बचाव और मध्यस्थता ऐसी पद्धति है जो जमाने से चली आ रही है और यह एक सभ्य पद्धति है | *(हरि, 24-5-1942, पृ. 166)*

परस्पर सहिष्णुता सभी कालों और सभी प्रजातियों के लिए एक आवश्यक गुण है | *(यंग, 25-2-1920, पृ. 3)*

ईमानदार लोकमत व्यथित पक्षों को कानून अपने हाथों में नहीं लेने देता और हर विवादास्पद मामला या तो किसी आपसी मध्यस्थ को सौंप दिया जाना चाहिए या कानूनी अदालतों को.... *(यंग, 5-6-1924, पृ. 188)*

मस्जिदों के सामने बाजा

जहां हिंदू इस प्रथा का जान-बूझकर पालन करते आ रहे हैं कि वे मस्जिदों के सामने बाजा बंद कर देते हैं, वहां उन्हें इस प्रथा को तोड़ना नहीं चाहिए | लेकिन जहां वे बिना रोकटोक बाजा जारी रखते आ रहे हैं वहां यह प्रथा

जारी रहनी चाहिए | जहां झगड़े का अंदेशा है या तथ्यों पर मतभेद है वहां दोनों को मामला मध्यस्थ के सुपूर्द कर देना चाहिए | *(यंग, 18-9-1924, पृ. 312)*

गाय

गोरक्षा हिंदुओं का धर्म है, लेकिन अहिंदू के विरुद्ध बल-प्रयोग करके गाय की रक्षा करना उसका धर्म कदापि नहीं हो सकता | *(वही, पृ. 311)*

....हिंदू बहुसंख्यकों के लिए यह अ-बुद्धिमत्तापूर्ण....और अनुचित होगा, कि वे अल्पसंख्यक मुसलमानों पर, गोहत्या के कानूनन निषेध को मानने के लिए बल का प्रयोग करें | *(यंग, 29-1-1925, पृ. 38)*

लिपियां

हिंदुओं और मुसलमानों द्वारा हिंदी और उर्दू लिपियों को अपनाने की मेरी सलाह एकात्मक पद्धति पर आधारित है | *(हरि, 1-2-1942, पृ. 27)*

नौकरियां

यदि हम सरकारी विभागों में सांप्रदायिक भावना फैलाएंगे तो यह सुशासन के लिए घातक होगा |[381] *(यंग, 29-5-1924, पृ. 182)*

अल्पसंख्यक पूरा-पूरा न्याय पाने के हकदार हैं | कुशलता और योग्यता ही एकमात्र कसौटी होनी चाहिए .... *(हरि, 27-7-1947, पृ. 250)*

सहिष्णुता

जिस एकता की हमें कामना है, वह तभी बनी रह सकती है जब हम एक-दूसरे के प्रति लचीली और उदार मनोवृत्ति का विकास करें | *(यंग, 11-5-1921, पृ. 148)*

सहिष्णुता ही वह चीज़ है जो भिन्न-भिन्न धर्मों के अनुयाइयों को अच्छे पड़ोसियों और मित्रों के रूप में रहने में मदद करेगी | *(हरि, 3-11-1946, पृ. 383)*

पंथनिरपेक्षता

संप्रदायवाद से राष्ट्रवाद बड़ा है | इस अर्थ में हम पहले भारतीय हैं और उसके बाद हिंदू, मुसलमान, पारसी और ईसाई हैं |[385] *(यंग, 26-1-1922, पृ. 62)*

राज्य के लिए पूरी तरह पंथनिरपेक्ष होना अनिवार्य है....तदनुसार, कानून की नजरों में सभी लोग बराबर होंगे | लेकिन प्रत्येक व्यक्ति बिना किसी रोकटोक के अपने धर्म का पालन करने के लिए स्वतंत्र होगा बशर्ते कि वह सामान्य विधि का अतिक्रमण न करे | *(हरि, 31-8-1947, पृ. 297)*

समकक्ष नागरिकता

अल्पसंख्यकों को इस बात की प्रतीति कराई जानी चाहिए कि जिस राज्य में वे रहते हैं, उसके वे उतने ही मूल्यवान नागरिक हैं जितने कि बहुसंख्यक वर्ग के लोग हैं | *(हरि, 7-9-1947, पृ. 310)*

अगर बहुसंख्यक हिंदू अपने धर्म और कर्तव्य को बहुमूल्य समझते हैं तो वे हर कीमत पर न्यायोचित व्यवहार करेंगे | वे अल्पसंख्यकों की कमियों या त्रुटियों पर ध्यान नहीं देंगे, क्योंकि अल्पसंख्यक न्याय पाने के लिए केवल उन्हीं पर अवलंबित हैं | *(हरि, 31-8-1947, पृ. 298)*

आपको मुसलमानों को समकक्ष नागरिक मानना चाहिए | बराबरी के व्यवहार का तकाजा है कि उर्दू लिपि को आदर की दृष्टि से देखा जाए | *(हरि, 26-10-1947, पृ. 383)*

अल्पसंख्यक वर्ग कितना ही छोटा हो, उसे यह अनुभव नहीं होना चाहिए कि उसका दमन किया जा रहा है | भाषा, लिपि आदि के प्रश्नों को बड़ी नरमाई से सुलझाना चाहिए | *(वही, पृ. 387)*

हिंदू-मुसलमान के मसले पर मेरा एकमात्र ध्येय यह है कि इसका पूर्ण समाधान तभी होगा जब भारत या पाकिस्तान में रहने वाले अल्पसंख्यक अपने को पूरी तरह सुरक्षित अनुभव करेंगे, चाहे वह संख्या में एक ही रह जाए | *(हरि, 14-9-1947, पृ. 323)*

हिंदू और सिख स्त्रियों को मुसलमान बहनों के पास जाकर उनसे मित्रता स्थापित करनी चाहिए | उन्हें चाहिए कि वे मुसलमान बहनों को त्यौहारों और उत्सवों पर निमंत्रित करें और इसी प्रकार मुसलमान बहनें उन्हें निमंत्रित करें | मुसलमान लड़कियों और लड़कों को सांप्रदायिक विद्यालयों की बजाए सामान्य विद्यालयों में प्रवेश लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाए | उन्हें खेलकूद में मिल-जुलकर भाग लेना चाहिए | *(हरि, 25-1-1940, पृ. 536)*

13. स्वदेशी

86. चरखे का दिव्य संदेश

निर्धन के लिए

मैं जब-जब चरखे पर सूत कातता हूं तो मुझे भारत के निर्धन लोगों का स्मरण हो आता है | मध्यम वर्ग अथवा धनवानों से भी अधिक, भारत के निर्धन लोगों ने आज ईश्वर में अपना विश्वास खो दिया है | भूख से तड़पते आदमी के लिए, जिसकी एकमात्र कामना अपना पेट भरने की है, उसका पेट ही उसका ईश्वर है | उसे जो भी रोटी देगा, वह उसी को अपना मालिक मान लेगा | उसे संभवत: उसी में भगवान के दर्शन भी होंगे | ऐसे लोगों को भिक्षा देना जो समर्थांग हैं, अपने को और उन्हें, दोनों को भ्रष्ट करना है | वस्तुत: उन्हें किसी तरह का काम-धंधा चाहिए और हाथ से सूत कातना ही वह एकमात्र काम है जो करोड़ों लोगों को रोजगार दे सकता है |

....मैंने अपनी कताई को तप अथवा परमप्रसाद माना है | और चूंकि मुझे विश्वास है कि जहां निर्धनों के प्रति विशुद्ध और सक्रिय प्रेम है वहां भगवान का वास भी है, अत: मुझे अपने चरखे से काते गए हर सूत में भगवान के दर्शन होते हैं | *(यंग, 20-5-1926, पृ. 187)*

....चरखा करोड़ों देशवासियों के साथ हमारा तादात्म्य कराता है | लखपति सोचते हैं कि पैसा उन्हें दुनिया की हर चीज़ मुहैया करा सकता है | लेकिन ऐसा है नहीं | मृत्यु किसी भी क्षण आकर उनका जीवन-दीप बुझा सकती है....जीवन से हाथ धोना....और 'स्वयं' को मिटा देना एक ही बात नहीं है | मनुष्य को भगवत्प्राप्ति के लिए त्याग के रूप में स्वेच्छा से अपनी हस्ती अथवा अहंकार को मिटाने का पाठ सीखना पड़ता है | चरखे में कोई अनन्यता नहीं है | वह निर्धनतम व्यक्ति सहित सभी का है | इसलिए वह हमसे विनम्र बनने और अपने गर्व को पूरी तरह मिटा देने की अपेक्षा रखता है | *(हरि, 13-10-1946, पृ. 345)*

देश की निर्धनता को दूर करने के लिए कुटीर उद्योग के पुनरुज्जीवन की आवश्यकता है, कुटीर उद्योगों के पुनरुज्जीवन की नहीं | बस एक उद्योग का पुनरुज्जीवन हो जाए तो अन्य सभी उद्योग उसका अनुगमन कर सकेंगे....मैं सुदृढ़ ग्रामजीवन के निर्माण के लिए चरखे को आधार बनाऊंगा | मैं चरखे को सारे कार्यकलाप का केंद्र बनाऊंगा | *(यंग, 21-5-1925, पृ.176,177)*

चरखे का संदेश

मेरा....दावा है कि चरखा सर्वाधिक सहज, सरल, सस्ते और व्यावहारिक ढंग से हमारे आर्थिक क्लेश की समस्या का समाधान कर सकता है....यह राष्ट्र की समृद्धि का और इसीलिए, स्वतंत्रता का प्रतीक है | यह वाणिज्यिक युद्ध का नहीं, अपितु वाणिज्यिक शांति का प्रतीक है | *(यंग, 8-12-1921, पृ. 406)*

चरखे का संदेश उसकी परिधि से अधिक व्यापक है | उसका संदेश है सादगी, मानव जाति की सेवा, इस प्रकार जीना कि दूसरों को कष्ट न पहुंचे, धनवानों और निर्धन, पूंजी और श्रम तथा राजा और रंक के बीच अमिट संबंधों की स्थापना | इतना व्यापक संदेश तो स्वभावत: सभी के लिए हुआ | *(यंग, 17-9-1925, पृ. 321)*

चरखे का संदेश वस्तुत: शोषण की भावना के स्थान पर सेवा की भावना को प्रतिष्ठित करने का है | पश्चिम का प्रमुख स्वर शोषण का स्वर है | मेरी कतई इच्छा नहीं है कि हमारा देश उस भावना अथवा उस स्वर की नकल करे | *(यंग, 2-2-1928, पृ. 34)*

मैं यह भी अनुभव करता हूं कि चरखे के पास अमरीका और सारी दुनिया को देने के लिए संदेश है | लेकिन इसका समय तब आएगा जब भारत दुनिया को यह दिखा देगा कि उसने चरखे को पूरी तरह अंगीकार कर लिया है; अभी यह स्थिति नहीं है | दोष चरखे में नहीं है | मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि भारत और विश्व का त्राण चरखे में ही निहित है | यदि भारत मशीन का गुलाम बन गया तो, मेरा कहना है कि, दुनिया को भगवान ही बचाए | *(यंग, 17-11-1946, पृ. 404)*

सादगी की ओर वापसी

अगर मैं भोगवादी आधुनिक कृत्रिम जीवन के विरुद्ध प्रचार करता हूं और स्त्रियों तथा पुरुषों को सादा जीवन, जिसका प्रतीक चरखा है, की ओर लौटने के लिए प्रेरित करता हूं तो वह इसलिए कि मैं जानता हूं कि समझदारी के साथ सादगी की ओर लौटे बिना हमारा ऐसा अध:पतन होगा कि हम पशुओं से भी गई-बीती हालत में पहुंच जाएंगे | *(यंग, 21-7-1921, पृ. 228-29)*

मेरा विश्वास है कि भारत को अहिंसा के अलावा और कोई रास्ता माफिक नहीं आएगा | भारत के लिए उस धर्म का प्रतीक चरखा है, क्योंकि केवल चरखा ही विपत्तियों से ग्रस्त लोगों का मित्र है और निर्धनों को समृद्धि देने वाला है | प्रेम का नियम स्थान तथा काल की सीमाओं को नहीं जानता | इसलिए मेरे स्वराज में भंगियों, ढेड़ों, डूबलाओं और दुर्बलतम व्यक्तियों के लिए भी स्थान है और मैं चरखे के अलावा और कोई ऐसी चीज़ नहीं जानता जो इन सबकी मित्र हो | *(यंग, 8-1-1925, पृ. 18)*

जीवन का चक्र

मानसिक शांति के लिए चरखा कातिये | चरखे का संगीत आपकी आत्मा के लिए मरहम का काम करेगा | मेरा विश्वास है कि हम जो सूत कातते हैं वह हमारे जीवन के टूटे ताने-बाने को जोड़ने का सामर्थ्य रखता है | चरखा अहिंसा का प्रतीक है जिस पर, यदि हम सच्चा जीवन जीना चाहते हैं तो, संपूर्ण जीवन आधारित होना चाहिए| *(हरि, 27-4-1947, पृ. 122)*

चरखे से कुछ लोगों को शांति के सम्राट अशोक का स्मरण हो आएगा जिन्होंने एक साम्राज्य की नींव रखी थी, किंतु सत्ता का सारा वैभव और आडंबर छोड़कर अंतत: लोगों के हृदय के निर्विवाद सम्राट बन गए और जिन्होंने उस समय के सभी ज्ञात धर्मों का प्रतिनिधित्व किया | यदि हम चरखे में उस नियम के चक्र के दर्शन करें जो दया और प्रेम के जागृत सागर के साथ जुड़ा है तो यह चरखे की युक्तियुक्त व्याख्या होगी |

चरखे की इस प्रकार व्याख्या करने पर यह करोड़ों मानवों के जीवन को अर्थवान बनाता है | अशोक चक्र के साथ इसकी तुलना करने और इसे उससे व्युत्पन्न मानने का अर्थ है साधारण-से दिखने वाले चरखे में प्रेम के दैवी नियम के सदा प्रवर्तनशील चक्र के पालन की आवश्यकता को स्वीकार करना | *(हरि, 3-8-1947, पृ. 266)*

चरखा आश्रम की प्रार्थना का एक अनिवार्य अंग बन गया है | चरखे को त्याग का प्रतीक मानते हुए उसे ईश्वर की धारणा के साथ जोड़ दिया गया है जिसका कारण यह है कि हम चरखे को निर्धनों की मुक्ति की एकमात्र आशा मानते हैं | *(हरि, 18-8-1946, पृ. 263)*

मेरा दावा है कि हाथ की कताई को सर्वव्यापी बनाने से और चरखे के उद्देश्यों की पूरी जानकारी का प्रचार करने से ही भारत जैसे विशाल देश की जड़ता समाप्त की जा सकती है | मैंने चरखे की तुलना सूर्य के साथ की है तथा गांव के अन्य शिल्पों को सौरमंडल के विभिन्न नक्षत्रों के समान माना है | सूर्य सभी नक्षत्रों को प्रकाश और ऊष्मा देता है और उन्हें जीवित रखता है | सूर्य के बिना नक्षत्रों का अस्तित्व ही नहीं रह सकता | *(हरि, 31-3-1946, पृ. 58)*

कताई का कर्तव्य

जिस प्रकार हममें से हर व्यक्ति के लिए खाना-पीना और कपड़े पहनना आवश्यक है उसी प्रकार हममें से हरएक को स्वयं कताई भी करनी चाहिए | *(यंग, 28-5-1925, पृ. 182)*

मैं नहीं जानता कि मैं कर्मयोगी या कोई अन्य योगी हूं | मैं तो बस यह जानता हूं कि मैं काम किए बिना जी नहीं सकता | मेरी कामना है कि मैं चरखा कातते-कातते मरूं | यदि हमें परमात्मा के साथ संबंध स्थापित करने के लिए किसी माध्यम की आवश्यकता है तो यह माध्यम चरखा ही क्यों नहीं होना चाहिए ? गीता में भगवान ने कहा है कि जो मेरी आराधना करता है, मैं उसे सही मार्ग दिखाता हूं और उसकी हर आवश्यकता पूरी करता हूं | *(हरि, 8-5-1937, पृ. 99)*

यदि भारत की हर स्त्री कातना शुरू कर दे तो देश में निश्चित रूप से एक मौन क्रांति आ जाएगी जिसका अधिकतम लाभ जवाहरलाल नेहरु जैसा नेता उठा सकता है | एक बार भाप बन जाए और उसका उचित उपयोग न हो तो इंजन नहीं चलेगा और भाप बनाने वाला व्यक्ति उससे स्वयं ही जल सकता है और उसकी जान भी जा सकती है| *(हरि, 14-4-1946, पृ. 88)*

चरखे का वैज्ञानिक अध्ययन हमें समाजशास्त्र की ओर ले जाएगा | जब तक हम चरखे से संबंधित विविध विज्ञानों का गहन अध्ययन नहीं करेंगे तब तक चरखा हमारे हाथों में भारत की स्वाधीनता का प्रभावी अस्त्र नहीं बनेगा | यदि हमने ऐसा किया तो यह न केवल भारत को स्वतंत्र कराएगा, अपितु पूरी दुनिया को मार्ग दिखाएगा | *(हरि, 31-3-1946, पृ. 59)*

"आज़ादी की वर्दी"

....एक ओर जहां खादी गरीब के लिए रोटी कमाने का एक सम्माननीय व्यवसाय है वहीं यह अहिंसक तरीकों से स्वराज हासिल करने का एक अतिरिक्त और अपेक्षाकृत अधिक मूल्यवान अस्त्र भी है | *(हरि, 28-4-1946, पृ. 104)*

सन् 1908 में, दक्षिण अफ्रीका में, मेरी यह धारणा बनी कि अगर निर्धनता से ग्रस्त भारत को विदेशी हुकूमत के जुए से मुक्त कराना है तो उसे चरखा और हाथ से कते सूत को गुलामी का नहीं बल्कि आज़ादी का प्रतीक मान लेना चाहिए | इससे निर्धन व्यक्ति को अपनी क्षुद्र आय में थोड़ी-बहुत वृद्धि करने का भी लाभ मिलता है | *(हरि, 22-9-1946, पृ. 320)*

मेरी दृष्टि में खादी भारतवासियों की एकता, उनकी आर्थिक स्वाधीनता और समानता का प्रतीक है | अत: जवाहरलाल नेहरु की काव्यमय भाषा में यह अंतत: "भारत की आज़ादी की वर्दी" है |

इसके अलावा, खादी की मानसिकता का अर्थ है जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन और वितरण का विकेंद्रीकरण | इसलिए अभी जो सूत्र तैयार किया गया है वह यह है कि प्रत्येक गांव अपनी जरूरत की सभी चीज़ों का उत्पादन करे और साथ में, शहरों की आवश्यकताओं के लिए भी कुछ अतिरिक्त माल तैयार करे |

भारी उद्योग निश्चय ही केंद्रीकृत और राष्ट्रीयकृत होंगे | लेकिन विशाल राष्ट्रीय उपक्रम में जो मुख्यत: गांवों में होगा, भारी उद्योगों का स्थान अत्यंत साधारण रहेगा |....

इस केंद्रीय ग्राम उद्योग और संबद्ध हस्तशिल्पों के निर्दयतापूर्वक विनाश के बाद से बुद्धिमत्ता और प्रतिभा गांवों से पलायन कर गई है जिससे गांव बुद्धिहीन और निस्तेज हो गए हैं और उनकी स्थिति वैसी ही हो गई है जैसी कि वहां पलने वाले पशुओं की है | *(काप्रो, पृ. 12)*

आर्थिक पुनरुद्धार

मुझे विश्वास है कि हाथ की कताई और बुनाई के पुनरुद्धार से भारत के आर्थिक और नैतिक पुनरुज्जीवन में सबसे बड़ा योगदान होगा | हमारे लाखों ग्रामवासियों के पास कृषि के पूरक के रूप में कोई सादा-सा उद्योग होना आवश्यक है | वर्षों पहले कताई एक कुटीर उद्योग था और यदि हमें लोगों को भुखमरी से बचाना है तो हमें

अपने घरों में फिर से कताई की शुरुआत करनी चाहिए और हर गांव के पास फिर से अपना बुनकर होना चाहिए| *(यंग, 21-7-1920, पृ. 4)*

चरखा दुनिया के राष्ट्रों के प्रति किसी दुर्भावना का प्रतीक नहीं है, बल्कि यह सद्भावना और स्वावलंबन का संदेशवाहक है | इससे विश्व की शांति और उसके संसाधनों के दोहन के लिए कोई खतरा पैदा होने वाला नहीं है जिसके लिए नौसेना की सहायता की आवश्यकता हो | हां, इसके लिए हमारे लाखों देशवासियों को यह धार्मिक संकल्प लेना होगा कि जिस प्रकार वे अपना खाना अपने घरों में ही पकाते हैं उसी प्रकार अपनी आवश्यकता का सूत भी अपने घरों में ही कातेंगे |

मुझे मेरी भूल-चूकों के लिए आगे आने वाली पीढ़ियां दोष दे सकती हैं, लेकिन मुझे इस बात का पक्का भरोसा है कि चरखे के पुनरुद्धार के लिए वे मुझे आशीष ही देंगी | मैंने इसके लिए अपना सब कुछ दांव पर लगा दिया है | बात यह है कि चरखे का हर चक्कर शांति, सद्भावना और प्रेम बुनता है और जिस प्रकार चरखे का लोप हो जाने से भारत गुलाम हो गया था, उसी प्रकार इसके तथा इससे जुड़ी सभी बातों के स्वैच्छिक पुनरुद्धार से भारत को आज़ादी मिलेगी | *(यंग, 8-12-1921, पृ. 406)*

ग्रामीण जनता की आशा

मैंने प्राय: कहा है कि यदि भारत के 7 लाख गांवों को जीवित रखना है और शांति, जो सारी सभ्यता की जड़ है, को हासिल करना है तो हमें चरखे को सभी हस्तशिल्पों का केंद्र बनाना होगा | *(हरि, 19-2-1938, पृ. 11)*

मेरी दृष्टि में चरखा आम जनता की आशा का प्रतीक है | चरखे के लोप के साथ आम जनता की आज़ादी का लोप हो गया था | ग्रामवासियों के लिए चरखा कृषि का पूरक था और उन्हें गरिमा प्रदान करता था | वह विधवा मां-बहनों का मित्र और आसरा था | उससे गांव वाले निष्क्रियता से मुक्त रहते थे, क्योंकि चरखे के साथ उनके उद्योग जुड़े हुए थे जैसे कि ओटाई, धुनाई, तानी करना, माड़ी देना, रंगाई, बुनाई आदि | इनके कारण गांव के बढ़ई और लुहार भी व्यस्त रहते थे |

चरखे की बदौलत हमारे 7 लाख गांव स्वत:पूर्ण थे | चरखे के साथ कोल्हू जैसे हमारे अन्य उद्योगों का भी लोप हो गया | इनका स्थान किन्हीं अन्य उद्योगों ने नहीं लिया | परिणाम यह हुआ कि गांवों के विविध व्यवसाय समाप्त हो गए और उनके साथ ही सृजनात्मक प्रतिभा का भी लोप हो गया और जो थोड़ी-बहुत कमाई उनसे होती थी, वह भी जाती रही....इसलिए यदि हम चाहते हैं कि गांवों का पुनरुज्जीवन हो तो सबसे सहज बात यह सामने आती है कि हमें चरखे और उससे जुड़ी तमाम चीज़ों का पुनरुद्धार करना चाहिए | *(हरि, 13-4-1940, पृ. 85)*

मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि चरखा मनुष्य की आजीविका का सफल साधन सिद्ध हो सकता है और इसके साथ ही चरखा कातने वाला अपने पड़ोसियों की उपयोगी सेवा भी कर सकता है....बुद्धिमानी के साथ चरखा

कातने के लिए उसे कताई से पहले और बाद की सभी क्रियाओं की जानकारी होनी चाहिए | *(हरि, 17-3-1946, पृ. 42)*

भारत आने से पहले ही मेरे मन में यह धारणा घर कर गई थी कि हथकताई को पुनरुज्जीवित करने से ही भारत को अपने प्राचीन गौरव की पुन: प्राप्ति हो सकेगी | तब से मैंने चरखे की तुलना सूर्य के साथ की है जिसकी परिक्रमा हमारी संपूर्ण ग्राम अर्थव्यवस्था करती है | यह धनवानों और निर्धन के बीच स्वर्णिम सेतु है | *(हरि, 21-7-1946, पृ. 231)*

चरखा पश्चिम की छोटी या बड़ी मशीनों की तरह नहीं है | वहां इने-गिने विशेष स्थानों में करोड़ों घड़ियों का उत्पादन होता है | ये घड़ियां सारी दुनिया में बेची जाती हैं | यही बात सिलाई की मशीनों पर भी लागू होती है | ये चीजें एक सभ्यता की प्रतीक हैं | चरखा इससे बिलकुल दूसरी सभ्यता का प्रतीक है |

हम किसी एक स्थान पर बड़े पैमाने पर उत्पादन करके चरखे का सार्वभौमीकरण करना नहीं चाहते | हमारा आदर्श यह है कि जिस बस्ती में कताई करने वाले रहते हों वहीं चरखे और उसकी सहायक वस्तुओं का निर्माण होना चाहिए | इसी में चरखे का मूल्य निहित है | चरखे में यदि कोई खराबी आ जाए तो वह वहीं ठीक हो सकनी चाहिए और कताई करने वालों को इसके लिए प्रशिक्षित करना चाहिए | *(हरि, 20-10-1946, पृ. 363-64)*

मिल उद्योग

हमारे सूती मिल आज हमारी जरूरत के लायक सूत नहीं कात पाते और यदि कात भी पाएं तो उनकी कीमतें तब तक कम नहीं रखेंगे जब तक कि उन्हें इसके लिए विवश न किया जाए | वे खुल्लमखुल्ला पैसा कमाने वाले उद्योग हैं और यही कारण है कि वे राष्ट्र की आवश्यकताओं के अनुरूप कीमतों का नियमन नहीं करेंगे | इसलिए हथकताई का हमारा प्रयोजन यह है कि निर्धन ग्रामवासियों के हाथ में करोड़ों रुपये पहुंचें | हर कृषिप्रधान देश को एक ऐसे पूरक उद्योग की आवश्यकता होती है जिसे चलाकर कृषक अपने खाली समय का उपयोग कर सके | भारत के मामले में कताई ही इस प्रकार का पूरक उद्योग रहा है | यह क्या कोई बड़ा स्वप्नदर्शी आदर्श है....एक ऐसे प्राचीन धंधे को पुनरुज्जीवित करना जिसके विनाश के साथ भारत में दासता तथा कंगाली आई और अनुपम कला-प्रतिभा का लोप हो गया, जिसकी बदौलत भारत ऐसा अद्‌भुत कपड़ा तैयार करता था जो समस्त संसार के लिए ईर्ष्या की वस्तु थी ? *(यंग, 16-2-1921, पृ. 50-51)*

मुझसे प्राय: पूछा जाता है कि क्या मैं मिल उद्योग को नष्ट करना चाहता हूं ? यदि मैं ऐसा चाहता तो क्या मैंने उत्पादन शुल्क को समाप्त किए जाने की मांग उठाई होती ? मैं मिल उद्योग की समृद्धि चाहता हूं – बस यह नहीं चाहता कि यह देश को हानि पहुंचाकर हो | लेकिन यदि देश का हित इसमें है कि यह उद्योग समाप्त हो जाए तो मुझे इसकी समाप्ति पर तनिक भी खेद नहीं होगा | *(यंग, 24-2-1927, पृ. 58)*

मेरी राय में मिल-मज़दूर भी उसी प्रकार अपनी मिलों के मालिक हैं जिस प्रकार कि उनके शेयरधारक हैं और मिल-मालिक जब इस बात को समझ जाएंगे कि मिल-मज़दूर भी उन्हीं के समान अपनी मिलों के मालिक हैं तो उनके बीच के सारे झगड़े खत्म हो जाएंगे | *(यंग, 4-8-1927, पृ. 248)*

87. स्वदेशी का अर्थ

स्वदेशी की भावना

स्वदेशी वह भावना है जो हमें दूर-दराज के इलाकों को छोड़कर अपने समीपस्थ क्षेत्रों का उपयोग करने और उनकी सेवा करने तक सीमित करती है | इस प्रकार, धर्म के मामले में इस परिभाषा के अनुसार, मुझे स्वयं को अपने पूर्वजों के धर्म तक सीमित रखना चाहिए | यह मेरे समीपस्थ धार्मिक वातावरण का उपयोग कहलाएगा | यदि मुझे इसमें कोई दोष दिखाई देता है तो मुझे उपयुक्त सेवा के द्वारा उसके इस दोष को दूर करना चाहिए |

राजनीति के क्षेत्र में, मुझे देशी संस्थाओं का उपयोग करना चाहिए और उनके प्रकट दोषों को दूर करने के लिए उनकी सेवा करनी चाहिए | जहां तक आर्थिक क्षेत्र का संबंध है, मुझे उन चीजों का इस्तेमाल करना चाहिए जिनका उत्पादन मेरे समीपस्थ पड़ोसी करते हैं और यदि मुझे वहां के उद्योगों में कोई कमी दिखाई देती है तो मुझे उन्हें अधिक कार्य-कुशल और पूर्ण बनाने के लिए उनकी सेवा करनी चाहिए | स्वदेशी की इस भावना पर यदि आचरण किया जाए तो यह हज़ार वर्ष तक चलती जाएगी....

धर्म

....हिंदू धर्म एक रूढ़िवादी धर्म बन गया है और चूंकि इसके मूल में स्वदेशी की भावना है, इसलिए यह अत्यधिक शक्ति-संपन्न हो गया है | यह सबसे अधिक सहिष्णु धर्म है, क्योंकि इसमें अन्य लोगों का धर्म-परिवर्तन कराके उन्हें हिंदू बनाने का कोई विधान नहीं है और यह जितना विस्तारशील पहले था उतना ही आज भी है | इसने बौद्ध धर्म को देश से बाहर नहीं निकाला बल्कि उसे आत्मसात कर लिया, हालांकि लोगों की यह भ्रांत धारणा है कि हिंदू धर्म ने बौद्ध धर्म को देश से बहिष्कृत कर दिया था | स्वदेशी की भावना के कारण ही हिंदू अपना धर्म बदलने से इंकार करता है; इसका अनिवार्यत: यह कारण नहीं है कि वह अपने धर्म को सर्वश्रेष्ठ मानता है, बल्कि यह है कि वह इस बात को जानता है कि वह इसमें अपेक्षित सुधार लाकर इसकी कमियों को दूर कर सकता है | मैंने अभी जो बात हिंदू धर्म के बारे में कही है, मैं समझता हूं कि, वह विश्व के सभी बड़े धर्मों के बारे में कही जा सकती है; यह अवश्य है कि हिंदू धर्म के बारे में यह विशेष रूप से लागू होती है |

शिक्षा

शिक्षा के मामले में स्वदेशी की भावना के घातक त्याग से हमें बहुत अधिक हानि पहुंची है | हमारे शिक्षित वर्ग की शिक्षा विदेशी भाषा के माध्यम से हुई है | इसका परिणाम यह हुआ है कि हम आम जनता के साथ तादात्म्य नहीं कर पाए | हम आम जनता का प्रतिनिधित्व करना चाहते हैं, लेकिन उसमें सफल नहीं हो पाते | आम लोग हमें उसी अपरिचय की दृष्टि से देखते हैं जिस दृष्टि से वे अंग्रेज अधिकारियों को देखते हैं | उनके दिलों की बात को न हम समझ पाते हैं और न अंग्रेज अधिकारी | आम आदमी की आकांक्षाएं हमारी आकांक्षाएं नहीं हैं, इसलिए

उनके और हमारे बीच में एक खाई पैदा हो गई है | इसलिए आप जो देख रहे हैं वह वस्तुत: हमारे संगठन की असफलता नहीं है, बल्कि प्रतिनिधियों और जिनका वे प्रतिनिधित्व करते हैं उनके बीच तादात्म्य का अभाव है |

यदि पिछले 50 वर्षों के दौरान हमारी शिक्षा अपने देश की भाषाओं में हुई होती तो हमारे बुजुर्ग और हमारे नौकर-चाकर तथा पड़ोसी हमारे ज्ञान में भागीदार होते; बोस या राय की खोजों का उसी प्रकार घर-घर प्रचार होता जैसाकि रामायण और महाभारत का है | आज स्थिति यह है कि जहां तक हमारे आम आदमी का ताल्लुक है, उसके लिए इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि ये खोजें भारतीयों ने की हैं या विदेशियों ने | यदि शिक्षा की सभी शाखाओं में पढ़ाई देशी भाषाओं के माध्यम से हो रही होती तो मैं इस बात को दावे के साथ कह सकता हूं कि उनकी अद्‌भुत समृद्धि हुई होती....

आर्थिक जीवन

आम आदमी की घोर निर्धनता का सबसे बड़ा कारण आर्थिक और औद्योगिक क्षेत्र में स्वदेशी का त्याग है | यदि एक भी चीज़ भारत के बाहर से न खरीदी जाती तो इस देश में घी-दूध की नदियां बह रही होतीं | लेकिन ऐसा नहीं होना था | हम लालची हैं और हम जैसा लालची ही इंग्लैंड भी था | इंग्लैंड और भारत के बीच का संबंध स्पष्टतया एक गलती के ऊपर आधारित था....

यदि हम स्वदेशी के सिद्धांत का पालन करें तो आपका और मेरा यह कर्तव्य हो जाएगा कि ऐसे पड़ोसियों को ढूंढें जो हमारी आवश्यकता की वस्तुएं हमें दे सकें और यदि वे किन्हीं वस्तुओं का उत्पादन करने में असमर्थ हों तो हम उन्हें अपेक्षित प्रशिक्षण दें | यहां हम यह मानकर चल रहे हैं कि हमारे पड़ोस में ऐसे लोग हैं जो स्वस्थ काम-धंधे की तलाश में है | यदि ऐसा होगा तो भारत का प्रत्येक गांव लगभग स्वावलंबी और स्वत:पूर्ण हो जाएगा और वह दूसरे गांवों के साथ उन्हीं आवश्यक वस्तुओं की अदला-बदली करेगा जिनका स्थानीय उत्पादन संभव नहीं है|

ये बातें मूर्खतापूर्ण प्रतीत हो सकती हैं | मेरा जवाब है कि यह देश है ही मूर्खों का | यदि हमारा कंठ प्यास से सूखा जा रहा है और कोई दयालु मुसलमान हमें शुद्ध जल पिलाने के लिए तैयार है तो भी अगर हम उसे पीने से इंकार करते हैं तो यह भी मूर्खता ही है | फिर भी, लाखों हिंदू किसी मुसलमान के घर से लेकर पानी पीने की अपेक्षा प्यास से मर जाना बेहतर समझेंगे | इन मूर्ख लोगों के मन में यदि यह बात बैठा दी जाए कि उनके धर्म की मांग यह है कि वे केवल भारत में बनाए गए कपड़ों को ही पहनें और भारत में पैदा होने वाली वस्तुओं को ही खाएं तो ये लोग देशी के अलावा अन्य किसी कपड़े को पहनने और अन्य किसी खाद्य वस्तु को खाने से इनकार कर देंगे....

धार्मिक अनुशासन

प्राय: कहा जाता है कि भारत अपने आर्थिक जीवन में तो स्वदेशी को अपना ही नहीं सकता | जो लोग यह आपत्ति उठाते हैं वे स्वदेशी को जीवन के नियम के रूप में स्वीकार नहीं करते | उनकी दृष्टि में यह केवल राष्ट्र-भावना से

प्रेरित एक प्रयास है जिसमें यदि कष्ट हो तो उसे छोड़ा भी जा सकता है | स्वदेशी की जो परिभाषा मैंने ऊपर दी है उसके अनुसार यह एक धार्मिक अनुशासन है जिसका हमें भौतिक कष्ट की तनिक भी चिंता न करते हुए पालन करना है | स्वदेशी की भावना के प्रभाव में यदि हम पिन या सुई से स्वयं को इसलिए वंचित कर देंगे कि इसका विनिर्माण भारत में नहीं होता तो हमें इसका कष्ट बिलकुल नहीं सताएगा | स्वदेशी का पालन करने वाले व्यक्ति को ऐसी सैकड़ों चीज़ें छोड़ने के लिए तैयार होना होगा जिन्हें वह आज आवश्यक मानता है....

मेरा कहना है कि स्वदेशी ही वह एकमात्र सिद्धांत है जो विनम्रता और प्रेम के नियम के अनुरूप है | यदि मैं अपने परिवार की ही ठीक से सेवा न कर पाऊं तो मेरे लिए समूचे भारत की सेवा के वास्ते निकल पड़ना दंभ की बात होगी | तब मेरे लिए यही बेहतर होगा कि मैं अपने प्रयासों को अपने परिवार तक सीमित रखूं और यह समझूं कि मैं ऐसा करके संपूर्ण राष्ट्र बल्कि कहिए कि संपूर्ण मानवता की सेवा कर रहा हूं | यही विनम्रता है और यही प्रेम है|

हमारे कार्य की उत्कृष्टता इस बात पर निर्भर करती है कि उसके पीछे हमारा प्रयोजन क्या है | हो सकता है कि मैं अपने परिवार की सेवा करते समय इस बात की चिंता ही न करूं कि इससे मैं दूसरे लोगों को कितना कष्ट दे रहा हूं | उदाहरण के रूप में, मैं कोई ऐसा काम उठा लूं जिसमें मुझे लोगों से रुपए ऐंठने पड़ते हों इससे मुझे पैसा जरूर मिलेगा और मैं अपने परिवार की बहुत-सी नाजायज मांगों को पूरा कर सकूंगा, लेकिन ऐसा करते हुए मैं न अपने परिवार की सेवा कर रहा हूं और न अपने राज्य की |

यह भी संभव है कि मैं इस बात को समझूं कि भगवान ने मुझे हाथ-पैर इसलिए दिए हैं कि मैं अपने और अपने आश्रितों के जीवन-निर्वाह के लिए काम करने के वास्ते उनका इस्तेमाल करूं | ऐसा समझने पर मेरे और मेरे निकट के लोगों के जीवन में तत्काल सादगी आ जाएगी | तब मैं किसी अन्य व्यक्ति को क्षति पहुंचाए बिना अपने परिवार की सेवा करूंगा | यदि हर व्यक्ति इस जीवन-पद्धति को अपना ले तो हमारा राज्य एक आदर्श राज्य हो जाए | मैं मानता हूं कि सभी लोग एक साथ इस अवस्था की प्राप्ति नहीं कर सकते, लेकिन इस सिद्धांत की सत्यता को स्वीकार करते हुए हममें से जो भी लोग इस पर आचरण करेंगे वे निश्चय ही उस आदर्श स्थिति की प्राप्ति को निकटतर ले आएंगे | *(स्पीरा, पृ. 336-44)*

पड़ोसियों की सेवा

स्वदेशी की मेरी परिभाषा सुविदित है | मैं अपने निकटस्थ पड़ोसी की कीमत पर किसी दूरस्थ पड़ोसी की सेवा नहीं करूंगा | इसमें बदला लेने या दंड देने की भावना कदापि नहीं है | यह किसी भी अर्थ में संकुचित भावना का परिचायक नहीं है, क्योंकि मुझे अपनी संवृद्धि के लिए जो कुछ चाहिए वह मैं विश्व के हरएक भाग से खरीदूंगा,

लेकिन मैं बहुत बढ़िया और सुंदर होते हुए भी कोई ऐसी चीज़ किसी से नहीं खरीदूंगा जो मेरी संवृद्धि में बाधक हो या उन लोगों को क्षति पहुंचाने वाली हो जिन्हें प्रकृति ने मेरी देखरेख में दिया हुआ है |

मैं दुनिया के हर कोने से अच्छा साहित्य खरीदूंगा | मैं इंग्लैंड से शल्य चिकित्सा के औजार, आस्ट्रिया से पिनें और पेंसिलें और स्विट्जरलैंड से घड़ियां खरीदूंगा | लेकिन मैं इंग्लैंड या जापान या दुनिया के किसी देश से एक इंच भी बढ़िया सूती कपड़ा नहीं खरीदूंगा, क्योंकि इससे भारत के करोड़ों भारतवासियों के हितों को क्षति पहुंची है और अधिकाधिक पहुंच रही है |

मैं भारत के जरूरतमंद करोड़ों निर्धनों द्वारा काते और बुने गए कपड़े को खरीदने से इंकार करना और विदेशी कपड़े को खरीदना पाप समझता हूं, भले ही वह भारत के हाथ से कते कपड़े की तुलना में कितने ही बढ़िया किस्म का हो | इस प्रकार, मेरे स्वदेशी का केंद्रबिंदु हाथ की कती खादी है और स्वदेशी की इस भावना में वे सभी वस्तुएं समाहित हैं जिनका भारत में उत्पादन होता है या किया जा सकता है | *(यंग, 12-3-1925, पृ. 88)*

स्वदेशी का पुजारी अपने निकटस्थ पड़ोसी की सेवा के लिए स्वयं को समर्पित करना अपना पहला कर्तव्य समझेगा | इसमें अन्य लोगों के हितों की ओर ध्यान न देना अथवा उनका त्याग भी शामिल है, लेकिन यह अनन्यता या त्याग केवल ऊपरी ही है, वास्तविक नहीं | अपने पड़ोसियों की शुद्ध भाव से की गई सेवा प्रकृत्या उन लोगों को क्षति नहीं पहुंचा सकती जो दूरस्थ हैं; सच पूछा जाए तो वह उनकी भी सेवा ही करेगी |

हमें अपने हृदय में यह अचूक सिद्धांत पक्के तौर पर बैठा लेना चाहिए कि "जो बात व्यक्ति पर लागू है, वही संपूर्ण विश्व पर भी लागू होती है |" दूसरे शब्दों में, जो व्यक्ति "दूरस्थ दृश्य" के आकर्षणों में फंसकर दुनिया के दूसरे कोने तक सेवा करने के लिए भागता है, वह न केवल अपनी आकांक्षा की पूर्ति में असफल होता है बल्कि अपने पड़ोसियों के प्रति अपने कर्तव्य से भी विमुख होता है.... *(फ्रायम, पृ. 62-63)*

मेरा इस सत्य में अडिग विश्वास है कि व्यक्ति एक ही साथ अपने पड़ोसियों और मानवता की सेवा कर सकता है; शर्त यही है कि पड़ोसियों की सेवा के पीछे स्वार्थ या अनन्यता का भाव न हो, अर्थात उसमें अन्य व्यक्तियों का शोषण निहित न हो | तब पड़ोसी भी उस भावना को समझ सकेंगे जिस भावना से आप उनकी सेवा करना चाहते हैं | वे यह भी जान जाएंगे कि बदले में उन्हें भी अपने पड़ोसियों की सेवा करनी है | इस प्रकार इस सेवाभाव की गुणोत्तर वृद्धि होती जाएगी और यह समूची दुनिया को समाविष्ट कर लेगी | इसका तात्पर्य यह हुआ कि स्वदेशी वह भावना है जो आपको अन्य लोगों की चिंता किए बिना अपने निकटस्थ पड़ोसी की सेवा के लिए प्रेरित करती है | शर्त यह है कि, जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूं, आपका पड़ोसी भी, बदले में, अपने पड़ोसी की सेवा करे | इस अर्थ में, स्वदेशी में अनन्यता का कोई भाव नहीं है | इसमें केवल इस वैज्ञानिक मर्यादा को स्वीकार किया गया है कि मनुष्य की सेवा करने की सामर्थ्य की भी एक सीमा है | *(हरि, 23-7-1947, पृ. 79)*

अंध राष्ट्रभक्ति नहीं

जीवन की इस योजना के तहत, दूसरे सभी देशों को छोड़कर केवल भारत की सेवा कर, मैं किसी अन्य देश को कोई क्षति नहीं पहुंचाता | मेरा राष्ट्रप्रेम व्यावर्तक भी है और समावेशी भी | व्यावर्तक इस अर्थ में है कि मैं, पूरी विनम्रता के साथ, अपना ध्यान अपनी जन्मभूमि तक सीमित रखता हूं और समावेशी इस अर्थ में है कि मेरी सेवा का स्वरूप स्पर्धात्मक या विरोधात्मक बिलकुल नहीं है | 'अपनी संपत्ति का इस्तेमाल इस तरह करो कि वह किसी दूसरे को क्षति न पहुंचाए', केवल कानून की ही सूक्ति नहीं है, अपितु जीवन का एक महान सिद्धांत है | यह अहिंसा या प्रेम पर ठीक से अमल करने की कुंजी है | *(स्पीरा, पृ. 344)*

मेरा यह विचार कभी नहीं रहा है कि स्वदेशी का यह अर्थ लिया जाए कि विदेश में बनी हर चीज़ को हर हालत में त्याज्य समझना है | स्वदेशी की मोटी परिभाषा यह है कि हमें देशी उद्योगों को संरक्षण प्रदान करने के लिए विदेशी वस्तुओं का त्याग करके देशी वस्तुओं का इस्तेमाल करना चाहिए; यह बात उन उद्योगों पर खास तौर से लागू होती है जिनके नष्ट होने पर भारत कंगाल हो जाएगा | इसलिए, मेरी राय में, स्वदेशी का यह अर्थ लगाना उसकी व्याख्या को संकुचित करना होगा कि हमें प्रत्येक विदेशी वस्तु का त्याग कर देना चाहिए भले ही वह कितनी ही फायदेमंद हो और उसके कारण देश में किसी के कामधंधे को हानि न पहुंचती हो | *(यंग, 17-6-1926, पृ. 218)*

यदि हम स्वदेशी की जड़पूजा करने लगे तो किसी भी अन्य अच्छी चीज़ की तरह यह भी मौत का परवाना बन जाएगी | हमें इस खतरे से सावधान रहना होगा | विदेशों में बनी चीज़ों का केवल इसलिए त्याग करना कि ये विदेशों में बनी हैं, और परिस्थितियां अनुकूल न होने पर भी, अपने देश में ही उनका विनिर्माण करने के लिए राष्ट्रीय समय और धन का अपव्यय करना, मूर्खतापूर्ण और स्वदेशी की भावना को नकारना होगा |

स्वदेशी का सच्चा पुजारी किसी विदेशी के प्रति कभी मन में दुर्भावना नहीं पालेगा; वह दुनिया में किसी के प्रति विरोध की वृत्ति से प्रेरित नहीं होगा | स्वदेशी का अभियान घृणा फैलाने का अभियान नहीं है | यह निस्स्वार्थ सेवा का सिद्धांत है जिसकी जड़ में विशुद्ध अहिंसा अर्थात प्रेम है | *(फ्रायम, पृ. 66)*

14. भाईचारा

88. प्रेम का दिव्य संदेश

आपस में जोड़ने वाली शक्ति

प्रेम का बल वही है जो आत्मा अथवा सत्य का बल है | हमें पग-पग पर उसकी कार्यशीलता का प्रमाण मिलता है | वह बल न हो तो विश्व का लोप हो जाएगा....इसी बल के अत्यंत सक्रिय रूप से कार्यशील होने के कारण हजारों-लाखों लोगों का जीवन अस्तित्व में है | इसी बल की बदौलत लाखों परिवारों के दैनंदिन जीवन में उठने वाले छोटे-मोटे झगड़े निपट जाते हैं | सैकड़ों राष्ट्र शांतिपूर्वक विद्यमान हैं | इतिहास तो वस्तुत: प्रेम या आत्मा के बल के सुचारू प्रवर्तन में उत्पन्न होने वाले व्यवधानों का अभिलेख है | दो भाइयों में लड़ाई होती है; उनमें से एक पश्चाताप करता है और अपने अंदर सुप्त प्रेम को फिर से जगाता है; दोनों भाई फिर शांतिपूर्वक रहने लगते हैं; किसी का ध्यान इस घटना की ओर नहीं जाता | लेकिन, अगर ये दोनों भाई, वकीलों के हस्तक्षेप अथवा किसी अन्य कारण से, हथियार उठा लें या कोर्ट में चले जाएं – जो पशुबल के प्रदर्शन का ही दूसरा रूप है – तो उनके कारनामों की चर्चा तुरंत समाचारपत्रों में होने लगेगी, पड़ोसियों का ध्यान भी उनकी ओर जाएगा और हो सकता है कि यह झगड़ा इतिहास का विषय बन जाए | और जो बात परिवारों और समुदायों के बारे में सही है, वही राष्ट्रों के बारे में भी सही है | ऐसा मानने का कोई कारण नहीं है कि परिवारों पर एक नियम लागू होता है और राष्ट्रों पर कोई दूसरा | इस प्रकार, इतिहास प्रकृति के क्रम में उत्पन्न होने वाले व्यवधानों का अभिलेख है | आत्मा के बल चूंकि प्राकृतिक है, इसलिए इतिहास में इसका उल्लेख नहीं होता | *(हिंस्व, पृ. 77-79)*

वैज्ञानिक बताते हैं कि जिन अणुओं से मिलकर हमारी पृथ्वी की रचना हुई है उनके बीच यदि संसंजक या संसक्तिशील बल विद्यमान न हो तो पृथ्वी खंड-खंड हो जाएगी और हमारा अस्तित्व समाप्त हो जाएगा; और जिस प्रकार जड़ पदार्थों में संसंजक बल है उसी प्रकार सभी चेतन पदार्थों में भी यह बल उपस्थित होना चाहिए, और चेतन पदार्थों में इस संसक्तिशील बल का नाम है 'प्रेम' | हमें इसके दर्शन पिता-पुत्र में, भाई-बहिन में और मित्र-मित्र में होते हैं, लेकिन हमें समस्त प्राणी-जगत के बीच इस बल के प्रयोग का अभ्यास डालना चाहिए; इसी प्रयोग में हमारा ईश्वर का ज्ञान निहित है | जहां प्रेम है वहां जीवन है, घृणा विनाश की ओर ले जाती है | *(यंग, 5-5-1920, पृ. 7)*

मेरा मानना है कि मानव जाति की ऊर्जा का कुल योग हमारे अपकर्ष के लिए नहीं, अपितु हमारे उत्कर्ष के लिए है और यह प्रेम के नियम के अचेतन किंतु निश्चित प्रवर्तन का ही परिणाम है | मात्र यह तथ्य कि मानव जाति का अस्तित्व बरकरार है, इस बात का प्रमाण है कि संसक्तिशील बल विच्छेदक बल से अधिक शक्तिशाली है, अभिकेंद्री-बल अपकेंद्री-बल से बढ़कर है | *(यंग, 12-11-1931, पृ. 355)*

हमारे अस्तित्व का नियम

हजारों साल से इस दुनिया पर बर्बर बल का राज रहा है और मानव जाति उसके अत्यंत कटु परिणाम भोगती रही है, यह हर अध्येता जान सकता है | भविष्य में भी उस बर्बर बल के कोई शुभ परिणाम सामने आने की आशा नहीं है | यदि घोर अंधकार के भीतर से कभी प्रकाश का जन्म संभव हो, केवल तभी घृणा में से प्रेम का उदय संभव है| *(ससा, पृ. 188)*

मैंने देखा है कि विनाश के बीच भी जीवन बरकरार रहता है | अत: कोई ऐसा नियम अवश्य होना चाहिए जो विनाश के नियम से उच्चतर है | उसी नियम के अंतर्गत एक सुव्यवस्थित समाज की स्थापना की जा सकेगी और जीवन जीने योग्य बन सकेगा | और, यदि वही जीवन का नियम है तो हमें अपने दैनंदिन जीवन में उसे उतारने का प्रयास करना चाहिए | अगर कहीं टकराव हो, अगर तुम्हारे सामने विरोधी खड़ा हो तो उसे प्रेम से जीतो | इसी अनगढ़ उपाय के सहारे मैंने अपने जीवन-क्रम को सफलतापूर्वक चलाया है | इसका मतलब यह नहीं है कि मेरी सभी कठिनाइयां दूर हो गई हैं | लेकिन मैंने यह अवश्य पाया है कि जिस प्रकार प्रेम का नियम काम आता है उस प्रकार विनाश का नियम कभी काम नहीं आता | *(यंग, 1-10-1931, पृ. 286)*

यदि प्रेम अथवा अहिंसा हमारे अस्तित्व का नियम नहीं है....तो हम बारंबार लड़े जाने वाले युद्धों के शिकार होने से बच नहीं सकेंगे और प्रत्येक नया युद्ध भीषणता में अपने पूर्ववर्ती से बढ़कर होगा....

आज तक जितने उपदेशक हुए हैं उन्होंने न्यूनाधिक शक्ति के साथ इस नियम का प्रचार किया है | यदि प्रेम जीवन का नियम न होता तो मौत के बीच जीवन के सातत्य के दर्शन न होते | जीवन ने सदा ही मृत्यु पर विजय पाई है | मनुष्य और पशु के बीच यदि कोई मौलिक भेद है तो वह मनुष्य द्वारा प्रेम के नियम की अधिकाधिक स्वीकृति और अपने व्यक्तिगत जीवन में उसे व्यवहार में लाने का प्रयास है | विश्व के सभी, प्राचीन और आधुनिक, संत अपनी-अपनी प्रतिभा और क्षमता के अनुसार हमारे अस्तित्व के इसी नियम के जीते-जागते उदाहरण थे | यह सही है कि प्राय: हमारे भीतर बैठा पशु बड़ी सरलता से विजयी होता दिखाई देता है, किंतु इससे प्रेम का नियम झूठा साबित नहीं होता | इससे सिर्फ यह साबित होता है कि प्रेम के नियम पर आचरण करना कठिन है | जो नियम स्वयं सत्य के समान ऊंचा है उसका पालन करना कठिन नहीं तो और क्या होगा ? जब सभी लोग इस नियम का पालन करने लगेंगे तो पृथ्वी पर ईश्वर का उसी प्रकार राज्य हो जाएगा जिस प्रकार अभी स्वर्ग पर है | यहां यह स्मरण दिलाने की आवश्यकता नहीं है कि पृथ्वी और स्वर्ग, दोनों हमारे अपने भीतर ही हैं | हम पृथ्वी को तो जानते हैं, पर अपने भीतर के स्वर्ग से अनजान हैं | अगर यह मान लिया जाए कि कुछ लोगों के लिए प्रेम का व्यवहार करना संभव है तो यह मान लेना अहंकारपूर्ण होगा कि शेष लोगों द्वारा इसका आचरण किए जाने की कोई संभावना ही नहीं है | बहुत ज़्यादा वक्त नहीं गुजरा कि हमारे पूर्वज नरभक्षी थे; वे और भी ऐसे बहुत-से काम

करते थे जिन्हें आज हम घृणा की दृष्टि से देखते हैं | उस जमाने में भी निस्संदेह डिक शपर्ड्स जैसे लोग रहे होंगे जिन पर लोग हंसते होंगे और अपने ही साथी मनुष्यों को न खाने के (उनके लिए) विचित्र सिद्धांत का प्रचार करने पर शायद उन्हें टिकठी में खड़ा करके सजाएं भी दी गई होंगी | *(हरि, 26-9-1936, पृ. 260)*

इतिहास एक के बाद एक लड़े गए युद्धों का अभिलेख है, किंतु हम एक नये इतिहास के निर्माण का प्रयास कर रहे हैं – यह बात मैं, कम-से-कम जहां तक अहिंसा का संबंध है, राष्ट्रीय मानस के प्रतिनिधि के रूप में कह रहा हूं | मैंने तलवार के सिद्धांत को तर्क की तुला पर तौलकर देख लिया है, मैंने उसकी संभावनाओं पर विचार कर लिया है और मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि मानव का भविष्य जंगल के नियम के स्थान पर प्रेम के नियम की प्रतिष्ठा करने में ही निहित है | *(हरि, 3-7-1937, पृ. 165)*

जहां प्रेम है, वहीं ईश्वर भी है | *(सत्या, पृ. 360)*

प्रेम मांगता नहीं, हमेशा देता ही है | प्रेम स्वयं पीड़ा भोगता है, कभी दोष प्रकट नहीं करता, कभी बदला नहीं लेता| *(यंग, 9-7-1925, पृ. 24)*

सेवा का नियम

व्यवहार का सबसे सुरक्षित नियम यह है कि जब हम सेवा करना चाहें तो बंधुता स्थापित करें और जब कोई अधिकार मांगना चाहें तो बंधुता पर जोर न दें | मैं इसे व्यवहार का स्वर्णिम नियम कहकर पुकारता हूं और मैंने जीवन के इस नियम को भारत के अंत:प्रांतीय संबंधों पर भी लागू किया है....मानव मामलों में मधुर संबंध बनाए रखने का कोई और तरीका मुझे नहीं आता और वर्षों के लंबे अनुभव से मेरी यह धारणा और भी पुष्ट हुई है कि जहां-जहां इस स्वर्णिम नियम का भंग हुआ है वहां-वहां कलह, झगड़े और सर-फुटौवल तक की नौबत आ गई है.... *(यंग, 8-12-1927, पृ. 407)*

व्यवहार की समानता

मेरा प्रमुख उद्देश्य समूची मानवता के लिए समान व्यवहार सुनिश्चित करना है और उस समान व्यवहार का अर्थ है सेवा की समानता | *(यंग, 12-3-1925, पृ. 91)*

बात यह है कि यद्यपि सब लोग एक-समान आयु, एक बराबर कद, एक ही चमड़ी और एक जैसी बुद्धि वाले नहीं हैं, पर ये असमानताएं अस्थायी और सतही हैं; इस मिट्टी की पपड़ी के नीचे जो आत्मा छिपी है, वह सभी प्रदेशों के तमाम स्त्री-पुरुषों में बिलकुल एक ही है....हमें अपने चारों ओर जो विविधता दिखाई देती है, उसमें एक सच्ची और तात्विक एकता है | 'असमानता' एक गंदा शब्द है जिसने पूर्व और पश्चिम, दोनों में बड़े घमंड और अमानवीयताओं को जन्म दिया है | और जो बात व्यक्तियों के बारे में सही है वही राष्ट्रों के बारे में भी है, क्योंकि

राष्ट्र व्यक्ति-समूह ही तो है | असमानता के झूठे और अनम्य सिद्धांत के कारण ही एशिया और अफ्रीका के राष्ट्रों का इतनी ढिठाई के साथ शोषण किया गया है | कौन जानता है कि पूर्व को लूटने-खसोटने की वर्तमान क्षमता पश्चिम की श्रेष्ठता और पूर्व की हीनता का चिह्न है ? *(यंग, 11-8-1927, पृ. 253)*

स्वरूप अनेक हैं, पर उनमें प्राण डालने वाली आत्मा एक ही है | जब बाह्य विविधता के नीचे एक सर्वसमावेशी एकता विद्यमान है तो ऊंच और नीच के भेद की गुंजाइश ही कहां रह जाती है ? दैनंदिन जीवन में हर कदम पर आपको इसी तथ्य के दर्शन होते हैं | सभी धर्मों का चरम लक्ष्य इसी मूलभूत एकत्व को प्राप्त करना है | *(हरि, 15-12-1933, पृ. 3)*

मैं प्रेम के सार्वभौम नियम में विश्वास करता हूं जो किसी तरह के भेदभावों को नहीं मानता | *(हरि, 25-5-1947, पृ. 165)*

मैंने रिश्तेदारों और अजनबियों, देशवासियों और विदेशियों, श्वेतों और अश्वेतों, हिंदुओं और मुसलमानों, पारसियों, ईसाइयों या यहूदियों आदि अन्य धर्मावलंबी भारतीयों के बीच कभी कोई भेद नहीं किया है | मैं कह सकता हूं कि मेरा हृदय इस तरह के भेदों को मानने में असमर्थ रहा है | मैं यह दावा नहीं करता कि यह मेरा विशेष गुण है, क्योंकि उसे मैंने प्रयासपूर्वक विकसित नहीं किया है बल्कि यह मेरा स्वभाव ही है | इसके विपरीत, मैं अच्छी तरह जानता हूं कि अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और अन्य मूलभूत गुणों का विकास करने के लिए मुझे निरंतर संघर्ष करना पड़ा है | *(ए, पृ. 204)*

हमें अपने प्रेम की परिधि का विस्तार तब तक करते जाना चाहिए जब तक उसमें पूरा गांव न समा जाए; इसी प्रकार गांव को शहर, शहर को प्रांत, प्रांत को देश और देश को समूची दुनिया को अपने प्रेम के राज्य में समेट लेना चाहिए | *(यंग, 27-6-1929, पृ. 214)*

हम ऐसे समय में रह रहे हैं जब मूल्य बड़ी तेजी से बदल रहे हैं | हमें धीमे परिणामों से संतोष नहीं हो रहा | हमें केवल अपनी ही जाति के लोगों या अपने ही देश के कल्याण से संतोष नहीं हो रहा | हम समूची मानवता के लिए सोचते हैं या सोचना चाहते हैं | ये बातें मानवता की अपने लक्ष्य की खोज के लिए बड़ी लाभकारी हैं | *(हरि, 30-5-1936, पृ. 126)*

मेरा आपसे आग्रह है कि....अपने हृदयों को समुद्र के समान विशाल बनाइए....दूसरों के निर्णायक बनने की चेष्टा मत कीजिए, वरना आपको भी उसी तुला पर तोला जाएगा | ऊपर सबका निर्णायक बैठा है जो आपको फांसी लगा सकता है, पर उसने कृपापूर्वक आपको जीवित छोड़ रखा है | आपके अंदर और बाहर इतने शत्रु हैं, पर ईश्वर उनसे आपकी रक्षा करता है और आप पर कृपादृष्टि रखता है | *(यंग, 1-1-1925, पृ. 8)*

पारस्परिक सहिष्णुता

व्यवहार का स्वर्णिम नियम....पारस्परिक सहिष्णुता है, क्योंकि हम सभी के विचार कभी एक जैसे नहीं हो पाएंगे और सत्य को हम हमेशा खंडश: और अलग-अलग कोणों से देखेंगे | सबका विवेक एक-सा नहीं होता | इसलिए, यद्यपि यह व्यक्ति के व्यवहार का अच्छा मार्गदर्शक है, पर उस व्यवहार को सब पर थोपने से हर आदमी की अपने विवेक को इस्तेमाल करने की स्वतंत्रता पर गहरा कुठाराघात होगा....अत्यधिक विवेकशील मनुष्यों के बीच भी, खरे मतभेदों की गुंजाइश सदा रहेगी | अत: प्रत्येक सभ्य समाज में, पारस्परिक सहिष्णुता ही व्यवहार का एकमात्र संभव नियम है | *(यंग, 23-9-1926, पृ. 334)*

क्षमा आत्मा का गुण है, इसलिए यह एक सकारात्मक गुण है | यह नकारात्मक नहीं है | भगवान बुद्ध ने कहा है, 'क्रोध को अ-क्रोध से जीतो |' यह अ-क्रोध क्या है ? यह एक सकारात्मक गुण है और इसका अर्थ है उदारता अथवा प्रेम का सर्वोच्च गुण | तुम्हें अपने अंदर इस सद्‌गुण का विकास करना चाहिए जिससे कि तुम क्रोधी व्यक्ति के पास जाकर उसके क्रोध का कारण पूछ सको और यदि तुमने उसे किसी रूप में चोट पहुंचाई है तो अपना सुधार कर सको, अन्यथा उसे उसकी त्रुटि बता सको और यह प्रतीति करा सको कि क्रोधित होना गलत है | आत्मा के गुण का यह बोध और उसका सविवेक प्रयोग केवल मनुष्य का ही नहीं बल्कि उसके चारों ओर के वातावरण का उन्नयन करता है | यह अवश्य है कि इसका प्रयोग वही कर पाएगा जिसने प्रेम के गुण का विकास कर लिया है | इसमें संदेह नहीं कि निरंतर प्रयास के द्वारा इस गुण का विकास अवश्य किया जा सकता है | *(यंग, 12-1-1928, पृ. 11)*

जो बात व्यक्तियों के बारे में सही है वह राष्ट्रों के बारे में भी सही है | जो दुर्बल हैं, वे कभी क्षमा नहीं कर सकते | क्षमा तो सामर्थ्यवानों का गुण है | *(यंग, 2-4-1931, पृ. 59)*

भरोसा

मैं मानव प्रकृति में संदेह करने से इंकार करता हूं | वह किसी भी उदात्त और मैत्रीपूर्ण कार्य का प्रत्युत्तर देगी, जरूर देगी | *(यंग, 4-8-1920, पृ. 5)*

मेरे अंदर मानव और मानव जाति के प्रति अविश्वास की कोई भावना नहीं है | जो विश्वास को तोड़ेंगे, उन्हें ईश्वर को जवाब देना होगा, इसलिए इसकी चिंता मैं क्यों करूं ? लेकिन जहां तक मेरे अपने जीवन-लक्ष्य का प्रश्न है, मेरा विचार सक्रिय है, और मैं संदेहों और अविश्वास के बावजूद सबका भला चाहने की कोशिश करता हूं | मेरे भाग्य में पीड़ा लिखी है तो मैं उसे भोगूंगा | लेकिन मुझमें जब तक बुराई से लड़ने की शक्ति है तब तक मुझे घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है | *(स्पेक्ट, 6-3-1942)*

परस्पर विश्वास और परस्पर प्रेम कोई विश्वास और प्रेम नहीं है | सच्चा प्रेम तो यह है कि जो तुमसे घृणा करते हैं, उनसे प्रेम करो, अपने पड़ोसियों के प्रति अविश्वास होते हुए भी उनसे प्रेम करो | मेरे पास अंग्रेज अधिकारी-वर्ग में अविश्वास करने के ठोस कारण है | यदि मेरा प्रेम सच्चा है तो मुझे अपने अविश्वास के बावजूद अंग्रेजों से प्रेम करना चाहिए | उस प्रेम का क्या मूल्य है जो केवल तब तक टिके जब तक मुझे अपने मित्र के प्रति विश्वास है ? ऐसा तो चोर भी करते हैं | विश्वास टूटते ही वे एक-दूसरे के शत्रु बन जाते हैं | *(हरि, 3-3-1946, पृ. 28)*

अबोध बच्चों के मुंह से

विश्वास कीजिए, मैं सैकड़ों नहीं हजारों बच्चों के निजी अनुभव के आधार पर कह रहा हूं कि हमारी अपेक्षा बच्चों में आत्मसम्मान की अनुभूति कहीं अधिक सूक्ष्म होती है | अगर हममें विनम्रता हो तो हम जीवन के महानतम पाठ तथाकथित अबोध बच्चों से सीख सकते हैं, उनके लिए बड़ी उमर के विद्वानों के पास जाने की आवश्यकता नहीं है | ईसा ने इससे ऊंचे और महान सत्य की बात कोई नहीं कही कि ज्ञान की बातें भोले-भाले बच्चों के मुंह से फूटती है | मैं इससे पूरी तरह सहमत हूं | मैंने अपने अनुभव में यह बात पाई है कि अगर हम विनम्रता और भोलेपन के साथ बच्चों से बात करें तो उनसे ज्ञान का पाठ पढ़ सकते हैं |

विश्व-शांति

मैंने एक सबक सीखा है कि जो चीज़ मनुष्य के लिए असंभव है, वह भगवान के लिए बच्चों का खेल है और यदि हमें उस दिव्य शक्ति में आस्था है जो अपनी सृष्टि के क्षुद्रतम जीव की भी भाग्यविधात्री है तो मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि सभी कुछ संभव है; और इसी अंतिम आशा में, मैं जीता तथा अपना समय गुजारता हूं | और उस सर्वशक्तिमान की इच्छा का पालन करने का प्रयास करता हूं |

....यदि हमें इस संसार में सच्ची शांति प्राप्त करनी है और युद्ध के खिलाफ सच्ची लड़ाई लड़नी है तो हमें शुरुआत बच्चों से करनी होगी; हमारे बच्चे अगर अपने सहज भोले-भाले रूप में बड़े हो सकें तो न हमें संघर्ष करना पड़ेगा और न व्यर्थ के प्रस्ताव पास करने पड़ेंगे | तब हम एक प्रेम से दूसरे प्रेम और एक शांति से दूसरी शांति तक बढ़ते चले जाएंगे, यहां तक कि विश्व में सर्वत्र शांति और प्रेम का साम्राज्य छा जाएगा जिसके लिए आज सारी दुनिया तरस रही है | *(यंग, 19-11-1931, पृ. 361)*

आत्मा का बल

जीवन में प्रतिक्षण मुझे यह महसूस होता है कि ईश्वर मेरी परीक्षा ले रहा है | *(ए. पृ. 326)*

यदि मैं पशु-बल के स्थान पर आत्मा के बल को, जो प्रेम के बल का ही दूसरा नाम है, लोकप्रिय बना सकूं तो मैं जानता हूं कि मैं आपको एक ऐसा भारत दे सकता हूं जो सारी दुनिया को अपने प्रति बुरे-से-बुरा रवैया अपनाकर देखने के लिए चुनौती दे सकता है | इसलिए मैं अपने जीवन में पीड़ा-भोग के इस शाश्वत नियम की अभिव्यक्ति

करने के लिए निरंतर कठोर प्रयास करूंगा और जो इसे अंगीकार करने के लिए तैयार होंगे, उनके समक्ष इसे प्रस्तुत करूंगा | यदि मैं किसी अन्य कार्यकलाप में भाग लेता हूं तो वह भी इस नियम की अनुपम श्रेष्ठता को प्रदर्शित करने के लिए ही है | *(वही, पृ. 331)*

तलवार को एक तरफ फेंक देने के बाद, अब मेरे पास अपने विरोधियों को पेश करने के लिए प्रेम के प्याले के अलावा और कुछ नहीं है | यह प्याला पेश करके ही मैं उन्हें अपने निकट लाने की आशा करता हूं | मैं आदमी-आदमी के बीच स्थायी शत्रुता की बात नहीं सोच सकता, और पुनर्जन्म के सिद्धांत में विश्वास करने के कारण मैं इस आशा में जी रहा हूं कि यदि इस जन्म में नहीं तो किसी अगले जन्म में मैं समूची मानवता को मैत्री के पाश में बांध सकूंगा | *(यंग, 2-4-1931, पृ. 54)*

प्रेम का लक्ष्य

मुझे पूरी विनम्रता के साथ इस सच्चाई को मानना होगा कि मैं अपने अस्तित्व के प्रत्येक तंतु में प्रेम की झलक पैदा करने का प्रयास करता हूं, भले ही मैं इसे कितने ही तटस्थ भाव से करूं | मैं अपने सिरजनहार की, जो सत्य स्वरूप है, उपस्थिति का अनुभव करने के लिए अधीर हूं, और मैंने अपने जीवन के आरंभिक वर्षों में ही जान लिया था कि अगर मुझे सत्य को पाना है तो मुझे अपनी जान की परवाह न करते हुए प्रेम के नियम का पालन करना चाहिए | प्रभु-कृपा से जब मुझे संतान की प्राप्ति हुई तो मैंने पाया कि प्रेम के नियम को छोटे बच्चों के द्वारा सबसे अच्छी तरह समझा और सीखा जा सकता है | मैं निर्विवाद रूप से इसमें विश्वास करता हूं कि कोई बच्चा बदमाश की वृत्ति लेकर पैदा नहीं होता | यदि बच्चे के जन्म से पहले और उसके उपरांत, जब वह बढ़ रहा हो, उसके माता-पिता उसके साथ ठीक से व्यवहार करें तो यह सुविदित तथ्य है कि बच्चा सहज रूप से सत्य के नियम और प्रेम के नियम का पालन करने लगेगा | अपने जीवन के आरंभिक वर्षों में जब मैंने यह सबक सीखा तो जीवन में धीरे-धीरे किंतु एक निश्चित परिवर्तन आने लगा |

मैं आपके समक्ष उन कई अवस्थाओं का वर्णन करना नहीं चाहता जिनसे होकर मेरा यह झंझावातपूर्ण जीवन गुजरा है, लेकिन मैं पूरी सच्चाई और विनम्रता के साथ इस तथ्य का साक्षी अवश्य हूं कि मैंने अपने जीवन में जिस सीमा तक मनसा, वाचा, कर्मणा प्रेम का प्रतिनिधित्व किया है, उस सीमा तक मुझे अद्‌भुत शांति की प्राप्ति हुई है | मेरे बहुत-से मित्र मेरे जीवन में विद्यमान शांति को देखकर चकरा गए हैं, उन्हें मुझसे ईर्ष्या भी हुई है और उन्होंने मुझसे मेरी इस अमूल्य संपत्ति का कारण पूछा है | मैं उनका समाधान करने के लिए इसके अलावा और कुछ नहीं कह सका हूं कि यदि उन्हें मेरे जीवन में शांति के दर्शन होते हैं तो उसका एकमात्र कारण यही है कि मैंने मानव अस्तित्व के सर्वोच्च नियम – प्रेम के नियम – का पालन करने का प्रयास किया है |[29] *(यंग, 19-11-1931, पृ. 361)*

मेरा प्रयास है कि मेरे जीवन का हर क्षण अहिंसा अर्थात प्रेम द्वारा निर्देशित हो | मैं मूलत: शांतिप्रेमी हूं | मैं मनमुटाव पैदा करना नहीं चाहता | मैं अपने विरोधियों को यह आश्वासन देता हूं कि मैं ऐसा कोई काम नहीं करूंगा जिसे मैं सत्य और प्रेम के विरुद्ध समझता हूं | *(हरि, 12-1-1934, पृ. 8)*

किसी पर अधिकार जमाने के लिए मेरे पास प्रेम के सिवा और कोई अस्त्र नहीं है | *(बांक्रा, 9-9-1942)*

मेरा लक्ष्य विश्व-मैत्री है और मैं गलत काम का अधिकतम विरोध करते हुए भी अधिकतम प्रेम का परिचय दे सकता हूं | *(यंग, 10-3-1920, पृ. 5)*

मुझे अपने लक्ष्य में इतनी अडिग आस्था है कि यदि यह सफल हो गया – जो जरूर होगा, इसे सफल होना ही है – तो इतिहास इसे एक ऐसे आंदोलन के रूप में दर्ज करेगा जिसका उद्देश्य दुनिया के सभी लोगों को एक सूत्र में बांधना है जिनमें एक-दूसरे के प्रति आक्रामक भाव नहीं होगा, बल्कि वे स्वयं को एक समष्टि का अंश मानकर चलेंगे | *(हरि, 26-1-1934, पृ. 8)*

89. समस्त जीवन एक है

सबके साथ बंधुता

मेरा नीतिशास्त्र मुझे न केवल इस बात का दावा करने की अनुमति देता है, अपितु आदेश देता है कि मैं बंदर ही नहीं बल्कि घोड़े और भेड़, शेर और तेंदुए, सांप और बिच्छू तक को अपना बंधु मानूं | इन प्राणियों के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वे भी मेरे प्रति ऐसा ही भाव रखें |

मेरे जीवन को शासित करने वाला यह कठोर नीतिशास्त्र – और मेरी धारणा है कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष पर इसी का शासन होना चाहिए – मेरे ऊपर यह इकतरफा दायित्व आरोपित करता है | यह आरोपण इसलिए है कि केवल मनुष्य की सृष्टि ने ही ईश्वर को साकार किया है | इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि हममें से कुछ लोग हमारी इस विशिष्ट हैसियत को नहीं पहचानते; हां, यह अवश्य है कि उस स्थिति में हमें अपनी विशिष्ट हैसियत का लाभ नहीं मिल पाता | यह उसी प्रकार है जैसे कि भेड़ों के बीच पले शेर को अपनी हैसियत का पता न हो, इसलिए उसे उसका लाभ न मिले; लेकिन वह हैसियत तो उसकी है और जिस क्षण वह उसे पहचान जाता है, उसी क्षण वह भेड़ों पर अपना अधिकार जमाने लगता है | लेकिन शेर का छद्मवेश धारण करने से किसी भेड़ को कभी शेर का दर्जा प्राप्त नहीं हो सकता |

इस प्रस्थापना को सिद्ध करने के लिए कि मनुष्य की सृष्टि में ईश्वर साकार हुआ है, यह दिखाना जरूरी नहीं है कि सभी मनुष्यों के व्यक्तित्व में उसके दर्शन होते हैं | अगर एक आदमी के व्यक्तित्व में भी उसके दर्शन होते हैं तो वह पर्याप्त है | और, इस बात से कौन इंकार कर सकता है कि मानव जाति में जन्मे महान उपदेशकों में साक्षात ईश्वर के दर्शन हुए हैं ? *(यंग, 8-7-1926, पृ. 244)*

मेरा विश्वास है कि मैं अहिंसा से ओतप्रोत हूं | अहिंसा और सत्य मेरे दो फेफड़े हैं | मैं उनके बिना जीवित नहीं रह सकता | लेकिन मैं प्रतिक्षण, अधिकाधिक स्पष्टता के साथ, अहिंसा की असीम शक्ति और मानव की क्षुद्रता का अनुभव कर रहा हूं |

अपूर्ण अहिंसा

बनवासी भी अपनी असीम करुणा के बावजूद, हिंसा से पूर्णतया मुक्त नहीं माना जा सकता | हर श्वास के साथ वह कुछ-न-कुछ हिंसा करता ही है | शरीर स्वयं एक बूचड़खाना है, इसलिए मोक्ष और परमानंद देह से पूर्णतया मुक्त होने पर ही मिल सकते हैं | इसीलिए मोक्ष के आनंद के अतिरिक्त अन्य सभी सुख क्षणिक एवं अपूर्ण हैं | यही कारण है कि हमें अपने दैनंदिन जीवन में हिंसा के अनेक कड़वे घूंट पीने पड़ते हैं | *(यंग, 21-10-1926, पृ. 364)*

किसी-न-किसी तरह की हिंसा के सहारे ही शरीर में प्राण टिके हैं | इसीलिए, उच्चतम धर्म को एक नकारात्मक शब्द – अहिंसा – देकर परिभाषित किया गया है | संसार विनाश की एक शृंखला में बंधा है | दूसरे शब्दों में, शरीर में प्राण की रक्षा के लिए हिंसा अनिवार्य है | तभी तो अहिंसा का पुजारी सदा देह के बंधन से पूर्णत: मुक्त होने की प्रार्थना करता है | *(यंग, 4-10-1928, पृ. 331)*

मुझे इस बात का दुखद बोध है कि शरीर में प्राणों को बनाए रखने की मेरी कामना मुझसे निरंतर हिंसा करा रही है | इसीलिए मैं अपने इस भौतिक शरीर के प्रति अधिकाधिक उदासीन होता जाता हूं | उदाहरण के लिए, मुझे पता है कि श्वास लेने की क्रिया में मैं हवा में तैरने वाले असंख्य जीवाणुओं का संहार करता हूं | किंतु मैं श्वास लेना बंद नहीं करता | सब्जियों को खाने में हिंसा है, पर मैं उन्हें नहीं छोड़ पाता |

कीटाणुनाशक पदार्थों के इस्तेमाल में भी हिंसा है, लेकिन मैं मच्छर वगैरा से अपनी रक्षा करने के लिए मिट्टी के तेल आदि कीटाणुनाशकों का इस्तेमाल करने से अपने को नहीं रोक पाता | आश्रम में जब सांपों को पकड़ना या भगाना संभव नहीं हो पाता तो उन्हें मारना पड़ता है – यह हिंसा भी मैं सहता हूं | आश्रम में बैलों को हांकने के लिए डंडे के इस्तेमाल को भी मुझे बरदाश्त करना पड़ता है |

इसलिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मुझसे जो हिंसा होती है, उसका कोई अंत नहीं है....यदि इस विनम्र अपराध-स्वीकरण के फलस्वरूप मेरे मित्र मेरा त्याग करना चाहें तो मुझे दुख तो अवश्य होगा लेकिन फिर भी, मैं अहिंसा पर आचरण करने में मेरी जो अपूर्णताएं हैं, उन्हें छिपाने का प्रयास नहीं करूंगा | मेरा दावा तो बस इतना है कि मैं अहिंसा जैसे महान आदर्शों के निहितार्थों को समझने और मनसा, वाचा, कर्मणा उन्हें अपने जीवन में उतारने का निरंतर प्रयास कर रहा हूं जिसमें मेरी समझ में मुझे थोड़ी-बहुत सफलता भी मिली है | लेकिन मैं जानता हूं कि मुझे इस दिशा में अभी बड़ा लंबा रास्ता तय करना है | *(यंग, 1-11-1928, पृ. 361)*

जीवच्छेदन

मैं वैज्ञानिक प्रगति के विरुद्ध नहीं हूं | बल्कि पश्चिम की वैज्ञानिक भावना को मैं प्रशंसा की दृष्टि से देखता हूं; इस प्रशंसा में अगर कोई हिचक है तो सिर्फ यह कि पश्चिम का वैज्ञानिक ईश्वर की निम्नतर सृष्टि की तनिक भी चिंता नहीं करता | मैं अपनी आत्मा की पूरी शक्ति के साथ जीवच्छेदन से घृणा करता हूं | मैं विज्ञान और तथाकथित मानवता के नाम पर की जाने वाली निर्दोष जीवों की अक्षम्य हत्या को घृणा की दृष्टि से देखता हूं और निर्दोष रक्त से रंजित तमाम वैज्ञानिक खोजों को तनिक भी महत्वपूर्ण नहीं मानता |

यदि रक्त-परिसंचरण के सिद्धांत की खोज जीवच्छेदन के बिना संभव नहीं थी तो मानव जाति को इसे जाने बिना ही रह जाना चाहिए था | मैं स्पष्टत: वह दिन निकट आता देख रहा हूं जब पश्चिम का ईमानदार वैज्ञानिक ज्ञानार्जन की वर्तमान विधियों की कुछ मर्यादाएं बांध देगा |

निम्नतर प्राणी

भावी तुलनाओं में केवल मानव परिवार को ही नहीं, बल्कि समस्त प्राणिजगत को दृष्टि में रखा जाएगा | और, जिस प्रकार हम धीरे-धीरे किंतु निश्चित रूप से इस फैसले पर आ रहे हैं कि यह समझना गलत है कि हिंदू अपनी संख्या के पांचवें हिस्से को निकृष्ट मानने पर भी उन्नति कर सकते हैं या पश्चिम के देश पूर्वी और अफ्रीकी राष्ट्रों को शोषित और पददलित करके उसके सहारे जी तथा उन्नति कर सकते हैं, उसी तरह हमें समय आने पर यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि सृष्टि के निम्नतर प्राणियों पर हमारा प्रभुत्व इसलिए नहीं है कि हम उन्हें मार डालें, बल्कि वह हमारे और उनके पारस्परिक हित-संवर्धन के लिए है | मैं यह निश्चित रूप से कह सकता हूं कि ईश्वर ने उन प्राणियों को भी वैसी ही आत्मा दी है जैसी कि मुझे | *(यंग, 17-12-1925, पृ. 440)*

ऐसा प्रतीत होता है कि सभ्यता की और अधिक प्रगति के साथ-साथ मनुष्य का पशु पर प्रभुत्व तो बढ़ेगा, पर उनका उपयोग करने की विधि अधिकाधिक मानवीय होती जाएगी | मानवतावादियों के तीन संप्रदाय हैं | एक संप्रदाय पशु की शक्ति के स्थान पर किसी अन्य शक्ति के उपयोग का पक्षधर है | दूसरा संप्रदाय पशु को मनुष्य का साथी मानने में विश्वास करता है और उनका उस रूप में इस्तेमाल करने का हिमायती है जो भाईचारे की भावना के अनुकूल हो | तीसरा संप्रदाय निम्नतर पशुओं का मनुष्य की स्वार्थ-सिद्धि के लिए इस्तेमाल करना नहीं चाहता, बल्कि अपनी और इन पशुओं की शक्ति का उस सीमा तक इस्तेमाल करना चाहता है जहां तक पशु समझदारी और स्वेच्छा से ऐसा करने दें | मैं इस तीसरे संप्रदाय का सदस्य हूं | *(हरि, 5-5-1946, पृ. 121)*

“दया-मृत्यु”

मैं एक क्षण के लिए भी किसी कुत्ते या अन्य जीव को धीरे-धीरे मृत्यु के मुख में जाने की यंत्रणा को बेबसी से झेलते हुए नहीं देख सकता | ऐसी ही परिस्थितियों के शिकार मनुष्य को मैं इसलिए नहीं मारता कि उसे राहत पहुंचाने के उपाय मौजूद हैं, किंतु कुत्ते के लिए कोई उपचार उपलब्ध नहीं है इसलिए मुझे उसे मार देना चाहिए | अगर मेरे बच्चे को रेबीज हो जाए और उसे यंत्रणा से राहत दिलाने का कोई कारगर उपचार उपलब्ध न हो तो मुझे उसे मार देना अपना कर्तव्य मानना चाहिए |

भाग्यवाद की अपनी सीमाएं हैं | हम सभी उपाय कर लेने के बाद ही चीज़ों को भाग्य के ऊपर छोड़ते हैं | यंत्रणाग्रस्त बालक के कष्ट को दूर करने के उपायों में से एक तथा अंतिम उपाय उसके जीवन को समाप्त कर देना है | *(यंग, 18-11-1926, पृ. 396)*

मैं जिस प्रकार एक गाय की प्राणरक्षा के लिए किसी मनुष्य की जान नहीं लूंगा उसी प्रकार एक मनुष्य की प्राणरक्षा के लिए भी किसी गाय की जान नहीं लूंगा, भले ही उस मनुष्य का जीवन कितना ही मूल्यवान हो | *(यंग, 18-5-1921, पृ. 156)*

मेरी समझ में एक मेमने का जीवन एक मनुष्य के जीवन से कम मूल्यवान नहीं है | किसी मानव शरीर की खातिर मेमने की जान लेने में मुझे संकोच होना चाहिए | मेरी धारणा है कि जो प्राणी जितना ही अधिक लाचार है उतना ही अधिक वह मनुष्य द्वारा मनुष्य की क्रूरता से संरक्षण पाने का अधिकारी है | *(ए, पृ. 172)*

विषैले पशुओं की समस्या

मैं एक सांप की भी हत्या करके जीना नहीं चाहता | उसकी जान लेने के बजाए मुझे इसके लिए प्रस्तुत रहना चाहिए कि वह मुझे काटकर मेरी जान ले ले | लेकिन अगर ईश्वर मेरी इतनी कठिन परीक्षा लेना चाहे और सांप को मुझ पर आक्रमण करने दे तो संभावना इसी बात की है कि मैं मरने का साहस नहीं जुटा पाऊंगा और इस नाशवान शरीर की रक्षा करने के लिए मेरे भीतर का पशु जाग उठेगा और वह सांप को मारने की कोशिश करेगा|

मैं मानता हूं कि अभी तक मेरा विश्वास मुझ में इतना मूर्त नहीं हो पाया है कि मैं दृढ़तापूर्वक यह कह सकूं कि मैं सांपों के भय से मुक्त हो गया हूं और अब उनके साथ मनचाही मैत्री कर सकता हूं | मेरा यह अडिग विश्वास है कि सांप, बाघ आदि पशु मनुष्य में पलने वाले विषैले, कुटिल और बुरे विचारों का ईश्वर द्वारा दिया गया प्रत्युत्तर है....

मेरा विश्वास है कि सभी जीवधारियों में प्राण एक ही है | विचार भिन्न-भिन्न स्वरूप ग्रहण करते हैं | बाघों और सांपों की हमारे साथ बंधुता है | वे हमें इस बात की चेतावनी देते हैं कि हम बुरे, कुटिल और कामुक विचारों को अपने अंदर पलने न दें | यदि मैं पृथ्वी से विषैले पशुओं और रेंगने वाले जीवों का नामोनिशान मिटा देना चाहता हूं तो मुझे पहले अपने तमाम विषैले विचारों को नष्ट कर देना चाहिए | यदि मैं अपने अधीर अज्ञान की वजह से और शरीर को अधिकाधिक समय तक जीवित रखने की कामना के कारण तथाकथित विषैले पशुओं और रेंगने वाले जीवों को मारने का प्रयास करता हूं तो इसका अर्थ है कि मैं अपने कुविचारों को मारना नहीं चाहता | यदि अनिष्टकारी पशुओं से अपनी रक्षा करने की कोशिश न करने के कारण मेरी मृत्यु हो जाती है तो मेरा पुनर्जन्म एक बेहतर और अधिक पूर्ण मनुष्य के रूप में होगा | यदि मुझे इस बात का विश्वास है तो फिर मुझे अपने सहचर सांप की हत्या क्यों करनी चाहिए ? *(यंग, 14-4-1927, पृ. 121)*

....हम मौत के साए में रहते हुए सत्य तक पहुंचने का प्रयास कर रहे हैं | शायद उचित यही है कि हमें जीवन में हर क्षण खतरों का सामना करना पड़े, क्योंकि खतरों की जानकारी तथा अपने अस्तित्व की अनिश्चितता का बोध होने के बावजूद, हम अहंकार में इतने चूर हैं कि संपूर्ण सृष्टि के कर्ता की ओर अभिमुख नहीं होते |

....मेरी विचारशक्ति किसी भी प्रकार के जीव का नाश करने पर विद्रोह करती है | किंतु मेरा हृदय इतना मजबूत नहीं है कि उन प्राणियों से मित्रता स्थापित कर सके जिन्हें हम अपने अनुभव के आधार पर, विनाशकारी मानते हैं

| दृढ़ विश्वास की भाषा, जो वास्तविक अनुभव से उत्पन्न होती है, मुझे जवाब दे जाती है और तब तक देती रहेगी जब तक मैं इतना कायर बना रहूंगा कि सांपों, बाघों आदि से डरता रहूं | *(यंग, 17-7-1927, पृ. 222)*

मुझे पक्का विश्वास है कि मनुष्य की जरा-जरा-सी बात पर दूसरे मनुष्य की जान ले लेने की आदत ने उसके विवेक पर पर्दा डाल दिया है और वह अन्य प्राणियों के जीवन के साथ निस्संकोच खिलवाड़ करता रहता है; वह ऐसा करते हुए कांप उठेगा अगर उसे सचमुच इस बात का यकीन हो जाए कि ईश्वर प्रेम और दया का ईश्वर है | जो भी हो, भले ही मैं बाघों, सांपों, पिस्सुओं, मच्छरों आदि को मृत्यु के भय के कारण मार डालूं, पर मैं निरंतर प्रभु से उस आलोक के लिए प्रार्थना करता रहता हूं जिसके मिलने पर मृत्यु का भय पूर्णरूपेण समाप्त हो जाएगा और किसी का जीवन लेने के विचार का सर्वथा त्याग करके मैं बेहतर रास्ते को जान सकूंगा, क्योंकि मेरे ऊपर दया-भाव रखने वाली शक्ति ही मुझे औरों पर दया करना सिखाएगी | *(हरि, 9-1-1937, पृ. 382)*

उच्चतम आदर्श

मेरी अहिंसा का अर्थ केवल इतना ही नहीं है कि मैं सभी जीवधारियों के प्रति दया-भाव रखूं | जैन धर्म में अवमानवीय प्राणियों को पवित्र मानने पर जो बल दिया जाता है वह ठीक है, लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं हो सकता कि हम उन प्राणियों को मानव जीवन से भी अधिक दया का पात्र मानें | अवमानवीय प्राणियों की पवित्रता के बारे में लिखते समय मैं यह मानकर चलता हूं कि मानव जीवन को तो हम पवित्र मानते ही हैं | वास्तव में, अवमानवीय प्राणियों पर जरूरत से ज़्यादा बल दे दिया गया है और आचरण के दौरान उसमें और भी विकृति आ गई है | उदाहरण के लिए, अनेक व्यक्ति चींटियों को खिलाकर ही पूर्ण संतुष्टि का अनुभव करते हैं | ऐसा लगता है कि जीवदया का यह सिद्धांत एक निर्जीव हठधर्मिता बनकर रह गया है | धर्म के नाम पर पाखंड और विकृति खूब चल रहे हैं |

अहिंसा उच्चतम आदर्श है | यह बहादुरों का हथियार है, कायरों का कदापि नहीं | औरों द्वारा की गई जीवहत्या से लाभ उठाना और यह समझना कि हम बड़े धार्मिक और अहिंसक हैं, केवल आत्मप्रवंचना है | *(हरि, 9-6-1946, पृ. 172)*

हत्या न करने का सिद्धांत

मेरी अहिंसा मेरी अपनी है | मैं जानवरों की हत्या न करने के सिद्धांत को पूरी तरह स्वीकार नहीं कर सकता | जो जानवर नरभक्षी हैं या मनुष्य को चोट पहुंचाते हैं, उनके जीवन की रक्षा करने का कोई आग्रह मेरे मन में नहीं है | मैं ऐसे जानवरों की वंशवृद्धि में सहायक होना गलत मानता हूं | इसलिए मैं चींटियों, बंदरों और कुत्तों को खिलाने से इंकार करता हूं | मैं इन जानवरों की प्राणरक्षा के लिए किसी मनुष्य के जीवन की बलि कभी नहीं दूंगा |

इस प्रकार विचार करते हुए मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि जहां-जहां बंदर मनुष्य के लिए संकट बन गए हैं, वहां उन्हें समाप्त कर देना क्षम्य है | बल्कि यह एक कर्तव्य है | प्रश्न उठ सकता है कि यही नियम मनुष्यों पर भी लागू क्यों नहीं किया जाना चाहिए ? यह इसलिए लागू नहीं किया जा सकता कि मनुष्य कितने भी बुरे हों, वे मनुष्य हैं | ईश्वर ने मनुष्य को विवके की शक्ति दी है जो पशुओं को नहीं दी | *(हरि, 5-5-1946, पृ. 123)*

सच्ची अहिंसा की मांग है कि अगर हमें बंदरों आदि के उत्पात से समाज की और अपनी रक्षा करनी है तो हमें उनकी हत्या करनी ही होगी | सामान्य नियम यह है कि हमें जहां तक तनिक भी संभव हो वहां तक हिंसा से बचना चाहिए | समाज की अहिंसा व्यक्ति की अहिंसा से अनिवार्यत: भिन्न है | समाज से दूर रहने वाला व्यक्ति सभी एहतियातों को ताक पर रख सकता है, पर समाज ऐसा नहीं कर सकता | *(हरि, 7-7-1946, पृ. 213)*

90. मैं सांस्कृतिक अलगाव नहीं चाहता

मैं नहीं चाहता कि मेरा घर चारों ओर से दीवारों से घिरा हो और उसकी सभी खिड़कियां बंद हों | मैं चाहता हूं कि सभी देशों की संस्कृतियों की सुवासित वायु मेरे घर के चारों ओर बहे | लेकिन मैं ऐसी किसी वायु से अपने पांव नहीं उखड़ने दूंगा | मुझे औरों के घर में दस्तंदाज, भिखारी या गुलाम बनकर रहने से इंकार है | *(यंग, 1-6-1921, पृ. 170)*

यह बात मेरे मन में दूर-दूर तक नहीं है कि हम एकांतिक बन जाएं या अपने चारों ओर अवरोध खड़े कर लें | लेकिन मैं सादर किंतु बलपूर्वक यह कहना चाहता हूं कि औरों की संस्कृति की सराहना का प्रश्न अपनी संस्कृति की सराहना और उसके आत्मसात्करण के बाद उठना उचित है, उससे पहले कदापि नहीं |

मेरा दृढ़ मत है कि जो बहुमूल्य रत्न हमारी संस्कृति के पास हैं, वे किसी अन्य संस्कृति के पास नहीं हैं | पर हमें उनका ज्ञान ही नहीं है; हमें अपनी संस्कृति के अध्ययन का विरोध करने और उसका अवमूल्यन करने की पट्टी पढ़ाई गई है | परिणाम यह है कि हमने अपनी संस्कृति को जीना लगभग छोड़ ही दिया है | आचरण के बिना कोरा शास्त्रीय ज्ञान एक संलेपित शव के समान होता है जो देखने में भले ही सुंदर लगे, पर वह प्रेरणा देने या उदात्तीकरण करने वाला सिद्ध नहीं हो सकता |

मेरा धर्म मुझे अन्य संस्कृतियों का अनादर अथवा उनकी उपेक्षा करने से बरजता है लेकिन साथ ही, वह मुझसे अपनी संस्कृति को आत्मसात करने और उसे जीने का आग्रह भी करता है, क्योंकि ऐसा न करना हमारे लिए निश्चित रूप से आत्मघाती होगा | *(यंग, 1-9-1921, पृ. 277)*

भारतीय संस्कृति एक संश्लेषण

भारतीय संस्कृति उन विभिन्न संस्कृतियों का संश्लेषण है जो इस देश में रच-बस गई हैं और जिन्होंने भारतीय जीवन को प्रभावित किया है तथा स्वयं इस धरती की आत्मा से प्रभावित हुई हैं | स्वभावतया इस संश्लेषण का स्वरूप स्वदेशी है जिसमें हर संस्कृति के लिए उचित स्थान सुनिश्चित है.... *(यंग, 17-11-1920, पृ. 6)*

भारतीय सभ्यता भिन्न-भिन्न धर्मों का प्रतिनिधित्व करने वाली और अपने-अपने भौगोलिक तथा अन्य पर्यावरणों से प्रभावित संस्कृतियों का संगम है | तदनुसार इस्लामी संस्कृति अरब, तुर्की, मिस्र और भारत में एक जैसी नहीं है, लेकिन वह स्वयं इन देशों की परिस्थितियों से प्रभावित हुई है | अत: भारतीय संस्कृति भारतीय है | यह न पूरी तरह हिंदू है, न इस्लामी और न कोई अन्य | यह इन सबका मिला-जुला रूप है और मूलत: पूर्वी है | जो व्यक्ति स्वयं को भारतीय कहता है, उसका यह कर्तव्य है कि इस संस्कृति की कद्र करे, इसका न्यासी बने और यदि इस पर कोई आंच आए तो उसका प्रतिकार करे | *(यंग, 30-4-1931, पृ. 88)*

हमारे युग की भारतीय संस्कृति अभी निर्माणाधीन है | हममें से अनेक लोग उन संस्कृतियों का, जिनके बीच आज टकराव की स्थिति दिखाई दे रही है, एक मिश्रण तैयार करने का प्रयास कर रहे हैं | जो संस्कृति एकांतिक रहने का प्रयास करेगी, वह जीवित नहीं रह सकेगी |

आज भारत में विशुद्ध आर्य संस्कृति जैसी कोई चीज़ विद्यमान नहीं है | आर्य लोग भारत के ही मूल निवासी थे या वे यहां जबर्दस्ती घुस आए, यह जानने में मेरी कोई विशेष रूचि नहीं है | मेरी रूचि तो इस तथ्य में है कि मेरे बहुत पहले के पूर्वज पूरी स्वतंत्रता के साथ एक-दूसरे से घुल-मिल गए थे और हमारी वर्तमान पीढ़ी उसी मिश्रण का परिणाम है |

यह भविष्य ही बताएगा कि क्या हम अपनी जन्मभूमि का और उस छोटी-सी पृथ्वी का, जिसकी बदौलत हम जीवित हैं, कोई भला कर रहे हैं, अथवा उसके ऊपर भार हैं ? *(हरि, 9-5-1936, पृ. 100-01)*

या तो हम विभिन्न धर्मावलंबियों द्वारा मित्रता के बंधन में बंधकर साथ रहते हुए संस्कृति का जो सुंदर मिश्रण तैयार किया गया है, उसे बनाए रखने और सुदृढ़ करने का प्रयास करेंगे या उस दिन की खोज में लग जाएंगे जब हिंदुस्तान में केवल एक धर्म था और अपने कदम उसी एकांतिक संस्कृति की ओर वापिस मोड़ ले जाएंगे |

यह भी संभव है कि हम ऐसी किसी ऐतिहासिक तिथि की खोज में सफल ही न हो पाएं और अगर हो भी जाएं और अपने कदम वापिस मोड़ लें तो अपनी संस्कृति को किसी कुरूप युग की ओर ढकेल दें | यदि ऐसा हुआ तो दुनिया हमें कोसेगी, जो उचित ही होगा | *(हरि, 2-11-1947, पृ. 392)*

पाश्चात्य संस्कृति

जहां तक मेरा प्रश्न है, यद्यपि मैंने अपने ऊपर पाश्चात्य संस्कृति के ऋण को खुलकर स्वीकार किया है, पर मैं यह कह सकता हूं कि इस राष्ट्र की जो भी सेवा मुझसे बन पड़ी है वह केवल इसलिए कि मैंने प्राच्य संस्कृति का दामन पकड़े रहने की भरसक कोशिश की है | मैं अगर अंग्रेजियत को अपनाकर एक विराष्ट्रीय व्यक्ति बन गया होता और भारत की आम जनता के बारे में कुछ न जानता और उनकी चिंता ही न करता तथा उनके तौर-तरीकों, आदतों, विचारों और आकांक्षाओं को तिरस्कार की दृष्टि से देखता तो मैं उनके लिए बिलकुल बेकार साबित हुआ होता | *(यंग, 5-7-1928, पृ. 224)*

यूरोपीय सभ्यता निस्संदेह यूरोपवासियों के अनुकूल है, लेकिन हम यदि उसके अनुकरण का प्रयास करेंगे तो भारत बर्बाद हो जाएगा | कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि उसमें जो कुछ अच्छा और अंगीकार करने योग्य है, हम उसे भी न अपनाएं; इसका अर्थ यह भी नहीं है कि यूरोपीय सभ्यता में यदि कोई बुराइयां पैदा हो गई हों तो उन्हें निकालना यूरोपवासियों के लिए लाजमी नहीं है |

भौतिक सुखों के पीछे लगातार दौड़ना और उनमें अंधाधुंध वृद्धि करना ऐसी ही एक बुराई है; और मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि यूरोपवासी जिन सुखों के गुलाम हुए जा रहे हैं, अगर उनके भार तले दबकर नष्ट हो जाना नहीं चाहते तो उन्हें अपने दृष्टिकोण में बदलाव लाना होगा | हो सकता है कि मेरी बात गलत हो, लेकिन यह मैं जानता हूं कि अगर भारत ने इस स्वर्णमृग के पीछे दौड़ना शुरू कर दिया तो वह निश्चित रूप से मौत के मुंह में चला जाएगा|

हमें पाश्चात्य दार्शनिक के 'सादा जीवन उच्च विचार' वाले आदर्श वाक्य को अपने हृदय-पटल पर अंकित कर लेना चाहिए |

आज यह स्पष्ट हो चुका है कि हम लाखों-करोड़ों लोगों को उच्च स्तर का जीवन उपलब्ध नहीं करा सकते और हम मुट्ठी भर लोग जो सर्वसाधारण के हित की बात सोचने का दावा करते हैं, उच्चतर जीवन-स्तर की खोज में तो कामयाब हो नहीं पाएंगे, उच्च विचार के आदर्श को भी खो बैठेंगे | *(यंग, 30-4-1931, पृ. 38)*

पश्चिम का सांस्कृतिक प्रभुत्व

मैं समझता हूं कि हमारे लिए हमारी संस्कृति की रक्षा का काम कोई दूसरा नहीं कर सकता | इसकी रक्षा हमें स्वयं करनी होगी और हम इसे अपनी मूर्खता के कारण नष्ट भी कर सकते हैं | *(हरि, 25-5-1947, पृ. 166)*

यद्यपि हमें राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त हो गई है, पर हम पश्चिम के सूक्ष्म प्रभुत्व से स्वतंत्र नहीं हो पाए हैं | मुझे राजनीतिज्ञों के उस संप्रदाय से कुछ नहीं कहना जो यह मानता है कि ज्ञान केवल पश्चिम से मिल सकता है | न मैं इस विश्वास को सही मानता हूं कि पश्चिम से हमें कोई अच्छी चीज़ नहीं मिली है | लेकिन मुझे भय है कि हम अभी तक इस मामले में किसी निर्णय पर नहीं पहुंच सके हैं |

मुझे आशा है कि यह दावा कोई नहीं करेगा कि चूंकि हमें विदेशी आधिपत्य से राजनीतिक स्वतंत्रता मिल गई है, अत: मात्र यही तथ्य हमें विदेशी भाषा और विदेशी विचारों के सूक्ष्मतर प्रभाव से भी स्वतंत्रता दिलाने के लिए पर्याप्त है | *(हरि, 2-11-1947, पृ. 392)*

एशिया एशियावासियों के लिए

यदि यह सिद्धांत कि 'एशिया एशियावासियों के लिए है' किसी यूरोप-विरोधी संगुट का बोधक है तो मैं इसका पक्षधर नहीं हूं | यदि हम एशिया को कूपमंडूक ही नहीं रहने देना चाहते तो हम 'एशिया एशियावासियों के लिए' का नारा कैसे लगा सकते हैं ? लेकिन एशिया का काम कूपमंडूक रहकर नहीं चल सकता | उसके पास विश्व को देने के लिए एक संदेश है, बशर्ते कि वह स्वयं उसके अनुसार आचरण करने के लिए तैयार हो | संपूर्ण एशिया पर जिसमें भारत, चीन, जापान, बर्मा, लंका और मलय राज्य सम्मिलित हैं, बौद्ध धर्म का प्रभाव है | मैंने बर्मा और

लंका के लोगों से कहा कि वे नाम के ही बौद्ध हैं; सच्चे बौद्ध तो भारतवासी हैं | चीन और जापान के लोगों से भी मैं यही कहूंगा | एशिया केवल एशियावासियों के लिए न रहकर समूची दुनिया के लिए हो, इसके लिए आवश्यक है कि एशिया बुद्ध के संदेश को फिर से समझे और उसे दुनिया को सुनाए | आज इस संदेश की सर्वत्र उपेक्षा हो रही है | मेरे पास....आपको देने के लिए एक ही संदेश है....कि आपको अपनी प्राचीन विरासत के प्रति निष्ठा बनाए रखनी चाहिए | बुद्ध का संदेश 2500 वर्ष पुराना है, लेकिन अभी तक उस पर सच्चाई के साथ आचरण नहीं किया गया है | लेकिन 2500 वर्ष होते भी क्या हैं ? ये कालचक्र के एक मनके के बराबर हैं | अहिंसा के फूल को, जो मुरझाता दिखाई दे रहा है, अभी पूरी तरह खिलना है | *(हरि, 24-12-1938, पृ. 404)*

मुझे आशा है कि....विभिन्न एशियाई देशों के सभी प्रतिनिधि केवल 'एक विश्व' के सपने को साकार करने के लिए भरसक प्रयास करेंगे | उन्हें इस आदर्श की प्राप्ति के लिए उपाय और साधन खोजने होंगे | यदि आप दृढ़ संकल्प से काम करेंगे तो इसमें कोई संदेह नहीं है कि हम इस सपने को अपनी पीढ़ी में ही सच कर दिखाएंगे....अगर दुनिया को एक नहीं होना है तो मैं इसमें रहना नहीं चाहूंगा | मैं निश्चित रूप से यह चाहता हूं कि यह सपना मेरे जीवनकाल में ही सच हो जाए | *(हरि, 20-4-1947, पृ. 109)*

सभी आंखें भारत की ओर लगी हैं, विशेषकर एशिया और अफ्रीका की....भारत ने अहिंसा के जरिए आज़ादी की लड़ाई लड़कर ब्रिटेन के ऊपर नैतिक विजय प्राप्त की है, इसलिए एशिया के देश उसकी ओर उपयुक्त मार्गदर्शन के लिए आशा की दृष्टि से देख रहे हैं | यह प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है कि वह इस आशा को न झुठलाए | यदि एशिया और अफ्रीका को भारत से सही मार्गदर्शन मिल गया तो दुनिया का नक्शा ही बदल जाएगा| *(हरि, 11-5-1947, पृ. 148)*

एक विश्व

ईश्वर ने विश्व की व्यवस्था इस तरह की है कि कोई व्यक्ति अपनी भलाई या बुराई को अपने तक सीमित नहीं रख सकता | संपूर्ण विश्व एक मानव शरीर की भांति है जिसके विभिन्न अंग है | एक अंग में पीड़ा होने पर उसकी अनुभूति पूरे शरीर को होती है | एक अंग में सड़न पैदा होने पर अनिवार्यत: संपूर्ण शरीर में विष फैल जाता है | *(हरि, 26-5-1946, पृ. 154)*

मनुष्य को हृदय से ईश्वर की संपूर्ण सृष्टि के कल्याण की कामना करनी चाहिए और यह प्रार्थना करनी चाहिए कि ईश्वर हमें उसे कार्यान्वित करने के लिए पर्याप्त शक्ति दे | सबके कल्याण की कामना में ही व्यक्ति का अपना कल्याण भी निहित है; जो व्यक्ति केवल अपने या अपने समुदाय के कल्याण की ही कामना करता है, वह स्वार्थी है और उसका भला कभी नहीं हो सकता | *(हरि, 27-10-1946, पृ. 375)*

यह भारत और पाकिस्तान, दोनों नये राज्यों के लिए संभव है कि वे....स्वाधीन विश्व राज्यों के एक परिवार की स्थापना को अपना ध्येय बनाएं जिसके साथ यह बात अनिवार्यत: जुड़ी हुई है कि इन राज्यों की अपनी-अपनी आंतरिक सेनाएं नहीं होंगी | मैं नहीं सोचता कि भारत अकारण दूसरे देशों के हितों के विरुद्ध जाने की नीति अपनाएगा और विश्व-शांति के लिए संकट सिद्ध होगा....

यदि भारत के प्रयासों से स्वतंत्र एवं स्वाधीन राज्यों का ऐसा विश्व परिसंघ अस्तित्व में आता है तो इस बात की आशा करना भी संभवत: उचित होगा कि संसार में ईश्वर के साम्राज्य की, जिसे रामराज्य भी कहा गया है, स्थापना हो सकेगी | *(हरि, 13-7-1947, पृ. 235)*

यूनेस्को

मुझे शैक्षिक और सांस्कृतिक गतिविधियों के जरिए शांति-स्थापना के यूनेस्को के प्रयासों में गहरी दिलचस्पी है | मैं इस बात को अच्छी तरह समझता हूं कि दुनिया के राष्ट्रों के बीच आज जो घोर शैक्षिक तथा सांस्कृतिक असमानताएं हैं, वे जब तक दूर नहीं होंगी तब तक सच्ची सुरक्षा और स्थायी शांति सुनिश्चित नहीं की जा सकती | उन कम भाग्यशाली देशों के दूरस्थ घरों में भी प्रकाश पहुंचाना चाहिए जो अपेक्षाकृत अंधकार में हैं और मैं समझता हूं कि इस दिशा में कदम उठाने की खास जिम्मेदारी उन राष्ट्रों की है जो आर्थिक और शैक्षिक दृष्टि से उन्नत हैं | *(हरि, 16-11-1947, पृ. 412-13)*

91. राष्ट्रभक्ति बनाम अंतर्राष्ट्रीयतावाद

भारतीय राष्ट्रीयता

मैं अपने देश की स्वतंत्रता इसलिए चाहता हूं ताकि दूसरे देश मेरे स्वतंत्र देश से कुछ सीख सकें और मेरे देश के संसाधनों का उपयोग मानव जाति के हित के लिए किया जा सके |

जिस प्रकार राष्ट्रप्रेम का मार्ग आज हमें सिखाता है कि व्यक्ति को परिवार के लिए प्राणोत्सर्ग कर देना चाहिए. परिवार को गांव के लिए मिट जाना चाहिए, गांव को जिले, जिले को प्रांत और प्रांत को देश के लिए अपनी बली दे देनी चाहिए, उसी प्रकार देश के लिए स्वतंत्र होना इसलिए आवश्यक है कि यदि आवश्यकता हो तो वह विश्व के हित के लिए स्वयं को न्यौछावर कर सके | अत: राष्ट्रीयता के प्रति मेरा प्रेम अथवा राष्ट्रीयता की मेरी धारणा यह है कि मेरा देश स्वतंत्र हो ताकि अगर आवश्यकता पड़े तो मानव जाति के अस्तित्व की रक्षा के लिए वह स्वयं को होम कर सके | इस धारणा में प्रजातीय घृणा का कोई स्थान नहीं है | यही हमारी राष्ट्रीयता की भावना होनी चाहिए| *(ग्राइंवि, पृ. 171)*

हमारी राष्ट्रीयता किन्हीं अन्य देशों के लिए संकट का कारण नहीं बन सकती, क्योंकि हम न किसी का शोषण करेंगे, न किसी को अपना शोषण करने देंगे | हम स्वराज के माध्यम से सारी दुनिया की सेवा करेंगे | *(यंग, 16-4-1931, पृ. 79)*

मेरे लिए राष्ट्रीयता और मानवता एक ही चीज़ है | मैं राष्ट्रभक्त इसलिए हूं कि मैं मानव और सहृदय हूं | मेरी राष्ट्रीयता एकांतिक नहीं है, मैं भारत की सेवा करने के लिए इंग्लैंड या जर्मनी को क्षति नहीं पहुंचाउंगा | मेरी जीवन-योजना में साम्राज्यवाद के लिए कोई स्थान नहीं है | राष्ट्रभक्त का नियम परिवार के मुखिया के नियम से भिन्न नहीं है | और जिस राष्ट्रभक्त में मानवतावाद के प्रति उत्साह कम है, वह उतना ही कम राष्ट्रभक्त भी माना जाएगा | निजी और राजनीतिक विधि के बीच कोई टकराव नहीं है | *(यंग, 16-3-1921, पृ. 81)*

जो व्यक्ति राष्ट्रवादी नहीं है, वह अंतर्राष्ट्रवादी नहीं हो सकता | अंतर्राष्ट्रवाद तभी संभव है जब राष्ट्रवाद अस्तित्व में आ जाए, अर्थात जब भिन्न-भिन्न देशों के लोग संगठित हो चुकें और वे एक व्यक्ति की तरह काम करने योग्य बन जाएं | राष्ट्रवाद बुरी चीज़ नहीं है, बुरी है संकुचित वृत्ति, स्वार्थपरता और एकांतिकता जो आधुनिक राष्ट्रों के विनाश के लिए उत्तरदायी है | इनमें से प्रत्येक राष्ट्र दूसरे की कीमत पर, उसे नष्ट करके, उन्नति करना चाहता है | भारतीय राष्ट्रवाद ने एक भिन्न मार्ग चुना है | यह समूची मानवता के हित तथा उसकी सेवा के लिए स्वयं को संगठित करना यानी पूर्ण आत्माभिव्यक्ति की स्थिति को प्राप्त करना चाहता है....चूंकि ईश्वर ने मेरा भाग्य भारत के लोगों के साथ बांध दिया है इसलिए यदि मैं उनकी सेवा न करता तो अपने सिरजनहार के साथ विश्वासघात करने का दोषी होता | यदि मैं भारतवासियों की सेवा न कर सका तो मैं मानवता की सेवा करने योग्य भी नहीं बन

पाऊंगा | और जब तक मैं अपने देश की सेवा करते समय किन्हीं अन्य राष्ट्रों को हानि नहीं पहुंचाता तब तक मैं समझता हूं कि मैं गलत रास्ते पर नहीं जा रहा | *(यंग, 18-6-1925, पृ. 211)*

भारत मानवता को समाविष्ट करता है

मैं समूची दुनिया की बात नहीं सोचता | मेरी राष्ट्रभक्ति में सामान्यतया सारी मानव जाति की भलाई समाविष्ट है | इस प्रकार, मेरी भारत-सेवा में मानवता की सेवा समाविष्ट है....भारत की मुक्ति की संपूर्ण योजना ही आंतरिक शक्ति के विकास पर आधारित है | यह आत्मशुद्धीकरण की योजना है | इसलिए, पश्चिम के लोग यदि भारत के आंदोलन में सहायता देना चाहें तो उसका सबसे अच्छा तरीका यह होगा कि वे कुछ विशेषज्ञों को, अलग से, इस आंदोलन के आंतरिक स्वरूप का अध्ययन करने के काम पर लगा दें | ये विशेषज्ञ खुले दिमाग से भारत आएं, उनके अंदर विनम्रता की भावना हो, जैसी कि प्रत्येक सत्यशोधक के अंदर होनी चाहिए....

मैं शब्दशक्ति – वह लिखित शब्दों की हो या मौखिक शब्दों की – की अपेक्षा विचार-शक्ति में अधिक विश्वास करता हूं | और मैं जिस आंदोलन का प्रतिनिधित्व कर रहा हूं, उसमें यदि जीवनी शक्ति है और उसे दैवी आशीर्वाद प्राप्त है तो वह संपूर्ण विश्व में व्याप्त हो जाएगा, भले ही मैं उसके भिन्न-भिन्न भागों में स्वयं न जा पाऊं....

यदि मैं बिना किसी अहंकार के तथा पूरी विनम्रता के साथ कह सकूं तो मेरा निवेदन है कि मेरा संदेश और मेरे तरीके सचमुच मूलत: सारी दुनिया के लिए हैं और मुझे यह देखकर बड़ा संतोष होता है कि बहुत बड़ी संख्या में पश्चिम के स्त्री-पुरुषों के हृदयों में इसकी अद्‌भुत अनुक्रिया हुई है, और ऐसे लोगों की संख्या दिनोंदिन बढ़ रही है| *(यंग, 17-9-1925, पृ. 320)*

अपनी सीमित क्षमताओं के कारण, जिनका मुझे दुखद बोध है, मैं समझता हूं कि मुझे अपने प्रयोगों को पृथ्वी के एक खंड तक ही सीमित रखना चाहिए | जो चीज़ एक खंड के लिए सही है वह संपूर्ण इकाई के लिए भी सही होनी चाहिए....मैं सारी दुनिया से सहायता लेने के लिए लालायित हूं | वह आ भी रहा है....लेकिन मैं जानता हूं कि इससे पहले कि यह एक प्रचंड प्रवाह के रूप में – जो हमें शुद्ध भी करेगा और स्फूर्ति भी देगा – हमारे पास आए, हमें स्वयं को इसके योग्य बनाना होगा | *(वही, पृ. 322)*

भाईचारे का लक्ष्य

मेरा लक्ष्य केवल भारतीयों के बीच भाईचारे की स्थापना नहीं है | मेरा लक्ष्य केवल भारत की स्वतंत्रता नहीं है, यद्यपि इसमें संदेह नहीं कि आज मेरा लगभग पूरा जीवन और पूरा समय इसी में लगा है | लेकिन भारत की आज़ादी को हासिल करने के जरिए मैं संपूर्ण मानवता के बीच भाईचारे के लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता हूं | मेरी राष्ट्रभक्ति कोई एकांतिक वस्तु नहीं है | यह सर्वसमावेशी है और मैं उस राष्ट्रभक्ति को नकार दूंगा जो अन्य राष्ट्रिकताओं के दुख और शोषण पर सवार होने का प्रयास करेगी | राष्ट्रभक्ति की मेरी धारणा निरर्थक है यदि

संपूर्ण मानवता की अधिकतम भलाई के साथ इसकी, निरपवाद रूप से, पूरी-पूरी संगति न हो | यही नहीं, मेरे धर्म और उससे व्युत्पन्न मेरी राष्ट्रभक्ति में संपूर्ण प्राणिजगत समाविष्ट है | मैं केवल मानव जाति के बीच ही भाईचारे अथवा उसके साथ तादात्म्य की स्थापना करना नहीं चाहता, बल्कि पृथ्वी पर रेंगने वाले जीवों सहित समस्त प्राणिजगत के साथ तादात्म्य स्थापित करना चाहता हूं | यदि आपको सुनकर धक्का न लगे तो मैं कहना चाहूंगा कि मैं पृथ्वी पर रेंगने वाले जीवों के साथ भी तादात्म्य स्थापित करना चाहता हूं, क्योंकि हम सब एक ही ईश्वर की संतान हैं | इसलिए जीवन जितने रूपों में है, सब मूलत: एक ही है | *(यंग, 4-4-1929, पृ. 107)*

मैं भारत का विनम्र सेवक हूं और भारत की सेवा करने का प्रयास करते हुए, मैं समूची मानवता की सेवा कर रहा हूं | मैंने अपने जीवन के आरंभिक दिनों में ही यह समझ लिया था कि भारत की सेवा और मानवता की सेवा के बीच कोई विरोध नहीं है | जैसे-जैसे मैं बड़ा हुआ, और शायद मेरी बुद्धि का भी विकास हुआ, मुझे लगने लगा कि मेरी धारणा ठीक ही थी और आज लगभग 50 वर्ष के सार्वजनिक जीवन के बाद, मैं यह कह सकता हूं कि मेरा इस सिद्धांत में विश्वास और दृढ़ हुआ है कि देशसेवा और विश्वसेवा के बीच कोई विरोध नहीं है | यह एक अच्छा सिद्धांत है | इसे अंगीकार करने से ही विश्व की स्थिति में तनाव घटेगा और विभिन्न राष्ट्रों के बीच पारस्परिक ईर्ष्या समाप्त होगी | *(हरि, 17-11-1933, पृ. 5-6)*

स्वाधीनता बनाम परस्परनिर्भरता

एकांतिक स्वाधीनता विश्व-राज्यों का लक्ष्य नहीं है | उनका लक्ष्य परस्परनिर्भरता है | *(यंग, 17-7-1924, पृ. 236)*

दुनिया के समझदार लोग आज ऐसे परम स्वाधीन राज्यों की स्थापना के पक्ष में नहीं हैं जिनके बीच संघर्ष चलता रहे, बल्कि वे मैत्रीपूर्ण स्वाधीन राज्यों के परिसंघ के पक्ष में हैं | ऐसे परिसंघ की स्थापना में शायद अभी काफ़ी समय लगे | मैं अपने देश के बारे में कोई लंबे-चौड़े दावे करना नहीं चाहता | लेकिन अगर हम स्वाधीनता के बजाए सार्वभौम परस्परनिर्भरता के लिए तैयार हो जाएं तो यह कोई बहुत बड़ी या असंभव बात नहीं होगी....मैं चाहता हूं कि हम आज़ादी का जोर दिखाने के बजाए पूरी तरह आज़ाद होने की योग्यता का विकास करें | आज जबकि ब्रिटेन साम्राज्य के भीतर भारत को बराबरी का दर्जा देने के अपने इरादे की घोषणा करने जा रहा है, मैं जो भी योजना बनाऊंगा उसका ध्येय मैत्री होगा, मैत्रीरहित स्वाधीनता नहीं | *(यंग, 26-12-1924, पृ. 425)*

सामाजिक परस्पर संबंध

मनुष्य का आदर्श जितना आत्मनिर्भरता है उतना ही परस्परनिर्भरता भी है और यही होना चाहिए | मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है | समाज के साथ परस्पर संबंध रखे बिना वह विश्व के साथ एकात्मता स्थापित नहीं कर सकता अथवा अपने अहंकार का दमन नहीं कर सकता | उसकी सामाजिक परस्परनिर्भरता उसे अपनी आस्था की परीक्षा लेने और स्वयं को वास्तविकता की कसौटी पर कसने का अवसर देती है | यदि मनुष्य इस स्थिति में होता

या स्वयं को रख सकता कि वह अपने साथियों पर तनिक भी निर्भर न हो तो वह इतना गर्वीला और दंभी हो जाता कि पृथ्वी के ऊपर वस्तुत: भार बन जाता और उसके लिए कंटक सिद्ध होता | समाज पर निर्भर रहने के कारण ही उसमें मानवता का विकास होता है | यह तो ठीक है कि मनुष्य इस योग्य होना चाहिए कि अपनी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं कर सके; लेकिन मुझे इसमें भी कोई संदेह नहीं है कि यदि स्वावलंबन की भावना का विस्तार इस सीमा तक किया जाए कि मनुष्य समाज से अलग-थलग पड़ जाए तो यह पाप जैसा ही होगा | आदमी कपास उगाने से सूत कातने तक के सारे काम अकेला नहीं कर सकता | उसे किसी-न-किसी काम में अपने परिवार के अन्य सदस्यों की सहायता लेनी पड़ती है | और, यदि आदमी अपने परिवार की सहायता ले सकता है तो अपने पड़ोसी की क्यों नहीं ? अन्यथा, इस महान उक्ति का कि 'संपूर्ण विश्व मेरा परिवार है' क्या महत्व रह जाता है ? *(यंग, 21-3-1929, पृ. 93)*

हमें यह नहीं....भूलना चाहिए कि मनुष्य की सामाजिक प्रकृति ही उसे पशुजगत से भिन्न बनाती है | यदि स्वाधीन होना उसका विशेषाधिकार है तो परस्परनिर्भरता उसका कर्तव्य है | कोई दंभी व्यक्ति ही दुनिया के तमाम लोगों से स्वतंत्र और स्वत:पूर्ण होने का दावा कर सकता है | *(यंग, 25-4-1929, पृ. 135)*

व्यक्ति

समाज में जीने के लिए व्यक्तिगत स्वाधीनता और परस्परनिर्भरता, दोनों आवश्यक हैं | पूरी तरह आत्मनिर्भर तो कोई रॉबिन्सन क्रूसो ही हो सकता है | अपनी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यथासंभव प्रयास कर लेने के बाद, मनुष्य शेष आवश्यकताओं के लिए अपने पड़ोसियों से सहयोग मांगेगा | यही सच्ची सहकारिता होगी| *(यंग, 31-3-1946, पृ. 59)*

आत्मशोधन मनुष्य को उदात्त बनाता है जबकि दूसरों का शोधन उसे भ्रष्ट करता है | हमें सामूहिक जीवन की कला और गुण को सीखना चाहिए जिसमें सहकारिता की परिधि निरंतर विस्तृत होती जाती है, यहां तक कि अंत में वह सारी मानव जाति को अपने में समाविष्ट कर लेती है | *(यंग, 14-12-1947, पृ. 465)*

ऐसा एक भी गुण नहीं है जिसका लक्ष्य केवल व्यक्ति का कल्याण हो | इसके विपरीत, ऐसा एक भी दोष नहीं है जो वास्तविक दोषी के अलावा, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, और बहुत-से लोगों को प्रभावित न करता हो | इसलिए व्यक्ति का अच्छा या बुरा होना केवल उसी का सरोकार नहीं है, बल्कि पूरे समुदाय या कहना चाहिए कि पूरी दुनिया का सरोकार है | *(एरि, पृ. 55)*

मानव जाति एक है, क्योंकि नैतिक नियम सब पर समान रूप से लागू हैं | ईश्वर की दृष्टि में सभी लोग बराबर हैं | यह ठीक है कि लोगों में प्रजाति, हैसियत आदि को लेकर अंतर पाए जाते हैं, पर जिस व्यक्ति की हैसियत जितनी ऊंची है, उसकी जिम्मेदारी भी उतनी ही ज़्यादा है | *(वही, पृ. 57)*

मैं इसमें विश्वास नहीं करता....कि एक आदमी का आध्यात्मिक लाभ हो जाए और उसके आसपास के लोग दुख में लिप्त रहें | मैं अद्वैत में विश्वास करता हूं, मुझे मानव की ही नहीं बल्कि प्राणिमात्र की अनिवार्य एकता में विश्वास है | इसलिए मेरा विश्वास है कि अगर एक आदमी को आध्यात्मिक लाभ मिलता है तो उसके साथ सारी दुनिया का लाभ होता है, और अगर एक आदमी का पतन होता है, तो उस सीमा तक सारी दुनिया का पतन होता है | *(यंग, 4-12-1924, पृ. 398)*

आत्मबलिदान की तार्किक परिणति यह है कि व्यक्ति समुदाय के लिए अपना बलिदान करे, समुदाय जिले के लिए, जिला प्रांत के लिए, प्रांत राष्ट्र के लिए, और राष्ट्र संसार के लिए अपना बलिदान करे | समुद्र से छिटकी हुई बूंद किसी का भला किए बिना नष्ट हो जाती है | यदि वह समुद्र का अंश बनी रहती है तो अपने वक्ष पर शक्तिशाली पोतों के बेड़े के तरण का गौरव प्राप्त करती है | *(हरि, 23-3-1947, पृ. 78)*

92. नस्लवाद

यह संभव नहीं है कि मनुष्य अपने जीवन के एक क्षेत्र में तो गलत काम करता रहे और किसी दूसरे क्षेत्र में सही काम करे | जीवन एक अविभाज्य समष्टि है | *(यंग, 27-1-1927, पृ. 31)*

मेरी जीवन-योजना जिस प्रकार भारत के भिन्न-भिन्न धर्मावलंबियों के बीच भेद नहीं मानती उसी प्रकार भिन्न-भिन्न प्रजातियों के बीच भी कोई भेद नहीं मानती | मेरी दृष्टि में 'मनुष्य बस मनुष्य है' | *(यंग, 20-2-1920, पृ. 61)*

श्वेत नीति

दक्षिण अफ्रीका की श्वेत नीति में विश्व-युद्ध का बीज छिपा है | *(हरि, 24-3-1946, पृ. 52)*

क्या श्वेत लोगों की वास्तविक श्रेष्ठता को कानून के रूप में बाहरी सहारे की आवश्यकता है ? *(वही)*

जिस सभ्यता को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए प्रजाति कानून और अपहनन कानून जैसे संदिग्ध सहारों की आवश्यकता अनुभव होती हो, क्या उसे सभ्यता कहा जा सकता है ? *(हरि, 30-6-1946, पृ. 204)*

प्रतिशोध

अश्वेत प्रजातियों को यदि किसी ने सत्याग्रह का अस्त्र न थमाया तो एक दिन वे अपने श्वेत अत्याचारियों के विरुद्ध प्रतिशोधकारी अटील की तरह उठ खड़ी होंगी | *(हरि, 19-5-1946, पृ. 134)*

....यदि दक्षिण अफ्रीका में अपहनन कानून को लागू किया गया तो यह श्वेत सभ्यता के इतिहास पर एक कलंक होगा | मुझे आशा है कि दक्षिण अफ्रीका की सरकार और मानव जाति की सभ्य अंतश्चेतना ऐसा नहीं होने देगी| *(वही, पृ. 206)*

यह नयी प्रजाति-व्यवस्था भारत की प्राचीन जाति-व्यवस्था से भी बुरी है जो समाप्तप्राय है, पर जिसमें कुछ अच्छाइयां भी हैं | जाति-व्यवस्था के इस नये सभ्य संस्करण में तो एक भी अच्छाई नहीं है | यह बेहयाई के साथ इस बात की घोषणा करती है कि श्वेत सभ्यता को एशियाइयों और अफ्रीकियों से अपनी रक्षा करने के लिए कानूनी अवरोध खड़े करने जरूरी हैं | *(हरि, 2-6-1946, पृ. 157)*

'श्वेत जाति का भार'

श्वेत जाति का वास्तविक भार उसके द्वारा संरक्षण के नाम पर धृष्टतापूर्वक किया जा रहा भूरे अथवा काले लोगों का आधिपत्य नहीं है, बल्कि इस पाखंड से बाज आना है जो भीतर-ही-भीतर उसे खाए जा रहा है | समय आ गया है जब गोरों को यह मान लेना चाहिए कि सभी लोग समकक्ष हैं | चमड़ी की सफेदी के पीछे कोई रहस्य नहीं है |

यह बारंबार सिद्ध हो चुका है कि समान अवसर मिलें तो किसी भी रंग या देश का व्यक्ति दूसरों के पूर्णतया समकक्ष बनकर दिखा सकता है |

...."औरों के साथ वैसा ही व्यवहार करो जैसा तुम चाहते हो कि वे तुम्हारे साथ करें |" जिस महान पुरुष के ये शब्द हैं, उसका नाम क्या गोरे लोग झूठ-मूठ ही लेते हैं ? जिस महान अश्वेत एशियाई ने दुनिया को उपर्युक्त संदेश दिया था, क्या उन्होंने उसका नाम अपने हृदयपटल से बिलकुल ही मिटा दिया है ?

क्या वे इस बात को भूल गए हैं कि मानव जाति के महानतम उपदेशक सभी एशियावासी थे जिनके चेहरे गोरे नहीं थे ? ये महापुरुष यदि आज पृथ्वी पर उतर आएं और दक्षिण अफ्रीका जाएं तो वहां इन सभी को पृथक्कृत बस्तियों में रहना होगा, उन्हें एशियाई तथा अश्वेत माना जाएगा, जो कानूनन गोरों की बराबरी करने योग्य नहीं हैं|

(हरि, 30-6-1946, पृ. 204)

प्रजातिवाद का उन्मूलन

जो लोग यह मानते हैं कि प्रजातिगत असमानता का उन्मूलन किया जाना चाहिए, लेकिन फिर भी उस बुराई के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए कोई प्रयास नहीं करते, वे नपुंसक हैं | मुझे इन लोगों से कुछ नहीं कहना है | अंतत: पददलितों को अपना उद्धार स्वयं ही करना होगा....समाधान काफ़ी हद तक भारत के हाथों में है | यदि भारत की आंतरिक स्थिति सब प्रकार से ठीक रही तो वह शायद इस समस्या के निपटारे में कारगर भूमिका निभाएगा....

यदि राष्ट्रसंघ दक्षिण अफ्रीकी-भारतीय विवाद को न्यायपूर्ण ढंग से सुलझाने में असफल रहता है तो उसकी प्रतिष्ठा समाप्त हो जाएगी | मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि राष्ट्रसंघ तभी आगे बढ़ सकता है जब वह न्याय का पक्ष ले|

(हरि, 26-10-1947, पृ. 385)

93. युद्ध और शांति

युद्ध में मेरी भागीदारी

इतने वर्षों तक आत्मविश्लेषण करने के बाद भी मैं यह अनुभव करता हूं कि बोअर युद्ध और बृहत् यूरोपीय युद्ध तथा इसी प्रकार, 1906 में नेटाल में हुए तथाकथित जुलू 'विद्रोह' के समय जिन परिस्थितियों में मैं था, उनमें मैं वही कार्रवाई करने के लिए विवश था जो मैंने की |

जिंदगी एक ही साथ कई बलों द्वारा संचालित होती है | अगर आदमी अपनी कार्य-दिशा का निर्धारण, आंख मूंदकर, एक ही सामान्य सिद्धांत पर चलते हुए कर सके तो जीवन बड़ा सीधा-सरल हो जाए | लेकिन मुझे अपना एक भी काम ऐसा याद नहीं आता जिसका निर्णय इतनी सरलता से किया जा सका हो |

युद्ध का पक्का विरोधी होने के कारण मैंने प्रशिक्षण के अवसर मिलने के बावजूद कभी विनाशक हथियारों को चलाने का प्रशिक्षण नहीं लिया | संभवत: इसी कारण मैं मानव जीवन का प्रत्यक्ष विनाश करने से बच गया | लेकिन जब तक मैं एक ऐसी शासन-प्रणाली के अधीन रह रहा था जो ताकत पर आधारित थी और उस प्रणाली द्वारा मेरे लिए उपलब्ध कराई गई सुविधाओं तथा विशेषाधिकारों का स्वेच्छापूर्वक उपभोग कर रहा था तब तक मेरे लिए यह लाजमी था कि युद्ध में उलझी सरकार की अपनी योग्यतानुसार सहायता करता | हां, यदि मैं सरकार से असहयोग कर देता और उसके द्वारा प्रदत्त विशेषाधिकारों का अपनी शक्ति भर त्याग कर देता तो बात दूसरी थी |

आइए, हम एक उदाहरण द्वारा इस तर्क को स्पष्ट करें | मान लीजिए कि मैं किसी संस्था का सदस्य हूं जिसके पास कुछ एकड़ जमीन है; इस पर खड़ी फसल को बंदरों द्वारा तुरंत नष्ट किए जाने का खतरा है | जीवन की पवित्रता में विश्वास होने के कारण मैं बंदरों को चोट पहुंचाना अहिंसा का उल्लंघन मानता हूं | लेकिन मैं फसल को बचाने की खातिर बंदरों पर हमला करने के लिए दूसरे लोगों को उकसाने और निर्देशित करने में संकोच नहीं करता | यदि मैं इस बुराई से बचना चाहूं तो मैं संस्था को छोड़कर या उसे तोड़कर उससे बच सकता हूं | लेकिन मैं ऐसा नहीं करता, क्योंकि मुझे ऐसा समाज शायद कहीं न मिले जहां खेती न की जाती हो और इसलिए जरा भी हिंसा न होती हो | अत: मैं डरते और कांपते हुए, विनम्रता तथा प्रायश्चित का भाव मन में लिए, यह आशा लगाए हुए कि कभी तो इस प्रश्न का समाधान जरूर निकल आएगा, बंदरों पर किए जाने वाले हमले में हिस्सा लेता हूं....

इसी मनोवृत्ति को लेकर मैंने तीनों लड़ाइयों में हिस्सा लिया | मैं जिस समाज में रहता था, उसके साथ संबंध नहीं तोड़ सका; ऐसा करना पागलपन ही होता | इसके अलावा, उन तीनों अवसरों पर, ब्रिटिश सरकार के साथ असहयोग करने की बात मेरे विचार में आयी ही नहीं थी | आज उस सरकार के संबंध में मेरी स्थिति बिलकुल भिन्न है, अत: मुझे स्वेच्छा से उसके युद्धों में भाग नहीं लेना चाहिए | यदि मुझे उसकी सैनिक कार्रवाइयों के

सिलसिले में हथियार उठाने या किसी अन्य रूप में भाग लेने के लिए मजबूर किया जाए तो मुझे ऐसा करने के बजाए जेल जाने या फांसी के तख्ते पर चढ़ने का खतरा भी उठाना चाहिए | *(यंग, 13-9-1928, पृ. 308)*

राष्ट्रीय नागरिक सेना

....यदि देश में राष्ट्रीय सरकार हो तो, हालांकि मैं स्वयं किसी युद्ध में भाग नहीं लूंगा पर, इस बात की नौबत आ सकती है कि जो लोग सैनिक प्रशिक्षण लेना चाहते हैं उनके प्रशिक्षण का समर्थन करना अपना कर्तव्य समझूं | बात यह है कि मैं यह जानता हूं कि अहिंसा में मेरा विश्वास जिस सीमा तक है, उतना सभी देशवासियों का नहीं है | किसी व्यक्ति अथवा समाज को जबरन अहिंसक नहीं बनाया जा सकता | *(वही)*

मैं अहिंसा का शिक्षक परिस्थितिवश बन गया हूं | मेरा दावा है कि मैं अपनी अधिकतम योग्यतानुसार अपनी सीख को अपने जीवन में उतारने का प्रयास करता हूं और मैं यह अनुभव करता हूं कि मेरे अंदर व्यक्तिगत रूप से युद्ध का प्रतिरोध करने की शक्ति है |

मैं स्वराज के अंतर्गत राष्ट्रीय नागरिक सेना के गठन का समर्थन केवल इसलिए करूंगा कि मैं यह समझता हूं कि लोगों को जबरन अहिंसक नहीं बनाया जा सकता | आज, मैं लोगों को यह सिखा रहा हूं कि वे राष्ट्रीय संकट का सामना अहिंसक उपायों से किस प्रकार करें |

लेकिन संकट के समय एक विशेष उद्देश्य के लिए अहिंसा को अपनाना एक बात है और उसे सदा के लिए जीवन-दर्शन के रूप में अंगीकार करने की वकालत करना बिलकुल दूसरी बात है | ऐसा नहीं है कि मैं इस रूप में अहिंसा को अंगीकार करना असंभव मानता हूं | लेकिन इसे एक मिशन के रूप में आगे बढ़ाने की शक्ति मेरे अंदर नहीं है | यही कारण है कि मैं शायद राष्ट्रीय नागरिक सेना के गठन का प्रतिरोध न करूं | हां, मैं उसका सदस्य नहीं बनूंगा | मेरे मन में यह बिलकुल स्पष्ट है कि नागरिक सेना की कोई आवश्यकता नहीं है, लेकिन लोगों को अपने दृष्टिकोण से पूर्णतया सहमत करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं | *(यंग, 10-1-1929, पृ. 10)*

अहिंसा की कार्यप्रणाली

अहिंसा बड़े ही रहस्यमय ढंग से काम करती है | बहुत बार, मनुष्य के कार्यकलाप को अहिंसा की तुला पर तोलना असंभव हो जाता है | इसी प्रकार, अनके बार मनुष्य के कार्यकलाप देखने में तो हिंसक प्रतीत होते हैं, पर असलियत में वह उच्चतम स्तर की अहिंसा का पालन कर रहा होता है और बाद में, यह पूरी तरह स्पष्ट भी हो जाता है | मैं तो यही दावा कर सकता हूं कि, उल्लिखित अवसरों पर, मेरा व्यवहार अहिंसा के हितों के अनुरूप ही था | किसी अन्य हित की बलि देकर स्वार्थपूर्ण राष्ट्रीय अथवा अन्य किसी हित के साधन का विचार मेरे मन में बिलकुल नहीं था....

मेरी दृष्टि में, अहिंसा केवल एक दार्शनिक सिद्धांत ही नहीं है | यह मेरे जीवन का नियम और उसकी श्वास है | मैं जानता हूं कि मैं कभी जान-बूझकर और ज्यादातर अनजाने में, अहिंसा के पालन में असफल हो जाता हूं | यह मामला बुद्धि से नहीं बल्कि हृदय से संबंध रखता है | सच्चा मार्गदर्शन निरंतर भगवान की सेवा, अधिकतम विनम्रता, आत्मत्याग और हर समय आत्मबलिदान के लिए तैयार रहने से प्राप्त होता है | अहिंसा का पालन करने के लिए उच्चतम कोटि के अभय और साहस की आवश्यकता होती है | मुझे अपनी कमियों का दुखद बोध है |

लेकिन मेरे भीतर का प्रकाश स्थिर एवं स्पष्ट है | हममें से किसी के लिए सत्य और अहिंसा के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है | मैं जानता हूं कि युद्ध समाप्त अवश्य होगा | मुझे पक्का विश्वास है कि रक्तपात और छल-कपट से हासिल की गई आज़ादी कोई आज़ादी नहीं होती | ....मानव जाति का नियम हिंसा और असत्य नहीं है, बल्कि अहिंसा और सत्य है | *(यंग, 13-9-1928, पृ. 308)*

अहिंसक व्यक्ति यदि हिंसा पर आधारित तंत्र में रहने के लिए विवश हो और उसके पास हिंसा के अलावा कोई और चारा न हो तो वह अप्रत्यक्ष के बजाय प्रत्यक्ष रूप से उसमें भागीदारी करना पसंद करेगा | मैं जिस दुनिया में रह रहा हूं वह अंशत: हिंसा पर आधारित है | अगर मुझे अपने पड़ोसियों को मारने के लिए खड़ी की गई सेना के खर्च में योगदान करने और स्वयं सिपाही के रूप में उसमें भर्ती होने के बीच एक चीज़ चुननी हो तो मैं अपनी आस्था के प्रति निष्ठा रखते हुए इस आशा के साथ सिपाही भर्ती हो जाऊंगा कि सेना में जाकर कदाचित मैं हिंसा की ताकतों को नियंत्रित कर सकूं और साथी सिपाहियों की मनोवृत्ति में बदलाव ला सकूं | *(यंग, 30-1-1930, पृ. 37)*

सैन्य सेवा

सैन्य सेवा से इंकार करना ही काफ़ी नहीं है | करना यह है कि इस बुराई से लड़ने के लगभग सभी उपाय नाकाम हो जाने के बाद, जब लड़ाई की नौबत आ जाए तो हम सैन्यसेवा करने से इंकार कर दें | सैन्य सेवा तो एक गंभीर बीमारी का ऊपरी लक्षण मात्र है | मैं कहता हूं कि जिन लोगों के नाम सैन्य सेवा के रजिस्टर में दर्ज नहीं हैं, वे भी यदि किसी भी रूप में राज्य को समर्थन प्रदान कर रहे हैं तो हिंसा में भागीदारी करने के उतने ही दोषी हैं | सैन्य पद्धति पर संगठित राज्य को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से समर्थन देने वाले सभी स्त्री-पुरुष युद्ध में भागीदारी करने के दोषी हैं | प्रत्येक व्यक्ति, वह बूढ़ा हो या जवान, जो राज्य के खर्च के लिए कर देता है, युद्ध में भागीदारी करने का दोषी है | इसीलिए युद्ध के दौरान मैंने अपने-आप से कहा कि जब तक मैं सेना की सहायता से प्राप्त गेहूं खा रहा हूं तब तक मैं सेना में भर्ती होने के अलावा बाकी सब कुछ कर रहा हूं | ऐसी सूरत में सबसे अच्छा यही है कि मैं सेना में भर्ती होकर दुश्मन की गोली का शिकार हो जाऊं | यदि मैं ऐसा न कर पाऊं तो मुझे हिमालय की ओर प्रस्थान कर देना चाहिए और प्रकृति द्वारा उत्पन्न खाद्य पदार्थों पर निर्वाह करना चाहिए |

इसलिए वे सभी लोग जो सैन्य सेवा को रोकना चाहते हैं, सरकार के साथ हर तरह का सहयोग समाप्त करके ही ऐसा कर सकते हैं | सरकार को समर्थन देने वाले संपूर्ण तंत्र के साथ असहयोग करने की तुलना में सैन्य सेवा से इंकार करना कहीं ज़्यादा सतही है | लेकिन तब आपका विरोध इतना तेज और कारगर रूप ले लेगा कि या तो आप जेल में ठूंस दिए जाएंगे या घरों से निकालकर सड़कों पर फेंक दिए जाएंगे | *(यंग, 31-12-1931, पृ. 426)*

युद्ध का प्रतिरोध

जब दो राष्ट्रों में लड़ाई हो रही हो तो अहिंसा के पुजारी का कर्तव्य यह है कि युद्ध को रुकवाए | जो इस कर्तव्य का निर्वाह करने में अक्षम है, जिसमें युद्ध का प्रतिरोध करने की शक्ति नहीं है, जिसमें युद्ध का प्रतिरोध करने की पात्रता नहीं है, वह युद्ध में हिस्सा ले सकता है और फिर भी स्वयं को, अपने राष्ट्र को और दुनिया को युद्ध से मुक्त कराने के लिए भरसक प्रयास करता रह सकता है | *(ए, पृ. 258)*

मुझे इस बात में....पक्का विश्वास है कि युद्ध एक विशुद्ध बुराई है | कोई भी कहे, मैं युद्ध के प्रति अपना घृणा-भाव नहीं छोडूंगा | लेकिन विश्वास एक बात है और सही आचरण दूसरी बात | युद्ध के विषय में एक जैसा दृष्टिकोण होने पर भी युद्ध का प्रतिरोध करने वाला एक व्यक्ति अपने ध्येय के हित में जो काम करेगा, हो सकता है कि कोई दूसरा युद्धविरोधी उसे बिलकुल पसंद न करे और उससे बिलकुल उल्टा काम करे | यह विरोध मानव प्रकृति की विस्मयकारी जटिलता के कारण उत्पन्न होता है | मैं तो बस यही आग्रह कर सकता हूं कि एक ही मत का प्रचार करने वाले लोगों के बीच भी परस्पर सहिष्णुता होनी चाहिए | *(यंग, 7-2-1929, पृ. 46)*

जब तक युद्ध के कारणों को नहीं समझा जाएगा और उनको जड़ से नष्ट नहीं किया जाएगा तब तक युद्ध को रोकने के सारे प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध होंगे | क्या आधुनिक युद्धों का प्रमुख कारण दुनिया की तथाकथित दुर्बल प्रजातियों के शोषण के लिए मची अमानवीय होड़ नहीं है ? *(यंग, 9-5-1929, पृ. 148)*

यदि युद्ध में एक भी अच्छाई न होती, यदि उसके पीछे साहस और वीरता न होती तो वह एक निंदनीय चीज़ होती और उसे नष्ट करने के लिए भाषण न देने पड़ते | लेकिन मैं जो सुझाव देने जा रहा हूं वह रेडक्रास संगठन सहित युद्ध के सभी उपक्रमों से कहीं ज़्यादा उदात्त है | मेरा विश्वास कीजिए, इस दुनिया में और भी करोड़ों बंदी मौजूद हैं – अपने मनोवेगों तथा जीवन की दशाओं के दास; मेरा विश्वास कीजिए कि इस दुनिया में करोड़ों लोग अपनी मूढ़ता से आहत हैं और करोड़ों घर बर्बाद हैं | इसलिए कल की शांति समितियां जब अंतर्राष्ट्रीय सेवा हाथ में लेंगी तो उनके पास करने के लिए बहुत काम होगा.... *(यंग, 31-12-1931, पृ. 427)*

आज हमारे चारों ओर जो हो रहा है वह अहिंसा के नियम की घोर उपेक्षा और हिंसा के नियम की पूजा है मानो कि यही शाश्वत नियम हो....हम देख रहे हैं कि आज शस्त्रीकरण के मामले में एक-दूसरे को मात देने के लिए पागल दौड़ हो रही है | और टकराव की घड़ी आने पर – जो आएगी जरूर – अगर लोकतंत्र विजयी होंगे तो

केवल इसलिए कि उन्हें अपनी जनता का समर्थन प्राप्त है जो यह समझती है कि अपनी सरकार को चलाने में उनका भी योगदान है.... *(हरि, 11-2-1939, पृ. 8)*

द्वितीय विश्व युद्ध

व्यक्तिगत रूप से मेरा विचार है कि विश्व युद्ध का अंत महाभारत के युद्ध जैसा ही होगा | त्रावनकोर के एक सज्जन ने महाभारत को मानव का स्थायी इतिहास बताया है, और यह बिलकुल सही है | उस महाकाव्य में जो वर्णन किया गया है, वही आज ज्यों-का-त्यों हमारी आंखों के सामने घटित हो रहा है | युद्धरत राष्ट्र जिस उन्माद और क्रूरता के साथ स्वयं को नष्ट कर रहे हैं उससे लगता है कि अंत में उन सभी की शक्ति चूक जाएगी | तब विजयी राष्ट्रों की वही हालत होगी जो पाडवों की हुई थी | महाप्रतापी अर्जुन को दिनदहाड़े एक मामूली लुटेरे ने लूट लिया था | आज के इस विध्वंस से एक नयी व्यवस्था जन्म लेगी जिसके लिए करोड़ों शोषित मज़दूर तरस रहे हैं | शांतिप्रेमियों की प्रार्थनाएं व्यर्थ नहीं जा सकतीं | सत्याग्रह स्वयं व्यथित आत्मा की अचूक मौन प्रार्थना है | *(हरि, 15-2-1942, पृ. 40)*

कुछ लोगों की दलील है कि घृणा को प्रेम में नहीं बदला जा सकता | जिन्हें हिंसा में विश्वास है, वे स्वभावतया यही कहेंगे, "अपने शत्रु को, जहां भी हो सके, खुल्लमखुल्ला या चोरी-छिपे, जैसी आवश्यकता हो, मारो; उसे और उसकी संपत्ति को नुकसान पहुंचाओ |" नतीजा यह होगा कि दोनों ओर नफरत, जवाबी नफरत और प्रतिशोध का नंगा नाच होगा | हाल के युद्ध ने, जिसके सदस्य अभी नष्ट नहीं हुए हैं, नफरत की भावना के दिवालियापन की जोर-शोर से घोषणा कर दी है | अभी यह देखना बाकी है कि तथाकथित विजयी राष्ट्र सचमुच विजयी हुए हैं या कि अपने शत्रुओं को गिराने के प्रयास में खुद भी गिर गए हैं | *(हरि, 24-2-1946, पृ. 20)*

94. परमाणु युद्ध

अणु बम

संसार में प्रलयंकारी परिवर्तन हुए हैं | क्या मैं अब भी सत्य और अहिंसा के प्रति अपनी आस्था पर दृढ़ हूं ? क्या अणु बम ने इस आस्था को ध्वस्त नहीं कर दिया है ? न सिर्फ यह कि अणु बम ने ऐसा नहीं किया है, बल्कि इसने मुझे स्पष्ट रूप से दिखा दिया है कि विश्व में सत्य और अहिंसा ही सर्वोपरि शक्तियां हैं | इनके सामने अणु बम बेअसर है | ये दो विरोधी बल एक-दूसरे से बिलकुल भिन्न प्रकार के हैं, एक नैतिक तथा आध्यात्मिक है और दूसरा स्थूल तथा भौतिक | पहला निश्चित रूप से दूसरे की तुलना में श्रेष्ठ है जिसकी प्रकृति ही ऐसी है कि उसका अंत अवश्यंभावी है | आत्मा का बल सदा प्रगामी और अनंत होता है | पूर्णतया अभिव्यक्त होने पर संसार की कोई शक्ति उसे पराजित नहीं कर सकती | मैं जानता हूं कि ऐसा कहकर मैंने कोई नयी बात नहीं कही है | मैं तो तथ्य का साक्षी भर हूं | बड़ी बात यह है कि प्रत्येक स्त्री, पुरुष और बच्चे में – उसकी चमड़ी का रंग कोई भी हो – इस बल का निवास है | बस यही है कि बहुत-से लोगों में यह सुप्तावस्था में होता है | लेकिन सुविवेचित प्रशिक्षण के द्वारा इसे जगाया जा सकता है |

यह बात भी समझ लेनी चाहिए कि इस सत्य को पहचाने बिना और उसे प्राप्त करने का समुचित प्रयास किए बिना मनुष्य आत्मसंहार से बच नहीं सकता | उपाय यही है कि प्रत्येक व्यक्ति इस बात की चिंता किए बिना कि उसका पड़ोसी क्या कर रहा है, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आत्माभिव्यक्ति की प्राप्ति के लिए स्वयं को प्रशिक्षित करे| *(हरि, 10-2-1946, पृ. 8)*

क्या अणु बम ने सभी प्रकार की हिंसा की व्यर्थता को सिद्ध नहीं कर दिया है ? *(हरि, 10-3-1946, पृ. 36)*

समाधान अहिंसा है

अमरीकी मित्रों का कहना है कि अहिंसा लाने का काम अणु बम से ज़्यादा अच्छी तरह कोई और नहीं कर सकता | यह बात ठीक हो सकती है, अगर इसका यह तात्पर्य है कि अणु बम की संहारक शक्ति दुनिया में इतनी विरुचि पैदा कर देगी कि वह कुछ समय के लिए हिंसा से दूर हो जाएगी | यह उसी तरह है जैसे कि कोई आदमी स्वादिष्ट व्यंजनों को इतनी अधिक मात्रा में खा ले कि उसका जी मिचलाने लगे; उसके बाद कुछ समय के लिए वह उन्हें खाना छोड़ देगा, लेकिन मिचलाहट दूर होते ही दूने जोश से फिर उन पर टूट पड़ेगा | ठीक इसी तरह विरुचि का प्रभाव दूर होते ही दुनिया दुगने उत्साह से हिंसा की ओर लौट आएगी |

प्राय: बुराई में से अच्छाई जन्म लेती है | लेकिन यह चमत्कार ईश्वर कर सकता है, मनुष्य नहीं | मनुष्य तो यही जानता है कि जिस प्रकार अच्छाई का परिणाम अच्छा होता है उसी प्रकार बुराई का परिणाम केवल बुरा ही हो सकता है |

इस बात की संभावना से निस्संदेह इंकार नहीं किया जा सकता कि यद्यपि अमरीकी वैज्ञानिकों और सैनिकों ने आणवक ऊर्जा का प्रयोग संहारक प्रयोजनों के लिए किया है, पर अन्य वैज्ञानिक इसे लोकोपकारी कामों के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं | किंतु मेरे अमरीकी मित्रों का इशारा इस ओर नहीं था | वे इतने सरल नहीं कि ऐसा प्रश्न उठाएं जिसका उत्तर कोई सहज सत्य हो | आगजनी पर उतारू व्यक्ति जिस अग्नि का इस्तेमाल अपने विनाशकारी और जघन्य इरादों को पूरा करने के लिए करता है, गृहिणी नित्य उसी अग्नि का इस्तेमाल लोगों के लिए पौष्टिक भोजन तैयार करने के वास्ते करती है |

जहां तक मैं समझता हूं, अणु बम ने उस उत्कृष्टतम भावना को निर्जीव कर दिया है जिसने मानव जाति को युगों से जीवित रखा है | युद्ध के भी तथाकथित नियम होते थे जिनके कारण युद्ध सहनीय बन जाता था | लेकिन अब सच्चाई खुलकर सामने आ गई है कि ताकत के अलावा युद्ध का और कोई नियम नहीं है | अणु बम ने मित्र राष्ट्रों को एक खोखली विजय दिला दी है, पर इसके परिणामस्वरूप फिलहाल जापान की आत्मा का नाश हो गया है | यह देखना अभी शेष है कि विनाशकारी राष्ट्र की आत्मा की हालत क्या है ? प्रकृति की शक्तियां रहस्यमय ढंग से काम करती हैं | लेकिन हम अज्ञात परिणाम को इसी तरह की पिछली घटनाओं के ज्ञात परिणामों के आधार पर निकालकर इस रहस्य को सुलझा सकते हैं | दासों का मालिक दास के लिए बने पिंजरे में स्वयं को या अपने सहायक को बंद किए बिना दास को बांधकर नहीं रख सकता | कोई यह न समझ बैठे कि अपनी निंदनीय आकांक्षा की पूर्ति के लिए जापानियों द्वारा किए गए कुकृत्यों को मैं उचित ठहरा रहा हूँ | अंतर केवल मात्रा का था | मैं मानता हूं कि जापान का लालच ज़्यादा निंदनीय था | लेकिन इसके कारण कम निंदनीय लालच वालों को यह अधिकार तो नहीं था कि वे ज़्यादा निंदनीय लालच वाले जापान के किसी क्षेत्र विशेष में रहने वाले स्त्री, पुरुषों और बच्चों का निर्दयतापूर्वक संहार कर दें |

अणु बम की भीषण त्रासदी से हम यह सीख ले सकते हैं कि इसका खात्मा किसी जवाबी बम से नहीं होगा, वैसे ही जैसे कि हिंसा का खात्मा प्रतिहिंसा से नहीं होता | मानव जाति केवल अहिंसा के जरिए ही हिंसा पर विजय पा सकती है | घृणा को प्रेम से ही जीता जा सकता है | जवाबी घृणा केवल घृणा का विस्तार करती है और उसे गहराती है | मैं जानता हूं कि मैं उसी बात को दुहरा रहा हूं जिसे बहुत बार कह चुका हूं और जिस पर अपनी पूरी योग्यता और क्षमता के अनुसार आचरण करने का प्रयास करता आया हूं | जो बात मैंने पहले कही थी वह भी नयी नहीं थी | वह भी उतनी ही पुरानी है जितने कि पहाड़ हैं | हां, यह अवश्य है कि मैंने कोई किताबी सूक्ति नहीं सुनाई थी बल्कि जो आस्था मेरी रग-रग में बसी है, उसी की स्पष्ट घोषणा की थी | जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में साठ वर्ष तक किए गए अमल ने इस आस्था को गहराया ही है तथा मित्रों के अनुभव ने भी इसकी पुष्टि की है | यह केंद्रीय सत्य है जिस पर आदमी बिना हिचक अकेला ही आरूढ़ रह सकता है | मैं मैक्समूलर द्वारा वर्षों पहले

कही गई बात में विश्वास करता हूं कि सत्य को तब तक दुहराते जाना जरूरी है जब तक उस पर अविश्वास करने वाले लोग मौजूद हैं | *(हरि, 7-7-1946, पृ. 212)*

"अणु बम की अति भीषणता भी क्या दुनिया पर जबर्दस्ती अहिंसा नहीं लाद सकती ? यदि दुनिया के सभी राष्ट्रों के पास अणु बम हो जाएं तो क्या वे इसका इस्तेमाल करने से बाज नहीं आएंगे, क्योंकि तब तो सभी का पूर्णतया नाश हो जाएगा ?" मेरी राय में ऐसा नहीं होगा | हिंसक मनुष्य की आंख इस संभावना से चमक उठेगी कि अब वह पहले की अपेक्षा कितना अधिक विध्वंस मचा सकता है और मौत का खेल खेल सकता है | *(हरि, 23-7-1946, पृ. 197)*

बम का प्रतिकारक

मैं स्त्री, पुरुषों और बच्चों के सर्वनाश के लिए अणु बम के इस्तेमाल को विज्ञान का सबसे क्रूर उपयोग मानता हूं|

"इसका प्रतिकार क्या है ? क्या उसने अहिंसा को प्रचलन से बाहर कर दिया है ?" नहीं | बल्कि अब मैदान में सिर्फ अहिंसा ही खड़ी रह गई है | यही एक चीज़ है जिसे अणु बम नष्ट नहीं कर सकता | जब मैंने पहली बार सुना कि अणु बम ने हिरोशिमा को पूरी तरह मिटा डाला है तो मुझमें कोई सिहरन नहीं हुई | बल्कि मैंने स्वयं से कहा, 'अब अगर दुनिया अहिंसा को नहीं अपनाती तो मानव जाति को आत्महत्या करनी पड़ेगी |'[111] *(हरि, 29-9-1946, पृ. 335)*

मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि जब तक बड़े राष्ट्र शोषण की कामना और हिंसा की भावना का त्याग नहीं करेंगे, जिनकी सहज अभिव्यक्ति युद्ध और अणु बम के रूप में होती है, तब तक विश्व में शांति की आशा करना व्यर्थ है | मैंने युद्ध के दौरान आवाज़ उठाने की कोशिश की थी और ब्रिटिश जनता, हिटलर तथा जापान के नाम खुली चिट्ठियां लिखी थीं, पर मुझे इसके लिए पंचमांगी करार दे दिया गया | *(हरि, 10-11-1946, पृ. 389)*

पूर्व के मनीषी

सबसे पहला मनीषी जरदुश्त था | वह पूर्व का था | उसके बाद बुद्ध आए – वह भारत अर्थात पूर्व के ही थे | बुद्ध के बाद कौन आए ? ईसा, वे भी पूर्व के थे | ईसा से पहले मूसा आए जो फिलस्तीनी थे, हालांकि वह पैदा मिस्र में हुए थे | ईसा के बाद मोहम्मद आए | मैंने कृष्ण, राम तथा अन्य मनीषियों का नाम छोड़ दिया है | मैं उन्हें कम मनीषी नहीं मानता, पर साहित्यिक जगत के लिए वे उतने जाने-माने नहीं हैं | फिर भी, मुझे संसार का एक भी व्यक्ति ऐसा दिखाई नहीं देता जो एशिया के इन महापुरुषों की बराबरी कर सके | पर फिर क्या हुआ ? ईसाई धर्म जब पश्चिम में गया तो उसका स्वरूप विकृत हो गया | मुझे यह कहते हुए दुख हो रहा है | मैं इस विषय की चर्चा और अधिक नहीं करूंगा....

एशिया का संदेश

मैं चाहता हूं कि आप एशिया के संदेश को समझें | इसे आप पश्चिम के चश्मे या अणु बम की नकल करके नहीं समझ सकते | यदि आप पश्चिम को कोई संदेश देना चाहते हैं तो वह प्रेम का और सत्य का संदेश होना चाहिए....लोकतंत्र के इस युग में, निर्धनतम व्यक्तियों के जागरण के इस युग में, आप और भी अधिक बल देकर यह संदेश दुहरा सकते हैं | आप यह सोचें कि चूंकि पश्चिम ने हमारा शोषण किया है, इसलिए हम इसका बदला लेंगे तो आप पश्चिम को पूरी तरह नहीं जीत सकते; आप उसे सच्ची समझदारी का व्यवहार करके ही जीत सकते हैं | मुझे आशा है कि यदि आप बुद्धि ही नहीं बल्कि अपने हृदयों को भी एकजुट करके पूर्व के इन मनीषियों द्वारा हमारे लिए छोड़े गए संदेश के रहस्य को समझेंगे और स्वयं को उस महान संदेश के सही उत्तराधिकारी सिद्ध करेंगे तो पश्चिम की हमारी विजय पूर्णता को प्राप्त हो सकेगी | इस विजय पर पश्चिम को भी प्रसन्नता होगी |

आज पश्चिम ज्ञान के लिए तरस रहा है | वह अणु बमों की संख्या में वृद्धि से हताश है, चूंकि अणु बम का अर्थ है, न केवल पश्चिम बल्कि सारी दुनिया का विनाश; मानो कि बाइबिल की भविष्यवाणी सही सिद्ध होने जा रही है और पूर्ण प्रलय आकर ही रहेगी | यह आपका कर्तव्य है कि आप दुनिया को उसकी बुराई और पाप के बारे में बताएं – यह विरासत है जिसकी सीख आपके और मेरे गुरुओं ने एशिया को दी है | *(हरि, 20-4-1947, पृ. 116-17)*

सच्ची अहिंसा के मुकाबले पर आते ही हिंसा का हथियार, भले ही वह अणु बम हो, नाकाम साबित हो जाता है| *(हरि, 1-6-1947, पृ. 172)*

95. शांति का मार्ग

(अ) निरस्त्रीकरण

मेरा कहना है कि अहिंसा का सिद्धांत राष्ट्रों के बीच भी सच्चा सिद्ध होता है | मैं जानता हूं कि अगर मैं गत युद्ध की चर्चा करता हूं तो वह एक नाजुक मामले को छेड़ना होगा | फिर भी, स्थिति को स्पष्ट करने के लिए मुझे ऐसा करना ही होगा | जहां तक मैं समझा हूं, गत युद्ध उभय पक्षों के लिए विवर्धन का युद्ध था | यह दुर्बल राष्ट्रों के शोषण से प्राप्त दौलत को बांटने का युद्ध था – जिसे प्रियोक्ति का रूप देकर विश्व-वाणिज्य कहा जाता है....आप देखेंगे कि यूरोप में आम निरस्त्रीकरण की शुरुआत – यूरोप को आत्महत्या नहीं करनी तो आगे-पीछे होनी ही चाहिए – से पहले किसी राष्ट्र को बड़े खतरे मोल लेते हुए स्वयं को निरस्त्र करने का साहस दिखाना होगा | अगर किसी राष्ट्र ने यह सुखद कदम उठाया तो उस राष्ट्र में अहिंसा का स्तर इतना उठ चुका होगा कि सारी दुनिया उसे आदर की दृष्टि से देखेगी | उस राष्ट्र के निर्णय त्रुटिहीन होंगे, वह दृढ़निश्चयी होगा, उसमें आत्मत्याग की भारी क्षमता होगी और वह जितनी अपनी भलाई चाहेगा उतनी ही दूसरे राष्ट्रों की भी चाहेगा | *(यंग, 8-10-1925, पृ. 345)*

अफीम के उत्पादन की तरह, तलवारों के विश्व-विनिर्माण को भी प्रतिबंधित किया जाना चाहिए | दुनिया की बर्बादी के लिए तलवार शायद अफीम से भी ज़्यादा जिम्मेदार है | *(यंग, 19-11-1925, पृ. 397)*

तटस्थ राज्य का कर्तव्य

"चूंकि निरस्त्रीकरण मुख्यत: बड़ी शक्तियों पर निर्भर करता है, इसलिए स्विट्जरलैंड से, जो एक छोटा-सा और तटस्थ राष्ट्र है, निरस्त्र होने का आग्रह क्यों किया जाना चाहिए ?"*

आपके देश की तटस्थ भूमि से मैं केवल स्विट्जरलैंड को ही नहीं, बल्कि सभी शक्तियों को संबोधित कर रहा हूं | अगर आप इस संदेश को यूरोप के अन्य भागों तक नहीं पहुंचाएंगे तो मैं पूरी तरह दोषमुक्त हो जाऊंगा | इस बात को ध्यान में रखते हुए कि स्विट्जरलैंड एक तटस्थ क्षेत्र है और अनाक्रमणकारी राष्ट्र है, यह और भी युक्तिसंगत है कि स्विट्जरलैंड के लिए सेना रखना आवश्यक नहीं होना चाहिए | दूसरी बात यह है कि आपकी आतिथ्य-भावना और अनुकूल स्थिति के कारण ही अन्य राष्ट्रों के लोग आपके यहां आते हैं | आपके लिए दुनिया को निरस्त्रीकरण का पाठ पढ़ाना और यह दिखाना संभव होना चाहिए कि आप इतने बहादुर हैं कि सेना के बिना रह सकते हैं | *(वही)*

"कोई निरस्त्र तटस्थ देश अन्य राष्ट्रों को नष्ट कैसे होने दे सकता है ? गत युद्ध के दौरान यदि हमारी सेना हमारी सीमाओं पर तैयार खड़ी न होती तो हम बर्बाद हो गए होते |"*

अव्यावहारिक अथवा मूर्ख पुकारे जाने का जोखिम उठाते हुए भी मैं इस प्रश्न का उत्तर उसी एक रूप में दूंगा जो मैं जानता हूं | कोई तटस्थ देश यदि अपने पड़ोसी देश को नष्ट हो जाने दे तो यह उसके लिए बड़ी कायरता की बात होगी | लेकिन युद्ध के सिपाहियों और अहिंसा के सिपाहियों में दो बातें एक जैसी हैं, और यदि मैं स्विट्जरलैंड का नागरिक तथा संघीय राज्य का राष्ट्रपति होता तो मैं सभी तरह की रसद रोककर आक्रमणकारी सेना को रास्ता देने से इंकार कर देता | दूसरे, स्विट्जरलैंड में थर्मोपिलाई को दुहराते हुए, आप स्त्री-पुरुषों और बच्चों की एक जीवित दीवार खड़ी कर देते और आक्रमणकारियों से कहते कि वे आपकी लाशों पर पैर रखकर आगे बढ़ें | आप कह सकते हैं कि यह चीज़ मनुष्य के अनुभव और उसकी सहनशक्ति के बाहर है | मैं कहता हूं कि ऐसी बात नहीं है | यह बिलकुल संभव है | पिछले साल गुजरात में स्त्रियों ने निडर होकर लाठीचार्ज का सामना किया और पेशावर में हजारों लोगों ने हिंसा पर उतारू हुए बिना गोलियों की बौछार झेली | कल्पना कीजिए कि ये स्त्री-पुरुष किसी अन्य देश के लिए सुरक्षित मार्ग मांगने वाली सेना के सामने डटे हैं | आप शायद कहेंगे कि सेना इतनी क्रूर होती है कि इन्हें मारकर इनके शवों के ऊपर

———————

*एक स्विस नागरिक द्वारा उठाए गए प्रश्न |

से निकल जाएगी | मेरा उत्तर होगा कि अपना अस्तित्व मिटाकर आपने अपने कर्तव्य का निर्वाह कर दिया | जो सेना निर्दोष स्त्री-पुरुषों के शवों पर से चलकर जाने का साहस करेगी, वह दुबारा यह प्रयोग नहीं कर पाएगी | आप चाहें तो इस बात में अविश्वास कर सकते हैं कि स्त्री-पुरुषों की विशाल संख्या इतने साहस का प्रदर्शन कर सकती है, पर तब आपको यह मानना होगा कि अहिंसा पर आचरण करने के लिए व्यक्ति का दृढ़निश्चयी होना आवश्यक है | अहिंसा दुर्बल का हथियार कभी नहीं रही, इसके लिए पूर्णतया निर्भीक हृदय चाहिए | *(यंग, 31-12-1931, पृ. 427)*

बड़ी शक्तियां और निरस्त्रीकरण

बड़ी शक्तियों के सामने....यह मार्ग खुला है कि वे जिस दिन चाहें, अहिंसा को अपनाकर गौरवान्वित हों और आगामी पीढ़ियों का चिर आभार अर्जित करें | यदि वे अथवा उनमें से कोई भी शक्ति विनाश के भय को अपने मन से निकालकर अपने को निरस्त्र कर सके तो इससे शेष राष्ट्रों को अपना मानसिक संतुलन फिर से कायम करने में अपने आप सहायता मिल जाएगी | लेकिन तब इन बड़ी शक्तियों को अपनी साम्राज्यवादी आकांक्षाओं का त्याग करना होगा, पृथ्वी के तथाकथित असभ्य अथवा अर्ध-सभ्य राष्ट्रों का शोषण बंद करना पड़ेगा तथा अपने रहन-सहन के ढंग में बदलाव लाना होगा | इसका अर्थ है संपूर्ण क्रांति | बड़ी शक्तियों से यह आशा करना कठिन है कि वे सामान्य रूप से उस दिशा को छोड़कर अचानक एक विपरीत दिशा पकड़ सकेंगी जिसमें अब तक वे

चलती रही हैं और जिसमें, उनकी धारणा के अनुसार, उन्हें विजय पर विजय मिलती गई है | लेकिन चमत्कार तो पहले भी हुए हैं और इस अत्यंत नीरस युग में भी हो सकते हैं | बुराई को मिटाने की ईश्वर की शक्ति पर अंकुश लगाने का साहस किसमें है ? एक बात निश्चित है | यदि शस्त्रीकरण की होड़ जारी रही तो इसमें परिणामस्वरूप ऐसा भीषण नरसंहार होगा जिसकी मिसाल पूरे इतिहास में नहीं मिलेगी | इसमें अगर कोई राष्ट्र विजयी हुआ भी और वह नष्ट होने से बच गया तो उसकी विजय जीवित मृत्यु के समान होगी | इस सर्वनाश से बचने का एक ही उपाय है कि हम हिम्मत करके अहिंसा के तरीके को उसके समस्त गौरवपूर्ण निहितार्थों सहित बिना किसी शर्त के अंगीकार कर लें | *(हरि, 12-11-1938, पृ. 328)*

(आ) आततायीपन बनाम अहिंसा

"उन राष्ट्रों का क्या किया जाए जो आततायी राष्ट्र हैं, यदि मैं इस प्राय:प्रयुक्त अभिव्यक्ति का प्रयोग करूं ? अमरीका में कुछ आततायी दस्यु थे | वहां की स्थानीय और राष्ट्रीय पुलिस ने सख्त कदम उठाकर उनका सफाया कर दिया | क्या हम राष्ट्रों के बीच आततायीपन को समाप्त करने के लिए ऐसा ही कोई उपाय नहीं कर सकते – मंचूरिया में अफीम के विष का जघन्य प्रयोग, अबीसीनिया और स्पेन में हुए दुष्कृत्य, आस्ट्रिया का सहसा अभिग्रहण और चेकोस्लोवाकिया का मामला आततायीपन के उदाहरण हैं ?"

यदि विश्व के मनीषियों ने अहिंसा की भावना को आत्मसात न किया तो उन्हें पारंपरिक ढंग से इस आततायीपन का मुकाबला करना पड़ेगा | लेकिन उससे यह सिद्ध होगा कि हम सभी जंगल के नियम से अधिक ऊपर नहीं उठ पाए हैं, कि अभी हमने ईश्वर द्वारा मनुष्य को दी गई विरासत का मूल्य नहीं समझा है, कि 1900 वर्ष पुराने ईसाई धर्म और उससे भी प्राचीन हिंदू तथा बौद्ध धर्म और इस्लाम (यदि मैंने उसे ठीक पढ़ा है) के उपदेशों के बावजूद हमने मानवों के रूप में अभी कोई विशेष प्रगति नहीं की है | लेकिन जहां मैं उन लोगों के द्वारा हिंसा के प्रयोग को समझ सकता हूं जिनमें अहिंसा की भावना नहीं है, वहीं मैं चाहूंगा कि जो अहिंसा को जानते हैं, वे पूरा जोर लगाकर यह प्रदर्शित करें कि आततायीपन का मुकाबला भी अहिंसा से ही करना होगा | बात यह है कि आप बल का प्रयोग चाहे जितने औचित्यपूर्वक करें, पर वह अंतत: हमें उसी दलदल में फंसा देगा जिसमें हिटलर और मुसोलिनी की ताकत ने फंसाया | इनके बीच केवल मात्रा का भेद होगा | आप और हममें से जो अहिंसा में विश्वास करते हैं, उन्हें संकटपूर्ण स्थिति में इसका इस्तेमाल करने से नहीं चूकना चाहिए | अगर हमें एक क्षण के लिए यह भी लगे कि हम अपने सिर दीवालों से टकरा रहे हैं तो भी हमें आतताइयों तक के हृदयों में प्रेमभाव जगाने के प्रयास में हताशा का अनुभव नहीं करना चाहिए | *(हरि, 10-12-1938, पृ. 372)*

अहिंसक विकल्प

अहिंसा की तराजू पर तोलते हुए मुझे कहना होगा कि 40 करोड़ की जनसंख्या वाले चीन जैसे बड़े और सुसंकृत देश को यह शोभा नहीं देता कि वह जापानी आक्रमण का सामना जापानी तरीकों को अपनाते हुए ही करे | यदि चीनियों में मेरी धारणा वाली अहिंसा होती तो उनके लिए वैसी विनाशक मशीनों का कोई उपयोग न रह जाता जैसी जापान के पास थीं | तब चीन के लोग जापानियों से कहते, 'अपनी सब मशीनें ले आओ, हम अपनी आधी जनसंख्या तुम्हें भेंट करते हैं | लेकिन शेष 20 करोड़ चीनी तुम्हारे सामने घुटने नहीं टेकेंगे |' अगर चीन ने ऐसा किया होता तो जापान उसका गुलाम हो गया होता | *(हरि, 24-12-1938, पृ. 394)*

....पोलैंडवासियों का जर्मनी की अपेक्षाकृत बहुत बड़ी सेना, सैनिक साज-सामान और ताकत के सामने बहादुरी से डट जाना लगभग अहिंसा ही थी | मुझे इस कथन को बार-बार दुहराते हुए कोई हिचक नहीं होनी चाहिए | आप 'लगभग' शब्द को पूरा महत्व दें | हम संख्या में 40 करोड़ हैं | अगर हम एक विशाल सेना खड़ी कर लें और विदेशी आक्रमण का मुकाबला करने की तैयारी करें तो हम उसे अहिंसक तो छोड़िए, 'लगभग' अहिंसक भी किस तरह कह पाएंगे ? पोलैंडवासियों पर शत्रु जिस तरह झपटा, उसके लिए वे तैयार नहीं थे | जब हम सैनिक तैयारी की बात करते हैं तो हम संभावित हिंसा का मुकाबला अपनी श्रेष्ठतर हिंसा से करने का ध्येय सामने रखते हैं | यदि भारत ने कभी स्वयं को इस रूप में तैयार किया तो वह विश्व-शांति के लिए सबसे बड़ा खतरा बन जाएगा | अगर हमने यह रास्ता अख्त्यार किया तो हमें यूरोपीय राष्ट्रों की तरह शोषण का रास्ता भी चुनना होगा | *(हरि, 25-8-1940, पृ. 261*

(इ) प्रेम के द्वारा शांति

हो सकता है कि अंतर्राष्ट्रीय मामलों में प्रेम के नियम को मान्यता मिलने में अभी काफ़ी समय लगे | सरकारी तंत्र विभिन्न राष्ट्रों के नागरिकों के बीच रुकावट बन जाते हैं और उनके हृदयों को मिलने नहीं देते | फिर भी....हम देख सकते हैं कि दुनिया किस तरह इस तथ्य को अधिकाधिक समझती जा रही है कि जिस प्रकार व्यक्तियों की पारस्परिक समस्याएं ताकत के जोर पर नहीं सुलझाई जा सकतीं, उसी प्रकार राष्ट्रों के आपसी झगड़ों को भी ताकत का सहारा लेकर सुलझाना संभव नहीं है, बल्कि थल सेना और नौसेना की अपेक्षा असहयोग की आर्थिक शक्ति कहीं ज़्यादा शक्तिशाली और निर्णायक है | *(यंग, 23-6-1919, पृ. 50)*

जब तक किसी नयी ऊर्जा का दोहन करके उसका उपयोग शुरू नहीं किया जाता तब तक पुरानी उर्जाओं के नायक इस नवाचार को सैद्धांतिक, अव्यावहारिक, आदर्शात्मक आदि मानते रहेंगे | अंतर्राष्ट्रीय प्रेम के तारों को बिछाने में समय लग सकता है, लेकिन भौतिक बलप्रयोग के ऊपर अंतर्राष्ट्रीय असहयोग को अधिमान देना....अंतिम और सच्चे समाधान की दिशा में एक निश्चित प्रगति का परिचायक है | *(वही, पृ. 51)*

स्थायी शांति

स्थायी शांति की संभावना में विश्वास न करना मानव प्रकृति की ईश्वरपरायणता में अविश्वास करना है | अब तक किए गए उपाय इसलिए असफल हुए हैं कि उन्हें करने वालों के हृदयों में सच्चाई नहीं थी | इस चीज़ को उन्होंने समझा नहीं है | बात यह है कि जिस प्रकार कोई रसायनिक योग तब तक सही नहीं बन सकता जब तक उसकी सभी शर्तें पूरी न की जाएं, उसी प्रकार शर्तों के अंशत: पालन से शांति स्थापित नहीं की जा सकती | यदि मानव जाति के जाने-माने नेता, जिनके नियंत्रण में विनाश के उपकरण हैं, उन्हें त्यागने के निहितार्थों को पूरी तरह समझते हुए उनका पूर्ण त्याग कर दें तो शांति स्थापित हो सकती है | यह तब तक स्पष्टतया असंभव है जब तक बड़ी शक्तियां अपने साम्राज्यवादी मंसूबे को नहीं छोड़ देतीं | और, यह तब तक नहीं हो सकता जब तक बड़े राष्ट्र आत्मा का नाश करने वाली प्रतियोगिता, आवश्यकताओं के बहुलीकरण और उसके लिए अपनी भौतिक संपत्ति में वृद्धि करने में विश्वास रखना बंद नहीं कर देते | मुझे पक्का विश्वास है कि बुराई की असली जड़ जाग्रत ईश्वर के प्रति जाग्रत आस्था का अभाव है | यह कितनी भारी मानव त्रासदी है कि पृथ्वी के वे निवासी जो ईसा मसीह के संदेश में आस्था रखने का दावा करते हैं और ईसा को शांति का दूत मानते हैं, अपने आचरण में उस आस्था का कोई परिचय नहीं देते | इस बात को देखकर दुख होता है कि सच्चे ईसाई धर्मतत्वज्ञों ने ईसा के संदेश को गिने-चुने व्यक्तियों तक सीमित कर दिया है | मुझे यह बात बचपन से सिखाई गई है और मैंने इसकी सच्चाई को अनुभव की कसौटी पर कसकर देख लिया है कि आधारभूत मानवीय गुणों का विकास निम्नतम मनुष्य भी कर सकता है | यह असंदिग्ध संभावना ही मनुष्य को ईश्वर की शेष सृष्टि से भिन्न करती है | यदि एक राष्ट्र भी बिना शर्त त्याग का उत्तम कृत्य कर दिखाए तो हममें से अनेक लोग अपने जीवनकाल में ही पृथ्वी पर शांति की झलक पा सकेंगे|[125] *हरि में उद्धृत, कॉस्मोपोलिटन', न्यूयार्क को दिया गया संदेश, 16-5-1936, पृ. 109; (हरि, 18-6-1938, पृ. 153-54) भी*

शांति तब तक नहीं आएगी जब तक बड़ी शक्तियां साहस करके अपना निरस्त्रीकरण नहीं करेंगी | मुझे लगता है कि हाल की घटनाएं बड़ी शक्तियों को इसमें विश्वास करने के लिए बाध्य कर देंगी | मुझे इसमें अडिग विश्वास है, और यह विश्वास आधी शताब्दी तक अहिंसा पर लगातार अमल करने के बाद आज पहले से कहीं अधिक प्रबल हो गया है, कि मानव जाति को केवल अहिंसा ही बचा सकती है – बाइबिल को यदि मैंने ठीक से समझा है तो उसका मुख्य उपदेश भी यही है | *(हरि, 24-12-1938, पृ. 395)*

'तुष्टीकरण' नहीं

मैंने 'तुष्टीकरण' की तरफदारी कभी नहीं की है – यह शब्द आज निंदात्मक अर्थ देता है | मैं समस्त मानव जाति में शांति चाहता हूं, लेकिन इसके लिए हर कीमत चुकाने के वास्ते तैयार नहीं हूं, आक्रामक को तुष्ट करके या

आत्मसम्मान बेचकर तो कदापि नहीं | इसलिए जो यह समझता है कि मैं इन दोनों में से किसी बुराई का दोषी हूं, वह हमारे सम्मुख उपस्थित प्रयोजन को भारी हानि पहुंचाएगा | *(बांक्रा, 9-8-1942)*

मेरा अनुभव, जो निरंतर दृढ़ तथा गहन होता जाता है, मुझे बताता है कि सत्य और अहिंसा का अधिकतम पालन किए बिना व्यक्तियों और राष्ट्रों को शांति नहीं मिल सकती | प्रतिकार की नीति आज तक कभी सफल नहीं हुई है | *(यंग, 15-12-1927, पृ. 421)*

अहिंसक समाज

यह कहना आज फैशन की बात हो गई है कि समाज को अहिंसक तरीके से संगठित करना और चलाना संभव नहीं है | मैं इस मुद्दे पर बहस के लिए तैयार हूं | परिवार में जब पिता अपराधी बच्चे को थप्पड़ मारता है तो बच्चा उसका बदला लेने की बात नहीं सोचता | वह पिता की आज्ञा का पालन थप्पड़ के भय से नहीं करता बल्कि उसके पीछे पिता का जो आहत प्रेम है, उसके कारण करता है | मेरी राय में यही वह भावना है जिसके अनुसार समाज का संचालन होता है अथवा किया जाना चाहिए, जो बात परिवार पर लागू होती है वही समाज पर भी लागू होनी चाहिए | क्योंकि समाज एक वृहत्तर परिवार ही तो है | *(हरि, 3-12-1938, पृ. 358)*

युद्ध का अंत

मैं अपनी धारणा को फिर दुहरा दूं कि मित्र राष्ट्रों अथवा दुनिया में तब तक शांति स्थापित नहीं होगी जब तक वे युद्ध की प्रभाविता और उसके साथ जुड़े जबर्दस्त धोखे तथा कपट पर से अपना विश्वास नहीं उठा लेते और सभी प्रजातियों एवं राष्ट्रों की स्वतंत्रता तथा बराबरी पर आधारित सच्ची शांति की स्थापना के लिए दृढ़ निश्चय नहीं कर लेते | तमाम तरह के युद्धों को समाप्त करने के लिए प्रयासरत संसार में एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र के शोषण अथवा आधिपत्य के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता | केवल ऐसी ही दुनिया में, सैन्य दृष्टि से दुर्बल राष्ट्र अभित्रास अथवा शोषण के भय से मुक्त हो सकेंगे | *(बांक्रा, 18-4-1945)*

दुनिया में रहने का सभ्य तरीका सिर्फ यह है कि हिंसा का जवाब हिंसा से न दिया जाए, बल्कि उसे अपनी मित्रता के हाथ को खींचकर बेअसर किया जाए; साथ ही, आक्रामक द्वारा ताकत के जोर पर की गई मांग को मानने से इंकार कर दिया जाए | इसके अलावा कोई और तरीका हथियारों की होड़ को जन्म देगा; बीच-बीच में शांति के दौर आएंगे, पर वे लड़ाकू राष्ट्रों के लड़ते-लड़ते थक जाने के कारण आएंगे और उस दौरान भी वे उग्रतर हिंसा के लिए तैयारी जारी रखेंगे | उग्रतर हिंसा की तैयारी के दौर में दिखाई देने वाली शांति अनिवार्यत: अणु बम और वैसे ही संहारक अस्त्रों को जन्म देती है | यह अहिंसा और लोकतंत्र का पूर्ण नकार है – लोकतंत्र तो अहिंसा के बिना संभव ही नहीं है | *(हरि, 30-3-1947, पृ. 86)*

मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूं कि अगर दुनिया में शांति स्थापित होनी है तो उस लक्ष्य की प्राप्ति का साधन अहिंसा ही है, कुछ और नहीं | *(हरि, 20-7-1947, पृ. 243)*

शांतिवाद और शांतिवादी

सच्चा शांतिवादी सच्चा सत्याग्रही होता है | सत्याग्रही आस्था के बल पर कार्य करता है, इसलिए वह परिणाम की चिंता नहीं करता, क्योंकि वह जानता है कि यदि कार्य सच्चा है तो अभीष्ट परिणाम सुनिश्चित है |

....शांतिवादियों को रक्षात्मक तथा आक्रामक, दोनों प्रकार के युद्धों से कोई सरोकार रखने से दृढ़तापूर्वक इंकार करके अपनी आस्था को सिद्ध करना होगा | *(हरि, 15-4-1939, पृ. 90)*

.... शांतिवादियों को अपना जीवन ठीक 'सरमन ऑन द माउंट' के आदेशों के अनुसार जीना होगा और तब वे तत्काल पाएंगे कि उन्हें बहुत-सी बातों का त्याग करना है और बहुत-सी बातों को नया रूप देना है | सबसे बड़ी बात यह है कि उन्हें स्वयं को साम्राज्यवाद का फल चखने से वंचित रखना होगा.... *(हरि, 15-3-1942, पृ. 73)*

96. कल की दुनिया

भविष्य के विषय में जितनी अटकलें आज लगाई जा रही हैं, उतनी शायद पहले कभी नहीं लगानी पड़ीं | क्या हमारी दुनिया में हमेशा हिंसा का बोलबाला रहेगा ? क्या यहां सदा दरिद्रता, भुखमरी और दुख का साम्राज्य रहेगा ? क्या धर्म में हमारी आस्था और दृढ़ तथा व्यापक होगी या दुनिया नास्तिक हो जाएगी ? अगर समाज में भारी परिवर्तन आता है तो वह किस तरह आएगा ? युद्ध से या क्रांति से ? या, शांतिपूर्ण ढंग से ?

हर व्यक्ति के पास इन प्रश्नों के उत्तर अलग-अलग हैं, हर व्यक्ति कल की दुनिया का नक्शा अपनी आशाओं और अभिलाषाओं के हिसाब से बना रहा है | मैं केवल विश्वास के सहारे ही नहीं, बल्कि धारणा के बल पर कहता हूं | कल की दुनिया अहिंसा पर आधारित समाज होगी – ऐसा जरूर होगा | यह प्रथम नियम है; अन्य सभी वरदान इसी में से प्रकट होंगे | यह एक दूरस्थ लक्ष्य, एक अव्यावहारिक यूटोपिया मालूम हो सकता है लेकिन यह अप्राप्य कतई नहीं है, क्योंकि इस पर आज ही और अभी अमल किया जा सकता है | कोई भी व्यक्ति दूसरों की प्रतीक्षा किए बिना भावी संसार की जीवन-पद्धति को – अहिंसक पद्धति को – अपना सकता है | और यदि व्यक्ति ऐसा कर सकता है तो पूरे-पूरे व्यक्ति-समूह क्यों नहीं कर सकते ? समूचे राष्ट्र क्यों नहीं कर सकते ? लोग अक्सर शुरुआत करने से इसलिए हिचकते हैं कि उन्हें लगता है कि लक्ष्य को पूरी तरह प्राप्त नहीं किया जा सकेगा | हमारी यह मनोवृत्ति ही प्रगति के मार्ग की सबसे बड़ी रुकावट है – यह रुकावट ऐसी है जिसे हर आदमी, अगर वह चाहे तो, दूर कर सकता है |

समान वितरण

जहां तक मैं देख पा रहा हूं, कल की दुनिया का दूसरा महान नियम समान वितरण का है जो अहिंसा से ही उत्पन्न होता है | उस नियम का आशय यह नहीं है कि दुनिया की वस्तुओं का यादृच्छिक आधार पर विभाजन कर दिया जाएगा, बल्कि यह है कि प्रत्येक व्यक्ति के पास अपनी प्रकृत आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन उपलब्ध होंगे; उससे ज्यादा उसके पास कुछ नहीं होगा | एक मोटा उदाहरण लें तो यदि एक आदमी को प्रति सप्ताह चौथाई पौंड आटे की जरूरत है और दूसरे आदमी को पांच पौंड की तो उन दोनों को चौथाई-चौथाई पौंड या पांच-पांच पौंड आटा नहीं मिलना चाहिए बल्कि अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुसार मिलना चाहिए |

यह बात हमें उस मुद्दे पर ले आती है जो शायद कल की दुनिया के स्वरूप को निर्धारित करने वाला सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा है | यह समान वितरण किया किस तरह जाए ? क्या धनवानों से उनकी सारी संपत्ति छीन ली जाए?

अहिंसा का उत्तर है कि 'नहीं' | कोई भी ऐसी चीज़ जो हिंसक है, वह मानव जाति को स्थायी लाभ नहीं पहुंचा सकती | धनवानों से बलात संपत्ति छिनने का परिणाम यह होगा कि समाज को अनेक बड़ी प्रतिभाओं से वंचित

होना पड़ेगा; धनवान जानता है कि संपत्ति किस तरह अर्जित तथा खड़ी की जाती है, समाज को उसकी योग्यता से वंचित नहीं होना चाहिए | इसके बजाए करना यह चाहिए कि उसके पास उसकी संपत्ति रहने दी जाए और उसे उसमें से अपनी निजी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जितना उचित हो, उतना हिस्सा खर्च करने दिया जाए तथा शेष संपत्ति के विषय में वह न्यासी के रूप में काम करे और उसे समाज के हित में खर्च करे | ऐसे लोग हुए हैं और आज भी हैं | मेरी समझ में, ज्यों ही मनुष्य स्वयं को समाज का सेवक मानने लगता है, उसकी खातिर कमाता है और उसकी खातिर खर्च करता है त्यों ही उसकी कमाई अच्छा रूप धारण कर लेती है और उसका व्यवसाय रचनात्मक बन जाता है |

मानव प्रकृति में परिवर्तन

लेकिन क्या अहिंसा के उस संपूर्ण विचार को अपनाने के लिए मानव प्रकृति को बदलने की आवश्यकता नहीं होगी ? क्या इतिहास में ऐसे बदलाव का कोई उल्लेख मिलता है ? जी हां, अवश्य मिलता है | अनेक व्यक्तियों ने घटिया, निजी और परिग्रहशील मनोवृत्ति का त्याग करके संपूर्ण समाज के संबंध में सोचा है और उसके हितार्थ काम किया है | यदि ऐसा बदलाव एक आदमी में आया है तो बहुतों में भी आ सकता है |

भविष्य

मैं कल की दुनिया में न दरिद्रता देखता हूं, न युद्ध, न क्रांतियां, न रक्तपात | उस दुनिया में ईश्वर के प्रति इतनी व्यापक और गहन आस्था होगी जैसी पहले कभी नहीं थी | व्यापक अर्थ में देखा जाए तो विश्व का अस्तित्व ही धर्म पर निर्भर है | उसे मिटाने के सभी प्रयास असफल हो जाएंगे | *(नावावे, पृ. 49-51)*

विश्व परिसंघ का ढांचा केवल अहिंसा की नींव पर ही खड़ा किया जा सकता है; अंतर्राष्ट्रीय मामलों में हिंसा को पूरी तरह त्याग देना होगा | *गांकग, 1942-44, पृ. 143 (गांकग, 1942-44, पृ. 143)*

15. प्रासंगिक विचार

अंधविश्वास

ज्यों ही हम सही ढंग से जीना आरंभ करते हैं, अंधविश्वास और अवांछनीय बातें अपने आप हमारे जीवन से हट जाती हैं | मैं अपना सरोकार विश्वास से नहीं रखता, बल्कि सही बात को करने के लिए कहने से रखता हूं | इस पद्धति को अपनाते ही विश्वास अपने आप सही रूप ले लेते हैं | *(यंग, 11-8-1927, पृ. 251)*

मैं उन सभी अंधविश्वासों की आंख मूंदकर पूजा नहीं करता जो 'प्राचीन' के नाम पर चले आ रहे हैं | मैंने कभी बुरी अथवा अनैतिक बात को मिटाने में हिचक का अनुभव नहीं किया है, भले ही वह कितनी ही प्राचीन हो | एक बात जरूर है कि मैं प्राचीन संस्थाओं का पुजारी हूं और मुझे इस बात को सोचकर दुख होता है कि हर आधुनिक चीज़ के पीछे पागल होकर दौड़ने वाले लोग अपनी सभी प्राचीन परंपराओं की निंदा करने लग जाते हैं और अपने जीवन में उन्हें कोई स्थान नहीं देते | *(विगांसी, पृ. 107)*

मेरा विश्वास है कि मेरे अंदर अंधविश्वास नहीं है | सत्य केवल इसलिए सत्य नहीं है कि यह प्राचीन है | न इसे अनिवार्यत: संदेह की दृष्टि से केवल इसीलिए देखा जाना चाहिए कि यह प्राचीन है | जीवन के कुछ मौलिक सिद्धांत हैं जिन्हें सिर्फ इसीलिए नहीं छोड़ा जा सकता कि उन्हें जीवन में लागू करना कठिन है | *(हरि, 14-3-1936, पृ. 36)*

अच्छाई

कहा जाता है कि जो स्वयं अच्छा है उसके लिए सारी दुनिया अच्छी बन जाती है | व्यक्ति के बारे में तो यह बात सही है, लेकिन अच्छाई गत्यात्मक रूप तभी धारण करती है जब बुराई सामने होने पर भी अच्छाई पर अमल किया जाए | अगर आप अच्छाई के बदले अच्छाई का व्यवहार करते हैं तो यह एक तरह का सौदा है और इसमें कोई प्रशंसा की बात नहीं है | लेकिन अगर आप बुराई के बदले अच्छाई करते हैं तो यह एक मुक्ति देने वाला बल सिद्ध होता है | तब अच्छाई के सामने बुराई पराजित हो जाती है और अच्छाई का प्रभाव बढ़ते-बढ़ते ऐसा रूप धारण कर लेता है जो अदम्य होता है | *(हरि, 2-6-1946, पृ. 166)*

अनासक्ति

ऊपरी तौर पर, मेरे शारीरिक स्वास्थ्य का कारण यह है कि मैं खाने, पीने और सोने में नियमित आदतों का कठोरतापूर्वक पालन करता हूं; एक कारण यह भी है कि मैंने 1901 से अपने जीवन में प्राकृतिक चिकित्सा पर पूरा-पूरा बल दिया है....लेकिन इनसे भी बड़ी बात यह है कि मैं मन से अनासक्त रहने का प्रयास करता हूं |

अनासक्ति से मेरा तात्पर्य है कि जब तक आपका ध्येय शुद्ध है और आपके द्वारा अपनाये गए साधन ठीक हैं तब तक आपको इस बात की चिंता नहीं करनी चाहिए कि आपने जो कुछ किया है उसका वांछित परिणाम निकलेगा या नहीं | सच्ची बात यह है कि यदि आप अपने साधनों को सही रखें और शेष भगवान के ऊपर छोड़ दें तो अंतत: सब कुछ ठीक ही होता है | *(हरि, 7-4-1946, पृ. 71-72)*

यदि मेरा पिछला व्यवहार ऐसा नहीं है कि मैं अपने वर्तमान जीवन को चाहे कितना ही ठीक रखूं, उसे पूर्ण आयुष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती तो भी मैं मन और शरीर के बीच पूर्ण अनासक्ति का विकास करके अपनी पिछली गलतियों के प्रभाव को दूर कर सकता हूं | अनासक्ति, पिछले दोषयुक्त आचरण और विरासत तथा पर्यावरण के दोषों को दूर करने में सहायक होती है |

सामान्यतया, प्रकृति के नियम से, जाने अथवा अनजाने, किए गए किसी भी विचलन, उदाहरण के लिए, क्रोध, बददिमागी, अधैर्य, दाम्पत्य जीवन की गलतियों आदि का दंड अवश्य भुगतना पड़ता है | लेकिन यह पक्की बात है कि अगर आप पूर्ण अनासक्त भाव का विकास कर लें तो आप इन सब दोषों को मिटा सकते हैं | "जब तक तेरा पुनर्जन्म नहीं होगा, तुझे चिरस्थायी जीवन की प्राप्ति नहीं हो सकती |"

इसको उलटकर कहें तो यों कह सकते हैं कि अगर तुम्हारा 'पुनर्जन्म' हो जाए तो तुम्हें चिरस्थायी जीवन प्राप्त हो सकता है | मृत्यु किसी बाधा को नहीं मानती | आप अपने जीवन का कायापलट करके नयी जिन्दगी यहीं और अभी शुरू कर सकते हैं | यदि आप अनासक्ति की कुल्हाड़ी से अपने भूतकाल और उसकी विरासत को काट सकें तो फिर वह आपको किसी प्रकार से परेशान नहीं कर सकते | *(वही, पृ. 72)*

कवि, आत्मविश्लेषण के क्षण में, अपने आपसे पूछता है : "हे मनुष्य, तूने भगवान का नाम लेना क्यों छोड़ दिया ? तूने न क्रोध छोड़ा, न वासना छोड़ी, न लोभ छोड़ा, बस तू सच को भूल गया | कैसी त्रासदी है कि तूने कौड़ियों की खातिर भगवत्प्रेम रूपी अनमोल हीरे को त्याग दिया ! तू क्यों नहीं इन सब प्रवंचनाओं का त्याग करके अपने आपको ईश्वर की कृपा के भरोसे छोड़ देता ?" इसका तात्पर्य यह नहीं है कि अगर किसी के पास धन-दौलत है तो वह उसे फेंक दे और अपनी पत्नी तथा बच्चों को घर से बाहर निकाल दे | इसका सीधा-सा मतलब यह है कि आदमी को इन चीज़ों के प्रति आसक्ति का त्याग कर देना चाहिए और अपना सर्वस्व भगवान को समर्पित कर देना चाहिए तथा ईश्वर ने जो कुछ हमें दिया है उसका उपयोग उसी की सेवा के निमित्त करना चाहिए | इसका यह भी मतलब है कि यदि हम सच्ची भावना के साथ भगवान का नाम लेंगे तो हमें वासना, असत्य और खोटे विकारों से अपने आप छुटकारा मिल जाएगा | *(हरि, 28-4-1946, पृ. 111)*

अदम्य उत्साह और उसके साथ पूर्ण अनासक्ति सभी सफलताओं की कुंजी है | *(हरि, 29-9-1946, पृ. 336)*

अनुशासन

अनुशासन के मामले में न कोई बड़ा है, न छोटा | जो राजा अनुशासन के मूल्य को समझता है वह उन मामलों में जिनका निर्णय परिचर के हाथ में है, परिचर की बात को ही सर्वोपरि रखता है | *(यंग, 25-6-1925, पृ. 220)*

स्वतंत्रता के उच्चतम स्वरूप के लिए अधिकतम अनुशासन और विनम्रता की अपेक्षा होती है | जो स्वतंत्रता अनुशासन और विनम्रता से उद्‌भूत होती है उसे कोई नहीं छीन सकता; बे-लगाम उच्छृंखलता स्वयं अपने और अपने पड़ोसियों के प्रति असभ्यता का चिह्न है | *(यंग, 3-6-1926, पृ. 203)*

मैं ऐसे अवसरों की कल्पना कर सकता हूं जब किसी बात के कारणों पर विचार करने की प्रतीक्षा किए बगैर चुपचाप उस बात का पालन करना आवश्यक होता है | बुनियादी तौर पर, यह सिपाही का गुण है और कोई राष्ट्र तब तक उल्लेखनीय प्रगति नहीं कर सकता जब तक कि उसके निवासियों की बहुत बड़ी संख्या के पास यह गुण न हो | लेकिन इस प्रकार बिना कोई तर्क किए बात को मानने के अवसर बहुत विरल होते हैं और किसी भी सुव्यवस्थित समाज में इसका विरल होना आवश्यक है | *(यंग, 24-6-1926, पृ. 226)*

यदि हम कोई महान और स्थायी उपलब्धि के आकांक्षी हैं तो हमें कठोर अनुशासन में चलना होगा और यह अनुशासन केवल शास्त्रार्थ और तर्क-वितर्क से पैदा नहीं हो सकता | अनुशासन कष्टमय साधना है | जब हमारे उत्साही युवक बिना किसी संरक्षण के उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य करने का प्रशिक्षण लेंगे तभी वे समझेंगे कि उत्तरदायित्व और अनुशासन क्या होते हैं | *(यंग, 19-5-1927, पृ. 160)*

स्वैच्छिक अनुशासन सामूहिक स्वतंत्रता की पहली शर्त है....जो राष्ट्र अपनी स्वाधीनता की ओर बढ़ रहा है, उसके लिए अनुशासन की आवश्यकता उससे कहीं ज़्यादा है जो फौजियों के कूच के लिए अपेक्षित होती है | इसके अभाव में रामराज्य, जो पृथ्वी पर ईश्वर के साम्राज्य का ही दूसरा नाम है, कोरा सपना बनकर रह जाएगा | *(हरि, 18-8-1946, पृ. 264)*

जो लोग एक महान राष्ट्र बनाने के आकांक्षी हैं, उनके लिए व्यापक अनुशासन एक आवश्यक शर्त है | *(हरि, 11-1-1948, पृ. 507)*

अमरता

मैं आत्मा की अमरता में विश्वास रखता हूं | इसे समझाने के लिए मैं समुद्र की उपमा देना चाहूंगा | समुद्र जल की बूंदों से मिलकर बना है जिसमें हर बूंद का अपना अस्तित्व है, लेकिन फिर भी वह संपूर्ण समुद्र का एक अंश है, "वह अनेक में एक है" जीवन के समुद्र में हम सब छोटी-छोटी बूंदों के समान ही हैं |

मेरा सिद्धांत कहता है कि मुझे समस्त प्राणिजगत के साथ अपना तादात्म्य स्थापित करना चाहिए और ईश्वर के सान्निध्य में जीवन के ऐश्वर्य में भागीदारी करनी चाहिए | इस जीवन का पूर्ण योग ही ईश्वर है | *(इंके, पृ. 245)*

आत्मशुद्धीकरण

आत्मशुद्धीकरण के बिना समस्त जीवजगत के साथ तादात्म्य स्थापित करना असंभव है; आत्मशुद्धीकरण के बिना अहिंसा के नियम का पालन एक कोरा सपना बनकर ही रह जाएगा; जिस व्यक्ति का हृदय निर्मल नहीं है उसे ईश्वर-प्राप्ति कभी नहीं हो सकती | अत: आत्मशुद्धीकरण से तात्पर्य जीवन के सभी क्षेत्रों में शुद्धीकरण से है | शुद्धीकरण एक संक्रामक वस्तु है, जिसका अर्थ यह है कि आत्मा के अपने शुद्धीकरण के परिणामस्वरूप उसके आसपास का वातावरण भी अनिवार्यत: शुद्ध हो जाता है | लेकिन शुद्धीकरण का मार्ग कठिन और ढालू है | पूर्ण शुद्ध होने के लिए मनुष्य का मनसा, वाचा, कर्मणा विकारमुक्त होना आवश्यक है; उसे प्रेम और घृणा, आसक्ति और विकर्षण की विरोधी धाराओं के ऊपर उठना होता है | मैं जानता हूं कि निरंतर और अथक प्रयास के बावजूद मुझमें अभी तक यह त्रिविध शुद्धि नहीं आ पाई है | यही कारण है कि दुनिया की प्रशंसा मुझे छू नहीं पाती; सच पूछा जाए तो यह प्राय: मुझे दंश ही देती है | सूक्ष्म मनोविकारों को जीतना हथियारों की मदद से दुनिया को जीत लेने से भी अधिक कठिन मालूम होता है | *(ए, पृ. 371)*

आदर्श

आदर्श का गुण उसकी सीमाहीनता में है | लेकिन यद्यपि धार्मिक आदर्श, स्वभावतया, हम अपूर्ण मानवों के लिए अप्राप्य होने चाहिए और हम जितने ही उनके निकट पहुंचें, अपनी सीमाहीनता के गुण के कारण वे हमसे उतने ही दूर होते जाने चाहिए, पर चूंकि हमें उनकी वास्तविकता और सच्चाई का अपने शरीर के अस्तित्व से भी अधिक पक्का निश्चय होता है इसलिए वे हमें अपने हाथ-पैरों से भी ज़्यादा नजदीक मालूम होते हैं | अपने आदर्शों के प्रति यही आस्था सच्चा जीवन है बल्कि, कहना चाहिए कि मनुष्य का सर्वस्व है |*(यंग, 22-11-1928, पृ. 391)*

संभव है, हम लड़खड़ा जाएं और गिर जाएं, लेकिन हम फिर उठ खड़ें होंगे; यदि हम संघर्ष से भाग खड़े नहीं होते तो बस इतना ही काफ़ी है | *(नव, 7-9-1919)*

ईमानदारी

सौ फीसदी ईमानदारी बरतते हुए व्यवसाय चलाना कठिन तो है पर असंभव नहीं है | सच्चाई यह है कि व्यवसाय में जितनी ही ज़्यादा ईमानदारी होगी, उतनी ही अधिक सफलता उसमें मिलेगी | इसीलिए व्यवसाइयों में यह कहावत चली है कि : "ईमानदारी सबसे अच्छी नीति है"....यह सही है कि ईमानदारी बरतते हुए विपुल धन-संपत्ति एकत्र नहीं की जा सकती | "यह बिलकुल सच है कि ऊंट भले ही सुई के छेद में से निकल जाए, पर धनवान

व्यक्ति स्वर्ग के भीतर प्रवेश नहीं पा सकता....” ईमानदारी व्यवसायी के संसाधनों पर असंभव भार कभी नहीं बनती | *(हरि, 28-7-1946, पृ. 233)*

कामना

आदमी की खुशी वस्तुत: उसके संतोष में निहित होती है | किसी व्यक्ति के पास चाहे जितनी धन-दौलत हो, पर अगर वह असंतुष्ट है तो वह अपनी कामनाओं का दास बन जाता है | और सचमुच, कामनाओं की दासता से बढ़कर और कोई दासता नहीं है | सभी ऋषि-मुनियों ने पूरा बल देकर यह बात कही है कि मनुष्य ही अपना सबसे बड़ा शत्रु और अपना सबसे बड़ा मित्र है | यह उसके अपने हाथ में है कि वह स्वतंत्र रहे या दास का जीवन व्यतीत करे | और जो बात व्यक्ति के बारे में सही है, वही समाज के बारे में भी है | *(हरि, 1-2-1942, पृ. 27)*

क्षमा

क्षमा वीर का गुण है, कायर का नहीं | विराट के यहां अज्ञातवास व्यतीत करते हुए जब पांडवों में से एक भाई को अचानक चोट लग गई तो दूसरे भाइयों ने न केवल इस घटना को छिपाया बल्कि इस डर से कि अगर रक्त की एक बूंद भी पृथ्वी पर गिर गई तो विराट का अनर्थ हो सकता है, उन्होंने रक्त को एक सोने की कटोरी लगाकर पृथ्वी पर गिरने से रोक लिया | मैं चाहता हूं कि प्रत्येक भारतीय, वह चाहे हिंदू हो अथवा मुसलमान, ईसाई, पारसी या सिख हो, अपने अंदर इसी कोटि की सहिष्णुता और साहस का विकास करे | *(हरि, 30-3-1947, पृ. 86)*

गुरु

मुझे हिंदुओं के गुरु बनाने के सिद्धांत और आध्यात्मिक सिद्धि के लिए उसके महत्व पर विश्वास है | मैं समझता हूं कि इस सिद्धांत में काफी सच्चाई है कि गुरु के बिना सच्चा ज्ञान प्राप्त करना असंभव है | रोजमर्रा के मामले में तो अपूर्ण शिक्षक से भी काम चल सकता है, किंतु आध्यात्मिक मामले में इसकी गुंजाइश नहीं है | वहां तो पूर्ण ज्ञानी को ही गुरु के सिंहासन पर बैठाया जा सकता है | *(ए, पृ. 64-65)*

यदि मेरा कोई गुरु होता – और मैं गुरु की खोज में हूं – तो मैं अपने शरीर और आत्मा के साथ उसके समक्ष अपना समर्पण कर देता | लेकिन अविश्वास के इस युग में सच्चा गुरु मिलना कठिन है | कोई ऐसा-वैसा गुरु न सिर्फ व्यर्थ सिद्ध होगा, बल्कि निश्चित रूप से हानिकारक भी होगा |

इसलिए मैं सभी लोगों को अपूर्ण व्यक्ति को गुरु बनाने के विरुद्ध चेतावनी देना चाहता हूं | ऐसे व्यक्ति को गुरु बनाने से जो “यह नहीं जानता कि वह क्या नहीं जानता”, अच्छा यह है कि आदमी अंधेरे में हाथ-पैर मारे और लाखों त्रुटियां करते हुए सत्य तक पहुंचने का रास्ता स्वयं निकाले | क्या आज तक किसी आदमी ने अपने गले में पत्थर बांधकर तैरना सीखा है ? *(यंग, 3-12-1925, पृ. 422)*

गुरु की मेरी धारणा कोई साधारण धारणा नहीं है | गुरु जब तक पूर्ण नहीं होगा तब तक मेरी संतुष्टि नहीं होगी | मैं ऐसे गुरु की खोज में हूं जो इस पार्थिव शरीर में निवास करते हुए भी भ्रष्टाचार से सर्वथा मुक्त हो, वासनाओं के आगे झुकने वाला न हो, द्वंद्वों से मुक्त हो, सत्य और अहिंसा का अवतार हो और इसलिए न किसी से डरता हो, न किसी को डराता हो | *(यंग, 17-6-1926, पृ. 215)*

तीन महान प्रभाव

मेरे जीवन पर तीन महापुरुषों ने गहरी छाप छोड़ी है और मुझे मुग्ध किया है : रायचंदभाई ने अपने सजीव संपर्क के द्वारा; टालस्टॉय ने अपनी पुस्तक 'द किंगडम आफ गॉड इज विदिन यू' से; तथा रस्किन ने अपनी पुस्तक 'अनटू दिस लास्ट' से | *(ए, पृ. 65)*

मैं मानता हूं कि मुझे अपनी कुछ गहनतम धारणाएं रस्किन के इस महान ग्रंथ में प्रतिबिंबित दिखाई दीं और इसीलिए इसने मुझे अत्यंत प्रभावित किया और मेरे जीवन की कायापलट कर दी....मेरी समझ के अनुसार 'अनटू दिस लास्ट' की सीख इस प्रकार है :

(1) सबकी भलाई में ही व्यक्ति की भलाई निहित है |

(2) चूंकि सभी व्यक्तियों को अपने काम के द्वारा आजीविका कमाने का समान अधिकार है, इसलिए एक वकील का काम भी उतना ही मूल्यवान समझा जाना चाहिए जितना किसी नाई का |

(3) श्रमिक अर्थात जमीन को जोतने वाले और दस्तकार का जीवन ही जीने योग्य है |

उपर्युक्त में से पहली सीख के बारे में मुझे पहले से ही ज्ञान था | दूसरी सीख का मुझे किंचित अस्पष्ट बोध था | तीसरी सीख मेरे ध्यान में कभी आई ही नहीं थी | 'अनटू दिस लास्ट' ने मेरे सामने यह बात दिन के प्रकाश की तरह स्पष्ट कर दी कि दूसरी और तीसरी सीख पहली सीख में समाहित हैं | *(वही, पृ. 220-21)*

मेरे राजनीतिक गुरु

मैंने गोखले को अपना राजनीतिक गुरु बताया है | लेकिन मुझे कहते हुए खेद होता है कि आध्यात्मिक मामलों में मुझे अभी तक कोई गुरु नहीं मिला जिसे मैं स्वयं को पूरी तरह समर्पित कर सकूं और जिसकी सम्मति को उसी प्रकार अविचल भाव से और बिना कोई शंका किए मान लूं जिस प्रकार राजनीतिक मामलों में मैं गोखले की बात को मानता था | संभवत: मैं अभी आध्यात्मिक गुरु के योग्य नहीं बना पाया हूं, क्योंकि मेरा विश्वास है कि जब आप इस योग्य हो जाते हैं तो आध्यात्मिक गुरु स्वयं चलकर आपके पास आ जाता है | बल्कि सच पूछा जाए तो जब आप उसके लिए तैयार होते हैं तो वह आपको स्वयं ही खोज लेता है |

यद्यपि मेरे हृदय में आध्यात्मिक गुरु का सिंहासन अभी तक खाली है, पर रायचंदभाई के बाद आधुनिक पुरुषों में टालस्टॉय ने मेरे जीवन पर सबसे गहरी आध्यात्मिक छाप छोड़ी है; तीसरे नंबर पर रस्किन का नाम आता है | 40 वर्ष पहले जब मैं संशय और विश्वास के घोर संकट से गुजर रहा था तब मेरे हाथ टालस्टॉय की पुस्तक 'द किंगडम आफ गॉड इज विदिन यु' लगी, जिसने मुझ पर बहुत गहरी छाप छोड़ी | उस समय मुझे हिंसा में आस्था थी | इस पुस्तक को पढ़ने से मेरी शंकाएं दूर हो गई और मैं अहिंसा का पक्का पुजारी बन गया | टालस्टॉय के जीवन की जिस बात ने मुझे सबसे अधिक आकर्षित किया वह यह थी कि उन्होंने जिस बात का प्रचार किया उस पर अपने जीवन में पूरा-पूरा अमल भी किया और सत्य के मार्ग पर चलने के लिए कोई भी त्याग अधिक नहीं माना | *(यंग, 20-9-1928, पृ. 319)*

मेरे कोई शिष्य नहीं हैं; अभी तो मैं गुरु की खोज में हूं और स्वयं शिष्य बनने का आकांक्षी हूं | *(हरि, 19-12-1936, पृ. 362)*

गोपनीयता

सारे पाप छिपाकर किए जाते हैं | जिस क्षण हमें यह एहसास हो जाए कि ईश्वर हमारे विचारों तक का साक्षी है उसी क्षण हम स्वतंत्र हो गए समझिए | *(यंग, 5-6-1924, पृ. 186)*

मैं गोपनीयता को एक पाप मानता हूं, विशेषकर राजनीतिक मामलों में | यदि हम यह समझ जाएं कि हम जो कुछ कहते और करते हैं ईश्वर उसका साक्षी होता है तो हम दुनिया में कभी किसी से कोई बात नहीं छिपाएंगे | क्योंकि तब हम अपने सृष्टिकर्ता के समक्ष गंदे विचार मन में भी नहीं लाएंगे, उन्हें मुंह पर लाने की बात तो दूर रही | गंदी चीजों के लिए ही गोपनीयता और अंधकार की जरूरत महसूस होती है | मनुष्य की प्रकृति गंदगी को छिपाने की है; हम गंदी चीज़ें देखना या छूना पसंद नहीं करते, और उन्हें अपनी नजरों से दूर कर देना चाहते हैं | यही बात हमारी वाणी पर भी लागू होनी चाहिए | मैं तो कहूंगा कि जो विचार हम दुनिया से छिपाना चाहते हैं, उन्हें अपने मन में भी नहीं लाना चाहिए | *(यंग, 22-2-1920, पृ. 3)*

मैं विशुद्ध अहिंसक कार्रवाई और प्रकट साधनों का पक्षधर हूं और गोपनीयता को घृणा की दृष्टि से देखता हूं | *(हरि, 10-3-1946, पृ. 37)*

जो संस्था पूरी तरह खुले रूप में कार्य नहीं करती वह लोगों के जीवन या धर्म को सुरक्षा प्रदान नहीं कर सकती| *(हरि, 20-4-1947, पृ. 120)*

घुड़दौड़

मैं घुड़दौड़ के बारे में कुछ नहीं जानता | उसके साथ जो-जो बातें जुड़ी हैं उन्हें लेकर मैं हमेशा इसे एक भयावह वस्तु मानता रहा हूं | मुझे पता है कि घुड़दौड़ ने बहुत-से लोगों को बर्बाद कर दिया है | *(यंग,27-4-1921,पृ.132)*

जहां तक घोड़ों पर दांव लगाने का संबंध है, मेरा विचार है कि यह भी पश्चिम से ली गई अनेक चीज़ों में से एक है और अगर मेरा बस चले तो मैं घोड़ों पर खेले जाने वाले जुए को जितना कुछ कानूनी संरक्षण प्राप्त है, उसे समाप्त कर दूं....मैंने लोगों को यह दलील देते हुए सुना है कि अच्छे घोड़ों की नस्ल तैयार करने के लिए घुड़दौड़ जरूरी है | हो सकता है, यह बात सही हो | लेकिन क्या जुए के बगैर घुड़दौड़ नहीं हो सकती, या कि घोड़ों की नस्ल सुधारने के लिए जुआ भी जरूरी है ? *(हरि, 4-9-1937, पृ. 233-34)*

घोड़ों के प्रति प्रेम के कारण घुड़दौड़ आयोजित करना और उसके साथ उत्तेजक कार्यक्रम रखना नितांत अनावश्यक है | यह लोगों में दुर्गुणों की वृद्धि करती है और हमें अच्छी कृषि-योग्य भूमि तथा विपुल धन से भी वंचित करती है | क्या कोई व्यक्ति ऐसा है जिसने अच्छे-अच्छे लोगों को घुड़दौड़ में जुआ खेलने से बर्बाद होते हुए न देखा हो ? समय आ गया है जब हम पश्चिम से ली बुराइयों का त्याग कर दें और उसकी उत्तम बातों को अपनाएं | *(हरि, 18-1-1948, पृ. 515)*

जूरी द्वारा सुनवाई

मैं न्यायाधीशों के बजाए जूरी द्वारा सुनवाई किए जाने के फायदों से सहमत नहीं हूं....इंग्लैंड तक में यह देखने में आया है कि जूरी ऐन वक्त पर असफल सिद्ध हुई हैं | जब वातावरण उत्तेजक हो जाता है तो उसका प्रभाव जूरियों पर भी पड़ता है और वे विकृत निर्णय दे देते हैं | न हमें यह मान लेना चाहिए कि जूरी सदा ही रियायत बरतते हैं | मैंने देखा है कि विपरीत साक्ष्य के होते हुए भी जूरियों ने अभियुक्तों को दोषी करार दिया है, जिससे असहमत होकर जजों ने भी विपरीत निर्णय दिया है |

हमें अंग्रेजों की हर बात का दासता की भावना के साथ अनुकरण नहीं करना चाहिए | जहां पूर्ण निष्पक्षता, शांतचित्तता और साक्ष्य की छानबीन करके सही बात का पता करने की योग्यता एवं मानव प्रकृति की समझ की दरकार है वहां हमें प्रशिक्षित न्यायाधीशों के स्थान पर अप्रशिक्षित व्यक्तियों को संयोग से इकट्ठा करके उन्हें न्याय देने का काम सुपूर्द नहीं करना चाहिए |

हमारा ध्येय तो नीचे से लेकर ऊपर तक एक ऐसी न्यायपालिका की स्थापना करना होना चाहिए जो भ्रष्टाचार से ऊपर हो, निष्पक्ष हो और योग्य हो | *(यंग, 27-8-1931, पृ. 240)*

झूठी निंदा

सार्वजनिक व्यक्तियों को सदा ही झूठी निंदा और मिथ्या-कथन का पात्र बनना पड़ता है | विरोधी से पार पाने का एक ही उपाय है और वह है अप्रतिरोध...इसलिए सामान्यत: मेरा परामर्श यह होता है कि आधारहीन और दुर्भावनाओं से प्रेरित आक्षेपों की ओर बिलकुल ध्यान न दिया जाए, बल्कि आक्षेपकर्ता के प्रति दया प्रदर्शित की जाए और यह आशा तथा प्रार्थना की जाए कि अंतत: उसकी मनोवृत्ति में बदलाव आ जाएगा....

मनुष्य अपने प्रति निष्ठावान हो तो वही काफ़ी है; फिर वह 'अफवाहों के गंदे नाले' को बेफिक्री से बहने दे सकता है | *(यंग, 6-12-1928, पृ. 405)*

डाक्टर

सच्चाई यह है कि डाक्टर हमें गलत बातों में प्रवृत्त होने के लिए उकसाते हैं जिसका परिणाम यह हुआ है कि हम आत्मनियंत्रण खो बैठे हैं और स्त्रैण हो गए हैं | *(हिंस्व, पृ. 59)*

चिकित्सा व्यवसाय से मेरा सामान्यत: झगड़ा यह है कि वह आत्मा की पूर्णत: उपेक्षा करता है और शरीर जैसे भंगुर साधन की ठोक-पीट के लिए कोई प्रयास उठा नहीं रखता | आत्मा की उपेक्षा करके चिकित्सा व्यवसाय लोगों को अपनी दया पर निर्भर बना देता है और मानव गरिमा तथा आत्मनियंत्रण के ह्रास में योगदान करता है |

मैं इस बात का बड़ा उपकार मानता हूं कि पश्चिम में धीरे-धीरे किंतु निश्चित रूप से एक ऐसा विचार-संप्रदाय उठ रहा है जो बीमार शरीर का उपचार करते समय आत्मा की ओर ध्यान देता है और इसलिए दवाइयों का सहारा कम लेता है और शक्तिशाली रोग-निवारक के रूप में प्रकृति पर अधिक बल देता है | *(यंग, 11-6-1925, पृ. 205)*

आत्मा के चिकित्सक

हमें शरीरों से अधिक आत्मा के चिकित्सकों की आवश्यकता है | अस्पतालों और चिकित्सकों की बढ़ती हुई संख्या सच्ची सभ्यता का चिह्न नहीं है | हम अपने शरीर को जितना ही कम महत्व देंगे | उतना ही हमारे और दुनिया के लिए अच्छा साबित होगा | *(यंग, 29-9-1927, पृ. 327)*

शरीर को भगवान का मंदिर मानकर इस्तेमाल करने के बजाए हम इसे विषय-भोगों का साधन बना लेते हैं और उनमें वृद्धि करने तथा इस पार्थिव शरीर का दुरुपयोग करने के प्रयास में मदद लेने के लिए बेहयाई से डाक्टरों की ओर दौड़ते हैं | *(यंग, 8-8-1929, पृ. 261)*

डाक्टर की पदवी ही कोई कसौटी नहीं है; असल डाक्टर वह है जो सच्चा सेवक है | *(हरि, 10-2-1946, पृ. 8)* डाक्टर, वैद्य और हकीम सब पैसे के गुलाम हैं | वे मात्र सेवा की भावना से इस व्यवसाय को नहीं अपनाते | आप यह दलील देकर मेरे कथन को नहीं झुठला सकते कि कुछ चिकित्सकों में तो सेवाभाव होता है | *(हरि, 2-6-1946, पृ, 158)*

दवाई

मैं पश्चिम की दवाइयों के विरुद्ध बोला हूं जिन्हें मैंने काले जादू का संघनित सार कहकर पुकारा है | मेरा यह दृष्टिकोण मेरी अहिंसा से अद्‌भुत है, क्योंकि मेरी आत्मा जीवच्छेदन के विरुद्ध विद्रोह करती है....मेरा कहना है कि जो क्रूरता मैं अपने ऊपर नहीं कर सकता वह मुझे निम्न स्तर के जीवों के साथ क्यों करनी चाहिए ?

लेकिन मैं हर तरह की चिकित्सा की निंदा नहीं करता | मैं जानता हूं कि सुरक्षित प्रसूति और शिशुओं की देखभाल के मामले में हम पश्चिम से बहुत कुछ सीख सकते हैं | हमारे बच्चे जैसे-तैसे पैदा हो जाते हैं और हमारी अधिकांश महिलाओं को बच्चों के लालन-पालन के विज्ञान की समुचित जानकारी नहीं है | इन मामलों में हम पश्चिम से काफ़ी कुछ सीख सकते हैं |

लेकिन पश्चिम मनुष्य के पार्थिव अस्तित्व को अधिक-से-अधिक समय तक बनाए रखने को जरूरत से ज़्यादा महत्व देता है | मनुष्य की अंतिम श्वास चलने तक वह उसे एक के बाद एक दवाइयां देता जाता है, यहां तक कि इंजेक्शनों के जरिए भी उसे किसी-न-किसी तरह जीवित रखने का प्रयास करता है | मेरे विचार में इसका युद्ध में उनके द्वारा अंधाधुंध झोंकी गई जानों के साथ कोई मेल नहीं है | *(हरि, 3-7-1937, पृ. 165)*

धन

मैंने अनुभव से पाया है कि जो बात भाईचारे, स्नेहपूर्ण शब्दों और स्नेहमयी दृष्टि में है वह धन में नहीं है | यदि कोई व्यक्ति धनवान बनने के लिए बड़ा उत्सुक है और उसे किसी से बिना किसी सहानुभूति के धन की प्राप्ति हो जाए तो वह कालांतर में उस व्यक्ति से अपना संबंध तोड़ लेता है | इसके विपरीत, यदि किसी को प्रेम से जीता गया है तो जिसने उसे प्रेम दिया है उसके लिए वह कितना ही कष्ट उठाने के वास्ते तैयार हो जाता है | *(ससा, पृ. 222)*

मुझे पक्का विश्वास है और यह अनुभवसिद्ध है कि भावना के मामले में रुपये-पैसे की भूमिका का महत्व सबसे कम होता है | *(हरि, 26-12-1936, पृ. 368)*

धूम्रपान

तम्बाकू ने मानव जाति को बुरी तरह तबाह किया है | इसके चंगुल में फंस जाने के बाद शायद ही किसी को इससे छुटकारा मिलता हो....टालस्टॉय ने इसे सभी नशों में सबसे बुरा बताया है....

भारत में लोग तम्बाकू का प्रयोग पीने, सूंघने और चबाने के रूप में करते हैं....जिन्हें अपने स्वास्थ्य से प्रेम है वे अगर इनमें से किसी भी बुरी आदत के शिकार हों तो उन्हें दृढ़तापूर्वक इस गुलामी से छुटकारा पा लेना चाहिए | कई लोग इनमें से एक-दो या तीनों आदतों के शिकार होते हैं | वे उन्हें घिनौनी नहीं लगतीं, लेकिन अगर हम शांति से विचार करें तो धुंआ उड़ाने या पूरे दिन मुंह में तम्बाकू और पान ठूंसे रहने या बार-बार नसवार की डिबियां खोलकर उसे सूंघने में कोई शानदारी नहीं है | ये तीनों बेहद गंदी आदतें हैं | *(कीहै, पृ. 39-42)*

मैं शराब की ही तरह धूम्रपान से भी भय खाता हूं | मैं धूम्रपान को एक दुर्गुण मानता हूं | यह मनुष्य की अंतश्चेतना को जड़ बनाता है और इस दृष्टि से शराब से भी बुरा है | इसका प्रभाव प्रच्छन्न रूप से होता है | एक बार आदमी इसके चंगुल में फंस जाए तो फिर उससे निकलना मुश्किल होता है | यह एक खर्चीली लत है | इससे श्वास

दुर्गंधमय हो जाता है, दांतों का रंग मैला हो जाता है और कभी-कभी कैंसर तक हो जाता है | यह एक गंदी आदत है | *(यंग, 12-1-1921, पृ. 11)*

धूम्रपान इस दृष्टि से शराब से भी बड़ा अभिशाप है कि इसके शिकार को समय रहते चेत नहीं आता | यह बर्बरता की निशानी नहीं समझा जाता और सभ्य लोग भी इसे अच्छी नजर से देखते हैं | मैं सिर्फ यही कह सकता हूं कि जो लोग इसे छोड़ सकते हैं वे छोड़कर औरों के सामने उदाहरण प्रस्तुत करें | *(यंग, 4-2-1926, पृ. 46)*

ध्वज

ध्वज सभी राष्ट्रों के लिए आवश्यक है | लाखों लोगों ने ध्वज की खातिर प्राणों की बलि दी है | इसमें संदेह नहीं कि यह एक प्रकार की मूर्तिपूजा है जिसे नष्ट करना पाप होगा | बात यह है कि ध्वज एक आदर्श का अभिव्यंजक होता है | यूनियन जैक के फहराने पर अंग्रेजों के हृदयों में जो भाव उठते हैं, उनकी शक्ति को मापना कठिन है | इसी प्रकार अमरीकियों के लिए सितारों और धारियों वाला उनका ध्वज संसार की सबसे बड़ी चीज़ है | चांद-सितारे वाले ध्वज की रक्षा के लिए मुसलमान जान की बाजी लगाने के लिए तैयार हो जाएंगे |

हिंदुओं, मुसलमानों, ईसाइयों, यहूदियों, पारसियों और उन सभी के लिए जो भारत को अपना घर मानते हैं, एक झंडा होना जरूरी है जिसके लिए वे जी और मर सकें | *(यंग, 13-4-1921, पृ. 116)*

नदियां

हमारे यहां दो से अधिक गंगा-जमुना हैं....ये हमें इस बात का स्मरण कराती हैं कि हम जिस देश में रह रहे हैं उसके लिए हमें कितने त्याग करने चाहिए | यह बहने की प्रक्रिया में प्रतिक्षण अपने को शुद्ध करती रहती हैं मानो हमें स्मरण कराती हों कि हमको भी इसी प्रकार अपना शुद्धीकरण करते रहना चाहिए....आज की आपाधापी में हमारे लिए नदियों का मुख्य उपयोग यही रह गया है कि हम उनमें अपनी गंदी नालियों का पानी उंडेल दें और अपना व्यापारिक माल ले जाने के लिए उनमें नाव और पोत चलाएं और इस प्रक्रिया में उन्हें और भी अधिक गंदा कर दें | हमारे पास इस बात के लिए समय नहीं है....कि हम उनके तटों पर टहलें और शांत भाव से ध्यान लगाकर सुनें कि वे अपनी मर्मर ध्वनि में हमें क्या संदेश दे रही हैं | *(यंग, 23-12-1926, पृ. 446)*

नियति

मैं नहीं जानता कि मृत्यु का समय, स्थान और स्वरूप पूर्वनिश्चित है अथवा नहीं | मैं तो केवल यह जानता हूं कि "ईश्वर की इच्छा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता" | इसे भी मैं अस्पष्टता के साथ ही जानता हूं, लेकिन ईश्वर के समक्ष प्रार्थनारत रहने पर जो चीज़ आज अस्पष्ट है वह कल या परसों स्पष्ट हो जाएगी | *(हरि, 28-7-1946, पृ. 233)*

कहते हैं कि मनुष अपनी नियति का निर्धारक स्वयं ही है | अंशत: यह बात सत्य है | लेकिन वह अपनी नियति को उसी सीमा तक निर्धारित कर सकता है जहां तक कि परमात्मा उसे करने दे, ...वह हमारे इरादों और हमारी योजनाओं को निरस्त करके अपनी ही योजनाओं को कार्यान्वित करता है | *(हरि, 20-4-1947, पृ. 109)*

नेतृत्व

मैं समझता हूं कि अपने मत को सिर्फ दोहराते जाना और आम जनता की राय के सामने झुक जाना केवल अपर्याप्त ही नहीं है, अपितु अत्यंत महत्वपूर्ण मामलों में नेताओं को यदि आम लोगों की राय उचित प्रतीत न होती हो तो उसके विपरीत भी जाना चाहिए | *(यंग, 14-7-1920, पृ. 4)*

मैं निश्चित रूप से यह मानता हूं कि किसी डरपोक और संशयालु वकील के मुकाबले कोई वीर और आस्थावान बुनकर या मोची हमारे संघर्ष को ज़्यादा कारगर ढंग से नेतृत्व प्रदान कर सकता है | सफलता वीरता, त्याग, सत्य, प्रेम और आस्था पर निर्भर करती है; कानूनी प्रतिभा, जोड़-तोड़, कूटनीति, घृणा और अविश्वास पर नहीं | *(यंग, 25-8-1921, पृ. 266)*

नेता केवल समकक्षों में प्रथम होता है | किसी-न-किसी को तो प्रथम स्थान देना ही है, लेकिन वह श्रृंखला की दुर्बलतम कड़ी से अधिक मजबूत नहीं होता और होना भी नहीं चाहिए | एक बार किसी को अपना नेता चुन लेने के बाद हमें उसका अनुगमन करना चाहिए अन्यथा श्रृंखला टूट जाती है और सर्वनाश हो जाता है | *(यंग, 8-12-1921, पृ. 402)*

वह नेता बेकार है जो भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण रखने वाले अनेक व्यक्तियों से घिरा होने के बावजूद अपने अंत:करण के आदेश के अनुसार नहीं चलता | यदि उसकी अंतर्वाणी उसको दृढ़ता प्रदान नहीं करती और उसका मार्गदर्शन नहीं करती तो वह बिना लंगर के पोत के समान हिचकोले खाएगा और पथभ्रष्ट हो जाएगा | *(यंग, 23-2-1922, पृ. 112)*

नेता को अच्छा-बुरा उसके अनुयायी ही बनाते हैं | वह जनसाधारण की सुप्त आकांक्षाओं का स्पष्ट प्रतिबिंब होता है | *(यंग, 2-2-1947, पृ. 3)*

नैतिकता

सच्ची नैतिकता लकीर पीटने में निहित नहीं होती, बल्कि अपने लिए सच्चा रास्ता ढूंढने और निर्भयतापूर्वक उस पर चलने में निहित होती है | *(एरि, पृ. 36)*

जो काम स्वेच्छा से न किया जाए उसे नैतिक नहीं कहा जा सकता | जब तक हम यंत्रवत कार्य करते हैं तब तक नैतिकता का प्रश्न ही नहीं उठता | यदि हम अपने किसी कार्य को नैतिक कहना चाहें तो वह सोच-समझकर और कर्तव्य के रूप में किया जाना चाहिए | *(एफा, पृ. 43)*

नैतिक प्राधिकार को उसके साथ चिपककर नहीं बनाए रखा जा सकता | वह बिना मांगे ही मिलता है और उसे बनाए रखने के लिए प्रयास की आवश्यकता नहीं होती | *(यंग, 29-1-1925, पृ. 40)*

हमें अपनी नीति निर्धारित करते समय सस्ती लोकप्रियता हासिल करने के प्रलोभन से निर्देशित नहीं होना चाहिए, बल्कि जो सही है उस पर दृढ़ रहना चाहिए | *(हरि, 28-7-1946, पृ. 233)*

पत्रकारिता

पत्रकारिता का एकमात्र ध्येय सेवा होना चाहिए | समाचारपत्रों के पास बड़ी भारी शक्ति है, लेकिन जिस प्रकार अनियंत्रित बाढ़ का पानी पूरी बस्तियों को डूबा देता है और फसलों को नष्ट कर देता है, इसी प्रकार अनियंत्रित लेखनी की सेवा भी विनाशकारी होती है | यदि उसका नियंत्रण बाहर से किया जाए तो वह नियंत्रणहीनता से भी अधिक अनिष्टकर सिद्ध होता है | प्रेस का नियंत्रण तभी लाभकारी हो सकता है जब प्रेस उसे स्वयं अपने ऊपर आरोपित करे | अगर यह तर्क सही है तो दुनिया के कितने पत्र इस कसौटी पर खरे उतरेंगे ? लेकिन जो पत्रिकाएं निकम्मी हैं, उन्हें कौन रोके ? अच्छाई और बुराई की तरह निकम्मी और उपयोगी भी साथ-साथ चलेंगी और मनुष्य को अपना चुनाव खुद करना होगा | *(ए, पृ. 211)*

पत्रकारिता का सही काम लोकमानस को शिक्षित करना है उसे वांछित-अवांछित विचारों से भरना नहीं |

इसलिए अखबार में क्या बात देनी है और कब देनी है, इसका निर्णय पत्रकार को अपने विवेक से करना चाहिए | आज स्थिति यह है कि पत्रकार केवल तथ्य देकर संतोष का अनुभव नहीं करते | पत्रकारिता 'घटनाओं की प्रबुद्ध पूर्वापेक्षा' की कला बन गयी है | *(हरि, 29-9-1946, पृ. 334)*

आधुनिक पत्रकारिता

आधुनिक पत्रकारिता में जिस तरह सतहीपन, पक्षपात, अ-यथार्थता और यहां तक कि बेईमानी भी घुस आई है वह उन ईमानदार लोगों को बराबर गलत रास्ते पर ले जाती है जो केवल यह चाहते हैं कि न्याय की विजय हो | *(यंग, 12-5-1920, पृ. 4)*

मेरे सामने पत्र-पत्रिकाओं के ऐसे उद्धरण हैं जिनमें वीभत्स बातें दी गई हैं | उनमें सांप्रदायिकता भड़काने, घोर मिथ्याकथन और राजनीतिक हिंसा को भड़काने की हत्या के समान गंभीर बातें हैं | सरकार के लिए ऐसी पत्र-पत्रिकाओं पर मुकदमे चलाना या दमनकारी अध्यादेश जारी करना मुश्किल बात नहीं है, लेकिन इनसे कोई मतलब हल नहीं होता और यदि कोई प्रभाव होता भी है तो वह बड़ा ही अस्थायी होता है; किसी भी हालत में, इनसे लेखकों के रवैये में कोई परिवर्तन नहीं आता जो प्रेस के खुले मंच से वंचित होने पर प्राय: गोपनीय प्रचार में प्रवृत्त हो जाते हैं |

इसका असली उपचार स्वस्थ लोकमत है जिसे विषैली पत्र-पत्रिकाओं को संरक्षण देने से इंकार कर देना चाहिए....प्रेस की स्वतंत्रता एक मूल्यवान विशेषाधिकार है जिसे कोई देश छोड़ नहीं सकता | लेकिन बहुत हल्की रोकथाम के अलावा कोई कारगर कानूनी रोक न हो, जो नहीं होनी चाहिए, तो जैसा मैंने ऊपर कहा है, आंतरिक रोक का होना जरूरी है जो न तो असंभव है और न उस पर आपत्ति की जानी चाहिए | *(यंग, 28-5-1931, पृ. 121)*

विज्ञापन

मेरी धारणा है कि अनैतिक विज्ञापनों....के बल पर अखबार चलाना गलत है | मेरा विश्वास है कि यदि विज्ञापन लिया ही जाए तो अखबारों के मालिकों और स्वयं संपादकों को पहले उनकी कड़ी छानबीन कर लेनी चाहिए और केवल स्वस्थ विज्ञापन ही स्वीकार किए जाने चाहिए |

आज बड़े-से-बड़े प्रतिष्ठित अखबार और पत्रिकाएं भी अनैतिक विज्ञापनों की बुराई की शिकार हैं | इसका सामना अखबारों के मालिकों और संपादकों के विवेक का परिष्कार करके ही किया जा सकता है | यह परिष्कार मेरे जैसे नौसिखिया संपादक के प्रभाववश नहीं हो सकता; यह तो तभी होगा जब इस बढ़ती हुई बुराई को पहचानकर उनका अपना विवेक जागृत होगा या जनता की प्रतिनिधि सरकार जनता के नैतिक आदर्शों के प्रति जागरुक होकर उन पर अपना विवेक आरोपित करेगी | *(यंग, 25-3-1926, पृ. 114)*

अखबार और सच्चाई

पश्चिम की तरह पूर्व में भी अखबार लोगों की बाइबिल, कुरान, जेंद-अवेस्ता और भगवद्गीता बनते जा रहे हैं | अखबारों में जो कुछ छपता है उसे लोग ईश्वरीय सत्य मानते हैं | *(हरि, 28-4-1946, पृ. 101)*

मैं अखबारों से राय उधार लेने की आदत को खराब समझता हूं | अखबार तथ्यों का अध्ययन करने के लिए हैं | उन्हें स्वतंत्र चिंतन की हमारी आदत को मारने की इजाजत नहीं दी जानी चाहिए | *(हरि, 26-5-1946, पृ. 154)*

मैं अखबारों का कर्तव्य यह समझता हूं कि वे अपने पाठकों को केवल तथ्य दें, और कुछ नहीं | *(हरि, 9-2-1947, पृ. 19)*

प्रेस की शक्ति

प्रेस को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जा सकता है | उसके शक्तिशाली होने में कोई संदेह नहीं है, लेकिन उस शक्ति का दुरुपयोग करना एक अपराध है | मैं स्वयं एक पत्रकार हूं और अपने साथी पत्रकारों से अपील करता हूं कि वे अपने उत्तरदायित्व को समझें और अपना काम करते समय केवल इस विचार को प्रश्रय दें कि सच्चाई को सामने लाना है और उसी का पक्ष लेना है | *(हरि, 27-4-1947, पृ. 128)*

अखबारों का बड़ा जबर्दस्त असर होता है | संपादकों का यह कर्तव्य है कि वे यह सुनिश्चित करें कि उनके अखबारों में कोई झूठी रिपोर्ट प्रकाशित न हो और न कोई ऐसी रिपोर्ट प्रकाशित हो जिससे जनता के भड़कने की आशंका हो |

संपादकों और उनके सहायकों को खबरों और उनके देने के ढंग के बारे में विशेष रूप से सावधान रहना चाहिए|

स्वाधीनता की स्थिति में, सरकार के लिए प्रेस पर नियंत्रण रखना लगभग असंभव है | यह काम जनता का है कि वह अखबारों पर कड़ी नजर रखे और उन्हें सही रास्ते पर चलाए | प्रबुद्ध जनता भड़काने वाले या अश्लील अखबारों को संरक्षण देने से इंकार कर देगी | *(हरि, 19-10-1947, पृ. 378)*

लोग किसी भी छपी हुई चीज़ को दैवी सत्य मान लेते हैं | इसके कारण संपादकों और समाचार-लेखकों का उत्तरदायित्व बहुत अधिक बढ़ जाता है | *(हरि, 2-11-1947, पृ. 391)*

मैं स्वयं कभी अखबारों की रिपोर्टों पर बहुत अधिक भरोसा नहीं करता और अखबारों के पाठकों को भी चेतावनी देना चाहता हूं कि वे उनमें छपी कहानियों से आसानी से प्रभावित न हों | अच्छे-से-अच्छे अखबार भी अतिरंजना और भाषा के अलंकरण से मुक्त नहीं होते | *(हरि, 30-11-1947, पृ. 447)*

पहनावा

मेरा संकुचित राष्ट्रवाद मुझे हैट के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए प्रेरित करता है, लेकिन मेरा प्रच्छन्न अंतर्राष्ट्रवाद सोला हैट को यूरोप के कुछ वरदानों में से एक मानता है | यदि हैट के विरुद्ध इतना अधिक राष्ट्रीय पूर्वाग्रह न होता तो मैं सोला हैटों को लोकप्रिय बनाने के लिए संगठित किसी लीग का अध्यक्ष बन गया होता |

भारत के शिक्षित वर्ग ने इस देश की जलवायु के लिए अनावश्यक, अस्वास्थ्यकर और भद्दे पतलूनों को अंगीकार करके और सोला हैट को अपनाने में हिचक अनुभव करके एक गलती की है | लेकिन मैं जानता हूं कि राष्ट्रीय रुचियां और अरुचियां विवेक से शासित नहीं होतीं | *(यंग, 6-6-1929, पृ. 192)*

मैं राष्ट्रीय पहनावा इसलिए पहनता हूं कि यह सबसे स्वाभाविक है और एक भारतीय के लिए सर्वाधिक शोभाप्रद है | मैं मानता हूं कि पश्चिमी पहनावे की हम जो नकल करते हैं वह हमारे अपकर्ष, अपमान और दुर्बलता का चिह्न है और हम उस पहनावे को अस्वीकार करके एक राष्ट्रीय पाप कर रहे हैं जो भारत की जलवायु के सबसे अधिक अनुकूल है और जो इतना सादा और सस्ता है कि संसार का कोई पहनावा इसका मुकाबला नहीं कर सकता | इसके साथ ही, यह हमें साफ-सुथरा रहने में भी मदद करता है | यदि मिथ्या गौरव और प्रतिष्ठा की मिथ्या भावना बाधक न होती तो अंग्रेजों ने बहुत पहले भारतीय पोशाक को अपना लिया होता |

मैं पवित्रता का विचार करते हुए जूते नहीं पहनता और मुझे यह भी लगता है कि जहां तक संभव हो, जूते न पहनना ज़्यादा स्वाभाविक और स्वास्थ्यपरक है | *(स्पीरा, पृ. 393-94)*

पाप और पापी

मैं अपने पाप के परिणामों से मुक्ति नहीं चाहता; मैं तो चाहता हूं कि स्वयं पाप अथवा पाप करने के विचार मात्र से मुक्ति मिल जाए | जब तक इस लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती तब तक मुझे चैन नहीं आएगा | *(ए, पृ. 90)*

पारंपरिक धारणा यह है कि पापों से मुक्ति अगले जन्म में मिलती है | मैं आपको यह बताना चाहता हूं कि यदि हम कुछ आवश्यक शर्तों को पूरा कर सकें तो मुक्ति....यहीं और अभी मिल सकती है | पहली शर्त है आत्मशुद्धि और दूसरी है ईश्वरीय नियम का पालन | यह आशा करना भी व्यर्थ तथा नैतिक पतन का परिचायक है कि आगामी जीवन में, मुक्तिदाता होने के नाते ईश्वर हमारी रक्षा अवश्य करेगा चाहे इस जन्म में हम अपने पापों की गठरी सर पर ढोते रहें | यदि कोई व्यापारी झूठ बोलता है और अपने सीधे-सादे, अनजान ग्राहकों को ठगता है तो वह अपने पापों से मुक्त होने की आशा नहीं कर सकता | *(हरि, 2-6-1946, पृ. 166)*

दोष-स्वीकृति

अपने दोष की स्वीकृति एक झाड़ू के समान है जो धूल-मिट्टी को झाड़ देती है और सतह को पहले से भी ज़्यादा साफ बना देती है | *(यंग, 16-2-1922, पृ. 102)*

शुद्ध हृदय से की गई पाप-स्वीकृति और इसके साथ ही यह वचन कि वह पाप आप दुबारा नहीं करेंगे, यदि किसी ऐसे व्यक्ति के समक्ष की जाए जो उसे ग्रहण करने का अधिकारी है तो यह पश्चाताप का विशुद्धतम स्वरूप होगा| *(ए, पृ. 20-21)*

जिस व्यक्ति ने अपने विगत से संबंध विच्छेद कर लिया है, वह एक बिलकुल भिन्न व्यक्ति हो जाता है | उसे अपनी पिछली भूलों को स्वीकार करने में लज्जा का अनुभव नहीं होता, क्योंकि वे भूलें अब उसे तनिक भी स्पर्श नहीं करतीं | *(यंग, 6-10-1927, पृ. 340)*

कोई मरीज अपनी बीमारी को छिपाकर नहीं रख सकता | यदि वह ऐसा करता है तो वह अपना ही शत्रु बन जाता है | *(यंग, 2-2-1928, पृ. 37)*

ईश्वर की दृष्टि में पापी संत के समान ही होता है | दोनों को एक जैसा न्याय मिलता है और प्रगति अथवा अधोगति का समान अवसर प्राप्त होता है | दोनों ही ईश्वर के बच्चे हैं, उसकी सृष्टि हैं | जो संत अपने को पापी से श्रेष्ठ समझता है वह अपने संतपने को खोकर पापी से भी गया-बीता हो जाता है, क्योंकि जहां घमंडी संत ज्ञानी होता है वहीं पापी को यह पता ही नहीं होता कि वह क्या कर रहा है | *(हरि, 14-10-1933, पृ. 5)*

मैंने अपने अनेक पापों को बिलकुल खुलकर स्वीकार किया है | मैं उनका बोझ अपने कंधों पर लादकर नहीं चलता | यदि मैं ईश्वर की ओर बढ़ रहा हूं, जैसा कि मैं अनुभव करता हूं, तो मैं सब प्रकार से सुरक्षित हूं | मुझे ईश्वर की उपस्थिति की गरमाहट का अनुभव होता है | मैं जानता हूं कि मेरी सादगी, उपवास और प्रार्थनाएं किसी काम की नहीं है, यदि मैं स्वयं को सुधारने के लिए उन पर निर्भर रहूं | लेकिन यदि वे एक ऐसी आत्मा की पुकार का प्रतिनिधित्व करती हैं जो अपने सृष्टिकर्ता की गोद में अपना थका-हारा सर रख देने के लिए व्याकुल है तो मैं समझता हूं कि इन सभी का मूल्य अपरिमित है | *(हरि, 18-4-1936, पृ. 77)*

गलती करना आदमी का काम है | उन्हें स्वीकार करके हम अपनी गलतियों को प्रगति की सीढ़ियों में बदल देते हैं | इसके विपरीत जो व्यक्ति अपनी गलतियों को छिपाने की कोशिश करता है, वह जीता-जागता कपटी बन जाता है और उसका पतन हो जाता है | मनुष्य न तो पशु है और न ईश्वर है, वह ईश्वर के देवत्व की प्राप्ति के लिए प्रयासरत ईश्वर की सृष्टि मात्र है | पश्चाताप और आत्मशुद्धीकरण ईश्वर-प्राप्ति के दो साधन हैं | जैसे ही हम अपनी किसी गलती के लिए पश्चाताप करते हैं और उसके लिए ईश्वर से क्षमा मांगते हैं वैसे ही हम पापमुक्त हो जाते हैं और हमारे लिए एक नये जीवन की शुरुआत हो जाती है | सच्चा पश्चाताप प्रार्थना की अनिवार्य शर्त है | *(हरि, 21-4-1946, पृ. 94)*

केवल मुंह से निंदा करके किसी पाप को नहीं धोया जा सकता | *(हरि, 23-6-1946, पृ. 200)*

गलती या पाप का पता चलते ही उसे स्वीकार करने से हम उससे मुक्त हो जाते हैं | *(हरि, 20-10-1946, पृ. 367)*

पुनर्जन्म

मुझे पूर्व-जन्म और पुनर्जन्म में विश्वास है | हमारे सभी संबंध पूर्व-जन्म से प्राप्त संस्कारों के परिणाम होते हैं | ईश्वर के नियम बड़े गूढ़ हैं और उन पर निरंतर अनुसंधान होता रहा है, लेकिन कोई उनकी थाह नहीं पा सकेगा | *(हरि, 18-8-1940, पृ. 254)*

पुरोहित

यह एक दुखद बात है किंतु ऐतिहासिक सत्य है कि पुरोहित जो धर्म के वास्तविक रक्षक होने चाहिए थे, वे उसे नष्ट करने के साधन सिद्ध हुए हैं | *(यंग, 20-10-1927, पृ. 353)*

प्रयोग

मैं केवल अपने और दूसरों के ऊपर प्रयोग करके आगे बढ़ सकता हूं | मैं इश्वर के पूर्ण एकत्व में विश्वास करता हूं, इसीलिए मानव जाति में भी मेरी आस्था है | क्या फर्क पड़ता है अगर हमारे शरीर अलग-अलग हैं ? हममें आत्मा

तो एक ही है | सूर्य की किरणें अपवर्तन के कारण अनेक दिखाई देती हैं, लेकिन उनका स्त्रोत एक ही है | इसलिए मैं अपने आपको दुष्ट-से-दुष्ट आत्मा से भी पृथक नहीं कर सकता (न मुझे बड़ी-से-बड़ी पुण्यात्मा के साथ तादात्म्य स्थापित करने से वंचित किया जाना चाहिए) | इसलिए मैं करूं या न करूं, मुझे अपने प्रयोगों में समूची मानव जाति को सम्मिलित करना चाहिए | मैं प्रयोग किए बिना भी नहीं रह सकता | आखिरकार जीवन भी तो प्रयोगों की एक अनंत श्रृंखला ही है | *(यंग, 25-9-1924, पृ. 313)*

प्रेतात्मवाद

मुझे प्रेतात्माओं से कभी कोई संदेश प्राप्त नहीं होते | ऐसे संदेशों की संभावना के प्रति अविश्वास करने का भी मेरे पास कोई प्रमाण नहीं है | लेकिन ऐसे संदेश प्राप्त करने या उनके लिए प्रयास करने का मैं सख्त विरोधी हूं | इस तरह की कोशिशें प्राय: धोखा देने वाली और कल्पना की उपज होती हैं |

यदि मान भी लिया जाए कि प्रेतात्माओं से संदेश प्राप्त किए जा सकते हैं, तो भी ऐसा करना माध्यम और मृतात्माओं, दोनों के लिए हानिकारक है | इससे प्रेतात्मा को पृथ्वी की ओर खिंचकर आना पड़ता है और उससे बंधना पड़ता है जबकि उसकी कोशिश यह होनी चाहिए कि वह स्वयं को पृथ्वी से मुक्त करके अधिकाधिक ऊंचे स्तरों की ओर जाए | शरीर छोड़ देने से ही आत्मा अनिवार्यत: पहले की अपेक्षा अधिक शुद्ध नहीं हो जाती | वह अपने साथ वे तमाम दुर्बलताएं ले जाती है जिनकी शिकार वह पृथ्वी पर थी | इसलिए यह आवश्यक नहीं है कि उसके द्वारा दी गई जानकारी या सलाह सच्ची अथवा ठीक हो |

यह कोई प्रसन्नता का विषय नहीं है कि प्रेतात्मा पृथ्वी पर रहने वालों के साथ बातचीत करना चाहती है | इसके विपरीत, होना यह चाहिए कि आत्मा को इस तरह की अनुचित आसक्ति से विरत किया जाए | प्रेतात्माओं को होने वाली हानि की बात मैं इसी संदर्भ में कर रहा था |

जहां तक माध्यम का प्रश्न है, मैं यह बात अच्छी तरह जानता हूं कि मेरे अनुभव में जितने मामले आए हैं उन सभी में प्रेतात्माओं से संदेश ग्रहण करने अथवा वैसा करने का आभास होने के दौरान माध्यमों की या तो दिमागी हालत ठीक नहीं थी या उनका मस्तिष्क दुर्बल था अथवा उनमें व्यावहारिक कार्य करने की क्षमता नहीं थी | मुझे याद नहीं पड़ता कि प्रेतात्माओं से संदेश ग्रहण करने वाले मेरे किसी मित्र को इससे कोई लाभ हुआ हो | *(यंग, 12-9-1929, पृ. 302)*

बीमा

....मैं सोचता था कि जीवन-बीमा का अर्थ है भय तथा ईश्वर में आस्था का अभाव....अपने जीवन का बीमा कराके मैंने अपनी पत्नी और बच्चों को स्वावलंबी बनने से रोक लिया था | दुनिया के असंख्य निर्धन परिवारों पर क्या गुजरती है ? उनसे अपनी परवरिश करने की आशा क्यों नहीं की जानी चाहिए ? मैं अपने को उनमें से एक क्यों

न मानूं ? मुझे यह मानने का क्या अधिकार था कि मेरी मृत्यु परिवार के अन्य सदस्यों से पहले हो जाएगी ? आखिर मेरे परिवार का सच्चा रक्षक न मैं था, और न मेरे भाई, बल्कि सर्वशक्तिमान ईश्वर था | *(ए, पृ. 193)*

भोजन

....चरित्र के निर्माण में या देह के दमन के लिए भोजन को जो बढ़ा-चढ़ाकर महत्व दिया जाता है वह गलत है | यह सही है कि भोजन एक शक्तिशाली तत्व है जिसकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए, लेकिन भोजन को ही धर्म का सब कुछ मान लेना, जैसा कि प्राय: भारत में किया जाता है, उतना ही गलत है जितना कि भोजन के संबंध में हर प्रकार के संयम को त्याग देना और अपनी जिह्वा के स्वाद के लिए कोई भी कसर न उठा रखना | शाकाहारवाद हिंदू धर्म की अमूल्य देन है | इसे यों ही त्याग देना ठीक नहीं है | इसलिए इस भ्रांत धारणा का सुधार करना आवश्यक है कि शाकाहारी होने के कारण हम बुद्धि या शरीर से कमजोर हो गए हैं अथवा आलसी या जड़ बन गए हैं | सभी महान हिंदू सुधारक अपनी पीढ़ी के सक्रियतम व्यक्तियों में से रहे हैं और वे सभी शाकाहारी थे | शंकर या दयानंद से अधिक सक्रिय उनके युगों में कौन रहा होगा ?

....भोजन के चुनाव का धर्म से कोई वास्ता नहीं है | यह ऐसा मामला है जिसका निर्णय प्रत्येक व्यक्ति को स्वविवेक से करना चाहिए | इधर, शाकाहारवाद पर काफ़ी साहित्य सामने आया है, विशेषकर पश्चिम में, जिसे पढ़कर प्रत्येक सत्यशोधक लाभान्वित हो सकता है | इस साहित्य में अनेक मूर्धन्य चिकित्सकों ने योगदान किया है | भारत में शाकाहार को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता कभी नहीं पड़ी, क्योंकि इसे अभी तक सबसे वांछनीय और आदरणीय वस्तु माना जाता रहा है | जिन लोगों की मति....डावांडोल है उन्हें पश्चिम में शाकाहारवाद के प्रति बढ़ती हुई रुचि का अध्ययन करना चाहिए | *(यंग, 7-10-1946, पृ. 347)*

जीने के लिए खाना

मनुष्य को रसना की तुष्टि के लिए नहीं, अपितु शरीर की रक्षा के लिए भोजन करना चाहिए | जब हमारी प्रत्येक इंद्रिय शरीर और शरीर के माध्यम से आत्मा की सेवा करने लगती है तो उसके विशेष रस शून्यवत् हो जाते हैं और वह उस रूप में कार्य करना शुरू कर देती है जिस रूप में कार्य करने के लिए प्रकृति ने उसे बनाया था |

प्रकृति के साथ यह मेल बिठाने के लिए जितने प्रयोग और त्याग किए जाएं, कम हैं | लेकिन दुर्भाग्य से आजकल हवा विपरीत दिशा में बह रही है | हम इस नश्वर शरीर को सजाने और कुछ क्षणों के लिए इसके अस्तित्व को लम्बा करने के लिए अनेक जीवों की बलि देने में शर्म का अनुभव नहीं करते, जिसका परिणाम यह है कि हम स्वयं को – शरीर तथा आत्मा दोनों को – मारे डाल रहे हैं | एक पुरानी बीमारी का इलाज करने के प्रयत्न में हम असंख्य नयी बीमारियां मोल ले रहे हैं; इंद्रियों के अधिकाधिक भोग के प्रयास में हम अंतत: भोग करने की अपनी

क्षमता को ही खो बैठते हैं | यह सब कुछ हमारी अपनी आंखों के सामने ही हो रहा है, लेकिन जो देखकर भी नहीं देखते उनका क्या इलाज है ? *(ए, पृ. 237)*

इस कथन में काफ़ी सच्चाई है कि आदमी जैसा खाता है वैसा ही उसका मन बन जाता है | भोजन जितना स्थूल होगा, शरीर भी उतना ही स्थूल हो जाएगा | *(हरि, 5-8-1933, पृ. 4)*

मांस-भोजन

आध्यात्मिक विकास में मादक पेयों और इसी तरह के अन्य सभी खाद्य पदार्थों विशेषकर मांस से परहेज करना निस्संदेह बड़ा सहायक सिद्ध होता है, लेकिन यह किसी भी रूप में अपने आप में साध्य नहीं है | बहुत-से लोग जो मांस खाते हैं लेकिन ईश्वर से भय मानते हुए जीते हैं वे उन लोगों से कहीं अधिक अपनी स्वतंत्रता के निकट हैं जो मांस और बहुत-सी चीज़ों से तो परहेज करते हैं, लेकिन अपने प्रत्येक कृत्य से ईश्वर की निंदा करते हैं | *(यंग, 6-10-1921, पृ. 318)*

सही या गलत, यह मेरे धार्मिक विश्वास का अंग है कि मनुष्य को मांस, अंडे आदि का सेवन नहीं करना चाहिए | आखिर अपने आपको जीवित रखने के साधनों की भी तो कोई सीमा होनी चाहिए | कुछ चीज़ें तो ऐसी हों जिन्हें हम अपनी प्राणरक्षा के लिए भी न करें | *(ए, पृ. 180)*

मैं किसी भी अवस्था और किसी भी जलवायु में जिसमें मनुष्य सामान्यत: जीवित रह सकता है, मांस का सेवन आवश्यक नहीं मानता | मेरी धारणा है कि मांस-भक्षण मनुष्यों के लिए नहीं है | यदि हम निम्नतर पशु-जगत से श्रेष्ठ हैं तो हमें उनका अनुकरण नहीं करना चाहिए | अनुभव सिखाता है कि जिन्हें अपने मनोवेगों पर नियंत्रण पाना हो उनके लिए मांस-भोजन अनुकूल नहीं पड़ता | *(यंग, 7-10-1926, पृ. 347)*
मैं अनुभव करता हूं कि आध्यात्मिक प्रगति किसी-न-किसी अवस्था में यह अपेक्षा रखती है कि हम अपने शरीर की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपने सहचर प्राणियों की हत्या करना बंद कर दें | *(इंके, पृ.402-03)*

शाकाहार

मैं सदा शुद्ध शाकाहारी भोजन के पक्ष में रहा हूं | लेकिन अनुभव ने मुझे सिखाया है कि पूर्ण स्वस्थ रहने के लिए शाकाहारी भोजन में दूध और दही, मक्खन, घी आदि दूध से बनी चीज़ें शामिल होनी चाहिए....

लेकिन मेरी धारणा है कि इस विशाल वनस्पति-जगत में कोई ऐसी चीज़ जरूर होनी चाहिए जो हमें वे आवश्यक तत्व दे सके जिन्हें हम दूध और मांस से प्राप्त करते हैं, पर साथ ही जो नैतिक तथा अन्य दोषों से मुक्त हो |

मेरी राय में दूध या मांस का सेवन करने में निश्चित दोष है | मांस के लिए हमें जीवहत्या करनी पड़ती है | जहां तक दूध का ताल्लुक है, हमें अपने शैशव में मां से जो दूध मिलता है उसके अलावा और किसी दूध पर हमारा

कोई अधिकार नहीं है | नैतिक दोष के अलावा भी स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत-से दूसरे दोष हैं | दूध और मांस का सेवन करने से हमारे अंदर उस पशु की भी खराबियां आ जाती हैं जिनसे वह दूध और मांस ग्रहण किया गया है....

भोजन में जो रस भूख के कारण उत्पन्न होता है वह रस दुनिया का कोई स्वादिष्ट-से-स्वादिष्ट व्यंजन भी नहीं दे सकता | *(कीहै, पृ. 14-16)*

मेरी निश्चित धारणा है कि मनुष्य को शिशु रूप में अपनी मां से मिले दूध के बाद किसी और दूध की जरूरत नहीं पड़नी चाहिए | उसके भोजन में केवल पेड़ पर पके फल और मेवा होने चाहिए | अंगूर जैसे फलों और बादाम जैसी मेवाओं से वह अपने ऊतकों और स्नायुओं, दोनों के लिए पर्याप्त पोषण प्राप्त कर सकता है | जो व्यक्ति ऐसे भोजन पर रहता है, उसके लिए कामवासना और अन्य विकारों पर संयम रखना सरल हो जाता है | *(ए, पृ. 200)*

आहार-अनुसंधान

व्यक्ति आदतन मांस या, और नहीं तो, दूध और उसके उपोत्पादों पर आश्रित रहता है, अन्यथा वनस्पति-जगत में मनुष्य को पूर्ण स्वस्थ रखने की असीमित क्षमता है – यह ऐसा विषय है जो आधुनिक आयुर्विज्ञान से अभी तक अछूता है | इस कर्तव्य का निर्वाह भारत के आयुर्विज्ञानियों को करना चाहिए जिनकी परंपरा शाकाहार की है | विटामिनों के विषय में तेजी से हो रहे अनुसंधानों और अधिकांश विटामिनों के सीधे सूर्य से ग्रहण करने की संभावनाओं ने भोजन के विषय में आयुर्विज्ञान द्वारा प्रतिपादित अनेक सिद्धांतों और विश्वासों में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने का मार्ग प्रशस्त कर दिया है | *(यंग, 18-7-1929, पृ. 236)*

मैंने दीर्घ अनुभव और प्रेक्षण से यह नतीजा निकाला है कि सभी प्रकार के शरीरों के लिए आहार का एक ही नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता | अच्छे-से-अच्छे चिकित्सक भी केवल इतना ही दावा कर सकते हैं कि किसी विशेष मामले में अमुक-अमुक चीज़ से फायदा होने की संभावना हैं, क्योंकि ऐसे ही अधिकांश मामलों में यह माफिक आती देखी गई है | विज्ञान की किसी और शाखा में वैज्ञानिक को अनुसंधान करते समय उतनी बाधा महसूस नहीं होती जितनी कि आयुर्विज्ञान में | वह किसी खास दवा या खाने की चीज़ के प्रभाव या मानव शरीर की प्रतिक्रियाओं के बारे में विश्वासपूर्वक कुछ भी कहने की हिम्मत नहीं कर पाता | यह विषय सदा अनुभवाश्रित रहेगा | यह लोकप्रिय कहावत कि एक मनुष्य का आहार दूसरे मनुष्य के लिए विष सिद्ध हो सकता है, बड़े व्यापक अनुभव पर आश्रित है और इसके प्रमाण आए दिन मिलते रहते हैं | ऐसी स्थिति में, बुद्धिमान स्त्री-पुरुषों के लिए प्रयोग का असीमित क्षेत्र खुला है | आम आदमियों को शरीर के बारे में कामचलाऊ ज्ञान अवश्य होना चाहिए, क्योंकि शरीर के भीतर बैठी आत्मा के विकास में शरीर की भूमिका महत्वपूर्ण होती है | फिर भी, जितनी लापरवाही अथवा अज्ञान का प्रमाण हम अपने शरीर के मामले में देते हैं उतना किसी अन्य मामले में नहीं | *(यंग, 8-8-1929, पृ. 261)*

मेरा निवेदन है कि वैज्ञानिकों ने अभी तक मनुष्य को अधिकतम पोषण देने के संबंध में असंख्य बीजों, पत्तों और फलों की प्रच्छन्न संभावनाओं का पता नहीं लगाया है | एक बात यह भी है कि मांसादि के प्रति लगाव के साथ जो जबर्दस्त निहित स्वार्थ जुड़ गए हैं, उन्होंने चिकित्सकों को पूरे तटस्थ भाव से इस प्रश्न की थाह नहीं लेने दी है | *(यंग, 15-8-1929, पृ. 265)*

नैतिक आधार

शाकाहार के प्रति पूरी निष्ठा रखने के लिए आदमी को कुछ नैतिक आधार चाहिए....कारण कि, यह आत्मा के निर्माण के लिए है, शरीर के नहीं | आदमी केवल मांस ही नहीं है | हमारा सरोकार उसके भीतर बैठी आत्मा से है | इसलिए, शाकाहारियों का नैतिक आधार यह होना चाहिए कि मनुष्य का जन्म मांसभक्षी पशु के रूप में नहीं हुआ है, अपितु पृथ्वी द्वारा उत्पन्न फलों और शाकों पर जीवन-निर्वाह करने के लिए हुआ है | *(हरि, 20-2-1949, पृ. 430-31)*

अहिंसा केवल आहारविज्ञान का मामला नहीं है, यह उससे परे की चीज़ है | आदमी क्या खाता-पीता है, इसका उतना महत्व नहीं है; महत्व उसके पीछे जो आत्मत्याग और आत्मसंयम है, उसका है | अपने भोजन की वस्तुओं के चुनाव में जितना अधिक संयम बरतना चाहें, शौक से बरतिए | संयम प्रशंसनीय है, जरूरी भी, लेकिन यह अहिंसा की सिर्फ कोर को ही छूता है | यह संभव है कि आहार के मामले में डटकर आज़ादी बरतने वाला व्यक्ति भी अहिंसा की मूर्ति हो, और यदि उसका हृदय प्रेम से आप्लावित है और दूसरों की पीड़ा को देखकर द्रवित हो उठता है तथा उसने वासनाओं से मुक्ति पा ली है, तो हम उसे जरूर आदर देंगे | दूसरी ओर, आहार में सदा अतिसावधानी बरतने वाला व्यक्ति यदि स्वार्थ और वासनाओं का दास है तथा हृदय का निर्मम है तो यह कहना पड़ेगा कि वह अहिंसा के पास भी नहीं फटका है और वह एक घृणित कमीना आदमी है | *(यंग, 6-9-1928, पृ. 300-01)*

यह भी स्मरण रखने योग्य है कि केवल जीवदया से ही हम काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और कपट, इन 'छह मारक शत्रुओं' पर विजय पाने में सफल नहीं हो सकते....जो व्यक्ति चींटियों और कीड़ों को रोज भोजन खिलाता है और जीवहत्या भी नहीं करता पर काम और क्रोध में आकंठ डूबा रहता है, उसमें कुछ भी ऐसा नहीं है जिसकी प्रशंसा की जाए | उसकी जीवदया एक यांत्रिक कर्म है जिसका कोई आध्यात्मिक मूल्य नहीं है | बल्कि सच पूछा जाए तो यह यंत्रवत कर्म से भी गिरा हुआ काम है – यह अंदर के भ्रष्ट आचरण को छिपाने का एक पाखंडयुक्त आवरण है | *(यंग, 15-9-1940, पृ. 285)*

मताधिकार

....मैं वयस्क मताधिकार का पूरी तरह समर्थन करता हूं....वयस्क मताधिकार कई कारणों से आवश्यक है; मेरी दृष्टि में एक निर्णायक कारण यह है कि यह न केवल मुसलमानों बल्कि तथाकथित अछूतों, ईसाइयों, मजदूरों और

दूसरे तमाम वर्गों की उचित आकांक्षाओं की पूर्ति करता है | मैं संभवत: इस बात को सहन नहीं कर सकता कि जो व्यक्ति चरित्रवान है पर जिसके पास पैसा नहीं है या जो निरक्षर है उसको वोट देने का अधिकार न हो या जो व्यक्ति रात-दिन पसीना बहाकर ईमानदारी की रोजी-रोटी कमाता है उसे सिर्फ इस अपराध के कारण वोट देने का अधिकार न हो कि वह निर्धन है | *(यंग, 8-10-1931, पृ. 297)*

महानता

सोलन को किसी व्यक्ति के जीवन-काल में उसके सुख के विषय में निर्णय देने में कठिनाई अनुभव हुई थी; ऐसी सूरत में, मनुष्य की महानता के विषय में निर्णय देना तो और भी कितना कठिन काम हो सकता है ? सच्ची महानता पहाड़ी के ऊपर बैठकर आम लोगों की भीड़ को दर्शन नहीं देती | इसके विपरीत, मेरे सत्तर वर्ष के अनुभव ने मुझे सिखाया है कि जो लोग सचमुच में महान हैं, उनके बारे में अथवा उनकी महानता के बारे में दुनिया को उनके जीवन-काल में शायद ही कभी कोई जानकारी हो पाती है | सच्ची महानता का निर्णायक केवल ईश्वर ही हो सकता है, क्योंकि वही लोगों के दिलों को पहचानता है | *(हरि, 10-12-1938, पृ. 377)*

माता-पिता

मैंने आज तक एक भी ऐसा सपूत नहीं देखा जिसे अपनी मां बुढ़ापे के कारण कुरूप दिखाई देती हो | शुद्ध सोने पर मुलम्मा चढ़ाना तो शायद संभव भी हो जाए, पर ऐसा पुत्र अभी तक पैदा नहीं हुआ जो अपने पिता का परिष्कार कर सके | *(हरि, 3-8-1947, पृ. 260)*

मृत्यु

अनेक वर्षों से मैं इस प्रस्थापना के प्रति बौद्धिक सहमति व्यक्त करता रहा हूं कि मृत्यु जीवन में आने वाला एक बड़ा परिवर्तन मात्र है, इससे अधिक कुछ भी नहीं, तथा यह जब भी आए, हमें इसका स्वागत करना चाहिए | मैंने सोच-समझ-कर अपने हृदय से मृत्यु के भय सहित सभी भयों को दूर करने के लिए घोर प्रयास किया है |

मुझे अपने जीवन के वे अवसर अब भी याद है जब मैं आसन्न मृत्यु के विचार से उसी प्रकार आनंदित हुआ हूं जिस प्रकार कोई अपने बिछुड़े मित्र से मिलने की आशा से आनंदित होता है | मनुष्य प्राय: दृढ़ बनने के सभी प्रयासों के बावजूद दुर्बल बना रहता है और जो ज्ञान बुद्धि तक सीमित रह जाता है और हृदय में नहीं उतरता, वह जीवन के क्रांतिक क्षणों में कोई काम नहीं आ पाता |

एक बात और है कि जब व्यक्ति को बाहर से मदद मिलती है और वह उसे स्वीकार कर लेता है तो उसकी आत्मा की शक्ति प्राय: क्षीण हो जाती है | सत्याग्रही को सदा ऐसे प्रलोभनों से सावधान रहना चाहिए | *(सस, पृ. 186)*

मुझे यह बात दिन के प्रकाश की तरह स्पष्ट दिखाई देती है कि जीवन और मृत्यु एक ही चीज़ की दो अवस्थाएं हैं, एक ही सिक्के के दो पहलु हैं | वस्तुत: मुझे सुख अथवा जीवन की अपेक्षा क्लेश और मृत्यु कहीं अधिक समृद्ध प्रतीत होते हैं | विपत्तियां और क्लेश जीवन के उद्दीपक हैं; इनके बिना जीने का क्या अर्थ है ? *(यंग, 12-3-1930, पृ. 95)*

मृत्यु का भय

अगर कोई मुझसे यह कहे कि मौत से बचने के लिए मुझे इस वर्ष के अंत तक के वास्ते हिमालय में जाकर वास करना चाहिए तो मैं ऐसा बिलकुल नहीं करूंगा | कारण यह है कि मैं जानता हूं कि आदमी कितनी ही सावधानियां बरत ले, पर मृत्यु तो अवश्यंभावी है | मैं चाहूंगा कि आप इस बात को समझें कि मैं भारत के उन इने-गिने सार्वजनिक व्यक्तियों में से एक हूं जो अपने स्वास्थ्य की रक्षा करना जानते हैं | ईश्वर ही जानता है कि उसे मुझसे क्या काम लेना है | उसे अपने काम के लिए मेरी जब तक आवश्यकता है, उससे एक क्षण भी अधिक वह मुझे जीवित नहीं रहने देगा | *(हरि, 15-1-1938, पृ. 416)*

मृत्यु एक सहचरी तथा मित्र है | जो बहादुरी के साथ मरते हैं, मौत उन्हें प्रिय लगती है | *(हरि, 20-4-1947, पृ. 117)*

मृत्यु से किसी को भयभीत नहीं होना चाहिए | मृत्यु प्रत्येक मनुष्य के लिए अवश्यंभावी है | लेकिन अगर हम मुस्कराते हुए मरेंगे तो हमें एक नया जीवन प्राप्त होगा | *(वही, पृ. 120)*

आदमी मृत्यु से बचने के लिए ही जीवित नहीं रहता | अगर कोई ऐसा करता है तो वह गलती करता है |

मनुष्य को मृत्यु से अधिक नहीं तो उतना प्रेम तो करना ही चाहिए जितना वह जीवन से करता है | आप कह सकते हैं कि यह एक कठिन बात है और इस पर अमल करना तो और भी कठिन है | पर हर अच्छे काम को करना कठिन होता है | चढ़ाई हमेशा कठिन होती है | उतराई आसान और प्राय: फिसलनी होती है | जीवन तभी तक जीने योग्य है जब तक हम मृत्यु को मित्र मानें, शत्रु कदापि नहीं |

जीवन के प्रलोभनों को जीतने के लिए मृत्यु की सहायता मांगिए | कायर आदमी मृत्यु को टालने के लिए अपना सम्मान, पत्नी, पुत्री आदि सभी की बलि दे देता है | साहसी व्यक्ति आत्मसम्मान की बलि देने के बजाए मौत को गले लगाना बेहतर समझता है |

जब समय आएगा – जिसकी कल्पना की जा सकती है – तो मैं अपना परामर्श सुस्पष्ट शब्दों में लिखकर छोड़ जाऊंगा, किसी को उसका अनुमान लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी | *(हरि, 30-11-1947, पृ. 437)*

सभी को किसी-न-किसी दिन मरना है | मृत्यु से कोई नहीं बच सकता | तो फिर उससे डरना क्या ? वास्तव में, मृत्यु तो एक मित्र है जो दुखों से छुटकारा दिलाती है | *(हरि, 25-1-1948, पृ. 529)*

मृत्यु-शुल्क

मृत्यु-शुल्क क्यों नहीं लगाए जाने चाहिए ? लखपतियों के बेटे जो वयस्क हो चुके हैं, अपने माता-पिताओं की संपत्ति के वारिस बनने के कारण ही नुकसान उठाते हैं | इससे राष्ट्र को दोहरा नुकसान होता है | विरासत पर राष्ट्र का ही अधिकार होना चाहिए | राष्ट्र को उत्तराधिकारियों की क्षमताओं से भी हाथ धोना पड़ता है, क्योंकि दौलत के बोझ तले दबकर उत्तराधिकारी अपनी पूरी क्षमता का उपयोग नहीं कर पाते | *(हरि, 31-7-1937, पृ. 197)*

व्यक्तिगत रूप से, मैं विरासत में मिली धन-दौलत में विश्वास नहीं करता | धनवान लोगों को अपने बच्चों को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए और उनका पालन-पोषण इस प्रकार करना चाहिए कि वे अपने पैरों पर खड़ा होना सीखें | दुख का विषय है कि वे ऐसा नहीं करते | उनके बच्चे थोड़े-बहुत पढ़ जाते हैं, वे गरीबी के गुणगान में कुछ कविताएं भी सुनाने लगते हैं, लेकिन उन्हें अपनी पैतृक संपत्ति का उपयोग करने में कोई तकलीफ महसूस नहीं होती | *(हरि, 8-3-1942, पृ. 67)*

युवा

मेरी आशा का केंद्र देश का युवा वर्ग है | जो युवक दुर्गुणों के शिकार हैं....वे भी प्रकृति से बुरे नहीं हैं | वे मजबूरी में और बिना सोचे-समझे दुर्गुणों की ओर आकृष्ट हो गए हैं | उन्हें समझना चाहिए कि इनके कारण स्वयं उन्हें और समाज को कितनी हानि पहुंची है | उन्हें यह भी समझना चाहिए कि कठोर अनुशासन में रहकर ही वे अपने को और देश को पूरी बर्बादी से बचा सकते हैं | *(यंग, 9-7-1925, पृ. 239)*

मुझे उच्च वर्ग के युवाओं में फैशन के प्रति दीवानगी को देखकर बड़ी मनोव्यथा होती है | वे यह नहीं जानते कि पश्चिम की इस मोहक चकाचौंध की गुलामी के कारण वे स्वयं को उन निर्धनतम देशवासियों से अलग-थलग कर रहे हैं जो कभी इन फैशनों को नहीं अपना सकते | मैं यह नहीं भूल सकता कि यदि हमारा युवा वर्ग....इस झूठी शान के चक्कर में सादगी की वृत्ति को खो बैठा तो यह एक राष्ट्रीय महासंकट होगा, एक राष्ट्रीय त्रासदी होगी| *(यंग, 8-12-1927, पृ. 416)*

वकील

अगर हम वकीलों और अदालतों के मायाजाल में न फंसे होते और हमें अदालतों के दलदल में फंसाने और हमारे निकृष्टतम मनोवेगों को हवा देने वाले दलाल न होते तो हमारा जीवन आज की अपेक्षा कहीं अधिक सुखी होता | अदालतों के चक्कर लगाने वाले ऊंचे-से-ऊंचे व्यक्ति भी इस बात की गवाही देंगे कि वहां का वातावरण निहायत

गंदा होता है | दोनों ओर झूठे गवाह खड़े किए जाते हैं जो पैसे के लिए या दोस्ती की खातिर अपनी आत्माएं बेचने के लिए तैयार रहते हैं | *(यंग, 6-10-1920, पृ. 2-3)*

मैंने सच्ची वकालत करना सीखा; मनुष्य के गुण – उसके उज्ज्वल पक्ष को खोजना सीखा; मनुष्य के हृदय में प्रवेश करना सीखा | मैंने देखा कि वकील का कर्तव्य है कि वादी और प्रतिवादी के बीच की खाई को पाट दे | यह शिक्षा मेरे हृदय में इतनी गहराई के साथ अंकित हो गई कि अपने बीस साल के वकील-जीवन में मेरा अधिक समय सैकड़ों मुकदमों में दोनों पक्षों के बीच समझौता कराने में बीता | इसमें मैंने खोया कुछ नहीं | धन खोया हो, यह भी नहीं कह सकते; और आत्मा को तो किसी तरह नहीं खोया | *(ए, पृ. 97)*

कानून और सच्चाई

मेरी यह धारणा और भी दृढ़ हो गई कि वकालत में भी सच्चाई का पालन करके सफलता मिल सकती है | परंतु पाठक यह बात याद रखें कि वकालत करते समय सत्य के प्रति दृढ़ रहने पर भी वकालत के पेशे की मूलभूत बुराइयों का इलाज नहीं किया जा सकता | *(वही, पृ. 269)*

अपनी वकालत के दौरान एक बार भी मैं विशुद्ध सत्य और ईमानदारी से विचलित नहीं हुआ | *(यंग, 22-12-1927, पृ. 421)*

....यदि आप वकालत के पेशे को आध्यात्मिकता प्रदान करना चाहते हैं तो पहली चीज़ जो आपको हमेशा ध्यान में रखनी चाहिए वह यह है कि आपका पेशा आपके बटुए का ताबेदार न बन जाए, जैसा कि दुर्भाग्यवश आज प्राय: देखने में आ रहा है, बल्कि वह देश की सेवा के काम में आए | हमारे सामने सभी देशों के मूर्धन्य वकीलों के उदाहरण मौजूद हैं जिन्होंने आत्मत्याग का जीवन जिया और अपनी प्रखर कानूनी प्रतिभा का उपयोग पूरी तरह देश की सेवा के लिए किया, हालांकि इसके कारण उन्हें कंगालों का-सा जीवन जीना पड़ा....

वकील का कर्तव्य

....आप रस्किन द्वारा अपनी पुस्तक 'अनटू दिस लास्ट' में दिए गए निर्देश का पालन कर सकते हैं | वह पूछते हैं, 'अगर बढ़ई को अपने काम के बदले मुश्किल से पंद्रह शिलिंग मिलते हैं तो वकील को पंद्रह पौंड क्यों मिलने चाहिए ?' वकीलों द्वारा वसूल की गई फीसें सर्वत्र अनाप-शनाप हैं....इंग्लैंड में, अफ्रीका में, लगभग सभी जगह, मैंने यह देखा है कि अपने पेशे के दौरान वकील जाने-अनजाने अपने मुवक्किलों की खातिर झूठ बोलते हैं | एक प्रतिष्ठित वकील ने तो यहां तक कहा है कि यह वकील का कर्तव्य है कि वह यह जानते हुए भी कि उसका मुवक्किल दोषी है, उसे बचाने का प्रयास करे | मैं इस विचार से सहमत नहीं हूं | वकील का कर्तव्य हमेशा यह है कि वह न्यायाधीशों के समक्ष मामला पेश कर दे और उन्हें सच्चाई तक पहुंचने दे; वकील का काम दोषी को निर्दोष सिद्ध करना कदापि नहीं है | *(वही, पृ. 427-28)*

विचार-शक्ति

शुद्ध जीवन जीने के आकांक्षी व्यक्ति को मुझसे यह सीख लेनी चाहिए कि शरीर को क्षति पहुंचाने के मामले में जितना प्रबल अशुद्ध कर्म है, प्राय उतना ही प्रबल अशुद्ध विचार भी है | *(यंग, 25-8-1927, पृ. 278)*

मनुष्य जैसा स्वयं को मानता है, प्राय: वैसा ही बन जाता है | अगर मैं अपने आप से कहता रहूं कि मैं अमुक काम नहीं कर पाऊंगा तो इस बात की पूरी संभावना है कि अंत में मेरे अंदर वस्तुत: उस काम को करने की क्षमता नहीं रहेगी | इसके विपरीत, अगर मुझे विश्वास है कि मैं वह काम कर सकूंगा तो भले ही मेरे अंदर शुरू में क्षमता का अभाव हो, पर मैं उसे करने की क्षमता अवश्य अर्जित कर लूंगा | *(हरि, 1-9-1940, पृ. 268)*

आप जो सोचते हैं, वैसे ही हो जाते हैं | विचार तब तक पूर्ण नहीं होता जब तक कि वह कर्म में परिणत नहीं हो जाता और कर्म आपके विचार की सीमा निश्चित करता है | जब उन दोनों के बीच पूर्ण सामंजस्य स्थापित होता है तभी जीवन पूर्ण और सहज बन पाता है | *(हरि, 7-4-1946, पृ. 72)*

व्यक्ति

मेरी दृष्टि में सबसे महत्वपूर्ण चीज़ व्यक्ति के प्रति न्याय है, भले ही वह व्यक्ति कितना ही अदना क्यों न हो | बाकी सारी बातें इसके बाद आती हैं | *(यंग, 17-9-1919, पृ. 149-50)*

शराब

आप इस खुशनुमा दलील के धोखे में न आएं कि भारत को जबरन अमद्यप नहीं बनाया जाना चाहिए और जो लोग पीना चाहते हैं, उन्हें इसके लिए सुविधाएं उपलब्ध की जानी चाहिए | राज्य का काम लोगों के दुर्गुणों के लिए व्यवस्था करना नहीं है | हम बदनाम कोठों का नियमन नहीं करते, न उन्हें लाइसेंस जारी करते हैं | हम चोरों को चोरी करने के लिए सुविधाएं प्रदान नहीं करते | मैं शराबखोरी को चोरी या शायद वेश्यावृत्ति से भी अधिक निंदनीय मानता हूं | क्या ये दोनों दुर्गुण प्राय: शराबखोरी से ही उत्पन्न नहीं होते ? *(यंग, 8-6-1921, पृ. 181)*

शराब बीमारी ज्यादा है, दुर्गुण कम | मैं बीसियों लोगों को जानता हूं जो हो सके तो खुशी-खुशी इस लत से पिंड छुड़ाने के लिए तैयार हैं | मैं ऐसे लोगों को भी जानता हूं जिन्होंने कहा है कि शराब की बोतल उनके सामने न आने दी जाए | पर बोतल दूर कर देने पर भी उनमें से कितने ही लोगों ने चुराकर शराब पी है....बीमार लोगों को स्वयं उन्हीं से बचाने की जरूरत पड़ती है | *(यंग, 6-7-1921, पृ. 240)*

शराब और नशीली दवाइयां अनेक दृष्टियों से मलेरिया आदि से भी कहीं ज़्यादा हानिकर हैं, क्योंकि जहां मलेरिया केवल शरीर को नुकसान पहुंचाता है वहीं शराब शरीर और आत्मा दोनों को चूस जाती है | *(यंग, 3-3-1927, पृ. 68)*

कंगाल बनाना

मैं अपने बीच हजारों शराबियों के बजाए यह ज़्यादा अच्छा समझूंगा कि भारत कंगाल हो जाए | भारत में मद्यनिषेध लागू करने के लिए यदि उसे अशिक्षित रखना अनिवार्य हो तो मैं इसके लिए भी तैयार हूं | *(यंग, 15-9-1927, पृ. 306)*

जो राष्ट्र शराबखोरी का शिकार है, उसके हाथ बर्बादी के अलावा और कुछ नहीं लगने वाला | इतिहास इस बात का साक्षी है कि इस लत के कारण पूरे साम्राज्य नष्ट हो गए हैं | भारत में ही श्रीकृष्ण के यदुवंश का पतन इसी व्यसन के कारण हुआ | रोम के पतन के कारणों में से एक कारण निस्संदेह यह व्यसन ही था | *(यंग, 11-4-1929, पृ. 115)*

शराबखोरी मनुष्य की आत्मा का नाश कर देती है और उसे पशु बना देती है जो पत्नी, मां और बहिन के बीच फर्क नहीं कर पाता | मैंने ऐसे लोग देखे हैं जो शराब के नशे में यह फर्क भूल जाते हैं | *(हरि, 9-3-1934, पृ. 30)*

मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि निर्धन मदिरासेवियों के नैतिक और भौतिक साधनों को पी जाने वाली आबकारी की हानि के मुकाबले मद्यनिषेध के परिणामस्वरूप इन निर्धनों को पहुंचने वाला लाभ कहीं अधिक होगा | आबकारी के पक्ष में दिया जाने वाला दूसरा तर्क है कि यह सेना के भार को वहन करने के लिए आवश्यक है; नये भारत के संदर्भ में यह तर्क भी व्यर्थ है, क्योंकि यह भार अब रहेगा ही नहीं | इसलिए आबकारी की आमदनी का अविलंब और बिना हिचक त्याग कर देना चाहिए | इस आमदनी की हानि के विचार को इस अत्यावश्यक सुधार की प्रगति के मार्ग में रुकावट नहीं बनने देना चाहिए....

मद्यनिषेध के नकारात्मक पक्ष के साथ-साथ उसके सकारात्मक पक्ष पर भी ध्यान देना आवश्यक है | सकारात्मक पक्ष यह है कि मद्यपों के लिए वैकल्पिक स्वास्थ्यप्रद आकर्षण और निर्दोष मनोरंजन के साधन जुटाए जाने चाहिए| *(हरि, 15-9-1946, पृ. 313)*

श्रम का विभाजन

श्रम का विभाजन आवश्यक है | यह उचित नहीं है कि एक व्यक्ति ही सारा काम करे; संगठित कार्य-प्रणाली के लिए तो यह निश्चित रूप से बाधक है | ब्रिटिश राजतंत्र कोई व्यक्तिगत संगठन नहीं है | "राजा दिवंगत हुआ | राजा दीर्घजीवी हो", इसीलिए कहा गया है कि 'राजा से कोई त्रुटि नहीं हो सकती' | एक व्यक्ति के रूप में, राजा धूर्त हो सकता है, लेकिन संगठन के रूप में मूर्तिमान होने पर वह उतना ही पूर्ण माना जाता है जितना 'पूर्ण' शब्द से तात्पर्य उस समाज ने लिया है |

सूत्र यह है कि किसी प्रगतिशील संगठन में, आरंभिक चरणों के दौरान, उसके प्रभारी लोगों की कार्यकुशलता कितनी ही कम हो, पर उनका आचरण संदेह से परे होना चाहिए; वे संस्था के हित को सर्वोपरि मानें और अपने हित को सबसे कम तरजीह दें | अगर संगठन का काम धूर्तों के जरिए चलाने का प्रयास किया जाएगा तो संगठन के मुखिया का पद हमेशा किसी धूर्त के कब्जे में रहेगा | *(हरि, 31-3-1946, पृ. 61)*

समय-पालन

मैंने मित्रों के बीच प्राय: यह राय जाहिर की है कि जहां तक अनासक्ति की क्षमता का प्रश्न है, अंग्रेज हमसे कहीं आगे हैं | कितने ही महत्व का राष्ट्रीय मसला हो, वे अपने भोजन और मनोरंजन के समय का पालन करते हैं | वे खतरा सामने देखकर या महासंकट की आशंका से घबराते नहीं हैं | इसे गीता की भाषा में अनासक्त भाव से काम करना कहा जा सकता है | भारत के राजनीतिक कार्यकर्ताओं में बहुत ही कम लोग हैं जिनकी इस मामले में अंग्रेजों के स्तर के साथ तुलना की जा सकती है....

यदि नेतागण और कार्यकर्ता समय का पालन करें तो उससे राष्ट्र का निश्चित रूप से बड़ा लाभ होगा....कोई व्यक्ति अपनी सामर्थ्य से अधिक काम नहीं कर सकता | यदि दिन की समाप्ति पर भी काफी काम बच रहता है या व्यक्ति अपने खाने, सोने अथवा मनोरंजन के समय में से कटौती किए बिना उसे समाप्त नहीं कर सकता तो समझना चाहिए कि व्यवस्था में कहीं कोई गड़बड़ है | मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि अगर हम समय-पालन की आदत डाल लें और निर्धारित कार्यक्रम के हिसाब से चलें तो राष्ट्र की कार्यकुशलता में वृद्धि होगी, अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने की हमारी गति तीव्र होगी और कार्यकर्ताओं का स्वास्थ्य बेहतर बनेगा तथा उनके आयुष्य में वृद्धि होगी| *(हरि, 24-9-1938, पृ. 266)*

समाज-सुधार

मेरा अरसे से यह विश्वास रहा है कि राजनीतिक सुधार की अपेक्षा समाज-सुधार का काम ज़्यादा मुश्किल है | राजनीतिक सुधारों के लिए तो वातावरण तैयार है, लोगों की उसमें दिलचस्पी भी है और बाहर के देश यह समझते हैं कि इसे आत्मशुद्धीकरण के बिना ही किया जा सकता है | दूसरी ओर, समाज-सुधार के काम में लोगों की रुचि बहुत कम है, इनके आंदोलनों के परिणाम प्रभावशाली नहीं होते और समाज-सुधारकों को बधाइयां तथा मानपत्र मिलने की भी ज़्यादा गुंजाइश नहीं होती | इसलिए समाज-सुधारकों को कुछ समय इसी तरह निकालना होगा और शांति के साथ काम करते हुए जाहिरा मामूली नतीजों से ही संतोष करना होगा | *(यंग, 6-9-1928, पृ. 301-02)*

मेरी राय में, सुधारक को अपने अभियान में सबसे कम जरूरत पैसे की होती है | अपनी वास्तविक आवश्यकताओं के ठीक अनुपात में उसे पैसा बिना मांगे मिलता है | जो सुधारक मेरे पास आकर यह दलील देते

हैं कि वे पैसे की कमी की वजह से अच्छे परिणाम प्राप्त नहीं कर पाए, उन्हें मैं सदा संदेह की दृष्टि से देखता आया हूं |

जहां उत्साह है, समुचित जानकारी है और अपने ऊपर भरोसा है, वहां वित्तीय सहायता हमेशा उपलब्ध हो जाती है | *(यंग, 14-11-1929, पृ. 369)*

समाज-सुधार अथवा आत्मशुद्धीकरण का काम....मुझे विशुद्ध राजनीतिक कार्य से सौ गुना प्रिय है | *(यंग, 6-8-1931, पृ. 203)*

सादा जीवन

यह मानना कि इस दुनिया का प्रत्येक व्यक्ति अधिकतम उत्पादन करके रहन-सहन के उच्चतम स्तर तक पहुंच सकता है, उतना ही काल्पनिक है जितना कि सूई की नोक से ऊंट के गुजर सकने की आशा करना....विलासमय जीवन जीना....समूचे समाज के लिए कभी संभव नहीं हो पाएगा | इसके अलावा, जब विलास की कोई सीमा ही नहीं है तो हम रुकेंगे कहां जाकर ? विश्व के सभी धर्मग्रंथों ने इससे बिलकुल विपरीत बात की ही सीख दी है | उन्होंने हमारे सामने 'सादा जीवन उच्च विचार' का आदर्श रखा है | अधिकांश लोग इस आदर्श की सत्यता को समझते हैं, किंतु मानवीय दुर्बलता के कारण उसे प्राप्त नहीं कर पाते |

लेकिन इस आदर्श की प्राप्ति पूर्णतया संभव है....ज्यों ही हम अपनी दैनंदिन आवश्यकताओं में वृद्धि करना चाहने लगते हैं, हम 'सादा जीवन उच्च विचार' के आदर्श से दूर हो जाते हैं | इतिहास में इसके पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं | *(हरि, 1-2-1942, पृ. 27)*

सादगी सार्विकता का सार है | *(हरि, 7-4-1946, पृ. 69)*

जीवन की सादगी के अलावा अन्य किसी तरीके से मानव व्यक्तित्व की रक्षा नहीं की जा सकती | मैं 'अनटू दिस लास्ट' के निहितार्थ का पूरी तरह समर्थन करता हूं | इस पुस्तक ने मेरे जीवन का रुख ही मोड़ दिया | हमें समाज के निम्नतम व्यक्ति के लिए वह सब करना चाहिए जो हम चाहते हैं कि दुनिया हमारे लिए करे | *(यंग, 17-11-1946, पृ. 404)*

साधन और साध्य

उनका कहना है कि 'साधन तो आखिर साधन ही हैं' | मैं कहता हूं कि 'साधन ही सब कुछ हैं' | जैसे साधन, वैसा साध्य | हिंसक साधनों से हिंसक स्वराज की ही प्राप्ति होगी | वह सारी दुनिया और स्वयं भारत के लिए मुसीबत पैदा कर देगा....साधनों से साध्य को पृथक करने के लिए बीच में कोई दीवार नहीं है | वास्तविकता यह है कि ईश्वर ने हमें केवल साधनों पर नियंत्रण दिया है (वह भी बड़ा सीमित), साध्य पर हमारा कोई वश नहीं है | साधनों

के ठीक अनुपात में ही साध्य की प्राप्ति होती है | इस प्रस्थापना का कोई अपवाद नहीं है | अपने इस विश्वास के कारण ही मैं इस बात का प्रयास कर रहा हूं कि देश उन्हीं साधनों को अपनाए जो विशुद्ध रूप से शांतिपूर्ण और वैध हैं | *(यंग, 17-7-1924, पृ. 236-37)*

मेरे जीवन-दर्शन में साधन और साध्य परिवर्तनीय शब्द हैं | *(यंग, 26-12-1924, पृ. 3)*

सार्वजनिक कार्यकर्ता

आधुनिक सार्वजनिक जीवन की एक प्रवृत्ति यह है कि जब तक कोई सार्वजनिक कार्यकर्ता किसी प्रशासनिक तंत्र में अपना काम कुशलतापूर्वक अंजाम देता है तब तक उसके चरित्र की ओर बिलकुल भी ध्यान न दिया जाए | कहा जाता है कि व्यक्ति का चरित्र उसके अपने निजी सरोकार की चीज़ है | यह जानते हुए भी कि लोगों का प्राय: यही दृष्टिकोण है, मैं कभी इससे सहमत नहीं हो पाया, इसे अपनाने की तो बात ही छोड़िए | मैंने ऐसे संगठनों को जो निजी चरित्र को कोई महत्व नहीं देते, इसके गंभीर परिणामों को भुगतते देखा है | *(हरि, 7-11-1936, पृ. 308)*

सार्वजनिक जीवन

मैंने बार-बार यह कहा है कि कोई विचार-संप्रदाय इस बात का दावा नहीं कर सकता कि सही निर्णय लेने की बपौती केवल उसी की है | हम सभी से गलतियां होती हैं और हमें प्राय: अपने फैसलों में रद्दोबदल करनी पड़ती है | हमारे जैसे विशाल देश में, सभी खरे विचार-संप्रदायों के लिए स्थान होना चाहिए | इसलिए हमारा अपने प्रति और दूसरों के प्रति कम-से-कम यह दायित्व अवश्य है कि हम अपने विरोधी के दृष्टिकोण को समझने का प्रयास करें और यदि हम उसे स्वीकार न कर पाएं तो उसका उसी प्रकार पूरी तरह सम्मान करें जैसा कि हम चाहते हैं कि वह हमारे दृष्टिकोण का करे | यह स्वस्थ सार्वजनिक जीवन की एक अपरिहार्य कसौटी है और इसलिए स्वराज के लिए भी आवश्यक है |

यदि हममें उदारता और सहिष्णुता नहीं होगी तो हम अपने मतभेदों को कभी नहीं सुलझा सकेंगे और उन्हें हमेशा विवाचन के लिए किसी तृतीय पक्ष को सौंपना होगा, जिसका अर्थ होगा विदेशी प्रभुत्व | *(यंग, 17-4-1924, पृ. 130)*

मेरा यह निश्चित मत है कि सार्वजनिक कार्यकर्ता को कभी महंगे उपहार स्वीकार नहीं करने चाहिए | *(ए, पृ. 161)*

सार्वजनिक धन

यदि हम जनता से मिली पाई-पाई का ठीक से हिसाब न रखें और उसे समझदारी से खर्च न करें तो उचित यही होगा कि हमें सार्वजनिक जीवन से निष्कासित कर दिया जाए | *(यंग, 6-7-1921, पृ. 209)*

मेरे पास ऐसी कोई संपत्ति नहीं है जिसे मैं अपनी कह सकूं | क्या मुझे इस बात का हक है कि मैं चंदे के पैसे....का उपयोग अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए करूं ? अपने पूरे जीवन में मैंने ऐसा कभी नहीं किया है और मित्रों को भी ऐसा न करने की सलाह दी है | मेरी धारणा है कि जिन लोगों को जनता का विश्वास प्राप्त है और जिन्हें जनता यह मानकर चंदा देती है कि वे किसी सार्वजनिक कार्य के लिए इसका इस्तेमाल उनकी अपेक्षा अधिक बुद्धिमानी और सावधानी के साथ करेंगे, उनके सामने और कोई रास्ता खुला नहीं है | अगर जनता द्वारा किसी व्यक्ति के प्रति किए गए विश्वास को निजी प्रयोजनों के लिए तोड़ा गया तो यह बड़ी भयंकर बात होगी | इसके घातक परिणामों का वर्णन करने के बजाए उनकी कल्पना करना ही ज़्यादा अच्छा है | सार्वजनिक सेवा भी, सीजर की पत्नी की तरह, संदेह से परे होनी चाहिए | *(हरि, 24-2-1946, पृ. 23)*

....कितनी ही सार्वजनिक संस्थाओं के संचालन की जिम्मेदारी निभा चुकने के बाद मेरी यह दृढ़ धारणा बनी है कि किसी भी सार्वजनिक संस्था को स्थायी कोष पर निर्वाह करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए, क्योंकि इसमें संस्था की नैतिक अधोगति का बीज समाया रहता है | सार्वजनिक संस्था का अर्थ है लोगों की मंजूरी और उसके धन से चलने वाली संस्था | जब उसे लोगों की मदद मिलनी बंद हो जाए तो उसे जीवित रहने का अधिकार नहीं है | *(ए, पृ. 144)*

सार्वजनिक संस्थाएं

मेरी निश्चित धारणा है कि कोई अच्छी संस्था समर्थन के अभाव के कारण कभी समाप्त नहीं होती | जो संस्थाएं समाप्त हुई हैं वे या तो इसलिए कि उनमें जनता की प्रशंसा अर्जित करने योग्य कुछ था ही नहीं या इसलिए कि उनके संचालकों की आस्था चूक गई थी जिसे संभवत: इस रूप में भी कहा जा सकता है कि उनका सामर्थ्य ही चूक गया था | इसलिए मैं ऐसी संस्थाओं के....संचालकों से आग्रह करूंगा कि वे सामान्यत: व्याप्त निराशा के कारण धीरज न छोड़ें | यह अच्छी संस्थाओं की परीक्षा की घड़ी है | *(यंग, 15-10-1925, पृ. 351)*

सुख

सुख से तात्पर्य है....मानव गरिमा की प्रबुद्ध सिद्धि और मानव स्वातंत्र्य के लिए ललक, जो व्यक्तिगत सुविधाओं और भौतिक आवश्यकताओं की केवल स्वार्थमय तुष्टि से अधिक महत्व स्वयं को देती है और उसकी रक्षा के निमित्त इनका सहर्ष त्याग करने के लिए उद्यत रहती है | *(यंग, 5-3-1931, पृ. 1)*

सुख स्वयं प्रत्येक व्यक्ति के भीतर और पूर्णता तथा सत्य की खोज में निवास करता है...."क्या सभी लोग पूर्णता की प्राप्ति कर सकते हैं ?" – अवश्य, वह तो उनके अंदर ही है | *(इंके, पृ. 274)*

स्वास्थ्य

यह पूरी तरह प्रमाणित हो चुका है कि मानव जाति को जो बीमारियां विरासत में मिली हैं, उनमें से अधिकांश के लिए स्वास्थ्य तथा स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों की अनभिज्ञता और अवहेलना जिम्मेदार है | इसमें संदेह नहीं कि हमारे यहां की इतनी ऊंची मृत्यु-दर का कारण मुख्य रूप से हमारी घोर दरिद्रता है, पर यदि लोगों को अपने स्वास्थ्य और स्वास्थ्य-रक्षा के विषय में ठीक से शिक्षित किया जा सके तो इस समस्या का समाधान संभव है |

'स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन' मानव जाति का पहला नियम है | यह एक स्वत: स्पष्ट सत्य है | मन और शरीर के बीच अपरिहार्य संबंध है | अगर हमारे मन स्वस्थ होंगे तो हम सभी प्रकार की हिंसा का त्याग कर देंगे और स्वास्थ्य के नियमों का पालन करते हुए अपने शरीर को भी स्वस्थ रख सकेंगे |

स्वास्थ्य और स्वास्थ्य-रक्षा के बुनियादी नियम बड़े सरल हैं और उन्हें आसानी से सीखा जा सकता है | कठिनाई केवल उनका पालन करते समय अनुभव होती है | इनमें से कुछ नियम इस प्रकार हैं :

विचारों को शुद्ध रखिए; निरर्थक और अशुद्ध विचारों को मन से निकाल दीजिए |

दिन-रात शुद्ध वायु में श्वास लीजिए |

शारीरिक और मानसिक श्रम के बीच संतुलन स्थापित कीजिए |

सीधे खड़े होइए, सीधे बैठिए और अपने हर काम में स्वच्छता बरतिए तथा इन्हें अपनी आंतरिक स्थिति का अभिव्यंजक बनाइए |

मानव सेवा के लिए जीने की खातिर भोजन करें | विषय-भोगों के लिए न जिएं | अत: आपका भोजन बस इतना हो कि वह आपके मन और शरीर को ठीक रख सके | आदमी जैसा खाता है, वैसा ही बन जाता है |

आपका पानी, भोजन और वायु स्वच्छ होने चाहिए और आपको केवल व्यक्तिगत स्वच्छता से ही संतोष नहीं कर लेना चाहिए, बल्कि अपने चारों ओर भी वही त्रिविध स्वच्छता सुनिश्चित करनी चाहिए जैसी कि आप स्वयं अपने लिए चाहते हैं | *(काप्रो, पृ. 18-19)*

पूर्वनियति के सिद्धांत का यह अर्थ कदापि नहीं है कि हम बीमार पड़ जाने पर भी अपनी देखभाल करने की 'चिंता' न करें | बीमार पड़ने से भी बड़ा अपराध बीमारी के प्रति लापरवाही बरतना है | बीते कल की तुलना में आज बेहतर काम करने की कोशिश की कोई सीमा नहीं है | हमें इस बात की 'चिंता' करनी चाहिए और मालूम करना चाहिए कि हम बीमार क्यों हैं अथवा बीमार क्यों पड़े ? प्रकृति का नियम सेहत है, बीमारी नहीं | अगर हम बीमार नहीं पड़ना चाहते और अगर पड़ जाएं तो ठीक हो जाना चाहते हैं तो हमें प्रकृति के नियम का शोध करना चाहिए और उसका पालन करना चाहिए | *(हरि, 28-7-1946, पृ. 233)*

शरीर और आत्मा

मेरा विश्वास है कि स्वस्थ शरीर में स्वस्थ आत्मा का निवास होना चाहिए | इसलिए जिस सीमा तक आत्मा के स्वास्थ्य का उन्नयन होता है और वह विकारों से मुक्त होती है उसी सीमा तक शरीर भी उस स्थिति को प्राप्त होने के लिए विकसित होता जाता है | इसका तात्पर्य यह नहीं है कि स्वस्थ शरीर अनिवार्यत: तगड़ा होना चाहिए | वीर आत्मा प्राय: दुर्बल शरीर में निवास करती है | एक स्थिति के बाद, ज्यों-ज्यों आत्मा का विकास होता है, शरीर का मांस घटता जाता है |

पूर्णतया स्वस्थ शरीर देखने में बड़ा कृश लग सकता है | तगड़ा शरीर प्राय: अनेक बीमारियों का घर होता है | अगर वह जाहिरा तौर पर रोगमुक्त भी हो तो भी वह संक्रामक रोगों, छूत की बीमारियों आदि से उन्मुक्त नहीं होता | इसके विपरीत, पूर्णतया स्वस्थ शरीर को ऐसी कोई बीमारी नहीं लग सकती | शुद्ध रक्त में सभी संक्रामक रोगों का प्रतिरोध करने का प्रकृत सामर्थ्य होता है |

ऐसी साम्यावस्था प्राप्त करना वास्तव में काफी कठिन है | अन्यथा, मैं इसे प्राप्त कर चुका होता, क्योंकि मेरी आत्मा इस बात की साक्षी है कि मैं इस स्थिति की प्राप्ति के लिए कोई भी कष्ट उठाने को तैयार हूं | मेरे और इस साम्यावस्था के बीच कोई बाह्य अवरोध खड़ा नहीं हो सकता |

अपने पिछले संस्कारों को मिटा पाना सबके वश की बात नहीं है; कम-से-कम मेरे लिए तो यह काफ़ी कठिन है | लेकिन इसमें विलंब से मैं हताश नहीं हूं | बात यह है कि मेरे मन में उस परिपूर्ण स्थिति की तस्वीर स्पष्ट है | मुझे उसकी अस्पष्ट झलक भी मिली है | अब तक जितनी प्रगति मैं कर सका हूं उसे देखकर मुझे निराशा नहीं होती, बल्कि मेरे अंदर आशा का संचार होता है | यदि इस आशा के पूरा होने के पहले ही मेरा शरीर छूट जाए तो मैं यह नहीं समझूंगा कि मैं असफल हो गया हूं | चूंकि मैं जितना अपने वर्तमान शरीर के अस्तित्व में विश्वास करता हूं उतना ही पुनर्जन्म में भी करता हूं | इसलिए मैं जानता हूं कि साधारण-सा प्रयास भी व्यर्थ नहीं जाएगा | *(यंग, 5-6-1924, पृ. 187)*

स्रोत

अबाप	अमृत बाजार पत्रिका : कलकत्ता से प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक
आआए	आश्रम ऑब्जर्वेशंस इन एक्शन : वी. जी. देसाई द्वारा गुजराती से अनूदित; नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1955
इंके	इंडियाज केस फॉर स्वराज : डब्ल्यू. पी. कबाड़ी द्वारा संपादित; येशानंद एंड कं., बंबई, 1932
ए	एन ऑटोबायोग्राफी, ऑर द स्टोरी ऑफ माइ एक्सपेरीमेंट्स विद ट्रूथ : एम. के. गांधी; महादेव देसाई द्वारा गुजराती से अनूदित; नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद; खंड I, 1927; खंड II, 1929, प्रयुक्त संस्करण : 1959
एए	एशिया एंड द अमेरिकाज : न्यूयार्क से प्रकाशित मासिक
एंग्रे	एमंग द ग्रेट : दिलीप कुमार राय; प्राक्कथन – एस. राधाकृष्णन; नालंदा पब्लिकेशंस, बंबई, 1945; प्रयुक्त संस्करण : पुनर्मुद्रण : जयको पब्लिशिंग हाउस, बंबई, 1950
एफा	द एपिक फास्ट : प्यारेलाल; मोहनलाल मगनलाल भट्ट; अहमदाबाद, 1932
एमके	एम. के. गांधी : एन इंडियन पैट्रियट इन साउथ अफ्रीका : लेखक – जे. जे. डोक; प्राक्कथन – लार्ड एम्प्टहिल; द लंदन इंडियन क्रॉनिकल, लंदन, 1909
एरि	एथिकल रिलीजन : महात्मा गांधी; बी. रामा अय्यर द्वारा हिंदी से अनूदित; एस. गणेशन, मद्रास, 1930
काप्रो	कन्स्ट्रक्टिव प्रोग्राम: इट्स मीनिंग एंड प्लेस: एम. के. गांधी; नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1941; प्रयुक्त संस्करण, 1948
कीहै	की टु हैल्थ: एम. के. गांधी; नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1948
गांकाग	गांधीजीज़ करस्पॉन्डेंस विद द गवर्नमेंट, 1942-44; नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, अप्रैल 1945
गाइंवि	गांधीजी इन इंडियन विलेजेज: महादेव देसाई; इस. गणेशन, मद्रास, 1927
टाइ	द टाइम्स ऑफ इंडिया: बंबई से प्रकाशित दैनिक

टुन्यू	टुवर्ड्स न्यू होराइजंस: प्यारेलाल; महात्मा गांधी: द लास्ट फेज से पुनर्मुद्रित; नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1959
नव	नवजीवन (1919-1931): गुजराती साप्ताहिक, कभी-कभी सप्ताह में दो अंक भी; 7 सितंबर, 1919 को प्रथम बार प्रकाशित; गांधीजी द्वारा संपादित और अहमदाबाद से प्रकाशित
नावावे	नॉन-वायलेंट वे टू वर्ल्ड पीस: एम. के. गांधी; आर के प्रभु द्वारा संकलित; नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1959
फ्रायम	फ्रॉम यरवदा मंदिर: आश्रम ऑब्जर्वेंसेज: एम. के. गांधी; वी. जी. देसाई द्वारा अनूदित; नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1933; प्रयुक्त संस्करण: 1957
बांक्रा	द बांबे क्रोनिकल: बंबई से प्रकाशित दैनिक
म	महात्मा: लाइफ ऑफ मोहनदास करमचंद गांधी: डी. जी. तेंदुलकर; विट्ठलभाई के. झावेरी तथा डी. जी. तेंदुलकर, बंबई 1951-54; 8 खंड
मगांआ	महात्मा गांधीज आइडियाज: सी. एफ. एंड्रयूज; जॉर्ज एलन, लंदन, 1929
मगां	महात्मा गांधी: द लास्ट फेज: प्यारेलाल; नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद; खंड I, फरवरी 1956; खंड II, फरवरी 1958
माना	माइ नॉन-वायलेंस: एम. के. गांधी; शैलेशकुमार बंदोपाध्याय द्वारा संपादित; नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1960
मारि	द मॉडर्न रिव्यू: कलकत्ता से प्रकाशित मासिक पत्रिका
मासो	माई सोशलिज्म: एम. के. गांधी, आर. के. प्रभु द्वारा संकलित, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1959
मीइन्स	मीडियम ऑफ इंस्ट्रक्शन: एम. के. गांधी; भारतन कुमारप्पा द्वारा संपादित: नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1954
यंग	यंग इंडिया: (1919-1932) अंग्रेजी साप्ताहिक पत्र, गांधीजी की देखरेख में 7 मई, 1919 से बंबई से सप्ताह में दो बार प्रकाशित और गांधीजी के संपादकत्व में 8 अक्तूबर 1919 से साप्ताहिक के रूप में अहमदाबाद से प्रकाशित

रिकप	रिपोर्ट ऑफ द कमीशन एपाइंटेड बाई द पंजाब सब कमिटी ऑफ द इंडियन नेशनल कांग्रेस: के. संथानम द्वारा प्रकाशित, लाहौर, 1920
ली	द लीडर: इलाहाबाद से प्रकाशित दैनिक
विगांसी	विद गांधीजी इन सीलोन: महादेव देसाई द्वारा संपादित; एस. गणेशन, मद्रास, 1928
सली	सत्याग्रह लीफ्लेट्स: मार्च-मई 1919 के दौरान बंबई से समय-समय पर प्रकाशित
ससा	सत्याग्रह इन साउथ अफ्रीका: एम. के. गांधी; वी. जी. देसाई द्वारा अनूदित; नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1928; प्रयुक्त संस्करण: 1950
सा	साबरमती: फेडरेशन ऑफ इंटरनेशनल फेलोशिप्स की वार्षिक बैठक का प्रतिवेदन, 1929
स्पीरा	स्पीचेज एंड राइटिंग्स ऑफ महात्मा गांधी: जी. ए. नटेसन एंड कं., मद्रास, 1933, चतुर्थ संस्करण
स्पेक्ट	द स्पेक्टेटर: लंदन से जारी साप्ताहिक
हरि	हरिजन: (1933-1956) गांधीजी द्वारा संस्थापित अंग्रेजी साप्ताहिक, हरिजन सेवक संघ, पूना के तत्वावधान में प्रकाशित और 1942 से नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित | 1940 में 'व्यक्तिगत सत्याग्रह' के दौरान इसका प्रकाशन स्थगित रहा; जनवरी 1942 में प्रकाशन पुन: आरंभ हुआ, पर भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान बंद हो गया | 1946 से फिर प्रकाशित होना आरंभ हुआ |
हिं	द हिंदू: मद्रास से प्रकाशित दैनिक
हिंस्ट	द हिंदुस्तान स्टैंडर्ड: कलकत्ता से प्रकाशित दैनिक पत्र
हिंस्व	हिंद स्वराज ऑर इंडियन होम रूल: महात्मा गांधी; नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1938; प्रयुक्त संस्करण: 1958

कालानुक्रम

1869	अक्तूबर 2	मोहनदास करमचंद गांधी का जन्म पोरबंदर, काठियावाड़ के एक बनिया (वैश्य अथवा व्यापारी जाति) परिवार में हुआ	वह करमचंद गांधी उर्फ काबा गांधी, जो क्रमश: पोरबंदर, राजकोट और बांकानेर राज्य के प्रधानमंत्री रहे, और उनकी चौथी पत्नी पुतलीबाई के तीन पुत्रों में सबसे छोटे पुत्र थे	
1876		माता-पिता के साथ राजकोट गये; वहां बारह वर्ष की आयु तक प्राथमिक स्कूल में शिक्षा पाई; एक व्यापारी गोकुलदास माकनजी की पुत्री कस्तूरबा के साथ सगाई हुई	
1881		राजकोट में उच्च विद्यालय में प्रवेश लिया	
1883		कस्तूरबा से विवाह	
1884-85		छिपकर मांसाहार प्रारंभ किया, परंतु माता-पिता से विश्वासघात करने का विचार आने पर एक वर्ष के पश्चात इस आदत का परित्याग कर दिया	पिता का 63 वर्ष की आयु में देहांत हुआ	
1887		मैट्रिक की परीक्षा पास की; भावनगर (काठियावाड़) के एक महाविद्यालय में दाखिला लिया, परंतु प्रथम सत्र की समाप्ति पर पढ़ाई छोड़ दी	
1888	सितंबर 4	समुद्र के रास्ते इंग्लैंड के लिए रवाना हुए	
	अक्तूबर 28	लंदन पहुंचे	
		शाकाहारी भोजन पर रहे	एक भद्र पुरुष के लिए नृत्य और संगीत आवश्यक है, ऐसा सोचते हुए नृत्य और संगीत की शिक्षा लेनी आरंभ की	
1889		सादा जीवन के विषय में पुस्तकें पढ़ीं और अपने व्यय को आधा करने का निश्चय किया; धार्मिक साहित्य पढ़ा; गीता का पहली बार अध्ययन किया और उससे गहन रूप से प्रभावित हुए	
1890		शाकाहारी अभियान से जुड़े; कुछ समय के लिए शाकाहारी क्लब चलाया	
	जून	लंदन की मैट्रिक परीक्षा पास की	
	सितंबर	शाकाहारी सभा में शामिल हुए	

1891	जून	10	बैरिस्टर हुए।
		12	समुद्र के रास्ते भारत के लिए रवाना हुए।
	जुलाई		बंबई पहुंचे।
	नवंबर		बंबई उच्च न्यायालय में प्रवेश के लिए आवेदन किया।
1892			राजकोट और बंबई में वकालत के लिए संघर्ष किया; बाद में राजकोट में विधिक ड्राफ्ट्समैनी करने लगे।
1893	अप्रैल		कानूनी काम के लिए एक मुसलमान फर्म द्वारा नियुक्त किये जाने पर दक्षिण अफ्रीका के लिए प्रस्थान।
	मई-जून		अनेक प्रकार के रंग-भेद के अनुभव हुए; वहां रहकर जातीय पूर्वाग्रहों के लिए संघर्ष करने का निश्चय।
1894	अगस्त	22	नेटाल भारतीय कांग्रेस की स्थापना की।
	सितंबर		नेटाल के सुप्रीम कोर्ट में एडवोकेट के रूप में नाम रजिस्टर कराया; वहां नाम रजिस्टर कराने वाले वह पहले भारतीय थे।
			धार्मिक साहित्य का अध्ययन किया जिसमें बाइबिल, कुरान और टालस्टॉय की 'किंगडम ऑफ गॉड इज विदिन यू' सम्मिलित थीं।
1895			दक्षिण अफ्रीकी भारतीयों की समस्या के प्रति और अधिक प्रतिबद्ध हो गए। 'द इंडियन फ्रैंचाइज: एन अपील टु एवरी ब्रिटन इन साउथ अफ्रीका' जारी की।
1896	जुलाई		भारत वापिस आए और दक्षिण अफ्रीकी भारतीयों की ओर से आंदोलन प्रारंभ किया।
	अगस्त	14	राजकोट में 'द ग्रीन पैम्फ्लैट' प्रकाशित किया; दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों की शिकायतों के संबंध में भारतीयों को जानकारी देने के लिए बंबई, मद्रास, पूना और कलकत्ते का दौरा किया।
	नवंबर	30	पत्नी और बच्चों के साथ समुद्र के रास्ते दक्षिण अफ्रीका के लिए रवाना हुए।

1897	जनवरी	13	डरबन उतरने पर, दक्षिण अफ्रीका में अनुबंधित भारतीय मज़दूरों की हालत पर भारत में उनके द्वारा दिए गए भाषणों की रिपोर्टों से उत्तेजित होकर भीड़ द्वारा उनका घेराव किया गया।
		20	आक्रमणकारियों पर मुकदमा चलाने से इंकार किया।
	अप्रैल	6	डरबन उतरने पर घटी घटनाओं और उसकी पृष्ठभूमि के संबंध में औपनिवेशिक राज्यमंत्री चैम्बरलेन को लंबा अभ्यावेदन प्रस्तुत किया।
			स्थानीय और साम्राज्यिक अधिकारियों को याचिका देते रहने के साथ-साथ विभेदक कानूनों के संबंध में अंग्रेजी और भारतीय सार्वजनिक व्यक्तियों के साथ संपर्क करते रहे।
1898-99			लोकेशनों और भारतीयों के व्यापार संबंधी अधिकारों पर प्रतिबंधों के विरुद्ध भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, और औपनिवेशिक तथा साम्राज्यिक प्राधिकारियों के सामने अभ्यावेदन किए।
1899			बोअर युद्ध में भारतीय एम्बुलेंस कोर की स्थापना की; इस कोर द्वारा किए गए कार्य का उल्लेख वहां से भेजे गए खरीतों में किया गया; युद्ध पदक से सम्मानित।
1900			दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों की समस्या पर दादाभाई नौरोजी के संकल्प के प्रारूप को कांग्रेस अधिवेशन में भेजा।
1901	अक्तूबर	18	समुद्र के रास्ते भारत के लिए रवाना हुए।
	दिसंबर	14	पोरबंदर होते हुए राजकोट पहुंचे।
		27	कांग्रेस के समक्ष दक्षिण अफ्रीका के बारे में संकल्प प्रस्तुत किया।
1902	जनवरी	28	रंगून गए।
	फरवरी	1	कलकत्ता में गोखले के साथ एक माह रहे।
			राजकोट वापिस आए और वहां वकालत करने लगे।
	जुलाई		राजकोट से बंबई आ गए और वहां वकालत प्रारंभ की।
	नवंबर		ट्रांसवाल में एशिया-विरोधी कानून के विरुद्ध भारतीयों के मामले का नेतृत्व करने के लिए दक्षिण अफ्रीका बुलाया गया।

	दिसंबर	डरबन पहुंचे, चैम्बरलेन से मिलने के लिए एक प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व किया	
1903		ट्रांसवाल के सुप्रीम कोर्ट में अटॉर्नी के रूप में नाम रजिस्टर कराया, ट्रांसवाल ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन की स्थापना की	दादाभाई नौरोजी को हालात के संबंध में साप्ताहिक विवरण भेजते रहे	
	जून	'इंडियन ओपिनियन' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ	
1904		रस्किन की पुस्तक 'अनटू दिस लास्ट' पढ़ी; डरबन (नेटाल) के निकट फिनिक्स की स्थापना की; जोहांसबर्ग में प्लेग फैलने पर अस्पताल की व्यवस्था की; गुजराती में आहारविज्ञान पर क्रमबद्ध लेख लिखे, कुछ समय बाद इनका अनुवाद अंग्रेजी में किया गया जो 'गाइड टु हैल्थ' शीर्षक से प्रकाशित हुए	
1905		बंगाल विभाजन का विरोध किया, विलायती वस्तुओं के बहिष्कार का समर्थन किया	जब गोखले-लाजपतराय प्रतिनिधिमंडल ब्रिटेन गया, तब उपनिवेशवादी राजनेताओं से भारत को 'साम्राज्य का एक अभिन्न अंग' मानने तथा सम्मानजनक दर्जा देने की अपील की	
		ब्रिटिश उच्च-आयुक्त लार्ड सेलबोर्न को ट्रांसवाल के भारतीयों की समस्याओं से अवगत कराने के लिए एक प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व किया	
1906	मई 12	'न्याय के नाम पर और मानवता की भलाई के वास्ते'	
		भारत के लिए 'होम रूल' का समर्थन किया	
	27	सांसारिक वस्तुओं में अरुचि प्रकट करते हुए अपने भाई लक्ष्मीदास को पत्र लिखा	
	जून-जुलाई	जुलू विद्रोह में भारतीय स्ट्रेचर-वाहक कोर की स्थापना की; जीवन भर ब्रह्मचर्य का पालन करने की शपथ ली	
	सितंबर 11	जोहांसबर्ग में भारतीयों की विशाल सभा को संबोधित किया जिसमें ताजा जारी किए गए ट्रांसवाल एशियाई कानून संशोधन अध्यादेश के विरुद्ध निष्क्रिय प्रतिरोध करने की शपथ ली गई	
अक्तूबर 21- नवंबर 30		औपनिवेशिक मंत्री के सामने भारतीयों का मामला प्रस्तुत करने के लिए एक प्रतिनिधि के रूप में इंग्लैंड गए	

	दिसंबर	18	दक्षिण अफ्रीका लौट आए।
1907	जनवरी-फरवरी		'नैतिक धर्म' पर गुजराती में क्रमबद्ध आठ लेख लिखे जो 'इंडियन ओपिनियन' में साप्ताहिक और तत्पश्चात एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुए।
	मार्च		ट्रांसवाल की पार्लियामेंट में एशियाई पंजीकरण अधिनियम पास हुआ। भारतीयों ने विरोध प्रकट करने के लिए सभाएं आयोजित कीं।
	अप्रैल		प्रिटोरिया में स्मट्स से मिले और उन्हें जनसभाओं में पास किए गए संकल्पों से अवगत कराया। 'इंडियन ओपिनियन' में 'ब्लैक एक्ट' का विरोध करने की शपथ ली।
	मई		'ब्लैक एक्ट' को ब्रिटिश सम्राट की स्वीकृति प्राप्त हुई।
	जुलाई		'ब्लैक एक्ट' का विरोध करते हुए जनसभा को संबोधित किया।
	अगस्त		पंजीकरण अधिनियम की आलोचना करते हुए स्मट्स को पत्र लिखा जिसमें कुछ संशोधनों का सुझाव दिया।
			निष्क्रिय प्रतिरोध, परमिट कार्यालयों पर पिकेटिंग की; अदालतों में निष्क्रिय प्रतिरोध करने वालों का बचाव किया।
	दिसंबर		स्मट्स ने गांधीजी पर मुकदमा चलाने का निश्चय किया।
1908	जनवरी	8	सरकार से पंजीकरण अधिनियम को निलंबित करने के लिए कहा, स्वैच्छिक पंजीकरण के लिए प्रस्ताव किया।
		10	निष्क्रिय प्रतिरोध के स्थान पर 'सत्याग्रह' शब्द अपनाया।
			ट्रांसवाल छोड़ने में असफल होने के कारण दो माह के कारावास का दंड मिला।
		21	पंजीकरण अधिनियम को रद्द किए जाने की स्थिति में, स्वैच्छिक पंजीकरण के आधार पर फैसला करने के लिए सहमत हो गए।
		30	प्रिटोरिया में जनरल स्मट्स से मिलने के लिए बुलाया गया और समझौता हो जाने पर कारावास से छोड़ दिया गया।

फरवरी	10	समझौते के अंतर्गत भारतीयों द्वारा स्वैच्छिक रूप से अपने अंगुलिछाप दिए जाने को अपने हितों के प्रति विश्वासघात मानते हुए पठानों द्वारा गांधीजी पर लगभग घातक आक्रमण; अपने आक्रमणकारियों पर मुकदमा चलाने से इंकार।
मार्च-जून		अधिनियम को रद्द करने के वचन को पूरा कराने के लिए स्मट्स से बातचीत; स्मट्स द्वारा वचन निभाने से इंकार।
जुलाई		स्मट्स के साथ किया गया पत्र-व्यवहार प्रकाशित; भारतीयों ने एक विशाल जनसभा में अंगुलिछाप देने से इंकार करने का निश्चय किया और पंजीकरण प्रमाणपत्रों को जला दिया।
अगस्त		'भारत में ब्रिटिश राज्य को उखाड़ फेंकने के लिए हिंसा के प्रयोग को हानिकारक, यहां तक कि व्यर्थ' घोषित किया।
		स्मट्स से 'ब्लैक एक्ट' को रद्द करने की अपील की। सभाओं में पंजीकरण प्रमाणपत्रों को जलाया गया; निष्क्रिय प्रतिरोध फिर से आरंभ।
सितंबर		संशोधित पंजीकरण अधिनियम को सम्राट की स्वीकृति प्राप्त। स्मट्स ने समझौते के लिए भारतीय शर्तों को अस्वीकार किया।
अक्तूबर	15	गांधीजी बंदी बनाए गए और दो माह के कठोर कारावास की सजा दी गई।
दिसंबर	12	फोक्सरुस्ट जेल से रिहा। दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेजों के ब्रिटिश भारतीयों के साथ कठोर, अपमानजनक और निष्ठुर व्यवहार को ब्रिटिश साम्राज्य के लिए हानिकारक बताते हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा दक्षिण अफ्रीका पर संकल्प पारित किया गया।
1909 जनवरी	16	पंजीकरण प्रमाणपत्र न दिखा पाने के लिए फोक्सरुस्ट में गिरफ्तार हुए; देशनिकाला दिया गया, वापिस आ गए और फिर से गिरफ्तार कर लिया गया, परंतु जमानत पर छोड़ दिए गए।
	20	समाचारपत्रों में लेख लिखकर भारतीयों से अंतिम संघर्ष के लिए तैयार होने का आह्वान किया।
फरवरी	25	फोक्सरुस्ट में गिरफ्तार; तीन महीने की सजा दी गई।
मई	2	प्रिटोरिया केंद्रीय जेल में स्थानांतरण।

	24	जेल से रिहा कर दिए गए।
जून	21	भारतीयों का मामला प्रस्तुत करने के लिए हाजी हबीब के साथ प्रतिनिधि के रूप में इंग्लैंड रवाना हुए।
जुलाई	10	लंदन पहुंचे।
		लार्ड एम्पथिल की सहायता से प्रभावशाली ब्रिटिश नेताओं और जन-समुदाय को भारत के मामले की सही जानकारी देने तथा साम्राज्यिक अधिकारियों के सामने अपना पक्ष प्रस्तुत करने के लिए निरंतर कार्य करते रहे।
अक्तूबर	1	निष्क्रिय प्रतिरोध आंदोलन के संबंध में टालस्टॉय को पत्र लिखा।
नवंबर	9	'द टाइम्स' द्वारा ट्रांसवाल कानूनों पर गांधीजी और सरकार के बीच समझौता-वार्ता असफल हो जाने का समाचार प्रकाशित।
	10	टालस्टॉय के पत्र का उत्तर दिया; अपनी जीवनी डोक के हाथों भेजी।
	13	इंग्लैंड से दक्षिण अफ्रीका के लिए प्रस्थान।
		"एस. एस. किल्डोनन कासल" पर 'हिंद स्वराज' लिखा।
	30	दक्षिण अफ्रीका पहुंचे।
दिसंबर	29	दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के संघर्ष की प्रशंसा करते हुए और अनुबंध की प्रथा पर रोक लगाने की मांग करते हुए लाहौर कांग्रेस द्वारा संकल्प पारित।
1910 अप्रैल	4	टालस्टॉय को 'इंडियन होम रूल' की प्रति भेजी तथा उनसे उस पर सम्मति देने का अनुरोध किया।
मई	8	टालस्टॉय ने उत्तर दिया कि निष्क्रिय प्रतिरोध का प्रश्न न केवल भारत के लिए बल्कि समूची मानवता के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है।
	30	टालस्टॉय फार्म की नींव रखी।
दिसंबर	4	टालस्टॉय को श्रद्धांजलि अर्पित की।
1911 जनवरी		अप्रवासी प्रतिबंध विधेयक में संशोधनों के संबंध में स्मट्स से लिखा-पढ़ी की; स्मट्स ने आश्वासन दिया कि कानूनों में रंग-भेद संबंधी कोई दोष नहीं रहेगा।

	मार्च	27	केपटाउन में स्मट्स से साक्षात्कार किया।
	अप्रैल	22	निष्क्रिय प्रतिरोध आंदोलन को निलंबित करने पर, स्मट्स भारतीयों द्वारा मांगे गए आश्वासन देने के लिए सहमत हो गए।
	मई	3	स्मट्स से भेंट की; स्मट्स द्वारा एशियाई पंजीकरण तथा अप्रवासी प्रतिबंध अधिनियम को रद्द करने का वचन देने पर एक 'अस्थायी समझौता' हुआ।
	जून	24	राज्याभिषेक के अवसर पर सम्राट के प्रति निष्ठा व्यक्त की।
	दिसंबर	8	गोखले को दक्षिण अफ्रीका आने के लिए आमंत्रित किया।
1912	मार्च	16	गोखले द्वारा अनुबंध प्रथा का उन्मूलन करने के प्रयत्नों की प्रशंसा की।
	सितंबर	12	फोनिक्स ट्रस्ट की स्थापना की।
	अक्तूबर	22	गोखले के साथ दक्षिण अफ्रीका, लौरेन्को, मारकीस, मोजंबीक और जंजीबार का दौरा किया।
			योरोपीय परिधान और दूध पीना छोड़ दिया तथा अपने आहार को ताजे फल और मेवे तक सीमित कर दिया।
1913	जनवरी	18	'इंडियन ओपिनियन' में वर्ष के अंत तक भारत वापिस जाने की संभावना का जिक्र किया।
	मार्च	14	सिअरले के सुप्रीम कोर्ट ने निर्णय दिया कि दक्षिण अफ्रीका में हुए भारतीय विवाह अमान्य हैं।
		30	सिअरले के निर्णय का भारतीयों की विशाल जनसभा द्वारा विरोध।
	अप्रैल	12	1911 के अस्थायी समझौते की शर्तों को पूरा करने में नये अप्रवासी बिल की असफलता की ओर 'इंडियन ओपिनियन' में ध्यान दिलाया गया।
			कस्तूरबा ने निष्क्रिय प्रतिरोध आंदोलन में भाग लेने का निर्णय किया।
	मई	19	सरकार को चेतावनी दी कि यदि उसने अपने वायदे के अनुसार राहत न दी तो आंदोलन फिर से शुरू कर दिया जाएगा।

जून	7	भेदभावमूलक कानूनों का कठोरता से प्रयोग किए जाने तथा सत्याग्रह फिर से प्रारंभ होने की संभावना को ध्यान में रखते हुए भारत लौट जाने का विचार स्थगित कर दिया।
	28	बातचीत के लिए सहमति व्यक्त की।
सितंबर	13	बातचीत "निष्फल सिद्ध हुई" की घोषणा।
	15	निष्क्रिय प्रतिरोध फिर से प्रारंभ किया।
	16	कस्तूरबा को बंदी बनाया गया।
अक्तूबर	17	न्यू कासल गए; अनुबंधित भारतीयों से आग्रह किया कि जब तक 3 पाउंड का कर रद्द न कर दिया जाए तब तक काम बंद कर दें। 3000 खनिकों ने हड़ताल कर दी।
	24	ट्रांसवाल की ओर 'मार्च' करने का प्रस्ताव किया।
	28	न्यू कासल से 'मार्च' प्रारंभ हुआ।
	30	चार्ल्सटाउन पहुंचे।
नवंबर	3	गिरफ्तारी देने के लिए ट्रांसवाल की ओर 'मार्च' की घोषणा की।
	5	स्मट्स को तीन पाउंड के कर को रद्द करने का आश्वासन लेने के लिए फोन किया।
	6	'ग्रेट मार्च' का नेतृत्व किया। पामफोर्ड में गिरफ्तार किए गए।
	7	फोक्सरुस्ट में जमानत पर रिहा कर दिए गए; मार्च करने वालों में फिर सम्मिलित हो गए।
	8	स्टैंडरटन में गिरफ्तार किए गए; मुचलके पर रिहाई; 'मार्च' जारी।
	9	टीकवर्थ में गिरफ्तार किए गए; बेलफोर ले जाए गए।
	10	जब तक कर रद्द न हो जाए तब तक दिन में एक बार भोजन करने की प्रतिज्ञा की।
	11	डंडी में नौ माह के कठोर कारावास का दंड दिया गया।

13	फोक्सरुस्ट जेल ले जाए गए	
14	फोक्सरुस्ट में नया अभियोग चलाए जाने पर तीन माह का दंड दिया गया	
दिसंबर 18	बिना शर्त रिहा कर दिया गया	रिहाई के समय से लेकर समझौता होने तक दिन में एक बार भोजन करने का निश्चय किया और अनुबंधित मज़दूरों की पोशाक पहनने लगे	
1914 जनवरी 13, 16	स्मट्स से साक्षात्कार किया; प्रस्ताव प्रस्तुत किए	
22	स्मट्स से समझौता हो जाने पर सत्याग्रह स्थगित कर दिया	
	फार्म के निवासियों की नैतिक चूक के लिए पश्चाताप के रूप में 14 दिन का उपवास किया	
जून	भारतीय राहत अधिनियम पारित किया गया	
जुलाई 18	भारत के लिए इंग्लैंड के रास्ते जलपोत से रवाना हुए	
अगस्त 4	लंदन पहुंचे	
अक्तूबर	भारतीय स्वयंसेवक कोर की स्थापना की	स्वयंसेवक कोर की तैनाती	कोर के कार्य में प्रशासनिक हस्तक्षेप होने पर सत्याग्रह किया	
दिसंबर 19	भारत के लिए जलपोत से रवाना हुए	
1915 जनवरी 9	भारत पहुंचे	
	एम्बुलेंस सेवाओं के लिए कैसर-ए-हिंद स्वर्ण-पदक से सम्मानित किया गया	
मई 20	अहमदाबाद में सत्याग्रह आश्रम की स्थापना की (बाद में, यह साबरमती नदी के नाम पर साबरमती आश्रम के नाम से जाना गया)	
1915-16	भारत और बर्मा का दौरा किया, रेल में तृतीय श्रेणी में यात्रा की	
1917	अनुबंधित भारतीयों के उत्प्रवास के विरुद्ध सफलतापूर्वक आंदोलन चलाया; बड़े पैमाने पर हस्तनिर्मित कपड़ा बनाने के लिए चरखे के उपयोग का विचार मन में आया	

	अप्रैल	नील की खेती में मज़दूरों के हालात की जांच करने के लिए चम्पारन (बिहार) गए; बंदी बनाए गए और बाद में छोड़ दिया गया; रैयत की शिकायतों की जांच करने के लिए बिहार सरकार द्वारा गठित समिति में सदस्य नियुक्त हुए।
1918	जनवरी-मार्च	अहमदाबाद में कपड़ा मजदूरों का मामला हाथ में लिया और विवाद को शांतिपूर्वक हल करने के लिए उपवास किया। फसल न होने पर लगान मुल्तवी कराने के लिए जिला खेड़ा (बंबई) में सत्याग्रह प्रारंभ किया।
	अप्रैल 27	दिल्ली में वायसराय के युद्ध सम्मेलन में भाग लिया और उसे हिंदुस्तानी में संबोधित किया; तत्पश्चात सेना में लोगों की भर्ती के लिए खेड़ा जिले का दौरा किया।
1919	फरवरी 28	रौलट बिल को वापिस लिया जाए, इसके लिए सत्याग्रह करने की शपथ पर हस्ताक्षर किए।
	अप्रैल 6	अखिल भारतीय सत्याग्रह आंदोलन का उद्घाटन किया; देशव्यापी हड़ताल हुई।
	8 – 11	पंजाब में प्रवेश न करने के आदेश को मानने से इंकार करने के लिए दिल्ली जाते हुए बंदी बनाए गए; बंबई वापिस लाया गया; अनेक शहरों में हिंसा भड़क उठी।
	13	अमृतसर में जलियांवाला बाग की दुखद घटना घटी। सेना ने निहत्थे लोगों पर गोलियां चलाई जिससे 400 से अधिक लोगों की जानें गईं। साबरमती आश्रम के पास सार्वजनिक सभा को संबोधित किया और पश्चाताप के रूप में तीन दिन के उपवास की घोषणा की।
	14	नाडियाड में सत्याग्रह के बारे में अपनी 'भयंकर भूल' को स्वीकार किया।
		पंजाब में मार्शल लॉ की घोषणा हुई।
	18	सत्याग्रह स्थगित कर दिया।
	सितंबर	गुजराती मासिक पत्रिका 'नवजीवन' का संपादन संभाला; बाद में, यह हिंदी में भी साप्ताहिक पत्रिका के रूप में प्रकाशित हुआ।

	अक्तूबर	अंग्रेजी साप्ताहिक 'यंग इंडिया' का संपादन संभाला; पंजाब में सरकारी ज्यादतियों की जांच के लिए गठित गैर-सरकारी समिति में सम्मिलित हुए।
	नवंबर 24	दिल्ली में अखिल भारतीय खिलाफत सम्मेलन की अध्यक्षता की।
	दिसंबर	अमृतसर में, कांग्रेस द्वारा मोंटेग्यू-चैम्सफोर्ड सुधारों को स्वीकार किए जाने की सलाह दी।
1920	जनवरी	तुर्की के सुलतान को (जो मुसलमानों का खलीफा भी था) इस्लाम के पवित्र स्थलों पर अपने अधिराजत्व से वंचित न करने के लिए ब्रिटिश सरकार पर दबाव डलवाने के उद्देश्य से वायसराय के पास जाने वाले प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व किया।
	अगस्त 1	कैसर-ए-हिंद पदक, जुलू युद्ध पदक तथा बोअर युद्ध पदक को वापिस करते हुए वायसराय को पत्र लिखा।
	सितंबर	कलकत्ता में आयोजित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के विशेष अधिवेशन द्वारा पंजाब और खिलाफत संबंधी अन्यायों की समाप्ति के लिए गांधीजी के असहयोग कार्यक्रम की स्वीकृति।
	नवंबर	अहमदाबाद में गुजरात विद्यापीठ की स्थापना की।
	दिसंबर	नागपुर कांग्रेस में उनके इस संकल्प को स्वीकार किया गया कि कांग्रेस का उद्देश्य भारतीयों के लिए सभी वैध और शांतिपूर्ण साधनों द्वारा स्वराज की प्राप्ति है।
1921	अप्रैल	राष्ट्रीय रचनात्मक आंदोलन को आगे बढ़ाने के लिए भारत में कांग्रेस के एक करोड़ सदस्य बनाने, तिलक स्वराज फंड के लिए एक करोड़ रुपये जमा करने और 20 लाख चरखों की स्थापना का कार्यक्रम प्रारंभ किया।
	अगस्त	विदेशी वस्त्रों के पूर्ण बहिष्कार के अभियान का नेतृत्व किया और बंबई में विदेशी कपड़ों की विशाल होली जलाई।
	दिसंबर	अहमदाबाद अधिवेशन में कांग्रेस द्वारा उन्हें अपना सर्वेसर्वा (डिक्टेटर) मानकर संपूर्ण शक्तियां प्रदान की गई।

1922	फरवरी	1	बारदोली (गुजरात) में सत्याग्रह आंदोलन चलाने के इरादे का वायसराय को नोटिस दिया।
		5	चौरीचौरा (उत्तर प्रदेश) की दुखांत घटना पर, जिसमें भीड़ द्वारा 21 पुलिस कांस्टेबलों और एक उपनिरीक्षक को जिंदा जला दिया गया था, पांच दिन का उपवास किया और सत्याग्रह आंदोलन की योजना को त्याग दिया।
	मार्च	10	साबरमती में राजद्रोह के लिए गिरफ्तार किया गया और (18 मार्च को) छह वर्ष के कारावास का दंड दिया गया।
1924	जनवरी-फरवरी		सैसून अस्पताल, पूना में (12 जनवरी को) ऐपेंडिसाइटिस का आपरेशन किया गया और 5 फरवरी को उन्हें जेल से रिहा कर दिया गया।
	अप्रैल		'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' पत्रिकाओं के संपादक का कार्य फिर से हाथ में लिया।
	सितंबर	18	हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए 21 दिन का उपवास प्रारंभ किया।
	दिसंबर		बेलगांव में कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता की।
1925	सितंबर		चरखा कातने वालों के अखिल भारतीय संघ की स्थापना की।
	नवंबर		आश्रमवासियों द्वारा किए दुष्कर्मों के लिए उनकी ओर से सात दिन का उपवास किया।
			अपनी आत्मकथा 'द स्टोरी ऑफ माई एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ' लिखना प्रारंभ किया।
1927	नवंबर		लंका की यात्रा पर गए।
1928	दिसंबर		कलकत्ता कांग्रेस में यह संकल्प प्रस्तुत किया कि यदि 1929 के अंत तक भारत को स्वतंत्र उपनिवेश का दर्जा नहीं दिया जाता तो फिर उसका लक्ष्य स्वतंत्रता ही होगा।
1929	दिसंबर		लाहौर कांग्रेस में उनके आग्रह पर यह घोषित किया गया कि कांग्रेस के मतानुसार स्वराज का अर्थ है पूर्ण स्वराज (अर्थात पूर्ण स्वतंत्रता)।

1930	फरवरी		अखिल भारतीय कांग्रेस समिति द्वारा सविनय अवज्ञा आंदोलन चलाने के लिए कांग्रेस के सर्वेसर्वा (डिक्टेटर) नियुक्त किए गए।
	मार्च	2	वायसराय को पत्र लिखा कि यदि कांग्रेस की मांगों को नहीं माना गया तो वे नमक कानून भंग करेंगे।
		12	डांडी समुद्र-तट के लिए यात्रा आरंभ की जहां उन्होंने औपचारिक रूप से नमक हाथ में लिया (अप्रैल 6)।
	मई	5	गिरफ्तार किए गए और बिना मुकदमा चलाए जेल भेज दिए गए; संपूर्ण भारत में हड़ताल हुई; वर्ष की समाप्ति तक 1,00,000 से भी ज़्यादा लोगों को जेल भेजा गया।
1931	जनवरी	26	जेल से बिना शर्त रिहा कर दिया गया।
	फरवरी-मार्च		वायसराय के साथ कई बार वार्ता हुई जिसके परिणामस्वरूप इर्विन-गांधी समझौता हुआ।
	अगस्त	29	द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में भाग लेने के लिए समुद्र के रास्ते इंग्लैंड के लिए रवाना हुए।
	सितंबर-दिसंबर		सम्मेलन के सत्रों में भाग लिया।
	दिसंबर	5	इंग्लैंड से भारत के लिए प्रस्थान।
	दिसंबर	28	बंबई उतरे।
1932	जनवरी	4	गिरफ्तार किए गए और बिना मुकदमा चलाए जेल में डाल दिए गए।
	सितंबर	20	सांप्रदायिक अधिनिर्णय में हरिजनों के लिए अलग निर्वाचन मंडलों की व्यवस्था का उन्मूलन कराने के लिए जेल में 'आमरण अनशन' प्रारंभ किया।
		26	भारत सरकार द्वारा हरिजनों के संबंध में उनकी मांगें मान लिए जाने पर उपवास तोड़ दिया।
1933	फरवरी	11	अंग्रेजी और हिंदी में प्रकाश्य साप्ताहिक पत्र 'हरिजन' की स्थापना की।
	मई	8	आत्मशुद्धि के लिए दोपहर से 21 दिन का उपवास प्रारंभ किया; रात 9 बजे बिना शर्त रिहा कर दिए गए।

		9	सविनय अवज्ञा आंदोलन छह सप्ताह के लिए स्थगित करने की घोषणा की और सरकार से अपने अध्यादेशों को वापिस लेने की मांग की।
		29	उपवास तोड़ दिया।
	जुलाई	26	सत्याग्रह आश्रम को विघटित कर दिया।
		30	सविनय अवज्ञा आंदोलन को फिर से प्रारंभ करने के लिए अहमदाबाद से रास तक 33 अनुगामियों सहित मार्च करने के अपने निर्णय की सूचना बंबई सरकार को दी।
		31	गिरफ्तार कर लिए गए और मुकदमा चलाए बिना जेल भेज दिए गए।
	अगस्त	4	छोड़ दिए गए और एक प्रतिबंध आदेश को भंग करने के लिए फिर से बंदी बना लिए गए।
		16	छूआछूत-विरोधी प्रचार को जारी रखने के लिए सुविधाओं से वंचित किए जाने पर उपवास किया।
		23	बिना शर्त रिहा कर दिया गया।
	नवंबर	7	हरिजन-उद्धार के लिए दौरा प्रारंभ किया।
1934	सितंबर	17	ग्रामीण उद्योगों के विकास, हरिजन-सेवा और बुनियादी हस्तशिल्पों के जरिए शिक्षा देने के कार्य में लग जाने के लिए 1 अक्तूबर से राजनीति से संन्यास लेने के निर्णय की घोषणा की।
	अक्तूबर	26	अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ का उद्घाटन किया।
1936	अप्रैल	30	मध्यप्रांत में वर्धा के निकट एक गांव, सेवाग्राम को अपना मुख्यालय बनाकर वहीं रहने लगे।
1937	अक्तूबर	22	वर्धा में शिक्षा सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए बुनियादी हस्तशिल्पों के जरिए शिक्षा देने की अपनी योजना की रूपरेखा प्रस्तुत की।
1939	मार्च	3	प्रशासन में सुधार लाने के शासन के वायदे को पूरा कराने के लिए राजकोट में 'आमरण अनशन' प्रारंभ किया और वायसराय के हस्तक्षेप पर 7 मार्च को यह अनशन समाप्त कर दिया।

1940	जु. तथा सि.		युद्ध की स्थिति के संबंध में चर्चा करने के लिए वायसराय द्वारा निमंत्रित किए जाने पर उनसे भेंट की।
	अक्तूबर		वैयक्तिक सविनय अवज्ञा के लिए स्वीकृति दी; सत्याग्रह विषय पर 'हरिजन' में प्रकाश्य रिपोर्टों तथा लेखों के पूर्व-सेंसर की सरकारी मांग पर 'हरिजन' और संबद्ध साप्ताहिक पत्रों का प्रकाशन स्थगित कर दिया।
1941	दिसंबर	30	अपने ही अनुरोध पर कांग्रेस कार्यकारिणी समिति द्वारा कांग्रेस के नेतृत्व से भारमुक्त हुए।
1942	जनवरी	18	'हरिजन' और संबद्ध साप्ताहिक पत्रिकाएं फिर से प्रारंभ कीं।
	मार्च	27	नयी दिल्ली में सर स्टैफोर्ड क्रिप्स से भेंट की; तत्पश्चात क्रिप्स के प्रस्तावों को एक 'उत्तर दिनांकित' (पोस्ट डेटिड) चैक बताया।
	मई		ब्रिटिश सरकार से भारत छोड़ने के लिए अपील की।
	अगस्त	8	'भारत छोड़ो' संकल्प के निहितार्थों पर प्रकाश डालने के लिए बंबई में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक को संबोधित किया।
		9	गिरफ्तार किए गए और पूना में आगाखां महल में नजरबंद कर दिए गए।
		15	आगाखां महल में गांधीजी के निजी सचिव महादेव देसाई का हृदयगति रुक जाने से देहांत।
	अगस्त-दिसंबर		दंगों के संबंध में वायसराय तथा भारत सरकार से पत्राचार।
1943	फरवरी	10	21 दिन का उपवास प्रारंभ किया जो 3 मार्च को तोड़ा।
1944	फरवरी	22	आगाखां महल में कस्तूरबा गांधी का निधन।
	मई	6	बिना शर्त रिहा किया गया।
	सितंबर	9 – 27	एम. ए. जिन्ना से पाकिस्तान के संबंध में बातचीत जारी रखी।
	अक्तूबर	2	75वें जन्म-दिवस के अवसर पर कस्तूरबा स्मारक के लिए 110 लाख रुपये (8,25,000 पौंड) की राशि भेंट की गई।

1945	अप्रैल	17	आगामी सेनफ्रांसिस्को सम्मेलन के संबंध में एक वक्तव्य में घोषणा करते हुए कहा कि समानता और भारत की स्वतंत्रता के बिना शांति असंभव है	जर्मनी और जापान के लिए भी न्यायोचित शांति की मांग की	
	दिसंबर	19	शांति निकेतन में सी. एफ. एंड्रूज स्मारक अस्पताल की नींव रखी	
1945-46	दिसंबर-जनवरी		बंगाल और असम का दौरा किया	
1946	ज. तथा फ.		छूआछूत के विरोध तथा हिंदुस्तानी के प्रचार के लिए दक्षिण भारत का दौरा किया	
	फरवरी	10	हरिजन और संबद्ध साप्ताहिक पत्रिकाओं का प्रकाशन फिर से प्रारंभ किया	
	अप्रैल		दिल्ली में केबिनेट मिशन के साथ राजनीतिक वार्ता में भाग लिया	
	मई	5 – 12	शिमला गए; शिमला सम्मेलन आयोजित; विचार-विमर्श निष्फल सिद्ध हुआ	
		16	केबिनेट मिशन ने अपनी योजना की घोषणा की	
		18-19	केबिनेट मिशन के साथ उनकी योजना पर चर्चा की	
		26	तत्कालीन परिस्थितियों में, ब्रिटिश सरकार द्वारा तैयार किए गए दस्तावेज को सर्वश्रेष्ठ माना	
	जून	6	मसूरी गए	
		7	दिल्ली वापिस आए	
		10	मित्र देशों की विजय पर यह कहते हुए हर्ष प्रकट करने से इंकार किया कि यह "असत्य पर सत्य की विजय नहीं है	"	
		11	वायसराय ने गांधीजी से साक्षात्कार किया; केंद्र में साझा सरकार का प्रस्ताव रखा	
		16	केबिनेट मिशन की बातचीत स्थगित हो गई; वायसराय ने अंतरिम सरकार बनाने का प्रस्ताव रखा	
		18	कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने अंतरिम सरकार की योजना को स्वीकार करने का निर्णय किया	

20-21	कार्यकारिणी समिति की बैठक में भाग लिया; क्रिप्स ने गांधीजी से भेंट की	
23	कांग्रेस को अंतरिम सरकार में शामिल न होकर केवल संविधान सभा में सम्मिलित होने की सलाह दी	
24	केबिनेट मिशन से भेंट की	
28	दिल्ली से पूना के लिए रवाना हुए	रास्ते में गाड़ी को पटरी से उतारने के प्रयत्न किए गए	
जुलाई 7	बंबई में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति को संबोधित किया; कांग्रेस ने केबिनेट मिशन की 16 मई की योजना को स्वीकार कर लिया	
31	जिन्ना ने 'सीधी कार्रवाई' करने की धमकी दी	
अगस्त 12	वायसराय ने कांग्रेस को अस्थायी सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करने की घोषणा की	
16-18	कलकत्ता में भीषण नर-संहार	
24	वायसराय वेवेल ने योजना का रेडियो पर प्रसारण किया	
27	गांधीजी ने ब्रिटिश सरकार से बंगाल त्रासदी को दोहराने के विरुद्ध चेतावनी देते हुए तार दिया; वेवेल को भी पत्र लिखा	
सितंबर 4	अंतरिम सरकार बनाई गई	
26	वेवेल से साक्षात्कार किया	
अक्तूबर 9	जिन्ना की 9-सूत्री मांगों के विषय में कांग्रेस को सूचित किया गया	
10	नोआखाली में नरसंहार	
15	मुस्लिम लीग अंतरिम सरकार में सम्मिलित होने के लिए सहमत हो गई	
28	कलकत्ता के लिए प्रस्थान	बिहार में दंगे-फसाद प्रारंभ	
नवंबर 6	नोआखाली के लिए प्रस्थान, 'आंशिक उपवास' के बारे में वक्तव्य जारी किया; नोआखाली का दौरा आरंभ	
20	बिना किसी को साथ लिए निकल पड़े	

	दिसंबर	20	श्रीरामपुर में एक माह का प्रवास पूरा किया	
		25	नोआखाली में उन्होंने कहा, "ईश्वर मेरी जमकर परीक्षा ले रहा है |"
		30	जवाहरलाल नेहरू गांधी से आकर मिले जिनसे उन्होंने कहा, "मेरा विवेक मेरे हृदय के भावों का पूरी तरह समर्थन कर रहा है	
1947	जनवरी	2	उन्होंने कहा, "मेरे चारों तरफ अंधेरा-ही-अंधेरा है |"
			श्रीरामपुर से पैदल दौरे पर चल पड़े	
		3 – 29	बिहार में दंगों से प्रभावित क्षेत्रों का दौरा किया	
		30	पटना से दिल्ली के लिए रवाना हुए	
			नये वायसराय माउंटबेटन दिल्ली पहुंचे	
	अप्रैल	1 – 2	गांधीजी ने दिल्ली में एशियाई संबंध सम्मेलन को संबोधित किया	
		15	जिन्ना के साथ मिलकर सांप्रदायिक शांति के लिए संयुक्त अपील जारी की	
		29	बिहार गए	
	मई	1	कांग्रेस कार्यकारिणी ने सैद्धांतिक रूप से देश का विभाजन स्वीकार कर लिया	
		5	एक साक्षात्कार में गांधीजी ने इस बात से इंकार किया कि भारत का सांप्रदायिक आधार पर विभाजन अपरिहार्य है	
		24	बिहार से दिल्ली के लिए प्रस्थान किया	
		31	गांधीजी ने घोषित किया कि विभाजन से पहले शांति स्थापित होनी चाहिए	यह भी कि वे भारत के जीवच्छेदन (विभाजन) के निर्णय में भागीदार नहीं हैं	
	जून	2	वायसराय ने देश-विभाजन की योजना प्रस्तुत की; कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने इसे अपनी स्वीकृति दी	
		3	भारतीय नेताओं द्वारा माउंटबेटन की योजना पर रेडियो भाषण	
		6	गांधीजी ने पाकिस्तान को स्वीकार करते हुए माउंटबेटन को लिखा कि वे जिन्ना को कांग्रेस के साथ पिछले सभी विवादग्रस्त विषयों को मित्रतापूर्ण ढंग से निपटाने के लिए राजी करें	

	12	कांग्रेस कार्यकारिणी समिति को संबोधित किया	
जुलाई		'भारत स्वतंत्रता बिल' पास हुआ	
	27	भारत की रियासतों के राजाओं से जनता के वर्चस्व को एक विशेषाधिकार मानने की अपील की	
अगस्त	14	अंग्रेजों की दासता से मुक्ति पाने पर अगले दिन का हर्षोल्लास दिवस के रूप में स्वागत; परंतु देश-विभाजन की निंदा; पाकिस्तान का जन्म	
अगस्त	15	कलकत्ते में हिंदू-मुसलमानों में भाई-चारा	
	16	'कलकत्ता में हुए इस चमत्कार' का स्वागत	
सितंबर	1	कलकत्ते की शांति को नौ दिन का आश्चर्य बताया; उपवास का निश्चय	
	2	कलकत्ते के घर में भारी भीड़ ने उन्हें घेरा; नोआखाली जाने का विचार त्याग दिया; शांति के लिए किए जाने वाले प्रयत्नों को तेज किया	
	4	उपवास तोड़ दिया	
	7	कलकत्ते से दिल्ली के लिए प्रस्थान; दंगों से पीड़ित क्षेत्रों का प्रतिदिन दौरा करना प्रारंभ किया	
	24	पाकिस्तानी हमलावरों द्वारा कश्मीर पर हमला	
	25	कश्मीर भारतीय संघ में सम्मिलित हुआ	
	26	चर्चिल के 'भारत में सर्वनाश' वक्तव्य की आलोचना	
नवंबर	1	भारतीय सेना का जूनागढ़ में प्रवेश	
	3	जूनागढ़ भारत में सम्मिलित हो गया | अखिल भारतीय कांग्रेस समिति को संबोधित किया	
	11	जूनागढ़ के भारत में सम्मिलित होने का समर्थन	
दिसंबर	25	भारत और पाकिस्तान के बीच मित्रतापूर्ण समझौते का आग्रह	
	30	भारत द्वारा कश्मीर-विवाद संयुक्त राष्ट्र के समक्ष प्रस्तुत	
1948 जनवरी	12	दिल्ली में सांप्रदायिक शांति के लिए उपवास करने का	

निर्णय; माउंटबेटन गांधीजी को उपवास न रखने के लिए राजी करने में असफल|

15 स्वास्थ्य की स्थिति 'नाजुक' | भारतीय मंत्रिमंडल द्वारा पाकिस्तान को देय 55 करोड़ की राशि अदा किए जाने के निर्णय का स्वागत किया | सांप्रदायिक शांति की स्थापना के लिए उपवास जारी रखा |

17 चिकित्सकों ने चेतावनी दी कि उपवास समाप्त कराना अब नितांत आवश्यक है | केंद्रीय शांति समिति का गठन जिसने 'शांति के लिए शपथ' लेने का निर्णय लिया |

18 शांति समिति ने 'शपथ' पर हस्ताक्षर किए, 'शांति-शपथ' गांधीजी को प्रस्तुत की गई; गांधीजी ने उपवास तोड़ा |

20 प्रार्थना-सभा में बम फटा |

27 महरौली में मुसलमानों के मेले में गए |

29 क्रुद्ध शरणार्थियों द्वारा गांधीजी से संन्यास लेकर हिमालय चले जाने की मांग |

30 कांग्रेस को लोक सेवक संघ में रूपांतरित करने के लिए एक संविधान का प्रारूप तैयार किया; प्रार्थना-सभा में जाते समय उनकी हत्या कर दी गई |